

व्यंग्य यात्रा

वर्ष : 5
अंक : 20

सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी

जुलाई-सितंबर
2009



त्रिकोणीय में सूर्यमाला पर चर्चा

ज्ञान चतुर्वेदी
यश शर्मा
वेदप्रकाश अमिताभ
हरीश नवल
प्रेम जनमेजय



इस अंक में

हरिश्चंकर परसाई, राजकमल चौधरी, दिविक रमेश, सुनील कुमार गंगोपाध्याय, कर्नल मुहम्मदखां, सुबोध कुमार श्रीवास्तव, श्रवण कुमार उमर्लिया, संज्ञा उपाध्याय, राजी सेठ, शिव शर्मा, प्रकाश मनु, श्रीकांत चौधरी, बलराम, रमाशंकर श्रीवास्तव, सुरेश वाहने, राजेन्द्र सहजल, विलास गुप्ते, सुधाकर अदीब, मधुसूदन पाटिल, इष्टदेव सांकृत्यायन, विश्वनाथ, सूर्यकुमार पांडेय,

मूल्य २० रुपए

'व्यंग्य यात्रा' एवं 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्' का संयुक्त आयोजन दिविक रमेश के काव्य संकलन 'गेहूं घर आया है' का लोकार्पण



प्रेम जनमेजय, केदारनाथ, नामवरसिंह,
निर्मला जैन एवं दिविक रमेश

अध्यक्षीय भाषण देते नामवर सिंह

श्रोता के रूप में आनंद लेते विशिष्टजन



प्रो. निर्मला जैन

दिविक रमेश

दिनेश मिश्र

प्रताप सहगल

प्रणव कुमार बंधोपाध्याय

प्रेम जनमेजय

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा आयोजित कविसम्मेलन



दीप प्रज्ज्वलन करते वीरेन्द्र गुप्ता, बेकल उत्साही

संचालन करते अशोक चक्रधर

विशिष्ट श्रोता



सुरेश ऋतुपर्ण की कृति 'ये मेरे कामकाजी
शब्द' का लोकार्पण

हिन्दी अकादमी कवयित्री

जम्मू में नेशनल बुक ट्रस्ट का आयोजन

दिविक रमेश को द्विवागीय सम्मान



सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी

जुलाई-सितंबर 2009

वर्ष-5

अंक-20

एक अंक : 20 रुपए

पांच अंक : सौ रुपए

(डाक व्यय 5 रुपए प्रति अंक अतिरिक्त)

विदेशों में : दो डॉलर प्रति अंक

सहयोग राशि 'व्यंग्य यात्रा' के नाम से ही भेजने का कष्ट करें। दिल्ली से बाहर के चेक पर बीस रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

'केन्द्रीय हिंदी संस्थान', आगरा से
आर्थिक सहयोग प्राप्त।

संपादक
प्रेम जनमेजय

संपर्क

73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063

फोन : 011-25264227, 09811154440

फैक्स : 011-25264227

ई-मेल : vyangya@yahoo.com

मुख्यपृष्ठ रेखांकन
श्रीकांत आप्टे

रेखांकन
राजेन्द्र परदेसी

सहयोग
राजेंद्र सहगल

प्रबंध सहयोग/लेजर टाइपसैटिंग

रामविलास शास्त्री

4, शॉपिंग कॉम्प्लेक्स दयाल बाग
सूरजकुंड, फरीदाबाद (हरियाणा)

09911077754, 0129-4092514

'व्यंग्य यात्रा' में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। विवादास्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अनुक्रम

आरंभ	2-3	विलास गुप्ते	
चंदन पिर्रें	4-10	पेशे लायक चेहरा	67
		दिनेश चन्द्र जोशी	
		बुलाकी का उस्तरा और राजधानी	68
पाथेय	11-22	सुधाकर अदीब	
		हुआ यू कि. . .	71
		मनोज श्रीवास्तव	
	11	गंगा-जमुना आख्यान	73
		इष्टदेव सांकृत्यायन	
	13	तो क्या कहेंगे?	79
		अजीत श्रीवास्तव	
	14	साहब पानी खो गया	80
		तारकेश्वर शर्मा 'विकास'	
	17	रामरस बिना क्या बतरस मजा	82
		रमाशंकर श्रीवास्तव	
	21	मैंने लड़की देखी	84
		मधुसूदन पाटिल	
चिंतन	23-38	यहां प्यारना मना है	87
		राजी सेठ	
		दुकानदार	87
		कुंवर प्रेमिल	
		मुपत का कुत्ता मिल जाए	88
		प्रदीप शशांक	
		बगुला	89
		श्रवण कुमार उर्मिलया	
	31	शिष्टाचार का कलंक	90
		कैलाश चन्द्र जायसवाल	
	34	डंडा ददाति विनयम्	93
		प्रेमचंद्र स्वर्णकार	
त्रिकोणीय	39-50	स्वास्थ्य सेवा का सौंदर्य	94
		जगदीश पाठक	
	39	निर्भरता एवं नियंत्रण	95
		डॉ. रामनिवास शर्मा	
	40	रोग 'तो' का	96
		शिवशंकर मिश्र	
	41	सबसे बड़ा सुख	97
		राम पटवा	
	43	जूता निकालो	98
		तारिक असलम 'तस्नीम'	
		सदैव आस्था चूर्ण ही प्रयोग करें. . .	99
		राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'	
	47	साहित्य जगत के वट वृक्ष	100
		दिनेश चन्द्र झा 'प्रवासी'	
	49	साधारण-असाधारण	101
		चन्द्र प्रकाश भाटिया	
चिंता	51-54	स्थानांतरण शास्त्र	102
		शरद सिंह	
	51	बिन अधिकारी सब सून	103
		शामलाल कौशल	
व्यंग्य रचनाएं	55-106	तनाव में कृत्ते	105
		सुनील चौरे 'उपमन्यु'	
	55	युवा कौन?	105
		प्रेम नारायण गुप्ता	
	57	युग बदल गया	106
		कविताएं	107-112
		विश्वनाथ, राजेंद्र परदेसी, सूर्य कुमार पांडेय, हलीम आइना, अरुण सेदवाल, रघुनंदन चिले, शान्ति सुमन, लालित्य ललित, श्याम सखा 'श्याम', वेद प्रकाश प्रजापति 'अंकुर', रवि शर्मा, रामनारायण मीणा हलधर, विपिन बिहारी 'सुमन' आदि।	
	58	आलोचक खुद भी कसौटी पर है- दिविक रमेश	113
	59	पुस्तक समीक्षा : मनोहर पुरी	114-118
	60	समाचार	119-128
	62		
	65		

आरंभ

साहित्य से जुड़े ऐसे अनेक सवाल हैं जो लगातार आपके सामने चुनौतियाँ प्रस्तुत करते रहते हैं। सवालों का लगातार सामना करना संभवतः किसी भी कलमकार की विवशता है। सवाल आपकी चेतना को निरंतर प्रताड़ित करते रहते हैं और आप उनके रचनात्मक समाधान की तलाश में अपनी कलम का 'सदुपयोग' करते हैं। पर उस सवाल को क्या कहिए जो किसी हठी बालक-सा, आपके बार-बार समझाने के बावजूद भी आपके सामने खड़ा आपको चिढ़ाता है। हिंदी हास्य-व्यंग्य साहित्य में भी ऐसे ही हठी बालक-सा मासूम दिखने वाला सवाल है जो आपके द्वारा अनेक बार, अनेक माध्यमों से, समझाए-बुझाए-गुस्साए-चिढ़ा-चिढ़ाए जाने के बावजूद आपके सामने पुनः मूषको भव-सा खड़ा आपके सामने मुंह चिढ़ाता है। यह सवाल पिछले अनेक वर्षों से अपने रूप बदलता हुआ, न केवल 'माध्यम' लखनऊ द्वारा अट्टहास-सम्मान के दौरान आयोजित गोष्ठियों में प्रगट होता रहा है अपितु जहां भी हास्य-व्यंग्य की चर्चा होती है और वहां मंचीय कवियों की उपस्थिति होती है, यह सवाल अपनी उपस्थिति दर्ज करा देता है। यह सवाल है मंचीय हास्य के कवियों को गंभीरता से लेने की दुहाई का। अपनी व्यावसायिकता के चलते मंचीय कविता ने हास्य के नाम पर चुटकलेबाजी का जो माहौल उपस्थित किया है, उससे सभी परिचित हैं। ये इसी माहौल का परिणाम है कि इस तथाकथित हास्य के साथ व्यंग्य के संबंध के कारण व्यंग्य को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता रहा है। ऐसी गोष्ठियों में मंचित कवियों द्वारा अपनी पीड़ा का ऐसा वर्णन किया जाता है, आप रोए न रोएं, वे रो ही देते हैं। 'माध्यम' द्वारा में आयोजित गोष्ठी में इस विषय पर शैल चतुर्वेदी के ऐसे ही आंसू मेरी स्मृति में अभी भी ताजा हैं।

पिछले दिनों एक ऐसी ही घटना और हो गई। व्यंग्य पर केंद्रित कार्यक्रम बहुत गंभीरता से चल रहा था। युवा व्यंग्यकारों की गंभीर व्यंग्य दृष्टि की प्रशंसा हो रही थी और वक्ता व्यंग्य की गंभीरता को रेखांकित कर रहे थे। जैसे हिंदी कविता के मंच को कुछ लोग गंभीरता से ले रहे हैं और अनावश्यक हास्य पैदा कर हास्यास्पद नहीं हो रहे हैं वैसे ही हिंदी व्यंग्य के कुछ युवा रचनाकार राजनीतिक टिप्पणियों पर आधारित 'रचनाओं' का उत्पादन करने के स्थान पर सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रचनाओं की गंभीरता से रचना कर रहे हैं। यह कार्यक्रम ऐसे ही सृजनशील युवा व्यंग्यकारों पर केंद्रित था।

तभी मंच पर जैसे विस्फोट हुआ। एक धमाके से साथ हास्य-व्यंग्य के बुजुर्ग 'कवि' पधारें। शायद उनको मंच की गंभीरता से ऊब हो रही थी और उनकी दृष्टि में मंच अपनी सही भूमिका नहीं निभा रहा था। भई, ये क्या बात हुई कि व्यंग्य का कार्यक्रम हो और लोग हंसे नहीं। आप तो जानते ही हैं कि गंभीर वातावरण में लोगों को हंसाना कितना कठिन कार्य है। कितनी कलाबाजियाँ खानी पड़ती है, सभागार में बैठे मनहूसियत से भरे गंभीर लोगों को हंसाने में कितना जोर लगता है। अपनी सारी प्रतिभा उड़ेलनी पड़ती है। पहले कविश्री ने कुछ वचन अपने आत्म-प्रदर्शन में कहे, क्योंकि उन्हें लगा कि हास्य-व्यंग्य के एक महान कवि का संचालक ने पूरा

परिचय नहीं दिया। हास्य-कविता का मंच हो तो श्रोता आपकी नस-नस से वाकिफ होते हैं। अब यहां तो श्रोताओं की नस से कविश्री को वाकिफ होना था। उनसे एक कविता सुनाने का आग्रह किया था पर वो कविश्री ही क्या कि जो एक कविता सुनाकर संतुष्ट हो ले। एक कविता से तो श्रोताओं की दाढ़ भी गीली नहीं होती है और कवि के लिए माहौल भी नहीं जमता है। आप ये भी जानते होंगे कि मंच पर अच्छी रचना पढ़ना लक्ष्य नहीं होना चाहिए, अच्छा जमना लक्ष्य होना चाहिए। हुजूर इन श्रोताओं का कोई दीन-ईमान नहीं होता, अनेक बार अच्छी रचना पर हूट कर देते हैं और घटिया रचना पर हंस-हंसकर लोट-पोट हो जाते हैं। जब तक सभागार में बैठे पिचहत्तर प्रतिशत श्रोता हंस न लें; समझो आप जमें नहीं। तो हे हास्य-व्यंग्य के प्रिय युवा लेखकों! जब तक जम न जाओ मंच मत छोड़ो। ऐसे में हे युवा! तू अर्जुन मत बन, अपितु कामदेव बन और अपने तरकस से तब तक बाण छोड़ता रह; जब तक श्रोता तेरे मोहपाश में फंस न जाए। बुजुर्ग कवि के आत्म-प्रदर्शन और एक कविता के नाम पर अनेक कविताओं के बाणों ने 'रोताओं' को अधिक विचलित न किया तो उन्होंने अपने तरकस से चुटकलों का अमोघ बाण निकाला और कान तक खींचकर छोड़ दिया। आम आदमी कितना ही गंभीर क्यों न हो, चुटकले उस पर असर डाल ही देते हैं। मंच पर अपना प्रभाव जमते देख बुजुर्ग कविश्री का मन-मयूर नाच उठा और उस नृत्य का 'रोताओं' ने भी आनंद लिया। कविवर जम गए थे और इस जमने का लाभ उठाने को ही थे कि संचालक ने उनके पास परची भेज दी। वो यकायक गंभीर हो गए। शायद उनको याद आ गया कि उनसे पहले के विचारक गंभीर बातें कर गए हैं और मंच की मांग है कि वे भी गंभीर बातें करें। उन्होंने बड़ी पीड़ा के साथ कहा कि लोग हमें गंभीरता से नहीं लेते हैं। उन्होंने चुनौतीपूर्ण स्वर में कहा कि कोई गंभीर कवि हास्य तो लिखकर दिखाए। हास्य लिखना बाबा जी का खेल नहीं है। हम भी गंभीर काम कर रहे हैं। हमें भी गंभीरता से लो, भाई।

इस पीड़ा को व्यक्त करने के बाद वे बोले- 'अब मैं आपको दो गंभीर पद सुना रहा हूँ।' इससे पहले जो सुनाया वो कुछ भी हो कविश्री के हलफिया बयान को मानें तो गंभीर नहीं था। इसके बाद उन्होंने तथाकथित गंभीर सुनाया। जो गंभीर उन्होंने सुनाया उसमें गंभीरता इतनी मात्रा में थी कि उसे वे गंभीर स्वर में सुना रहे थे और उनका 'हंसमुख' चेहरा अनावश्यक गंभीर होने का प्रयत्न कर रहा था।

वे तो गंभीर होकर मंच पर बैठ गए पर मंच की गंभीरता नष्ट कर गए।

सवाल उठता है कि विसंगतियों पर आक्रमण करने का, अभिनय करने वाले इन योद्धाओं को कब समझ आएगा कि जिस तलवार से वो लड़ने का दिखावा कर रहे हैं; वह रामलीला के दौरान बिकने वाली कागजी तलवारों से भी गई बीती है। जिसे वे हथियार समझ रहे हैं, वो बस एक झुनझुना भर है। उन्हें कब समझ आएगा कि साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन के नाम पर फूहड़ता परोसना नहीं है और न ही साहित्य मात्र मनोरंजन है। गंभीरता का चेहरा मात्र ओढ़ लेने से गंभीर दिखा तो जा सकता है पर हुआ नहीं जा सकता है, वो आपके व्यक्तित्व का हिस्सा होना चाहिए।

श्री राजेंद्र यादव के नाम एक खुला पत्र

हिंदी हास्य-व्यंग्य साहित्य की यदि उपरोक्त विसंगति है तो समकालीन साहित्य की एक व्यापक विसंगति भी है। इस विसंगति पर भूमिका स्वरूप कुछ अधिक न कहकर पिछले दिनों राजेंद्र यादव के नाम खुले पत्र को 'व्यंग्य यात्रा' के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहूंगा। इसे पहले मैंने अपने ब्लॉग के माध्यम से नेट पर प्रस्तुत किया जिस पर देश-विदेश से ढेरों प्रतिक्रियाएं मिली। पत्र प्रस्तुत है—

आदरणीय श्री राजेंद्र यादव जी,

परनाम!

साहित्य के इस तथाकथित असार संसार में 'हंस' को पढ़ने/देखने के, 'जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' के अंदाज में अनेक अंदाज हैं। कोई साहित्यिक संत इसकी कहानियों के प्रति आकर्षित हो संत भाव से भर जाता है, कोई 'हमारा छपयो है का' के अंदाज में इसका अवलोकन करता है, कोई 'डॉक्टर' चीर-फाड़ के इरादे से अपने हथियार भांजता हुआ संलग्न होता है, कोई नवयोद्धा (रंगरूट शब्द साहित्यिक नहीं है) सेना में भर्ती होने के लिए इस धर्मग्रंथ का वाचन करता है, कोई पहलवान इसे अखाड़ा मान डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. मार्का कुश्तियों का हिस्सा बनने को लालायित दंड-बैठक लगाता है और कोई विवाद-शिशु के जन्म की जानकारी पा जाने पर तालियां बजाता हुआ बधाइयां गाता है, आदि आदि अनादि। मैं आदि आदि अनादि कारणों से 'हंस' को पढ़ता हूं। 'हंस' एक ऐसी पत्रिका बन गई है जिसका एडिक्शन आपको चैन नहीं लेने देता है। इसके पाठकों/अवलोकनकर्ताओं में भांति-भांति के जीव हैं, जैसे— हमारे देश की संसद में होते हैं। इसमें लिखने वालों की आपके द्वारा तय एक कैटेगरी हो सकती है पर पढ़ने/देखने/सूंधने वालों की कोई कैटेगरी नहीं है।

इस दृष्टि से 'हंस' आज के समय का 'धर्मयुग' है।

बहुत दिनों से मैं इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए उपयुक्त गुरु की तलाश में हूं जो मुझे बता सके कि साहित्य का हाई-कमांड कौन है और साहित्य-सेवा को 'धर्म' मानकर चलने वालों के 'खलीफा' कौन हैं; जो साहित्यिक फतवे जारी करने का एकमात्र अधिकार रखते हैं। साहित्य की उस अदालत के न्यायमूर्ति को मैं जानना चाहता हूं जो यह तय करने की ताकत रखता है कि गुनहगार बेकसूर है और बेकसूर गुनहगार है। साहित्य की मुख्यधारा में ले जाने और इस गंगा में पवित्र-स्नान करने का ठेका किस पंडे के पास है। मुझे आपकी बात पढ़कर लगा कि आप इस दिशा में मेरा मार्गदर्शन कर सकते हैं। आपने अशोक चक्रधर प्रसंग में लिखा है— 'निश्चय ही अशोक के पक्ष में उन साहित्यकारों के बयान आए हैं जो या तो दक्षिणपंथी हैं या ऐसे दुलमुल कि हर सरकार के लिए सुविधाजनक हैं।' अशोक के पक्ष में मैंने भी समर्थन दिया था और मेरे लिए अपने खिलाफ जारी किया गया आपका यह फतवा कोई मायने नहीं रखता क्योंकि मैं आपसे अपने को बेहतर जानता हूं एवं मुझे खलीफाओं के प्रमाण-पत्र प्राप्त कर उन्हें फ्रेम में मंडवाकर दीवारों पर टांगने का मुझे शौक नहीं। पर हुजूर आपने क्या यह बयान अपने पूरे होशो हवास में दिया है? अशोक चक्रधर का समर्थन करने वालों में नामवर सिंह और निर्मला जैन भी थे। इन्हें आप दक्षिणपंथी मानते हैं या फिर ऐसे

दुलमुल कि हर सरकार के लिए सुविधाजनक हैं। कृपया मुझ अबोध की एक और शंका का समाधान करें— ये जो 'हंस' के 'सितंबर अंक' के अंतिम कवर पर 'मध्य प्रदेश जनसंपर्क' द्वारा जारी विज्ञापन प्रकाशित हुआ है, वो किसी पंथ की सरकार का है? प्रभु आपके इस अतिरिक्त स्नेह के कारण भक्तजन कहीं फुसफुसा कर ये न फुसफुसाएं कि राजेंद्र जी पर उम्र अपना असर दिखाने लगी है। आप तो चिर युवा हैं और आपकी जिंदादिली के मेरे समेत अनेक प्रशंसक हैं। आपको तो अनन्य 'नारी विमर्शों' की चर्चा करनी है।

हे गुरुवर! इस एकलव्य को ये ज्ञान भी दें कि नामवर, लोगों को आप अपने कार्यक्रमों में बुलाकर अपनी किस सदाशयता का परिचय देते हैं। कार्यक्रम में यदि नामवर जी मीठा-मीठा बोल गए तो वाह! वाह! अन्यथा 'कौन है ये नामवर के भेस में'। मुझे लगता है इस 'दुर्घटना' के बाद 'शुक्रवार' में प्रकाशित डॉ. कैलाश नारद के 'असली नामवर' को पढ़कर आपकी बांछे खिल गई होंगी जो बकौल श्रीलाल शुक्ल चाहे वे शरीर के किस हिस्से में हैं, मालूम न हों। मैं आपकी बात से पूरी तरह सहमत हूं कि नामवर जी ने जिस तरह से लौंडे शब्द का प्रयोग किया वो उनकी अपनी गरिमा के अनुकूल नहीं है। अजय नावरिया ने जिस मेहनत और लगन से 'हंस' के दोनों अंकों का संपादन किया है और एक मील के पथर को स्थापित करने का श्रम किया है। वो उसकी विलक्षण प्रतिभा को प्रमाणित करता है। अजय नावरिया की इस मेहनत के सामने नामवर जी के शब्द झूठे हो जाते हैं। मुझे नहीं लगता कि इस मुद्दे पर नामवर सिंह को आरंभ से खारिज करने जैसा आक्रोश पैदा किए जाने की आवश्यकता थी। कैलाश नारद या आपकी 'मेरी बात' जैसी सोच का ही परिणाम है कि हिंदी के साहित्य में रचना की अपेक्षा व्यक्ति अधिक केंद्र में रहा है। इसी का परिणाम है कि एक समय हरिशंकर परसाई को और बाद में श्रीलाल शुक्ल को नाली में गिरे-पड़े किसी शराबी के रूप में चित्रित कर, सशक्त रचनाएं न लिख पाने की अपनी कुंठा का विरेचन किया जाता रहा है।

आपका विरोध जायज है, जायज ही नहीं स्वाभाविक है। ये मानवीय प्रकृति है— जहां किसी अपने को बैठना चाहिए वहां कोई दूसरा बैठा हो तो विरोध जागता ही है। आप तो जानते ही हैं कि ये सरकारें, ये राजनेता किसी के सगे नहीं होते हैं। अपने शासन के एक काल में यदि एक को लाभान्वित करते हैं तो दूसरे काल में किसी अन्य को कर देते हैं। ये तो सत्ता के गलियारों की गलियां हैं जिन्हें आप भलि-भांति जानते हैं। ये वो गलियां हैं जिनमें अपनी पहियां घिस जाने की चिंता में कुंभनदास ने जाने से मना कर दिया था। विरोध-प्रदर्शन या दबाव-प्रदर्शन के लिए इस्तीफे दिए जाते हैं और इस्तीफों के चक्कर में सौदे भी तय होते हैं। पर इस घसीटम-घसीटी में फतवे जारी करना किस जायज-नाजायज संतान का पालन-पोषण है?

अजय नावरिया ने अशोक चक्रधर प्रसंग को बहुत समझदारी से देखा-परखा है। उन्होंने इस नियुक्ति में न तो व्यक्तिगत आक्षेप लगाए हैं और न ही व्यक्तिगत कारण सूंधने का प्रयत्न किया है। मुझे लगता है हमारी युवा पीढ़ी बेबाक होते हुए अधिक संतुलित और ईमानदार है।

सादर,

आपका— प्रेम जनमेजय



चन्द्रशेखर तिवारी, गाजीपुर

गुरुवर डॉ. विवेकी राय जी कृपा से आपकी सम्मानित पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' (त्रैमासिकी) के दो अंक पढ़ने को मिले। व्यंग्य-रचनाएं पढ़ना मुझे बहुत पसंद है। शुरू से ही रुचि रही है, इस तरह की रचनाओं को पढ़ने में। जब भी कभी कोई पत्रिका या पुस्तक पाया और उसमें इस विधा की कोई रचना पाई तो सबसे पहले उसी को पढ़ा। अच्छा लगे भी क्यों नहीं? आखिर आइने की तरह बिल्कुल साफ (अपनी) तस्वीर जो दीखती है इस विधा में। समाज का यथार्थ, उसका नंगा स्वरूप जो परदे के पीछे छुपा है, वह विद्रूप इसके माध्यम से सामने आता है। कुछ रचनाएं मैंने भी लिखी हैं, इस विधा में। अपनी इस प्रिय और आत्मीय विधा में एक साथ इतनी भरपूर सामग्री पाकर तबियत खुश हो गयी। एक-एक रचनाओं को पढ़ गया हूँ। पत्र काफी दिनों से लिखना चाह रहा था पर संयोग नहीं बन पा रहा था। कारण, 'मेरे मन कछु और है, विधवा के कछु और'। सो, उस विधवा के हाथों मजबूर रहा। मन ही मन पत्र काफी दिनों से लिख-लिखकर 'पोस्ट-बाक्स' में डालता रहा। पर, सचमुच का उसे मूर्त रूप अब जाकर दे पाया हूँ। अपनी भावना को लंबे समय तक दबाये रहा और पत्र विलम्ब से लिख रहा हूँ, इसके लिए लज्जित हूँ। ऐसी अत्युत्कृष्ट व्यंग्य पत्रिका अब तक मेरे सामने से नहीं गुजरी थी।

आपके कुशल 'संपादन-कौशल' और 'चयन क्षमता' का लोहा मानना पड़ता है, पत्रिका को देखकर। अपने युग के कुछ स्थापित और कुछ नवोदित (पर रचना-क्षमता से समृद्ध) व्यंग्यकारों को एक मंच पर उपस्थित कर आपने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह सर्वथा स्तुत्य व प्रशंसनीय है। इस विधा की उपेक्षा करने वालों आलोचकों को एक बार फिर से इसके विषय में सोचने के लिए यह

आप चंदन घिसें

पत्रिका विवश करेगी, ऐसा विश्वास है। पत्रिका में स्थान पाए कुछ व्यंग्यकारों को यदि अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए (हालांकि ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि गुरुवर डॉ. विवेकीराय जी के शब्दों में कोई भी 'अक्षर-पुरुष' न छोटा होता है न बड़ा। सभी समान होते हैं। पर, सामाजिक मान्यता के अनुरूप अगर बात की जाए तो अधिकांश ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। सबने अपनी व्यंग्य-रचनाओं के माध्यम से अपनी मजबूत पहचान बनाई है। मुझे खुशी है कि ऐसे रचना-प्रतिभा से समृद्ध रचनाकारों का आपको लेखकीय अवदान मिल रहा है जिनसे पत्रिका की गुणवत्ता में अभिवृद्धि साफ दिखाई दे रही है।

पत्रिका के हर कॉलम प्रीतिकर हैं। (एक-एक) शब्दों के चयन में अद्भुत सम्मोहन है। क्या नामकरण किया है आपने? 'आप चंदन घिसें', 'पाथेय', 'चिंता', 'चिंतन' आदि, शीर्षक ही अपने आप में इतने सक्षम हैं कि वे पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लें। आपकी इस चमत्कृत प्रतिभा से प्रभावित हूँ। अंक की सभी रचनाएं बढ़ियां लगीं। कितनी प्रशंसा करूँ और किसको छोड़ दूँ, समझ में नहीं आता।

पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ, साथ ही आपके भी निरोग, सक्रिय व सार्थक भविष्य की कामना करता हूँ, ताकि पत्रिका का निर्बाध प्रकाशन होता रहे। इस ज्ञान-यज्ञ में लगे सभी लोगों को साधुवाद।

विश्वनाथ, राजपाल एंड संज, दिल्ली

'व्यंग्य यात्रा' के अंक मुझे नियमित रूप से मिल रहे हैं। अभी-अभी जनवरी-जून, 2009 का अंक प्राप्त हुआ, आभारी हूँ।

सबसे पहले तो मेरी बधाई स्वीकार करें कि आपको 'व्यंग्यश्री-2009' से सम्मानित किया गया है। आप इस सम्मान के सर्वथा योग्य हैं। आपको सम्मानित करके इस सम्मान की



गरिमा ही बढ़ी है।

जब मैं 'व्यंग्य यात्रा' का अंक पढ़ता हूँ और एक प्रकाशक के नाते यह जानता हूँ कि इसके संपादन, मुद्रण और प्रकाशन में कितना श्रम आपने किया होगा तो मैं आपके अध्यवसाय और आपकी प्रतिबद्धता की प्रशंसा करता हूँ। इस तरह की पत्रिका निकालना बड़े साहस का काम है, श्रम की तो है ही। मन में यह भी विचार आते हैं कि इतने अधिक पृष्ठ ही क्यों, कम पृष्ठों का भी अंक हो सकता है परंतु प्रत्येक अंक पहले की अपेक्षा सभी दृष्टियों से अधिक सुंदर होता है। इस पत्रिका की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं स्वीकार करें।

नमिता सिंह, अररिया

विनिमय स्वरूप 'व्यंग्य यात्रा' के अंक मुझे निरंतर मिलते रहे हैं। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि अपनी साधारण-सी लघु पत्रिका 'परती पलार' की एवज में इतनी अच्छी और महत्वपूर्ण पत्रिका पढ़ ले पाती हूँ। सच पूछें तो 'व्यंग्य यात्रा' कोई पत्रिका मात्र ही नहीं है यह सदैव सहेजकर रखने योग्य एक बहुमूल्य दस्तावेज भी है। परम आदरणीय श्रीलाल शुक्ल जी को समर्पित 'व्यंग्य यात्रा' के पूर्व अंक में तो मैं ऐसी खोई कि आपको कुछ लिख न सकीं क्षमा चाहती हूँ। जनवरी-जून का अंक मेरे हाथों में है और इस अंक की प्रत्येक रचना मन-मस्तिष्क को छूती है। पत्रिका का आरंभ आप जिस कौशल से करते हैं कि मुझे आपसे ईर्ष्या होती है और 'आप चंदन घिसें' से ही पत्रिका की मनमोहक सुगंध बिखरने लगती है। बहुत कुछ जानने-सीखने का मौका मिल जाता है।

वेदप्रकाश अतिताभ, अलीगढ़

'व्यंग्य यात्रा' का जनवरी-जून अंक मिला। शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी के पाथेय के

साथ-साथ सर्वथा नए हस्ताक्षरों का हस्तक्षेप प्रीतिकर लगा।

आपका अपना नाटक समापन चरण में व्यवस्था विशेषतः पुलिस तंत्र के चरित्र पर केन्द्रित है और पुलिस के बहाने तमाम अन्य लोग भी नंगे होते जाते हैं। विशेषतः हमारा सुविधाजीवी मध्यवर्गी। इधर हिन्दी में नाटक विधा का बुरा हाल है। आपका नाटक शायद इस अभाव को कुछ कम करता हुआ लगे।

शिव शर्मा, उज्जैन

‘व्यंग्य यात्रा’ का ताजा मोहक-सा अंक मिला। आभारी हूँ। आश्चर्य हुआ कि मुझ जैसे नाचीज की पुस्तक की समीक्षा इसमें प्रकाशित हुई। हिन्दी में ऐसा कम ही होता है कि एक लेखक दूसरे को घास डाले। सभी अपने-अपने गुटों के केन्द्र में रहकर अपने-अपने को ही घास खिलाने में रत हैं। इसके लिए आपका विशेष आभारी हूँ।

‘व्यंग्य यात्रा’ का नाम तो खूब सुना था। दर्शन भी छोटे नहीं निकले।

मनोज अबोध, बिजनौर

सचमुच संयुक्तांक है, स्तरीय व्यंग्य की बेहतर सामग्री से भरपूर, इतनी कम कीमत में इतनी बेशकीमती पत्रिका. . . धन्य हो! पाथेय में जोशी जी और त्यागी जी के साथ ही आपका संपादकीय लाजवाब है, बधाई!

अंक का काव्य पक्ष निःसंदेह बहुत समृद्ध और प्रभावी है। रामदरश जी, अनामिका, सुदर्शन वसिष्ठ, यज्ञ शर्मा, रवीन्द्र राजहंस की कविताएं श्रेष्ठ व्यंग्य का प्रतिनिधित्व करती हैं तो राम मेश्राम, चांद शेरी और रामबहादुर चौधरी चंदन की गज़लें अच्छी हैं। पुष्पा राही की रचना गुज़ल नहीं है।

आपके नाटक एवं ज्ञान का उपन्यास अंश सहित बहुत सारी व्यंग्य रचनाएं अपने नाम को सार्थक करती हैं। लघु व्यंग्य रचनाओं की मारक क्षमता वाकई अचूक है। इतने संग्रहणीय अंक के लिए हार्दिक बधाई स्वीकारें!

आचार्य खडूसा, दमोह

सन् 1975 से आपको पढ़ रहा हूँ। आप तो ऐसे न थे। ‘व्यंग्य यात्रा’ निकाल कर आपने जो वसंत सृजन किया है। इससे बूढ़े आलोचक जो पतझर प्रेमी गूढ़ गंभीर, गरिष्ठ, उद्भट और

वरहमेश-उदास-सायास व्यक्ति बने हुए, सजे हुए थे, उनकी चिंतना वंचना पर आपने तुषारापात कर दिया।

‘ये भी कोई साहित्यगीरी है जब देखो तब बुलयाना, लुचरयानी बातें, दंतनिपोरन, दंतकढ़ी, शब्दलुखरपन सरस्वती के घाट पे दौंहरा देते दिवाते रहे हो!! इन चीजों से चरित निर्माण होते है का??

अब आपने निकार दियो, ‘चंदन घिसे’ कोयला रगड़ रहे और चंदन बदनाम करें। चंदन तो केवल गोस्वामी ही घिस सकते हैं तुम का खाकें घिस हो बरखुरदार! . . तुमने तो चंदन घिसुओं की खाट खड़ी करी है। तुम तो साहित्य में हमेशा याद रखो जेहे! और हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, गोपाल चतुर्वेदी, द्रोणवीर, हरि जोशी, यशवंत व्यास, जोशी गण, त्यागी, श्रीकांत चौधरी और नये-नये नटवा जौन व्यंग्य के मैदना में दौंहरा मचा रहे हैं, ई से गंभीर साहित्य के लाने बहुत बड़ो खतरा पैदा हो गयो। देखो भइय्या पहले आलोचक होठों से हंसते थे तो होंठों को पता न चलत हतो- बस मूँछें मुसकयात हती। पै तुमाई बमचक ने सब रसातल में डुबो दयो। किस्मत की बात!! पे अपन खुश हैं। अपने कुनबा के संग संग दूधां नहाव, पूता फलो।

सतीश शुक्ल, नवी मुंबई

‘व्यंग्य यात्रा’ की पंचवर्षीय यात्रा व्यंग्य इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। आपकी त्रैमासिक पत्रिका जिस शिद्दत से हाशिये में पड़े और अखबारों, पत्रिकाओं से फिलर की तौर पर इस्तेमाल हो रहे व्यंग्य को पाठकों के केंद्र में ला रहे हैं यह अभिनंदनीय है। श्रीलालजी पर केन्द्रित व्यंग्य यात्रा का अंक व्यंग्य साहित्य में एक उपलब्धि है। जनवरी-जून 2009 के अंक में सूर्यकांत नागर व श्रीलाल शुक्ल जी का पत्र व्यवहार पढ़ा। श्रीलाल जी से मैं भी इंदौर में मिलने का सौभाग्य प्राप्त किया है। जिस आत्मीयता से उन्होंने इस अकिंचन को गले से लगाया था वह आज तक याद है।

नईम जी का पत्र आपकी फाइलों के जंगल में भटक गया अंततः उनकी मृत्यु के साथ मिल गया। फाइलों में तो आम आदमी गुम हो जाता है।

रामबहादुर चौधरी ‘चंदन’, बिहार

‘व्यंग्य यात्रा’ का जनवरी-जून अंक मिला। इसको वैसे तो मैं अक्सर ‘आरंभ’ से पढ़ना शुरू करता हूँ लेकिन इस बार ‘सोते रहो’ को सबसे पहले पढ़ा। इसके बाद ‘मर गए बब्बा’ लेकिन आश्चर्य की बात है कि इन दोनों पाठों को तीन-तीन बार पढ़ना पड़ा और सच तो यह है कि हर बार का पाठ अधिक से अधिक प्रखरता ही देता गया। यह रचना की सार्थकता है। आप दोनों लेखकों को ऐसी जीवंत रचनाओं के लिए कोटिश धन्यवाद! समय सीमा के कारण इस पर विस्तार से विवेचन तो संभव नहीं है फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि ‘सोते रहो’ ऐसा व्यंग्य नाटक है जो अपनी लघुता में विराटता को समेटे हुए है। विविध विसंगतियों को एक साथ साधने का यह उपक्रम लेखकीय दक्षता को दर्शाता है। इसके चुटीले संवाद जहां मन को मोहते हैं वहीं इसके व्यंग्य विसंगतियों को भी बेधते हैं। लेकिन विविध विसंगतियों पर एक साथ प्रहार करने के क्रम में लक्ष्य की एकाग्रता विविध बिन्दुओं में बंट सी गई है, जो प्रभाव को प्रभावित करती है। कैसे शीर्षक की उलटवासी नाटक को बार-बार पढ़ने के लिए उकसाती है और यही नाटक की सार्थकता है।

अंक में चयनित गद्य और पद्य की समस्त रचनाएं स्तरीय ही नहीं सार्थक भी हैं। हां प्रूफदोष ने इस अंक को जरूर आहत किया है। इस बार के ‘आरंभ’ से जहां खुशी मिली वहीं इसका अंत बड़ा दर्दनाक रहा।

विनोद शंकर शुक्ल, रायपुर

पत्रिका के अंक मिल गए थे। व्यंग्यश्री सम्मान पर शुभकामना का एक स्वर मेरा भी।

भाई, अब तक दारू और अट्टहास ही पटियाली हुआ करता था, तुमने नाटक की शुरुआत भी कर दी। राजकपूर की फिल्म ‘जागते रहो’ में जल को लेकर भागमभाग की एक रात की कहानी थी, ‘सोते रहो’ दारू पर केन्द्रित सारी भागदौड़ है। सारे पात्र इतने खुले हैं कि हालीवुड

और बालीवुड की हीरोइने पीछे रह गई हैं। 'खुसरो निजाम के बलि बलि जड़ें' वाली बात पैदा कर दी है, प्रेम भाई आपने। 'मर गए बब्बा' में किस्सागोई का जबर्दस्त रंग है। ज्ञान की किस्सागोई उनके व्यंग्य पर भारी पड़ती है। कभी-कभी मुझे उन्हें पढ़कर देवकीनंदन खत्री की याद आने लगती है। देवकी बाबू दुनिया भर के किस्सागो के बाप थे। शुभकामनाएं!

पंकज भार्गव, देहरादून

'व्यंग्य यात्रा' के प्रत्येक अंक को पढ़ता हूं। अपने ईष्टों मित्रों को सुनाता भी हूं। पुस्तक की हर एक रचना नई चेतना के साथ सीमित होते जा रहे हास्य-व्यंग्य को पुनः जीवित कर देती है।

इस अंक में अभी कुछ ही रचनाओं को पढ़ा है। आपको पत्र लिखने का मन हुआ, खुद को रोक न पाया। इस अंक का संपादकीय लेख 'आरंभ' पढ़कर जीवन के सबसे बड़े सत्य की टिमटिमाती लौ मन में पुनः जल उठी। आज समाज में चारों ओर 'मैं' का बोलबाला है। धन-दौलत और ऐशो-आराम के लिए सब कुछ भुला चुके लोगों के मरे हुए जमीर को ऐसे लेखों से अवश्य प्रेरणा मिलेगी। स्वयंभू डॉक्टर, कवि नहीं फवि, सर जी आप और बॉस का दौरा व्यंग्य के बाण छोड़ने वाली रचनाएं हैं।

देहरादून में कल 'हिन्दी साहित्य अकादमी' नई दिल्ली द्वारा आयोजित कविता पाठ में श्रोता के रूप में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। कुछ प्रबुद्ध पाठकों से 'व्यंग्य यात्रा' के संबंध में चर्चा हुई। सभी का एक मत यही था कि 'व्यंग्य यात्रा' पुस्तक की कीमत कम से कम 50/- अवश्य होनी चाहिए।

रमेश राजहंस, बिजनौर

बहुत समय से मैं 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका का पाठक हूं। निःसंदेह यह पत्रिका साहित्य के क्षेत्र में अति-उत्कृष्ट एवं बेजोड़ है। जनवरी-जून 2009 की पत्रिका पढ़ने को मिली। 'सोते रहो' व्यंग्य नाटक ने बेहद प्रभावित किया। विशेष बात यह है कि इस पत्रिका को सजाने संवारने में आपका जो भागीरथ प्रयास है वह अत्यंत सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। इस बार श्री सी. भास्कर राव

का व्यंग्य 'मंदिर के अंदर' पढ़कर मन को बहुत ठेस लगी। क्या श्री राव अन्य धर्मों का भी इस प्रकार व्यंग्य का निशाना बना सकते हैं? शायद कदापि नहीं। माना कि हिंदू धर्म की सहिष्णुता के फलस्वरूप किसी को भी कुछ कह देने की देवी-देवताओं की मजाक उड़ाने की खुली छूट सी मिली हुई है। किंतु क्या इस प्रकार के करोड़ों हिन्दुओं की आस्थाओं पर बेहूदा व्यंग्य किया जाना उचित है। शिव, गणेश, काली आदि-आदि अनेक देवी-देवता, हिन्दुओं के अराध्य हैं। श्री राव की यह कृति एक ऐसा अनर्गल प्रलाप है जिसे व्यंग्य न कहकर उनकी अजीबो गरीब मानसिकता का बखाना है। भाई श्री अशोक आनंद जी का आलेख, मेघदूत 'जिंदगी के साथ भी, जिंदगी के बाद भी' अच्छा लगा। श्री प्रमोद ताम्बट का व्यंग्य लेख 'स्वयंभू डॉक्टर' एवं अन्य कई व्यंग्य रचनाएं बहुत अच्छी लगी। किंतु 'मंदिर के अंदर' आलेख आपकी सम्पादकीय बौद्धिकता। व्यंग्य की समझ पर स्वयं में एक प्रश्न चिन्ह है। आशा है इसे गंभीरता से लेंगे।

योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', दिल्ली

व्यंग्य तीर्थ स्व. रवीन्द्र त्यागी पर अशोक आनंद की समीक्षा सार्थक लगी है। व्यंग्य नाटक 'सोते रहो' सारे देश को जगा देगा, तो कहीं हमारी 'जागती' पुलिस हथकड़ी लेकर आपको खोजती न फिरे? पढ़कर मजा आ गया। ज्ञान चतुर्वेदी के 'मर गए बब्बा' ने भी कम नहीं हंसाया, हालांकि सी. भास्कर राव ने 'मंदिर के अंदर' जो गुल खिलाए, वे भी याद रहेंगे। मनजीत 'मीरा' की 'महंगाई मार गई' मनमोहन जी और शरद पवार को भिजवा दें, तो शायद 'शून्य' में पिज्जे से भी सस्ता देने वाले 'जन' में 'जय' की भावना जगनी ही चाहिए। आपकी जय हो, विजय हो।

मनोकामना सिंह, जमशेदपुर

व्यंग्य यात्रा का अंक 18-19 पढ़ा। शरद जोशी की रचना 'सरकार का जादू' हमारी सरकार की कथनी-करनी का सजीव चित्रण है। ज्ञान चतुर्वेदी की 'मर गए बब्बा' आपकी 'सोते रहो' एवं रामकुमार कृष्ण की 'जात का सवाल' पढ़ने के बाद मुझे डर है कि व्यंग्य रचना के लिए इसी तरह की भाषा को

रचनाकार आवश्यक शर्त न मान बैठे। इस अंक में व्यंग्य कविताएं पहले अंको के अपेक्षा अधिक पढ़ने को मिली जो निश्चित रूप से व्यंग्य कविगण के लिए शुभ संकेत है। राव साहब इधर अपनी रचनाओं में अनावश्यक अंश को आवश्यकता से अधिक विस्तार देकर अपनी गरिमा को कम करने पर तुले हैं।

जसवंत सिंह जनमेजय, नई दिल्ली

संपादकीय में साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य की क्षतिग्रस्त स्थिति की विभिन्नता की पारदर्शिता सही ढंग से आकी हैं। अपने-अपने जीवन की खट्टी-मिठी यादों को ताजा कर दिया। सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं, हकीकत बन गई, जिनकी उम्मीद नहीं होती है, उन्हें कुदरत बख्शाती है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी की तीन रचनाएं सार्थकता, नैतिकता और मौलिकता की प्रतीक है, उनकी हार्दिक संवेदना करुणा और मैत्री के आत्मीय भावों से साहित्य जगत का दीप प्रज्वलित होता है। श्रीमती शारदा त्यागी जी ने पत्र-संकलन की विधा पर जो रोशनी डाली है वही तो मेघदूत उवाच बहलाया है। लेखक अशोक आनंद के तेवरों और तार्किक विचारों ने मेघदूत उवाच के प्रतिमानों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है। प्रशंसनीय कार्य है। ज्ञान चतुर्वेदी ने व्यंग्य से भरपूर धार्मिक संस्कारों के निरीह उद्देश्यों के लिए 'मर गए बब्बा' के नाम से उपन्यास की प्रारंभिक कड़ी सुनाई है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक ना जाने कितने कष्टों की भरमार रहेगी। उनकी दरकार इस शीर्षक में पढ़ने को नजर आयेगी। 'सोते रहो' में देश के दुख-सुख की चिंता किसे भी नहीं होती है। समाज के प्रत्येक वर्ग के इंसान को इस व्यंग्य नाटक में अहम भूमिका निभाकर पुलिसिया रवैया का व्यवहार दर्शाया। नाटक वाकई में पढ़ने लायक है, वैसे किसी फिल्म सेंटर वाले को सोते रहो की लिपि मिल जाएगी, देर सवेर फिल्म भी बन जाएगी। मंदिर के अंदर, स्वयंभू डॉक्टर, कीमत 499 या कि 4999 का इलाज, चावल में कनकी, बॉस का दौरा, जात का सवाल, पालतू राजनीति में, महंगाई मार गई इत्यादि व्यंग्य रचनाएं मन को प्रभावित कर गईं।

विसंगतियों को ओढ़कर 'सोते रहो'

पुरानी बात है। समाचार पत्र में प्रस्तुति रिपोर्ट पढ़ने के बाद मैं 'अदरक के पंजे' नाटक देखने चला गया था। प्रस्तुति रिपोर्ट में नाटक की जितनी प्रशंसा की गयी थी, उससे भी कहीं अधिक नाटक की प्रस्तुति मुझे लगी। नाटक में वस्तु का अभाव था, पर स्थितियों पर, सामाजिक, राजनीतिक परिवेश पर व्यंग्य तीखा था। व्यंग्य ही उस नाटक का प्राण था और उसे देखने के लिए, सुनने तथा अनुभव करने के दर्शक खिंचे चले आ रहे थे। हल्के-फुल्के व्यंग्य से यदि नाटक के माध्यम से समाज की विसंगतियों को उभारा जा सकता है कि इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है। लंबे अंतराल के बाद शरद जोशी का एक और अच्छा व्यंग्य नाटक 'एक था गधा उर्फ अलादाद खां' देखने का अवसर मिला। इस नाटक में संतुलित कथा वस्तु थी और उसका निर्वाह लेखक तथा निर्देशक ने बखूबी किया था। इस नाटक में व्यंग्य स्थितियों के माध्यम से उभारा गया था। पहले नाटक में निर्देशकीय कुशलता या निपुणता की ज्यादा जरूरत नहीं थी, पर दूसरा नाटक निर्देशक की कुशलता तथा अनुभव की मांग करता है तथा प्रदर्शन के दौरान लगता रहा कि स्थितियों को बेहतर ढंग से उभारा गया था। पहले नाटक में निर्देशकीय कुशलता या निपुणता की ज्यादा जरूरत नहीं थी, पर दूसरा नाटक निर्देशक की कुशलता तथा अनुभव की मांग करता है तथा प्रदर्शन के दौरान लगता रहा कि स्थितियों को बेहतर ढंग से उभारा जा सकता है। इसी नाटक को एक बार फिर देखने का अवसर मिला किसी अन्य के निर्देशन में। तब निर्देशक का महत्व स्पष्ट हो गया। व्यंग्य नाटक मंच पर सफल रहे हैं। उन्हें सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक नाटकों की अपेक्षा अधिक दर्शक मिलते हैं। प्रेम जनमेजय प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हैं, 'व्यंग्य श्री' से सम्मानित हैं उनका नाटकों को पढ़ने का प्रदर्शन देखने का अवसर मिला— इसे पढ़ते हुए उन नाटकों के विषय, उनकी ट्रीटमेंट, प्रस्तुति बार-बार आंखों के सामने कौंधती रही।

नाटक मंच से जुड़ी विधा है। इसमें अनेक विधाओं का सम्मिश्रण है। अतः

नाटककार से यह अपेक्षा स्वाभाविक है कि उसे मंच की गहरी समझ हो तथा विभिन्न विधाओं का उसे आवश्यक ज्ञान तथा अनुभव हो। यदि नाटककार निर्देशक भी है तो उसके नाटक में रंगालेख के सभी गुण देखे जा सकते हैं जो मंचन में सहायक हो सकते हैं। 'सोते रहो' में पहले दृश्य को छोड़कर अन्य सभी दृश्यों में मंच सज्जा, पात्र परिचय संबंधित निर्देशकीय संकेत किए जा सकते थे, पर यह काम उन्होंने उद्घोषणा के द्वारा पूरा किया है। इसी से उनकी निर्देशकीय समझ तथा रंगानुभव स्पष्ट हो जाता है। मात्र वक्तव्य से दृश्यत्व संभव नहीं था पर उद्घोषणा से यह संभव हो सका है।

'सोते रहो' में उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण भारत के परिवार एक ही मोहल्ला में रहते हैं। इन परिवारों के चित्रण से भारत की अनेकता में एकता का दृश्य तो उभरता है, साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि नाटक की स्थितियों का संबंध भारत के किसी एक क्षेत्र से नहीं बल्कि पूरे भारत से है। इन तीनों परिवारों के चरित्र अपनी क्षेत्रगत, जातिगत तथा भाषागत विशिष्टता को लिए हुए हैं। इसके साथ ही बदलते परिवेश समाज की विसंगतियों तथा मूल्यों के अनुभवों का उनके चरित्रों पर स्पष्ट प्रभाव है। इन सभी पात्रों की सदेच्छा है कि 'देश सुख चैन की नींद लेता रहे और ये अपना 'सोना' बटोरते रहें। यहां 'सोना' का 'श्लेष' व्यंग्य को उभारता है। श्लेष का प्रयोग व्यंग्यकार एक हथियार के रूप में करते हैं। इसका सफल प्रयोग व्यंग्य को धार देता है।

परम्परागत नाटकों में मंगलाचरण का प्रयोग किया जाता है जो प्रायः वंदना के रूप में होता है। मंगलाचरण का प्रयोग प्रेम जनमेजय ने भी किया है। इस वंदना में भी सदेच्छा का भाव है। पर इस सदेच्छा में स्वार्थ का भाव हावी है। यह स्वार्थ तभी सिद्ध होता है जब लोग सोते रहें, 'मुंदी आंख से अंधेरा दिखेगा। अंधेरे में न कुछ साफ दिखेगा। न साफ दिखेगा तो माल बनेगा।' इसी मंगलाचरण में वर्तमान परिवेश पर एक विहंगम दृष्टि डाली गई है, 'फाइल पर बाबू सोया है / कचहरी में न्याय सोया है / थाने में सिपाही

सोया है / संसद में नेता सोया है / इस पर नाटककार का प्रश्न है, 'तो प्यारे तू क्यों जगा है / तू भी उठ और अपनी सीट पर / सो जा सो जा . . .'। नाटक का पहला दृश्य उद्घोषणा तथा मंगलाचरण के साथ समाप्त हो जाता है। उद्घोषणा तथा मंगलाचरण के माध्यम से नाटककार आज की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों को उजागर कर देता है। जब वह बार-बार 'सोते रहो' कहता है तो उसका मन्तव्य स्थितियों की निरावरण कर लोगों को जगाना है। मंगलाचरण की प्रस्तुति कैसे की जाएगी यह नाटककार ने निर्देशक की समझ पर छोड़ दिया है। वह ढोल-मंजीरों का प्रयोग भी कर सकता है या पात्रों से सस्वर गायन भी करवा सकता है। नाटक का प्रारंभ दूसरे दृश्य तथा उत्तर भारत के परिवार से होता है। परिवार में मनजीत, सतवंत तथा उनका बेटा बंटी हैं। इस दृश्य में बंटी कुछ क्षणों के लिए ही आता है पर अपना प्रभाव दर्शकों पर छोड़ जाता है। वह नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। पीढ़ियों के बीच के अंतराल को लेखक बंटी के माध्यम से उभारता है। माता-पिता के प्रति सम्मान का अभाव, अंग्रेजी तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, मातृभाषा की उपेक्षा, लेट नाइट पार्टी, म्यूजिक, फन, डांस आदि सभी को लेखक ने कुछ ही क्षणों में समेट लिया है।

पिता को संबोधित करते हुए बंटी, 'ओए डेडी!' कहता है। उसके इस संबोधन से पिता नाराज नहीं है, पर सतवंत को उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता। माता-पिता तथा बच्चों के बीच संबंध तनावपूर्ण होते जा रहे हैं। बंटी का पिता मनजीत क्योंकि स्वयं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है इसलिए उसको बंटी का अंग्रेजी बोलना ज्यादा अच्छा लगता है। वह ठेकेदार है अतः उसकी भाषा में अशिष्टता स्वाभाविक है। शायद इसी कारण उसको बंटी की भाषा से कोई शिकायत नहीं है। बंटी की मां को लगता है कि बेटा बिगड़ रहा है। उसका पढ़ाई में ध्यान नहीं है। घूमना-फिरना, दोस्तों के साथ मस्ती मारना उसका स्वभाव बन गया है। पर पिता को लगता है कि वह

जमाने के साथ चल रहा है। जीवन में उन्नति तथा पैसा कमाने के लिए मनजीत पढ़ाई को आवश्यक नहीं समझता। उसके अनुसार पढ़ाई-लिखाई में बच्चा जितना कमजोर होगा, उतना ही लीडरी में चमकेगा। उसकी दृष्टि भौतिकवादी है, 'मुझे देख दसवीं भी पास नहीं हूं. . .पर ठेकेदारी में इतना बना लिया है कि कोई सरकारी अफसर नहीं बना सकता।' ऐसे ही कई उदाहरण वह अपनी पत्नी सतवंत को देकर उसे निरुत्तर कर देता है। उसका तर्क है, 'पढ़ाई बेकार नहीं, बेकार में पढ़ाई करना बेकार है. . .पढ़ने में मन न लगता हो तो उसमें बच्चे को ठूसना बेकार है।' मनजीत पार्टियों को उन्नति की सीढ़ी समझता है, इसीलिए पार्टी में जाने के लिए वह बंटी को खुलेमन से पैसे देता है। उसका मानना है कि बड़े-बड़े होटलों में आए दिन होने वाली पार्टियां इसका उदाहरण हैं। मनजीत को पार्टी देने का बहाना चाहिए क्योंकि वह जानता है कि पार्टी पर जितना खर्च होगा उससे कई गुना ज्यादा का उसे काम मिल जाएगा। इसी कारण वह नई कार खरीदने पर भी पार्टी रखता है जिससे बेनर्जी से पुल के ठेके की फाइल क्लीयर करवा सके।

नाटक के पहले चार दृश्यों में मनजीत, बेनर्जी तथा महादेवन के परिवार केंद्र में हैं। इन दृश्यों में हमें इन तीनों परिवारों का संक्षिप्त परिचय मिलता है। तीसरे दृश्य में बंगाली बाबू बेनर्जी का परिवार है। बेनर्जी अपने एक संवाद में अपने व्यक्तित्व को दर्शकों के समक्ष खोलकर प्रस्तुत कर देता है, 'जितना हम दफ्तर की फाइल पर सोता, उतना लोग हमें जगाने की कोशिश करता, हम सोता तो लोगों की किस्मत सोता. . .हमें जगाने के लिए लोग लक्ष्मी मां की धुन सुनाता।' महादेवन भी मनजीत की तरह उन्नति पाने के लिए हर साधन अपनाने के लिए तैयार है। उसका बॉस विदेश में रहकर आया है इसलिए स्त्रियों को चूम लेने में उसे कोई बुराई नजर नहीं आती जबकि कल्याणी को उसका यह व्यवहार पसंद नहीं है। महादेवन का मानना है कि इससे यदि प्रमोशन के अवसर बढ़ते हों तो इसमें बुरा क्या है।

नाटक के पांचवें दृश्य में मनजीत द्वारा दी जा रही पार्टी का चित्रण है। इस दृश्य का

प्रारंभ भी प्रथम दृश्य की तरह उद्घोषणा से होता है, 'पार्टी यौवन पर है. . .यौवन के रस में डूबा जीव किसी प्रकार की वर्जनाओं की चिंता नहीं करता है।' पर पार्टी में वर्जनाओं को तोड़ता हुआ कोई दृश्य या घटना हमारे सामने नहीं आती है। यदि ऐसी कोई घटना या प्रसंग इस दृश्य में रहता तो नाटककार उससे नाटकीयता पैदा कर अपने वक्तव्य को सार्थक कर सकता था।

ऐसी पार्टियों में जितनी मौज-मस्ती पुरुष करते हैं उतनी स्त्रियां नहीं कर पातीं। जय श्री की शिकायत है कि पुरुष मौज-मस्ती में स्त्रियों को शामिल नहीं करते। बेनर्जी उत्तर देते हुए कहते हैं, 'मौज-मस्ती में स्त्रियों को शामिल नहीं करते। बेनर्जी उत्तर देते हुए कहते हैं, 'मौज मस्ती करो न, थोड़ा पियो. . .कौन रोकता है।' वे पीने को ही मौज-मस्ती समझते हैं। औरतें प्रायः किचन में चली जाती हैं तभी तो मनजीत कहता है, 'लगता है सब किचन में गप्पे मारने गई हैं। किचन तो औरतों का पिकनिक स्पॉट होता है।' स्त्रियां जानती हैं कि मुफ्त की शराब ज्यादा पी जाती है। इसी कारण सभी मर्दों को चढ़ जाती है और वे बहक जाते हैं। बहकने से हर स्त्री अपने पति को रोकना चाहती है, पर वे कामयाब नहीं हो पातीं। ऐसी पार्टियों में बार-बार जाने के कारण अब काफी महिलाएं भी ड्रिंक लेने लगी हैं। नाटक में इस ओर संकेत है, 'उसका मिसेज कैम्पा कोला में बड़ा-बड़ा पैग डालकर पीता. . .हमारा वाइफ तो बस रेड वाइन लाइक करता।' शराब के प्रति बढ़ते रुझान को तथा पार्टियों में शराब की अनिवार्यता को यह दृश्य उभारता है।

मिस्टर आहूजा को पार्टी में सिर्फ औरतें ही भाती हैं। वह प्रवेश करते ही अपने मित्रों को मिलने के स्थान पहले स्त्रियों से मिलना पसंद करता है, 'भाभी जी कैसी हो, भाभी जी कैसी हो' कहने लगता है। जबकि उसके व्यवहार में लेखक ने कहीं भी अति को दर्शित नहीं किया है, पर फिर भी उसकी नजर से सभी अपनी पत्नियों को बचाए रखना चाहते हैं। हर पार्टी में ऐसे चरित्र देखने को मिल जाते हैं। इसलिए आहूजा का चरित्र स्वाभाविक लगता है।

पुरुषों के मन में अपनी पत्नियों का भय है। इस तरफ भी लेखक का ध्यान गया

है। लोग अपनी बीवियों से बचकर पैग चढ़ाते हैं। बेनर्जी के इस कथन से इसे स्पष्ट किया गया है, 'सबको साला, बीबी से डरकर पीना पड़ता है।' नाटककार ने राम काल से लेकर आज तक के इतिहास के कई उदाहरण देकर इस मत की पुष्टि की है।

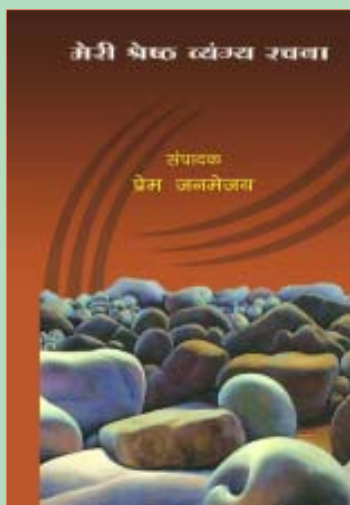
यह दृश्य नाटक का सबसे लंबा दृश्य है। पार्टी में लोग आ रहे हैं, एक-दूसरे का हाल-चाल पूछ रहे हैं, औपचारिकताएं निभाते हुए छोटा-बड़ा पैग पी रहे हैं। पार्टी में कोई उत्तेजना, घटना, नाटकीयता नहीं है। पार्टी का यथार्थ दृश्य ही उभारा गया है। कवि कोंचू के आने तक कोई जिज्ञासा भी नहीं उभरती। कवि के आगमन से साहित्यिक जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, पुरस्कारों का लेन-देन आदि को उभारने का प्रयास किया गया है, लगता है। उसे इसी उद्देश्य से पार्टी में लाया गया है जबकि वह आमंत्रित अतिथि नहीं हैं। कवि भोंक पुरस्कार समिति में हैं और वे पचास प्रतिशत कमीशन पर पुरस्कार दिलवा सकते हैं। कवि भोंक के चरित्र का देखकर साहित्यिक जगत के कई प्रतिष्ठित लेखकों-आलोचकों के चहरे उभरने लगते हैं। कवि कोंचू खुद पार्टी देने की स्थिति में नहीं हैं इसलिए वे भोंक को मनजीत की पार्टी में ले आते हैं। नाटककार लेखकों-कवियों की आर्थिक स्थिति को इससे स्पष्ट कर देता है। कवि कोंचू जानते हैं कि वे भोंक के माध्यम से कवि सम्मेलनों में भाग ले अच्छा पैसा कमा सकते हैं। इस संबंध में मनजीत की टिप्पणी जबकि स्वस्थ नहीं है, पर स्थिति तथा उसकी विडम्बना पर गहरी चोट करती है। प्रायः ऐसा कहा जाता है कि लेखक स्वाभिमानी होता है, पर कवि कोंचू इस टिप्पणी को स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसका समर्थन भी करता है, 'बिना वेश्यावृत्ति के मोटा पौसा नहीं कमाया जा सकता।' इस वेश्यावृत्ति में वह सभी को समेट लेता है, 'कोई खुलेआम मंच पर वेश्यावृत्ति करता है और कोई खादी के कपड़े पहनकर मंच के पीछे। जिस तरह की वेश्यावृत्ति सरकारी दफ्तरों, कोर्ट-कचहरियों और धर्म की दुकानों पर होती है, उसे देखकर तो अच्छी से अच्छी वेश्या भी शरमा जाए।'

मनजीत सिंह जिस फाइल को किलियर

करवाने के लिए यह पार्टी देता है, उस ओर कोई संकेत इस दृश्य में नहीं है। पार्टी के बहाने कैसे लोगों को पटाया तथा अपना उल्लू सीधा किया जाता है, इसका लाभ कवि कौंचू ही उठाता है। ऐसी ही कुछ ओर स्थितियां यदि इस दृश्य में होती तो दृश्य सपाट होने से बच जाता।

पहले अंक के प्रथम दृश्य की तरह दूसरे अंक का प्रथम दृश्य की उद्घोषणा तथा समूहगान के साथ समाप्त होता है। इस दृश्य के केंद्र में पुलिस तंत्र है। सिपाही ठंड को दूर करने के उपाय खोज रहे हैं, 'कैसे मिटे ठंडी रे, कैसे मिटे ठंडी रे / कोई मुर्गा फांस, खाने के लिए मुर्गी / मर्डर कैसे ला / किसी की करें कुर्की रु कच्ची दारू बिकवा / हमें मिले पक्की / चकलेखुलवा। थाने में नाचे इमरती।' इस समूहगान से पुलिस कर्मियों की 'कर्तव्यपरायणता' स्पष्ट हो जाती है। हर स्थिति में वे जनता को लूट लेना चाहते हैं। जब पुलिस ऐसी होगी तो परिवेश कैसा होगा इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। नाटक का दूसरा अंक पुलिस तंत्र, उसका आतंक तथा व्यक्तिगत असुरक्षा के भव को उभारता है। पुलिस सुरक्षा प्रदान करने के स्थान लोगों के मन में असुरक्षा तथा भय का भाव पैदा कर रही है। सुरक्षा तंत्र से जुड़े चौकीदार तथा उसकी कार्य शैली पर दूसरे दृश्य में प्रकाश डाला गया है, 'उधर मोहल्ले की बत्ती बंद हुआ, उधर हमारा आंख बंद हुआ. . यही हमारी ड्युटी।' चौकीदार में वास्तविक स्थिति से भी परिचित करवाता है, 'चोर डाकू के पास स्टेनगन होता है और हमारे पास लाठी।' लाठी से स्टेनगन का सामना संभव नहीं है। चौकीदार की निर्धनता, असहायता, लाचारगी का चित्रण भी नाटककार ने किया है। ऐसा उसके प्रति दर्शकों / पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए तथा वास्तविक स्थिति से रू-ब-रू कराने के लिए किया गया है।

मंच पर एक शराबी का प्रवेश कुछ उत्सुकता जगाता है। पर इस पात्र का भी नाटककार ने पूरा लाभ नहीं उठाया है। शराबी गलती से महादेवन के घर को अपना घर तथा उसकी बीवी को अपनी बीवी समझ लेता है, जिससे झगड़ा होना स्वाभाविक था। इस स्थिति में नाटकीयता है। शराबी के हावी होते ही महादेवन नर्म पड़ जाता है।



मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना

संपादक
प्रेम जनमेजय

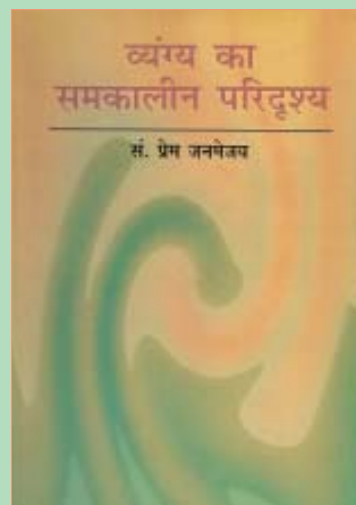
समकालीन हिंदी-व्यंग्य में रचनाशील महत्वपूर्ण व्यंग्य लेखकों द्वारा अपने संपूर्ण व्यंग्य लेखन से चुनी हुई एक श्रेष्ठ व्यंग्य रचना का संकलन, इस टिप्पणी के साथ कि वह रचना उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ क्यों है।

प्रकाशक

भावना प्रकाशन
126, पटपड़गंज
दिल्ली -110091

मूल्य : 500 रुपए

(व्यंग्य यात्रा के पाठकों के लिए विशेष छूट)



व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य

संपादक
प्रेम जनमेजय

समकालीन हिंदी व्यंग्य के महत्वपूर्ण पक्षों- व्यंग्य का मनोविज्ञान, व्यंग्य में मिथकीय प्रयोग, व्यंग्य कविता हाशिए पर क्यों तथा हिंदी व्यंग्य के समकालीन पक्ष पर विजयेंद्र स्नातक, प्रो. निर्मला जैन, कृष्णदत्त पालीवाल, रमेश उपाध्याय, कन्हैयालाल नंदन, नरेंद्र कोहली, प्रकाश मनु, प्रदीप पंत, खगेंद्र ठाकुर, गोपाल चतुर्वेदी, शंकर पुणतांबेकर, विष्णु नागर, ज्ञान चतुर्वेदी, दिविक रमेश, हरीश नवल आदि विद्वानों के चिंतनपरक आलेख।

प्रकाशक

ग्रंथलोक
10296, गली नं.-1, वेस्ट गोरखपार्क
शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य : 700 रुपए

(व्यंग्य यात्रा के पाठक विशेष छूट के लिए पत्रिका-प्रबंधक से संपर्क करें)

हरिशंकर परसाई जैसे उनके दिन फिरे

आज से पांच वर्ष पूर्व, 22 अगस्त 2004 को, हरिशंकर परसाई के जन्मदिन पर 'व्यंग्य यात्रा' का पहला अंक निकालने की योजना बनाई थी, पर वो योजना ही क्या जो सही समय पर कार्यान्वित हो जाए। पत्रिका पहला अंक अक्टूबर में ही आ पाया पर 'व्यंग्य यात्रा' के लिए हरिशंकर परसाई के जन्मदिन का विशेष महत्व है। इस बार उनके जन्मदिन पर उनको प्रणाम करते हुए, देर आए दुरुस्त आए की शैली में, पत्रिका के पाठकों के लिए हरिशंकर परसाई की एक प्रसिद्ध व्यंग्य रचना 'जैसे उनके दिन फिरे' प्रस्तुत है और साथ ही उनकी इस रचना पर युवा आलोचक एवं 'कथन' की संपादिका संज्ञा उपाध्याय की महत्वपूर्ण टिप्पणी। - संपादक

एक था राजा। राजा के चार लड़के थे। रानियां? रानियां तो अनेक थीं, महल में एक 'पिंजरापोल' ही खुला था। पर बड़ी रानी ने बाकी रानियों के पुत्रों को जहर देकर मार डाला था। और इस बात से राजा साहब बहुत प्रसन्न हुए थे। क्योंकि वे नीतिवान थे और जानते थे कि चाणक्य का आदेश है, राजा अपने पुत्रों को भेड़िया समझे। बड़ी रानी के चारों लड़के जल्दी ही राजगद्दी पर बैठना चाहते थे, इसलिए राजा साहब को बूढ़ा होना पड़ा। एक दिन राजा साहब ने चारों पुत्रों को बुला कर कहा, पुत्रों मेरी अब चौथी अवस्था आ गयी है। दशरथ ने कान के पास के केश श्वेत होते ही राजगद्दी छोड़ दी थी। मेरे बाल खिचड़ी दिखते हैं, यद्यपि जब खिजाब घुल जाता है तब पूरा सिर श्वेत हो जाता है। मैं सन्यास लूंगा, तपस्या करूंगा। उस लोक को सुधारना है, ताकि तुम जब वहां आओ, तो तुम्हारे लिए मैं राजगद्दी तैयार रख सकूँ। आज मैंने तुम्हें यह बतलाने के लिए बुलाया है कि गद्दी पर चार के बैठ सकने लायक जगह नहीं है। अगर किसी प्रकार चारों समा भी गये तो आपस में धक्का-मुक्की होगी और सभी गिरोगे। मगर मैं दशरथ सरीखी गलती नहीं करूंगा कि तुम में से किसी के साथ पक्षपात करूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा लूंगा। तुम चारों ही राज्य से बाहर चले जाओ। ठीक एक साल बाद इसी फाल्गुन की पूर्णिमा को चारों दरबार में उपस्थित होना। मैं देखूंगा कि इस साल में किसने कितना धन कमाया और कौन-सी



योग्यता प्राप्त की। तब मैं मंत्री सलाह से, जिसे सर्वोत्तम समझूंगा, राजगद्दी दे दूंगा। जो आज्ञा, कहकर चारों ने राजा साहब को भक्तिहीन प्रणाम किया और राज्य के बाहर चले गये। पड़ोसी राज्य में पहुँच कर चारों राजकुमारों ने चार रास्ते पकड़े और अपने पुरुषार्थ तथा किस्मत को आजमाने चल पड़े। ठीक एक साल बाद फाल्गुन की पूर्णिमा को राज-सभा में चारों लड़के हाजिर हुए। राजसिंहासन पर राजा साहब विराजमान थे, उनके पास ही कुछ नीचे आसन पर प्रधानमंत्री बैठे थे। आगे भाट, विदूषक और चाटुकार शोभा पा रहे थे। राजा ने कहा,

'पुत्रों! आज एक साल पूरा हुआ और तुम सब यहां हाजिर भी हो गये। मुझे उम्मीद थी कि इस एक साल में तुममें से तीन या बीमारी के शिकार हो जाओगे या कोई एक शेष तीनों को मार डालेगा और मेरी समस्या हल हो जायेगी। पर तुम चारों यहां खड़े हो। खैर! अब तुममें से प्रत्येक मुझे बतलाये कि किसने इस एक साल में क्या काम किया कितना धन कमाया और राजा साहब ने बड़े पुत्र की ओर देखा। बड़ा पुत्र हाथ जोड़कर बोला, 'पिता जी, मैं जब दूसरे राज्य में पहुँचा, तो मैंने विचार किया कि राजा के लिए ईमानदारी और परिश्रम बहुत आवश्यक गुण है। इसलिए मैं एक व्यापारी के यहां गया और उसके यहां बोरे ढोने का काम करने लगा। पीठ पर मैंने एक वर्ष बोरे ढोये हैं, परिश्रम किया है। ईमानदारी से धन कमाया है। मजदूरी में से बचाई हुई ये सौ स्वर्णमुद्राएं ही मेरे पास हैं। मेरा विश्वास है कि ईमानदारी और परिश्रम ही राजा के लिए सबसे आवश्यक है और मुझमें ये हैं, इसलिए राजगद्दी का अधिकारी मैं हूँ। वह मौन हो गया। राज-सभा में सन्नाटा छा गया। राजा ने दूसरे पुत्र को संकेत किया। वह बोला, 'पिताजी, मैंने राज्य से निकलने पर सोचा कि मैं राजकुमार हूँ, क्षत्रिय हूँ- क्षत्रिय बाहुबल पर भरोसा करता है। इसलिए मैंने पड़ोसी राज्य में जाकर डाकुओं का एक गिरोह संगठित किया और लूटमार करने लगा। धीरे-धीरे मुझे राज्य कर्मचारियों का सहयोग मिलने लगा और मेरा काम खूब

अच्छा चलने लगा। बड़े भाई जिसके यहां काम करते थे, उसके यहां मैंने दो बार डाका डाला था। इस एक साल की कमाई में पांच लाख स्वर्णमुद्राएं मेरे पास हैं। मेरा विश्वास है कि राजा को साहसी और लुटेरा होना चाहिए, तभी वह राज्य का विस्तार कर सकता है। ये दोनों गुण मुझमें हैं, इसलिए मैं ही राजगद्दी का अधिकारी हूँ। पांच लाख सुनते ही दरबारियों की आंखें फटी-की फटी रह गयीं। राजा के संकेत पर तीसरा कुमार बोला, 'देव मैंने उस राज्य में जाकर व्यापार किया। राजधानी में मेरी बहुत बड़ी दूकान थी। मैं घी में मूंगफली का तेल और शक्कर में रेत मिलाकर बेचा करता था। मैंने राजा से लेकर मजदूर तक को सालभर घी-शक्कर खिलाया। राज-कर्मचारी मुझे पकड़ते नहीं थे क्योंकि उन सब को मैं मुनाफे में से हिस्सा दिया करता था। एक बार स्वयं राजा ने मुझसे पूछा कि शक्कर में यह रेत-सरीखी क्या मिली रहती है? मैंने उत्तर दिया कि करुणानिधान, यह विशेष प्रकार की उच्चकोटि की खदानों से प्राप्त शक्कर है जो केवल राजा-महाराजाओं के लिए मैं विदेश से मंगाता हूँ। राजा यह सुनकर बहुत खुश हुए। बड़े भाई जिस सेठ के यहां बोरें ढोते थे, वह मेरा ही मिलावटी माल खाता था। और मंझले लुटेरे भाई को भी मूंगफली का तेल-मिला घी तथा रेत-मिली शक्कर मैंने खिलाई है। मेरा विश्वास है कि राजा को बेईमान और धूर्त होना चाहिए तभी उसका राज टिक सकता है। सीधे राजा को कोई एक दिन भी नहीं रहने देगा। मुझमें राजा के योग्य दोनों गुण हैं, इसलिए गद्दी का अधिकारी मैं हूँ। मेरी एक वर्ष की कमाई दस लाख स्वर्णमुद्राएं मेरे पास हैं। 'दस लाख' सुनकर दरबारियों की आंखें और फट गयीं। राजा ने तब सब से छोटे कुमार की ओर देखा। छोटे कुमार की वेशभूषा और भाव-भंगिमा तीनों से भिन्न थी। वह शरीर पर अत्यन्त सादे और मोटे कपड़े पहने था। पांव और सिर नंगे थे। उसके मुख पर बड़ी प्रसन्नता और आंखों में बड़ी करुणा थी। वह बोला, 'देव, मैं जब दूसरे राज्य में पहुंचा तो मुझे पहले तो यह सूझा ही नहीं कि क्या करूं। कई दिन मैं भूखा-प्यासा भटकता रहा। चलते-चलते एक दिन मैं एक अट्टालिका के सामने पहुंचा। उस पर लिखा

था 'सेवा आश्रम'। मैं भीतर गया तो वहां तीन-चार आदमी बैठे ढेर-की-ढेर स्वर्ण-मुद्राएं गिन रहे थे। मैंने उनसे पूछा, भद्रो तुम्हारा धंधा क्या है?' 'उनमें से एक बोला,



त्याग और सेवा।' मैंने कहा, 'भद्रो त्याग और सेवा तो धर्म है। ये धंधे कैसे हुए?' वह आदमी चिढ़कर बोला, तेरी समझ में यह बात नहीं आयेगी। जा, अपना रास्ता ले।' 'स्वर्ण पर मेरी ललचायी दृष्टि अटकी थी। मैंने पूछा, 'भद्रो तुमने इतना स्वर्ण कैसे पाया?' वही आदमी बोला, 'धंधे से।' मैंने पूछा, कौन-सा धंधा? वह गुस्से में बोला, 'अभी बताया न! सेवा और त्याग। तू क्या बहरा है?' 'उनमें से एक को मेरी दशा देख कर दया आ गयी।' उसने कहा, 'तू क्या चाहता है?' 'मैंने कहा, मैं भी आप का धंधा सीखना चाहता हूँ।' 'उस दयालु आदमी ने कहा, 'तो तू हमारे विद्यालय में भरती हो जा। हम एक सप्ताह में तुझे सेवा और त्याग के धंधे में पारंगत कर देंगे। शुल्क कुछ नहीं लिया जायेगा, पर जब तेरा धंधा चल पड़े तब श्रद्धानुसार गुरुदक्षिणा दे देना।' 'पिताजी, मैं सेवा-आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने लगा। मैं वहां राजसी ठाठ से रहता, सुन्दर वस्त्र पहनता, सुस्वादु भोजन करता, सुंदरियां पंखा झलतीं, सेवक हाथ जोड़े सामने खड़े रहते। अंतिम दिन मुझे आश्रम के प्रधान ने बुलाया और कहा, 'वत्स, तू सब कलाएं सीख गया। भगवान का नाम लेकर कार्य आरम्भ कर दे।' उन्होंने मुझे ये मोटे सस्ते वस्त्र दिए और कहा, 'बाहर इन्हें पहनना। कर्ण के कवच-कुण्डल की तरह ये बदनामी से तेरी रक्षा करेंगे। जब तक तेरी अपनी अट्टालिका

नहीं बन जाती, तू इसी भवन में रह सकता है, जा, भगवान तुझे सफलता दें।' 'बस, मैंने उसी दिन 'मानव-सेवा-संघ' खोल दिया। प्रचार कर दिया कि मानव-मात्र की सेवा करने का बीड़ा हमने उठाया है। हमें समाज की उन्नति करना है, देश को आगे बढ़ाना है। गरीबों, भूखों, नंगों, अपाहिजों की हमें सहायता करनी है। हर व्यक्ति हमारे इस पुण्यकार्य में हाथ बंटाए। हमें मानव-सेवा के लिए चंदा दे। पिताजी, उस देश के निवासी बड़े भोले हैं। ऐसा कहने से वे चंदा देने लगे। मंझले भैया से भी मैंने चंदा लिया था, बड़े भैया के सेठ ने भी दिया और बड़े भैया ने भी पेट काट कर दो मुद्राएं रख दीं। लुटेरे भाई ने भी मेरे चेलों को एक सहस्र मुद्राएं दी थीं। क्योंकि एक बार राजा के सैनिक जब उसे पकड़ने आये तो उसे आश्रम में मेरे चेलों ने छिपा लिया था। पिताजी, राज्य का आधार धन है। राजा को प्रजा से धन वसूल करने की विद्या आनी चाहिए। प्रजा से प्रसन्नतापूर्वक धन खींच लेना, राजा का आवश्यक गुण है। उसे बिना नश्वर लगाए खून निकालना आना चाहिए। मुझमें यह गुण है, इसलिए मैं ही राजगद्दी का अधिकारी हूँ। मैंने इस एक साल में चन्दे से बीस लाख स्वर्ण-मुद्राएं कमाई जो मेरे पास हैं।' 'बीस लाख' सुनते ही दरबारियों की आंखें इतनी फटीं कि कोरों से खून टपकने लगा। तब राजा ने मंत्री से पूछा, 'मंत्रिवर आपकी क्या राय है? चारों में कौन कुमार राजा होने के योग्य है?' मंत्रिवर बोले, 'महाराज इसे सारी राजसभा समझती है कि सब से छोटा कुमार ही सबसे योग्य है। उसने एक साल में बीस लाख मुद्राएं इकट्ठी कीं। उसमें अपने गुणों के सिवा शेष तीनों कुमारों के गुण भी हैं- बड़े जैसा परिश्रम उसके पास है, दूसरे कुमार के समान वह साहसी और लुटेरा भी है। तीसरे के समान बेईमान और धूर्त भी। अतएव उसे ही राजगद्दी दी जाए। मंत्री की बात सुनकर राजसभा ने ताली बजाई। दूसरे दिन छोटे राजकुमार का राज्याभिषेक हो गया। तीसरे दिन पड़ोसी राज्य की गुणवती राजकन्या से उसका विवाह भी हो गया। चौथे दिन मुनि की दया से उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ और वह सुख से राज करने लगा। कहानी थी सो खत्म हुई। जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके दिन फिरें।

संज्ञा उपाध्याय

व्यंग्य को अपना औजार और हथियार बनाते हैं परसाई

हरिशंकर परसाई हिंदी की 'नयी कहानी' के दौर के कहानीकार हैं। राजनीति उनकी कहानियों का मुख्य सरोकार है। उनका स्पष्ट मत था कि स्वयं को राजनीति से दूर मानने वाले रचनाकार वास्तव में जन-विरोधी राजनीति के पक्षधर हैं। यथार्थ को देखने के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं और हैं भी। परसाई यथार्थ को जनपक्षीय दृष्टिकोण से देखते हैं। इसलिए उन्हें अपने समय के सामंती और पूंजीवादी समाज के शासक वर्ग तथा उसकी व्यवस्था में अनेक विसंगतियां दिखायी पड़ती हैं, जैसे- झूठ, छल, पाखंड, बेईमानी, भ्रष्टाचार इत्यादि। वे इन तमाम विसंगतियों या बुराइयों पर चोट करते हैं। ऐसा करते समय वे व्यंग्य को अपना औजार और हथियार बनाते हैं- औजार एक नया समाज बनाने के लिए और हथियार उस नये समाज के निर्माण में बाधक तत्वों से निपटने के लिए।

यह काम राजनीति की सही समझ के बिना नहीं किया जा सकता, परंतु अनेक लेखक और बुद्धिजीवी राजनीति को साहित्येतर अनुशासन कहकर नकारने की या साहित्य को उससे अलग रखने की बात करते हैं। लेकिन परसाई न केवल राजनीति से परहेज नहीं करते, वे उसे समझना समाज को सही रूप में समझने के लिए आवश्यक भी मानते हैं।

सामान्य जनता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता के चलते अभिव्यक्ति और शिल्प के स्तर पर उनकी कहानियां उनके समकालीन रचनाकारों से सर्वथा भिन्न हैं। परसाई की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने कथ्य और शिल्प में अत्यंत वैविध्यपूर्ण होने पर भी वर्तमान के ही सामाजिक सरोकारों को सामने लाती हैं। इन कहानियों में भारत की जनतांत्रिक व्यवस्था की विसंगतियों की व्यंग्यपूर्ण आलोचना की गयी है। भेड़ों और भेड़िये, 'इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर', 'एक गोभक्त से भेंट', 'दल बदलने वाला', 'उखड़े खंभे', 'भोलाराम का जीव', 'सदाचार का तावीज', 'हम

बिहार से चुनाव लड़ रहे हैं' जैसी अपनी कई कहानियों में परसाई जनता को मूर्ख समझने और बनाने वाले नेता, भ्रष्ट नौकरशाही, भ्रष्ट और दमनकारी पुलिस व्यवस्था, शासकों का जन-विरोधी चरित्र, चुनावों में जातिवाद और संप्रदायवाद, विभिन्न राजनीतिक दलों का चरित्र, धर्म और राजनीति का गठजोड़, दल बदलने वाले अवसरवादी नेताओं का चरित्र आदि को विषय बनाते हैं।

इसी तरह की उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है 'जैसे उनके दिन फिरे'। इस कहानी में परसाई व्यंग्यात्मक रूप में बताते हैं कि हमारे जनतंत्र में शासकों में किन 'योग्यताओं' का होना जरूरी है! एक राजा यह तय करना चाहता है कि उसके चार पुत्रों में से कौन राजगद्दी पाने का हकदार है। वह कहता है कि एक वर्ष बाद उन चारों को यह बताते हुए कि उन्होंने कितना धन कमाया और क्या योग्यता हासिल की, स्वयं को सर्वोत्तम सिद्ध करना होगा।

लोककथा के रूप में लिखी गयी इस कहानी में पहला और सबसे बड़ा पुत्र, जो मेहनत और ईमानदारी से धन कमाता है, राजा और उसके दरबारियों की निगाह में सबसे निकम्मा सिद्ध होता है। यह पुत्र दरअसल भारत की मेहनतकश जनता का प्रतिनिधि पात्र है, क्योंकि भारत की जनता में अधिकांश लोग ऐसे ही हैं, जो मेहनत और ईमानदारी से काम करते हुए ही जीते हैं। वे अपनी मेहनत-मजदूरी में से की गयी बचत से ही धनी बनने का स्वप्न देखते हैं। लेकिन ऐसे लोग शासक वर्ग तथा उससे सहयोग करने वाले 'चतुर' मध्यवर्गीय लोगों के द्वारा मूर्ख समझे जाते हैं। उन्हें शासन करने योग्य तो क्या, किसी भी काम के योग्य नहीं समझा जाता।

राजा का दूसरा पुत्र भारतीय समाज के उस सामंती तबके का प्रतिनिधि पात्र है, जो बाहुबल को ही सब कुछ समझता है। वह अपने राजकुमार और क्षत्रिय होने को बहुत महत्त्व देता है। यह दूसरा पुत्र भारतीय जनतंत्र के उन 'बाहुबलियों' की याद दिलाता है,

जो अपराध के रास्ते राजनीति में आते हैं और अपराधी बने रहते हुए भी जनता के नेता बनकर अपने प्रभाव और वैभव का विस्तार करते रहते हैं।

राजा का तीसरा पुत्र उस धूर्त व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, जो आम जनता को धोखा देकर मिलावट, बेईमानी, झूठ और भ्रष्टाचार जैसे तरीकों से धनी बनता है और उस धन के बल पर सत्ता हासिल करने में समर्थ हो जाता है।

राजा का सबसे छोटा पुत्र भारतीय जनतंत्र के शासकों तथा राजनीतिक नेताओं का प्रतिनिधि पात्र है। वह अपने तीनों बड़े भाइयों से भिन्न वेश-भूषा और भाव-भंगिमा वाला व्यक्ति है। वह अत्यंत सादे और मोटे कपड़े पहनता है। नंगे सिर और नंगे पांव चलता है। उसके चेहरे पर बड़ी सरलता और आंखों में बड़ी करुणा दिखायी देती है, लेकिन वह अपने सभी भाइयों से बढ़कर धूर्त है।

कहानी का यह चौथा राजकुमार भारतीय प्रजातंत्र के उन नेताओं का प्रतीक है, जो जन-सेवा का ढोंग करते हैं, बाहर अत्यंत दीन-हीन साधारण जन होने का दिखावा करते हैं, किंतु अपने निजी जीवन में ऐश्वर्यवान और विलासी होते हैं। वे आम गरीब मेहनतकश जनता से चंदे के नाम पर तो धन वसूलते ही हैं, व्यापारियों और अपराधियों से भी बड़ी-बड़ी रकमें उगाहते हैं।

यहां हरिशंकर परसाई का सामाजिक यथार्थ-बोध अत्यंत प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुआ है। वे इस कहानी के माध्यम से बताते हैं कि भारत की गरीब जनता सेवा और सहायता जैसे मूल्यों में तो विश्वास करती है, और इन मूल्यों की रक्षा के लिए अपना पेट काटकर भी धन और साधन जुटाती है लेकिन वह इतनी भोली या नासमझ है कि इन मूल्यों के नाम पर ठगने वालों पर विश्वास कर लेती है। दूसरी तरफ बेईमान व्यापारी और अपराधी किस्म के लोग ऐसे

शेष पृष्ठ 16 पर. . .

सुनील गंगोपाध्याय

स्वर्ग दर्शन

युधिष्ठिर महेंद्र शिखर पर आ खड़े हुए थे। सिर पर आकाश का एक सुविशाल छत उसके नीचे अकेला एक मानव अतः और भी बढ़ती गई निःसंगता। चार भाई तथा अपनी स्त्री भी सभी गल चुके हैं। उनका मृत देह पथ पर ही पड़ा रह तो नहीं गया? भले ही पीछे मुड़ युधिष्ठिर ने देखा न हो पर उनका कुत्ता बहुत ही बेचैन हो रहा था। अपने कंधे पर रखी हुई झोली में से युधिष्ठिर थोड़ी-थोड़ी रोटियों के टुकड़े कर-कर उसके मुख के सामने डालते हुए कहते रहे और थोड़ा इंतजार करो बस, और थोड़ा। कुछ ही समय पश्चात् सामने एक अग्निमय रथ दिखा आकाश से जो नीचे उतर आया जब कि एक आकाशचारी उस रथ पर से उतरा। युधिष्ठिर ने उसे अभिवादन करते हुए अपना घुटना टेक दिया। स्वर्ग दूत ने प्रसन्नचित होकर कहा 'हे युधिष्ठिर! तुम एक साधारण मानव ही हो फिर भी तुम्हारे शुभ-बुद्धि और धैर्य भाव को सराहते हुए मैं तुम्हें जीवित ही नक्षत्र लोक में ले जाने के लिए सोच रहा हूँ, हां, तो आओ वत्स। आओ मेरे साथ।'

धीरमति युधिष्ठिर ने जब पहले कुत्ते को भी युआन पर ले जाने के लिए अनुरोध किया तो नभदूत ने आश्चर्यचकित होकर पूछा यह क्या पहले ही कुकुर क्यों युधिष्ठिर के उत्तर में जितनी दृढ़ता थी उतनी ही थी नम्रता। हां महाशय मेरा अभिप्राय कुछ ऐसा ही है। थोड़ी देर निस्तब्ध रह कर नभदूत हंस पड़े। समझा, तुम यथार्थ में हमारी ही परीक्षा ले रहे हो यानि कि यह यान निर्भरशील या कहीं विश्वासयोग्य है या नहीं। तुम देखना चाहते हो पृथ्वी के प्राणी के लिए यह यान किस हद तक इस्तेमाल के लायक है। निःसंदेह यह सत्य है कि काफी बुद्धिमान हो तुम। आज तक भले ही कोई जीवित प्राणी इस यान पर चढ़ कर गया नहीं है तभी इतनी लंबे पथ पर भी तुम कुकुर को साथ ले आए हो, हां तो यही केवल मकसद से। सच, धन्य हो तुम। युधिष्ठिर ने कहा 'आप उचित कह रहे हैं, झूठ मैं नहीं बोलता।

अपने संदेह को दूर करने के लिए ही मैं इस कुकुर को साथ लेकर आया हूँ। कहीं कुकुर भाग न जाए, इस हेतु बीच-बीच में इसे मिठाई के टुकड़े भी खिलाते हुए आया हूँ। समय अधिक नष्ट न करते हुए नभचारी कुकुर को यान पर लेकर आकाश में उड़ गया युधिष्ठिर जब उसी ओर निहारते खड़े रह गये। कुछ क्षण बीते थे कि यान कुकुर को लेकर लौट भी आया और जानवर खुशी खुशी अपनी दुम हिलाता हुआ यान से बाहर निकल आया। युधिष्ठिर के पास बची हुई मिठाई सारे के सारे उन्होंने कुकुर के मुँह के पास ही डाल दिया और बोले जाओ हे जीव तुमने मेरा बहुत उपकार किया है। इसलिए मैं तुम्हें वर दे रहा हूँ कि आज से कुकुर जाति मनुष्य के पालतू बनकर रहेंगे और मर्यादित जीवन बितायेगा।

एक स्वच्छ हेलमेट युधिष्ठिर के सिर पर पहनाते हुए नभचारी बोले, 'सांस लेने में कोई तकलीफ। युधिष्ठिर 'नहीं' 'तो चलें' और स्वर्गीय रथ आकाश से उड़ चला। अंतिम बार के लिए युधिष्ठिर पृथ्वी को निहार रहे थे, उनके हृदय में वेदना अनुभव हो रही थी। कोई भी आत्मीय बंधु जन अब जीवित रहे नहीं थे। फिर भी युधिष्ठिर का बहुत ही प्रिय था, यह जगत। 'क्या तुम सोना चाहते हो? अभी पहुँचने में देरी है सो सकते हो।' नभचारी ने कहा। नहीं बाहर के ऐसे सुंदर दृश्यावलियाँ मैं सोकर खोना नहीं चाहता।' तुम ही प्रथम जीवित प्राणी हो, जिसे ऐसा अवसर दिया गया है? यह श्रेय तुम्हें तुम्हारी कीर्ति के लिए मिली है? जिस कारण तुमको मृतों में परिवर्तित नहीं किया गया पर तुम्हें डर तो नहीं लग रहा है?' 'क्यों डरूंगा क्यों' स्वर्ग नामक यह जगह तुम्हारे लिए नितांत ही अपरिचित है, इसलिए 'क्यों अपरिचित क्यों है? हमारे पूर्वज वहाँ गए हैं। स्वर्ग का गुणगान भी किया है। मैंने भी तो अपने को विविध प्रकार से वंचित किया है, स्वर्ग प्राप्ति के ही लिप्सा से।' 'ठीक है। आगे देखा जाएगा।'

आपने मुझे प्रथम आकाशचारी बनने का सम्मान दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं किंतु मैं आपको स्मरण कराना चाहूँगा कि हमारे पूर्व पुरुष पुरुखा स्वर्ग आए थे। ऐसी और भी कई कथाएँ मैं जानता हूँ।

अफवाहें फैलती रही हैं परंतु ऐसी उड़ान में तुम एक मात्र हो इसमें कोई संदेह नहीं और तुम्हें ले जा रहे हैं, एक विशेष परीक्षा चलाने के उद्देश्य से ही।

'परीक्षा?' हां, वैज्ञानिक परीक्षा। प्रश्न जटिल है। समझोगे नहीं। तो भी संक्षेप में बता रहा हूँ। सुनो शरीर वस्तु है, तो प्राण शक्ति है। वस्तु को शक्ति में परिवर्तित करने का कौशल हम जानते हैं। यह कौशल पृथ्वी के मनुष्य नहीं जानते। किन्हीं-किन्हीं चुने हुए मुर्दों के प्राण को ऊपर ले आकर हम संरक्षित करते हैं और वस्तु में रूपांतरित करने के साथ साथ वे पुनः जीवित हो उठते हैं परंतु ध्यान रखा जाता है कि इस कौशल के करने से पहले लोभ, मोह, हिंसा जैसी दुर्वृत्तियों जो पृथ्वी में जाकर बनती हैं, उन्हें हम मिटा लें। फिलहाल, तुम्हारे द्वारा यह चेष्टा चला कर देखा जाएगा कि मृत्यु न होने पर भी लोभ मोह आदि बुरी आदतों को तुम्हारे अंदर से मिटाया जा सकता है या नहीं। थोड़ा सा दुख और अहंकार मिश्रित वाणी से युधिष्ठिर बोले हे देव! पृथ्वी पर रहते हुए भी मेरे अंदर यह दोष नहीं थे।

हां, तभी तुम्हें चुना गया है। फिर भी अपने को जितना दोष मुक्त समझते हो, उतना तुम हो नहीं। पृथ्वी दोषमुक्त है। अतः तुम्हें भी वह अवगुण स्पर्श होंगे। मैं यहां भ्रमण कर आना कतई पसंद नहीं करता। हां, विष्णु प्रायः आते हैं। पृथ्वी के खर्बाकर मनुष्य उन्हें बहुत पसंद हैं। चुन-चुन कर तभी कितने ही खर्बाकार नारियों को उन्होंने विवाह किया है। कहिए आप भी तो जानते हैं। देवता के लीला प्रसंगों में युधिष्ठिर निरुत्तर और नतमस्तक बने रहे। यान की गति मद्धिम होने लगी थी, नभचारी बोले, क्षण भर के लिए मुझे नर्क नामक उपग्रह में

रुकना होगा पर ध्यान रहे वहीं रह जाने की इच्छा नहीं जताना। बहुत लोग उस स्थान को अधिक पसंद करने लगते हैं।

युधिष्ठिर, यद्यपि उस उपग्रह में यान से उतरे तक नहीं थे, अपनी आंखों को, कानों को कस कर बंद रखने के बावजूद तरह-तरह की भयप्रद, और दुखद चीत्कार उनके कर्ण कुहरों को तथा नेत्रों को असह्य प्रतीत होने लगे थे। नर्क और स्वर्ग के बीच रास्ता बहुत सामान्य था। स्वर्ग पर उतरते ही नभचारी ने घोषित किया कि उनका कर्तव्य अब समाप्त हो गया है। अतः दूसरे विशेषज्ञों के काम शुरू होंगे। आज, पर कुछ होने वाला नहीं और यह ज्ञात हो कि यहां का कोई भी खाद्य वस्तु कोई भी गृह द्वार और कोई भी जल सब कुछ अपना है। पराया कुछ नहीं यहां तक कि कोई भी नारी को अपनी बल्लभा बना सकते हो।

राकेट के स्टेशन से बाहर आकर युधिष्ठिर ने किसी भी एक पथ को पकड़ लिया और अग्रसर होने लगे। मन ही मन सोचते रहे जहां खुशी जा सकता हूं। राह भूलने का भय नहीं है, कारण सभी राह तो अपने ही हैं। इसके अलावा राह सभी समंतराल स्वच्छ भी। गली कूचों के जटिलता से रहित सीधे-साधे पथों के दोनों किनारे पर सारबद्ध वृक्ष शोभित हे रहे थे। पर यह हरे नहीं नील वर्ण के युधिष्ठिर ताड़ गए कि देवता को शायद नील वर्ण इसीलिए प्रिय होती है पर युधिष्ठिर तो हरे वर्ण के आदी थे। अतः हरा ही उनका प्रिय वर्ण है। उन्हें यह रंग पीड़ा पहुंचा रही थी। अपने जनों से साक्षात् होने की अभिलाषा से युधिष्ठिर व्यग्र हो रहे थे। खासतौर से वह पितामह भीष्म से मिलना चाहते थे। स्वर्ग का हाल चाल बताने वाले भरोसेमंद व्यक्ति पितामह जैसे और कौन हो सकते हैं। पृथ्वी पर तो हर परामर्श में पितामह का ही प्रधान हस्तक्षेप हुआ करता था। थोड़े ही दूर पर दीख गए सर्वप्रथम दुर्योधन तथा कर्ण। युधिष्ठिर चौंक उठे बेशक उन्हें थोड़ा दुख भी हुआ। हमसे किते ही पहले उन्हें स्वर्ग सुख प्राप्ति हो चुकी है। जहां मेरी परम आदरणीय मेर द्रोपदी और सहोदरगण अभी तक पहुंच ही नहीं पाए हैं क्या? चूंकि दोनों ने ही युधिष्ठिर को देखा नहीं युधिष्ठिर में आंख बचा कर चले जाने की इच्छा प्रबल हुई। पुनः वह चौंक उठे, यह सोच कर कि ईर्ष्या तथा भय

का जन्म उनमें होना ही नहीं चाहिए। कहीं किसी को यह बात पता तो नहीं चल गया होगा। अतः तत्परता से युधिष्ठिर आगे बढ़े और कर्ण के प्रणाम किया। दुर्योधन ही सर्वप्रथम बोले ओ हो आप धर्मराज? तो आ पहुंचे हैं, यहां। यहां की भूमि बहुत ही स्वास्थ्यकर है। अतः कोई दर्द की शिकायत यहां नहीं होती। मैं पूर्णतः स्वस्थ हूं। कर्ण नीरव थे। युधिष्ठिर का दिल धड़कने लगा था। कारण, अपने सहोदर भाई जानते हुए भी इस प्रकार आमने-सामने खड़े होकर उन्होंने कर्ण से कभी बातें नहीं की थी। कुरुक्षेत्र के युद्ध में उसे अपनी मुट्ठी के भीतर पा कर भी युधिष्ठिर ने हत्या नहीं किया था। न जाने कितने कटु वचन उन्होंने कर्ण से कहे थे। वे ही युधिष्ठिर अब कर्ण को घुटने टेक वंदना करते हुए बोले, हे ज्येष्ठ, आप सर्वरूपेण कुशल तो हैं। कर्ण तो बराबर ही कटु तथा विनय विहीन भाषण के लिए प्रसिद्ध थे। पर आश्चर्य की बात है कि उनके उत्तर में भी मधु वर्षण हो रहा था। कर्ण ने युधिष्ठिर का सिर चूमा फिर उसका सुग्राण लिया और बोले, तुम्हें देख कर मुझे आशातीत खुशी हुई। तुम पृथ्वी के गौरव थे और स्वर्ग भूमि तुम्हें पाकर गौरवान्वित होगी। दुर्योधन ने पुनः प्रश्न किया आपने कुछ खाया पिया या नहीं। बहुत ही सुबह-सुबह निकल पड़े होंगे। साथ ही असंख्य पर्वत मालाओं को पार कर के आना पड़ा है। हम सभी आप लोगों का पर्वतारोहण दूरदर्शन में देख रहे थे। यह सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था फिर दाहिनी ओर उंगली उचा कर दिखाते हुए कर्ण बोले, उस दिशा में अतिथिशाला है। आप भोजन ग्रहण कर लें। दो शब्द दुर्योधन ने और भी जोड़ दिए। जितनी खुशी भोजन करें, ऐसी अच्छी रसोई कभी न मिली होगी। मूल्य चुकाना भी नहीं पड़ेगा। कर्ण बोले, पर्वतारोहण के श्रम से आप परिश्रान्त तो हैं ही किसी भी भवन में पहुंच कर आप विश्राम ग्रहण करें। दुर्योधन बोले, सेवा तथा विलास हेतु यदि दासी की आवश्यकता अनुभव हो तो दूरभाष के जरिये कार्यालय में अपनी ख्वाहिश अवश्य पेश करें। इच्छानुसार सेविकाएं मिल जाएंगी पर कर्ण सावधान करते हुए बोले, हां केवल उर्वशी को न मांगिए। यद्यपि उर्वशी चिर यौवना तथा सुंदरियों में श्रेष्ठा है, फिर भी सूर्यवंशियों के लिए वह दुर्लभ है। उनका दावा है, वह हम लोगों की नानी हैं, कारण

वह सूर्यवंश के पूर्व पुरुष पुरुवा की पत्नी थी। हालांकि युधिष्ठिर ना ही क्षुधार्त थे ना ही स्त्री संभोग के लिए अभिलाषी केवल वे आतुर थे तो आत्मीय और मित्रों से मिलने के लिए। उन्होंने पितामह से भेंट करने की अभिलाषा व्यक्त की। दुर्योधन से पता चला कि यहां पर पितामह को जितेंद्रिय बन कर रहना पड़ रहा है। यहां ना ही शादी होती है और न ही संतान जनन। इसी कारण उन्हें प्रतिज्ञा पालन की आवश्यकता नहीं रही। युधिष्ठिर ने पूछा, 'पितामह कहां होंगे।'

खोज लीजिए। हम तो यहां बैठे हैं याज्ञसेनी को देखने की अभिलाषा से। युधिष्ठिर चौंक उठे। द्रोपदी! मन मन बोले मधुभाषिणों द्रपदतनया अवश्य ही स्वर्ग आने की अधिकारिणी है। दुर्योधन बोल पड़े। दूसरी कोई उन्हें अपनी प्रार्थना सुनाए। उससे पहले मैं सुनाऊंगा। जुए में मैंने उन्हें जीत लिया था, पर पिता के भर्त्सना से भयभीत होकर तुम लोगों के पास उन्हें लौटा देने को बाध्य हुआ और उसके लिए महायुद्ध हुआ। वह सब क्रोध-ओध अब मेरे में अवशेष नहीं रहा है। परम रमणीय उस सुंदरी को मैं अपने क्रोध पर बैठाऊंगा। युधिष्ठिर के मानो सर्वांग में घाव बन गये हो सुनकर इस भांति अंग जलने लगे। मानो इस घाव पर नमक छिड़का गया हो। भयंकर पलायन की इच्छा होने लगी, नहीं चाहिए, यह स्वर्ग। द्रोपदी को भी मना कर दूंगा। स्वर्ग में न आए। इधर दुर्योधन क्रमशः अनाप-शनाप बकते जा रहे थे। कर्ण की ओर दृष्टि पड़ते ही जीभ काट कर चुप हो गए और अपना कान आप ही मारते हुए बोले मैंने गलत कहा है। महामान्य मात्मा कर्ण का ही द्रोपदी पर सर्वप्रथम अधिकार है। द्रुपद राजा के दरबार में लक्ष्य भेद कर सफल कर्ण अर्जुन से पहले ही द्रोपदी को ले जाते। परंतु उन्हें इस अवसर से वंचित किया गया था। स्वयं वे सूर्य पुत्र हैं। राजमाता कुंती जननी हैं। ऐसे महाक्षत्रिय को सूतपूत कहकर स्वयंवर सभा में अपमानित किया गया था। चूंकि स्वर्ग में मिथ्या का कोई स्थान नहीं है अब इस बात का अवसान हो जाएगा। कर्ण चुपचाप हंस रहे थे। युधिष्ठिर स्तब्ध और निर्वाक थे, मानो होश हवास खो बैठे हों। हम पांच भाइयों जिस द्रोपदी के लिए न जाने क्या क्या कष्ट झेले हैं, उसे दुर्योधन अब अंक-शायिनी बनाना चाहता है। कर्ण ज्येष्ठ भ्राता होकर

छोटे भाई के वधू को कामना कर रहे हैं। नहीं-नहीं मुझे नहीं चाहिए स्वर्ग। अपने को यथासंभव संभालते हुए दो चार भद्रता सुलभ वाक्य कह कर युधिष्ठिर वहां से चले गए। उनके भीतर क्रोध का जन्म होने लगा था। वह कहना चाह रहे थे, द्रोपदी नहीं आएगी, कारण वह अभी भी जीवित है। या कहना यह भी चाह रहे थे कि रथ चालक वाहीलक की स्त्री का नाम भी कृष्णा है। जो अभी मरी नहीं। अतः गज वाली बात की तरह . . .ओ हो स्वर्ग में भी छलना। युधिष्ठिर अधिक दूर तक चल नहीं पाए। एक पेड़ की ओट में खड़े हो गए। लगा, उन्हें पीछे से कोई चुंबक जैसा खींच रहा है। अफसोस यदि द्रोपदी को पूर्व से सचेत कर पाते वे सोचने लगे शायद भीम या अर्जुन पहले आ पहुंचते तो उन लोगों से द्रोपदी को छीन कर ग्रहण करना आसान नहीं होगा और यदि वे बाद में आए तो अर्जुन में अत्यधिक भद्रता है। कहीं यह न कह बैठें कि स्त्री को प्रथम अधिकार है सो रथ में पहले द्रोपदी जाएगी। युधिष्ठिर समझ रहे थे कि स्वर्ग में आकर भी ईर्ष्या तथा युद्ध की इच्छा उन्हें सता रही है। सोच रहे थे, द्रोपदी को लेकर भीम, अर्जुन और कर्ण में लड़ाई हो जाए। ऐसा ही कुछ. . .छिः छिः छिः।

आत्मग्लानि से मन भाराक्रांत था। पेड़ के नीचे बैठे-बैठे युधिष्ठिर ने आंखें बंद किया फिर चित्त शुद्धि करने लगे। वे चित्त वृत्ति को किसी भांति काबू में नहीं कर पा रहे थे। द्रोपदी का मुख मंडल दृष्टि के सामने उद्भाषित हो रहा था। पर्वत पर चलते-चलते जब वह पत्थर पर लुढ़क रही थी तो युधिष्ठिर ने उन्हें उठाने की कोशिश तक नहीं किए। पत्थरों पर उस राजनंदिनी का कोमल देह न जाने कितनी व्यथाओं से कातर हुआ। द्रोपदी ने पूछा था। हम यह किस पाप का फल भोग रहे हैं। युधिष्ठिर ने कहा था, यह जानते हुए कि तुम पांचों की है तुमने अर्जुन को ही अधिक चाहा था। शायद यह कटाक्ष श्लेष से भरा हुआ था। उन्होंने अर्जुन से भी ईर्ष्या किया। अब यह कांटों जैसा चुभ रहा था। हमेशा ही। नहीं . . . नहीं।

अर्जुन मेरा सर्वाधिक प्रिय है, द्रोपदी से भी अधिक। द्रोपदी को मैंने प्यार दिखाना चाहा। पर द्रोपदी बल और वीरता की ओर अधिक झुकी हुई थी। मेरे शास्त्र ज्ञान और

धर्म बोध को द्रोपदी ने उतनी मर्यादा नहीं दी थी युधिष्ठिर को याद आ रहा था, व्यास देव ने पांच भाइयों में सदभावना कायम कराने की विधि बताई थी वह थी कि हर एक भाई एक-एक दिन द्रोपदी को ग्रहण करेंगे। अलग-अलग दिनों में उसे पूर्ण रूप से वे पा सकेंगे। युधिष्ठिर ने जान-बूझकर रविवार का दिन चुना था। वह छुट्टी का दिन होता है। राजकाज नहीं हो तो तभी की एक दिन की बात याद आई कि वे रतिक्रीड़ा में व्यस्त थे अर्जुन कमरे में आ गया था इस हेतु अर्जुन को एक वर्ष का वनवास भोगना पड़ा था। युधिष्ठिर एक ओर तो उसे बार बार वन जाने को मना कर रहे थे और दूसरी ओर मन ही मन खुश हो रहे थे कि वे द्रोपदी को एक वर्ष और अधिक भोग लेंगे।

अचानक ही बहुत परिचित एक आवाज से युधिष्ठिर चौंक उठे। मुड़कर देखा तो वह द्रोपदी की ही थी। हाथ हिला-हिलाकर युधिष्ठिर इशारे से से अपनी ओर बुलाने लगे परंतु द्रोपदी ने तो उन्हें देखा तक नहीं। कितनी अधिक सुंदर लग रही थी द्रोपदी तथा उसमें वयोवृद्धि का कोई निशान तक नहीं दीखता था त्वचा कितनी मुलायम थी कमर से नीचे तक फैले केश, गोलाकार वर्तुल स्तन, सिंहनी जैसी पतला कटितट, भारी नितंब। रोशनी करती हुई आंखें, होठ पके बिंब या अंगूर फल की तरह। दुर्योधन और कर्ण को उनकी ओर बढ़ते देखा है वरवर्णिनी तुम्हारे आगमन से सुरलोक धन्य हुआ है। तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हैं। तुम कितनी मोहमयी हो जैसा कि इस दो जीवन में मैंने और कहीं नहीं देखा।

द्रोपदी मधुमय हास्य से बोली— हे वीर! श्रेष्ठ सुधा वर्षण के समान आपकी वाणी है। आप जैसे तेज, दीप्त पुरुष के सम्मुख खड़े होते मात्र शरीर रोमांचित हो रहा है। दुर्योधन— हे याज्ञसेनी! मुझे नहीं देख पा रही हो, मैं भी तो व्याकुल होकर खड़ा हूं तुम्हारे लिए ही। द्रोपदी, हे सखा! वैसा हंसमुख वदन देखे बिना कौन नारी रह सकती है। युधिष्ठिर सह नहीं पा रहे थे द्रोपदी का यों लाड़ दुलार से बोलना क्यों वह इन जन्म शत्रुओं से ऐसे. . .। घृणा भरे वह चली क्यों नहीं जाती उन्हें अवहेलना करके।

अचानक नभचारी की बातें स्मृति पर छाने लगीं। दुर्योधन कर्ण द्रोपदी ये तीनों मृत्यु

पश्चात यहां आए हैं। अतः उनके शरीर से क्रोध, हिंसा और द्वेष मिट गया है। चिर आनंद और संभोग सुख में वे निमज्जित रहेंगे। दुर्योधन तुम्हें देख हम अधीर हैं। याद है राजसभा में तुमने जंघा पर बैठाना चाहा था मुझे, पर असफल हुए थे हां तभी से वह इच्छा मुझे अधीर बना रही है। तुम आओ एक बार मेरे जंघा पर. . .। द्रोपदी पर अभी नहीं, मैं तो इंतजार करूंगा। पहले कर्ण की बारी है। पुरुष श्रेष्ठ भी तुम्हारे प्रार्थी हैं। प्रणय की लिप्सा उनकी भी पुरानी है यह कौन नहीं जानता। जितने दिनों तक संभव हो सुख संभोग करो। स्वर्ग में कोई नारी जूटी नहीं होती। अर्थात् यहां के अमृत और नारी समान हैं। 'हे कर्ण मुझे देखें। आपके दर्शन मात्र से हे सूर्यपुत्र, हमारे रोयें खड़े हो रहे हैं। मैंने दीर्घ काल से आपको कामना किया है आप मुझे धन्य करें।'

अनुवादक : जलज भादुड़ी

परिजात फलै

कलकत्ता-700001

. . . पृष्ठ 13 का शेष

नेताओं को जो बड़ी-बड़ी धनराशियां देते हैं, व्यापार की सुविधाएं पाने और कानून की पकड़ से बचे रहने के लिए देते हैं।

जिस तरह नीतिकथाओं में शासक की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करने की परंपरा हमारे यहां रही है, उनकी शैली का अनुकरण करते हुए परसाई ने व्यंग्यात्मक ढंग से भविष्य के शासक के गुणों के बजाय वर्तमान शासकों की दुष्प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है। कहानी जनता के नाम पर शासन करने वाले भारत के शासक वर्ग के चरित्र को उजागर करती है और पूंजीपतियों तथा अपराधियों से उसके गठजोड़ को स्पष्ट करती है, जिसके लिए आम मेहनतकश जनता केवल धन उगाहने का एक स्रोत है।

ऊपर से हल्की-फुल्की लोककथा-सी लगने वाली यह कहानी वास्तव में भारतीय जनतंत्र, जनता और नेताओं की वास्तविकता को उजागर करने वाली यथार्थवादी कहानी है। सत्ता पर अपना कब्जा बनाये रखने के लिए शासकवर्ग जन-सेवक का मुखौटा पहनकर जनता को धोखे में रखता है। यही उसकी वास्तविक योग्यता है!

107, साक्षरा अपार्टमेंट्स,

ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

कर्नल मुहम्मदखां लेफ्टिनी का इश्क़

हमें हिटलर से हमेशा शिकायत रहेगी कि उसने दूसरे महायुद्ध शुरू करने से पहले हम से मशवरा न किया। यह नहीं कि हम उसे इस शुभ कार्य से रोकने की कोशिश करते, हम फ़क़त ऐलाने-जंग में दो महीने का इल्तवा चाहते थे, ताकि अपनी तालीम पूरी कर लेते, लेकिन हम बमुश्किल गर्मियों की छुट्टियां गुजार कर कालेज पहुंचे ही थे कि जनाब ने हमसे बाला-बाला पोलैंड पर चढ़ाई कर दी जिसका बाद में हमारे ज़ाती प्रोग्राम पर ख़ास गहरा असर पड़ा।

जनवरी, 1940 में हरचंद कि पोलैंड और हिटलर के दूसरे हमसाथे जर्मन बमबारों और टैंकों के दरमियान ऐसी शांत ज़िंदगी बसर नहीं कर रहे थे फिर भी बाकी दुनिया खुदा के फ़ज़ल से ख़ैरियत से थी और हमारे अपने मुल्क हिंदुस्तान में तो अंग्रेज़ की बरकत से ऐसा अमन बरपा था कि शेर, बकरी, हिंदुस्तानियों सहित एक घाट पानी पी रहे थे। इसलिये भाईचारे के उस खुशगवार माहौल में किसी को गुमान तक न था कि ऐन वक्त मुल्क के एक कोने में अहम जंगी घटना की शुरुआत हो रही है, यानी लाहौर में एक नौजवान कालेज छोड़ कर जंग में कूद पड़ने पर तुल गया है... ये नौजवान मैं ही था।

लेकिन भर्ती होने से न तो हिटलर को दुःख पहुंचाना था, न अंग्रेज़ों का दिल बहलाना। हमारे संबंध दोनों से दोस्ताना थे। हमें फ़क़त लेफ्टिनेंट बनने का शौक था और कुदरत और हिटलर ने मिल कर इस शौक को पूरा करने का सामान पैदा कर दिया था, इसलिए हमने फौज में कमीशन के लिये दरख्वास्त दे दी।

उन दिनों अभी वो मुसीबत नाज़िल नहीं हुई जिसे आजकल सलेक्शन बोर्ड कहते हैं। इंटरव्यू तो ख़ैर उन दिनों भी होते थे, बल्कि एक छोड़ तीन-तीन, लेकिन निहायत शरीफ़ाना किस्म के। एक बुजुर्ग-सा जरनैल और कुछ नीम बुजुर्ग ब्रिगेडियर और

कर्नल बैठे होते थे। सामने कुर्सी पर उम्मीदवार को बिठा दिया जाता था और फिर उससे निहायत आसान से सवाल पूछे जाते थे:

आपका नाम क्या है? तालीम कहाँ तक है? फौज में कोई रिश्तेदार है? वगैरह... और ज़हिर है कि इन सवालों का जवाब देते हुए हरचंद कि कुछ खानदानी राज़ फ़ाश करना पड़ते थे, लेकिन दिमाग़ पर ऐसा नागवार बोझ न पड़ता था कि उठाये न उठे। बल्कि सच तो यह है कि एक हल्का-फुल्का सा इंटरव्यू होता था। उन दिनों न तो उम्मीदवारों की ज़हानत की परख होती थी, न उनके अवचेतन की तलाशी ली जाती थी। ये बुराइयां चंद साल बाद की पैदावार हैं।

लिहाज़ा हम दो इंटरव्यू जेहलम और पिंडी में हुए और हम कामयाब रहे। आखिरी इंटरव्यू के लिये हुक्म मिला कि फलां तारीख़ शिमला हाज़िर हो जाओ। यह सुन कर हमारी खुशी की इतिहा न थी। हमारा ख़याल था कि अगर आखिरी इंटरव्यू में कामयाबी नसीब हो जाये, तो इंसान फ़ोर लेफ्टीन बन जाता है और बाक़ाइदा लेफ्टिनी करने लगता है। इस बात का इल्म न था कि आखिरी इंटरव्यू और लेफ्टिनी के दरमियान ट्रेनिंग का एक ख़ासा ख़तरनाक अंतराल भी होता है।

इसलिये हम एक नीम लेफ्टिनी के आलम में शिमला रवाना हुए और जब इंटरव्यू हो चुका, तो हमें महसूस हुआ कि अब किसी लम्हे पूरे लेफ्टिन हुए, क्योंकि इंटरव्यू तसल्लीबख़्श किस्म का हुआ था। हम में कोई ऐसी बुनियादी ख़ामी भी न थी। तालीम की शर्त मैट्रिक थी और हमने तो मैट्रिक के अलावा काफ़ी फ़ालतू तालीम भी हासिल कर रखी थी। हमारे ख़ानदान की फौजी ख़िदमतों की फ़ेहरिस्त बेशक ऐसी लंबी न थी, लेकिन हमने वंशावली को थोड़ा-सा खींचतान कर इस क़दर सूबेदार चर्चों और कप्तान चचाज़ादों को समेट लिया

था कि जरनैल साहिब को मुत्मईन करने के बाद कुछ बच भी गये थे। बहरहाल यह राज़ हमारे और खुदा के दरमियान ही था। पुलिस की तरफ़ से सफ़ाई की भी शर्त थी, तो हम ने यूं भी कभी शांति-भंग नहीं की थी, लेकिन चूँकि पुलिस वाले भी आख़िर इंसान होते हैं, लिहाज़ा हमने एहतियातन उनकी इंसानियत का तज़ाज़ा भी पूरा कर दिया था।

शिमले से घर पहुंचे तो लेफ्टिनी के हुक्म का बेचैनी से इंतज़ार करने लगे। उधर कुछ उतावले बुजुर्गों ने हमारी लेफ्टिनी की खुशी में पेशगी दावतें देना शुरू कर दीं। जिन्हें हम वाजिबी बरख़ुरदारी, मगर अफ़सरी गरिमा के साथ क़बूल करते रहे। आख़िर एक दिन डाकिया खुला तार लेकर आया और दूर ही से बोला, 'लेफ्टिन साहब, लेफ्टिनी मुबारक हो।'

लेकिन तार पढ़ा तो फ़क़त इतना लिखा था, 'तुम्हें ओटीएस महू में ट्रेनिंग के लिये चुन लिया गया है। 8 अगस्त, 1940 को हाज़िर हो जाओ।'

यह पढ़कर कुछ मायूसी तो हुई, लेकिन फिर सोचा कि आख़िर लेफ्टिनी है, यह थोड़ा ही है कि यूं उठा कर बांट दी जाए। इसके कुछ अदब-आदाब सिखाने होंगे, कुछ खुफ़िया गुर बताने होंगे कि लेफ्टिनी चलायी कैसे जाती है। इसलिये खुशी-खुशी दोस्तों से रुख़्सत हुए। हर तरफ़ से 'लेफ्टिन साहब' कह कर पुकारा जा रहा था जो हमें बेहद ग़वारा महसूस होने लगा, बल्कि सच तो यह है कि हमारे उठने-बैठने, बोलने-चालने से भी लेफ्टिनी टपकने लगी।

रेल के सफ़र के लिए फ़र्स्ट क्लास का टिकट मिला। यह भी हमारी यात्रा की शान थी। टिकट देखने वाले डिब्बे में दाख़िल हुए, तो 'सर' कह कर संबोधित करते। खुदा जाने, उन्हें कैसे महसूस हो जाता कि यह आम आदमी नहीं, लेफ्टिन है। बहरहाल, हम उनसे वही सुलूक करते जो एक अफ़सर को दरमियाने दर्जे के सरकारी

मुलाजिम से करना चाहिये। हमसफ़रों में अंग्रेज़ भी थे। ये लोग अगर हम से बोलना चाहते तो पहले कहते, 'मुआफ़ कीजियेगा'। और फिर अपना मुद्दआ बयान करते। हमें न सिर्फ़ अपनी लेफ़्टिनी का यक़ीन हो गया, बल्कि उसकी बुलंदी का एहसास होने लगा। चुनांचे दिल्ली से आगे जब गाड़ी में हम जैसे लेफ़्टिनों की तादाद काफ़ी हो गयी, तो बातचीत का विषय ज्यादातर यही रहा कि लेफ़्टिनी और कप्तानी में आख़िर क्या फ़र्क़ है? और सहमति इस बात पर हुई कि मामूली फ़र्क़ है। इसलिये रतलाम और महु के दरमियान हमारा मिज़ाज तख़्ते-ताउस से कुछ उधर ही था, बल्कि कई एक ते दबी जुबान से यह भी पूछ रहे थे कि आख़िर उन इतिहासकारों ने नेपोलियन को क्यों सर चढ़ा रखा है।

आख़िर महु का स्टेशन आ गया। उम्मीद थी कि हमारे स्वागत के लिए फ़ौज का दस्ता आयेगा, बैड होगा, मोटरें होंगी जिनके ड्राइवर हमारे लिये दरवाज़ा खोलेंगे और बाअदम, बामुलाहज़ा हमें अपने बंगलों तक पहुंचा देंगे, लेकिन देखा तो यहां का बंदोबस्त किसी क़दर मुख़्तालिफ़ नज़र आया। स्वागत के लिए आदमी तो थे, लेकिन उनमें आदमियत कम थी। गाड़ी रुकी तो हमारे डिब्बे में एक गोरा दाख़िल हुआ, जिसके बाजू पर तीन सफ़ेद धज्जियां लगी थीं। आते ही बोला, 'गर इस डिब्बे में कोई केडिट है, तो अभी मत बाहर निकलो।'

हम बैठ तो गये, लेकिन इस गोरे की ज़बान बेहद खुरदरी लगी। इसके अलावा 'केडिट' का शब्द सुनकर कुछ चिंता-हुई कि हम से कोई-कोई धोखा तो नहीं हो रहा। लेफ़्टिन तो लेफ़्टिन हुआ, यह केडिट क्या बला है? इसलिये हमें ज़रा पक्का-सा संदेह होने लगा कि इन अंग्रेज़ों ने लेफ़्टिनी से मिलाप की कुछ खुफ़िया शर्तें भी ठहरा रखी हैं जिनसे हमें पहले आगाह नहीं किया गया।

जब स्टेशन दूसरे मुसाफ़िरों से ख़ाली हो गया तो गोरा फिर आया और हम सब को गाड़ी से बाहर निकलने का गुस्ताख़ाना-सा हुक्म दिया। बाहर निकले तो दूसरे डिब्बों से भी तीस-चालीस हमारे जैसे व्यक्ति निकलते दिखायी दिये। स्टेशन पर तीन चार और गोरे भी मौजूद थे। उनमें से एक जो बज़ाहिर

सीनियर था, अचानक चिल्लाया, 'सब केडिट मेरे सामने कतार में खड़े हो जाए।'

हमने किसी क़दर हैरानी से एक दूसरे को देखा और कुछ बेदिली से क़दर भी बना ली। गोरा फिर चीखा, 'दाएं से एक दो तीन बोलो।'

हमने हुक्म की तामील की, लेकिन महसूस हुआ कि यह सुलूक हमारी शान के शायान नहीं, आख़िर हम रंगरूट तो थे नहीं, जो क़दरें बनाते फिरते या गिनती शुरू कर देते। बहरहाल हमें तीन टोलियों में बांट दिया गया और फिर वही गोरा बोला, 'बाहर तीन ट्रक खड़े हैं, हर टोली एक एक ट्रक में सवार हो जाएं।'

हमें यक़ीन हो गया कि ज़रूर कोई ग़लतफ़हमी हुई है, कुछ भी हो, हमें ट्रकों में ले जाना शायद ग़लती, बल्कि बेअदबी है। मोटर कारें होना चाहिये थीं, मगर सोचा इन मामूली टॉमियों से उलझना हमें शोभा नहीं देता, इसलिये हमने कुलियों को आवाज़ दी कि हमारा सामान ट्रकों में ही रख दें। हमारा यह कहना था कि गोरा गरज कर बोला, 'क्या कहा? कुली? तुम फ़ौजी स्कूल में आये हो, अस्पताल में नहीं, अपना सामान खुद उठाओ, ट्रकों में लादो और ऊपर बैठ जाओ या खड़े रहो-समझे?'

समझ तो आ गयी और हमारी खुश फ़हमियों पर कुछ ओस भी पड़ी। लेकिन हम सब ने सामर्थ्यानुसार जलाल में आकर उस बेअदब टॉमी को गहरे और सामूहिक ग़ज़ब से देखा और खड़े-खड़े फ़ौजी ज़िंदगी का पहला फैसला कर डाला कि ज्यों ही लेफ़्टिन हो गये, इस गुस्ताख़ गोरे का कोर्ट मार्शल कर देंगे। इस दिलोराना फैसले पर हर तरफ़ से मरहबा की सदा उठी। उस वक़्त हम कोर्ट मॉर्शल को मॉर्शल-लॉ का क़रीबी रिश्तेदार समझते थे। और गोरे के भविष्य को दिल ही दिल में तबाह करके ट्रकों पर सवार हो गये।

मंज़िले-मक्सूद की झलक उम्मीदों के ख़िलाफ़ थी। हमारी रिहाइश के आकार-प्रकार बंगले की निस्वत जेल से ज़्यादा मिलते-जुलते थे। एक संगीन, बल्कि संगदिल सी बैरक थी, तंग व अंधेरी और लंबी जिसके अंदर दीवारों के साथ लोहे की चारपाइयां पड़ी थीं और चारपाइयों पर हमारी नामों की तख़्तियां लगी थीं। उन्हें देखकर

हमें झटका-सा लगा, गोरा जैसे हमारे ख़ौफ़ को भांप गया और कड़क कर बोला, 'ये तख़्तियां गले में लटकाने के लिये नहीं, महज़ तुम्हारी जगह के लिये हैं। अब अपनी-अपनी चारपाइयां ढूंढ़ लो और अपना सामान वहां उठा कर ले जाओ।'

साथ ही फ़रमान हुआ कि सामान उठाने और चलने-फिरने में चुस्ती दिखाओ और शोर मत करो। हमें यह आख़िरी हुक्म ख़ास तौर पर नागवार गुज़रा। हमने पुराने फ़ौजियों से सुन रखा था कि ये लेफ़्टिन लोग हर वक़्त गिटपिट करते रहते हैं, उन्हें ज़बानबंदी का हुक्म देना छोटे मुंह की बहुत बड़ी बदतमीज़ी है। एक हज़रत बोले, 'इन जाहिल गोरों को क्या मालूम कि एक लेफ़्टिन करने पर आये तो क्या कुछ कर सकता है, लेकिन कुछ सोचने के बाद हमें यही मुनासिब मालूम हुआ कि कोर्ट मार्शल तक गरिमामय चुप्पी धारना ही ठीक है।'

शाम हुई तो खाने के लिए मैस में गये। यह पहली जगह थी जहां से लेफ़्टिनी के आसार नुमायां थे। हम सब एक अफ़सरी ठाठ से ड्राइंग रूम में सोफ़ो पर बैठ गये। बाअदब और बावर्दी बैरों ने हमारी ख़्वाहिश के मुताबिक पेय पेश किये। इस खुशगवार माहौल में हमने स्टेशन और बैरक के उन नाखुशगवार घटनाओं को भुला दिया जो इन घटिया खानदानों के गोरों से हुई थीं और एक सुरूर के आलम में बाहम गिटपिट, गिटपिट करने लगे। इतने में दो खुशालिबास अंग्रेज़ अंदर आये। वो भी फ़ौजी वर्दियां पहने हुए थे। लेकिन उनके बाजूओं पर तीन धज्जियां न थीं, बल्कि कंधों पर पीतल के तीन, तीन चमकते सितारे थे। ये अफ़सर थे और वो सार्जेंट। इनके रख-रखाव, बातचीत और तौर-तरीकों में शाइस्तगी और वक़ार था। उन्हें देखा तो फ़ख़ महसूस हुआ कि उसूलन हम और ये अफ़सर एक ही लड़ी के मोती थे। आज नहीं तो कल हमारे कंधों पर भी वही जगमग करते सितारे उभरने वाले थे।

थोड़ी देर के बाद साथ के कमरे में खाने के लिए गये। अंग्रेज़ी खाने और देशी खाने के अंदाज़ में तक़रीबन वही फ़र्क़ है जो अंग्रेज़ी और उर्दू बोलने में है। जिस तरह एक नौसीखिये की ज़बान से अंग्रेज़ी शब्द या मुहावरे फिसल-फिसल जाते हैं, उसी

तरह हमारा अंग्रेजी 'मटर गोश्त' भी हमारी अनाड़ी छुरी-कांटों की पकड़ में न आता था।

इधर हाथों से खाना खिलाफ़े-शान था, लेकिन भूखा रहना भी मुम्किन न था, इसलिये जिस तरह बोलते-बोलते अंग्रेजी जवाब दे जाए, तो उर्दू पर हाथ या ज़बान साफ़ कर ली जाती है, उसी तरह जहाँ अंग्रेजी छुरी-कांटे से काम न चलता, हम आंख बचा कर उंगलियों से ही बोटी उचक लेते। गोया अंग्रेजी खाना उर्दू में खा लेते। कुछ हज़रत अलबत्ता ऐसे भी थे जो लेफ़्टिनी के सम्मान में औज़ारों के बग़ैर कोई चीज़ हलक़ से उतारते ही न थे। उनमें से कई एक को देखा कि छुरी-कांटा लिये प्लेट में मटरों का पीछा कर रहे हैं और मटर है कि इधर डूबे, उधर निकले, उधर डूबे इधर निकले। किस्सा मुख़्तसर, इसके पहले कि इन मासूम मटरों को कोई नुक़सान पहुंचता, बैरे प्लेटें उठा कर चल दिये और लेफ़्टिन साहिबान अपना-सा मुंह और छुरी-कांटा ले कर रह गये। कई बार ये भी मालूम न होता था कि बैरा जो कुछ सामने रख गया है, उसके साथ सुलूक क्या करना है? इसलिये कानी आंख से उन अंग्रेज़ों को देखते और पीछे उन इमामों के चमचे और कांटे उठा कर सज्दों में जाते।

खाना ख़त्म हुआ तो सेंटी रूम में आये और कॉफी का दौर चला, लेकिन थोड़ी देर बाद दोनों अंग्रेज़ कप्तान उठ खड़े हुए और यह खुशगवार मजलिस बरखास्त हो गयी। यूँ महसूस हुआ जैसे यार की एक झलक ही देख पाए। वहाँ से उठ कर बैरक में वापस आए, तो वही बदज़बान गोरा पहले से मौजूद था, सबको मुख़ातिब करके कहने लगा, 'कुल सुबह सात सौ बजे पी.टी. के मैदान में हाज़िर होना है। लिबास, बनियान, नीकर और रबड़ के जूते।' और इतना कहकर अकड़ता हुआ चल दिया। गोया यह गोरा बाज़ नहीं आ रहा था। वही हरकतें करता था जो लेफ़्टिनी के खिलाफ़ थीं।

किसी ने पूछा, 'अरे यार, यह सात सौ बजे किस बला का नाम है?'

एक साहब बोले, 'बेमानी बात है, गोरा अंग्रेजी गुलत बोलता है।'

एक फ़ौजी क्रेडिट ने आहिस्ता से

कह दिया, 'इसका मतलब है सुबह सात बजे।'

दिन भर के थके थे। सुबह तैयार होते-होते हम से कई एक पी.टी. के लिये सात बजे से एक दो मिनट बाद पहुंचे। कॉलेज में हम घंटों देर से पहुंचा करते थे और अगर प्रोफ़ेसर साहब के माथे पर एकाध हल्की-सी शिकन आ जाती, तो लम्हे भर में बग़ैर इस्तरी के हमवार भी हो जाती थी, लेकिन इस गोरे ने हमें ज़रा देर से आते देखा, तो कुछ इस अंदाज़ से चिल्लाया, गोया भूचाल आ गया। रहीं उसकी पेशानी की शिकन, तो उनको समेटने के लिये इस्तरी के बजाय रोड रॉलर दरकार था। मालूम हुआ कि गोरा महज़ फट ही नहीं गया, कुछ बोल भी रहा है। लेकिन उसकी अंग्रेजी उस अंग्रेजी से बहुत मुख़्तलिफ़ थी जो हमने किताबों में पढ़ी थी। गोरे के शब्द तो ख़ैर हमारी समझ में न आए, लेकिन उनकी तासीर हमारे दिलों में आनन-फ़ानन घुस गयी, क्योंकि उसके हर शब्द के साथ हमारी रही-सही लेफ़्टिनी उत्तरोत्तर घुलती जा रही थी।

हम ख़ामोशी से क़तारों में खड़े हो गये और पी.टी. शुरू हुई। पहले तो हमें मैदान के इर्द-गिर्द दौड़ाया गया यानी डबल कराया गया। (डबल के यह मानी हमें पहली दफ़ा मालूम हुए) इसके बाद ऐसे कोपों पर झुकने का हुक्म मिला जो कुदरत की मंशा के सरासर खिलाफ़ था। कोई आध-पौन घंटे की पी.टी. के बाद हम कुदरत को जीतने में तो किसी क़दर कामयाब हो गये, लेकिन हमारी अपनी पोज़ीशन में फ़र्क़ आ गया।

आख़िर पी.टी. ख़त्म हुई और हुक्म दिया कि नाश्ते के बाद फिर यहीं हाज़िर होना है और वक़्त नौ सौ तीन बजे का मिला। फ़ौजी क्रेडिट से मानी पूछे तो मालूम हुआ कि सुबह के साढ़े नौ बजे आशय है। साथ ही यह भी खुला कि यह गोरा कंपनी का सार्जेंट मेजर है जिसकी नाफ़रमानी एक क्रेडिट के लिये सख़्त नुक़सानदेह साबित हो सकती है।

नाश्ते के बाद जब मैदान में पहुंचे, तो सार्जेंट मेजर को ग़ैर हाज़िर पाया। घड़ी देखी तो मालूम हुआ कि वो ग़ैर हाज़िर नहीं, हम ही वक़्त से पहले पहुंच गये हैं। गोया फ़ौजी

ज़ाब्ले की पहली ख़ुराक ही इस क़दर असरदार निकली। सही वक़्त पर सार्जेंट मेजर प्रकट हुआ, तो अपनी फ़तह पर ज़रा मुस्कराया। लेकिन फ़ौरन चेहरा सख़्त बना लिया और हमें हुक्म दिया कि क्वार्टर मास्टर स्टोर में जाकर अपने-अपने साइज़ के बूट ले आओ।

बूट देखे तो महसूस हुआ कि हमें पहनने को वो चीज़ दी जा रही है, जो गैंडों के पांव के लिये ज़्यादा मुनासिब है और जब पहन कर दो चार क़दम चलने की कोशिश की, तो यूँ लगा जैसे नांगा पर्वत घसीट रहे हैं। फ़ौजी क्रेडिट ने आहिस्ता से कह दिया कि इन बूटों के साथ तो डबल भी करना पड़ेगा। यह सुना तो होश उड़ गये।

दो तीन दिन ख़ाकी कपड़ों की तैयारी में लग गये और ट्रेनिंग के सिलसिले में फ़क़त पी.टी. हुई, लेकिन जब ख़ाकी यूनिफ़ार्म तैयार हो गयी और हमने बूट पट्टी पहनना सीख लिया, तो बाक़ाइदा ड्रिल शुरू हुई।

ड्रिल की शुरुआत से पहले कप्तान साब ने हमारी टर्न आउट यानी यूनिफ़ार्म वग़ैरह का मुआयना किया और मुआयना किया गया, गोया हमें खुर्दबीन के नीचे रख दिया। वो ऐब भी ढूँढ़ निकाले जो दरमियानी क़ाबिलियत का फ़रिश्ता भी न देख पाता या देख भी लेता, तो नज़रअंदाज़ कर देता। हमने ड्रिल में शिरकत से पहले फ़ौजी क्रेडिट को बूट, पट्टी, नंबर, बटन, पेटी, फ़्लेश वग़ैरह दिखा ली थी, लेकिन कंपनी कमांडर साहब ने हमें देखते ही जैसे पहचान लिया और फ़रमाया, 'क्रेडिट नंबर 14 पर एक सफ़ेद ज़र्ज़ इनकरेक्टली ड्रेस्ड. . . सज़ा तीन एक्स्ट्रा ड्रिल।'

सार्जेंट मेजर ने जो कॉपी, पेंसिल लिये कंपनी कमांडर के निर्देश लिख रहा था, फ़ौरन हमारे ख़ाने में हमारी सज़ा का इंड्राज किया। कमोबेश ऐसा ही हथ्र हर क्रेडिट का हुआ। यहां तक कि बेचारे फ़ौजी क्रेडिट भी न बच सके जो बज़ाहिर पैदा ही यूनिफ़ार्म में हुए थे।

इसके बाद ड्रिल शुरू हुई और ख़ूब तेज़ी से हुक्म मिलने लगे।

'सीधे देखो, छाती बाहर, ठोड़ी ऊपर, बाजू हिलाओ, हॉल्ट, हिलो मत, मक्खी मत उड़ाओ, हंसो मत, वग़ैरह वग़ैरह।

इन सब में 'हिलो मत' के हुक्म पर

अमल करना बड़ा अजीब था। सीधे बुत बने खड़े हैं कि कान पर खुजली महसूस होती है। अब हाथ को जुंभिश देना जुर्म है, कंधा कान तक नहीं पहुँच सकता। कान का खुद का हिलना कुदरतन नहीं होता और वहाँ तक हाथ ले जाना सार्जेंट को मंजूर नहीं। ऐन उस वक्त एक मक्खी नाक पर अवतरित होती है। मक्खी को फना करने की बेपनाह ख्वाहिश दिल में पैदा होती है, लेकिन सार्जेंट से आंख बचाना यमदूत से आंख बचाना है। मक्खी पर कभी दस्तदराजी का खयाल आता है, तो सार्जेंट गोया हाथ हिलाने के खयाल ही को देख लेता है और अपनी गंवारू अंग्रेजी में चिल्ला उठता है— ‘डोंट किल नो फ्लाई. . .’ यानी मक्खी मत मारो, हाथ वहीं का वहीं सूख जाता है और मक्खी निहायत इत्मीनान से नाक के उतार-चढ़ाव का मुआयना करती है। ऐसे हंगामी हालात में बेहरकत खड़े रहना सही मानों में जुल्म है। उस वक्त जिंदगी की एकमात्र ख्वाहिश सिर्फ इतनी होती कि कब ड्रिल खत्म हो और जी भरकर नाक और कान खुजाएं और आखिरकार जब ड्रिल खत्म होती है और हम बिना डर कानों को छू सकते और मक्खियों को उड़ा सकते तो हमें महसूस होता कि कान खुजाना, मक्खी उड़ाना भी किस कदर दुर्लभ अय्याशी है, बल्कि इसी खुशी में वो छाले भी भूल जाते जो उन सख्त बूटों के अंतर ही बनते और फूटते थे।

लेकिन इस ड्रिल का एक पहलू जरूर था जिसने उसकी कठोरता को गवारा कर दिया था और वो थीं सार्जेंटों की निरंतर फुलियां, जो वो बेबस कैंडिडों की हरकतों पर कसते थे। सार्जेंटों ने नस्ल-दर-नस्ल इस विषय पर एक अनोखा लिटरेचर छोड़ा है, जो अपने अनूठेपन की वजह से प्रकाशित तो शायद कभी होगा, लेकिन उस उच्च साहित्य के नष्ट होने भी ऐसा खतरा नहीं, क्योंकि यह लिटरेचर बेशुमार सिपाहियों के मजबूत सीनों में सुरक्षित है। एक दिन ड्रिल करते हुए मेरे साथ के कैंडिट ने फुर्ती से दो, तीन गुलतियां कर दीं। तीसरी गुलती पर सार्जेंट का रंग पहले लाल, फिर पीला और अंत में नीला हुआ। एक पल के लिये जहां खड़ा था, वहीं रुक गया। फिर बाकी दुनिया से नज़रअंदाज़ करते हुए दोषी कैंडिट की तरफ बढ़ा। जब सार्जेंट और कैंडिट के बीच का

फासला सिर्फ था यानी दोनों की नाकें छू रही थीं, तो सार्जेंट शब्दों को पीस-पीस कर शिकार से यूँ मुखातिब हुआ: ‘मैं जब भी तुम्हें देखता हूँ, परिवार नियोजन सरासर जायज़ मालूम होने लगता है।’

हंसी के बेपनाह रेलों से हमारे मुंह खुलने ही वाले थे कि सार्जेंट के मुंह से ‘हंसो मत’ का एटमी धमाका बरामद हुआ। हमने दांत तो भींच लिये, लेकिन हमारी अंदरूनी कैफियत वो टायर ही समझ सकता था जिसके फटने से थोड़ी-सी और हवा की जरूरत हो।

बदकिस्मती से हम में से एक कैंडिट ज़ब्त न कर सका और बेइख़तियार खिलखिलाने लगा। यह सार्जेंट के लिये दूसरा चैलेंज था। अब के ज़रा ऊंची आवाज़ से मुजरिम से मुखातिब हुआ और उसी पुराने मजमून को नये जामे में पेश किया, ‘ज़रा आप ही बताएं कि आपने पैदाइश की ज़हमत क्यों गवारा की?’

कैंडिट ज़रा खिसियाया होकर नीचे देखने लगा, तो सार्जेंट गरजा, ‘ऊपर देखो, ज़मीन का मुआयना सफ़ाई वाला सुबह-सवेरे कर चुका है।’

कैंडिट सार्जेंट की डपट से लड़खड़ाया और बेचैनी में आस्मान की तरफ देखने लगा। इस पर सार्जेंट दूसरे कैंडिटों को मुखातिब करके कहने लगा, ‘ज़रा देखना, अब यह हज़रत सीधे खुदा से आर्डर लेना चाहते हैं।’

फिर कैंडिट की तरफ मुड़कर चिल्लाया, ‘मेरी नाक की सीध में देखो, खुदा बहुत बुलंद लेवल पर है।’

परेड के बाद उस कैंडिट का वज़न खासा हल्का हो चुका था।

ड्रिल के बाद तमाम पीरियड पढ़ाई या पिस्तौल और मशीनगन वगैरह की सिखलायी के थे। हालांकि लेक्चरारों के कमरों तक जाना भी डबल के अधीन था, फिर कमरों के अंदर हाथ-पैर की हरकतों पर पाबंदी न थी। मसलन मक्खी या मच्छर से सुरक्षा हमारे बस की बात थी। उनकी नाजायज़ परवाज़ पर हम हस्बे-जरूरत हाथ-पांव हिला सकते थे और फ़क़त इतनी-सी आज़ादी से जिंदगी में लुत्फ़ आ जाता था।

गरज़ यह कि लेफ़्टिनी का वो हसीन

व जमील महल जिसे हमने कल्पनाओं की कूची से बनाया और सजाया था, पहले रोज ही ध्वस्त हो गया और यह अभी शुरुआत थी। जो कुछ आगे हुआ, उसकी रूदाद लंबी भी है और तकलीफ़देह भी। मुख़्तसर यह कि पहली ड्रिल में पांव सूज गये थे। कुछ दिनों में राइफल मिली तो स्लोप करते करते हाथ भी लहलुहान हो गये। राइफल पर संगीन का इज़ाफ़ा हुआ और बनावटी दुश्मन को मारने का अभ्यास कराया जाने लगा, तो तक़रीबन खुदकुशी होकर रह गयी। मीलों तक बे आबो-दाना, मगर वज़नी थैले के साथ मार्च किया, यहां तक कि उन ज़ालिम बूटों के दिल भी मोम हो गये, लेकिन किसी सार्जेंट को रहम न आया। लगातार खुदाई से महू का सीना फट गया, लेकिन कंपनी कमांडर का दिल न पिघला। कमांडर साहब ने हमारे खोदे हुए मोर्चों का हर तरह से जायज़ा लिया, लेकिन हमारे ज़ख़्मे-जिगर की ख़बर न ली। नीमच रोड के चप्पे-चप्पे पर हमने थके हुए कदमों के निशान छोड़े। हेमा पहाड़ी के हर कंकड़-पत्थर पर हमने छाले फोड़े। हमारी हर सुबह लकड़ी के घोड़े पर से कूदने और रस्से पर चढ़ने में नष्ट हुई और हमारी हर शाम बेमिर्च और बेस्वाद अंग्रेजी डिनर की वजह से हाराम हो गयी। एक्स्ट्रा ड्रिल से बचने के लिये अस्पताल में दाख़िल होने की कई बार कोशिश की, लेकिन नाकाम रहे। देशी खाने के लिये बावर्ची की हज़ार मिन्नतें कीं, लेकिन बदबख़्त सार्जेंट के डर से राज़ी न हुआ। जी चाहता कि अगर सार्जेंट को नहीं, तो कम से कम बावर्ची ही को क़त्ल कर डालें, लेकिन इसकी हिम्मत भी होती। तो फुर्सत कहाँ थी? और आखिर एक रोज़ फुर्सत मिली, तो मालूम हुआ कि लेफ़्टिनी हो गए हैं।

लेकिन यह लेफ़्टिनी हम पर दूसरे जुमे ही नाज़िल नहीं हो गयी थी, बल्कि इसकी पैदाइश के लिये हमें बेचारी नर्गिस की तरह पूरे नौ महीने अपनी बेनूरी पर रोना पड़ा। इसलिये हम जाती तज़र्बे की बिना पर कह सकते हैं कि:

‘बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।’

लिप्यांतर-हसन जमाल
संपादक ‘शेष’
लोहारपुर, जोधपुर-342002

लेखक के बही खाते का एक 'अव्यक्तिगत' अंश

राजकमल चौधरी

सुनो मूर्खों

अक्सर लोगों को मुझसे शिकायत है कि मैं उनके लिए नहीं लिखता हूँ। सिर्फ मुझसे ही नहीं, मेरी पीढ़ी के अधिकांश लेखकों से लोगों की यही शिकायत है। बात, शायद यहां तक बढ़ गई है कि एक लेखक भी दूसरे लेखक से शिकायत करने लगा है, और असली मुसीबत यही है कि लेखक भी रचनाएं समझ नहीं पाते। 'खग ही जाने खग की भाषा' का मुहावरा गलत पड़ता जा रहा है।

दूसरे लेखक मेरी रचनाएं समझ नहीं पाते। मैं दूसरे लेखकों की रचनाएं समझ नहीं पाता। लेखक ही क्या, रचना (क्रिएशन) के विभिन्न के विभिन्न माध्यमों में लगे हुए लोग एक दूसरे को समझ नहीं पाते। कवि अ. की कविता 'रक्त-स्राव संगीतिक धारा, वासनास्खलित सर्प' ब. की कलाकृति 'कमोड में सोई हुई बिल्ली'. . . 'नृत्यांगना स. का सोलो नृत्य' 'गर्भस्थ शिशु का प्रणय-गीत'. . .

यह सोचने को विवश हूँ कि जनसाधारण की बात तो दूर, संस्कृति के विभिन्न अंगों उपांगों को समृद्ध करने की अथक चेष्टा में लगे हुए बुद्धिजीवी शिल्पजीवी सौन्दर्यजीवी लोग स्वयं एक दूसरे को अब समझ नहीं पाते हैं। हमारी रचनाएं हमारे संस्कार और हमारी संस्कृति की अभिव्यक्तियां हैं- मैं यही मानता हूँ और अब हम सब की अभिव्यक्तियां क्रमशः एक दूसरे से अधिक व्यक्तिगत बनती जा रही हैं। शायद पाउण्ड और इलियट भी एक दूसरे को समझ नहीं पाते हैं। पिकासो और सिल्वेदोर डाली भी एक दूसरे को नहीं समझ पाते हैं और अब तो एब्सट्रैक्ट कलाकृतियों का जमाना आ गया है जब कि समझने-समझाने की कोई जरूरत भी है, महसूस नहीं होता. . .

तय है कि मौलिक रचना के किसी भी कार्य में जुटा हुआ प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान काल में समाज से अपने चतुर्दिक के हर

समाज से टूटकर अलग हो गया है। दो बजे रात को फुटपाथ पर खड़े अंधे भिखारी की तरह वह अकेला है, और सेकेण्ड शो से लौटती हुई टैक्सियां तेजी से गुजर जाती हैं। 'अंधों पर दया करो, मालिक' की चीख टैक्सियों में खिलखिलाते हुए लोग समझ नहीं पाते। बुद्धिजीवी, शिल्पी, साहित्यकार, संगीतज्ञ, दार्शनिक सभी अंधे भिखारी हैं। उनकी रचनाएं उनके हाथों से टूटी हुई छड़ी है, जिसके



सहारे घर तक वापस लौटा नहीं जा सकता।

हम वापस लौटना चाहते भी नहीं। हमने फुटपाथ के अंधेरे और एकांत में अपने को कैद कर लिया है। रात है, और हम अकेले हैं, और अपनी आत्मा को अपने समान नंगी करके बलात्कार करते रहते हैं।

चन्द व्यावसायिक संस्थाओं या कल्चलर प्रोग्राम वाली सरकारी अर्धसरकारी संस्थाओं के अलावा कोई जगह नहीं रह गई है, जहां कलाकार एकत्र हो सकें, सम्मिलित रूप से कलासाधना कर सकें,

कलाकृतियों का निर्माण कर सकें। और, व्यावसायिक या सरकारी संस्थाओं को, मैं या मेरी पीढ़ी का कोई भी कलाकार कला-संस्थाएं मानने को तैयार नहीं है। हम मानते हैं कि कलाकृतियां फैक्ट्रियों में मास स्केल पर तैयार नहीं की जा सकती हैं। हम मानते हैं, और अकेलेपन में डूबे रहते हैं। किसी को किसी का भी साथ या सहयोग पसंद नहीं है। कविता एकांत में। चित्र-रचना एकांत में। नृत्य का अभ्यास एकांत में। गीत का आलाप एकांत में। अब कलाकार मुगल दरबार में मुशायरे का गजल तो नहीं रह गया है। अब कलाकार एक समूह बनाकर, अजंता की कलाकृतियां रचने वाला चित्रकार-मूर्तिकार नहीं रह गया है।

एक तो आवश्यक है एकांत। फिर यह भी आवश्यक है कि आपकी रचना एकदम मौलिक हो। उपमा, प्रतीक, भाव, अर्थ, शिल्प, माध्यम इनमें से कुछ भी किसी पूर्ववर्ती रचना से मेल नहीं खा जाए। मौलिकता की यह पागल तलाश कलाकार को किसी सांसत में डाल देती है। जितना वक्त सृजन में नहीं लगता, उतना वक्त मौलिकता की सिद्धि में लगता है। पहले ऐसा नहीं था। पहले सृजन अपने आप में मौलिक होता था, और हिन्दू-युग या बौद्ध-युग की करीब करीब सभी मूर्तियां, नटराज, यक्षिणी, ध्यानावस्थित बुद्ध, मैथुन मूर्तियां, नर्तकी, चवरधारिणी चाहे खजुराहो की हों, चाहे कोणार्क की, महाबलीपुरम की एक ही शिल्प और एक ही शैली में बनाई गई हैं- और उन पर किसी दिन भी अ-मौलिकता का आरोप नहीं लगाया गया। मगर, आज अगर भारतीय चित्रकार द. की कलाकृति मैक्सिको या अर्जेंटाइना के किसी चित्रकार की किसी कलाकृति से 'फार्म' या 'स्टाइल' में मिल गई, तो देश के सारे अखबार बिचारे भारतीय चित्रकार पर टिड्डियों के दल की तरह धावा बोल देते हैं।

अपनी रचनाओं पर किसी समवर्ती रचनाकार की किसी रचना की छाप नहीं पड़

जाए, इसीलिए कवियों ने कविसम्मेलन सुनना छोड़ दिया है, चित्रकारों ने 'आर्ट-एग्जिविशन' देखना बंद कर दिया है, संगीतज्ञों ने संगीत समारोह में भाग लेना रोक दिया है। रचनाकारों में सहयोग और सहचिंतन ऐसी दशा में किसी प्रकार भी संभव नहीं रह गया है।

सहयोग-सहचिंतन होता है, मगर इसी तरह जैसे **वईसवर्थ** और **कालरिज** के इर्दगिर्द समान विचारों वाले चंद लोग जमा हो गए थे। या जैसे **मलामे** के ड्राइंगरूम में समकालीन कवि शाम को जुटते थे या जैसे **पिंजा** नगर में **शैली** और **नायान** ने अपना एक अलग समाज कायम करना चाहा था। या जैसे '**लावर्ट**' 'क्रोसेट' के एकांत में रहता था और 'मैग्नी' के प्रसिद्ध रेस्तरां में दोस्तों के साथ कहवे और शराब के दौर में खो जाता था। सहयोग होता है, सहचिंतन भी होता है, मगर कला और सौंदर्य के विषय में नहीं, ऐसी चीजों के विषय में जिनसे उनकी रचनाओं का या उनके रचनाकार का कोई मतलब नहीं है, अपनी किताब 'ए गैदरिंग ऑव 'यूजिटिव्स' में **लियोनेल ट्रिलिंग** ने लिखा है, 'द जेनरलाइजेशन ऑव दिज अर्ज टू कम्युनिटी इज बोहेमिया- दैट मिथिकल पालिटी व्हिच इज रूल्ड बाई नदिंग बट सेण्टिमेण्ट आव जेनेरसिटी आव लव एण्ड फेलो फीलिंग।'

अधिकतर आधुनिक लेखकों ने शराब पीना छोड़ दिया है, इसलिए इन दिनों कॉफी-हाउस ही आज की बोहेमियन सोसाइटी के मिलन-स्थल बन गए हैं। कॉफी-हाउसों में लेखक और कवि और पत्रकार और समीक्षक और चित्रकार जमा होते हैं और अपनी कला या अपने व्यवसाय के विषय में नहीं, बल्कि कॉफी के स्वाद, फिल्में, प्रेमिकाएं, राजनीति, ट्रामों-बसों की भीड़, अमरीकन ढंग के मजाक, रेसकोर्स के घोड़े, साड़ियों के दामों के विषय में बातें करते हैं। काफी हाउस में या किसी साहित्यिक के घर की सायंकालीन बैठकों में साहित्य की बातें नहीं हुआ करती हैं।

साहित्य की बातें उन गोष्ठियों में होती हैं, जो शिक्षण संस्थाएं अपने सालाना

जल्से के अवसर पर आयोजित करती हैं, या कभी कभी रेडियो पर कोई साहित्यिक वाद-विवाद कर लिया जाता है, या कभी किसी मिनिस्टर या बड़े व्यवसायी के सभापतित्व में कोई संस्था कोई परिसंवाद या लेक्चर कर-करा लेती है। मगर ऐसी गोष्ठियों, वाद-विवादों, परिसम्वादों लेक्चरों से साहित्य का या साहित्यजीवियों का क्या लाभ होता है, यह सभी जानते हैं। चेहरे पर नकाब और जुबान पर झूठ की पर्तें चढ़ाकर हम ऐसी जगहों में जाते हैं, और वापस लौट आते हैं। जो जी में आता है या अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिए जो आवश्यक लगता है, बोल कर वापस लौट आते हैं। किसी की कुछ सुनते नहीं। सुनने की आवश्यकता क्या है? हम लोग एक दूसरे के सहयोगी नहीं हैं। हम सभी व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं। हम एक दूसरे की क्यों सुनें?

डब्ल्यू. बी. यीट्स ने अपनी आत्मकथा में एक जगह लिखा है- धार्मिक जीवनचर्या से बुद्धिजीवी और कलाकार की जीवनचर्या में यह फर्क देखा जा सकता है: पहले का कहना है- हम सभी समान हैं, एक हैं- और दूसरा अपना प्रत्येक वाक्य इसी तरह शुरू करता है, 'सुनो मूर्खों'- और आज के हमारे जीवन में और रचना में 'सुनो मूर्खों' का यही संबोधन व्याप्त है। हम समझते हैं और अपनी इस समझदारी पर पूरी ईमानदारी से विश्वास करते हैं कि हमारे अतिरिक्त बाकी सारे लोग मूर्ख हैं।

और, अगर मुझसे कोई पूछे कि आधुनिक साहित्य की, और आधुनिक संस्कृति की, और आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या क्या है- तो मैं सिर्फ इतना ही कहूंगा कि हम लोग एक-दूसरे को मूर्ख समझ रहे हैं। आर्थिक वैषम्य नहीं, व्यापारिक बुद्धि का विस्तार नहीं, तीसरे महायुद्ध का भय नहीं, कम्युनिज्म का खतरा नहीं, 'हालीउडियन'-सभ्यता का आक्रमण नहीं मानता 'वल्गरिटी' नहीं- आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या है कि हम लोग समकालीन रचनाकारों और कलाकारों का आदर करना भूल गए हैं, जनसामान्य को स्नेह करना भूल गए हैं। यह आदर और यह स्नेह मेरे मन में, हम सबके मन में कैसे जन्म ग्रहण करेगा?

प्रस्तुति- देवशंकर नवीन



दसवां लीलारानी स्मृति पुरस्कार

'कौन कुटिल खल कामी'

व्यंग्य संकलन पर
प्रेम जनमेजय
को

अब तक यह पुरस्कार रवींद्रनाथ ट्यागी, ज्ञान चतुर्वेदी, जगत सिंह बिष्ट आदि को दिया जा चुका है।

व्यंग्य यात्र के दो आगामी महत्वपूर्ण अंक

'विभिन्न भारतीय भाषाओं में व्यंग्य की स्थिति'

तथा

नरेंद्र कोहली के 70वें जन्मदिन पर हिंदी व्यंग्य के परिप्रेक्ष्य में नरेंद्र कोहली पर केंद्रित अंक

उक्त दोनों अंकों के लिए रचनात्मक सहयोग सादर यथाशीघ्र आमंत्रित है।

प्रकाश मनु

श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य-स्कूल के बड़े शालीन मास्टर जी!

(1)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी साहित्य में किसी अद्भुत करिश्मे की तरह 'व्यंग्य का एक महान एवरेस्ट' रच डालने में व्यंग्य-स्कूल के जिन तीन उस्तादों या कहिए बड़े महारथियों ने बड़ा काम किया, उनके नाम लेने की जरूरत नहीं है। और उनका महान कारनामा क्या था, यह बताने की भी। क्योंकि 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' की तरह इसकी चर्चा इतनी लंबी है कि इन तीन धर्मधुरीणों के नाम लो, तो एक पूरी रामायण खुद-ब-खुद रची जाने लगती है।

पर इन तीन धुरंधरों के साथ व्यंग्य-स्कूल के बड़े शालीन और प्रसन्नचित मास्टर जी का चेहरा भी अगली-बगली बराबर झांकता है। हमेशा कुछ न कुछ रचते, गुनते हुए। ज्यादा दिखावे और नाम-धाम वाली 'नामाकूलता' से परे, अपने आप में लीन। अपने शांत लहजे और मीठी चिकोटियों से कुछ न कहकर भी बराबर ध्यान खींचते हुए। और उन्होंने अपने शांत लहजे और मीठी प्रसन्न मार से व्यंग्य को जो कुछ दिया और जैसा ऊंचा-ऊंचा-सा असाधारण गुंबद गढ़ा, वह खुद में एक इतिहास रचने सरीखा ही है।

यों श्रीलाल शुक्ल का नाम आते ही राग दरबारी आता है और उसके साथ ही 'महान-महान' और 'असाधारण' का उच्चार होने लगता है। . . 'विश्रामपुर का संत' आता है और उसके साथ 'बढ़िया-बढ़िया' की गूंज उठती है। फिर उनके 'मकान' और इस तरह के कुछ और भी बेहतरीन उपन्यास। पर उनकी व्यंग्य रचनाएं जरा देर से आंखों के प्रकाश-वलय में आती हैं। शायद इसलिए कि उनमें वैसा तेज धूम-धड़ाका नहीं है, जैसा व्यंग्य शब्द जुबान पर आते ही जेहन में बनने लगता है। पर नहीं, उनमें बहुत कुछ है

जो आपको अपने महाशय श्रीलाल शुक्ल के 'अंगने' में ही मिल सकता है। भले ही श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य-स्कूल के सबसे शालीन मास्टर जी हैं, पर व्यंग्य उनके पोर-पोर में बिदा है और उनके यहां व्यंग्य की इतनी गहरी समझ है कि उन्हें व्यंग्य बनाना नहीं पड़ता, जो कुछ वे लिखते हैं, उसमें व्यंग्य कुदरती उजाले की तरह खुद ब खुद उतरता है। उसे उतरना ही होता है क्योंकि यह व्यंग्य बाहरी कला या कलाबाजी नहीं, भीतरी चेतना के साथ नत्थी है।

यही वजह है कि रघुवीर सहाय ने श्रीलाल शुक्ल के इन महीन व्यंग्यों पर टिप्पणी करते हुए अपने अंदाज में लिखा है— 'आज की बांझ राजनीति के जमाने में, जहां हजारों आदमियों के मिलकर पत्थर फेंकने से या एक आदमी के अनशन कर आन दे देने से भी सत्ता के कान पर जूं नहीं रेंगती, वहां श्रीलाल शुक्ल जबर्दस्ती चिकोटी काटते चले जा रहे हैं, जैसे कि इससे कोई चेत जाएगा। यह उनकी जिद है, इसलिए कि हिंदी के जिस पांव को वह काट रहे हैं, वह बड़ी देर से हाथ-पर-हाथ रखे रहने से सो गया है।'

यहां रघुवीर सहाय बड़ा महीन इशारा करते नजर आते हैं, जिससे श्रीलालजी की व्यंग्यकार तबीयत और कहना चाहिए 'उस्तादी' समझ में आती है। व्यंग्य को चाहे हमारे यहां थोड़ा हेठा यानी निचला दर्जा दिया जाता हो और उसे महज मनोरंजन की चीज समझ लिया गया हो, पर श्रीलाल शुक्ल के यहां व्यंग्य बेहद शालीन ही नहीं, संजीदा भी है, जो उन्हें आहिस्ता-आहिस्ता चीजों की तह तक जाने के लिए उकसाता है। इसीलिए तमाम लोकप्रियता के लटके-झटके वाले व्यंग्यकारों से वे एकदम अलग नजर आते हैं। सहाय जी ने अपनी बात को थोड़ा और स्पष्ट करते हुए टीप जड़ी है :

'श्रीलाल की मुश्किल सिर्फ ही नहीं।

व्यंग्य के मारे बेचारे हिंदी में गद्य लिखते हैं जिसने पिछले पचास वर्षों के साहित्य को कुछ ऐसा सवर्ण बनाकर छोड़ दिया है कि कुछ भी करो, व्यंग्य को वहां अनुसूचित जाति का दर्जा मिलता है। पहले तो ऐसा माना जाता था कि व्यंग्य लिखना किसी तरह के मनोरंजन का काम है, फिर जब व्यावसायिक प्रकाशन बढ़ा तो व्यंग्य वाकई मनोरंजन की वस्तु बन गया और आज ऐसे लेखकों की कमी नहीं जो प्यारी-प्यारी उंगलियों से महीन-महीन गुदगुदी कर पाठक को प्रफुल्ल करते हैं, विचलित नहीं करते।'

इस टिप्पणी में तथाकथित 'सवर्ण' या 'कुलीन' साहित्य में व्यंग्य की स्थिति को लेकर सहाय जी की बेधक और दो-टूक टिप्पणी गौर करने लायक है। उन्होंने साहित्य में आज व्यंग्य और व्यंग्यकार की जो हालत है, उस पर एकदम मार्के की टिप्पणी की है। और इसी में यह इशारा भी शामिल है कि जब कुल मिलाकर व्यंग्य की यह 'गपड़ चौथ' वाली हालत है, तो कोई अच्छा लिखे या कूड़ा फैलाए, इसमें फर्क ही कहां रह जाता है? शायद यही वजह है कि श्रीलाल शुक्ल जी के व्यंग्य पर जिस तरह ध्यान जाना चाहिए था, हमारे 'विद्वान' साहित्यिकों और आलोचकों का नहीं गया।

हां, दूर-दूर से 'राग दरबारी' को धन्य-धन्य कहकर छुट्टी पा ली गई। और इस शाब्दिक आखेट में श्रीलाल जी की व्यंग्य रचनाएं छूट गईं— या कहें कि 'राग दरबारी' की ओट में ही रह गईं।

(2)

पर श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्यकार की तमाम बारीकियां और बड़ी खासियतें हैं, जिनकी तरफ ध्यान जाना चाहिए। इसलिए भी कि व्यंग्य भी सर्जना हो सकता है, सचमुच सर्जना— वे इसके अप्रतिम उदाहरण हैं। उनकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि

उन्होंने व्यंग्यकारों के चुने हुए विषयों पर लिखने के मिथक को तोड़ा। और जीवन के तमाम क्षेत्रों के व्यक्तित्वों और घटनाओं को व्यंग्य की चौहद्दी में लाए। 'अंगद का पांव' के एक व्यंग्य में वे संगीत की दुनिया में जाते हैं, तो वहां भी बहुत कुछ खोज लेते हैं। जरा उनके शब्दों में उतरकर प्रसिद्ध गायिका सुरमादेवी के इस खयाल गायन का आनंद तो लीजिए।

'इसके पहले नगर की प्रसिद्ध गायिका सुरमादेवी ने लगभग घंटे भर तक खयाल का गायन किया था। खयाल के बोल थे, 'सकल बन ढूंढूं' सुरमादेवी के गाने की विशेषता यह थी कि जो उसे सुनकर नहीं समझ पाते थे, वे उनको देखकर समझ जाते थे। इसी नीति से उन्होंने ऐसी-ऐसी मुद्राएं दिखाई कि साफ जाहिर हो गया कि वे विरहिणी हैं और किसी को ढूंढने के लिए जंगल-जंगल मारी-मारी फिर रही हैं। वे बार-बार आसमान की ओर देखकर कहती थीं, 'सकल बन ढूंढूं' इससे जान पड़ता है कि संसार के सब जंगल आसमान में ही उगे हैं और उनका प्रेमी वहीं कहीं छिपा है।'

यह वह व्यंग्य है जिसमें एक छिपी हुई 'महीन मद्धिम मुसकराहट' तो है, लेकिन कोई अशालीन अट्टहास या मजा लेने वाला भाव नहीं। शास्त्रीय संगीत की अतिशय बीहड़ कलाबाजी एक आम श्रोता के दिल पर कैसा 'भीषण प्रभाव' छोड़ती है, श्रीलाल जी इसकी ओर एक बारीक इशारा भर करते हैं। और कुछ ऐसी गहरी-गहरी प्रसन्न व्यंजना के साथ कि सच्ची-मुच्ची समझ में आने लगता है कि व्यंग्य स्कूल के हमारे ये शालीन मास्टर जी व्यंग्य के सुर-ताल की गहराइयों में कहां तक पहुंचे हुए हैं।

और अगले पल लीजिए, एक शिकारी महोदय की महान शिकार कला का राज भी जान लीजिए, यानी एकदम नया अनुभव-क्षेत्र। इसके पीछे किस्सा यह है कि श्रीलाल जी शिकार की दुनिया में गए और उन्हें विलसन नाम का एक अजब-गजब शिकारी मिल गया। विलसन का उन्होंने बड़ा ही गजब कारनामा देखा। फिर वे उसकी तारीफ में जुटे, तो बहुत कुछ ऐसा कह गए जो बस वही कह सकते थे:

'मैंने उसे दिलासा देते हुए कहा, पार्टनर, इसी तरह किसी एक बड़े शिकारी

ने कभी एक तीतर मारा था और उसके साथ बटेर भी मर गई थी और तब से 'आधा तीतर आधा बटेर' की कहावत चालू हो गई है। पर यह पुराना रिकार्ड था। आज तुमने कमला का काम किया है। तुम्हारे एक ही फायर में आधा तीतर और चार-पांच आधे बटेर निकल आए हैं। यह नया रिकार्ड है। तुम्हारा निशाना गजब का है। तुम्हारे कारतूस को कमाल हासिल है। तुम्हारी बंदूक में सुर्खाब के पर लगे हैं।' (67)

यहां आप देखें कि व्यंग्य की भाषा और मिजाज एकदम बदल गया। मगर उसमें बात कहने की शालीनता वही बरकरार है। यानी व्यंग्य को अगर जीवन के भिन्न क्षेत्रों में जाकर सीढ़ियां उतरनी हैं तो उसे उन-उन जगहों की खांटी भाषा भी लानी होगी। श्रीलाल शुक्ल की भाषा यहां एक पक्के ठेठ शिकारी की भाषा लगती है जिसका व्यंग्य भी बड़ा अचूक और सधा हुआ है। एकदम अर्जुन के तीर की तरह। और 'आधा तीतर आधा बटेर' मुहावरे के साथ खेलने की कला का तो खैर जवाब ही नहीं।

ऐसे ही व्यंग्य का एक प्रिय और सनातन विषय है 'हमारा देश हमारी धरती'। यानी हमारे देश और समाज की मौजूदा हालत। हम कोई मामूली देश नहीं, महान देश के वासी हैं और इसलिए हमारी और हमारे देश की चाल-ढाल और लहजा सबसे अलग है। व्यंग्य-स्कूल के हमारे मास्टर जी बड़ी बारीक नजरों से इसे देखते और कुछ अजब भंगिमा में कहते हैं। इसमें कुछ-कुछ यह भाव है कि दुनिया चाहे मंगल ग्रह पर पहुंच जाए, पर हमारी तो वही बैलगाड़ी जिंदाबाद! खरामा-खरामा चलते कभी न कभी, कहीं न कहीं तो पहुंचेगी ही। बैलगाड़ी के बारे में सोचते हुए श्रीलाल को खरगोश और कछुए की चिरपरिचित कहानी याद आती है और वह अपनी साथ पाठकों का यह विश्वास भी पुख्ता करते जान पड़ते हैं कि हम भारतीय चाहे जैसे भी हों, पर कभी न कभी तो धुर पर पहुंच ही जाएंगे। यों उनकी इस सोच में, यकीन मानिए, धर्म और अध्यात्म का ऊंचा उदात्त भाव भी शामिल है।

'मेरे मन में, न जाने क्यों, बड़े ही उदात्त भाव पैदा हो रहे थे। इसी गाड़ी को बैल चलाते हैं। बैल धर्म का प्रतीक है। अतः

बैलगाड़ी वह गाड़ी है जो धर्म से चलती है। यह हमारी धर्मधुरीण प्राचीन संस्कृति का उपलक्षण है। इसके सहारे हमारी संस्कृति जहां थी, वहीं है और वहीं रहेगी। हम स्पुटनिक और रॉकेट वाले देशों का मुकाबला भले ही न कर सकें, पर हमने भी कछुए और खरगोश की कहानी पढ़ी है और जब हम हमारी बैलगाड़ी का कछुआ सत्यता की लीक पर चल रहा है, हमें हार का डर नहीं है. . .।'

ऐसे ही साहित्य के महारथियों की ओर भी वे बड़ी गहरी सी नजर डालते हैं। बेशक साहित्य-कला में विहार करने वाले सदानंदी लोग सारी दुनिया में अलग होते हैं, रात हो या दिन अपनी आनंदी तान में लीन। श्रीलाल जी बांकी मुस्कान से ऐसे सदानंदियों को देखते हैं और फिर बड़े सधे लहजे में उनका वर्णन करते हैं। बेशक कवि सदानंद जी की सदानंदी मुद्रा का बखान करते-करते लगता है कि श्रीलाल शुक्ल भी थोड़ी सदानंदी ताल में आ गए हैं। सदानंद जी को कविता में थोड़ा प्रयोग का चस्का लगा है तो बेचारे श्रद्धाभिभूत होकर अपने गुरुदेव को बड़े आग्रह के साथ मार्गनिर्देशन के लिए पत्र लिख भेजते हैं।

'मैं अब प्रयोग करने लगा हूं। आज मैंने एक कविता में अस्पताल का प्रयोग किया है। डिसइंफेक्टेंट, एंटीबाइटिक्स, ऐनीस्थीसिया, क्लोरोमाइसिटिन आदि शब्द कल सीखे थे। इनका इस्तेमाल इस एक कविता में आज दिखाया है। अब एक कविता मुझे रात के झिलमिले तारों पर लिखनी है। उसमें इंजीनियरी का प्रयोग करना पड़ेगा। गुरुदेव, बचपन में सड़क कूटने के कारण, दरेसी, गैंग आदि शब्द तो मुझे आते हैं पर कोई लंबा शब्द याद नहीं है। सुनते हैं, ट्यूबवेल बनाने की मशीन में कई पुर्जों के अद्भुत नाम हैं। आप किसी मिस्त्री से पूछकर लिख भेजने की कृपा करें।'

सदानंद जी की इस अद्भुत 'विनय पत्रिका' को श्रीलाल शुक्ल ने मानो बगैर किसी छेड़छाड़ के पूरी सदानंदी तान में पेश किया है। जाहिर है, अपने साहित्यिक गुरु के आगे सदानंद जी के दिल के कपाट एकदम भड़ाक से खुल गए हैं और अब वे 'मैं ओर मेरा समय' वाली मनोज्ञ शैली में अपनी कविता की तुक-ताल और किस्म-किस्म

के प्रयोगों का पूरा इतिहास वर्णित करने के मूड में है। साहित्य के पुराने और अनुभवी 'रोगी' ही जानते हैं कि यह कितना आनंदपूर्ण मामला है और इसमें आदमी क्या-क्या और कैसे कह जाता है! तो हे पाठक-वृंद, सदानंद जी की यह सदानंदी तान, जिसमें किस्म-किस्म की कविता का स्वाद है, आप जरा श्रीलाल जी की एक व्यंग्य-रचना में देखें और सुनें:

'और सच तो यह है कि मेरी कविता बदली, पर मैं नहीं बदला। 'जग बदलेगा, किंतु न जीवना।' सदानंद था। सदानंद रहा। सवैया लिखकर भी 'संदेश' नहीं बना। 'सरस्वती' में छंद छपाकर भी सदानंदशरण नहीं कहलाया। सरस्वती प्रेस तक जाकर भी मैं कामरेड सिद्ध नहीं हुआ। अब नई कविता लिखूंगा। पर सदानंदायन नहीं बूनेगा। यश बढ़ता रहे, अर्थ बढ़ता रहे, राजसम्मान बढ़ता रहे, पर नाम वहीं का वहीं रहेगा। इसी में आनंद है। सदानंद हूं। सदानंद रहूंगा।'

इस विनय पत्रिका का अंत होते-होते लगता है, साहित्य-सरोवर की अनंत मणियां और मौक्तिक आपके चारों ओर छिटक गए हैं और अब आपकी नजर व्यंग्यकार को ढूंढती हैं तो पता चलता है कि हमारे व्यंग्य-स्कूल के ये शालीन मास्टर जी दूर खड़े बड़ी अदा से मंद-मंद मुसकरा रहे हैं।

श्रीलाल जी की एक खासियत यह भी है कि वे व्यंग्य के ही नहीं, साहित्य और शास्त्र के भी खासे विद्वान हैं। वे वर्तमान का जितना रमकर वर्णन करते हैं, उतरा ही पुराने वक्तों में भी रमे हुए हैं। और पुराने वक्तों की बात की जाए, तो भला कालिदास कैसे छूट जाएंगे, जो कि उचित ही 'कवि-कुल-गुरु' कहे जाते हैं। सो अचानक एक दिन श्रीलाल जी के व्यंग्यकार को कालिदास पर शोध करने की सूझी। वे डंडा-डोली लेकर चल पड़े और कालिदास को खोजते-खोजते शोध कार्य की अनंत गहराई में डूबते चले गए। अंत में एक से एक गजब की मणियां ढूंढ लाए। इनमें एक तो यही है कि 'कालिदास का रचनाकार तीन शताब्दियों तक फैला हुआ है।' यानी बड़ी ही लंबी उम्र उन्हें मिली थी। और फिर कविता लिखते-लिखते कालिदास नाटक लिखने क्यों बैठ गए, इस पर भी उनकी बड़ी मौलिक उद्भावना है:

'वे तीन शताब्दियों तक 'मेघदूत',

'कुमारसंभव' और 'रघुवंश' जैसे काव्यग्रंथ लिखते रहे। (ऋतुसंहार अप्रामाणिक है) बाद में उन्होंने नाटक लिखे क्योंकि जो कविता लिखना है वह सदैव कविता नहीं लिख सकता। कभी न कभी अकस्मात आलोचना पर आने के पहले वह नाटक पर अवश्य ही उतरता है। उदशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा आदि इसके उदाहरण हैं। तीन शताब्दियों में कालिदास के तीन नाटक, 'अभिज्ञान-शाकुंतल', 'विक्रमोर्वशीय' और 'मालविकाग्निमित्र' प्रकट हुए।'

अब कालिदास तीन शताब्दियों तक कैसे जी गए, इस पर आप लाख सिर धुनते रहिए। पर श्रीलाल जी की एक साथ शोध और व्यंग्य की 'महान स्पिरिट' की तो आपको जी भरकर सराहना करनी ही होगी। हां, चाहे तो दांतों तले उंगली दबाकर आप चकित भी हो सकते हैं।

पर श्रीलाल जी का व्यंग्यकार खाली 'पुराकालिक' ही नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि वर्तमान पर उसकी नजरें कहीं ज्यादा टिकती है। इस लिहाज से उनका सबसे प्रतिनिधि व्यंग्य या कि मौजू व्यंग्य-शैली खोजनी हो, तो सबसे पहले याद आता है 'अंगद का पांव'। इसलिए कि 'अंगद का पांव' खासा मजेदार व्यंग्य है, जो थोड़ी बतकही के साथ-साथ कथात्मक रूप में है। श्रीलाल शुक्ल अपने एक मित्र को स्टेशन पर छोड़ने आए हैं और वहां और भी तमाम परिचित लोग हैं जो उन्हीं सज्जन को विदा करने आए हैं। सबका औपचारिक बातों का खजाना खत्म हो गया, पर गाड़ी है कि चलने का नाम ही नहीं लेती। वह अंगद के पांव की तरह अपनी जगह ठहरी हुई है। बार-बार सीटी देती तो है पर चलती नहीं है। मानो व्यंग्य के रस की बौछारों में भीगने के लिए वह भी आकुल हो। तब फौरन श्रीलाल जी का व्यंग्यकार जागता है। और तब बतकही के लिए क्या-क्या फिजूल बातें और नाटक होते हैं। श्रीलाल शुक्ल ने इसका बहुत मजेदार वर्णन किया है :

'वैसे तो मुझे स्टेशन जाकर लोगों को विदा देने काक चलन नापसंद है, पर इस बार मुझे स्टेशन जाना पड़ा और मित्र को विदा देनी पड़ी। इसके कई कारण थे। पहला तो यही कि वे मित्र थे। और, मित्रों के सामने सिद्धांत का प्रश्न उठाना ही बेकार

होता है। दूसरे, वे आज निश्चय ही पहले दर्जे में सफर करने वाले थे, जिसके सामने खड़े होकर रूमाल हिलाना मुझे एक निहायत दिलचस्प हरकत जान पड़ती है।'

आगे का वर्णन और भी मजेदार है जिसमें 'ऊब' और 'मनोरंजन' की एकदम बराबर मात्रा है। और इससे समझ में आता है कि जहां बड़े से बड़े सूरमां झांकने की भी हिम्मत नहीं कर पाते, वहां से भी श्रीलाल जी व्यंग्य ढूंढ लाते हैं और वह भी ऐसा बेजोड़-एकदम मास्टरपीस!

(3)

श्रीलाल जी के व्यंग्य का थोड़ा अलग और मौजू अंदाज 'खबरों क जुगाली' में है। 'खबरों की जुगाली' संग्रह में छोटी-छोटी खबरों पर श्रीलाल जी की बड़ी सधी हुई व्यंग्यात्मक टीपें हैं। ये टीपें 'इंडिया टुडे' के एक कॉमन में नियमित रूप से छपी थीं और पाठकों ने इन्हें खूब पसंद किया था। इनमें कई तो बड़ी चुस्त और दमदार हैं जो आज भी पढ़ने पर एकदम ताजा लगती हैं। मसलन ऐसी ही एक व्यंग्यात्मक टीप में आम चुनाव को पास देख नेता कहां-कहां मत्था टेकने जाते हैं और कैसे-कैसे दिव्य और अलौकिक साधु बाबा उन दिनों नजर आ जाते हैं, इस पर टिप्पणी है :

'मैंने उनके बारे में सुन रखा था। वे एक झोंपड़ी में रहते हैं, धोती और बंडी पहने हैं। सिर पर मजदूरों जैसा अंगोछा बांधे रहते हैं। बोलते बहुत कम हैं। मुंह में लगातार बीड़ी लगी रहती है। जब वे बीड़ी का ठोंठा कोने में फेंक देते हैं तो कोई भक्त दूसरी बीड़ी जलाकर उनके मुंह में लगा देता है। प्रायः वे किसी भी भक्त से दो से ज्यादा बीड़ियां स्वीकार नहीं करते। जिससे तीन बीड़ियां ले लेते हैं, समझा जाता है कि उसे आशीर्वाद मिल गया, उसकी मनोकामना पूरी होगी। अकेला जी की तीन बीड़ियां पीकर बाबा ने जब उन्हें जाने का इशारा किया तो वह उनके पांव पर खड़े बॉस जैसे गिर पड़े। शुकुराने में उन्होंने बाबा के मुंह से चौथी बीड़ी लगा दी थी।'

कमाल की बात तो यह है कि चुनाव में समय ऐसे-ऐसे चमत्कारी बाबाजीयों का गालियां देना भी 'प्रसाद' सरीखा लगता है। और अपने चिकने-चुपड़े नेता जी साष्टांग

प्रणाम कर, बड़े भक्तिभाव से उसे रेशमी बटुए में भरकर ले आते हैं। फिर आकर बड़ी रहस्यपूर्ण हंसी के साथ कहते हैं कि अब हमें कोई नहीं हरा सकता क्योंकि जनाब, फलां या टिकां बाबा जी का आशीर्वाद मिल गया है। और अब यह ससुरी जनता कौन होती है हमें हराने वाली!

भले ही 'इट हैपस ओनली इन इंडिया' मगर 'इट हैपस' और यह 'हैपनिंग' भला श्रीलाल शुक्ल की चौकन्नी नजरों से कैसे बच जाती।

ऐसे ही श्रीलाल शुक्ल एक दफा एक हारे हुए नेता जी से मिलने पहुंचे तो उन्हें बड़ा दिलचस्प अनुभव हुआ। हारे हुए दिलवाले उन नेता जी को वे भावनात्मक सहारा देने की पुरजोर कोशिश करते हैं:

'मैंने उन्हें बढ़ावा देते हुए कहा कि आपकी हालत नेपोलियन जैसी है। आप सिर्फ हारे हैं, मरे नहीं हैं। इस हालत में आप और कुछ भले ही न दे सकें, इंटरव्यू तो दे ही सकते हैं। आप अपने दूसरे बुजुर्ग साथियों को देखें। कई सालों से देश को उन्होंने इंटरव्यू के सिवाय और दिया ही क्या है?'

फिर अचानक उन हारे हुए नेता का बड़ा विलक्षण इंटरव्यू शुरू हो जाता है, तो ऐसी-ऐसी काम की बातें निकलकर आई कि क्या कहने। इन्हीं से पता चला कि जनता के मूड, विरोधियों की चालें वगैरह-वगैरह तो एकदम बेकार की बातें हैं। असल में उन्हें तो बुरे ग्रहों ने हराया। उनके मुखारबिंद से निकली जो बातें श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्यकार ने अपनी लाल बही में नोट कीं, उन्हें आप भी सुने :

'नीतियां, सिद्धांत, जनता का मूड- ये सब कहने की बातें हैं। वास्तव में मुझे ग्रहों ने हराया है। मुझे पहले से ही पता था। सात-सात ज्योतिषियों ने मुझे चेतावनी दी थी कि गोचर में बारहवें हानि-स्थान पर शनैश्वर और राहु विराजमान हैं और उनके ऊपर मंगल की पूर्ण दृष्टि है।'

असल में अपना हिंदुस्तान बड़ा अजब-गजब देश है। हिंदुस्तान में आप गीता, रामायण, अध्यात्म हर चीज चुटकियों में समझ सकते हैं। यहां तक कि विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, अर्थशास्त्र, अनर्थशास्त्र, पोंगाशास्त्र, पंडाशास्त्र, अराजकताशास्त्र कुछ जानना और सीखना मुश्किल नहीं है। पर हिंदुस्तान में

राजनीति के चरित्र को समझ पाना मुश्किल ही नहीं है, असंभव है। इसलिए बड़े-बड़े महाबली योद्धा यहां औंधे मुंह गिरते हैं। ऐसे में श्रीलाल शुक्ल को जरूरी लगा कि अपने परम दुखी मित्र को गीता के कृष्ण के अंदाज में राजनीति का यह महादर्शन समझाया जाए। राजनीति में महान दर्शन को आसान बिंबों में समझाने के लिए उन्हें याद आई रेलगाड़ी और फिर बड़ी ही अनोखी सूझ मिली कि हिंदुस्तान में रेलगाड़ी और राजनीति एकदम मिलती-जुलती सी हैं और ये दोनों ही बड़ी दिव्य चीजें हैं। और बस वे चालू हो गए।

'जानते हो, यह मुसीबत तुम पर क्यों आई है? इसीलिए कि राजनीति में घुसकर भी तुम राजनीति और रेलगाड़ी के बारे में कुछ नहीं जानते। पुरानी कथाओं में अता है कि पूरब, पश्चिम और उत्तर जाना, पर दक्खिन की ओर कभी न जाना। मैंने तुमसे पहले ही कहा कि राजनीति में पार्टी, गुट और अपनी भलाई पहचानना, पर जनता को कभी पहचानने की कोशिश न करना। तुमने वह सलाह नहीं मानी और जो किया, उसका नतीजा अब सामने है। पूरी बात मैं फिर से समझाता हूं, हालांकि यह सबक जो एक बार नहीं समझता वह कभी नहीं समझ पाता।'

इसी तरह अफसर-लीला या 'अफसर नामा' व्यंग्यकारों का बड़ा प्रिय और सदाबहार विषय है। अकसर नेताओं के साथ-साथ वे अफसरों पर भी कुछ न कुछ कृपा कि रहते हैं। मगर श्रीलाल शुक्ल जो अफसरी तंत्र के रेशे-रेशे से वाकिफ हैं, वे इस अफसरलीला की क्रूरता पर जैसी शालीन लेकिन गहरी चोट करते हैं।, वैसी कर सकने का माददा बहुत कम व्यंग्यकारों में है। पता नहीं, दुनिया के और देशों में अफसरों का क्या हाल है या कि वे किस कदर महान हैं कि नहीं हैं, पर अपने देश में तो सचमुच वे महान हैं। और वे इस कदर महान हैं कि बाढ़ और सूखा सरकारी अफसरों के लिए वे किसी उत्सव से कम नहीं है, जब उन्हें दो नहीं, दस-बीस हाथों से माल खाने का मौका मिलता है। पर इन दोनों उत्सवों में ज्यादा बड़ा और आनंददायी उत्सव कौन सा है? इस पर अफसरों में थोड़ा मतभेद पाया जाता है। अलबत्ता दो अफसर इसी गंभीर मुद्दे पर बात करते हैं

तो बड़ी मजेदार और रसमय स्थितियां बनती हैं। श्रीलाल शुक्ल के शब्दों में वह पूरा दृश्य उतर आया है:

'रिटायर होने के पहले दोनों मंझोली हैसियत के हाकिम थे। आज भी वे अपनी हर बात 'हमारे जमाने में तो ऐसा होता था' से शुरू करते हैं। इस समय दोनों इस पर बहस कर रहे थे कि सूखा ज्यादा अच्छा है या बाढ़. . . ? पहला कह रहा था, 'पब्लिक के बारे में तो मैं जानता नहीं, पहले भी बहुत कम जानता था और अब बचा-खुचा रिश्ता भी टूट चुका है, पर सरकारी मुलजिमाओं के नजरिए से मैं बेहिचक कह सकता हूं कि बाढ़ को सूखे पर तरजीह दी जानी चाहिए। एक हफ्ते की जोरदार बाढ़ में राहत के लिए जितने करोड़ के वारे-न्यारे हो जाते हैं, उतने एक साल तक चलने वाले सूखे की राहत में कहां?'

(4)

लेकिन श्रीलाल जी के व्यंग्य की एक और अदा उनके ऐसे व्यंग्यों में प्रकट हुई है, जो एकदम अनायास और सदा है। यहां उनका व्यंग्य एकदम महीन और अप्रकट है। कहीं शब्दों और पंक्तियों के बीच के स्पेस में लुका-छिपा सा। धूप-छांह सा। यह व्यंग्य किसी थिराई हुई कविता की तरह शांत, शालीन, उजला और गहरा-गहरा होकर भी कैसे अपने निराले ढंग से चोट करता है, कर सकता है, इसे तमाम व्यंग्यकार ही नहीं, उन व्यंग्यकारों के उस्ताद भी श्रीलाल शुक्ल से सीख सकते हैं।

'सवरे नहा-धोकर मैंने लांड्री से धुलकर आई कमीज और पतलून पहनने को निकाली और ताज्जुब के साथ देखा, उनका कोई भी बटन टूटा नहीं है। तभी एक कोने में रखे हुए जूतों पर निगाह पड़ी, पुरानी आदत के मुताबिक आज के दिन नौकर ने उन पर काली पालिश लाल वाले ब्रुश से नहीं की थी। जूते पर सही ब्रुश का प्रयोग हुआ था। मन ही मन मैंने कहा, यह मेरे जीवन का एक सुखी दिन होगा।'

ऐसे ही श्रीलाल शुक्ल जी के एक व्यंग्य में चिर-विद्रोही जी के याद रह जाने वाले अक्स हैं। साहित्य में एक दौर था जब लेखक कलम बाद में पकड़ता था, पहले उसके होंठों की बुदबुदाहट से निकलता

था— क्रांति. . विद्रोह! और फिर कलम हाथ में आते ही वे विद्रोह की साकार प्रतिमा बन जाते थे। मगर चाहे कितने ही विद्रोही क्यों न हो जाएं, रहना तो उन्हें इसी दुनिया में पड़ता था और इसी धरती पर जहां सब ओर धूल-धक्कड़ है और जिंदगी का एक घिसा-पिटा टेढ़ा-सीधा तरीका है, तमाम बुराइयां और अंधविश्वास भी हैं। तो फिर हमारे युवा विद्रोही जी क्या करें? इस हाल में जो किस्म-किस्म के विद्रोही होते थे, वे किस्म किस्म के रास्ते अख्तियार करते थे। उनमें से जो सबसे सीधी लाइन वाला 'अचूक अवसरवादी' रास्ता होता था, उसे श्रीलाल जी ने बड़े गजब के अंदाज में अपने शब्दों में ढाल लिया। यह एक ऐसा चिरविद्रोही रास्ता है जिसमें बंदा विद्रोही भी रहता है और कैरियरिस्ट भी। और चीजें खुद-ब-खुद बैलेंस हो जाती हैं।

ऐसे होनहार नौजवान आगे बढ़ने के लिए कैसे-कैसे 'प्रबंधन' करते हैं, इसकी एक मनोहारी झलक भी श्रीलाल शुक्ल ने पेश की है। हुआ यह कि सब कुछ का जुगाड़ हो जाने के बाद विद्रोही जी के जीवन में बस कमी थी तो एक कार की। मगर उसका भी रास्ता निकल आया— शादी! उनके 'दिव्य चक्षु' खुले और इसके साथ ही उन्हें एक गजब का सिद्धांत सूझा कि जिंदगी में और चाहे जो भी दंद-फंद करो, पर शादी मां-बाप की मर्जी से करो तो 'फायदा' होता है:

'सिर्फ एक फिक्र थी। एक कार की कमी थी। वह हो जाती तो देहात की डॉक्टरी के साथ-साथ शहर की पुरानी जिंदगी भी चलाई जा सकती थी। कार पाने का एक तरीका था। जिस तरह बाजार में एक खास किस्म का साबुन खरीदने पर रूमाल मुफ्त मिल जाता है, वैसे ही मां की राय के अनुसार एक खास परिवार में शादी करने पर एक कार मुफ्त में मिल सकती थी।'

खास बात यह है कि यह किसी व्यक्ति पर नहीं, एक पूरे वर्ग पर टिप्पणी है— एकदम बेधक और तिलमिला देने वाली। देखा जाए तो हमारे युवा विद्रोहियों का यह एक साथ आजू-बाजू या दाएं-बाएं होना हिंदुस्तानी मध्य वर्ग के रहस्यात्मक चरित्र के भीतर से निकला है। श्रीलाल जी का

व्यंग्य कमर कसकर उसके भीतर जब-तब खुदाई करने उतरता है। इसी में हिंदुस्तानियों के लिये बसे अमरीका का गुणानुवाद भी शामिल है। जब सारी दुनिया अमरीका की ओर भाग रही है और किसी अमरीकी के दर्शन होना सौभाग्य से कम नहीं है, तो भला श्रीलाल शुक्ल हिंदुस्तान के दिल में विराजे अमरीका और अमरीकी की गदगद भव से आरती क्यों न उतारें? और इसमें सच ही उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। आप भी चाहें तो इसमें साथ ही साथ पूजा की थाली पकड़कर 'जय अमरीका देवा' उच्चार सकते हैं:

'अहा! अमरीकी के दर्शन हो गए! वही अमरीकी, जो हमारे बच्चों का मिल्क पाउडर और हमको अन्न पहुंचाता है। वह हमारे अफसरों को जीप, हमारे नगर सेठों को चमचमाती इम्पाला खिसकाता है, हमारे लड़कों को काकटेल पीने और कारोबार करने की तमीज सिखाता है और जिनके असर से हमारी मरियल लड़कियां चहककर बोलती हैं, 'हाई'!'

आपकी जानकारी के लिए बता दें कि इसी 'हाई' संस्कृति के एक प्रतिनिधि 'महान कुत्तापालक' मि. प्रसाद जी भी हैं। कुत्ते को पालने वाले मि. प्रसाद ने वैसे तो संयोगवश या फिर हॉबी की वजह से यह सिलसिला शुरू किया था। मगर न जाने कैसे धीरे-धीरे पूरे मोहल्ले में वे कुत्ता-विशेषज्ञ की हैसियत पा गए। फिर तो उनके बोलने का अंदाज ही नहीं, जीवन-दर्शन ही बदल गया और वे खुद भी 'कुत्तामय' हो गए। इस अजब लीला का आनंद, हे पाठक-वृंद, जरा श्रीलाल शुक्ल के शब्दों में ही लीजिए।

'पड़ोसी तो यही समझा कि कोका कोला पीकर भी उन्हें नशा हो गया है, पर उसी के दूसरे दिन वे रोटरी-क्लब में 'डॉग-केयर' पर भाषण देने के लिए बुलाए गए। कुत्ता-विशेषज्ञ की हैसियत से अब उन्हें काफी बड़े पैमाने पर स्वीकार कर लिया गया। उनको कुत्ता-प्रदर्शनियों के उद्घाटन के लिए और उनकी बीवी को पुरस्कार-वितरण के लिए बुलाया जाने लगा। वे जहां-जहां तबादले पर गए, वहां-वहां उनकी अध्यक्षता में कुत्ता-कल्याण-समितियां बनाई गईं। सफलता की इन मंजिलों को पार करके आखिर उन्हें यह आध्यात्मिक अनुभव हुआ

कि उनके भी जीवन का एक अर्थ है और उस अर्थ का नाम कुत्ता है।'

(5)

ऐसे ही ऐतिहासिक दुनिया पर श्रीलाल जी के 'मधुर-मधुर' किस्म के व्यंग्य के तीर बड़े महीन लेकिन अर्थपूर्ण हैं। एक पद्मभूषण साहित्यिक सम्मान समारोह में वाग्शूर संयोजक हो, तो कैसे-कैसे अजब-गजब दृश्य पैदा होते हैं और वक्तृता के कैसे-कैसे बांके तेवर देखने को मिलते हैं। इसकी भी एक दर्शनीय झांकी श्रीलाल जी ने पेश की है:

'... यह मौका तो केवल आनंद मनाने का है। अभी किसी ने कहा है कि पद्मभूषण मिल जाने से ही कोई महाकवि नहीं हो जाता। उसने ठीक कहा है। यहीं किसी और ने कहा है कि पद्मभूषण महाकवियों को ही मिलता है। उसने भी ठीक कहा है। हमें इससे क्या मतलब? हमारा मतलब ही आनंद मनाने से है। हमारे नगर के एक महाकवि को सम्मानित किया गया, हमारे लिए इतना काफी है। यह मौका तो...'

हालांकि हिंदी में आनंद मनाने के जैसे मौके होते हैं, वैसे ही शोक मनाने के भी होते हैं। आप यकीन मानिए, हिंदी साहित्य का कबाड़ा हो जाए, अगर यहां शोक-सभाएं न हों। शोक-सभाएं हिंदी साहित्य को कितना रंगारंग, ऊर्जावान और राजनीतिमय बनाए रखती हैं। और कवि सम्मेलनी मंचों की तरह शोकसभाओं पर भी कब्जे की कैसी लड़ाई लड़ी जाती है, इस पर श्रीलाल जी ने व्यंग्य के दो-तीन तीर छोड़े हैं जिनकी मार बड़ी घातक है। एक अल्हड़ और अलबेली मित्रता के रस में पगे इस तीखे व्यंग्य का आनंद आप भी लीजिए।

'मित्र, कल ही मैंने एक मासिक पत्रिका में तुम्हारे शहर की एक शोक-सभा का वर्णन पढ़ा है, सचित्र और काव्यपूर्ण। यह जानकार संतोष हुआ कि दिवंगत प्रधानमंत्री के शोक में की गई इस सभा की अध्यक्षता तुमने की, और बाबू रामाधार टापते रह गए। तुम्हारे व्याख्यान में दिवंगत नेता के लिए दी गई उपमाएं पुरानी होते हुए भी काफी चुस्त थीं, खासतौर से वह सूरज और कोहरे वाली उपमा। उस मौके पर पढ़ी गई कविताओं में

कुछ बहुत ही उम्दा थीं, एक तो बिलकुल वैसी थी, जैसे कि अभी हाल में आकाशवाणी के एक शोकपूर्ण कवि-सम्मेलन में एक कवि ने प्लेबैक सिंगर मुहम्मद रफी को पछाड़कर गाई थी।’

जब साहित्य की बात की जाए तो साहित्य के कर्णधारों की भी बात करनी चाहिए। ऐसे महान कर्णधार जो बेचारे लेखकों, कलाकारों पर कृपा-कटाक्ष किए रहते हैं। ये होते हैं हमारे वक्तों के राजे-महाराजे या बादशाह। सो श्रीलाल शुक्ल की एक बांकी नजर बड़े-बड़े महाराजाओं पर भी पड़ती है। ये महाराजा लोग जैसे बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाते थे, ऐसे ही और भी बड़े-बड़े काम करते थे जिसमें साहित्य-कला को थामे रहना भी बहुत बड़ा काम था। मगर ऐसे बादशाह क्या केवल पुराने जमाने में ही होते थे, आज नहीं है? आज के बादशाहों के तमाम शौक या शगलों में भी ऐतिहासिक महत्व की इमारतें बनवाने के साथ-साथ साहित्य की दुनिया और लेखकों पर कृपा-दृष्टि रखना शामिल है। ऐसे जहांपनाह बेचारे साहित्य-संगीत और कलाओं की चिंता में दोहरे हुए जा रहे हैं। हां, साहित्य और कलाओं में जहांपनाहों की इस कृपा-दृष्टि से कुल मिलाकर होता क्या है, यह अलग बात है:

‘जहांपनाह ने संगीत, साहित्य, कला आदि की बड़ी-बड़ी शानदार संस्थाएं खोली थीं और उनकी इमारतें आज भी उनके कला-प्रेम के पथराए हुए सबूत हैं। पर इमारतों के बारे में बाद में लिखा जाएगा, क्योंकि देश में स्वर्ण-युग लाने का असली श्रेय उन्हीं को है। सम्राट अशोक जिस तरह बौद्ध धर्म के संबंध में बड़ी-बड़ी सभाएं करता था, वैसे ही उस जमाने में जहांपनाह ने संगीत, साहित्य, नाटक आदि के सभी पक्षों पर विचार करने के लिए बड़ी-बड़ी संभाएं बुलाई, ताकि किसी अकेले कलाकार को उनके किसी पक्ष पर मनमाना प्रयोग करने की गुंजाइश न रह जाए।’

श्रीलाल शुक्ल ने जब बिना भेदभाव के सब पर कृपा की, तो भला लखनऊ को कैसे भूल जाते? यों भी वे लखनऊ के हैं तो भला लखनऊ की हकीकत उनके व्यंग्य का विषय बनने से कैसे बच सकती थी! लखनऊ की व्यंग्यात्मक तस्वीर पेश करते

समय उन्हें वहां के एकदम अलग काट के बुद्धिजीवी भी याद आते हैं जो बड़ी-बड़ी समस्याओं पर बड़े-बड़े विचार पेश करते हैं। यहां सब कुछ बड़ा-बड़ा और चमकीला ठें मगर कुछ है जो श्रीलाल शुक्ल की पकड़ में आ जाता है। और फिर चीजें देखते प्रहसनात्मक हो जाती हैं।

‘रेस्त्रां में किसी संदिग्ध चित्रकार ने अपने चित्रों की बेशर्म नुमाइश लगाई थी। अंदर मेज पर कुछ मनीषी लोग (इंटेलेक्चुअल) बिना किसी खास वजह से कुछ समस्याओं पर विचार कर रहे थे। उन्हें बिना सुने ही मैं जानता था कि न समस्याएं उनकी हैं, न विचार उनके हैं। जो भ्रम यह रेस्त्रां और तस्वीरें पैदा करती थीं, वही ये मनीषी भी पैदा करते थे। बाहर भी, जैसे कह चुका हूं, आधुनिकता का भ्रम देने वाली बहुत-सी चीजें थीं।’

मुझे कभी-कभी लगता है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्यकार हमारे त्रेतायुगीन लक्ष्मण जी की तरह खेल-खेल में भ्रम के ऐसे तमाम धनुषों खिलौनों की तरह तोड़ता है। और व्यंग्यकार चोट करते तो हैं पर उनका अपना कोई पक्ष नहीं। सब पर हंसना-हंसना ही उनके उद्देश्य होता है। जबकि श्रीलाल शुक्ल की पक्ष साफ समझ में आता है—उनके अपने लोग, यानी जनता।

यों हैं पाठक-वृंद, श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य के ऐसे उस्ताद जादूगर हैं जिनके यहां जादू की कई-कई अदाएं हैं और उनकी सबसे खास अदा यह है कि वे कभी मीठी चुकौटी काटकर छिप जाते हैं तो कभी मीठी-मीठी फुरफुरी छोड़कर दूर खड़े बारीक-बारीक हंस रहे होते हैं। व्यंग्य की मार करते हुए भी उनकी आंखों में मीठी-शरारत ही आएगी, कोई क्रूर-कठिन भाव नहीं। और अपनी इस शालीन और नायाब उस्तादाना कला से वे सहज ही पाठकों के दिलों पर राज करने लगते हैं। इसलिए कि वे पाठक को हक्का-बक्का करने में यकीन नहीं करते। किसी उम्दा कविता-कहानी की तरह व्यंग्य में भी पाठक को साथ लेकर वे उसके साथ अपना सृजन-सुख बांटते हैं। यह व्यंग्य की ऐसी सृजनात्मक भूमिका है जिसे बड़े अनुभवों और भाषा की बड़ी सिद्धता से ही पाया जा सकता है।

यहां व्यंग्य-स्कूल के हमारे शालीन



मनोरंजनपूर्ण ज्ञानवर्धन

‘बाजाप्ता ‘वैधानिक चेतावनी’
के साथ पीली पन्नी में बंद
किताबों की तरह आई
यशवंत व्यास की किताब
‘हिट उपदेश’

... एक विलक्षण तैयारी से लिखी
गई संपूर्ण व्यंग्य पुस्तक है।
अरविंद मोहन, इडिया टुडे
संपर्क
अंतरा, तिलक नगर जयपुर
मूल्य : 295 रुपये

मास्टर जी अपनी धीमी, लेकिन सही जगह पर की गई सही मार से बड़े-बड़े महारथियों को भी मात देते जान पड़ते हैं। लेकिन उनमें ‘ओह, मैंने क्या कर डाला!’ वाला दर्प और दंभ नहीं है। और न बेकार हल्ला-गुल्ला मचाना उन्हें रुचता है।

कोई अचरज नहीं कि यह लेख पढ़कर भी एक महीन और तटस्थ मुसकराहट के साथ वे अपने उसी विनम्र लहजे में कहें, हां, प्रकाश मनु, ठीक! तुमने कोशिश की तो है, पर अभी तो बहुत कुछ छूट गया है।

और बेशक छूट ही गया है। वह तो छूटना ही था।

यह जो काफी कुछ कह लेने के बाद बहुत कुछ छूट जाना है, असल में यही उस नायाब कला का ‘जादू’ है, जिसे हमारे व्यंग्य-स्कूल के शालीन मास्टर जी जानते ही नहीं, बल्कि उसमें पगे हुए हैं। यह दीगर बात है कि वे उसका दिखावा कभी नहीं करते। वे महज व्यंग्यकार नहीं, व्यंग्य के उस्ताद जो ठहरे।

454, सै

(हरियाणा)

अजय अनुरागी

आत्म विश्लेषण के आलोक में एक प्रायश्चित्त-कथा: 'अज्ञातवास'

श्रीलाल शुक्ल का 'अज्ञातवास' आत्म की खोज तथा आत्म विश्लेषण में रत ऐसे व्यक्ति की कथा है जो अपनी पत्नी की भावनाओं का सम्मान किए बिना उसके निरादर और अपमान करने की व्यथा को सीने में छिपाए हुए प्रायश्चित्त स्वरूप जी रहा है। शहरी परिवेश की परिधि का अतिक्रमण करते हुए श्रीलाल शुक्ल अपनी स्मृति में गंवई संस्कारों को बसाए हुए हैं। ग्राम्य जीवन उनकी आत्मा में रचा बसा है जो रचना के स्तर पर उभर आता है। ये संस्कार उनकी जिंदगी से जोंक की तरह चिपके हुए हैं। उन्हें चाहकर भी वे अपने से अलग नहीं कर पाते हैं।

उपन्यास का मुख्य पात्र रजनीकांत जमींदार का बेटा है तथा गांव में पैदा होकर उम्रभर वहां रहकर भी वहां के जीवन को मन से अपना नहीं सका है। वह आगे चलकर सुपरिटेन्डिंग इंजीनियर हो जाता है। प्रभा उसकी अकेली अविवाहित संतान है जो अमेरिका से शिक्षा पाकर आने वाले प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही है।

ग्राम्य जीवन श्रीलाल शुक्ल की चेतना में विस्तार से समाया हुआ है। वहां के हर क्रिया-कलाप, हर स्थिति और हर घटना पर उनकी नजर है। उनके लेखन में ग्राम्य जीवन की सरलताएं एवं जटिलताएं दोनों ही विद्यमान हैं। जमीन-जायदाद के झगड़े, धोखे, कानूनी दाव-पेंच, वकीलों के शिकंजे, मुहरिंरों की चापलूसी, अर्जी-नवीसों की धोखेबाजी, हाकिमों की निगाह, अहलकारों के इरादे तथा पैतृक सम्पत्ति बचाने की विद्या यहां के लोगों को सीखनी पड़ती है। गांव की जिंदगी का सटीक चित्र खींचते हुए श्रीलाल जी लिखते हैं- 'यहां आज भी बर्बरता का शासन है। यहां कमजोर होकर चलने में सबकी ताकत का बोझा ढोना पड़ता है। ताकतवर होने के लिए सब कमजोरियों से समझौता करना पड़ता है। पार्टीबंद दूसरे

बदमाशों को नीचा दिखाने के लिए अपने घर पर बदमाश पालना। अपने पाले हुए बदमाशों से अपने पड़ोसियों को धमकाना पर उनसे अपने आप भी डरना। उनकी उद्दण्डता को सहना। उनके अपराधों को अपनाना। उनके लिए अदालतों में मुकदमे लड़ना। पुलिस का आतंक। दिन-रात उनकी आराधना करना। उसके लिए झूठे गवाह ढूँढना। वैसा न करने पर खुद झूठे गवाहों का शिकार बनना। चारों ओर डकैतों का खतरा अरक्षा और आतुरता की जिंदगी। प्रकृति के उत्पात गर्मियों के सर्वग्रासी अग्निकांड। वर्षा का प्रलयंकार धारा सम्पात। गिरते हुए घर। धार में बहते हुए छप्पर। पानी में डूबती-सड़ती हुई फसलें। जाड़ों की उपलावृष्टि। पाला, ओस, कुहरा। पछुवा हवा, टिड्डियां, चूहे। हड्डियों को गलाकर पैदा की हुई, लहलहाती खेती को निरूपाय होकर इनके सामने सर पटकते, घिसटते देखना। सबसे डरना। अपने से ऊंची जाति वालों से, ऊंचे वर्ग वालों से, महाजनों से, वैद्यों से, थाने से, तहसील से, भूतप्रेत से, महामारी से, भाग्य से, भगवान से-सबसे डरना। जिससे न डरना उसके लिए डर बनकर रहना। कदम-कदम पर झगड़े और मुकदमे की बातें। नहर के पानी के झगड़े। बागों से फल व लकड़ी लेने के झगड़े। खेतों की मेड़ के लिए होने वाली फौजदारियां। अपनी जमीन पर से जानवरों के निकास को लेकर होने वाले हत्याकांड।' (अज्ञातवास : पृष्ठ 20-21)

यह पूरा का पूरा परिदृश्य गांव की विशेषताओं के साथ-साथ विद्रूपताओं एवं जटिलताओं को उभारता है। श्रीलाल जी की पैनी नजर और व्यापक दृष्टि में खेत-खलिहान से लेकर तीनों तापों दैहिक, दैविक, भौतिक तथा मन, वचन, कर्म की विकृतियों की विवरणात्मक प्रस्तुति हुई है। गांवों एवं ग्रामीणों की बदलती तस्वीर श्रीलाल शुक्ल के इस उपन्यास में देखी जा सकती है।

वे ग्रामीण जीवन में आये पतनोन्मुखी परिवर्तन को प्रकट करते हुए लिखते हैं- 'जहां बातचीत के केवल दो रूप हों- खुशामद या गाली गलौज। शिष्ट भाषा जहां बुजदिली की निशानी है। उदारता जहां अपने स्वत्व को अपने पास रोक रखने की असमर्थता का नाम है। दूसरे को सहायता जहां इसलिए दी जाती है कि वह बाद में सामने आंख न उठा सके। छोटे से छोटे मसले को जहां बड़े मुकदमे का रूप दिया जाता है कि लोग बड़े मसले पैदा करने की हिम्मत न दिखा सकें। जहां गरीबी एक ऐसा चुम्बक है जो सभी उपद्रवों से लौह अघातों को दूर से अपनी ओर खींच लेती है। जहां अमीरों में ऐसी आग है जो पड़ोसियों को जला देती है।' (वही पृष्ठ : 21)

यहां श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य प्रतिभा दिखायी पड़ती है। यह व्यंग्य की हलकी टीस है जो उनके वाक्य विन्यासों का हिस्सा बन गयी है।

उपन्यास की कथा ठहरी हुई है तथा विश्लेषणपरक अधिक है। रजनीकांत को एवं उनकी पुत्री को ग्राम गीत अच्छे लगते हैं। इसके पीछे भी कारण है। रजनीकांत की पत्नी गांव की न होने के बावजूद शादी के बाद गांव से एकाकार कर लेती है तथा उसके मन व आत्मा में गांव बस जाता है। वह जब तक जीवित रही तब तक रजनीकांत की उपेक्षा एवं प्रताड़ना का शिकार रही। अब रजनीकांत उसकी अनुपस्थिति में उसके अभाव को भरने के लिए ग्रामगीतों का आयोजन जब-तब अपने बंगले पर करा लेता है। इस कथा के क्रमानुसार भी उसने ग्रामगीतों का आयोजन रखा है तथा बंगले पर ग्राम से गायकों को बुलवा लिया है। दूसरी ओर अपने मित्रों 'गंगाधर एण्ड पार्टी' को भी इसी समय बुलवाने का निमंत्रण दे दिया है। इधर गायक मंडली तैयार होकर रजनीकांत के आने की प्रतीक्षा कर रही है और उधर

रजनीकांत अपने मित्रों के साथ शराब पी रहे हैं। ठहाकों पर ठहाके लग रहे हैं। उन्हें बार-बार सूचना दी जाती है कि आप आयें तो गीत गाना शुरू हो। मगर रजनीकांत और उनके मित्र पीते हुए गप्पे हांक रहे हैं। बेगार के रूप में बुलाये गये गायकों के सम्मान और भावना की उनको फिक्र नहीं है। वे अपनी मस्ती में वार्तालाप कर रहे हैं। प्रभा अपने कमरे में परेशान हो रही है। उसे इस बात पर खीझ हो रही है कि उसके पिता को गीत सुनने थे तो शराब वाली गंगाधर एण्ड पार्टी को क्यों बुलवाया? इसके अलावा एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न भी उसके मन में कोंध रहा है- 'ये लोग एक-दूसरे के साथ मिलते ही पीने क्यों लगते हैं? बिना पिये हुए उन्हें आपस में बैठना पड़े तो ये क्या करेंगे? ताश भी छीन लिये जाएं तो क्या ये सचमुच जमुहाने लगेंगे? इतने दोस्त हैं एक-दूसरे के, पर एक दूसरे को मन की स्वाभाविक अवस्था में सह क्यों नहीं पाते? क्या हो गया है इन्हें?' (वही : पृष्ठ 33)

जब पीना ही लक्ष्य हो तो संवेदनाएं शून्य हो जाती हैं। रजनीकांत भूल चुका है कि उसकी बेटी अकेली उसका इंतजार दूसरे कमरे में कर रही है तथा दिन भर अपने-अपने काम करके थके हारे गायक गाने के लिए उसके यहां इकट्ठा हो गये हैं। काफी देर हो जाती है। रजनीकांत शराब पीने से गीत सुनने की फुर्सत नहीं निकाल पाता। ग्राम गीत शुरू करा दिये गये हैं। ये लोक गायक तमलाल, घसीटे, बनवारी, बहरैची, राधे, बसंत आदि गरीब किसान या मजदूर हैं। जब गाते हैं तो अपनी पीड़ा, दुःख, परेशानियां भूलकर गाते हैं। अच्छा गायक 'अपने को भुलाकर' गाता है। प्रभा पिता के न आने से खुद ही लोकगीत सुन रही हैं- 'इस कविता को क्या कहा जाए जो जिंदगी की छटपटाहट से उतने को संवारती-सिंगारती है। उसकी जीर्णता से अपने यौवन का रस खींचती है। घर के भीतर की प्रताड़ना, बाहर के संघर्ष और अपमान-इन सबमें मिठास भर देती है।' (वही पृष्ठ 43)

इन गायकों में बसंत जो अच्छा गाता था आज नहीं आया। सभी लोग बसंत का इंतजार करते हैं। प्रभा भी उसकी प्रतीक्षा में हैं। प्रभा उसके न आने का कारण किसी से पूछती है तो वह बताता है- 'क्या बतावें मेम

साहब, बात यह है कि वह चमार नहीं रहा। उसका लड़का कुछ पढ़ लिख गया है न इसलिए वह चमार नहीं, अपने को लम्बरदार समझने लगा है।' (वही पृष्ठ : 49)

सम्पत्ति शिक्षा के कारण यह जो बदलाव समाज में आया है उससे उसने शोषण और बेगार का विरोध करना शुरू कर दिया है। बसंत का लड़का यहां आया हुआ है। उसने पिता के न आने का कारण निडरता के साथ बता दिया है- 'नहीं मेरा बाप तुम्हारे सामने गाए ऐसा नहीं होगा। हमारे दो बीघे के हरे-भरे खेत। सामने से नहर बहती रही, पर उनमें एक बूंद भी पानी नहीं पहुंचा। लहलहाती हुई ईख की फसल लू में जलकर राख हो गयी। इसलिए न कि ओवर सिमर साहब, कि मेरा बाप तुम्हारी पूजा नहीं कर सकता था? नीचे के खेतों के लिए अलग से मुलाबा लगा दिया था? क्यों? इन सबको मालूम है कि ऐसा क्यों हुआ?' (वही : पृष्ठ 51)

वह प्रभा से भी प्रश्न करता है निडरता के साथ- 'और मेम साहब। आप आपको ये लोकगीत बहुत अच्छे लगते हैं न? आपने जेठ की तपन में झुलसता हुआ ईख का खेत देखा है कभी? उसी के सहारे पूरे परिवार का एक साल कटता। और वही फसल जल गयी।' (पृष्ठ 51)

X X X

'आप ये गीत क्यों सुनना चाहती हैं? हमारा कुछ भी तो आपको अच्छा नहीं लगता। तब हमारे ये गीत ही आपको अच्छे क्यों लगते हैं? आप हमारे बारे में कुछ भी नहीं जानती हैं। यह घसीटे बनमानुसों की तरह झोंपड़ी में पड़ा रहता है। दया में हाफंता है। जानती हैं आप? ये मंगरू, लालू, लोटन इनके घर दो-दो दिन के बाद चूल्हा जलता है। आप यह भी नहीं जानती? सिर्फ आपको ये गीत अच्छे लगते हैं?' (वही : पृष्ठ 51)

X X X

'आप हमारा रोना नहीं सुन सकती। गाना ही क्यों सुनना चाहती हैं?' (पृष्ठ:51)

उपर्युक्त प्रश्न वे हैं जो शोषण और दमन का शिकार होने वाले किसान और मजदूर की ओर से पूछे गये हैं यह साहस बसंत के युवा पुत्र ने दिखाया है। शायद

बसंत नहीं दिखा सका था। जिस तरह प्रेमचंद ने 'गोदान' में होरी का पुत्र 'गोबर' अन्याय और शोषण के सामंती चक्र से मुक्त होकर शहर में मजदूरी के लिए चला जाता है तथा वह प्रतिकार के लिए खड़ा हो जाता है। उसी तरह का चरित्र बसंत के पुत्र का प्रकट हुआ है। हालांकि यह कथा उतनी विस्तृत और सघन नहीं है। फिर भी जिस ढंग से ये लघु किसान या किसान के रूप में मजदूरी करने वाले लोग सिंचाई विभाग के इंजीनियर के कहने पर एकत्र हुए हैं, उसके पीछे भी दबाव है। सिंचाई विभाग ही उनके खेतों को नहरों के द्वारा सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध कराता है। इसमें भी बड़े किसान या रिश्वत देने वाले किसानों को जल्दी व अधिक पानी प्राप्त हो जाता है। जो गरीब किसान हैं, रिश्वत देने में सक्षम नहीं हैं, उनके खेतों को नियमानुसार पानी नहीं मिल पाता है। जो इंजीनियर और ओवरसीयर उन्हें पानी से वंचित रखते हैं उन्हीं के मनोरंजन एवं चित्त को प्रसन्न करने वाले लोक गीत गाने के लिए इकट्ठा हो जाते हैं। यह उनकी मजबूरी भी है और विडम्बना भी है।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि परिश्रम करने वाले तथा पसीना बहाने वाले गरीब किसान बहुत भोले और निश्छल होते हैं। थोड़ी-सी सहानुभूति तथा थोड़ी-सी राहत की उम्मीद में ये अपने दुख, पीड़ा, शोषण आदि भूलकर जीवन का उत्सव मनाने लगते हैं। लोकगीतों एवं लोकनृत्यों में डूबकर अपनी पीड़ा एवं थकान मिटा देते हैं। उस समय ये लोक संगीत की लय में अपने अभावों को बिसरा देते हैं। थोड़ी ही देर के लिए लोक लय में डूबकर जीवन के कष्टों से लड़ने की ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में घसीटे, मंगरू, लालू, लोटन, बसंत आदि ऐसे ही गायक हैं जो दिन भर लू और तपन में मजदूरी करते हैं और रात को गीतों के आयोजनों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। दिनभर ईख के झुलसते हुए खेतों को देख-देखकर आंसू बहाते हैं और रात को लोक गीतों में रसधर बहा देते हैं। कैसा हृदय है इनका? पानी के अभाव में खेत की फसल का सूख जाना किसान के पूरे परिवार के अरमानों पर पानी फिर जाना होता है। इसका दुष्परिणाम पूरे साल तक भोगना

पड़ता है उस किसान को। अगले वर्ष फिर फसल होगी तब जाकर कुछ प्राप्त होगा।

श्रीलाल शुक्ल इस उपन्यास में गरीब और खेतीहर किसानों की पीड़ा का सूत्र रूप में चित्रण करते हैं। वे इस विडम्बना को भी उभारने में सफल रहे हैं कि हम अनपढ़, गंवार, गरीब किसानों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं किन्तु उन्हीं की कला या गाये जाने वाले लोकगीतों को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं।

प्रभा कहती है- 'अच्छे तो मुझे बस यही ग्राम गीत लगते हैं। पढ़े-लिखे लोगों की कविता मुझे झूठ मालूम होती है। जिसकी बुद्धि विकसित हो गयी है वह कविता नहीं लिख सकता।' (वही पृष्ठ : 18)

यदि हम उनकी कला से प्रेम करते हैं तो उनसे भी प्रेम करें? श्रीलाल शुक्ल को मंतव्य यही है। इसके अतिरिक्त हम उनके पढ़-लिख जाने, कमाकर पेट भर लेने को भी सहन नहीं कर पा रहे हैं? गीतों की शुरुआत हो जाने पर मेजबान को बुलाने हेतु ओवर सीयर ने जाकर शराब पीते हुए रजनीकांत को बसंत के वापस चले जाने की बात कही तो विनायक को प्रतिक्रिया थी। 'आजकल

के जमाने में गंवारों के भी दिमाग हो गये हैं।' ये टिप्पणी अभिजात्य वर्ग के दंभ की प्रतीक है। जो उनकी गरीबी का फायदा उठाना चाहते हैं तथा उसे कभी भी ऊंचाई तक उठने नहीं देना चाहते। रजनीकांत लोकगीत सुनने नहीं आ पाते हैं। गायक गीत गाना शुरू कर देते हैं। प्रभा को उनकी पीड़ा का अनुभव होने लगता है- 'इन गीतों की भी क्या विडम्बना है। जिसके जीवन में प्रेम का एक आंसू भी न गिरा होगा, सहानुभूति की एक झलक भी मिली होगी, अंधेरी रात सा गहन, स्नेहहीन जीवन उसे जीकर वही प्रेम का गीत गाता है। आवेग भरी इस आवाज में, चमकती आंखों के उल्लास में जो मूर्छा छिपी है उसका अनुभव कौन कर सकता है? जीवन निराशा और संघर्षों से जर्जर हो रहा है। दो बीघे खेतों के साथ अस्तित्व से श्वास बांधे। उसको छीनने का भय दिखाकर जिस निरानन्द की विभीषिका सामने रखी गयी होगी, उसी से इस आनन्द की सृष्टि हो रही है।' (वही, पृष्ठ 62)

यह उपन्यास गरीबों के प्रति उपेक्षा एवं अपमान के विरुद्ध उनके प्रति आदर एवं सम्मान का भाव जगाता है। उनकी कला के

प्रति श्रद्धा प्रकट करता है। बड़े लोगों के शौक शराब पार्टी और शिकार करना, गरीबों व असहायों का उपहास उड़ाना उनका तिरस्कार करना आदि हैं। वे विचारों की 'कै' भी एक दूसरे पर करते रहते हैं। वे जीवन के उल्लास को अनुभव करना तथा उसका आनंद उठाना नहीं जानते। भावनात्मक ब्लैक मेल करना जानते हैं। बेगार लेना जानते हैं। श्रीलाल शुक्ल सूत्रात्मक ढंग से इन सभी मुद्दों को उठाते चलते हैं।

एक प्रायश्चित्त कथा के रूप में 'अज्ञातवास' एक नये ढंग का उपन्यास सिद्ध होता है। यह सभ्य और असभ्य, श्रमिक और अफसर के बीच के संबंधों एवं भेदों को सूक्ष्मता के साथ उजागर करता है।

विरल कथा के रूप में सघन संवेदनाओं को प्रस्तुत करने में श्रीलाल शुक्ल का यह उपन्यास नयी जमीन को तलाशता प्रतीत होता है।

1, न्यू कॉलोनी, झोखाड़ा
जयपुर (राजस्थान)

कैलाश मंडलेकर

हिंदी व्यंग्य के उपन्यासों की श्रृंखला

हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों की लम्बी फेहरिस्त नहीं है। यह अलहदा बात है कि हिंदी का पाठक व्यंग्य उपन्यासों को चाव से पढ़ता है तथा प्रतीक्षा में रहता है। यह सच है कि उपन्यास लेखन एक श्रमसाध्य कार्य है। फिर व्यंग्य उपन्यास तो एक अलहदा किस्म की मनःस्थिति और गहरी रचनात्मक ऊर्जा की मांग करता है। एक ऐसी ऊर्जा जो पाठक को उसके विसंगत यथार्थ से रूबरू भी कराती जाए और हंसी हंसी में उस नासूर को चीरती भी चली जाए जो एक लंबी बीमारी के फलस्वरूप बनता चला गया है। हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों ने यह काम बखूबी किया है। कहा जाता है कि जब श्रीलालजी का रागदरबारी आया तो उपन्यासों के परंपरागत आलोचकों ने उसका पर्याप्त गर्मजोशी से

स्वागत नहीं किया, उन्हें लगा कि यह उपन्यासों को जानी-पहचानी कथावस्तु से कुछ भिन्न है तथा इसमें उस किस्म की शैली, विन्यास अथवा सामाजिक ढांचे का निर्वाह नहीं हुआ है जिसका स्वाद वर्षों से हिंदी का पाठक चखता आया है। लेकिन पाठक वृंद ने रागदरबारी को जिस अंतरंगता और रूचि से हाथों हाथ लिया उसकी सच्चाई सबके सामने है। वही वाली बात कि हाथ कंगन को आरसी क्या?? पुरस्कार हालांकि किसी कृति की कसौटी नहीं होता लेकिन यह एक किस्म की मान्यता तो है ही! रागदरबारी अंततः पाठकीय अदालत में सर्वमान्य साबित हुआ और साहित्य अकादमी से पुरस्कृत एवं सम्मानित भी। अब तक उसके अनेक संस्करण आ चुके हैं और यह

सिलसिला अभी रुका भी नहीं है। अर्थात् अब भी बदस्तूर जारी है। अपने अनुभव से कहूं तो आज भी 'रागदरबारी' मेरे सिरहाने रहता है और गाहे बगाहे में उसके किसी भी पृष्ठ को खोलकर पढ़ लिया करता हूँ। 'रागदरबारी' का हर पृष्ठ एक मुकम्मिल कथावस्तु का सारतत्व लिए हुए है। श्रीलाल जी का मन सिर्फ एक 'रागदरबारी' लिखकर नहीं भरा। उनकी स्मृति में भारतीय समाज और राजनीति के कतिपय विरल और महत्वपूर्ण पक्ष शेष रह गए थे जो 'रागदरबारी' में अट नहीं पाए लेकिन जिन्हें सामने लाना जरूरी था लिहाजा 'पहला पड़ाव' उमराव नगर में कुछ दिन तथा 'विश्रामपुर का संत' आदि लिखकर उन्होंने हिंदी व्यंग्य उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण फेहरिस्त को अंजाम

दिया और निसंदेह ये सभी कृतियां 'रागदरबारी' की तरह ही महत्व रखती हैं तथा एक वृहद पाठक समुदाय में समादृत हैं।

परसाईजी का पहला उपन्यास 'तट की खोज' है जो वास्तव में एक लघु उपन्यास है 'रानी नागफनी की कहानी' दूसरा व्यंग्य उपन्यास है लेकिन उन्होंने स्वयं इसे एक मुकम्मिल उपन्यास नहीं माना। परसाईजी ने खुद स्वीकार किया है कि उनमें उपन्यास लेखन का धैर्य और अवकाश नहीं है। समसामयिक राजनीति एवं सामयिक घटनाक्रम उनके भीतर एक ऐसे रचनात्मक स्फुरण को जन्म देता है कि वे तत्काल प्रतिक्रिया के लिए उद्यत हो उठते हैं और औपन्यासिक विस्तरण के लिए विचारदीर्घता फिर शेष नहीं रह जाती। यों 'रानी नागफनी की कहानी' एक महत्वपूर्ण कृति है तथा समकालीन जीवन एवं सामाजिक विद्रूप पर पर्याप्त व्यंग्य प्रहार करती है। यह भी गौरतलब है कि हिंदी व्यंग्य को समृद्ध और संस्थापित करने में परसाई जी के अवदान को सारी दुनिया स्वीकारती है। उन्होंने व्यंग्य उपन्यास भले ही न लिखें हों लेकिन उनकी तमाम व्यंग्य कथाओं में कई व्यंग्य उपन्यासों की सामग्री विद्यमान है बल्कि व्यंग्य कथाओं का सूत्रपात ही परसाईजी से होता है। डॉ. प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित 'व्यंग्य यात्रा' के प्रवेशांक में महावीर अग्रवाल को दिए गए एक साक्षात्कार में परसाई जी ने एक बड़ा व्यंग्य उपन्यास लिखने की इच्छा जाहिर की है, दुर्भाग्य से ऐसा संभव नहीं हो सका।

मनोहर श्याम जोशी ने हिंदी में कई महत्वपूर्ण व्यंग्य उपन्यासों की रचना की जो शैली, बुनावट और विन्यास की दृष्टि से अपना एक अलहदा महत्व रखते हैं। कुंमाउनी की आंचलिक शुचिता और लोक समृद्धि से संपन्न उनका लोकप्रिय उपन्यास 'कसप' प्रेम और मनुहार की एक ऐसी कथा है जो युवाओं के मनोविज्ञान को गहराई से रेखांकित करती है। इस कृति में व्यंग्य की जो शिष्ट अंतर्धारा है वह एक वृहद पाठक वर्ग को आकर्षित करती है। इस श्रृंखला में 'कुरु कुरु स्वाह', 'हमजाद', 'टटा प्रोफेसर', 'षष्ठीवल्लभ पंत' तथा 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' जैसे उपन्यास उनके विट्संपन्न गद्य तथा व्यंग्य के नए तेवर का परिचय देते

हैं। मनोहर श्याम जोशी मूलतः कथाकार हैं तथा उन्होंने अपनी पत्रकारिता के अनुभवों के जरिए सर्वथा नई फिजा के व्यंग्य उपन्यासों की रचना की। उनका आखिरी उपन्यास 'कसप' भी एक उल्लेखनीय व्यंग्य उपन्यास है। जिसमें रहस्य रोमांच और यात्रा तथा ऐतिहासिकता जैसे तत्वों को व्यंग्यपरक मुद्रा में प्रस्तुत किया गया है।

नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' तथा 'पांच एक्सर्ड उपन्यास' अपने समय के सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों पर जमकर प्रहार करते हैं। नरेन्द्र कोहली यदि व्यंग्य उपन्यासों की दिशा में काम करते तो व्यंग्य साहित्य का पर्याप्त इजाफा होता किंतु उनकी रुचि पौराणिक एवं मिथकीय उपन्यासों की ओर सक्रिय हुई और इस क्षेत्र में उनकी कई कृतियां सामने आईं। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी के लगातार तीन व्यंग्य उपन्यास आए। इन उपन्यासों की रचना के पूर्व उनके व्यंग्य निबंध जिस तादाद में छप रहे थे उन्हें पढ़कर लग रहा था कि लेखक के पास कहने को इतना कुछ है कि वह लघु आकार के व्यंग्य निबंधों में समाहित नहीं हो पाएगा। और बिना व्यंग्य निबंध जिस तादाद में छप रहे थे उन्हें पढ़कर लग रहा था कि लेखक के पास कहने को इतना कुछ है कि वह लघु आकार के व्यंग्य निबंधों में समाहित नहीं हो पाएगा। और बिना व्यंग्य उपन्यास लिखे ज्ञान चतुर्वेदी मानेंगे नहीं। ज्ञान का 'नरकयात्रा' डॉक्टरों और अस्पतालों की आतंरिक विसंगतियों पर एकाग्र एक गहरा व्यंग्य उपन्यास है। इस उपन्यास की लोकप्रियता ने ज्ञान को एक बड़ा और महत्वपूर्ण लेखक बना दिया। मैंने अपने एक अन्य निबंध में नरक यात्रा के बाबत टिप्पणी करते हुए लिखा है— 'समूचे चिकित्सा तंत्र की बारीक शल्य चिकित्सा करके रख देने वाले इस अद्वितीय उपन्यास में ज्ञान का आत्म संघर्ष पराकाष्ठा पर है। खुद से लड़े बिना उसकी रचना असंभव है। ज्ञान चतुर्वेदी की यह औपन्यासिक यात्रा यदि मुहावरे का इस्तेमाल करते हुए कहूं तो तलवार की धार पर चलने जैसी है जिसकी परिणति सिवा लहुलुहान होने के और क्या हो सकती है। उस बीमार भोर में बलभद्र की लाठी खाता कुत्ता और किसी मनहूस वर्ष में टांग लटकाए कनछेदी की मौत तक का समूचा कथा

विस्तार व्यवस्था के विद्रूप पर तीखा प्रहार है। कुत्ते और गिद्ध यदि नरक यात्रा में यात्रा की शिखिसयत हासिल लिए हुए हैं तो यह अकारण नहीं है। वस्तुतः ज्ञान के अवचेतन में यह तथ्य गहराई से धंस चुका है कि अस्पताल का समूचा तंत्र गिद्धवत होता जा रहा है। लाठी प्रहार झेलता कुत्ता और छत पर संवादरत गिद्ध यदि कथा को गतिशीलता देते हैं तो यह ठीक ही है। काल की क्रूरता और परिवेश की गंध यदि असहनीय हो जाए तथा आदमी अपने अस्तित्व की ऊंचाईयां भूलकर बोनोपन की हड्डें छूने लगे तो मनुष्यों की कहानी को कुत्ते और गिद्ध ही आगे बढ़ाते हैं।'

ज्ञान चतुर्वेदी का दूसरा उपन्यास बारामासी 'नरक यात्रा' की तुलना में ज्यादा बड़ा केनवास लिए हुए है। बुंदेलखंड की आंचलिकता और सामाजिक अंतर्विरोधों पर यह उपन्यास एक विस्तृत और प्रतिनिधिक बयान की तरह है। ज्ञान चतुर्वेदी के एक अन्य उपन्यास 'मरीचिका' की चर्चा यद्यपि कम हुई है किंतु पौराणिकता का पुट लिए यह प्रयोगधर्मी उपन्यास ज्ञान की विट्संपन्नता और व्यंग्य बोध का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

शरद जोशी के एक व्यंग्य उपन्यास की चर्चा मैंने मित्रों से सुनी थी जो कदाचित्त उनके अवसान के बाद प्रकाशित हुआ है। दुर्भाग्यवश में उसे अभी तक जुटा नहीं पाया हूँ। यहां यह भी गौर तलब है कि शरद जोशी और परसाई अपने दौर में व्यंग्य स्तंभ लिखने की तात्कालिकता में मसरूफ रहे और 'व्यंग्य उपन्यास' लिखने के लिए पर्याप्त अवकाश नहीं निकाल सके। शरद जोशी और परसाई के स्तंभ लेखन अथवा अखबारी लेखन के बाबत प्रतिष्ठित व्यंग्यकार, संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय ने 'शरद जोशी एक यात्रा' में महत्वपूर्ण टिप्पणी की है, उन्होंने लिखा है 'शरद जोशी का लगभग व्यंग्य साहित्य विशेषकर सामाजिक लेखन सामाजिक घटनाओं की साहित्यिक प्रतिक्रिया दृष्टिगत होता है। मैं इसे हिंदी व्यंग्य साहित्य का दुर्भाग्य मानूंगा, हिंदी के दो प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और शरद जोशी की प्रतिभा का प्रयोग व्यंग्य के माध्यम से जीविकोपार्जन रहा है। व्यंग्य की अद्भुत शक्ति उनके पास है परंतु उस शक्ति का प्रयोग पत्र पत्रिकाओं में कॉलम लिखने में अधिक हुआ। राजनीतिक

घटनाओं पर लिखा गया व्यंग्य तत्कालीन घटनाओं के संदर्भ में तो ग्रहणीय हो सकता है परंतु कालांतर में संदर्भ विहीन होने के कारण पाठक के लिए सार्थक नहीं रह जाता है। (डॉ. प्रेम जनमेजय शरद जोशी : एक यात्रा में)। शंकर पुणतांबेकर के दो व्यंग्य उपन्यासों में अपने समय की अनेक विसंगतियां मौजूद हैं, इनमें एक मंत्री स्वर्गलोक में काफी चर्चित रहा। इसी तरह त्रिभुवन पांडे के दो व्यंग्य उपन्यास— ‘भगवान विष्णु की भारत यात्रा’ तथा ‘झूठ जैसा सच’ एवं श्रीराम ठाकुर दादा का ‘पच्चीस घंटे’ भी व्यंग्य के चर्चित उपन्यास हैं।

व्यंग्य उपन्यासों की श्रृंखला में एक नई भाषा और तेवर को लेकर यशवंत व्यास के दो उपन्यास अभी-अभी ही आए हैं। यशवंत व्यास की औपन्यासिकता गहरी राजनीतिक अंतर्दृष्टि लिए हुए होती है तिस पर वे पत्रकारिता के अनुभवों का विरल इस्तेमाल भी बखूबी करते हैं। यशवंत के व्यंग्य में हास्य का प्रायः अभाव रहता है लेकिन उनका व्यंग्यबोध खुखरी की तरह तीक्ष्ण और धारदार होता है। वे स्थितियों और व्यंग्य पात्रों पर प्रहार के वक्त इस फिक्क से प्रायः ऊपर रहते हैं कि चोट कितनी गहरी लगेगी और मरहम का क्या इंतजाम है। यशवंत फिल्मी लटकों और लोक मुहावरों का बेहिचक प्रयोग करते हैं बशर्ते बात मुकम्मिल हो और लक्ष्य तक पहुंचने में किसी तरह का अवरोध न रहे। तीर वहीं लगे जहां छोड़ा गया है। यशवंत के ‘चिंताघर’ तथा ‘कामरेड गोडसे’ हमारे समय के सामाजिक तथा राजनीतिक हालातों पर गहरी व्यंग्य प्रतिक्रियाओं के रूप में समादृत हैं। कामरेड गोडसे के बाबत आलोचक भारत भारद्वाज ने लिखा है— ‘कामरेड गोडसे व्यंग्य रूपकों से मीडिया, राजनीति और दंगे की कला को उत्तर आधुनिक समय में खिलंदड़ी भाषा के साथ और नए बिम्बों के मार्फत रचता है।’

दरअसल विषय की नवीनता तथा पठनीयता यशवंत व्यास के उपन्यासों की दुर्लभ विशेषता है। ये उपन्यास स्थितियों के विद्रूप और सच्चाई को स्पष्ट और विवेक सम्मत तार्किकता के साथ देखते हैं।

हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों की इस सुदीर्घ श्रृंखला में विनोद साव के दो उपन्यास

अपनी उपस्थिति को गहराई से रेखांकित करते हैं। विनोद का पहला उपन्यास ‘चुनाव’ भारतीय प्रजातंत्र और राजनीतिक अंतर्विरोधों पर केन्द्रित है जिसके बारे में कथाकार परदेशी राम वर्मा का मानना है कि ‘इस कृति ने विनोद को एकाएक सार्थक व्यंग्यकारों की जमात में ला खड़ा किया।’

‘चुनाव’ एक महत्वपूर्ण और चर्चित व्यंग्य उपन्यास है जिसने एक बड़े पाठक वर्ग का ध्यान खींचा। अपनी लोकाभिमुख विषय वस्तु तथा सहज व्यंग्य बोध के कारण उसकी व्याप्ति और पठनीयता संदिग्ध है। ‘भोंगपुर 30 कि.मी.’ विनोद साव का नया उपन्यास है। इस आलेख में इस उपन्यास की चर्चा विशेष रूप से की जा रही है। ‘भोंगपुर 30 कि.मी.’ शीर्षक चौंकाता है। लेकिन उक्त शीर्षक सिर्फ चौंकाने भर के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। उपन्यास की अंतर्वस्तु में 30 कि.मी. की यह दूरी एक कस्बे की भौगोलिकता तथा सामाजार्थिक संरचना को समझने में एक अनिवार्य तत्व की तरह इस्तेमाल हुई है। भोंगपुर कस्बा जोकि एक छोटा जिला मुख्यालय भी है तथा दुर्ग जैसे झझोले शहर से सिर्फ 30 कि. मी. की दूरी पर अवस्थित है। गति की तीव्रता एवं ग्लोबल विलेज के इस उत्तर आधुनिक समय में 30 कि.मी. की दूरी कोई माने नहीं रखती लेकिन भोंगपुर पहुंचने के लिए अथवा भोंगपुर से दुर्ग आने के लिए हमारे पास सिर्फ ‘हाफटेन’ नामक लारी हो, जो स्टार्ट होने के बाद कहीं भी खड़ी हो जाने की यांत्रिक विवशता से अभिशप्त हो तथा जिसकी तकनीकी में धकियाए जाने की अनिवार्यता जन्मना संलग्न हो, तब 30 कि.मी. की यह दूरी लंबी और महत्वपूर्ण हो जाती है।

‘भोंगपुर 30 कि.मी.’ एक ऐसे कस्बे की कथायात्रा है जो अपने कस्बाईहीनता बोध से बाहर निकलने की उतावली में है। शहर न हो पाने की पीड़ा भोगता भोंगपुर वस्तुतः शहरी होने के दिवास्वप्नों में खोया हुआ है और अपनी इस मानसिकता के कारण ठीक ठीक गांव भी नहीं रह पाता बल्कि गांव से भी बदतर हो जाता है। देश के असंख्य जनपदों की तरह भोंगपुर भी एक जनपद ही है जो मुगलई पराठा, कचहरी और दीगर रंगीनियों का स्वाद चखने की लिप्सा

में बार-बार दौड़कर शहर आता है। यहां गौर करने लायक बात यह है कि पचास साला आजादी और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की सरकारी गवर्णितियों के बावजूद भोंगपुर आज भी वहीं है और वैसा ही है तथा योजनाकारों को ठेंगा बताते हुए शहर जाने वाली हाफटेन पर लदाफदा बेतहासा भाग रहा है। विनोद साव बेहद कम शब्दों के इस्तेमाल से शहर और गांव के बीच पसरी हुई इस दूरी और राजनीतिक तथा सामाजिक विषमता को स्पष्ट करते हैं।

शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं की सामाजिक हैसियत, किशोर वय का प्रेम, जाति प्रथा, जीवन मूल्य और सांस्कृतिक विरासत जैसी कसौटियों को केन्द्रीय आधार मानकर रचा गया उक्त व्यंग्य उपन्यास अपनी कथावस्तु और चुटीली व्यंग्य स्थितियों के लिए भी एक प्रातिनिधिक कथा संसार का निर्माण करता है। जातियों के परस्पर अंतर्कलह का ढिंढोरा पीटे बगैर विनोद साव जातिगत दंशों को साफगोई से उकेरने में कामयाब होते हैं।

धार्मिकता एवं अंधविश्वास ऐसे प्रेरक तत्व हैं जो ग्रामीण जनजीवन में व्याप्त ऊब और नीरसता को कम करते हैं। भोंगपुर में बने शिवमंदिर के कारण लोगों में आस्था और विश्वास का वातावरण है। जैसी कि देवताओं की आदत रही है कि वे यदि प्रगट होते हैं तो अपने प्रगट होने के पूर्व लोगों को सपना देते हैं। भोंगपुर में बनने वाले शिवमंदिर के पीछे देवताओं का यही आचरण है जिसकी परिणति भोंगपुर के शिवमंदिर है।

यहां गौर करने लायक बात यह है कि विनोद साव व्यंग्य के हालात निर्मित नहीं करते वरन जो स्थितियां विद्यमान हैं उनके भीतर ही व्यंग्य को खोज लेते हैं और इस खोज के पीछे निर्ममता से किसी की खिल्ली उड़ाने अथवा उपहास करने का उनका मंतव्य बिल्कुल नहीं होता। दरअसल विनोद हालातों में सकारात्मक बदलाव के इरादे से समूचे घटना विधान की रचना करते हैं। इस रचना की प्रक्रिया ही विनोद के व्यंग्य को आकार देती है। विनोद खंजर और मरहम एक साथ लेकर चलते हैं। वे सुई का इस्तेमाल उघाड़ने के लिए ही नहीं उघड़े हुए को सिलने के लिए भी करते हैं।

38, नाका जसवाड़ा रोड, खंडवा, म.प्र.-450001

सुरेश सिंह यादव

व्यंग्य : प्रकृति और प्रभाव

समाज निर्माण और विकास प्रक्रिया में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य में हित-निहित होता है। जिसमें हित नहीं, वह साहित्य नहीं। साहित्य लोग हित-चिंतक और पद-प्रदर्शक होता है। वह बुराइयों को दूर कर भलाई का मार्ग प्रशस्त करता है। लोक में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों तथा अंधविश्वासों को हटाकर नैतिक मूल्यों की स्थापना, समानता की भावना और वैज्ञानिक सोच विकसित करने के लिए साहित्य ने जिन विधाओं का आश्रय लिया है, उसमें व्यंग्य प्रमुख है।

संवेदनशील हृदय और ज्ञान-बुद्धिमान मस्तिष्क के संयोग से निःसृत व्यक्ति, समाज और लोक हितकारी रचना 'साहित्य' है। साहित्यकार पर तत्कालीन यथार्थ का गहरा प्रभाव होता है। उसमें युग को समझने की क्षमता होती है। उसका लेखन तत्कालीन परिस्थितियों की मांग और अभिव्यक्ति है। यथार्थ से हट कर सृजित साहित्य समाज से कट जाता है। दुर्व्यवस्था, दुष्कृत्य, विषमता, अनैतिकता के विरुद्ध वाणी, विचार और लेखनी सदा चलती रही है। वाणी और विचार साहित्य में स्थान पाकर दीर्घकाल तक अपना कार्य करते हैं। साहित्य में बुराई का विरोध और अच्छाई की स्थापना के लिए आग्रह छिपा होता है। व्यंग्य यह कार्य अत्यंत प्रभावी, कलात्मक और तीखे तेवर के साथ करता है। इसके तीखे आग्रह की गूंज अंतस्तल को हिला देती है। व्यंग्य प्रतिबद्ध होकर समाज द्रोहियों पर गंभीर प्रहार करते हुए उन्हें सुमार्ग पर खींचने का प्रयास करता है। व्यंग्य शक्तिशाली, शोषक, भ्रष्टाचारियों नहीं दुर्बल, असहाय, शोषित, निरीह जन का पक्षधर होता है। वह इनके उपकार के लिए संकल्पित होता है। वह जीवन के सरोकारों से पूर्णतः जुड़ा होता है।

वि+अंग=व्यंग्य से 'व्यंग्य' की उत्पत्ति हुई है। हिंदी में यह अंग्रेजी शब्द 'सेटायर'

के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यद्यपि 'सेटायर' शब्द प्रायः व्यंग्य गीत के रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन हिंदी 'व्यंग्य' शब्द अपने व्यापक अर्थ में साहित्य की हर विधाओं में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होता रहा है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य का शुभारंभ कबीर दास ने किया। कबीर साहित्य में ऊंच-नीच, जाति-पाति, छुआछूत की भावना और पाखंड पर गंभीर चोट किया है। भक्ति काल में 'स्वांतःसुखाय' और रीतिकाल में 'स्वामिनः सुखाय (प्रशस्तिगान)' की भावना से रचनाएं हुईं। इन कालों में यत्र-तत्र ही व्यंग्य मिलते हैं। कबीर के बाद धारदार व्यंग्य की परंपरा खंडित हो गयी। आधुनिक काल में व्यंग्य अपनी समस्त विशेषताओं के साथ हिंदी-साहित्य में उपस्थित हुआ जो अनवरत प्रगति के पथ पर अग्रसर है। प्रारंभिक काल में व्यंग्य एक शैली के रूप में व्यक्त हुआ। इसकी प्रकृति धीरे-धीरे तीखी होती गयी। उसके प्रभाव, प्रहारक क्षमता और रोचकता में निरंतर वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप व्यंग्य ने हिंदी साहित्य में अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया। अब व्यंग्य साहित्य की एक 'विशिष्ट' विधा बन चुका है। विशिष्ट इसलिए कि वह समस्त विधाओं में अपनी विशेष प्रकृति (रोचकता, तीखे तेवर, गंभीर प्रहार और संवेदना) के साथ स्थापित है। व्यंग्य की शैली से विधा बनने तक की यात्रा कठिन नहीं, बल्कि सुखानंदपूर्ण रही है। परिणाम स्वरूप अल्पकाल में ही 'व्यंग्य' ने हिंदी ही नहीं अनेक साहित्य में अपनी मजबूत जमीन बना लिया।

हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं में व्यंग्य को सम्मान जनक स्थान मिला है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, एकांकी में व्यंग्य के प्रवेश से उसमें नयी स्फूर्ति भर गयी है। व्यंग्य साहित्य के भंडार में निरंतर वृद्धि होना उसकी महत्ता का

निर्विवाद प्रमाण है। व्यंग्य अपना लक्ष्य प्राप्त करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर रहा है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य को सम्मानित स्थान पर आसीन करने वाले साहित्यकारों की लंबी सूची है। भारतेंदु हरिश्चंद एवं समकालीन व्यंग्यकारों ने व्यंग्य के लिए जो उर्वर भूमि तैयार की उसमें वह शीघ्र ही नये रंग, रूप में अंकुरित हुआ। उसे प्रेषित और पल्लवित करने के लिए साहित्यकारों की लंबी पंक्ति लग गयी। बेदब बनारसी (कृष्ण देव प्रसाद गौड़), बेधड़क बनारसी (काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'), कांतानाथ पांडेय 'चोंच' (राजहंस), परिपूर्णानंद वर्मा, भैया जी बनारसी (मोहन लाल गुप्त), गुरु बनारसी (रुद्र काशिकेय), गोपाल प्रसाद व्यास, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जी.पी. श्रीवास्तव, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', विंध्याचल प्रसाद गुप्त, नागार्जुन, केशवचंद्र वर्मा, हरिशंकर परसाई, रवींद्र नाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी, शरद जोशी, नरेंद्र कोहली, रांगेय राघव, वदीउज्जमा, राधेश्याम वर्मा, श्याम सुंदर घोष, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, गोपाल चतुर्वेदी, शेरजंग गर्ग, लतीफ घोषी, बालेंदु शेखर तिवारी, अजातशत्रु (राधेश्याम यादव), सूर्यबाला, सुभाष चंद्र, हरीश नवल, सुरेश कांत, अशोक शुक्ल, रोशनलाल सुरीरवाला, श्रीनारायण चतुर्वेदी, निरंकुश (हरिश्चंद्र), दामोदर दत्त दीक्षित, यशवंत व्यास, ईश्वर शर्मा आदि के उल्लेखनीय योगदान से 'व्यंग्य' हिंदी साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो चुका है।

व्यंग्य व्यक्ति और समाज में व्याप्त बुराइयों से उत्पन्न अभिव्यक्ति है। वह बुराइयों को उजागर कर जनता को सावधान करता है। व्यंग्य बुरे लोगों और बुराइयों से लड़ने वाला अहिंसक हथियार है। वह व्यक्ति नहीं उसके दुष्कर्मों पर प्रहार करता है, फिर भी

उसका हृदय घायल हो जाता है। वह पीड़ा से तिलमिलाता है और क्रोध से बौखलाता है। बुराई पैदा करने वाले ऐरे-गैरे नहीं बल्कि प्रभावशाली होते हैं। इतने प्रभावशाली कि यदि ये चाहें तो बुराई की जड़ तक समाप्त हो सकती है, परंतु ऐसा नहीं चाहते। इसलिए कि इनकी प्रकृति ही ऐसी होती है। इनको दुष्प्रवृत्ति से निवृत्त करना कठिन है। हां उस पर लगाम लगाया जा सकता है। यह कार्य बिना हिंसा के व्यंग्य ही कर सकता है। व्यंग्यकार इस कार्य को चुनौती मानकर, प्रतिबद्ध होकर करता है। मंजा-मंजाया व्यंग्यकार ही बुराई और उसके जन्मदाता, प्रश्रयदाता, समर्थकों पर प्रभावी व्यंग्यास्त्र छोड़ सकता है।

व्यंग्यास्त्र जब लक्ष्य पर प्रहार करता है तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत गंभीर होती है। यह स्वाभाविक है, क्योंकि सामने वाला कोई लल्लू-बुद्धू नहीं होता। इस प्रहार से यदि वह उबर जाता है तो और प्रबल होकर प्रहारक पर ही वार करता है। अब व्यंग्यास्त्रधारी की परीक्षा शुरू हो जाती है। वह असफल हो गया तो अस्त्र रख देगा। यदि साहसी और प्रतिबद्ध है तो और गंभीर व्यंग्यास्त्र का प्रयोग करेगा। इस बार वह सामने वाले को चित कर सकता है। कभी-कभी चित होने के बावजूद ये पीठ की धूल झाड़कर विजयी मुद्रा में चितकर्ता का उपहास करते हैं। उसकी घोर निंदा कर उसे नकारात्मक सोंच वाला बताकर शांत करने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग पक्के दुष्कर्मों होते हैं। दुष्कर्म से पके हुए ये अपनी पराजय स्वीकारना हेंठी समझते हैं। कुछ भी हो सत्य तो सत्य ही होता है। समाज सत्य से परिचित हो चुका होता है। जब ये सिर उठाकर छाती फुलाते हैं, तो समाज मुस्कराता है। यह मुस्कराहट उसके हृदय पर चोट करती है। अब वह अंतरात्मा के दबाव से स्वयं को पराजित स्वीकारते हुए सुमार्ग पर चलने का प्रयास करते हैं।

‘व्यंग्य’ रचनात्मक और सकारात्मक होता है। बुराई का विरोध और अच्छाई का समर्थन उसकी मूल भावना होती है। व्यंग्य का सृजन व्यक्ति, समाज और लोकहित के निमित्त होता है। उसकी प्रवृत्ति आलोचनात्मक होने के कारण उसमें उग्रता होती है। कभी-कभी उसका तेवर इतना तीखा हो

जाता है कि कुमार्गियों के लिए असहनीय हो जाता है। व्यंग्य दुराचारियों के लिए जितना असहनीय होता है, उनसे पीड़ित लोग उतना ही संतोष प्राप्त करते हैं।

‘व्यंग्य’ सदा कड़वा भी नहीं होता। कभी-कभी वह हास्य को साथ लेकर प्रहार करता है। इसे व्यंग्य का प्राथमिक प्रहार कहा जा सकता है। इस स्तर पर वह सहलाकर, गुदगुदाकर हंसाते हुए वार करता है। यहां व्यंग्य भले ठंडा लगे लेकिन उसकी प्रकृति गर्म ही रहती है। यदि वह सफल नहीं हुआ तो स्पष्ट है कि लक्ष्य कठिन है। ऐसे पके बिगड़ैलों को सुधारने के लिए कड़े तमाचे की आवश्यकता होती है। व्यंग्य यह कार्य करने में पारंगत तो है ही। जब वह प्रतिबद्ध होकर चलता है, तो गाल लाल कर हृदय को तिलमिला देता है।

‘व्यंग्य’ बुराइयों के विरोध में वह कथन या लेखन है, जो व्यक्ति, समाज या व्यवस्था में व्याप्त दोषों को उजागर कर से दूर करने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति, समाज, मानवता, अच्छे, बुरे सभी का हितैषी होता है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिबद्ध होता है।

हां में हां मिलाने और मीठी-मीठी बातें करने वाले तो सर्वत्र सुलभ होते हैं, परंतु सत्य और हितकारी बातें बोलने वो दुर्लभ हैं। सुलभ लोग धनी, शक्तिशाली और कुर्सी धारियों के अगल-बगल, आगे-पीछे मंडराते रहते हैं। वे अपने कर्म-धर्म का पालन करने के लिए हृदय से सक्रिय रहते हैं। इसके बदले वे उचित सम्मान तो प्राप्त करते ही हैं, अपना स्वार्थ भी सिद्ध कर लेते हैं। प्रशंसा से गद्गद उनके आराध्य सीना तानकर चलते हुए स्वयं को धन्य समझते हैं। इन मदांशों को पता नहीं कि मेरे गुणगायक मेरी लुटिया डुबाने का कार्य कर रहे हैं। दुर्लभ निंदक ही मेरे हित-चिंतक हैं। उल्लेखनीय है कि स्वार्थी निंदक भी हित-चिंतक हो सकता है। निंदा ज्वर से सदाग्रस्त रहने वालों की अक-बक कभी बंद नहीं होती, इसलिए वह कभी-कभी ही हितकारी निंदा करते हैं। आदत के वशीभूत निंदक निश्चय ही निंदा ज्वर से ग्रस्त होते हैं। वह अच्छे-बुरे समस्त कार्यों की निंदा करते हैं। निंदा उनकी प्रकृति बन जाती है। अतः वे निंदा के विशेष पात्र होते हैं। उत्तम निंदक

बुरे कार्यों की ही निंदा करते हैं, इसलिए वह हितकारी होती है। ऐसे निंदक प्रशंसनीय हैं।

सत्य बात कड़वी परंतु हितकारी होती है। सत्यभाषी (दुर्लभ) समाज और लोक-हितकारी होते हैं। व्यंग्यकार इन्हीं में से पैदा होते हैं। निर्भीकता, सच्चाई, ईमानदारी और बुराइयों को उजागर करने के लिए प्रतिबद्धता सच्चे व्यंग्यकार की कसौटी है। यही उसका कर्म और धर्म होता है। इस पर खरा उतरने वाला सच्चा और पक्का व्यंग्यकार होता है। वह समाज का बहुत उपयोगी प्राणी होता है। उसका होना कुछ लोगों को भले खटकें लेकिन मंगलकारी होता है। उसकी अनुपस्थिति में बुराइयों की बेलें दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती हैं। वह इनकी जड़ों में गर्म पानी डालता है। वह ऊपर से भले ही निर्दयी लगता है लेकिन अंदर से दयालु होता है। वह अपने साथ भी उतनी ही दया या निर्दयता करता है, जितना औरों के साथ।

व्यंग्यकार समाज का जिम्मेदार व्यक्ति होता है। कोई माने या न माने वह ऐसा मानता है। इसलिए है भी। वह संवेदनशील होता है, इसलिए दुष्कर्मों की भनक से ही बौखला जाता है। व्यक्ति, समाज और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार उसके हृदय में पके फोड़े की तरह मथने लगता है। वह उसे जब तक फोड़ नहीं देता, शांति नहीं पाता। उसके प्रहार से बुराई के पोषक आहत होते हैं, तो डूबते निरीह, शोषित, असहायों को मजबूत सहारा मिल जाता है। इन्हें लगता है कि हमारे पक्ष में भी कोई है। इसलिए व्यंग्यकार असहायों का प्रिय और पीड़कों के लिए अप्रिय होता है। बुरे कर्मों के कर्ता-धर्ता आंखें होने पर भी उसे देखना नहीं चाहते। ये उसे मूर्ख घोषित कर उसके मार्ग में कांटे बिखेरते हैं। पक्का व्यंग्यकार अपना मार्ग नहीं बदलता बल्कि कांटों को रौंद कर चलता है। वह इसलिए संतुष्ट होता है कि मैंने कुछ किया। जैसे परसाई को पिटाई परोसी गयी तो संतुष्ट होकर बोले—‘मेरा लेखन आज सफल हो गया।’ हरि से अधिक शंकर ‘हरिशंकर’ विष पीकर उगलते तो समाज विरोधी छटपटाने लगते। हरिशंकर स्वयं तो शांति पाते ही पीड़ितों को भी प्रदान करते। व्यंग्यकार में जब ऐसी क्षमता आ जाती है तो उसे पक्का व्यंग्यकार बनने में विलंब नहीं होता।

व्यंग्यकार का बुराईयों से छतीस सा संबंध होता है। सफल व्यंग्यकार स्वयं छः बनकर बुराईयों को तीन बना देता है। अच्छा तो तब होता जब वह स्वयं भले तीन बन जाय लेकिन बुराईयों को शून्य बना देता। यह बहुत बड़ी चुनौती है। इस पर विजय प्राप्त करना बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

व्यंग्य लेखन शौक नहीं गंभीर पीड़ा की कलात्मक अभिव्यक्ति है। व्यक्ति और समाज में व्याप्त बुराईयां व्यंग्यकार के हृदय में आग की तरह धधकती रहती हैं। वह उसे ठंडा करने के लिए सदा प्रयासरत रहता है। व्यंग्य प्रहार एक जोखिमपूर्ण कार्य है। उसके सफल होने पर प्रहारक की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है और सफलता पर उसका उपहास किया जाता है। व्यंग्यकार को सौ सोनारों जैसा नहीं, एक लोहार जैसा प्रहारक होना चाहिए ताकि उसके एक हथौड़े से सैकड़ों बुराईयों के फन कुचल जाय।

मेरीडिथ ने व्यंग्यकार को 'नैतिकता का ठेकेदार', बर्नार्ड शा ने 'विश्व का उद्धारक' और सदरलैंड ने 'न्यायाधीश की तरह न्याय-पालन तथा शिष्ट समाज की मर्यादाओं की रक्षा करने वाला' माना है।

परसाई ने अपने व्यंग्य लेखन का उद्देश्य बताते हुए कहा है कि 'मैं इसलिए लिखता हूँ कि व्यक्ति और समाज आत्म साक्षात्कार और आत्मालोचना करे। अपनी कमजोरियाँ, बुराईयाँ, विसंगतियाँ, विवेकहीनता, न्यायहीनता त्याग कर जैसा वह है, उससे बेहतर बने। अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं, अवैज्ञानिक आग्रहों और आत्मघाती रूढ़ियों से मुक्त हो। वह न्यायी, दयालु और संवेदनशील हो।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यंग्यकार का कार्य महान है। व्यंग्य सोद्देश्य होता है। वह लोक में सत्यं शिवं सुंदरम् की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध होता है। व्यंग्य का प्रयोजन विद्रूपताओं, असमानताओं, छल छद्मों, भ्रष्टाचार और अंधविश्वासों को दूर कर जनकल्याणकारी व्यवस्था स्थापित करने के लिए किया जाता है।

आज विश्व विकास के पथ पर तीव्र गति से चल रहा है। हर क्षेत्र में विकास हो रहा है। भ्रष्टाचार के विकास की गति कुछ अधिक ही तीव्र है। स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अनेकानेक युक्तियाँ अपनायी जा रही

हैं। इसमें ऐसी युक्तियों की अधिकता है जिससे सामाजिक और मानवीय मूल्यों पर गंभीर ठेस लग रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्य का स्वर तीखा होना स्वाभाविक है। व्यंग्य ही वह प्रभावी अस्त्र है, जिससे बुराईयों को नियंत्रित किया जा सकता है। व्यंग्य में घृणा और भर्त्सना गोले में बारूद जैसा काम करती है। व्यंग्यास्त्र जहाँ समाज विरोधियों को घायल कर उनके घाव पर नमक छिड़कता है, वहीं असहाय और प्रताड़ितों का चिकित्सक बनकर मरहम लगाता है। परिणाम स्वरूप समाज विरोधी व्यंग्य प्रहारों से बचने के लिए निंदनीय कार्यों से दूर रहने का प्रयास करते हैं।

व्यंग्य को समझने के लिए मस्तिष्क पर बल लगाना पड़ता है। कभी-कभी पाठक और श्रोता को अभिधा और लक्षणा से आगे व्यंजना तक जाना पड़ता है। व्यंग्य जब अपने उत्कर्ष में होता है तो व्यंजना में चलने लगता है। यहाँ तक न पहुँचने वाले उत्कृष्ट व्यंग्य को नहीं समझ पाते। उनकी स्थिति उस चुटकुला न समझ पाने वाले की तरह होती है, जो हंसकर आनंद प्राप्त कर रहे लोगों का मुंह देखता रहता है।

व्यंग्य की प्रकृति प्रहारक और सुधारक है। यदि उसमें मनोरंजन की उत्पत्ति हो जाती है तो कभी-कभी उसका कुछ नहीं बिगड़ता, कभी-कभी सब कुछ बिगड़ जाता है। गंभीर विषयों में गंभीरता ही नष्ट हो जायेगी तो व्यंग्य निष्प्रभावी हो जायेगा। उसका प्रहार शिथिल पड़ जायेगा और सुधार का संकल्प पूर्ण नहीं होगा। मनोरंजन के लिए 'हास्य' है। हास्य को व्यंग्य से दूर करना आवश्यक है। दोनों के घालमेल से किसी का उपकार नहीं हो सकता। अलग-अलग रहने पर वे अपना कार्य प्रभावी ढंग से करेंगे। हास्य और व्यंग्य की बहुत निभी। प्रारंभिक काल में उन्नति के लिए इनका एक साथ रहना आवश्यक था। यद्यपि दोनों की अलग-अलग प्रकृति, कर्म, प्रभाव और उद्देश्य है। इसलिए ये स्वतंत्र रहकर एक साथ रहने की अपेक्षा उत्कृष्ट कार्य करेंगे। पहले शुद्ध व्यंग्यकार या हास्यकार को एक नाम (हास्य व्यंग्यकार) से जाना जाता था। गंभीर विषयों पर कलम चलाने वाले व्यंग्यकार इस नाम को स्वीकारने से बचते थे। शायद इसीलिए परसाई जी व्यंग्य को विधा नहीं मानते और स्वयं को

‘समता संदेश’

शिक्षा की पड़ताल

2009 अंक



प्रधान संपादक-हिम्मत सेठ

हेमंठ चण्डालिया, नंद चतुर्वेदी

सुरेश पंडित आदि के

विचारोत्तेजक लेख

संपर्क

30 ए भूपालपुरा, उदयपुर-1

केवल साहित्यकार बनाये रखना चाहते थे। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि व्यंग्य का भी अपना हास्य होता है। जो उस हास्य (मनोरंजन वाले) से अलग होता है। व्यंग्य के हास्य को 'उपहास' कहना उचित होगा।

व्यंग्य ने जीवन और साहित्य के हर क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। यह बड़े-बड़े भ्रष्ट, शोषक एवं अन्य समाज विरोधी कार्यों में लिप्त लोगों पर गंभीर प्रहार कर उन्हें कदम बढ़ाने से पूर्व सोचने को विवश करता है। व्यंग्य के भय से अनेक अनैतिक कार्य रुक जाते हैं। साहित्य में यदि व्यंग्य का आगमन न होता तो सर्वत्र अनैतिकता का ही राज रहता।

मनुष्य एक कठिन प्राणी है। उसका हृदय और मस्तिष्क बहुत ही चंचल है। वह कब, क्या सोचने और करने लगेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। कई मामलों में पशु मनुष्य से उत्तम है। पशु अपने आश्रयदाता के प्रति समर्पित रहता है, लेकिन मनुष्य समर्थ होने पर उसके सिर पर चढ़ जाता है। उपकारी का अपकार करता है। उपदेश देने पर स्वयं को उपदेशक से विद्वान समझ कर अकड़ता है। सम्मान देने पर घमंड करने लगता है। विश्वास करने पर छल करता है। दया और क्षमा को दुर्बलता समझता है। परिश्रम से सुख प्राप्त करने वालों से ईर्ष्या करता है तथा उसे उससे वंचित करने का कुचक्र रचता है। 'व्यंग्य' ऐसे मनुष्यों को उनकी गलतियों और सीमा का ज्ञान कराता है। यदि वह अक्खड़, बिगड़ैल है तो उसे व्यंग्यास्त्र से सुधारने का प्रयास करता है।

निवास-ग्राम-भटौ

जनपद-गाजीपुर, उ.प्र., पिन-233304

डॉ० उर्मिला मिश्रा

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य

विरेचित मनःस्थिति से निकलता हुआ, व्यंग्य के आलंबन को नश्वर की तरह चुभाता हुआ, झिल की तरह कुरेदता हुआ तथा सहृदयों को हास्य में लपेटता हुआ, करुणा से भिगोता हुआ शब्द व्यंग्य की संज्ञा पाता है। व्यंग्य त्रिविमिय है अतः सृजक आलंबन एवं सामाजिक आलंबन को चुभन देता है तथा सामाजिक को राहत प्रदान करता है। जबकि अन्य भाव जैसे भक्ति, प्रेम, क्रोध आदि एक विमिय ही है। भक्ति का भाव श्रोता में भी भक्ति भरता है एवं रचियता में भी। इसी प्रकार प्रेम, क्रोधादि भाव जितने लेखक के मन में रहते हैं, कमोवेष्टा रूप में उसी तरह सामाजिक के मन में भी अपनी प्रतिक्रिया छोड़ते हैं। यह त्रिविमिय व्यंग्य साहित्य की कोई विधा नहीं है अपितु संपूर्ण विद्याओं में स्थान पाने वाला वह अस्त्र है जो अपनी भेदन क्षमता के कारण दिल के आर-पार हो जाता है और अपनी सांद्रता के कारण तुरंत प्रभावी होकर आक्रोशादि भावों को जन्म देता है। व्यंग्य परिस्थिति से जन्म लेता है, परिस्थिति में सांस लेता है और परिस्थिति के साथ मर जाता है। व्यंग्य से उत्पन्न हास्य का क्षेत्र केवल होठों को चौड़ा करके बत्तीसी दिखाने तक ही सीमित नहीं रहता। वह तो साहित्य एवं पत्रकारिता में भागीदारी निबाहते हुए सामयिक चेतना को झकझोर के रख देता है। पत्रकारिता की जद में मौजूद व्यंग्य देश और काल को प्रभावित करता है। अखबारों में छपने वाले व्यंग्य हास्य में लिपटे हुए होने पर भी अपने चारों तरफ एक पूरे युग की त्रासदी को चिपकाए रहते हैं अर्थात् साहित्य एवं पत्रकारिता की हंसी नहीं होती। उच्च स्तर के हास्य व्यंग्य के लिए उदात्त चित्तवृत्ति और परिष्कृत रुचि आवश्यक है। कुठित एवं विकृत मनःस्थिति-परिस्थिति दोनों ही व्यंग्य की धरती को बंजर बना देती है। इसलिए प्रत्येक युग की जमीन पर व्यंग्य पैदा नहीं हो

सकता है।

व्यंग्यकार स्वतंत्र होता है। न वह आश्रित होता है और न पराजित मनोवृत्ति का होता है। वह आत्मा से भी स्वतंत्र होता है और विधा के बंधन से भी। इसलिए विवक्त परिस्थितियों, विवक्त व्यक्तियों, विवक्त कालों एवं विवक्त घटनाओं में ताल-मेल स्थापित कर लेता है। इतने विवक्त तत्वों में तालमेल के कारण ही व्यंग्य सीधे ही प्रहार क्षमता से संपन्न होता है। प्रतिशोध लेने की क्षमता से वंचित स्वस्थ मनोवृत्ति के व्यक्ति के लिए व्यंग्य आक्सीजन का कार्य करता है क्योंकि आज के पूंजीवादी समाज में, अफरातफरी के युग में जबकि भौतिकता ही स्तर का पर्याय बन गई है, बौद्धिक एवं ईमानदार व्यक्ति अपनी अस्मिता को समाप्त होते हुए पाता है, ऐसे समय में व्यंग्य की तलवार ही उसके पास अस्मिता को बचाने का तथा अपने शत्रु पर प्रहार करने का सशक्त माध्यम रह जाती है। इसलिए आज व्यंग्य वृश्चिक-दंशन की सी तीखी लहर के साथ खड़ा हुआ है। हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा चालीस वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है क्योंकि विशुद्ध व्यंग्य एवं हास्य का विस्तार स्वस्थ परिष्कृत एवं विरेचित मनःस्थिति में ही होता है।

भारतेंदु युग में व्यंग्य को फलित होने को उपयुक्त जमीन मिली। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में हास्य-व्यंग्य के स्तंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से ही शुरू किए। यथा 'देखी तुमरी काशी लोगों' आदि व्यंग्य और विनोद के सुंदर स्तंभों के शीर्षक बन गए। प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट में भी हास्य विनोद की प्रवृत्ति मिलती है। पराभूत राष्ट्र को पुनः जागृत करने के लिए यथा शोषक शासकों पर गुप्त प्रहार करने के लिए व्यंग्य को हास्य मिश्रित बनाया गया और सांस्कृतिक संजीवनी हास्य के पेय से उसे वीर्यवान बनाया गया और व्यंग्य से उसकी

प्रहारात्मक चेतना को बल दिया। इस युग में व्यंग्य में विस्तार कम है घनत्व अधिक।

दरअसल व्यंग्य का मूलाधार असंतुलन विसंगति आक्रोश विद्रोही आदि है। विसंगति का जितना व्यापक विस्तार होगा उतना ही व्यापक विस्तार व्यंग्य कथ्य का होगा। व्यंग्य के लिए स्वतंत्र मानसिकता का होना अनिवार्य है। इसलिए स्वतंत्रता से पूर्व व्यंग्य पनपने के लिए कोई विशेष अनुकूल स्थिति नहीं थी लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद परिवेश में अनेक परिवर्तन हुए। अंग्रेज गए 'भारतीय' व्यवस्था में आए अपेक्षाएं बढ़ीं परंतु मोहभंग के अलावा अधिक कुछ नहीं हुआ और व्यंग्य विधा के विकास के प्रेरक तत्व दिखायी देने लगे जैसे—

1. मोहभंग
2. करनी और कथनी में भेद
3. नैतिकता के स्तर में गिरावट
4. भौतिकता के प्रभाव
5. समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षित उन्नति का न होना।

स्वातंत्र्योत्तर काल में दुनिया भर की विसंगतियों ने व्यंग्य विधा को बहुमुखी आयामों में वाणी दी। 60 वर्षों की पूरी विकृतियों को व्यंग्यकारों ने सूक्ष्मता से देखा परखा भोगा तत्पश्चात् प्रकट किया। जीवन के विविध क्षेत्रों में भारत भर में व्यंग्य का प्रादुर्भाव रहा। व्यष्टि से समष्टि तक के मानवीय क्रिया-कलापों में जर्जर नृशंस अनैतिक भ्रष्ट पापी भयानक व्यवस्था का पर्याय आज व्यंग्य विधा है। बड़े-बड़े विद्वान धर्म धुरंधर मंत्री नेता प्रशासक आदर्श गुरु प्रधानाचार्य आदि की करनी और कथनी में जितना अंतर है उतना ही गहरा व्यंग्य अस्तित्व में आ रहा है। व्यंग्य प्रत्यक्ष जीवन से साक्षात्कार करता है। अतः हम उसे विशुद्ध जीवन की विधा समझते हैं। व्यंग्य विधा सभ्यता का चोला पहनने वालों की रिश्वतखोरी पक्षपात सिफारिश समय की अपव्ययता आदि कारनामों को

लेकर पर्दाफाश करता है और पर्दे के पीछे रह कर भी अपने पैसेपन का संकेत देता रहता है। व्यंग्य एक दूरबीन की तरह है जिसमें हम दूर तक देख सकते हैं। इसमें खट्टा-मीठापन चिह्न छटपटाहट निंदा आक्रोश आदि सभी भाव समाहित हैं। व्यंग्य विधा के इस शस्त्र ने जीवन के सभी आयामों पर प्रहार किया है। विशेषतः राजनैतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिपरक असंगतियों का रहस्य प्रकट किया है। आचार्य मम्मट और आनंदवर्धन ने तो अपने ग्रंथों में व्यंग्य की चर्चा विस्तार से की है।

पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य विधा के रूप में अठारहवीं शताब्दी में ही स्वीकृति पा चुका था। इसके स्वरूप निर्धारण में अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अपना योगदान दिया है। जिनमें आर्चिलेचस सिमोना इडस हिप्पोनकस गोयस लुसिलियस ज्यूहेनाल इरंस्मस उचरिच हवान हंटेजा जोसफ हाल जानकार्टन मॉलियर सक्वेयुल बटलर ड्रायन अलैक्जंडर पोप जोनाथन स्वीफ्ट हवोलटेयर बायरन जेम्स रूझेल लंवेल्स मालांक जार्ज बर्नाड शा कारलाईल जार्ज आरवेल इहलन आदि हैं।

परंतु जब हिंदी व्यंग्य साहित्य का अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि व्यंग्य कबीर, बिहारी, निराला मेंसे गुजरता हुआ प्रगतिवाद साहित्य में प्रविष्ट हुआ फिर प्रयोगवाद एवं नई कविता में फला फूला और समकालीन कविता में उसकी जड़ें इतनी गहरी हो गई कि स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो गया। अब तो हिंदी साहित्य में स्वतंत्र रूप से धारदार व्यंग्य लिखने वाले व्यंग्यकार हैं यथा हरशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, राधाकृष्ण, केशवचंद्र वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, डा. नरेंद्र कोहली, लतीफ घोषी, डा. बलेंदु शेखर तिवारी, डा. शंकर पुणतांबेकर, डा. रोशनलाल सुरीरवाला, डा. इंद्रनाथ मदान, डा. संसारचंद्र अमृतराय, डा. सुदर्शन मजीठिया, अशोक शुक्ल, सुबोधकुमार श्रीवास्तव, संतोष खरे, स्व. लक्ष्मीकांत वैष्णव, डा. ज्ञान चतुर्वेदी, के.पी. सक्सेना, सुरेश सेठ, प्रेम जनमेजय, श्रीराम ठाकुर, विष्णुदेव पांडेय, डा. शिव ठाकुर, डा. रामेश्वरप्रसाद सिंह आदि।

उपरोक्त व्यंग्यकारों में से शीर्षस्थ व्यंग्यकार हरशंकर परसाई की परसाई

रचनावली प्रकाशित होने के बाद भी वे परंपरागत विधा लेखन के चौखटों को निरंतर तोड़कर रचना करते रहे। इन्होंने अपने व्यंग्यों में रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों पर जोरदार आक्रमण किया। इनके व्यंग्यों के विषय रोजमर्रा की जिंदगी के विषय हैं पर उनमें ताजगी है। जिस प्रकार कहा जाता है कि आजादी से पूर्व के हिंदुस्तान की स्थिति को पढ़ना है तो प्रेमचंद पढ़ें इसी प्रकार इनके विषय में भी कहा जाता है कि आजादी के बाद की हिंदुस्तान की स्थिति को देखना चाहते हैं तो परसाई को पढ़िये। परसाई के संदर्भ में मुक्ति बोध ने लिखा है कि 'परसाई का सबसे बड़ा सामर्थ्य संवेदनात्मक रूप से यथार्थ का आंकलन है चाहे वह राजनैतिक प्रश्न हो या चरित्रगत। हमारे यहां भी साहित्यिक संस्कृति ने सच्चाई के प्रकटीकरण पर जो हठबंदी करके रखी है उसे देखते हुए परसाईजी की कला सहज ही वामपक्षी हो जाती है।

शरद जोशी हिंदी व्यंग्य विधा को सशक्त करने में संसार की बड़ी हस्ती है। नुकीले गहरे तथा तीखे व्यंग्य के लिए हिंदी साहित्य में विख्यात शरद जोशी की समग्र रचनाओं में राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और प्रशासनिक विसंगतियों का पर्दाफाश मिलता है। विसंगति की उर्वरा भूमि में व्यंग्य-पौध को खाद देने वालों में शरद जोशी के समग्र व्यंग्य-साहित्य का अवलोकन कर डा. शंकर पुणतांबेकर को निम्नांकित वक्तव्य देना पड़ा। शरद जोशी आज के जाने-माने साहित्यकारों में से एक हैं इनके व्यंग्य में विवरण का कौशल तर्क चुटकी भरी विमुग्धता और रूप विधान में रचना-वक्रता मिलेगी। यह व्यंग्य अंततः रिझाता है।

व्यंग्य विधा को सशक्त बनाने वालों में परसाईजी की तरह रवींद्रनाथ त्यागी का नाम भी गौरव से लिया जाता है। उनके व्यंग्यों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य प्रतिभावान लेखकों के दृष्टान्त तथा संदर्भों का उपयोग किया है। जैसे शेक्सपीयर, वुडहाउस, कालीदास, भृतरि, पंत, बिहारी, गालिब, मोमिन, इत्यादि। त्यागी ने व्यंग्य लेखन में वाक्यों की आंतरिक बनावट में वैदग्ध्य का पूरा खयाल रखा है। जैसे 'आपके जाने से यह दफ्तर विधवा हो जाएगा जबकि आपके रहते-रहते सती हो



प्रख्यात कथाकार संजीव पर केंद्रित

नामवर सिंह, राजेंद्र यादव,
विश्वनाथ त्रिपाठी, गोपेश्वर सिंह,
रोहिणी अग्रवाल, सत्यकाम
शिवमूर्ति, प्रेमपाल शर्मा आदि

संपर्क

बी-107, सैक्टर-43, नोएडा

रहा था।'

इसके अनंतर एक अन्य महान चिंतन, विचारक, संस्कृति रक्षक तथा व्यंग्यकार के रूप में विख्यात केशवचंद्र शर्मा के अनमोल योगदान की मैं सराहना करती हूं जिन्होंने आठ रचनाएं साहित्य को दीं। उनके व्यंग्यों का उद्देश्य थीकी हुई भारतीय संस्कृति को आधुनिकतम बनाना है।

व्यंग्य की प्रभावसत्ता बहुआयामी है और व्यंग्यकार सीमाओं में बंधा है। उसमें पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। भाषा में कसावट हो अतिरेक नहीं। जे. मिडिल्टन मर्रे का व्यंग्य की भाषा शैली के संदर्भ में विचार है कि व्यंग्य भाषा की शैलीय चरमता वक्तव्य की संक्षिप्ति और प्रभावसिद्धि में निहित है। प्रहारक भाषा की निर्मित के लिए व्यंग्यकार को बहुत घुमावदार अर्थधारियों और शब्दों से गुजरना पड़ता है। अनुभव और अभिव्यक्ति को नई दीक्षा ही विराट सार्थकता का नाम है-व्यंग्य लेखन। आगामी समय में संभावना यह है कि व्यंग्य अनुभव और संप्रेषण की तीखी धार की नूतन जाली बुनेगा।

विभागाध्यक्ष हिंदी,

मीरा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, संगरिया (राज.)

प
रि
च
य

सूर्यशाला



जन्म स्थान, तिथि	: वाराणसी, 25 अक्टूबर 1943
शैक्षणिक योग्यता	: काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'रीति काव्य' में पी.एच.डी। प्रारंभिक शिक्षा के स्नातक शिक्षा तक, आर्य महिला महाविद्यालय, वाराणसी।
मां	: स्वर्गीय श्रीमती केशर कुमारी
पिता	: स्वर्गीय श्रीवारप्रताप सिंह
भाई-बहन	: चार बहनें क्रमशः वीर बाला, केशर बाला, चन्द्र बाला तथा भाई विष्णुप्रताप।
विवाह	: जून 1963, वाराणसी
पति	: श्री आर.के. लाल, मर्चेन्ट नेवी में मरीन इंजीनियर— तत्पश्चात बहुराष्ट्रीय कंपनी में उच्च प्रबंधक- वर्तमान सेवानिवृत्त दो पुत्र एक पुत्री अभिलाष लाल, अनुराग लाल, दिव्या लाल। पौत्र-पौत्री-दौहित्री-शुचिता, अभिनय, अनन्दिता, नन्दिनी एवं अदिति।
लेखन की पृष्ठभूमि	: घर परिवार में पढ़ने लिखने, कला संगीत का सुरुचिपूर्ण वातावरण। पिता शिक्षा-विभाग में उच्च पदाधिकारी। माता-पिता की कला, संगीत एवं साहित्य में रुचि, घर में हारमोनियम, बांसुरी, ग्रामोफोन। पहली कहानी 'जीजी' सारिका में अक्टूबर 1972 अंक में प्रकाशित। पहली व्यंग्य रचना 'खाना ईट का, आना समाजवाला का' और दूसरी कहानी 'अविभाज्य' धर्मयुग 1973 के अंकों में प्रकाशित। दूसरा व तीसरा लघु उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' एवं 'अग्निपंखी' साप्ताहिक रविवार में (79) धारावाहिक प्रकाशित। लंबी कहानी रेस (धर्मयुग) विशेष रूप से चर्चित। उपन्यास 'दीक्षान्त' सारिका में सम्पूर्ण प्रकाशित एवं पाठकों द्वारा प्रशंसित। रचनाओं का मराठी, उर्दू, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़ और अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर प्रायः सभी उपन्यासों एवं कहानियों का रूपांतर एवं प्रस्तुति। नेहरू सेंटर (लंदन) न्यूयार्क के 'शब्द स्टार' टी.वी. कार्यक्रम में कहानी एवं व्यंग्य रचनाओं का पाठ।
सम्मान	: प्रियदर्शिनी पुरस्कार, घनश्यामदास पुरस्कार, व्यंग्यश्री सम्मान एवं पुरस्कार, कमलादेवी गोइनका वाग्देवी पुरस्कार आदि।
कृतियां उपन्यास कथा संग्रह	: मेरे संधि पत्र, सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी, दीक्षान्त, यामिनी कथा। : एक इन्द्रधनुष : जुबेदा के नाम, दिशाहीन, थालीभर चांद, मुंडेर पर, गृह-प्रवेश, कात्यायिनी-संवाद, सांझवाती, इक्कीस कहानियां, पांच लंबी कहानियां, मानुष गंध सिस्टर प्लीज आप जाना नहीं, वे जरी के फूल तथा अन्य प्रेम कहानियां।
शीघ्र प्रकाश्य व्यंग्य संग्रह	: गौरागुनवन्ती। : अजगर करे न चाकरी, धृतराष्ट्र टाइम्स, देश सेवा के अखाड़े में, भगवान ने कहा था।
शीघ्र प्रकाश्य	: मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं।

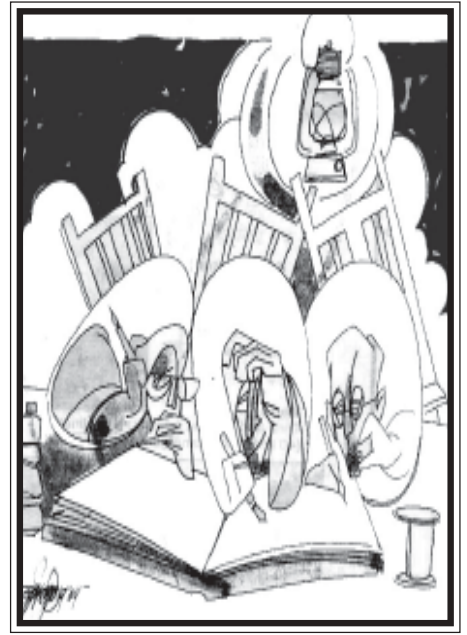
अपनी तस्वीर से अलग

यदि हम किसी लेखक की कोई कृति पढ़ते हैं और उस लेखक से न तो मिले हों और न ही उसके बारे में कुछ पढ़ा हो तो बहुत स्वाभाविक है कि हम उसकी तस्वीर कृति के आधार पर बना लेते हैं। इसी मानसिकता के चलते धार्मिक पुस्तकें लिखने वाले लेखक की तस्वीर तिलकधारी की बनती है और हास्य लेखक की किसी हंसोड़ जोकर की जो बात-बात पर आपको हंसाएगा। लेखक की कृति उसके व्यक्तित्व का रेखाचित्र निर्मित करती है और ये दीगर बात है कि अक्सर ये तस्वीर बहुत कुछ झूठी साबित होती है।

सूर्यबाला के लेखन से मैं वर्षों से परिचित था, धर्मयुग के समय से। 1973 और उसके लगभग दस साल बाद तक का वो धर्मयुगीय समय है जिसमें मेरी पीढ़ी के अनेक लेखकों को भारती जी ने न केवल खूब छपा अपितु साहित्य जगत में स्थापित कर दिया। सूर्यबाला एक ऐसी ही रचनाकार हैं। 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'रेस', 'मेरे संधि पत्र' जैसी उनकी अनेक कृतियों ने धीरे-धीरे मुझे उनका प्रशंसक बना दिया। 1989 में उनका पहला व्यंग्य संकलन आया तो उन्होंने मुझे भेजा और उसके पहले पृष्ठ के आरंभ में लिखा सम्मति एवं समीक्षार्थ तथा मध्य में लिखा- भाई प्रेम जनमेजय को शुभकामनाओं सहित। मुझे याद है कि मैंने उनका यह संकलन एक ही सिटिंग में किसी रोचक उपन्यास की तरह पढ़ लिया। मुझे सूर्यबाला की दो बातों ने विशेष रूप से प्रभावित किया, पहली तो यह कि वे हास्य या व्यंग्य को जबरदस्ती रचना में इंजेक्ट नहीं करती हैं और दूसरी यह कि वह अपने और पाठक के बीच बहुत कम दूरी बनाकर चलती हैं। ऐसा लगता है कि लेखिका आपके पास बैठी आपको रचना सुना रही है। वे न तो चलते फैंशन की विषयों की वासनाओं में फंसती हैं और न ही किसी अपने किसी अग्रज की कार्वन कॉपी बनने में विश्वास करती हैं। 'साक्षात्कार' में प्रकाशित अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने चाहे ज्ञान चतुर्वेदी से कहा हो- डिमांड से लिखने का मूड बनता है। व्यंग्य तो मैंने अक्सर पत्रिकाओं के आये पत्रों के पीछे से ही लिखना शुरू किया है। अभी भी मैं फोन पर डिमांड करने वालों से विनम्रतापूर्वक अनुरोध करती हूँ कि वे कम-से-कम एक डेढ़ माह का समय अवश्य दें तथा बीच में एकाध बार फोन पर खटखटा दें। डिमांड की इस सादगी पर आपका भी मरने का दिल चाहेगा। मैंने भी उनसे पत्रिका के लिए रचना-प्रक्रिया डिमांड पर ही लिखवाई और डिमांड पर लिखने वाली इस लेखिका से जब एक महीने तक केवल आश्वासन ही मिले तो संपादक का धैर्य जवाब दे गया और स्वर कुछ तेज तो बहुत शालीनता के साथ सूर्यबाला ने कहा- प्रेम मैंने तुम्हारा स्वर ऐसा कभी नहीं सुना है, लगता है बहुत परेशान हो। इस वाक्य में संपादक के प्रति संवेदना भी थी और लेखकीय स्वाभिमान कि हे संपादक! सावधान, अपनी परेशानी के चलते स्वर को तीखा मत करा।

पिछले दस वर्षों में लगातार मिलने से मैं सूर्यबाला और उनके स्वभाव को समझ गया हूँ परंतु जब पहली बार लम्बी मुलाकात हुई तो उनके संबंध में बनी मेरी तस्वीर टूटी थी। त्रिनिदाद में जब मई 2002 में होने वाली अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी की योजना बनी तो मैंने सूर्यबाला जी को भी निमंत्रण भेजा। निमंत्रण इस अंदाज में भेजा था कि वे आएंगी तो नहीं, भेज देते हैं क्योंकि इतनी लंबी यात्रा कर उन जैसी छुई-मुई व्यक्तित्व वाली महिला के त्रिनिदाद जैसे कम लुभावने देश में आने की संभावना लगभग शून्य ही होती है। पर आश्चर्य तब हुआ जब उनका 'कैरेबियन में हिंदी के प्रचार-प्रसार में कबीर और तुलसी के योगदान' पर उनके आलेख की रूपरेखा और त्रिनिदाद में आने की उत्सुकता परिचय हुआ। ये एक लंबा प्रसंग है, पर संक्षेप में कहूँ तो, जब वे अकेली पहुंच गई और उनके बारे में निरंतर और जानने का अवसर मिला, तो भी विश्वास नहीं हुआ कि वे अकेली यहां पहुंची हैं।

सूर्यबाला जब भी साहित्य, प्रकाशक, पुरस्कार आदि के बारे में चर्चा करती हैं तो इतनी अज्ञानी और मासूम नज़र आती हैं कि सोचने को विवश होना पड़ता है कि



विसंगतियों पर तीखे प्रहार करने वाली लेखिका सूर्यबाला क्या ये ही हैं। 'सारे राह कुढ़ते-कुढ़ते' से एक अंश देखिए- पहले छोटे दर्जे के साहित्यकार थे, कम कुढ़ते थे। अब साहित्य के भरे-पूरे पंडाल में आ गये हैं, सो जिम्मेदारियां, व्यस्तताएं बढ़ गई हैं। पहले की अपेक्षा बड़े पैमाने पर कुढ़ना पड़ता है। बड़ा साहित्यकार होने के साथ ही सबसे अहम दायित्व लेखक का यही होता है कि इसमें लेखक की क्वालिटी बदतर हो या बेहतर, इससे किसी को कोई खास फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उसके कुढ़ने की क्वालिटी और क्वांटिटी फौरन बढ़ जानी चाहिए, क्योंकि छोटी साहित्यकारी के जमाने में जो काम खुदरे स्केल पर टटपूँजिए किस्म का होता था, वह अब थोक व्यापार के रूप में योजनाबद्ध तरीके से होता है। महफिलें बैठती हैं, गोष्ठियां होती हैं, साथ-साथ मिल-जुलकर यह क्रिया संपन्न की जाती है। शास्त्रों में इसे ही 'ब्रह्मानंद सहोदर' का सुख कहा गया है।

यदि शांति मेहरोत्रा, सूर्यबाला, अलका पाठक जैसी लेखिकाएं व्यंग्य नहीं लिखतीं तो व्यंग्य-लेखन को पुरुषोचित लेखन मानने से आलोचकों को कोई नहीं रोक सकता था और हिंदी व्यंग्य नारी-विमर्श-विहीन होने का अभिशाप झेलता। मेरी एक इच्छा है सूर्यबाला जी के पास कथा का अद्भुत शिल्प है और लंबी रचना लिखने में वे सिद्धहस्त भी हैं, यदि वे व्यंग्य उपन्यास भी लिखें तो कृपा होगी।

-प्रेम जनमेजय

सूर्यबाला

‘यह व्यंग्य कौ पंथ’ अर्थात ‘रचने की प्रक्रिया’

मैंने कभी अपने होशोहवास में व्यंग्य लिखने या व्यंग्यकार बनने की कोशिश नहीं की लेकिन न जाने कैसे थोड़ी न थोड़ी होती चली गई। अब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो लगता है, थी जरूर बचपन से ही, बल्कि जन्म-जात (जोकि एक व्यंग्यकार होता है) जिंदगी से खाद पानी मिली तो लेखन में भी एक छोटी-मोटी फसल लहलहा उठी वरना यह साहित्य नाम की दुनिया तो गुरुगंभीरता से इतनी ठुंसी-ठुंसाई होती है कि आम तौर पर उसमें हास्य-व्यंग्य के लिए जगह बनाना आसान नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यंग्य गंभीर नहीं होता, सिर्फ वह गंभीरता का ढोंग नहीं भरता।

‘लिखने’ की बात करें तो मेरा पूरा लेखन ही व्यवस्था और तरतीबी से कोसों दूर है और व्यंग्य लेखन तो सही मायने में ‘अचानक की उपज’ और ‘अनायास की उपलब्धि’ है।

धूमकेतु-सा प्रगट होता है। व्यंग्य रचने का मूलभाव और अंदर बाहर का सब कुछ उखाड़ता पटकता अपना रास्ता बनाना शुरू कर देता है। एकद ज़िद्दी बच्चे-सा कि ‘यह चीज’ अभी ही चाहिए ही यह चीज यानी मेरी कलम। ज़िद्दी हठी बच्चे प्रायः अपना काम करवा ले जाते हैं, कभी-कभी चांटा खा वापस चले जाते हैं. . . अच्छे शालीन बच्चे अपने प्राण्य की प्रतीक्षा करते रह जाते हैं।

तो मुझ जैसी संतुलित, अनुशासित गृहणी की दिनचर्या के सारे तारतम्य अपनी निदियाई ठोकर से धितराता यह ज़िद्दी बच्चा दिल-दिमाग पर काबिज हो जाता है। आज अगर समय ने मुहलत दी कलम हाथ में थमाई तो बात की बात में सहयोगी शब्दों, विचारों के हुजूम जुटते चले आते हैं और कारवां चल पड़ता है, वरना यह ज़िद्दी बच्चा चांटा खाकर घर-बाहर के भीड़ भड़ाके में कहीं गुम हो जाता है।

विसंगतियां और विद्रूप तो तुंसे हैं जीवन में अंदर-बाहर चारों तरफ. . .दिमाग में भीड़ लगी ही होती है, घनघोर ट्रैफिक जात तक की स्थितियां. . .और आप जानते हैं कि भयंकर ट्रैफिक जाम में कोई आवागमन तरीके से चल सकता है? . . .ये रचनाकार के जीवन की विडम्बना है जिनके बीच उसे हमेशा एक अनजानी-सी प्रतीक्षा उस आहद के इल्हाम की होती है जिसमें बिना न कोई रचना अपना रूपाकार ले सकती है न उसमें प्राण-प्रतिष्ठा हो सकती है। एक बार यह इल्हामी क्षण हाथों से छूटता है तो वापस उसी रूप में शायद ही फिर कभी मिल पाता है। यह वह क्षण होता है जो व्यंग्य रचना का व्यंग्य की तराश देता है। शैली से विधा जनाता है और साधन से साध्य भी। बेशक जब कभी जीवन के किसी पक्ष या समाज के किसी क्षेत्र से जुड़े गहरे और व्यापक अनुभव का कच्चा माल इकट्ठा हो जाता है तब ज्ञान चतुर्वेदी भी नरक यात्रा, बारामासी,

विष्णु नागर भी ‘आदमी स्वर्ग में’ यशवंत व्यास की ‘कामरेड गोडसे’ और गिरीश पंकज की ‘माफिया’ जैसी लंबी पारी की कृतियां सामने आती हैं। लेकिन चूंकि विधा के रूप में मेरा व्यंग्य-लेखन छोटी रचनाओं का ज्यादा करीबी रहा, इसलिए मेरे लिए यह कौंधा विशेष अहमियत रहती है। शब्द शक्तियों के सिर्फ शब्दबेधी बाण अर्थात केवल ‘व्यंजना’ के ही उपयोग की घूटा। यहां के व्यंजना शब्दों को बेध, तराश, उलट-पलट कर व्यंग्य-विषय और विचार के अनुकूल बनाती है। क्योंकि उद्रेक करुणा का हो या अवसाद का, तीक्ष्णता विसंगति की हो या विद्रूप की, पेश उसे चटपटा, जायकेदार और स्वास्थ्यवर्द्धक बनाकर ही करना है।

अनायास चलती यह रचना-प्रक्रिया एक अनूठा हल्कापन और निश्चितता सौंपती है, अपने अनुभव में अनिवर्यनीय होती है। इसी दौरान एक और बड़ी तृप्ति तब मिलती है जब प्रमुख मुद्दे के साथ-साथ कुछ और विचार (पहले से बिलकुल न सोचे हुए) एकदम फ्रेश, बाई-प्रोडक्ट की तरह हाथ लग जाते हैं और एक अतिरिक्त रचना का बोनस मिल जाता है। संयमों से संदर्भों के खुलने की यह प्रक्रिया भी एक अजूबा होती है। मेरी प्रिय व्यंग्य रचना भगवान के हाथ में भगवान द्वारा व्यक्त किए गए, एक के बाद एक दिलचस्प और विद्रूप भरे उद्गारों में से अधिकांश लिखते हुए ही आ जुड़े थे, इसी तरह गजानन बनाम गजा नायक में गणपति के हाथ में शंख, पदम, मदिरा के साथ मोबाइल थमाने का आइडिया भी तत्क्षा की उपलब्धि रही। ऐसी प्राप्ति के क्षण लिखने के दौरान मिले खुशगवार झोंके की तरह होते हैं, प्रवाह को सुगम और सुखमय बनाते हैं वरना इसके उलट कभी-कभी ऐसे अवरोध भी आते हैं।

अचानक शब्दों विचारों की जबरदस्त टकराहटों के बीच सोचे हुए. . .जाम हो जाता है। अब स्थिति यह होती है खिन्नताओं और फुफुलाहट के झाड़, खण्डहरों के बीचों-बीच गाड़ी अड़ी है और रास्ता ठप्प बंद। ऐसे में मैं चुपचाप कागज कलम वह छोड़ उठ आती हूँ और मौसम बदलने का इंतजार करती हूँ। सचमुच दृश्य बदलता है या मूड रुकी हुई गाड़ी अचानक स्टार्ट हो जाती है, अवरोध स्वयमेव हट जाते हैं और रचना शब्दों, विचारों भरवों के ग्रीन सिगलों को पार करती, सहजता से रास्ता निकाल ले जाती है।

एक रचना की चलती प्रक्रिया के बीच से निकल आई एक अतिरिक्त रचना का सर्वोत्तम उदाहरण मेरे पुरस्कारों पर लिखें, व्यंग्य हैं। ‘हिंदी साहित्य की पुरस्कार परंपरा’ ‘एक पुरस्कार यात्रा’ और ‘आयोजन पुरस्कार मेले का’ जैसे व्यंग्य एक से ही मूल गृह नक्षत्र से टूटे कई उल्का पिंड के समान हैं लेकिन मूल विषय एक होने के बावजूद, तीनों तीन भिन्न संदर्भों की आयरनी को डील करते हैं।

शुरुआती आवेग में लिखी गयी मेरी रचना के बेतरतीब और अराजकता हो जाने का मुझे प्रायः कहर रहता है। यह भी मूल भाव की शुद्धता और तीक्ष्णता को ज्यादा से ज्यादा प्रभावी बनाने के अतिउत्साहित होता है। उस समय सावन के अंधे को हरा-हरा ही दिखाई देता है। इसीलिए जरूरी होता है कि रचना पूरी होने के लिए उसे आंखों से ओझल कर दिया जाए। दो-चार दिन ही सही पर व्यंग्य रचना को दिमाग से क्लीन प्लेट की तरह, साफ कर देना मेरे लिए अनिवार्य हो जाता है। उसके बाद पूरी तरह तटस्थ बल्कि आलोचकी दृष्टि से पुनरावलोकन करती हूँ और सारे अतिरेकी बयर में काट-छांट अर्थात एडिटिंग होती है। मैं इसे लेकर अतिरिक्त सर्तक रहती हूँ क्योंकि व्यंग्य के बेकाबू हो जाने के बहुत खतरे होते हैं। अन्य विधाओं का शिल्प ज्यादा से ज्यादा आरोपित सायास या सपाट लग सकता है जबकि व्यंग्य जरा-सी असावधानी से फूहड़ और अशिष्ट तक हो सकता है जो मेरी प्रकृति के विरुद्ध है।

खुद में और खुद से जुड़ी चीजों को लेकर हृद की मीन-मेख निकालने वाली मेरी प्रकृति बड़े से बड़े व्यंग्यकार की भी इस असावधानी आदत और कमजोरी को नहीं बखानती। संपूर्ण आस्था से किसी भी बड़े व्यंग्यकार के लेखन पर समर्पित होने के बावजूद अंध भक्ति मैं नहीं कर पाती।

यह तो हुआ छोटी-व्यंग्य रचनाओं के साथ किया जाने वाला सुलूक। बड़ी रचना या छोटे-बड़े व्यंग्य उपन्यास के मंसूबे कई बार अंधे जरूर लेकिन कागज पर उतर नहीं पाये। सिर्फ एक रचना 'गजानन बनाम गण नायक' लंबी कहानी की शक्ति ले पाई। थोड़े परिश्रम से यह रचना एक औसत उपन्यास में परिवर्तित हो सकती थी। इसकी मूल उद्भावना सर्वथा अधूरी, मेरी रुचि के अनुकूल थी लेकिन तब तक अन्य विधाओं ने ऐसा धावा बोला कि बात लंबी व्यंग्य कहानी पर छूट गई।

यह अन्याय या ज्यादाती अक्सर मेरी रचनाओं के साथ हो गई है। कई विधाओं में समान रुचि और लगाव होने के कारण मैं व्यंग्य को उतना समय नहीं दे पायी जितने की यह विधा अधिकारी थी और मैं स्वयं भी चाहती थी। इतनी कोशिश अवश्य रही कि असर 'क्वांटिटी' पर भले हो, पर नहीं।

प्रारंभ से ही थोड़ी स्ट्रेटजी बनाकर महत्वाकांक्षी योजनाओं के साथ लिखती और किसी भी एक विषय पर केंद्रित करती तो संभवतः उपलिब्ध और बाहरी सफलताओं की दृष्टि से थोड़ा बेहतर दर्जा हासिल कर पाती लेकिन उस सबकी मुझे न समझ, न सुविधा, न शऊर रहीं यह सब मेरी प्राथमिकता में कभी शुमार न हो पाया। मेरे लिए 'लिखने' से मिलने वाला सुख ही सर्वोपरि था, और यह सुख रचना से मिलता है, 'विधा' से नहीं।

जब इस विधा रचना कलम की नोक पर हो, वही मेरा इष्ट। यह इष्ट, यह सुख मुझे भरपूर मिला। रही 'मनचाहा' लिखने और अपना 'सर्वश्रेष्ठ' न दे पाने वाली बात तो वह 'मलाल' प्रायः सभी रचनाकारों के साथ जुड़ा होता है। हमारा पूरा लेखन, अपने उस सर्वश्रेष्ठ तक पहुंचने की कोशिश भर होता है। इस कोशिश में यानी मेरे पूरे लेखन में 'व्यंग्य' ने बेहद अहम भूमिका निभायी है, विधा के रूप में भी, शैली के रूप में भी। सफर के रूप में भी, साधन के रूप में भी। क्योंकि शुद्ध व्यंग्य लेख से अलग मेरी कहानियों में



त्रिनिदाद में आयोजित संगोष्ठी के अवसर पर देशी-विदेशी साहित्यकारों के साथ सूर्यबाला

भी जहां सिचुएशन्स ने झोली फैलायी मेरी कलम ने अलादीनी चिराग के जिन की तरह हुकूम बजाया। ऐसी कहानियों में 'साऊजी और बंदर', 'एक स्त्री के कारनाम', 'होगी जय पुरुषोत्तम नवीन', 'सुनंदा छोकरी कर डायरी', 'मातम', 'मानुषगंध', 'गजानन बनाम गण नायक', 'शदी और रिमोट', 'शहर की सबसे दर्दनाम खबर' आदि हैं। प्रमुख हैं जिनमें 'सपोर्टिंग आर्टिस्ट' होने के बावजूद कहानी की शक्ति और सौंदर्य व्यंग्य के कंधों पर टिका है। बेशक 'गजानन बनाम . . . और मातम' जैसी कहानियों को शुद्ध व्यंग्य कहानी की श्रेणी में डाला जा सकता है।

'समय' ने भी पिछले दशक वर्षों में जो छलांग लगायी है, उसने भी मनोयोग, से मन मुताबिक लिखने का इत्मीनान छीन लिया है। उसे पाने, जुटाने के लिए हमें ऐड़ी चोटी का पसीना एक करना होता है। अस्त-व्यस्तताओं और आपाधापियों के कम कहर नहीं टूटते। मुझे लगता है कभी-कभी तो लेखक बने रहने के लिए मनुष्य बने रहने वाली शर्तों को भी अनदेखा करना पड़ता है। मुझे आपको पता भी नहीं चलता कि विसंगतियों के खिलाफ चलने वाली हमारी कलम इन्हीं विसंगतियों के साथ कितने गलत समझौते करती चल रही है अनजाने।

एक अंतिम बात जिस तरह लोग मुझे घेर कर पूछते हैं कि आपकी प्रमुख विधा क्या है? . . . (आशय यही कि मैं खुद अपने मुंह से स्वीकार लूं कि व्यंग्य मेरी प्रमुख विधा नहीं है) तो स्वयं मैं भी अक्सर खुद को कटघरे में खड़ा कर यह सवाल दुहराती हूँ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं सायास हठपूर्वक किसी महत्वाकांक्षा के तहत जबरदस्ती जिद ठानकर व्यंग्य के अहाते में जगह छेंका कर बैठ गयी हूँ? . . . लेकिन तब रात यह सोच कर मिलती है कि साहित्य के विस्तृत मंच पर प्रवेश के लिए, जिस रचना के माध्यम से मुझे कमलेश्वर जी का प्रमाण-पत्र मिला था, वह रचना, सारिका में छपी 'निर्गुण' जी का एक प्रेम कहानी अब शीर्षक याद नहीं पर लिखी एक व्यंग्य प्रतिक्रिया ही थी और उसका शीर्षक था, 'यादों की चेन में बरसात की रात का एक लॉकेट।'

बी-504, रुनवाल सेंटर, गोबंडी स्टेशन रोड, देवनार (चेंबूर), मुंबई-88

ज्ञान चतुर्वेदी

जैसी हैं वैसी बनी रहें सूर्यबाला

बहुत कठिन है सूर्यबाला पर लिखना।

ऐसी लेखिका का भी क्या मतलब जो बस लिखने में ही विश्वास करती रही हो? ऐसी कथाकार को क्या नाम देंगे जिसे स्वयं को व्यंग्यकार कहलवाने में गर्व महसूस होता हो जबकि माहौल यह है कि तुरंत में जो जो व्यंग्य की ही खाते-पचाते रहे हैं वे तक स्वयं को व्यंग्यकार कहे जाने पर आहत महसूस करते हैं? जैसी लेखिका का क्या करें कि जिसे यह न पता हो कि हिंदी की आलोचना, संपादन तथा पुरस्कारों की राजनीति में हाईकमान के दफ्तर कहां-कहां हैं और उनको कैसे साधा जाता है? ऐसी लेखिका का क्या करें कि जिसने सारा जीवन घर, पति, बच्चों, गृहस्थी, रिश्तेदारी, चूल्हा करते नष्ट कर दिया हो ओर जिसके कोई ऐसे किस्से ही न हों कि जिन्हें सुरापान करते वह लोग चटखारे लेकर सुना सकें? और ऐसी लेखिका का क्या करें जो अपने पाठकों के सिवाय किसी की चिंता ही न करती हो?

सूर्यबाला ऐसी ही कठिन लेखिका हैं। साधारण सी, सीधी-साधी स्त्री। ऐसे में अब क्या तो लिखो ऐसे व्यक्तित्व पर आज जब तथाकथित स्त्रीविमर्श की चौपर खेलते सिद्धहस्त महिला विमर्शी संपादकों और आलोचकों के बीच गोष्ठियों की तरह वापसी जाती लेखिकाओं का एक समूह साहित्य पर कबिज होने को आतुर है, ऐसे में इस तरह के नकली स्त्री विमर्श के विरुद्ध तीखे और बेबाक व्यंग्य लिखने वाली सूर्यबाला पर लिखकर आप क्यों स्वयं को रुढ़िवादी, पोंगापंथी लेखक कहलवाना चाहेंगे?

आमतौर पर मानना यह है कि सीधे-साधे लोगों के या कोई किस्से ही नहीं हो या फिर बार-बार किस्से होते हैं या फिर वे कहानियां बड़े रूटीन से धार्मिक कहानियां स्वयं ही होती या हो सकती हैं। रंगबिरंगे किस्से जिन्हें पाठक रुचिपूर्वक पढ़ें, वे तो उनके ही होते या हो सकते हैं जिनके बारे में महफिल में फुसफुसाकर बात की जाती है। बहरहाल मैं सूर्यबाला पर इसलिए लिखना चाहता हूं कि पाठक एक ऐसे व्यक्तित्व को जाने जैसे व्यक्तित्व बनाने आजकल ईश्वर ने लगभग बंद कर दिए हैं।

उसका क्या कहेंगे आप ऐसी लेखिका को, जो ज्ञान चतुर्वेदी जैसे लेखक पर मात्र उसे पढ़कर ही, या एक दो पत्र या फोन पर बातें करके ही ऐसा अगाध विश्वास कर बैठे कि उन्नीस सौ पचानवे में अचानक ही उनके निवास पर बिना आमंत्रण या चेतावनी के अचानक आ धमके। ज्ञान चतुर्वेदी को अग्रहपूर्वक पंद्रह हजार रुपए दे दे कि तुम फ्रांस जा रहे हो इतने कम पैसे लेकर तो ये भी साथ रखो। कभी वहां जरूरत हो तो? आओ तो लौटा देना। मैं कार्डियोलॉजी ट्रेनिंग के लिए फ्रांस जा रहा था। जीवन में मेरी पहली विदेश यात्रा फॉरेन एक्सचेंज क्या होता है, इससे पहले पता ही नहीं था। थोड़े

बहुत फ्रेंक लेकर भोपाल से चल दिया फ्रांस का फतह करने। रात की उड़ान थी। बंबई सुबह पहुंच गया, हां किसी को जानता नहीं था। सूर्यबाला से भी पहले कभी मिला नहीं था। फिर भी न जाने कौन सा विश्वास था मन में कि भेल के गेस्ट हाउस में सीधे उनके घर। पहली मुलाकात और ऐसी आत्मीयता या तो आपकी दीदी दे सके या मां। पता ही नहीं चला कि यह मेरा घर नहीं है। कितनी बातें। पेट भर खाना खिलाया। यहां वहां की गप्पे चलीं। कि बातचीत में ही अचानक उनको पता चला कि इतने कम पैसे लेकर मैं बाहर जा रहा हूं। इन्होंने तभी दो तीन घंटे पहले घर का कुछ कबाड़ बेचा था वे पैसे घर पर थे खुद के पैसे। जबरन पकड़ाये मुझे। फिर पता करके बताया कि चर्चगेट पर फॉरेन एक्सचेंज मिलेगा। व्यवस्था कराई। मैं बाद में रास्तेभर सोचता रहा कि क्या रिश्ते होते हैं जिनका कोई नाम नहीं होता। पर जो इतने प्रगाढ़ और ऐसे पवित्र होते हैं कि लगते हैं कि जन्मों से हम इस व्यक्ति को हम जानते हैं। . .यह बात अलग हुई कि मैं उतना खर्च नहीं कर सका। मेरी पत्नी शशि कहती है कि तुम कंजूस हो। पता नहीं कि हूं कि नहीं। हां फिजूल खर्च नहीं हूं। नहीं खर्च किए। बंबई लौटते से सबसे पहले वापस करने निकल पड़ा तो सूर्यबाला की आत्मीय फटकार कि ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी रेजमरी?

मुझे नहीं मालूम था कि सूर्यबाला के साथ अपने संबंध को कैसे परिभाषित करूं? मां कहूं, बड़ी भेनजी कह दूं, दोस्त कह दूं, अपनी प्रशंसिका कह दूं, मेरी प्रिय लेखिका कहूं- क्या कहूं? वे सब कुछ एक साथ हैं। मेरे लेखन की घनघोर प्रशंसिका हैं। इतनी पीठ ठोकती हैं और पीठ ठोकने के लिए लंबे-लंबे ट्रंकॉल करती हैं। वे मेरी इतनी सहज प्रशंसक हैं कि मैं असहज हो जाता हूं। पर उनकी प्रशंसा सुनकर मुझे बड़ा भला भी लगता है। ठीक वैसे ही जैसे कि मेरे मां या भाई मेरी रचना की तारीफ करते हैं तो उसमें रचना से ज्यादा मेरे प्रति प्रेम ही झलकता है। ठीक वही। मैंने भी उनकी हर रचना पढ़ी है। मैंने उनकी कहानियों के लिए 'साक्षात्कार' के लिए उनसे एक बार इंटरव्यू लिया था, जिसका अलग ही किस्सा है। मैं भोपाल से टेलीफोन पर लंबे-लंबे प्रश्न उन्हें लिखता रहा और वे बंबई में प्रश्न पाकर ऐसे गदगद हो रही थी कि ज्ञान ऐसे प्रश्न सिर्फ तुम ही कर सकते हो। बहुत लंबा इंटरव्यू बना था वह। वे बच्चों की तरह उत्सुक थीं कि उन्होंने मेरे 'ट्रिकी' प्रश्नों पर जो उत्तर दिए हैं उनके बारे में ज्ञान की राय क्या ही होता रहा? वो उत्तर कि लिखा न? तुम देखो। तुम बताओ। बालसुलभ सहजता मेरे भोलापन जो मायने या तो किस्सों में पढ़ा होगा या जिसे हम गप्प मान सकते हैं। पर सूर्यबाला तो यही हैं। किस्सों सी। परिकथाओं सी।

एक दिन फोन आया कि ज्ञान, मुझे एनजाइनी हो रहा है और

डॉक्टर एन्जियोग्राफी करने वाले हैं। मैं यहां भोपाल आकर बहुत सारे लेखक मित्रों का फोन वाला डॉक्टर हूं। मित्र लेखक तथा अग्रज मुझे से यदा कदा डॉक्टरी सलाह लेते रहते हैं। भोपाल शहर में भी और बाहर से भी। ज्ञानरंजन, जितेन्द्र भाटिया, प्रभु जोशी, कन्हैयालाल नंदन, सरोज कुमार, वीणा सिन्हा, हरि भटनाटकर, नवीन सागर, हरि नारायण, महेश करारे, स्व. नईमजी और प्रेम जनमेजय। ऐसे ही कई नाम। मैंने सूर्यबाला से यही कहा कि आपको कुछ नहीं निकलेगा। पर करवाया। कुछ नहीं निकला। वही अस्पताल से फोन करके बताया कि सब ठीक निकला है। फिर पांच महीने बाद एलियोजफी का कुछ कॉम्प्लीकेशन हो गया। बड़े कष्ट में रही कुछ दिनों तक सूर्यबाला। रोज फोन पर सलाह होती। दुख शेयर किए जाते। बात तबीयत से शुरू होकर दुनिया के हर दुख-सुख तक जाती। सूर्यबाला जैसी बड़ी लेखिका और मेरे जैसा एक छोटा-सा डॉक्टर- पर साहब, क्या तो उनका मेरे ऊपर विश्वास और क्या ही मेरी बातों को पंखर की तामीर सा मानना। इन दिनों मैंने एक नई सूर्यबाला को जाना जो बेहद मानवीय संवेदनशील Vulnerable, Frangible और मेले में भटक गई बच्ची सी असुरक्षा भाव से भरी थी। बीमारी में हर सीधा-साधा व्यक्ति ऐसा ही हो जाता है शायद. . .

मैं भोपाल आ रही हूं। तुम मुझे केनियन स्कूल के पास की कॉलोनी से ले लेना। वे फोन कर रही हैं। रिश्तेदार हैं उनके भोपाल में। सूर्यबाला यदि भोपाल से इमरजेंसी हो मुझे फोन अवश्य कर लेंगी कि यह शख्स बाद में बुरा मानेगा कि भोपाल की हवाओं को आपके यहां से गुजरने का पता था तो ज्ञान चतुर्वेदी को क्यों नहीं? मैं उनको लेकर घर आया। शशि से मिली। बच्चे तक स्कूल में थे। नेहा और ध्रुव से खूब प्यार किया। घर तक न जाने क्या-क्या पूछती रहीं। शशि से पूरा हाल लिया मानों घर पर कोई बड़ी आ गई हों और चिंतित हों सब कुछ जानने को। चार-पांच घंटे रहीं। रख बातें। लेखन की, लेखकों की। लेखन की राजनीति का मैं भी बहुत ज्ञानी तो नहीं परंतु सूर्यबाला से तो बेहतर ही जानता हूं इस प्रपंच को। सुनाता रहा। वे हर बात पर कहतीं कि देखो हमें तो यह पता ही नहीं। . . अरे, ऐसा भी होता है कहीं? अच्छा!! . . बच्चों से वायदे हुए कि बच्चों के लिए लिखी- अपनी किताबें बंबई पहुंचते ही भेजूंगी। भेजी भी। मेरी बेटा नेहा अब डॉक्टर बन गई है और बेटा इंजीनियर- पर ये सूर्यबाला को वैसा ही याद रखे हैं। फिर तो आप जब भी भोपाल आतीं हम मिलते ही। एक लंबा सिलसिला कभी-कभी मिलने और कभी-कभी लंबे फोन कॉल्स का बना हुआ है हमारे बीच। दुनिया की बातें। मेरी इतनी तारीफ कि मुझे स्वयं से ईर्ष्या हो जाए। कहती हैं कि पीठ टूटने के डर से ज्यादा पीठ थपथपाती नहीं हूं तुम्हारी वरना खूब थपथपाऊं। पता नहीं कि कभी यह हाल है तो सच में थपथपाती तो क्या करती।

मेरा मत है कि लेखक को बस लिखना, लिखना और लिखते रहना चाहिए। नाम, पुरस्कार, पहचान, ख्याति सब अपने आप पीछे-पीछे आता है। और न भी आये तो परवाह नहीं करनी चाहिए। मुझे वे लेखक दयनीय नजर आते हैं जो एक किताब छपवाने के बाद उसकी समीक्षा, पुरस्कार आदि के जुगाड़ में इतने व्यस्त हो जाते हैं, मानो लड़की की शादी में लगे हों। हो सकता है कि मुझे दुनियादारी से अनजान बेवकूफ ही माने- पर मैं ऐसा ही हूं और यही मानता हूं। सूर्यबाला को देखकर मुझे और मेरी इस धारणा को बल मिलता है

ज्ञान चतुर्वेदी- आप व्यंग्य तो लिखती हैं लेकिन मजेदार बात यह है कि आपकी कहानी से व्यंग्य नदारद है। और आपके व्यंग्य प्रायः कथात्मक नहीं हैं। जबकि मुझे



यह लगता है कि कहानी का यह लंबा अनुभव यदि आपकी व्यंग्य कथाओं के रूप में आ पाता तो शायद एक नई बात पैदा होती। यह कंपार्टमेंटलाइजेशन सायास है या अनायास?

सूर्यबाला- परिश्रमपूर्वक सुनियोजित व्यंग्य रूपक या व्यंग्य कथा मैं नहीं लिख पाई। सोचा कई बार लेकिन हो नहीं पाया जैसा तुम्हारी कुछ लाजवाब व्यंग्य कथाओं में हुआ है, शंकर पुणतांबेकर और प्रेम जनमेजय ने भी ऐसे सफल प्रयोग किये हैं। मेरा बहुत सारा समय और शक्ति कहानी में चुक जाती है। अब दो-दो नावों में पैर देने वाला तो डूबता ही है न! और मेरे तो इतनी नावें, इतने घाट फिर भी कुछ शुरुआती और एकाध इधर की व्यंग्य रचनाओं में कथा-प्रवाह का आभास आया है जैसे- 'सोफानामा', 'किस्सा-ए-खानम', 'बन गई मेरे उपन्यास पर कला फिल्म', 'और इधर के', 'भगवान ने कहा था', 'गणनायक बनाम गजानन' आदि। इसी तरह कहानियों में भी, जहां जीवन के अंदरूनी और ऊपरी व्यंग्य विद्रूप उभरे हैं वहां छोटे व्यंग्य प्रसंग बन पड़े हैं। जैसे 'होगी जय पुरुषोत्तम नवीन', 'बाऊजी और बंदर', 'माय नेम इज ताता', 'मातम', 'सुनंदा छोकरा की डायरी' आदि में व्यंग्य की भरपूर ब्लेंडिंग है।

‘साक्षात्कार’ से आभार

कि लिखो और लिखते रहो, बस लिखते ही जाओ। मेरी तो यही कामना है कि सूर्यबाला वैसी ही सूर्यबाला बनी रहें। हिंदी साहित्य की राजनीति को न ही समझें तो बेहतर। मंच, पुरस्कार, ढोल ढमाके, सेमीनार, गोष्ठी, मुख्य अतिथि, सम्मान, कमेटी के प्रलोभनों से यूं ही बची रहें। यही मेरी कामना है। और यही कामना उनके हजारों पाठकों की भी होगी ही।

ए-40, अलकापुरी, भोपाल

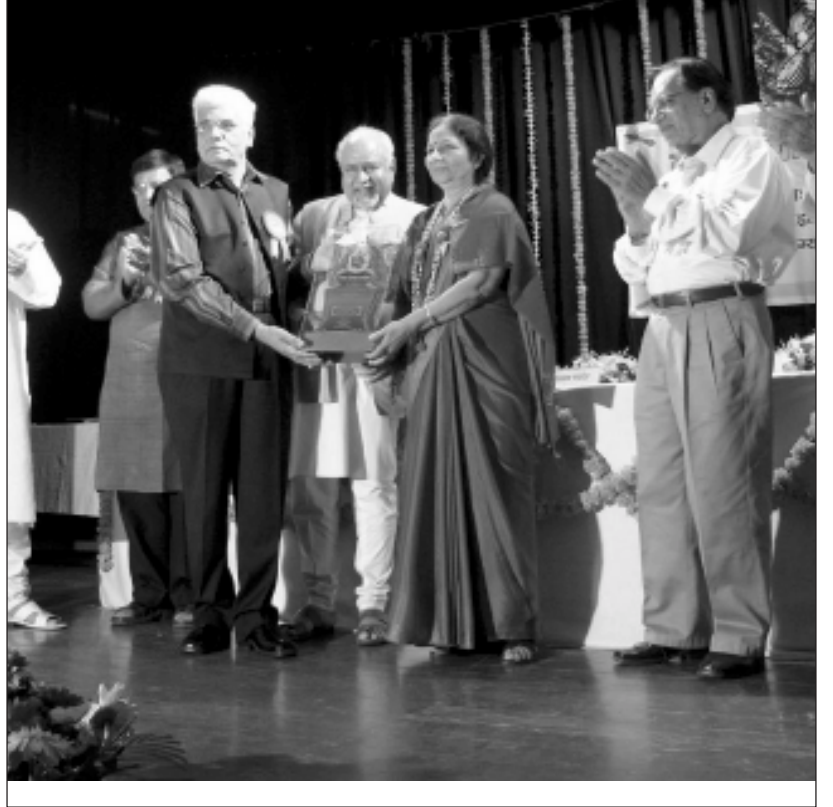
यज्ञ शर्मा

बड़ी बहन, मौसी और एक सामान्य भारतीय गृहिणी- सूर्यबाला

क्या आप कभी सूर्यबाला से मिले हैं? वे कहीं से भी हिंदी लेखक जैसी नहीं लगतीं। सामान्यतः हिंदी लेखक की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि अगर आप हिंदी नहीं जानते तो भी पांच-सात मिनट में जान जाते हैं कि सामने खड़ा व्यक्ति हिंदी लेखक है। सूर्यबाला के साथ ऐसा नहीं होता। वे सभी को बड़ी बहन या मौसी जैसी लगती हैं। उनके चेहरे पर हमेशा एक मधुर मुस्कान खेलती रहती है। स्नेह उनके चेहरे से बरसता रहता है। बोलती भी इतने सुर में हैं कि यह जानकर ताज्जुब होता है कि वे व्यंग्य भी लिखती हैं। मेरी उम्र उनसे ज्यादा है, लेकिन मुझे भी वे बड़ी बहन या मौसी जैसी ही लगती हैं। हाल ही में उनका नया व्यंग्य संग्रह आया है, 'भगवान ने कहा था'। अगर आप सोच रहे हैं कि मैं संग्रह की चर्चा करने से पहले उनके व्यक्तित्व की चर्चा क्यों कर रहा हूँ, तो उसका कारण यह है कि उनका स्वभाव जानने के बाद उनके व्यंग्य बेहतर समझे जा सकते हैं।

अगर आप हिंदी के पाठक हैं तो आप भी जानते होंगे कि जिस रचना के साथ सूर्यबाला का नाम जुड़ा हो उसे पढ़े बिना आप नहीं रह सकते। हिंदी कहानी के क्षेत्र में सूर्यबाला का नाम बड़ा प्रतिष्ठित है, पर हिंदी गद्य व्यंग्य के क्षेत्र में भी कोई कम प्रतिष्ठित नहीं है। 'भगवान ने कहा था' में उनकी 23 रचनाएं संकलित हैं। 'भगवान ने कहा था' संकलन की शीर्षक रचना है। भक्त भगवान के अनेक रूप देखते हैं। एक रूप सूर्यबाला के व्यंग्यकार ने भी देखा। भगवान सर्वव्यापी माने जाते हैं। सूर्यबाला के भगवान मंदिर तक सीमित हैं। भगवान सर्वशक्तिमान हैं। सूर्यबाला के भगवान लाचार हैं। भगवान भक्तों की मनोकामनाएं पूरी करते हैं। सूर्यबाला के भगवान अपने मंदिर के कलश का उखड़ा पतरा तक ठीक नहीं करवा सकते। तो, पतरा ठीक होगा कैसे? भगवान को किसी समर्थ अधिकारी से निवेदन करना पड़ेगा। और भगवान अपने से बड़ी शक्ति से- शासन के संस्कृति सचिव से, रिरिया कर निवेदन करते हैं कि क्या उनके कलश के पतरे की मरम्मत हो सकती है? इस देश में सरकार सबकी अंतिम शरणस्थली है- भगवान की भी। कुछ दिन पहले सुप्रीम कोर्ट के एक जज ने कहा भी था- 'इस देश को भगवान भी नहीं बचा सकता'।

'भगवान ने कहा था' की कई रचनाएं आत्मकथात्मक हैं। उनमें से चार वक्तव्यों के रूप में हैं, जिनमें सूर्यबाला ने यह समझाने की कोशिश की है कि वे व्यंग्य क्यों लिखती हैं। जब आप इन



श्याम गोइन्का, मुकुल उपाध्याय एवं विश्वनाथ सचदेव से वाग्देवी सम्मान ग्रहण करतीं सूर्यबाला

वक्तव्यों को पढ़ेंगे तो आप तुरंत जान जाएंगे कि उनके लेखन में कटाक्ष इतने स्वाभाविक रूप से कैसे आ जाते हैं। जैसे कि 'मेरे व्यंग्य लिखने के कारण' में वे लिखती हैं- 'जिन लोगों को इन दिनों लिखने के लिए कुछ नहीं मिल पा रहा था, अर्थात् जो लोग लिख नहीं पा रहे थे, वे अब न लिखने के कारणों पर लिखकर लेखक बने रह सकते हैं'। आगे वे कहती हैं- 'मेरे लिखने का कारण वे स्वनामधन्य संपादक भी हैं जो मेरी रचनाएं बिना पढ़े ताबड़तोड़ छाप देते हैं, जबकि दूसरे लेखकों की मुझसे कहीं अच्छी रचनाएं बिना पढ़े ही वापस कर देते हैं 'ऐसा इन लेखकों का कहना है'।

कई बार सूर्यबाला के व्यंग्य बड़े नर्म-नर्म से महसूस होते हैं, कारण आप जान ही गये हैं- उनका स्वभाव। बड़ी बहन या मौसी खीझ तो सकती है, नाराज नहीं होती। मां समान महिला के मन में व्यक्तिगत दुर्भावना नहीं होती। तभी तो 'सब्र का अंत ही व्यंग्य की शुरुआत' रचना में सूर्यबाला व्यंग्य के संबंध में अपना मंतव्य स्पष्ट



व्यंग्यभूषण सम्मान तथा वाग्देवी सम्मान ग्रहण करने के बाद प्रेम जनमेजय एवं सूर्यबाला

करती हैं- 'यह धुलाई और धुनाई व्यक्ति की नहीं, उसके मुखों और मुद्राओं की होती है, प्रवृत्तियों और विसंगतियों की होती है। इसलिए व्यंग्य में व्यक्तिगत कुछ नहीं होता, न राग-द्वेष और न क्षुद्रता-संकीर्णता।

व्यंग्यकारों पर अकसर यह आरोप लगता है कि वे अपनी बिरादरी के लोगों यानी लिखने वालों को छोड़ देते हैं। जात-बिरादरी प्रधान इस देश में यह अस्वाभाविक भी नहीं है। लेकिन सूर्यबाला के लिए कुछ भी अस्वाभाविक नहीं होता। अपनी रचना 'साठ के हुए लेखक' में वे लिखती हैं- 'जिस तरह विदेहराज जनक देह होने पर भी 'देहखाव' छोड़ चुके थे, उसी प्रकार साठ का हुआ लेखक भी लिखना-पढ़ना लगखग छोड़ चुका होता है। उसे लिखने-पढ़ने की ज़रूरत भी नहीं होती। कारण- वह किसी भी विषय अथवा पुस्तक पर कुछ भी बोल सकता है, बिना जाने कि विषय क्या है और पुस्तक कौन-सी है। साप्ताहिक भविष्य-फल की तरह उसका कहा हर विषय, हर पुस्तक और हर अवसर पर ठीक बैठता है।' 'स्नेहलता व्यंग्यभूषण' तथा अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने जब व्यंग्य यात्रा पत्रिका का संपादन-प्रकाशन प्रारंभ किया था, तब सूर्यबाला ने उन्हें एक पत्र में लिखा था- 'मिथक से सबक लो, समझदार को इशारा काफ़ी कि लेखकों को पारिश्रमिक देकर संपादकों की जात से रार मत मोल लो। उनकी चलाई परंपरा और नीतियों के हिसाब से चलो। लेखक को हमेशा उसकी औकात में रखो।'

लेखकों के अलावा सूर्यबाला की एक बिरादरी और है- महिला। सूर्यबाला महिला बिरादरी को भी उसकी विसंगतियों के लिए नहीं बख्शातीं। अपने इस संकलन में उन्होंने स्त्री-मुक्ति और स्त्री-विमर्श के ढकोसलों पर भी कलम चलाई है। 'पांच सितारा लेखिका सम्मेलन' रचना की ये पंक्तियां देखिए- 'प्रायः हर लेखिका के खाते में दो-तीन सरकारी-गैरसरकारी गाड़ियां, चार-छह नौकर-गुमाश्ते और इतनी ही स्वरचित, संपादित पुस्तकें दर्ज थीं। वे निकट भविष्य में विभिन्न विधाओं में अनेक पुस्तकें लिखने की घोषणा भी कर चुकी थीं। कोठियों और पेंट हाउसों वालियों में प्रायः सभी की

आत्मकथाएं भी आ चुकी थीं।'

सूर्यबाला के 'भगवान ने कहा था' संकलन में राजनैतिक व्यंग्य नहीं हैं, लेकिन राजनीति भी कोई भगवान से कम नहीं होती। जहां ज़रूरत नहीं होती वहां भी पहुंच ही जाती है। सूर्यबाला की रचनाओं में खी कहीं-कहीं राजनीति आ ही जाती है। लेकिन सूर्यबाला राजनीति को ज़्यादा देर तक टिकने नहीं देतीं, दो-चार वाक्यों में ही उसे चलता कर देती हैं।

हर व्यक्ति के अंदर अकसर दो व्यक्ति होते हैं। सूर्यबाला के अंदर तीन हैं। अद्भुत कहानी लेखिका हैं। प्रखर व्यंग्य लेखिका हैं। साथ ही, सामान्य भारतीय गृहिणी भी हैं। वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचने पर सबसे पहले किसी दबंग व्यक्ति का चित्र मन में उभरता है। लेकिन, जैसा कि इस लेख के प्रारंभ में ही कहा गया है, जब आप उनसे मिलते हैं तो वे आपको एक स्नेहशील बड़ी बहन या मौसी जैसी ही लगती हैं। सिर्फ लगती नहीं हैं, उनका स्वभाव ही वैसा है। निजी जीवन में उनका व्यक्तित्व किसी सामान्य भारतीय गृहिणी जैसा ही है। अपने घर में, अपने परिचित परिवेश में (और सूर्यबाला के मामले में अपने लेखन के क्षेत्र में भी) भारतीय महिला बड़े आत्मविश्वास के साथ अपने काम निपटाती हैं। लेकिन जैसे ही वह अपने जाने-पहचाने माहौल से बाहर निकलती वह आत्मविश्वास जैसे गायब हो जाता है। वह एकदम असहाय नज़र आने लगती हैं। व्यंग्य लेखक अक्सर दूसरों की कमज़ोरियों की परतें खोलते हैं, लेकिन सूर्यबाला खुद अपने को भी नहीं बख्शातीं। विदेश यात्रा से संबंधित अपनी एक रचना 'यात्रा एक सम्मेलन की' में सूर्यबाला ने अपनी असहायता और बौखलाहट का बेहद रोचक वर्णन बड़ी बेबाकी से किया है। सूर्यबाला अपने व्यंग्यों में खुद को भी बख्शाती नहीं हैं।

सूर्यबाला के बारे में एक सवाल अकसर पूछा जाता है कि वे कहानी लेखिका हैं या व्यंग्य लेखिका हैं? आपको अंदर की बात बताऊं, वे दोनों हैं। इस तरह के विभाजन मंच पर होते हैं, जिंदगी में नहीं। जीवन में आप जो कुछ करते हैं, वह आपके व्यवहार और स्वभाव के अभिन्न अंग होते हैं। मां को जब बच्चे को डांटना होता है तो वह डांटती है और जब पुचकारना होता है तो पुचकारती है। जीवन में तो कोई नहीं पूछता कि यह कौन-सी मां है- डांटने वाली या पुचकारने वाली! सूर्यबाला पुचकारने वाली लेखिका भी हैं और डांटने वाली भी। दोनों उनके रचनात्मक चरित्र के हिस्से हैं और शायद व्यक्तिगत चरित्र के भी। इसीलिए उनकी रचनाओं में जब जैसी स्थितियां आती हैं, उनके अनुरूप स्वर भी उभर आते हैं। उनकी कहानियों में कटाक्ष स्पष्ट दिखाई देते हैं, तो उनके व्यंग्यों में कहानियों जैसी संरचना भी साफ दिखाई देती है। रचना का प्रमुख स्वर क्या होगा- व्यंग्य या भावनात्मकता, जाहिर है यह विषय-वस्तु पर निर्भर होगा। यही कारण है कि उनकी कहानी लेखिका को उनकी व्यंग्य लेखिका से अलग नहीं किया जा सकता। वैसे, करने की ज़रूरत भी क्या है? जब हम जिंदगी को टुकड़ों में नहीं जीते तो लेखन को क्यों जिएं?

बी-10, जमुना दर्शन, बांगड़ नगर
गोरगांव (पश्चिम), मुंबई 400 090

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

सूर्यबाला का व्यंग्य-कर्म

एक समर्थ कथाकार को स्वतंत्र रूप में लेखन की क्या अनिवार्यता हो सकती है? कथा साहित्य में तमाम अवसर हैं, जहाँ वह अपने व्यंग्यात्मक तेवर खपा सकता है। लेकिन जब समूचा परिवेश विडम्बनाओं की पकड़ में हो, परिस्थितियाँ उकसाने वाली हों, बदलाव की कौंध धूमिल सी हो तब शायद व्यंग्य लिखे बगैर काम नहीं चलता। बहुत पहले अंग्रेज व्यंग्यकार जुवेनल ने अपने व्यंग्य लिखने का कारण बताते हुए जो कुछ लिखा था वह आज भी सत्य और सटीक है: 'दुष्टता और भ्रष्टाचार, जीवन में इतने अधिक व्याप्त हो गए हैं कि एक ईमानदार व्यक्ति के लिए व्यंग्य न लिखना असंभव है।' सूर्यबाला जी के व्यंग्य कर्म के पीछे जीवन की इन्हीं विसंगतियों का गहरा दबाव सक्रिय लगता है। भगवान ने कहा था 'में संकलित' 'सब्र का अंत ही व्यंग्य की शुरुआत में उनका एक वाक्य है, 'व्यंग्य झूठ व फरेब के खिलाफ होता है।' हालाँकि वे इस तथ्य से अवगत हैं कि 'हिंदी में व्यंग्य लिखकर नाम, यश कमाना असान नहीं है।' लेकिन इसमें दो राय नहीं है कि सूर्यबाला ने 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'भगवान ने कहा था' सरीखे व्यंग्य संकलनों से न केवल यश अर्जित किया है, अपितु अपने शिष्ट व्यंग्य लेखन से अपनी स्वतंत्र पहचान भी बनायी है।

एक व्यंग्य तत्काल शीर्षक रचना में लेखिका ने परिवेश के निरंतर भयावह, त्रासद और असहनीय होते जाने का उल्लेख किया है, 'व्यंग्य में सबसे बड़ी समस्या सिर्फ यह है कि जिन स्थितियों पर दसों वर्ष पूर्व आप व्यंग्य लिख सकते थे, वे आज आपकी दैनिक दिनचर्या की अविभाज्य अंग बन चुकी हैं। पहले जिन दृश्यों, बातों, कृत्यों पर आप सिहर कर कांप उठते थे, सिर शर्म से झुक जाया करता था, आज आप उन्हें सरेआम देखने सुनने के लिए लाचार हैं।' बतौर लेखक सूर्यबाला के लिए भी इन हादसों को देखना-सुनना एक लाचारी हैं, किंतु इन्हें देख-सुनकर व्यंग्य लिखने की एक सर्जनात्मक लाचारी भी है, जिसे वे एक लाक्षणिक उक्ति- 'मुझे पागल कुत्ते ने काटा है' के माध्यम से स्वीकृति देती हैं। उनके पास व्यंग्य-प्रहार के विषयों की कमी नहीं है। वे राजनीतिक कदाचार, धार्मिक, सामाजिक, विडम्बना, मध्यवर्गीय टुच्चेपन से लेकर साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में पनपने अधःपतन तक समान अधिकार से लिखती हैं। बहुत सहज ढंग से किसी विसंगति, विडम्बना पर अंगुली रखते हुए बगैर उग्र और कटु हुए वे समूचे छद्म को उधेड़ कर रख देती हैं।

यह आकस्मिक नहीं है कि सूर्यबाला ने साहित्य, कला, फिल्म और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े मुद्दों पर प्रचुर मात्रा में लिखा है। वस्तुतः गत दिनों इन क्षेत्रों में अवमूल्यन और अपसंस्कृति का वर्चस्व बढ़ा है और यह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को चिंतित कर सकता है। 'बन गयी मेरे उपन्यास पर एक अदद कला फिल्म',

'मेरी आत्मकथा के कुछ महत्वपूर्ण अंश', 'यादें न जायें हाये' . . 'रचना शिविर की अंतिम यात्रा की', 'मेरा टॉमी बनाम फिल्म स्टार', 'हिंदी साहित्य और पति', 'रचनात्मक आयोग से बचते बचाते' आदि दर्जनों व्यंग्य इस संदर्भ में पढनीय और विचारणीय हैं। इन रचनाओं की ध्वनि है कि 'कला' प्रायोजित और व्यावसायिक, हो गयी है, चाहे चित्रकला हो या फिल्म कला। पुरस्कार मखौल बन गए हैं और साहित्य 'बाजार' की शर्तों पर लिखा और बेचा जा रहा है। कला फिल्म में टोटल इफेक्ट के नाम पर कैमरामैन अंधेरे की शूटिंग करता है और उसे हम विलक्षण प्रयोग पर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा जाता है। फिल्म जनता की समझ में न आए तो न जाए। साहित्य में पुरस्कार ज्यादातर देशी हैं और प्रायोजित भी। इन पुरस्कारों का एक पक्ष यह भी है- 'हर लेखक अपने पिता, पुत्र, पत्नी (दिवंगत होने की स्थिति में) के नाम से एक पुरस्कार घोषित कर उसे तत्काल अपने एक मित्र के नाम आवंटित कर देता है। पुरस्कृत मित्र भी ठीक यही प्रक्रिया दोहराता है और इस प्रकार कालांतर में दूसरा मित्र भी अपुरस्कृत रह जाने के कलंक से मुक्ति पा लेता है। निरंतर प्रगति करती हुई यह प्रक्रिया तेजी से लेखकों की एक विशाल जनसंख्या को पुरस्कृत करने का दृश्य भयावह है और यहाँ पुरस्कृत करने का अर्थ स्वयं को प्रकाश में लाना है। पुरस्कार समिति के लोग डॉक्टर को पुरस्कृत करने का प्रलोभन देकर उससे मरणासन्न साहित्यकार को किसी किसी तकिए से टिकवा देते हैं और स्वयं मुदित भाव से तस्वीरें खिंचवा कर तृप्त हो लेते हैं।

साहित्य में पिछले दिनों बहुत से राजपत्रित अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों, राजनेताओं के नाम 'रचनाकार' के रूप में बहुत चर्चित हुए हैं। इस विडम्बना पर लेखिका अपनी तलखी को छिपा नहीं पायी है- 'जो बड़ा साहित्यकार होता है, वह बड़ा अफसर हो न हो, लेकिन जो बड़ा अफसर होता है, वह या उसकी पत्नी या दोनों ही उच्च-कोटि के साहित्यकार होते ही होते हैं।' साहित्य में 'सर्जन' के बजाय सनसनी फैलाकर चर्चित होने की प्रवृत्ति 'रचनात्मक आयामों से बचते-बचाते' में निशाने पर है। साहित्य में सन्नाटे की बात करने वाले कुछ सर्जनात्मक लिखकर इस जड़ता को नहीं तोड़ना चाहते, गैर साहित्यिक कार्यों का आयोजन करते हैं, वैचारिक धरातलों पर दंगल लड़ते हैं, मंचीय गतिविधियाँ सक्रिय होती हैं लेकिन 'सन्नाटा अपनी जगह कायम। क्योंकि साहित्य वहाँ था ही नहीं। इन सारे ताम-झामों से दूर साहित्य कहीं लिखा जा रहा था, पढ़ा भी जा रहा था, समझने-समझाने की कोशिश भी जारी थी, बस शोरगुल नहीं हो पा रहा था।'

'बन गयी मेरे उपन्यास पर एक अदद कला फिल्म' कई अंतर्विरोधों को उजागर करती है। 'कला फिल्म' बनाने के नाम पर अंततः व्यावसायिक फार्मूलों की घुसपैठ, बाजार की मांग पर रचना

का चीरहरण और कुछ रुपयों के लोभ में रचनाकार की सहमति ये सब नेपथ्य की वास्तविकताएं हैं। जब लेखिका फिल्म में नायिका को वस्त्रविहीन देखने को प्रस्तुत नहीं होती तो उसे देश-विदेश के अनेक कलात्मक प्रयोगों के हवाले से राजी करने का प्रयास होता है। वह राजी हो जाती है, लेकिन पारिश्रमिक के पांच हजार रुपयों की वृद्धि के बाद। इसी रचना में फिल्म जगत की भाषा का संदर्भ भी है। लेखिका हिंदी साहित्य लिखती है अतः उसकी भाषा का यह रूप स्वाभाविक है, 'मेरी हार्दिक आकांक्षा थी कि. . .'। लेकिन फिल्म-निर्देशक के प्रतिवाद करने पर भाषा इस रूप में ढालनी पड़ती है। 'मेरा दिली अरमान है कि. . .'। हिंदी के प्रति गैर जिम्मेदार रवैया केवल फिल्म वालों का नहीं है, 'अगली सदी का शोध पत्र' में संकेत है कि जनतांत्रिक सरकार का दृष्टिकोण भी कम आपत्तिजनक नहीं है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी के बारे में सरकारी निर्देश कुछ इस किस्म के रहे, '...साक्षात्कारों तथा स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के अध्ययन तक हिंदी के जरिए जो पहुंचने की कोशिश करेगा, उसका प्रमोशन, परीक्षाफल, फाइल, आवेदन, अनुरोध, प्रार्थना तथा सारे अटके पड़े काम हमेशा के लिए अटके रह जाएंगे। वह लोगों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाने वाला उपेक्षा का पात्र होगा।' इस तरह के निर्देशों से कुछ समझदार तबकों और विशेषतः युवा पीढ़ी ने यह सबक सीखा है कि सभी देशी भाषाओं का एक भी शब्द सार्थक नहीं है— 'गये जमाने की भाषा में कहें तो'— 'एक भरोसो एक बल एक आत्मविश्वास'— अंग्रेजी का— और समझो बेड़ा पार— धन्य-धन्य' (नौनिहाल नामा बनाम शीशा हो या दिल)।

चाहे सूर्यबाला मीठी चुटकी ले रही हो या किसी विसंगति पर टूटी पड़ रही हों, उनकी अपनी 'दृष्टि' बराबर ध्वनित होती है। भाषा-समस्या हो या भ्रष्टाचार की भयावहता, शिक्षा जगत की कोई फांस हो या साहित्य कला की कोई कुरूप स्थिति, सर्वत्र एक प्रतिवाद का स्वर है और उसे एक स्थूल अवधारणा 'व्यवस्था विरोध' के तहत रख और देख सकते हैं। हिंदी पढ़ाये जाने की शैली 'अजगर करे न चाकरी' में समग्र शिक्षा तंत्र की पोल खोलती है— 'हमने विश्वस्त सूत्रों से पता चलाया था कि उनकी अध्यापिका और उन अध्यापिका की अध्यापिका' को भी इस दोहे गूढ़ार्थ नहीं मालूम था इसलिए गूढ़ार्थ न समझा पाने की यह सुखद परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रभित होती चली गयी। विद्यार्थी और शिक्षक बड़े फन्न से इस गौरवशाली परम्परा को ढोते हुए गूढ़ार्थ समझने-समझाने की फजीहत से बचे रहे।' यह उदाहरण पीढ़ी दर पीढ़ी पुष्ट होते हुए छल की न केवल भर्त्सना करता है अपितु उस व्यवस्था को दोषी भी ठहराता है, जिसमें हर तरह के छल की सुविधा और गुंजाइश है। संस्पेंड न हुए प्रियतम की त्रासदी' में व्यवस्था का कुरूप चेहरा सरकारी दफ्तरों के ब्याज से अनावृत्त हुआ है, जहां 'भ्रष्टाचार' खुलेआम समता, न्याय, ईमानदारी आदि मूल्यों को चुनौती दे रहा है।

'अरे अपने पैसे से खरीदी तेजाब छिड़क कर अटेंडेंस रजिस्टर के पन्ने के पन्ने गायब किए हैं। रातों रात हजार के आंकड़ों को लाखों में तब्दील करके चेहरे पर शिकन नहीं आने दी। टेंडर के टेंडर मनमानी खानापूरियों से भर दिए। एक जरा से इंक-इरेजर की मदद से सैकड़ों पचासों नामों का आबूदाना रजिस्टर से उड़ाया और बसाया। कितनी की कितनी पुलिया, सड़के नक्शे में ही खुदवाई और नक्शे में ही बाढ़ में बहवाई।'

इस उद्धरण में 'अपने पैसे', 'रातों रात', 'एक जरा से', 'कितनी की कितनी' जैसे पद विडम्बनात्मक, स्थितियों को और सघन तथा तीक्ष्ण बनाने में सफल हुए हैं। 'अथक अकर्मण्यक यज्ञ-उपदेशामृत', 'देश सेवा के अखाड़े में', 'रंग बदल नीति और खरबूजे', 'बड़े बाबू बिलॉक साहब. . .', 'देश सेवा की तालमेल किश्तें', 'दल निर्माण की पूर्व संध्या पर' आदि रचनाओं में व्यवस्था के महत्वपूर्ण स्तंभ-सत्ता, विरोधी पक्ष, अधिकारी आदि निशाने पर हैं। स्वास्थ्य विभाग की कारगुजारियों का कच्चा चिट्ठा 'बड़े बाबू बिलॉक साहब बनाम. . .' में प्रत्यक्ष है। 'इसी शहर में डी.डी.टी. की जगह धूल-मिट्टी छिड़काव कर कितने कीटाणुओं की जानें बचाई हैं साहबजी। उन सबकी दुआएं नहीं लगेंगे क्या? डेढ़ पंक्तियों का यह उद्धरण पर्याप्त है यह बताने के लिए कि हमारी विकास योजनाओं के सुफल जनसाधारण तक क्यों नहीं पहुंचें?'

'जनतंत्र' जिन हाथों में सुरक्षित समझा जाता है, वे तत्व अवसरवाद और दलबदल को राजनीति को एक रणनीति मात्र मानते हैं। सरकार गिराने के लिए एक नए दल के निर्माण के अवसर पर जनप्रतिनिधियों के मुखारबिन्द से जो कुछ सुनने को मिलता है, वह हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था के मुलम्मे को उतार देने के लिए काफी है। एक विपक्षी नेता की आत्म स्वीकारोक्ति है— 'और मैं आपको बता दूँ कि आपके इस लोकतंत्र की रक्षा के लिए जितने सदस्य मैंने और पार्टियों ने फोड़े हैं, उतने आपने नहीं। आप अध्यक्ष बनाते हैं, मुझे या मैं उठाऊँ अपने फोड़े हुए सदस्यों की सूची का खोंमचा? तमाम ग्राहक खड़े हैं लोकतंत्र, जनतांत्रिक मूल्यों और जनहित को मुंह मांगे दामों में खरीदने के लिए।' राजनीति और अपराध जगत के कुत्सित गठजोड़ पर 'सिफर हो गयी राजनीति और सूत उवाच' में तीखी टिप्पणी है— 'बस यहीं इन निरीह आत्माओं की घिघी बंध जाती है। ये भय से थरथर कांपने लगती हैं, क्योंकि सड़क, चौराहों, बाजार, मेला-फुटपाथ से प्लेटफार्म तक फूटते बम तो वैसे ही उनकी कुर्बानी की आगवानी कर रहे हैं। अब बंदूकों से लैस पोलिंग बूथ उनमें ओर जुड़ गया।'

यह आकस्मिक नहीं है कि सूर्यबाला ने साम्प्रदायिकता, दंगा-फसाद आदि के लिए भी व्यवस्था के नियामकों-पहरुओं को ही जिम्मेदार ठहराया है। उन्माद और धर्म के पहियों पर सवार मुट्ठियां तानती आत्माओं के हाथ में ही देश की बागडोर है ('सिफर हो गयी राजनीति और सूत उवाच')। ऐसे लोगों के लिए 'देश माने हम' है। 'हम जैसे चरायेंगे, सब चरेंगे। जिस कुएं में चाहेंगे, सबको ढकेल देंगे' यह बड़बोलापन नहीं हकीकत है। इसी रचना (बोल री कठपुतली) में पत्नी का एक वाक्य बहुत व्यंजक है और लेखिका की प्रतिवाद- दृष्टि का प्रमाण भी, 'लेकिन इतिहासों से कुछ तो सबक लीजिए।'

सूर्यबाला के व्यंग्य-लेखन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। महिला आरक्षण, बालवर्ष, महिला दिवस, 'क्रिकेट' सरीता गीत से लेकर बसयात्रा, रेलयात्रा तक के कुछ स्थायी तो कुछ कालांकित सवालोंने पर उनकी कलम दौड़ी है। इस दौड़ में लेखिका ने खुद को भी नहीं बख्शा है। उनका आत्म व्यंग्य 'चंद पूर्वजन्मों का लेखा जोखा', 'सरेराह कुढ़ते कुढ़ते', 'चोटी पर न पहुंचे हुए लोग', 'तुर्भे वाली

शेष पृष्ठ 50 पर. . .

सूर्यबाला

देश-सेवा के अखाड़े में . .

यह खबर चारों तरफ आग की तरह फैल गई कि मैं देश-सेवा के लिए उतरने वाला हूँ। जिसने सुना, भागा आया और मेरे निर्णय की दाद दी। बधाई संदेशों का तांता लग गया, 'सुना, आप देश-सेवा पर उतर रहे हैं, ईश्वर देश का भला करें!'

प्रस्ताव पर प्रस्ताव आने लगे कि बाइ द वे, शुरुआत कहाँ से कर रहे हैं? कौन-सा एरिया चुन रहे हैं? हमारे अंचल से करिए न! बहुत स्कोप है। हेलीपैड बनकर विकसित होने लायक इफरात जमीन पड़ी है। आबोहवा भी स्वास्थ्यप्रद है। ईश्वर की दया से गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा आदि किसी बात की कमी नहीं। लोग भी सीधे-सादे नादान किस्म के हैं- आंखें मूंदकर माई-बाप का रिश्ता जोड़ लेने वाले। अगले दस सालों तक तो बहकने की कोई गुंजाईश नहीं। वर्षों सुख-शांति, अमन-चैन से गुजार सकेंगे, आप 'माई-बाप', इन देश के लालों के साथ। ये हमेशा रोटी के लाले पड़े रहने पर भी कभी शिकवे-शिकायत नहीं करते। हर हाल में मुंह सिलकर रहने की जबरदस्त ट्रेनिंग मिली है इन्हें।

मैंने सोचा, जगहें तो सारी एक-सी हैं; ऐसे स्कोप कहाँ नहीं है! लेकिन जब कहा जा रहा है, आफर मिला है तो उन्हीं के एरिया से शुरुआत हो जाए। मेरा निश्चय सुनते ही प्रेस वाले दौड़े आए और आग की तरह फैलती इस खबर में घी डाल गए।

शाम को उस एरिया का सबसे बड़ा कांटेक्टर आया और सलाम करते बोला, 'बंगला कहा छवेगा?'

मैं हैरान! कैसा बंगला? अभी देश-सेवा तो हुई नहीं कुछ, उससे पहले बंगला छवाने आ गया!

उसने उसी अदब भरी मुस्तैदी से कहा, 'वही तो, जब तक बंगला नहीं छवेगा, देश-सेवा, जनहित जैसे महान काम कहाँ बैठकर करेंगे आप? लोक-सेवक लोग आकर कहा ठहरेंगे? मुलाकाती कहाँ लाइन लगाएंगे? संतरी कहा सिड़केगा उन्हें? . . फूस की छत या टिन के शैड के नीचे मुलाकाती नहीं इकट्ठे होते। कोई बेवकूफ थोड़े हैं। सीधी-सी बात है, जो अपने सिर पर छत नहीं खड़ी कर पाया, वह उनके सिरों पर साया कहाँ से करेगा? अपना नहीं तो कम-से-कम अपने दुख-दर्द सुनाने वालों का तो ख्याल कीजिए।'

मैंने कहा, 'तब फिर छावा दीजिए, जहाँ ठीक समझिए।'

वह खुश हो गया। वहीं-का-वहीं बैठकर नक्शा वगैरह खींचकर वह बोला, 'गेराज एक रहेगा या दो?'

मैंने कहा, 'अरे यार पहल कार तो हो. . .'।

उसने कहा, 'आपकी न सही, मुलाकातियों की तो होगी! और फिर यों समझ लीजिए कि बप्पा साहब को देशहित के पैवेलियन में कुछ छः महीने ही गुजरे हैं और आलरेडी दोनों बेटों के ट्रकों और स्टेशन-वैगनों के लिए जगह की कमी पड़ रही है।'

मैंने आज्ञाकारी बच्चे की तरह कहा, 'तब जैसा आप लोग

उचित समझिए।'

कांटेक्टर खुश हो गया, 'ऐसा करते हैं एक गेराज बना देते हैं और दो की जगह छोड़ देते हैं. . पोर्च पोर्टिको आलीशान बनाएंगे, नहीं तो संतरी टुटपुंजिए मुलाकातियों को रुआब से दुतकारेगा कैसे? संतरी जितना कटखना होता है, आदमी उतना ही पहुंच वाला माना जाता है। . . अच्छा मैं चलता हूँ। बंगले का अहाता, लान सींचने, साग-सब्जी, फूल-पत्तों की क्यारी संवारने के लिए मेरा एक आदमी है, बड़ा नेक और विश्वासपात्र। इस काम के लिए उसी को रखिएगा, जनहित जैसे काम करने जा रहे हैं तो इस एरिया के नक्कालों से सावधान रहने की जरूरत है।'

शाम को उस एरिया के व्यापारी-संगठन का प्रमुख आया और आजिजी से बोला, 'देश-सेवियों का भोजन तो अत्यंत संतुलित और नियमित होता है। साहब तो अनाज को हाथ नहीं लगाते थे और देख लीजिए काठी ऐसी है कि सत्तर की उम्र में सत्ताईस वालों को बगल में दबाकर घूमें। अखोड़ेबाजों-सा सधा और तना हुआ शरीर . . . सिर्फ मीनू की बदौलत ही तो! बाइ द वे आपका मीनू?'

मैंने झंपकर कहा, 'अभी बनाया नहीं. . .'।

उसने ताकीद की, 'तो झटपट बना डालिए- खानपान की दुरुस्ती पहले। आप जानो रुखी-सूखी वाले महात्मा को कौन पूछता है? मेरा तो आज तक किसी नमक-रोटी खाने वाली महान आत्मा से साबका पड़ा नहीं। मेरे देखते-देखते कितने ही जनसेवी नमक, रोटी, प्याज से शुरू होकर फल, दूध और सूखे मेवों वाले मीनू पर स्थानांतरित हो आज तक स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।'

मैंने संकोच से कहा, 'सूखे मेवे तो गरिष्ठ होंगे। सोचता हूँ, शुरू-शुरू में रोटी-दाल ही ठीक रहेगा।'

उसने फौरन टोककर कहा, 'देखिए, आप दाल-रोटी खाए या नमक-रोटी, लेकिन एक बात समझ लीजिए- इधर भड़काने वाले बहुत हैं, घर-घर यह बात पहुंच जाएगी कि जो खुद नमक-रोटी खाता है वह हमें मालपुए कहाँ से खिलाएगा? और इस एरिया के लोग भोले-भाले, नादान हैं।'

मैंने कहा, 'आपकी बात ठीक है, लेकिन मेवे बहुत मंहगे भी तो हैं।'

वह बेतकल्लुकी से बोला, 'क्यों शर्मिदा कर रहे हैं आप? आप इस एरिया के जनसेवक होकर आ रहे हैं और खरीदकर मेवे खाएंगे? लानत नहीं होगी इस जमीन के बाशिंदों के लिए? आखिर हम किस मर्ज की दवा हैं? आज ही सूखे मेवों का एक टोकरा भेजे देते हैं।'

मैंने जल्दी से कहा, 'नहीं-नहीं, आपके मेवे. . .'

उन्होंने बात काटकर कहा, 'उन्हें मेरे मेवे नहीं, देश-सेवा के मेवे समझकर खाइएगा, बस! वैसे भी आप चखकर देखिएगा तब

समझिएगा कि खरीदकर खाए मेवों में वो स्वाद और लज्जत कहाँ जो देश-सेवा से प्राप्त मेवे में होती है! पैसों की चिंता मत कीजिएगा! मुझे आप पर भरोसा है; मेरे पैसे कहीं नहीं जाएंगे। सब वसूल हो जाएंगे।'

अगले दिन उस एरिया का नामी-गिरामी दर्जी आया और बड़े प्यार से मुझे अपने फीते में जकड़ते हुए बोला, 'आप फिक्र न कीजिए। मुझे सब अंदाज है। वप्पा साहब से मैंने पहली बार नाप लेते वक्त ही कह दिया था कि अगली अचकन और पाजामे के लिए कम-से-कम पौना-पौना मीटर कपड़ा ज्यादा लाइएगा। और वही हुआ! वैसे ही आप भी करिएगा. . . लिबास तो यही रखेंगे न! रखना भी चाहिए। शुभ्र, स्वच्छ बकुल-पंखी अर्थात् बगुले की तरह सफेद शप्फाफ। हर मौके और हर जगह के लिए पूरी तरह दुरुस्त। जमाने की हवा सर्द हो या गर्म, ये वस्त्र पूरी तरह वातानुकूलित रहते हैं। समझ लीजिए, लिफाफे हैं जो अपना मजमून बदलते रहते हैं। कोई बाहर से इनके अंदर का मजमून भांप नहीं सकता। और इधर तो इस लिबास की महिमा और बढ़ गई है। इतिहास बताता है कि पहले इस लिबास को महान लोग पहनते थे, अब इसे जो पहन लेता है तुरत-फुरत महान हो जाता है।'

अगले दिन सुबह-सुबह तेल-पिलाई लाठी और बुल-बर्करी सीने वाला एक मुच्छड़ आया और सलाम ठोंककर बोला, 'मैं संतरी हूँ, सिर्फ देश-सेवियों के पोर्टिकों और पोर्चों के लिए समर्पित। अब तक की सारी जिंदगी, समझ लीजिए, देश-सेवी फाटकों और पोर्चों पर ही कुर्बान की है। खिदमत में कोई कोर-कसर नहीं रहेगी, इसका भरोसा रखे। वप्पा साहब ने तो पूरी हक-हुकूमत दे रखी थी। जिसे चाहता अंदर जाने देता, जिसे चाहता चार धक्के दे, कालर पकड़, बाहर कर देता। बप्पा साहब कभी दखल न देते थे।

'अहा, क्या आदमी थे! कभी पूछा पैरवी की ही नहीं। मेरी वजह से कभी टुटपुंजिए, फटेहाल मुकालती उनके पास फाटक ही नहीं पाए। समझ लीजिए, वे तो नाम के मंत्री थे। असली मंत्री तो मैं यानी उनका संतरी ही हुआ करता था। अब आपको क्या बताना, समझ लीजिए एक तरह से पूरे देश की बागडोर संतरियों के हाथ में ही होती है. . . अच्छा चलता हूँ। फाटक, पोर्टिको तैयार हो जाए तो बुलवा लीजिएगा। ये रहा मेरा विजिटिंग कार्ड। मेरे सिवा कोई और यहां संतरी न होने पाए, इसका ख्याल रखिएगा। यह ओहदा जिस-तिस को सौंपने लायक नहीं। बड़ी जिम्मेदारी, बड़े जोखम का काम है। हाँ, सांझ को इस इलाके के कुछ और नामी-गिरामी, तावेदार लोग आपसे दुआ-सलाम किया चाहते हैं। जिससे आपको पूरा इत्मीनान हो सके।'

शाम को, सर पे टोपी लाल, गले में रेशम का रुमाल बांधे वे लोग भी आए और मुझे पूरा भरोसा दिला गए कि 'हमारे रहते इस पूरे इलाकेभर में किसी की हिम्मत नहीं जो आपके काम में दखल दे। न आपकी तरफ कोई आंख उठा सकता है, न कोई इन्क्वायरी बैठ सकती है। हम जो हैं! आप तो बस खाइए और चैन से सोते हुए देश की खुशहाली का सपना देखिए। किसी की मजाल नहीं जो कोई रोड़ा अटकाए! अटकाए तो हमें तलब कीजिएगा। इसी तरह हमें पूरा भरोसा है कि आपके रहते हम पर आंच न आने पाएगी। है कि नहीं? न हमारा काम रुके, न आपका। बप्पा साहब जब तक रहे अपनी बात

रखी, हम निर्द्वंद्व घूमते रहे। अब यह जिम्मेदारी आप पर। आप अपना हाथ हमारे सर पे रख दें तो हमें भी इत्मीनान हो जाए।'

मैंने ससंकोच उन्हें समझाने की कोशिश की, 'लगता है आप लोगों को कुछ गलतफहमी हो गई, मैं तो यहां देश-सेवा के इरादे से आया हूँ।'

उन्होंने फौरन कहा, 'लीजिए, तो हम कौन-से देश के बाहर हैं? हम भी तो उसी देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है, प्रदूषण की। हमें कोई गलतफहमी नहीं है! और एक बात आपको भी याद दिला दें कि आप भी किसी गलतफहमी में न पड़िएगा, यह इलाका जितना आपका है उतना ही हमारा भी। इतना ध्यान रखिएगा, देश-सेवा के क्षेत्र में रहकर हमारे जैसे देशवासियों के द्रोह न मोल लीजिएगा। बाकी जिम्मेदारी हमारी। न वोट की कमी होने देंगे न नोट की। आप चैन से सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र के पिछड़े हुए तमाम काम कीजिए, चाहे काम तमाम कीजिए।'

इस प्रकार धमकी भरे आश्वासन और आश्वासनभरी धमकियाँ देते हुए भूतपूर्व मंत्री के संतरी और उसके बिरादरों ने अपने-अपने क्षेत्रों को गमन किया और उस विचारोत्तेजक धमकी से प्रेरित हुआ मैं, और मेरे क्षेत्रवासियों, आपके नाम यह संदेशनुमा धमकी जारी करता हूँ कि चूँकि मुझे अब कुछ भरोसेमंद साथी मिल गए हैं, अतः मैं बेखौफ, बेहिचक आपके क्षेत्र की सेवा के अखाड़े के कूदने वाला हूँ। सावधान!

... पृष्ठ 48 का शेष

बस', 'हाय मैंने क्यों नहीं लिखा सीरियल' आदि में मुखर है। हालाँकि स्वयं को केन्द्र में रखकर भी वे चोट कुरुपाओं और विसंगतियों पर ही करती हैं। रचनाकारों की प्रायोजित आत्ममुग्धता के संदर्भ में वे व्यावसायिकता का कृत्रिम तिरस्कार करने की लेखकीय मजबूरी पर अपना नाम लेकर प्रहार करती है— 'इस क्लोज अप' में सिर धुनती हुई लेखिका स्पेशल साउंड इफेक्ट के साथ आपका यही सवाल एक संवाद के रूप में बार-बार दोहराती हुई नजर आएगी कि 'हाय मैंने क्यों नहीं लिखा टी.वी. सीरियल?' 'आत्म व्यंग्य बनाम हकीकत पचपनवीं मॉडल की' शीर्षक रचना में निशाना सीधे अपने ऊपर है। क्या वे कोई योजना बनाकर लिखती हैं? इसका जवाब है, 'कभी कोई छोटी-सी योजना बनी भी तो 'समय' ने विद्रूप कर ऐसा जबर्दस्त धक्का दिया कि औंधी जमीन पर आ गिरी।' चाहे व्यंग्य अपने पर हो या व्यवस्था पर, सूर्यबाला के व्यंग्य में एक किस्म की शालीनता है। उन्होंने लिखा है कि जी.पी. श्रीवास्तव की 'क्रूडिटी' मेरी प्रकृति से मेल नहीं खाती थी। यह 'क्रूडिटी' उनके अपने सम्पूर्ण लेखन में अनुपस्थित है। उनका व्यंग्य आलपीन चुमो देने पर बिना बेहोश किए नशतर घुसेड़ देने की निर्ममता से भी बचा हुआ है। अधिकतर रचनाओं में सेफ्टीरेजर की हल्की चुभन या प्रेसर कुकर की सनसनाहट बराबर महसूस होती है। बाद की 'जनआकांक्षा का टाइटल सांग' जैसी रचनाओं में व्यंग्य की चुभन बढ़ गयी है। विदेश यात्राओं के अनुभवों से बुनी गयी 'प्रभुजी तुम डालर हम पानी', 'बाया अमेरिका' आदि रचनाएं भी मारक और बेधक हैं।

डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

आत्म व्यंग्य, व्यंग्य लेखन का निष्कर्ष है

प्रस्तुति— हरीश नवल

अगस्त का उमस भरा महीना, दिल्ली में बारिश को तरसते नागरिक, कूलर केंद्रित गोष्ठियों-सी सफल शेष में भद्रजन गायब! राजधानी का सांस्कृतिक माहौल गर्मियों में गरमाने की बजाय वैसे भी ठण्डा ही रहता है, ऐसे में मुंबई से आई हमारी दोस्त डॉ. सूर्यबाला। वे ठहरी सूर्य पुत्री अतः उन्हें गरमी सता नहीं पाई। बरसों बरस उनके 'संधिपत्रों' ने हिंदी के पाठक को झकझोरा था और जब वे बाकायदा व्यंग्यकार के रूप में उभरीं तो हम भी झकझोरित होने लगे। धर्मयुगीन और साप्ताहिक हिंदुस्तानीय संदर्भों ने 'बैठे ठाले' और 'तेहरवें पृष्ठ' की रचनाओं को व्यंग्य की अस्मिता प्रदान की और बाद में 'सारिका' के सागर में व्यंग्य के गोते लगने से हिंदी का पाठक कमोवेश सभी छोटे-बड़े पत्र-पत्रिकाओं आदि में व्यंग्य की डिमांड करने लगा। अर्थशास्त्र के नियम के अनुसार भारी डिमांड के कारण भारी सप्लाई होने लगी जिससे गुणवत्ता पर फर्क पड़ने लगा। ऐसे में श्रेष्ठ व्यंग्य लेखन के कायदे को जानने के लिए जिन कतिपय व्यंग्यकारों की उपरोक्त लिखित पत्रिकाओं में व्यंग्य रचनाएं प्रकाशित होने लगीं, उनमें सूर्यबाला एक यशस्वी नाम बना. . .

. . .हां तो जनाब ऐसी यशस्वी बाला उमस भरे मौसम में दिल्ली आई— आती तो वे अक्सर हैं पर इस बार विशेष आयोजन यह था कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में उनकी एक कहानी का मंचन था तथा उन्हें अपनी एक अन्य कहानी का वाचन करना था। मौका भी था, दस्तूर भी था, व्यंग्य यात्रा के संवाहक मूर्धन्य जनमेजय जी ने एक कुछ यात्री बालकों को बाला से पत्रिका के लिए बातचीत करने की पेशकश की। फलस्वरूप तीन पीढ़ियों के प्रतीक रूपों में बड़ी पीढ़ी के लेखक चिंतक श्री बी. डी. बजाज, मंजली पीढ़ी के हम खुद, खासकर हरीश नवल (सूर्यबाला समपीढ़ीक) और नई पीढ़ी के नवेले व्यंग्यकार डॉ. रवि शर्मा तयशुदा वक्त पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रांगण में पहुंच गए। भाई प्रेम जनमेजय भी पहुंचे तो थे पर वे चैकिंग पर थे, चैक लौट गए कि हम तीन बातचीत की त्रिकोणीय भूमिका के साथ पधार चुके हैं। सूर्यबाला से भेंट कर प्रेम जी की फ्लाईंग स्कवायड के जाने के बाद हम लोग कहीं शीतल स्थल की तलाश में जुटे और संयोग से (पुराने मित्र नहीं के एक अधिकारी श्री जी.बी. श्रीवास्तव मिल गए और हमें एक श्रेष्ठ स्थान पर मय चाय के छोड़कर अंतर्ध्यान हो गए।

चाय के प्यालों और उभरते सवालों के बीच सौम्य, शालीन



और सरल गरिमामय व्यक्तित्व की धनी सूर्यबाला ने बड़े मन से सचिन तेंदुलकर की तरह बैटिंग की और क्रीज पर डटी रहीं। ओपनिंग बॉल के रूप में प्रश्न फेंका गया था, 'नई पीढ़ी की जिज्ञासा के रूप में रवि शर्मा द्वारा कि वे व्यंग्य लेखन का मूल तत्व किसे मानती हैं। धीरे से बॉल को मिड ऑफ की तरफ सरकते हुए उन्होंने कहा था, 'व्यंग्य के मूल में कुछ भी हो सकता है। कोई भी चीज बहुत जरूरी हो सकती है। चारों तरफ बेचैनी, विद्रोह, विद्रूप है। इतना

विद्रूप पहले कभी नहीं रहा। हम बेचैन होकर रिएक्ट करते हैं, उस समय कोई लेखन योजना हमारे सामने नहीं होती। बस एक तुरंत उपजी तीक्ष्ण प्रतिक्रिया होती है और श्रृंखला बनती जाती है। चीजें एक से एक जुड़ती चलती हैं और रचना बन जाती है।

एक गुगली हमने फेंकी, 'आप कहती हैं आपको पागल कुत्ता काटता है इसलिए आप व्यंग्य लिखती हैं। क्या हम सभी व्यंग्य-यात्री कुत्ते के काटे हुए हैं? आपकी रचनाओं में आखिर कुत्ते का क्या महत्व है? सिली समझते हुए मानों उन्होंने सिली ऑन की तरफ बॉल ड्राईव की, 'मेरे व्यंग्य लेखन में कुत्ते ने एक अहम रोल निभाया है। मैंने विस्तार



से 'कॉलोनी में कुत्ता' व्यंग्य रचना में इसके विषय में लिखा है। मैं 35 साल से लिख रही हूँ पर साहित्य का कुत्ता कभी फटका नहीं। कुत्ते के नाम से भड़कने की जरूरत नहीं क्योंकि साहित्य तीखा होता है। भारत के किसी तीर्थ में कुत्ता ना हो, यह कैसे संभव है। मेरे पति की जबरदस्त पहरेदारी के कारण कुत्ता नहीं फटका 'क्यों नहीं फटका' यह स्त्री विमर्श का प्रश्न है।' अगली बॉल बाई की बॉल बनी जब प्रश्न किया गया, 'तो आपको साहित्य का नहीं, पागल हुआ कुत्ता काटता है।' जिसे हिट किया गया वह था, 'अपने से होकर यानि व्यक्ति से होकर व्यंग्य वर्ग का बन जाता है यह आत्म व्यंग्य है। क्या कहेंगे इसके बारे में?'

'देखिए व्यंग्य लेखन यदि गद्य-लेखन का निकष है तो निश्चित रूप से आत्म-व्यंग्य, व्यंग्य लेखन का निकष है।' चर्चा करते हुए चारों परिचर्चक और उपस्थित एक और अदद शोध छात्रा जो फोटो भी खींच रहीं थीं और भाग भी ले रही थी, व्यंग्य की महिमा पर आ टिके। सूर्यबाला ने यूँ चौंका जड़ा, 'लेखक तो किसी तरह भी बनाया जा सकता है पर व्यंग्यकार नहीं।'

बात मध्य प्रदेश और उसकी व्यंग्य सामर्थ्य पर भी पहुँची। सभी की भांति सूर्यबाला का निष्कर्ष भी यही है, 'व्यंग्य के लिए मध्य प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है।'

तभी बी.डी. बजाज के मन में एक सवाल उपजा, 'प्रासंगिकता से संबंधित प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि आपके द्वारा लिखा गया व्यंग्य, यह देश और सोनिया गांधी' क्या अब प्रासंगिक है?'

इस बार सिकसर था, 'यह 12 साल पहले लिखा था, आज यह भी प्रासंगिक है, तब जो चीजें शुरू हुई थी, अब चार सीढ़ियाँ और आगे निकल गई।

ओवर की अगली गेंद, इस हमाम में... रचना की प्रेरणा कहां, कैसे मिली? सूर्यबाला के बेट की टकराहट, 'अमेरिका से कुछ सोचकर नहीं लिखी थी पर वहां की संस्कृति देखी, रचना बनी। आपको अच्छी लगी- धन्यवाद! पाठक को मैं अहमियत देती हूँ।

रचना लिखते समय मैं पाठकों के बारे में काफी सोचती हूँ। क्या से क्या मिल पायेगा जो वह चाहता है। वहां की संस्कृति आर्तकित करती है, उसी को विचार कर रचना बनी, पाठक ने पसंद की, शायद मैं उसकी अपेक्षा पूरी कर सकी, उसे वहां की संस्कृति की फिल्म दिखा पाई।'

'कैसी फिल्मों पसंद है आपको? क्या फिल्मों आपको प्रभावित करती हैं?' खाकसार ने आम जिंदगी का एक आम प्रश्न रखा। उत्तर प्रदत्त हुआ। 'फिल्में दो तरह से प्रभावित करती हैं। एक सोद्देश्यता से दूसरे स्वस्थ मनोरंजन से पुरानी फिल्मों में मुझे एक ओर 'गरम हवा' अच्छी लगी और दूसरी ओर, 'चलती का नाम गाड़ी'। नई फिल्मों में 'ए वैडनस्टे' ने प्रभावित किया, 'पेजथ्री' भी अच्छी लगी और 'वीर सावरकर' भी। हां पुरानी फिल्मों में एक 'पडौसन' भी अच्छी लगी थी।'

लगे हाथ हमने पडौसन से पूछ लिया, 'आपके मनपसंद हीरो कौन हैं?' पडौसी को जवाब मिला, 'पुराने वक्तों के बलराज साहनी और अशोक कुमार तथा नए के नसीरुद्दीन शाह।' हमने बस मन में ही सोचा 'नसीरुद्दीन नए हीरो? दर्जनों खान बंधुओं का क्या होगा?

अचानक एक प्रश्न मन से टपक पड़ा, 'आपके समक्ष ओबामा और क्लिंटन हों, किससे मिलना चाहेंगी आप?' (वैसे प्रश्न वाजिब था क्योंकि सूर्यबाला अपने बेटे के पास अमरीका जाती रहती हैं)

जाने क्यों सूर्यबाला अपेक्षाकृत ज्यादा गंभीर सी हो गई, तनिक दृढ़ स्वर में बोली, 'दोनों में से किसी से भी नहीं। मैं बहुत स्वाभिमानी हूँ— फिल्मी हीरो, राजनेताओं, एंकरों आदि किसी से मिलना में रुचि नहीं। एक बार किसी ने श्री मुरली मनोहर जोशी से परिचय कराया। जोशी जी ने कहा, 'मैंने आपको पढ़ा है।'

प्रिय सूर्यबाला जी हो सकता है ओबामा और क्लिंटन ने भी आपको पढ़ा हो। हो सकता है वे भी आपकी तरह बड़े स्वाभिमानी हों— तब? (यह प्रश्न आऊट ऑफ कोर्स है)

बजाज वाणी उद्धोषित हुई, 'पटनी और पुरस्कार' रचना मैंने

पढ़ी, क्या ज़माना कुछ बदला नहीं है? क्या बदलाव देखकर आज जेनरेशन गैप महसूस करती हैं?

क्रीज में खड़ी सूर्यबाला उवाच, 'हां जमाना बदल रहा है, कहीं ज्यादा ही ना बदल जाए। पीढ़ी अंतराल तेजी से बदल रहा है। पहले तीस चालीस लगते थे, अब पांच-छह साल में बदलाव महसूस होने लगा है। मैं चाहती हूं कि बदलाव समाज के हित में हो एक संतुलन बना रहे। ये बदलाव जिस ओर संकेत करते हैं, वह रुककर सोचने के लिए विवश करता है. . .हां मेरी उस रचना में हम वहीं हैं बच्चे आगे बढ़ गए हैं। बच्चे कह रहे हैं, अब पुरस्कार लायक हो गई हैं। दाल तो ठीक ना बन पाई, लेखन में प्राइज मिलने लगे हैं. . .।

एक ढर्रेदार सवाल किया गया, 'आपके प्रिय व्यंग्यकार कौन हैं?' फरिटेदार जवाब मिला, 'श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी और परसाई' तभी रेस्ट टाइम में परसाई, जोशी, त्यागी, श्रीलाल आदि के विषय में चर्चा हुई। ऐतिहासिक महत्व, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न व व्यंग्यकारों की आजादी के बाद की पहली पीढ़ी आदि को लेकर बातें हुई। एक विशेष उल्लेखनीय बात सूर्यबाला द्वारा दर्द के साथ कही गई, 'के.पी. सक्सेना को उनकी जगह नहीं दी गई।'

रेस्ट के बाद पुनः त्रिकोणीय स्थितियों ने करवटें ली और रवि शर्मा ने आदिकालीन सर्वदा नवीन प्रश्न किया, 'व्यंग्य को आप क्या मानती हैं शैली या विधा?'

'मैं शान से इसे विधा मानती हूं। पाठक भी अब जानता है कि व्यंग्य क्या है। पहले व्यंग्य को उतना विशेष नहीं माना गया था, इसलिए शायद अब तो शैली ही रचना हो गई है। आलोचक भी अब ध्यान देने लगे हैं।'

'आलोचक और समीक्षक की भूमिका क्या है, 'खाकसार को याद आ गया था कि वह एक प्राध्यापक भी हैं।

सूर्यबाला ने स्थिर होते हुए कहा, 'आलोचक या समीक्षक पाठकों में किसी विधा या रचनाकार के प्रति रुचि पैदा करता है। आलोचना साफ नीयत के साथ होनी अनिवार्य है, ऐसा मैं चाहती हूं, मानती हूं।

आलोचक का प्रवेश होते ही मुलाकात गरमा उठी। सवाल, जवाब परिचर्चा में परिवर्तित हो उठे। बी.डी. बजाज उपन्यास, व्यंग्य कहानी आदि को व्यंग्य विधा के अंतर्गत रखने पर बल देते दिखाई दिए तो रवि शर्मा जानना चाह रहे थे कि व्यंग्य स्तम्भ लेखन की भूमिका क्या है। जवाब में हम फरमा रहे थे कि व्यंग्य के नाम पर कटाक्ष, टिप्पणी, त्वरित प्रतिक्रिया, चुटकुला, तुकांत शब्दावली आदि जाने किस किस को 'व्यंग्य स्तम्भ' के अंतर्गत छाप दिया जाता है। सूर्यबाला का मत था कि इसमें सम्पादक का दोष है। सम्पादक में व्यंग्य की समझ और विवेक होना जरूरी है।

रवि का असमंजस कि व्यंग्य और हास्य का मेल कितना और कैसे हो। हमारा बताना कि व्यंग्य के भोज्य में हास्य चटनी जितना हो। यहां तक समस्त भोजन चटनी के साथ ही खाया जा रहा है।

सूर्यबाला का कहना था, 'मैं हास्य को व्यंग्य के साथ अनिवार्य मानती हूं। पर जरा भी अशिष्ट होना नष्ट हो जाएगा। केवल



व्यंग्यकार का विवेक उसे रोकेंगा।'

एक बात और उनकी हिट लगी वह एक 'कोटेबल कोट' ही है। हास्य व्यंग्य का नक्काशी है।'

रवि शर्मा का एक अन्य प्रश्न कि 'व्यंग्यकार के नाम पर महिलाओं की उपस्थिति कम क्यों होती है।'

सूर्यबाला का आवेश था, 'महिलाओं को बोलने की मनाही जो है। वरना महिलाओं के ताने, कटाक्ष आदि निपुणता लिए होते हैं। रत्नावली के कटाक्ष ने तुलसीदास को बनाया। पत्नियों के ताने सुनकर बहुत से पुरुष व्यंग्यकार बने हैं।'

जाने क्यों हमारा सिर उस समय कुछ झुका-झुका था और गला कुछ रुका-रुका था।

बी.डी. बजाज ने दलित साहित्य संदर्भित प्रश्न उठाए जिन पर चर्चा करने के बाद सूर्यबाला ने रूलिंग दे दी, 'किसी भी लेखन में प्रतिशोध का स्वर नहीं होना चाहिए।'

रवि शर्मा ने समसामयिक हिंदी व्यंग्य की स्थिति के विषय में बात करते हुए कई सवाल किए। उनका शमन करने के बाद तसल्ली देते हुए सूर्यबाला ने कहा, 'आज हिंदी व्यंग्य का एक विहंगम दृश्य मुझे दिखाई दे रहा है जो आश्चर्य देता है। जो विश्वसनीय नाम तुरंत ध्यान आ रहे हैं, कुछ रह भी सकते हैं उनमें ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, हरि जोशी, कृष्ण चराटे, यज्ञ शर्मा, अजातशत्रु, सुरेश कांत, यशवंत व्यास, अशोक शुक्ल, विनोद शंकर शुक्ल, आदि एक लंबी प्रथम कतार है।

'व्यंग्य यात्रा' को लेकर की गई बातचीत में सूर्यबाला का अम्पायर डिसिजन था, 'व्यंग्य यात्रा' द्वारा व्यंग्य केंद्रीय धारा में आ गया है। पूरा श्रेय प्रेम जनमेजय का है। लेखक और सम्पादक रूपों में उत्कृष्ट काम कर रहे हैं। उनके पास रचना और रचनाकार चयन की आंख है। पत्रिका पठनीय, सार्थक और संग्रहणीय है। श्रीलाल शुक्ल संदर्भित सामग्री सर्वोपरि थी।'

इस प्रकार सूर्यबाला ने अपनी पूरी पारी खेली। तत्पश्चात उनका दूसरा रूप प्रकट हुआ। 'आप मंच' के मंच पर उनकी कहानी का बेहतरीन मंच हुआ। एक कहानी का वाचन भी उन्होंने किया जिसे सुनकर रंगकर्म निष्णात संयोजन देवेंद्र अंकुर ने कहा, 'जितना नाटकीय श्रेष्ठ वाचन सूर्यबाला जी ने किया इतना तो कई अभिनेता भी नहीं कर सकते।'

मंचन पश्चात हुए समोसा चाय समारोह में सूर्यबाला के पतिदेव से भी मिलना संभव हुआ। वे मेरिन इंजीनियर हैं। ग्लैक्सो जैसी बड़ी कंपनी में बरसों बरस उच्च पद पर कार्य करने के बाद लगभग सात वर्ष एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के चीफ रहे। सम्प्रति वे सूर्यबाला जी को निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। उनकी प्रेरणा पर ही सूर्यबाला अचानक आगे निकल गईं और हम मकुए से चाय-समोसा की प्लेटें पकड़े खड़े के खड़े रह गए।

आमीन।

हिन्दू कॉलेज स्टाफ क्वार्टर
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के नवीनतम प्रकाशन

नेशनल बुक ट्रस्ट किताब क्लब के सदस्य बनें और नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रकाशनों पर २० प्रतिशत की छूट पाएं

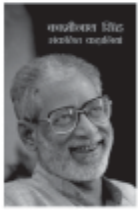


कामतानाथ : संकलित कहानियां

पृ.208

रु.90-00

स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी कहानी को नई दिशा देने वाले प्रसिद्ध कथाकार कामतानाथ की चुनिंदा कहानियों का संकलन।



काशीनाथ सिंह : संकलित कहानियां

पृ.216

रु.90-00

स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी कहानी की अगली खेप को अद्यतन कर नई दिशा देने वाले प्रसिद्ध कथाकार काशीनाथ सिंह की चुनिंदा कहानियों का संकलन।



मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियां

पृ.188

रु.45-00

स्त्री मन की आकांक्षाएं, प्रेम, दाम्पत्य, पारिवारिक-सामाजिक ढांचे, छद्म आधुनिकता के दुष्प्रभाव आदि विषयों पर लिखी गई मन्नू भंडारी की कहानियों का अनूठा संकलन जिसमें पाठकों को अपने समय का स्वर पहचानने का बेहतरीन अवसर उपलब्ध है।



पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियां
संकलन एवं संपादन : रमणिका गुप्ता

पृ.168

रु.60-00

'पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियां' नाम से इस संकलन में अरुणाचल प्रदेश, असम, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, मणिपुर आदि क्षेत्रों के रचनाकारों की रचनाओं को सम्मिलित किया गया है। यह संकलन पढ़ने को प्रेरित और काफी कुछ जानने को उत्साहित करता है।



राजेन्द्र यादव : संकलित कहानियां

पृ.224

रु.75-00

श्रेष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव की चुनी हुई कहानियों का संकलन।



सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कहानियां
आनंद प्रकाश

पृ.166

रु.80-00

स्वाधीनता आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ता सुभद्रा कुमारी चौहान की बाईस श्रेष्ठ कहानियों का संचयन उनके समर्थ कथा लेखक रूप को पाठकों के सामने रखता है।



महाश्वेता देवी की श्रेष्ठ कहानियां
अनुवाद : माहेश्वर

पृ.160

रु.35-00

बांग्ला की सुप्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी द्वारा संकलित उनकी इन कहानियों के केन्द्र में मुख्यतया आदिवासी जनजीवन है, जो समाज की मूलधारा से कटकर जी रहा है।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,
बसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
दूरभाष : 24526169, 24526164, 24526174
फैक्स : 26121883
ई-मेल : nbtindia@nbtindia.org.in
वेबसाइट : http://www.nbtindia.org.in



मुंबई : दूरभाष व फैक्स : 91-22-23720442
ई-मेल : nbtindiamumbai@yahoo.com
बंगलुरु : दूरभाष व फैक्स : 91-80-26711994
ई-मेल : nbtindiasro@vsnl.net
कोलकाता : दूरभाष व फैक्स : 91-33-22413899
ई-मेल : nbter@dataone.in

पुस्तक विक्रेता हमारे पंजीकृत एजेंट के रूप में स्वयं को पंजीकृत करवाकर ने.बु.ट्र. परिवार के सदस्य बन सकते हैं। शर्तों के लिए कृपया हमारी वेबसाइट देखें अथवा हमसे संपर्क करें।

सुबोध कुमार श्रीवास्तव

सुसंस्कृत भिखमंगे

कमाऊ पुत्रों के उबाऊ बापों से हर बेटी के बाप का पाला कभी न कभी तो पड़ता ही है। भौतिकवाद और बाजारवाद के इस घनघोर युग में लड़के के बापों की एक नई नस्ल पैदा हुई है, विकसित हो रही है और खूब फल-फूल रही है। इस नस्ल के जीवाणु रातोंरात लखपति हो जाने का हुनर जानने लगे हैं। इन्हें आप और हम सुसंस्कृत भिखमंगे कह सकते हैं। इनके पास भीख मांगने के तरह-तरह के करिश्मे हैं। ये किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते, कटोरा आगे नहीं बढ़ाते। इनका मुंह ही अल्यूमिनियम के भद्दे कटोरे का काम करता है। पूजास्थलों के आसपास, स्टेशन और बसस्टैंड पर, सड़कों, चौराहों-तिगड्डों पर, गलियों-गलियों और घर-घर में भीख मांगने वाले भिखारी इन तीन तारा और पांचतारा भिखारियों के सामने कहीं नहीं टिकते। ये भव्य भिखारी लड़की के बाप पर अहसान लादते हुए वैज्ञानिक तरीके से इस तरह भीख मांगते हैं कि इनके सामने 'भीख' भी शर्मिंदा हो जाती है। भीख को ये दहेज कहते हैं और 'पिता द्वारा पुत्री के लिए किया गया संकल्प' जैसा वाक्य बोलकर उसे महिमामंडित भी करते हैं। दहेज के नाम पर लाखों रुपये हड़ लेने के पक्ष में इनके पास बेजोड़ तर्क हैं। सड़कछाप भिखारी ज्यादा से ज्यादा एक रुपया मांगता है पर ये सुसंस्कृत भिखारी एक के आगे कम से कम छः शून्य लगाकर बात शुरू करते हैं। एक की जगह 'दो' और 'तीन' भी हो सकते हैं। ये भव्य और विशिष्ट भिखारी हमारे देश के वित्त और विदेश मंत्री को भी यह परामर्श और सीख दे सकते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और विदेशों से किस प्रकार कर्ज हथियाया जा सकता है। हालांकि भीख और ऋण में कुछ भेद है। ऋण और भीख सगे नहीं तो

सौतेले भाई-बहन तो हैं ही।

दहेज के नाम पर भीख मांगने की क्रिया को दहेज प्रेमियों ने कलात्मक रूप प्रदान कर दिया है और इसके समर्थन में इतने आकर्षक तर्क परोसे जाते हैं कि सामने वाले व्यक्ति को भी यह आभास होने लगता है कि दहेज का लेन-देन कोई पाप या अपराध नहीं है, बल्कि पुण्य का काम है। बेचारा लड़की का बाप उधार लेकर, घर बेचकर, यदि हैं तो पत्नी के गहने बेचकर दहेज देता है और बेटी की विदा कर देता है। उसे इस बात का कुछ-कुछ संतोष रहता है कि लड़के के घर पर स्टोव नहीं फटेगा और उसकी बेटी जीवित रहेगी।

भव्य और सुसंस्कृत भिखारियों से कई बार मेरा पाला पड़ा। गाजरघास और बेशरम की झाड़ियों की तरह यह नस्ल फैलती ही जा रही है। पहले आपका परिचय करा रहा हूँ श्रीवास्तवजी से। इनके ऊपर एक जिले के बेरोजगारों को रोजगार दिलाने का दायित्व था और यह जिम्मेदारी शासन द्वारा सौंपी गई थी। इन्होंने बेरोजगारों से भी भीख ली और इस कमाई से अपने दो बेटों को डाक्टर बनवाया। डॉक्टर यानी हीरा-पन्ना जिसका दहेज बाजार में मूल्य लाखों रुपये। डॉक्टर यानी बियरर चैक। मैं श्रीवास्तवजी के घर पहुंचा तो उन्होंने मुझे अपना ग्राहक समझा और बड़े दुलार से पूछा, 'अपने बेटे का रजिस्ट्रेशन रोजगार कार्यालय में आपने कितने युग पहले कराया था? मैं इंटरव्यू कॉल लेटर निकलवा दूंगा। लेकिन. . .

मैंने उन्हें वाक्य पूरा करने का अवसर ही नहीं दिया, 'भाई साहब, मेरा बेटा बेरोजगार नहीं है और मैं उसकी नौकरी के संबंध में नहीं आया हूँ। मैं लड़की का बाप हूँ और आपके द्वारा अखबार में दिये वैवाहिक विज्ञापन को पढ़कर आया हूँ। आपके दोनों बेटे

अविवाहित हैं। मेरी दो बेटियां हैं। उनके विवाह के संबंध में बातचीत करने आया हूँ।'

श्रीवास्तवजी ने मुझे तौलती हुई नजरों से देखा। जूतों की पालिश से लेकर सिर के बालों में लगे तेल तक का सूक्ष्म अध्ययन किया। फिर बोले, 'आपने विवाह बाजार में क्वारे डॉक्टर लड़कों के भाव तो मालूम कर ही लिए होंगे? तभी तो यहां आए हैं। शुरुआती बोली दस लाख रुपया नकद है। कार और एच.आई.जी. फ्लैट अलग से। मैं जेवर और कपड़ों की बात नहीं करूंगा। मां-बाप अपनी लाड़ली बेटी को बीस-तीस तोला सोना और डेढ़-दो लाख रुपये के कपड़े तो देते ही हैं। यह स्थिति अपने मध्यप्रदेश की है। उत्तरप्रदेश और बिहार में भाव इससे दुगुने-तिगुने हैं। आप बैठिए। ठंडा पानी पीजिए।' वे पुनः जूतों से लेकर सिर के बालों तक मेरा अध्ययन करने लगे। मेरे जूते उनके चेहरे की अपेक्षा अधिक चमक रहे थे और सिर के बाल भी पूरी तरह व्यवस्थित थे जबकि वे लगभग गंजे थे।

मैंने कहा, 'मोलभाव करना मुझे आता नहीं है। मेरी बेटी सुंदर, आकर्षक, पढ़ी-लिखी और निपुण है। आप उसे देख सकते हैं, उससे बातचीत कर सकते हैं।'

वे हंसने लगे और हंसते हुए ही बोले, 'बंधु, हर बाप को अपनी बेटी सुंदर लगती है लेकिन इस देश में सिर्फ रुपया सुंदर और आकर्षक होता है। वह कुरूपता को भी खरीद सकता है। आप शिक्षक रहे हैं तो यहां आने से पहले ही सोच लेना चाहिये था। यदि मैं आपको दो-चार लाख रुपये की छूट भी दूंगा तो भी आप हमारे यहां विवाह-संबंध स्थापित नहीं कर सकेंगे। मैंने दोनों बेटों की पढ़ाई-लिखाई पर लाखों रुपये खर्च किए थे। यह एक प्रकार का विनियोग था। अब

लाभ का अवसर आया है तो मैं हानि का सौदा कैसे कर सकता हूँ।’

मैंने भी पूरी विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर कहा, ‘आपकी बात से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। यूँ बाजार में हर चीज की कीमत उछाल पर है। कद्दू के दाम तक बढ़ चुके हैं। पर कमाऊ बेटों की कीमतें तो आसमान छू रही हैं। मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपका बेटा नहीं खरीद सकता।’

प्रांत की राजधानी के प्रमुख ठेकेदार श्री रायजादा साहब के बारे में सुना था कि वे सुलझे हुए व्यक्ति हैं, दहेज विरोधी हैं, अमीर व्यक्ति हैं और लाखों रुपया आयकर का पूरी ईमानदारी के साथ जमा करते हैं। वे समाज में प्रतिष्ठित थे। लगभग मुखिया की सी स्थिति थी उनकी। उन्हें अपने छोटे बेटे के लिए सुंदर लड़की चाहिए थी जो गोरी भी हो। उनका तर्क था कि वे खुद जामुनी रंग के हैं और उनके स्वर्गीय मां-बाप ने जिस लड़की के साथ उनके जीवन की डोर बांध दी, वह भी उनकी टक्कर की। नतीजा यह निकला कि उनके तीनों बेटे भी काले-कलूटे और दोनों बेटियाँ भी भटे रंग की। अब वे इस तरह की भूल करना नहीं चाहते थे। उनके मन में यह बात बैठ चुकी थी कि गोरी बहू उन्हें गोरा पोता देगी। उनकी एक बहू ने यह कमाल किया भी था।

मेरी बेटी गोरी थी सो मैं उनके यहां पहुंच गया, अपनी औकात भूलकर। उन्होंने मेरी अच्छी खातिरदारी की। मेरी बेटी का फोटो देखकर वे खुश हुए और बोले, ‘मैं और मेरे परिवार के लोग आपकी बेटी को देख चुके हैं और उसे पसंद भी कर चुके हैं। आपको इसका पता भी नहीं चला। लड़की देखने का हमारा तरीका अलग है। किसी के घर जाकर लड़की देखना मुझे नापसंद है। आखिर वह मेरी भी तो बेटी ही हुई। दहेज शब्द से मुझे घृणा है। आप मुझे सिर्फ इतना बतला दीजिए कि आपने अपनी बेटी के लिए कितना संकल्प किया है। पिता पुत्री के लिए कुछ न कुछ संकल्प तो करता ही है। उसे उसका हिस्सा देता है।’ वे अनुभवी आंखों से मुझे आंकने लगे। उम्र और अनुभव ने उनके सिर के बालों को ही नहीं, भौंहों

को भी बर्फ सा सफेद कर दिया था।

मेरा संकल्प सुनकर वे मुस्कुराए फिर बोले, ‘मैंने अपनी दोनों बेटियों के लिए पच्चीस-पच्चीस लाख रुपये का संकल्प किया था, जो पूरा किया। मैंने कोई दहेज नहीं दिया था। दोनों दामाद मेरे साथ ही रहते हैं और ठेकेदारी में मेरी मदद करते हैं। आपने जो संकल्प बतलाया है, उतनी राशि मेरे दोनों समर्थियों ने मेरे बेटों को देखते ही पकड़ा दी थी। पर आपकी बेटी मुझे पसंद है। आपने जो संकल्प बतलाया है, वह भी चलेगा। एक काम कीजिए। आप अपनी बेटी को जो भी सामान देंगे, उसका भी नकदीकरण कर दीजिए। स्कूटर, फ्रिज, टी.वी., वाशिंग-मशीन, कूलर, फरनीचर, बर्तन आदि लेकर मैं क्या करूंगा। घर में दो कार हैं, एक जीप, तीन-चार स्कूटर, मोटर साइकिलें भी। मुझे तो गिनती भी याद नहीं। ठेकेदारी करता हूँ सो एक दर्जन ट्रक और दो ट्रैक्टर भी खरीदने पड़े हैं। हर बेटे-बहू, बेटी-दामाद के कमरों में ए.सी. है, फ्रिज है, टी.वी. है और हर तरह का फरनीचर है। आप सामान के नाम पर कुछ भी नहीं दीजिए। अपना संकल्प अपनी बेटी-दामाद के नाम बैंक में खाता खोल कर जमा कर दीजिए। मुझे दहेज से चिढ़ है। मेरी पत्नी, बहुएं, बेटियाँ, आपकी पत्नी के साथ बाजार चली जाएंगी और अपनी-अपनी पसंद की डेढ़-दो दर्जन साड़ियाँ पसंद कर लेंगी। दामाद-बेटे भी इतने ही सूट के कपड़े पसंद कर लेंगे। वहीं बांबे टेलर्स में नाम भी दे देंगे। भाई, ये तो नेग-दस्तूर है। निर्वाह करना ही पड़ेगा। इतना कुछ कहते-कहते रायजादा साहब हांफने से लगे।

मुझे उस दहेज विरोधी व्यक्ति पर बड़ी दया आई। बेचारा दहेज नहीं संकल्प चाहता है। मैंने इतना ही कहा, ‘बाबूजी, आज के युग में आपकी तरह के उदार और दहेज विरोधी व्यक्ति भी हैं, मुझे आश्चर्य हो रहा है। मैं दहेज में लड़की के ससुराल वालों को नेग-दस्तूर के नाम पर कपड़े दे सकता हूँ पर संकल्प के नाम पर बाजार से एक पूरी दुकान उठा कर नहीं ला सकता। आप दहेज को समाज का कोढ़ मानते हैं और मैं आपको। अच्छा मैं चलता हूँ। आप कोई दूसरी दुकान देखिए।’

अस्थानाजी के साथ हुई मुलाकात और भी दिलचस्प है। उनके परिवार के लोगों ने तीन बार मेरी बेटी को देखा। पहले लड़के के मां-बाप ने फिर उनकी बेटी-दामाद ने और अंत में लड़के ने अपने तीन मित्रों के साथ। चौथी बार उन्होंने फिर खबर भेजी कि वे अपने पूरे परिवार के साथ एक बार फिर लड़की को देखना चाहते हैं। इस बार मैंने उन्हें खबर भेज दी कि वे अपने चाय-नाश्ते और खाने के लिए कोई दूसरा ठिकाना ढूँढ लें। मेरा घर कोई होटल नहीं है और मेरी बेटी प्रदर्शन की वस्तु नहीं। मैंने उन्हें यह सलाह भी दे डाली कि वे, परिवार सहित, अपनी आंखों की जांच किसी नेत्र विशेषज्ञ से करा लें। इस बीच मुझे यह जानकारी भी मिल चुकी थी कि लड़के के विधुर चाचा ने किसी कार्यालय में पदस्थ अपनी रखैल चपरासिन की, भेद खुल जाने पर, हत्या करने की कोशिश की थी। कुछ खोजी पत्रकार चाचा के साथ भतीजे का नाम भी जोड़ रहे थे। यूँ अस्थानाजी के पुत्र को शादी में सिर्फ कार चाहिये थी। वह कार से शादी करना चाहता था और बेटी के दहेज में ले जाने की चाह रखता था।

प्रधान साहब का किस्सा भी कम मजेदार नहीं। उन्होंने पत्नी सहित सारी बातें नापतौल कर की। मसलन जो गहने मैं बेटी को दूंगा, वे कितने कैरेट सोने के होंगे, फ्रिज, टी.वी. वाशिंग मशीन, कूलर आदि किस कंपनी के होंगे। बारातियों को विदाई में क्या दूंगा? लड़के को मोटर साइकिल तो देनी ही होगी क्योंकि देश के समस्त बापों ने यह भार बेटे के भावी ससुरों पर लाद रखा है। खाने में कितने तरह का मीठा परोसा जावेगा? एक शर्त उनकी यह भी थी कि मैं उनके शहर में जाकर ही शादी करूँ और डेढ़ हजार बारातियों के प्रीतिभोज की व्यवस्था किसी तीन-तारा होटल में करूँ। यदि मैं अपने शहर से बेटी की शादी करूँगा तो डेढ़ सौ बारातियों के आने-जाने का रेलभाड़ा भी मुझे वहन करना होगा। इनमें से दस बाराती ए.सी. प्रथम श्रेणी में यात्रा करेंगे।

चूँकि बातचीत के दौरान प्रधानजी की पत्नी काफी उत्साहित होकर उचक रहीं थी, मेरी पत्नी ने उन्हें संबोधित किया, ‘बहनजी,

आप अपने बड़े बेटे की शादी करने जा रही हैं। कुछ अपनी ओर से भी खर्च करें। कम से कम अपने व्यवहारियों को तो अपने खर्च से भोजन करा दें। शादी में हम लोग एक-डेढ़ हजार भिखारियों को तो भोजन करा सकते हैं पर इतने बारातियों को नहीं। मुफ्तखोरी की भी एक सीमा होती है। हमारी बेटी का आपके परिवार में दम घुट जाएगा। हमें क्षमा करें।’

यहां यदि मैं वैध साहब का उल्लेख नहीं करूंगा तो उनके साथ अन्याय होगा। उन्हें और उनके बेटे को इस बात का गर्व था कि हिंदी प्रदेश के होने के बावजूद वे अच्छी अंग्रेजी बोल लेते हैं। लड़के को धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने वाली लड़की चाहिए थी। यूँ उसकी मां ठेठ बुंदेलखंड की थीं और ‘टॉपी कम, टॉमी गो’ या ‘आप एक कप टी तो ड्रिंक करेंगे ही’ की तरह की अंग्रेजी बोल लेती थीं। उन्होंने मुझे अपना नया मकान भी दिखलाया जो बन रहा था, और जिसमें खिड़की-दरवाजे नहीं लगे थे। मुझसे बोलीं, ‘भाई साहब, और तो सब ठीक है पर अभी खिड़कियों में विंडो और दरवाजों में डोर लगाना बाकी है।’ लड़के की छोटी बहन भी सामान्य अंग्रेजी के प्रश्नपत्र में दो साल से लुढ़क रही थी। पर वैधजी की शर्त थी कि उनकी बहू फर्स्टेदार अंग्रेजी बोले।

मैंने कहा, ‘उचित वातावरण मिलने पर यह भी संभव है। मेरी बेटी को अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान है। वह कभी अंग्रेजी विषय में फेल नहीं हुई। दो-चार माह के अभ्यास के बाद वह इस योग्य हो जाएगी। पर क्या आपका बेटा दो-चार माह में अपनी ऊंचाई दो-तीन इंच बढ़ा सकता है? . . नमस्कार। मैं चलता हूँ।’

भटनागरजी और सक्सेनाजी को इस तरह की बहू चाहिए थी जो हर माह उनके हाथ में दहेज रख दे यानी कमाऊ लड़की। उन्हें अपने बेटों की औकात पर भरोसा नहीं था। मेरी बेटी उनके बेटों की अपेक्षा अधिक कमाती थी, यह बात भी उन्हें और उनके कमाऊ बेटों को रास नहीं आई। तर्क था कि वर की कमाई वधू की कमाई से कुछ अधिक ही होनी चाहिए। उन दोनों आत्माओं ने मुझसे कहा कि उनके बेटों को अधिक वेतन वाली नौकरी मिल सकती है बशर्ते वे रिश्वत में पांच लाख रुपये भ्रष्ट अधिकारियों तक पहुंचा दें। दोनों ही सज्जनों ने बड़े अधिकार के साथ मुझसे अपने भावी दामाद का जीवन संवारने के लिए इस रकम की मांग की जो मैंने यह कहकर ठुकरा दी, ‘मेरी बेटी का कहना है कि गधों को कितनी भी अच्छी घास क्यों न खिला दी जाए, उन्हें घोड़ा नहीं बनाया जा सकता। हड़पी गई घास के द्वारा तो हरगिज नहीं।’

कभी आपको श्री सिन्हा जी, कुलश्रेष्ठजी, खरेजी, वर्माजी, निगमजी, राय साहब आदि के किस्से भी बतलाऊंगा। ये सभी या अधिकांश बेहद पढ़े-लिखे लोग हैं, अच्छी नौकरियों में हैं पर इनकी सोच कुछ इस तरह की है कि जब कभी मूतने बैठते हैं तो कान पर जनेऊ चढ़ा लेते हैं। लड़की के बाप की गाढ़ी कमाई पर सुनियोजित डाका डालना ये अपना नैतिक अधिकार समझते हैं।

अशोक कालोनी, कटनी (म.प्र.)-483501

श्रीकांत चौधरी

उत्तरदायी सरकार

एक समय की बात है, प्रदेश के दो वरिष्ठ मंत्री पत्रकार वार्ता को संबोधित कर रहे थे, चुनाव में विजय के दो माह बाद यह वार्ता बुलाई गई थी। प्रस्तुत है मंत्री और पत्रकार में वार्तालाप।

पत्रकार- आपने चुनाव से पहले कहा कि हर बेकार को काम, और बेघर को एक छत देंगे? लेकिन महीनों बाद भी लाखों बेकार और बेघर हैं?

मंत्री- तब हमें क्यों मालूम था कि हम जीत जाएंगे और सरकार बनाने में सफल हो जाएंगे।

मंहगाई की मार से आम जनता त्रस्त है, लोगों का जीना दूभर हो गया है, आप क्या कहेंगे।

हमें लोगों से पूर्ण सहानुभूति है और हमें बड़ा खेद है, हमें बड़ी चिंता है, हमेशा रहेगी! मानसून और विश्व बैंक की मदद से सब ठीक हो जाएगा।

सरकारी तंत्र, विशेषकर नौकरशाह, चाहे जिस विभाग में हो न केवल भ्रष्ट हैं वरन कामचोर हैं और संवेदनहीन भी है, सूचना के अधिकार को विफल किया जा रहा है इस संबंध में सरकार क्या कर रही है?

हम एक ‘भ्रष्टाचार निवारण आयोग’ बना रहे हैं, जिसमें इन्हीं नौकरशाहों में से दस बीस लोग सदस्य रहेंगे, दो तीन हमारी पार्टी के मेंबर भी उसमें रहेंगे, ये लोग दो चार साल के अंदर अपनी रिपोर्ट हमें देंगे, रिपोर्ट आने पर उसकी समीक्षा के लिए मंत्रीमंडल की एक समिति विचार करेगी, सरकार आमजन के प्रति पूरी तरह संवेदनशील है और रहेगी और रही है। अतः समिति की रिपोर्ट पर मंत्रीमंडल यथाशीघ्र चुनाव के पूर्व निर्णय लेगा कि क्या करना है?

आपके मंत्रीमंडल के दो सदस्य करोड़ों रुपये के भूमि घोटाले, दो मंत्री खलीचारा खरीदी के, चार हत्या बलात्कार के मामलों में फंसे हुए हैं, लोक आयुक्त ने उन्हें हटाने, आपराधिक प्रकरण दर्ज कराने की सलाह दी है, क्या कहेंगे आप?

यह सब केन्द्र सरकार की गलत नीतियों की वजह से है! विरोधियों का प्रोपेगंडा है।

आपकी सरकार के समक्ष सबसे बड़ा नीतिगत मुद्दा कौन-सा रहेगा?

जैसे भी हो हमारी सरकार बनी रहे।

क्या आपकी सरकार बनी रहे।

क्या आपकी सरकार वाकई पार्टी के घोषणा-पत्र पर अमल करेगी?

सवाल ही नहीं उठता! घोषणा पत्र का संबंध केवल चुनाव के पहले तक रहता है, वैसे भी न हम इसे सीरियसली लेते हैं, न ही जनता।

एक्स सिविल जज वर्ग-1, नया बाजार नंबर-1, दमोह (म.प्र.)

शिव शर्मा

स्व. भोला गुरु रसासिक्त साहित्य मंडल

जलेबी में जो स्थान रस का होता है, कमोबेश साहित्य में भी रसों का वही महत्व होता है। इन दिनों रस गायब हो रहा है। स्व. भोला गुरु का जलेबी भंडार, रियासती राज से ही प्रसिद्ध रहा है। साहित्य में भी नौ रसों का उल्लेख प्राचीन काल से हो रहा है। भोला गुरु अपने जीवन काल से ही काव्य प्रेमी थे, वह भी जलेबियों की तरह रसदार काव्य के दुर्भाग्य से इन दिनों साहित्य में रसों का नितांत अभाव हो गया है। अन्य जलेबी विक्रेता भी उनकी तरह रसासिक्त जलेबियों के स्थान पर सूखी जलेबियां बेचने लगे थे। जलेबी एवं साहित्य को जोड़ने हेतु उनकी मृत्युपरांत स्मृति में उनके सुपुत्र बंधु गुरु ने स्व. भोला गुरु रसासिक्त साहित्य मंडल में कविगण जलेबियों के साथ रस मंडल में रसासिक्त कविताओं का पाठ करते थे। इससे भोला गुरु की जलेबियां और कविगण भी चल निकले थे।



रसासिक्त साहित्य का अभाव-सा चल रहा है। कविताएं और गद्य साहित्य में लट्ट एवं जूतों का चलन अधि क हो गया है। प्राचीन रसदार साहित्य लुप्त हो गया है। पुस्तकें भी योग एवं भोग पर छपने लगी हैं। कविसम्मेलन में फूहड़ हास्य कवि अपने तुक्कड़ बेच रहे हैं। एकाध लंदन-न्यूयार्क की गली में, गुजराती या पंजाबी समाज में कविता क्यों पढ़ आए, अपने को अंतर्राष्ट्रीय कवि मानने लगे हैं। चैन लो पर ग्रेट कॉमेडी शो में गंदे से गंदे जोक्स सुनानेवाले राजू जो करो पर हंसी तो क्या रोना आता है। इन पर जजों के रिकार्डेड ठहाकों से सीन लेना पड़ता है। एक पूर्व

क्रिकेटर नेता ने तो बिना बात के ठहाके लगाने का विश्व रिकार्ड बना दिया है। हास्य व्यंग्य का पुरस्कार वीररस के कवियों को दिया जा रहा है क्योंकि उन्होंने महारानी मुख्यमंत्री मायावती के लिए चालीसा लिख दिया है। कुल मिलाकर साहित्य से जलेबी वाला रस गायब हो गया है।

मेरे कस्बे के रसासिक्त कवियों ने इस कमी की पूर्ति के लिए रसासिक्त साहित्य मंडल स्थापित कर डाला है। स्व. भोला गुरु की सर्राफा बाजार में प्रसिद्ध जलेबी की दुकान है, जहां प्रति सप्ताह गोष्ठी का आयोजन किया जाता है। जीवनभर

भोला गुरु कवियों को बुलवाकर जलेबी का रसपान करवाते और स्वयं उनकी रसासिक्त कविताओं का रसपान करते थे। साथ में महाकाल भांग घोट, हाउस की युद्ध गोली भी छनवाते थे। उनकी मृत्यु से मेरे कस्बे का साहित्य मर सा गया था।

उनके पुत्र यूं तो दिन रात अखाड़े में मल दंगल करने के प्रेमी थे। किंतु स्व. पिता की स्मृति को संजोए रखने हेतु इस मंडल की स्थापना हेतु आगे आ गए थे। अपने पिता का असर तो होना ही था। अब कवियों की संगत में वे भी सुरम्य एवं सुरीला कविताई करने लगे। लोकल कवियों ने इतना उकसाया कि वे कालिदासनुमा मंडल की कविताएं सुनने-सुनाने के लिए अपने भोला-गुरु जलेबी भंडार के बाहर स्व. भोला गुरु रसासिक्त साहित्य मंडल का साइन बोर्ड लगाकर ही मानें।

शाश्वत साहित्य की रचनाओं में अमर होने के लिए लोग क्या-क्या पापड़ नहीं बेलते। एक कवि मित्र तो अपने स्वर्गीय पिता की स्मृति को शाश्वत बनाने के लिए अपनी जेब से एक दर्जन पुरस्कार बांटने लगे। शर्त यही थी कि सभी कवित्त उनके पिताश्री को समर्पित हो। भोला गुरु साहित्य मंडल की प्रथम गोष्ठी का उद्घाटन किया। जिले के खाद्य अधिकारी मिश्रीलाल जी जायसवाल ने बेची कंट्रोल अनाज की अफरा-तफरी कराते-कराते साहित्य प्रेमियों को आमंत्रित किया गया। इनमें आबकारी निरीक्षक श्री घंटा प्रसाद, नायब तहसीलदार जमना लाल एवं नगर कोतवाल रौबदार सिंह भी सम्मिलित हुए।

हुआ यह था कि कई कविगण इसी प्रत्याशी में गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे कि उनकी प्रेरणा को जागृत करने के लिए आबकारी विभाग वाले अवश्य ही सस्ती दरों पर सोमरस की व्यवस्था कर ही देंगे। इन सब महत्वपूर्ण लोगों की उपस्थिति इस बात की गारंटी थी कि साहित्य-गोष्ठी के लिए चंदे की चिंता अब कवियों को नहीं करना पड़ेगा।

स्व. भोला गुरु के चित्र पर माल्यार्पण के साथ गोष्ठी का शुभारंभ हुआ। हुआ यह कि आयोजकों ने एक साथ नगर के सभी काव्य-गुरुओं को आमंत्रित कर लिया। फलस्वरूप प्रतिस्पर्धी कवि गुटों में फौजदारी होते-होते बच गई। कस्बे में कवियों के दो गुट हुआ करते थे एक के नेता हास्य कवि मुंह फट जी थे और दूसरे के नेता चातक जी, जो जाहिर है कि श्रृंगार के कवि थे। शीत युद्ध तो दोनों में निगम के मेले में कवि-सम्मेलन का ठेका हास्य कवि को मिल गया था। मुंहफट जी काफी लोकप्रिय हो चुके थे। वे बहुरूपि की तरह चोटी रखते और जब लोग उनकी कविताओं पर नहीं हंसते तो वे अपनी उसी चोटी और अपने अंगों के विचित्र संचालन से हंसाने में कामयाब हो जाते। इसीलिए वे लंदन, न्यूयार्क तक काव्य पाठ कर आए थे। शीतयुद्ध का कारण यह था कि उदीयमान कवयित्री शीतल जी को कौन पहले मंच पर स्थापित करे? शीतल जी दोनों को अपना काव्य गुरु मानती थी और गाहे-बगाहे दोनों को प्रेरणा देने हेतु देर रात के कवि-सम्मेलनों में अपने कंठ और संपूर्ण तन-मन-धन से उनका झंडा बुलंद करती रहती थी।

स्व. भोला गुरु मंडल की इस काव्य-गोष्ठी में, शीतलजी श्रृंगार-रस के कवि गुरु चातक जी के साथ चली गई थी। इस पर हास्य कवि गुरु को पारा चढ़ गया था। अच्छा यह हुआ कि बात जूतों-चप्पलों तक नहीं पहुंची और रसासिक्त जलेबियों के आदान-प्रदान से ही विवाद का पटाक्षेप हो गया। गोष्ठी इसलिए भी सफल रही कि सभी कवियों के वस्त्र रसासिक्त हो गए थे, कविताओं से नहीं, तो क्या हुआ भोला गुरु की रसासिक्त जलेबियों ने तो अपना कमाल कर ही दिखाया।

442, ऋषि नगर, उज्जैन

सुरेश वाहने

भीखू का चन्द्र अभियान

धुआं उड़ता चन्द्रयान देखते ही अंतरिक्ष पहुंच गया। यान पर सवार दुबला-पतला भीखू अब देश के प्रधानमंत्री से बातें कर रहा था। प्रधानमंत्री ने उसे बधाई देते हुए पूछा— ‘ऊपर से पृथ्वी कैसी दिख रही है।’

भीखू की आंखें छलछला गईं। उसने कहा— ‘सर, मुझे पृथ्वी उधजली रोटी की तरह गोल और धब्बेदार दिखायी दे रही है।’

सात दिवसीय चन्द्र अभियान के दूसरे दिन चन्द्र सतह पर खड़े भीखू से पुनः प्रधानमंत्री ने प्रश्न किया— ‘वहां का परिवेश कैसा है?’

भीखू ने उत्तर दिया, ‘सर, यहां सब कुछ अपने गांव-सा ही लग रहा है, गांव की तरह यहां भी पर्वतीय प्रदेश है, जहां सड़क नाम की कोई चीज नहीं है। रात में आसमान के तारों के सिवाय यहां रोशन करने वाली कोई व्यवस्था नहीं है। गांव के बंजर हो चुके खेत की तरह यहां की धरातल सूखी और ऊबड़-खाबड़ है। यहां सूखी घाटियां हैं, जो मुझे पृथ्वी की सूखी नदियों की याद दिला रही हैं।’

जिज्ञासु प्रधानमंत्री ने फिर पूछा— ‘वहां तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है?’

इस प्रश्न से वह उद्वेलित हो उठा, लेकिन संयत स्वर में उसने कहना शुरू किया, ‘सर, यहां मैं अपने अभियान में जी-जान से जुटा हूं लेकिन मैं भूख से जूझ रहा हूं, क्योंकि अधिकारी मेरा टिफिन बॉक्स यान पर रखना भूल गए हैं। मैं जानता हूं, मेरा धरती पर जीवित लौट पाना संभव नहीं, लेकिन प्लीज सर, नियमानुसार यान में मेरे मरने के बाद बीमा कंपनी से प्राप्त रकम मेरे परिवार तक जरूर पहुंचवा दीजिएगा। घर पर पत्नी के अलावा दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, जिनका मैं एक मात्र सहारा हूं जी।’

प्रधानमंत्री ने ढाढ़स बंधाते हुए कहा, ‘हां, मुझे खेद है कि अधिकारियों की लापरवाही से तुम्हें शहीद होना पड़ेगा। मैंने

इस अभियान का नाम तुम्हारे स्मृति में तुम्हारे नाम पर रखने की घोषणा कर दी है। अब तुम और तुम्हारा गांव इतिहास में अमर हो जाएगा। तुम चिंता मत करो। मरणोपरांत बीमा की रकम तो मिलेगी ही, तुम्हारी पत्नी को दफ्तर में चपरासी की नौकरी भी दे दी जाएगी। वैसे इस लापरवाही की जांच के लिए मैंने एक उच्च स्तरीय समिति गठित करने का फैसला किया है।’

भीखू को चन्द्र अभियान पर जाने का कोई शौक नहीं था। वह इसलिए चला गया था कि लौटने पर शायद कहीं अच्छी नौकरी मिल जाएगी। यदि कोलम्बिया शटल यान की तरह कोई दुर्घटना होती भी है, तो परिवार के लिए बीमा कंपनी से इतनी रकम मिलेगी, जितनी जिंदगीभर कमाकर भी जुटा नहीं सकता। उसे मरने का दुख नहीं था। उसे सुकुन था कि अब उसका परिवार पैसे का मोहताज नहीं रहेगा।

चन्द्रयान धरती पर वापिस लौटा। भीखू के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

आज पांच साल हो गए। भीखू की विधवा भीख मांगकर गुजारा कर रही है। उसे बीमा कंपनी से कोई मुआवजा नहीं मिला। कंपनी का मानना था कि उसके पति भीखू की मौत भूख से हुई है, इसलिए यह आत्म हत्या है, न कि दुर्घटना। इतने बड़े अरबों रुपयों के अभियान पर भोजन नहीं ले जाने के लिए उसके पति को ही कंपनी ने जिम्मेदार माना। उसे नौकरी भी नहीं मिली, क्योंकि उसके पास भीखू की पत्नी होने का सरकारी सर्टिफिकेट नहीं था।

भीखू की पत्नी अक्सर रो उठती, ‘आखिर तुम चन्द्र अभियान पर गये क्यों?’

कोषाध्यक्ष, जन संस्कृति मंच
भिलाई-कुम्हारी इकाई
शिवनगर, मु.वपो.-कुम्हारी, जिला-दुर्ग

बलराम

पैटर्निटी लीव

अपने लेखनीय जीवन की शुरुआत में ही मैंने 'नौ दो ग्यारह' नाम से एक हास्य रचना 1970 में लिखी थी, जो मुंबई से छपने वाली पत्रिका 'रंग' में छपी थी, जिसके संपादक रामावतार चेतन हुआ करते थे। तब नहीं जानता था कि वे श्रद्धेय कन्हैयालाल नंदन के इतने निकट रिश्तेदार हैं। इससे पहले 1969 में मेरी पहली कहानी 'उसने देखा' आगरा से छपने वाली पत्रिका 'युवक' में मेरे फोटो के साथ छप चुकी थी। तब मैं 10वीं पास कर कानपुर के बी.एन.एस.डी. कॉलेज में दाखिला ले चुका था। इस तरह से देखें तो कहानी के साथ हास्य-व्यंग्य रचनाएं भी मैंने अपने लेखन के प्रारंभ में ही लिखनी शुरू कर दी थीं। 1981 में 'नेताजी की वापसी' नाम से जिनका मेरा व्यंग्य संग्रह भी छपा था, जिसका बाद में दूसरा संस्करण भी हुआ। बाद में मेरे व्यंग्य लेखक ने विश्राम में ज्यादा रूचि लेनी शुरू की तो कहानी और उपन्यास मेरे सिर पर सवार हो गए। बहरहाल, इसी महीने प्रकाशित होने वाले कथा संग्रह 'गोवा में तुम' में कहानियों के साथ कुछ व्यंग्य रचनाएं भी शामिल हैं, जिनमें से एक है 'पैटर्निटी लीव', जिस मैं अपनी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना के रूप में आपके सामने रखना चाहता हूं।

कोई पैंतीस बरस पहले जब मैंने इसे कागज पर उतरा था तो स्त्री विमर्श का कहीं नामोनिशान तक न था। तब 'मियां भरें घर में पनिया, कइसे सफरी' जैसे गीत कुएं से पानी भरकर लानेवाले पतियों का उपहास उड़ाते थे। स्त्री के नौकरी-चाकरी पर जाने की तब सामान्य आदमी कल्पना भी नहीं कर पाता था। आज समय पूरी तरह से बदल गया है। पानी नल से आने लगा है तो मियां को कुएं पर जाकर पानी भरने की जरूरत ही नहीं रही, लेकिन नौकरी करने वाली पत्नी के साथ पति को घर के सारे काम लगभग उसी तरह से करने पड़ते हैं, जिस तरह से स्त्रियां करती रही हैं अब स्त्री और पुरुष के काम अलग-अलग नहीं रह गए हैं। समलैंगिक विवाहों को विधि सम्मत करार दिए जाने के बाद अब तो शायद पैटर्निटी-पैटर्निटी लीव का लफड़ा ही खत्म हो जाए, लेकिन पैंतीस बरस पहले बच्चे के जन्म के समय मिलने वाली पैटर्निटी लीव के साथ पैटर्निटी लीव की मांग उठाकर मेरे व्यंग्यकार ने समय से बहुत आगे की बात जान ली थी। इस रूप में आज अपने इस व्यंग्य को मैं अपने पसंदीदा सृजनकर्म के रूप में पाता हूं। उम्मीद करता हूं कि आप और आपके पाठक इसे पढ़कर इसकी अंतिम पंक्तियों पर ठहरकर सोचने के लिए विवश हो जाएंगे। मेरी कहानियां भी ऐसी ही हैं, जो पहली पंक्ति से लेकर आखिरी पंक्ति तक इस तरह से एकमेक होती है कि उनके

किसी भी तार को कहीं से भी छेड़िए, आनंद मिलना शुरू हो जाएगा। अपनी व्यंग्य रचनाओं को भी मैंने कहानियों की तरह से ही रचने की कोशिश की है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना 'पैटर्निटी लीव' नमूने के तौर पर भी पढ़ी जा सकती है। अगर आप नौकरी करते होंगे तो छुट्टी की बात सुनकर उछल पड़े होंगे। और अगर मालिक होंगे तो सनक गए होंगे कि वैसे ही हिंदुस्तान में छुट्टियों की भरमार है और मैं एक नई छुट्टी की मांग कर रहा हूं। तो जनाब, मैं वैसे छुट्टी की बात नहीं कर रहा। मैं तो स्पेशल की मांग कर रहा हूं।

मेरी मांग है कि पत्नी के प्रसवकाल में पति को पैटर्निटी लीव मिलनी चाहिए। अब आप कहेंगे कि प्रसवपत्नी को होता है तो प्रसवकालीन अवकाश पति को क्यों? मेरे सवाल को आप फिर बेतुका कह देंगे। मेरा सवाल सुनकर महिलाएं भी नाराज हो सकती हैं कि उनके स्पेशल अवकाश पर कुदृष्टि क्यों डाल रहा हूं। उनसे मेरा निवेदन है कि जरा सोचें, जब वे पुरुष के समान सारे अधिकार नहीं दिलाना चाहेंगी?

महिला मुक्ति आंदोलन के इस दौर में मुझसे पूछा जा सकता है कि पुरुषों के लिए पैटर्निटी लीव की वकालत क्यों कर रहा हूं। मित्रो, प्रसव करने वाली महिलाओं के इस स्पेशल अधिकार पर अंगुली उठाने का मेरा इरादा नहीं है। मैं तो स्त्री और पुरुष, दोनों के भले की बात सोच रहा हूं। स्त्रियों से कहना

चाहता हूं कि जब तुम्हारा प्रसवकाल आता है, तब तुम सुस्त हो जाती हो। कुछ भी करने का मन नहीं करता। सोचती हो कि कोई नौकर या नौकरानी हो, जो सब काम कर डाले। मेरी मांग का मकसद नौकर या नौकरानी की उसी आवश्यकता को पूरा करना है, क्योंकि तुम भली भांति जानती हो आज की परिस्थितियों में मामूली नौकरी करने वाले पिया की जेब नौकर-नौकरानियों का बोझ संभाल पाने में समर्थ नहीं हैं। पुरुष को पैटर्निटी लीव दिवाकर मैं तो सिर्फ यह बताना चाहता हूं कि जो काम अभी तक पत्नी करती रही, प्रसवकाल में वह काम पतिदेव करें। उठकर सुबह-सुबह पत्नी और बच्चों को बेड-टी पेश करें। उसके बाद झाड़ू लगाएं। घर को धोएं और पोछें। पानी भरें। इसके बाद बाजार जाकर साग-सब्जी लाएं और फिर अंगीठी सुलगा कर दाल चढ़ा दें। जब तक दाल पके, जल्दी-जल्दी नहा-धोकर संतोषी मां की पूजा कर लें। दाल पक जाए, तब कुकर में पानी डाल उसे चूल्हे पर चढ़ाकर चावल बीनें। सब्जी काटें, बनाएं और फिर रोटी। खाना बन जाए तो सबसे पहले पत्नी को खिलाएं और फिर बच्चों को। बाद में बचा-खुचा खाना पत्नी की जूठी थाली में खुद खाएं। फिर चौका-बर्तन करें। बच्चों के, पत्नी के कपड़े-लत्ते धोएं और अगर साबुन सर्फ बच जाए तो अपने भी धो लें। इस बीच बच्चों को नित्यकर्म निवृत्त भी करवाएं। इतने काम निबटाकर पत्नी के

पैर दबाएं। सिर में मालिश करें और पूरे शरीर में तेल लगाएं। समय मिले तो दोपहर में एकाध घंटा आराम भी कर सकते हैं।

इसके बाद शाम के लिए दाल-चावल साफ करें। सब्जी काटे और फिर पत्नी के पास जाएं। उसके सुख-दुख की बात पूछें। जब पत्नी को नींद आ जाए तो रात में चुपके-चुपके दाढ़ी बना लें। इस तरह प्रसवकाल में पति को पैटर्निटी लीव मिल जाने पर हिंदुस्तान की पत्नियां असली पति-सुख को भोग सकेंगी। तब पति भी सुख का असली मजा ले सकेंगे। मैं समझता हूँ कि अब मेरी मांग का औचित्य स्त्री और पुरुष, दोनों की समझ में आ गया होगा। अब सब लोग समझ गए होंगे कि मेरा यह प्रस्ताव अटपटा, उल्टा, बेतुका या गलत नहीं है। पुरुषों को यदि शर्म आती है तो महिला सांसदों द्वारा इस मांग को हिंदुस्तान की संसद में उठाकर पुरुषों के लिए पैटर्निटी लीव का कानून पास करवाया जा सकता है। इति। मेरा लेख पूरा हो चुका था। अब मैं कबीरदास और लोई भाभी की प्रतिक्रिया का इंतजार कर रहा था। कबीरदास छत को देख रहे थे और लोई भाभी मुझे। पहले तो वह मुस्कराई और फिर एकाएक मुंह बनाकर सिसियाई। कबीरदास चौंके और पूछा, 'क्यों, क्या हुआ. . . ?'

'इस लेख का असर. . .पेट में दर्द है। शरीर का जोड़-जोड़ दुख रहा है।'

'फिर फिर?'

'आराम करना चाहती हूँ। चूल्हे पर खिचड़ी पक रही है, तुम जरा देखो. . .चूल्हा शायद बुझ गया है, जलाकर खिचड़ी पका लो।' कहकर लोई भाभी चारपाई पर लेट गई और कबीरदास उठकर चूल्हा फूंकने लगे। सारा धुआं उनकी आंखों में भर गया। कुछ देर बाद चूल्हा जलाकर लौटे तो चेहरे पर आंसू थे। आंसू पोंछते हुए उन्होंने घूरते हुए कहा, 'साले, ऐसा लेख लिखते हो? मेरे घर में सुनाकर मेरी यह हालत कर दी। यह अगर छप गया तो परिणाम भयंकर होगा। पूरा का पूरा हिंदुस्तान पुरुषों के आंसुओं में डूब जाएगा।' कहते हुए उन्होंने लेख को चिंदी-चिंदी कर हवा में उछाल दिया। घर से बाहर निकला तो चारपाई पर बैठा जंगली मुस्कराया। वह चिमटी से कान खोद रहा था। मैंने पूछा, 'क्या हो रहा है?'

'म्यूनिस्पैल्टी का कचड़ा कान में इकट्ठा हो गया है। उसे ही खोद-खोदकर फेंक रहा हूँ।'

'बरसात आ रही है, कान पक सकते हैं।'

'शहर का शोर सुनते-सुनते कान तो पक ही गए हैं, और क्या पकेंगे।'

सोचा, जंगली तो जंगली है, इसके मुंह लगना ठीक नहीं। उठकर चलने लगा तो उसने टोक दिया, 'सवेरे-सवेरे कहां चल दिए बलदाऊ जी?'

'बलदाऊ नाम सुनकर मेरी भवें तन गई। वह समझ गया और माफी मांगते हुए हाथ जोड़कर बोला, 'बाबू! गलती हो गई। फैक्ट्री में हेड मिस्त्री को दाऊजी कहता हूँ। उसी धोखे में आपको भी कह जाता हूँ। अब नहीं कहूंगा।'

बिना कुछ कहे आगे बढ़ गया। कबीरदास के घर की तरफ। पहुंचकर देख तो वे सूत कात रहे थे। दुआ-सलाम करके बैठ गये तो उन्होंने पूछा, 'और क्या हाल है?' मैंने बता दिया, 'एक समस्या प्रधान लेख लिखा है। सोच रहा हूँ कि आप उसे सुनकर जरूरी संशोधन सुझा दें और नर्मदेश्वरजी को पत्र लिखकर किसी की रचना छपवाता हूँ? नर्मदेश्वर मेरे दोस्त हैं, दिल्ली से आकर मेरे घर ठहरते हैं? लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि मेरी सिफारिश पर वह किसी की कोई भी रचना छाप देंगे। मैं नहीं सुनूंगा तुम्हारा लेख-वेखा।'

कबीरदास मेरी बात सुनकर भड़क उठे। मुझे डांट-फटकार कर वह फिर सूत कातने लगे। थोड़ी देर बाद मैं बोला, 'वो संतराम जी कह रहे थे कि. . .'

कबीरदास फिर भड़क उठे, 'अरे, वो साला संतराम! नगर के लेखकों में मेरी इमेज खराब कर रहा है कि मैंने नर्मदेश्वर को पटा लिया है। तुम उसकी बातों पर मत जाओ। मेहनत से लिखो। अच्छा लिखोगे तो छपेगा ही।'

कबीरदास की बात से मैं आश्चर्य में हुआ। तब तक फूला हुआ पेट लेकर लोई भाभी आ गई और वहीं पास में बैठ गई। कबीरदास ने सूत कातना बंद कर दिया और बोले, 'सुनाओ, क्या लिखकर लाये हो, तुम्हारी भाभी भी सुन लें।'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, यह तो अति

उत्तम रहेगा।' कहकर मैंने अपना लेख निकाला और पढ़ना प्रारंभ कर दिया। 'पैटर्निटी लीव।'

प्रसवकालीन अवकाश यानी पैटर्निटी लीव। नौकरीपेशा स्त्रियों को तो यह छुट्टी मिलती ही है। अगर पुरुषों के लिए भी प्रसव कालीन अवकाश यानी पैटर्निटी लीव की बात उठाऊं तो शायद पांचों कर्मद्वियां लेफ्ट-राइट करने लगें और आपकी आखें बड़े नींद वालों को निहारने लगें कि कहीं उनके पेट में कोई बच्चा तो नहीं, जिसकी वजह से पुरुषों के प्रसवकालीन अवकाश की बात कर रहा हूँ। आपके कान उस बच्चे की आवाज सुनने के लिए उतावले हो उठेंगे और आपके मुंह यह खबर औरों को सुनाने के लिए बेकाबू, क्योंकि जब ऑपरेशन से एक लड़के को लड़की बना दिया गया तो उसे देखने के लिए पूरा शहर उमड़ पड़ा था। लेकिन तोंद वाले तो सेठ होते हैं, साहूकार होते हैं, उन्हें किसी से छुट्टी लेने की जरूरत ही कहां पड़ती है। मेरी बात सुनकर अपने पेट में बच्चा होने के भ्रम में अपना ही पेट तो नहीं टटोलने लगे। पहले मेरी पूरी बात सुनिए। सुनकर सोचिए और सोचकर समझने की कोशिश कीजिए।

मेरा आशय सामान्य आदमी को पैटर्निटी लीव दिलाने से है। मैं दफ्तरों, कारखानों, स्कूलों और दुकानों आदि में नौकरी करने वालों के लिए सरकार से पैटर्निटी लीव की मांग कर रहा हूँ। मेरा सवाल है कि प्रसवकाल में स्त्रियों को पैटर्निटी लीव मिलती है तो पुरुषों को पैटर्निटी लीव क्यों नहीं?

मेरा सवाल आपको अटपटा लग सकता है और उल्टा भी, शायद गलत भी लगे, लेकिन सवाल न तो अटपटा है और न उल्टा। सेंट परसेंट सही है, उतना ही, जितना आपका सिर और उसमें फिट आंखें।

पुनश्च: पैंतीस बरस बाद कबीरदास ने लेखक को लिखा, 'बधाई! तुम्हारी मांग सरकार और कोर्ट, दोनों ने स्वीकार कर ली। एक अध्यापक की याचिका पर उसे पैटर्निटी लीव प्रदान कर दी है, लेकिन दूसरी तरफ कोर्ट ने समलैंगिकों की मांग भी मानकर उन्हें विवाह का अधिकार दे दिया है। अब पैटर्निटी लीव का क्या होगा, तुम मुझे जरा सोच-समझकर बताओ।

सी-69, उपकार अपार्टमेंट्स

मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

राजेन्द्र सहगल

एक्सीडेंट का रहस्य

मैं सड़क दुर्घटना में हाथ पैर तुड़वाए पड़ा हूँ। मिलने आने वाले अपनी-अपनी तरह से मुझे तसल्ली दे रहे हैं। अच्छा श्रोता तो पहले भी रहा हूँ पर अब और बेहतर श्रोता हो गया हूँ। दरअसल मेरे इर्द-गिर्द ज्ञान की वर्षा हो रही है। 'होनी को कौन टाल सकता है', 'संकट को आने में समय नहीं लगता पर वह जाता बेहद धीमी चल से है', 'अच्छा वक्त नहीं रहा तो बुरा भी नहीं रहेगा' 'चलो इसी बहाने प्रभु स्मरण कर लो' 'जो किस्मत में लिखा है हो कर रहता है' 'यह न सोचे कि क्या हुआ यह सोचो कि क्या हो सकता था।' जैसे गहन चिंतन से उपजे उच्चरित आप्त वाक्यों से मैं बराबर नहाने की हद तक भीगता रहा। मुश्किल तब हुई जब एक विकट ज्ञानी मेरी टूटी टांगों का गहराई से मुआयना करते हुए बोला, 'इसे क्या कहेंगे. . .कर्मों का खेल ही कह सकते हैं' मैं घबरा गया। मुझे लगा अगले पल कहीं यह न पूछ डालें कि भले मानुष तूने कौन से बुरे काम किए हैं. . . जो यह सब हुआ. . . खैर बाद में पता नहीं क्या सोच कर उसे मुझ पर रहम आ गया और वह पूरी दरयाफ्त करना टाल गया। मेरी सांस में सांस आई। बिस्तर पर पड़ा आदमी दूसरे की निर्णायक बातों को स्वीकारने के अलावा कर भी क्या सकता है।

बिस्तर पर पड़ा मरीज हर किसी के काम का होता है। दयावान दयालुता का थोक के भाव बखान करता है। ज्ञानी ज्ञान की वर्षा करता है। मिलने-जुलने वाले दल बल समेत चढ़ाई कर सकते हैं। जिंदा हाथी लाख का तो मरा हाथ सवा लाख का यूँ ही नहीं होता है। मरीज का सभी भला चाहते हैं। खाने-पीने के नये-नये नुस्खे सामने लाए जा रहे हैं। हर जगह स्वस्थ मतभेद उजागर हो रहे हैं। शाकाहार और मांसाहार के फायदे-नुकसान का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। मांसाहार के बारे में

खासतौर पर बकरे के खुर यानि खरोड़े के सेवन पर आकर मांसाहारी, शाकाहारी के बीच किसी विवाद की गुंजाइश नहीं बचती। अलबत्ता खरोड़े के बनाने की विधियों पर विवाद की असीम संभावनाएं मौजूद हैं पर इससे विवाद को धार ही मिलती है और दोनों पार्टियां मिल बैठकर भी कोई अंतिम निर्णय लेने के लिए रजामंद होने से गुरेज नहीं करती।

डॉक्टर कहते हैं खुश रहो। एक साथ तीन ऑपरेशन हुए हैं। हाथ पैर हिला नहीं सकता। दीवारें ताकने और आने जाने वालों के उपदेश-निर्देश बिना किसी अंतराल के बराबर सुनने पड़ रहे हैं। मैं अच्छे बच्चे की तरह मौन स्वीकृति दे रहा हूँ। ज्यादा और ठोस खाने के निर्देश जारी किये जा रहे हैं। चलना तो दूर बैठ तक नहीं सकता। पर ठोस खा-पीकर हजम करने का चमत्कार पैदा करना है। इस बीच डॉक्टर की बात नहीं टालता। मैं भी खुश होने के नाम पर होठों को ताकत के हिसाब से फैला लेता हूँ। डॉक्टर मेरी इस खुशी को देखकर आश्वस्त हो जाता है। खुश होना भले ही मुश्किल हो पर खुश दिखा तो जा सकता है। कहीं सुना था कि जैसा आदमी खुद होता है उसे वैसे ही लोग मिलते हैं। मैं जैसा खुद था मुझे डॉक्टर भी वैसे ही मिले। एक डॉक्टर मेरी मरहम पट्टी बड़ी बेरहमी से कर रहा है। मैं जोर-जोर से भगवान का नाम बीच में ले लेकर रोता चीखता जा रहा हूँ। डॉक्टर बराबर मुस्कराये जा रहा है। जब बीस पच्चीस मिनट के रुदन-क्रंदन के बाद मरहम पट्टी पूरी हुई तो मैं रो-रोकर थक चुका था। आंसू तो खैर पहले भी नहीं आ रहे थे। पर अब चीखने के कारण मैं डॉक्टर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश कर रहा हूँ। डॉक्टर को पता था कि ऐसे में कितना चीखना चिल्लाना वाजिब होता है और कितना फालतू। लिहाजा उसने काम

जारी रखा। मैंने दूसरा पासा फेंका और दहाड़ना बंद कर दिया। डॉक्टर ने मेरे इस प्रतिरोध को भी भांप लिया। वो घिसा हुआ अनुभवी डॉक्टर था। उसे मरीज के सारे दंदफंद पता थे। अब वह और भी इतमीनान से अपना काम करने लगा था। मैंने भी सारे नुक्ते आजमाने के बाद अपने को डॉक्टर के हवाले छोड़ दिया। मुझे अचानक ज्ञान प्राप्त हो गया। मैंने सोचा कि जितना बुरा हो चुका है उससे ज्यादा बुरा यह डॉक्टर भी क्या कर लेगा। तब तक मेरी रूलाई सुबकियों में बदल चुकी थी। डॉक्टर ने सोचा उसका काम तसल्ली बख्श तरीके से पूरा हो गया।

मरीज की चारपाई मनोरंजन-स्थल होती है। यहां कोई भी आकर अपने बच्चे खिला सकता है। बच्चा कितना भी उद्यम करें या चीखे चिंघाड़े। उन पर कोई रोक टोक और बंदिश नहीं। एक नवप्रसूता के उर्जावान सपूत ने मेरे सिरहाने किलकारियों से सारा वातावरण इस तरह गुंजायमान कर दिया कि मेरा दर्द तिरोहित हो कर सिर को चकरायमान करने लगा। चूँकि मां का मातृत्व पहली बार छलका था इसलिए वह भी नवजात शिशु के अदम्य उत्साह से विशेष प्रभावित होने लगी थी और उस पर बेवजह रोक-टोक न लगाकर उसके ऊर्जा स्रोतों को हवा दे रही थी। मां के ममत्व और नवजात शिशु के कृतत्व को खुली आंखों से देखने और खुलेमन से स्वीकार करने के अलावा मैं कर भी क्या सकता था। जैसे हमारे न्यायालय झूठ बोलने के सबसे अधिक सुरक्षित स्थल होते हैं ठीक उसी तर्ज पर मरीज का सिरहाना सबसे अधिक सुरक्षित स्थल होता है।

आफिस के लोग आफिस के वक्त में आए अपना प्राइवेट वक्त इन फालतू के कामों पर कौन खराब करें। मुझे प संद करने वालों ने भले ही देर कर दी हो पर नापसंद करने वाले जल्दी से आए। जिन्हें मैं साबुत

दिखना नागवार गुजरता था वे मुझे टूटा फूटा देखकर कुछ-कुछ आश्चर्य होने लगे। जरूरत से ज्यादा चाहने वाले सामना करना तो दूर बल्कि फोन पर भी हालचाल पूछने से बचते रहें। इनमें कुछ संकोची थे तो कुछ शांति। कुछ ऑफिस के लोग वरिष्ठता क्रम से आए। कुछ का वरिष्ठता क्रम इतना दूर था कि वे दो महीने बाद आए। शेष अति वरिष्ठ लोगों ने इसे समय का अपव्यय समझा और मेरे ठीक होने तक मिलना टालते रहे।

दूसरी बार आपरेशन टेबल पर पड़ा हूँ। एनथीसिया दिया जाने वाला है। डॉक्टर पूछ रहा है 'तुम्हारा मामला क्या है' आपरेशन डॉक्टर ने करना है पर मामला मुझे बताना है। जब मैंने शंका से भयग्रस्त होने पर बताया कि मामला बाई टांग का नहीं दाई का है तो डॉक्टर ने कहा 'आप तो बस पड़े रहें... हमें पता है हमें क्या करना है।' मुझे लगा कि दो टांगे मरीज के लिए भले ही सुविधाजनक है पर डॉक्टर के लिए यह गफलत पैदा करने वाली होती है। एक टांग हो तो कंफ्यूजन का कोई खतरा नहीं रहता। जब मुझे होश आया तो सबसे पहले मैंने अपनी टांगें गिनीं। दो ही थी। हड्डी कितनी जुड़ी है या जख्म कितना भरा है यह बाद की बातें हैं। ज्ञानी कहते हैं आदमी जैसा होता है उसे वैसे ही लोग मिलते हैं। मैं कहता हूँ मरीज जैसा होता है उसे डॉक्टर भी वैसे ही मिलते हैं।

ऑपरेशन पूरा होने पर मैंने पैर को हिलाया-डुलाया। इतनी देर से डॉक्टर ने आकर हालचाल पूछा। मैंने मरीज की भोली जिज्ञासावश पूछा, 'डॉक्टर साहब! मैं कब तक चलने लगूंगा।' डॉक्टर ने मेरे इस भोले सवाल का दार्शनिक जवाब दिया 'आपके पाँव बड़े खूबसूरत हैं। इन्हें जमीन पर मत उतारिएगा मैले हो जाएंगे।' मैंने सोचा डॉक्टर हंसमुख है मेरी हिम्मत बढ़ा रहा है। पर डाक्टर घिसा हुआ था। उसने यह डॉयलाग कई बार दोहराया और हर बार जांच के बाद पैर जमीन पर न रखनी की हिदायत दी। जब तक उस डॉक्टर का डॉयलाग मेरी समझ में आया मुझे बिस्तर पर चढ़े चार महीने पूरे हो चुके थे। उसके बाद डॉक्टर की आधी-अधूरी

सहमति से मैंने पैर मैले कर ही लिए। मैंने भी डॉक्टर की हंसी ठिठोली पर एक बार जवाब में कह दिया 'डॉक्टर साहब आप भले ही राजकुमार हो सकते हैं पर मैं मीना कुमारी नहीं हूँ। इसलिए इन पैरों को मैला होने ही दीजिए।'।

कहीं सुना था कि पुराने मरीज आधा डॉक्टर हो जाता है। हालाँकि मेरी डॉक्टर होने की इच्छा कभी नहीं रही। पर लोगों ने एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी के बारे में इतने विस्तार से जानकारी उपलब्ध करवा दी कि हाथ पैर ठीक हो जाने के बाद मैं भी छोटी-मोटी प्रेक्टिस चलाने की सोच सकता



हूँ। होम्योपैथी और आयुर्वेद के प्रशंसक इस दोनों पैथियों का कितना ही गुणगान क्यों न कर लें पर एलोपैथी के वर्चस्व को वे नकार नहीं सकते। मैंने पहले कई बार हार्डब्लड प्रेशर के लिए होम्योपैथी को छोड़ने की इजाजत मांगी तो किसी भी शुभचिंतक ने मुझे एलोपैथी छोड़ने की इजाजत नहीं दी अलबत्ता आयुर्वेद की गोली अतिरिक्त तौर पर मेरे हवाले कर दी।

इस बीच कई नए-नए नुस्खों के प्रयोग मुझ पर किए जाने लगे। इसी बीच एक अति उत्साही शुभचिंतक ने पहाड़ों की

जड़ी-बूटियां लाकर दी। सुअर के तेल की मालिश, खरोड़ों अर्थात् बकरे के खुरों का पानी तो मैं पहले से ही ले रहा था। दवाइयों की भरमार, खाने के विभिन्न व्यंजन तथा दवाई लगाने के नये-नये प्रयोगों को अपना कर उनका ईमानदारी से पालन करते हुए समय कब बीत जाता पता ही न चलता। लोग यह कहते हैं पड़े पड़े टाइम कैसे काटता होगा पर मेरे पास तो बिस्तर में भी वक्त की कमी हो जाती। कभी होम्योपैथी की एकाध डोज़ छूट जाती तो कभी कोई कैल्शियम की गोली लेने से रह जाती। खैर मैं बात अपने अति उत्साही शुभचिंतक की कर रहा था। चूँकि मुझे ठीक होना था। इसलिए मुझे सभी की बात शिरोधार्य थी। पता नहीं कौन-सी दवा रामबाण साबित हो जाये। पर्वत से निकलकर लाई जड़ी-बूटियां तो मैंने ग्रहण कर ली। लेकिन उसके इस्तेमाल का तरीका किसी को भी चक्कर में डाल सकता था। नुस्खा कुछ इस प्रकार था 'इन जड़ी बूटियों को सिलबट्टे पर पीसकर फिर सूती कपड़े से छानकर उसमें फलों फलों सामान मिला लें। फिर छानकर उसे अलग कर लें। उसमें कुछ सूखे मेवे (जिनके नाम अब तक न सुने होंगे दिखने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता) मिला लें। फिर उसे कटोरी में शहद के साथ मिला लें। उसके बाद गरम-गरम हलवे को पी जायें। इस पिसी हुई कड़वी दवाई को फांके और उस के बाद हलवा खायें। पानी बिल्कुल न पीएं। कड़वाहट से जीभ जल जाए तो परवाह न करें। अच्छे फायदेमंद नुस्खों से कुछ नुकसान भी हो जाए तो अन्ततः होने वाले फायदे को ध्यान में रखकर इस छोटे मोटे नुकसान को हंसकर झेलें।

पार्क में योग क्रियाएं तो आपने बहुत सुनी होंगी पर बिस्तर पर पड़े भी योग क्रियाएं की जा सकती हैं। डॉक्टर की हिदायत पर ठोस खाना है और बैठे-बैठे पचाना है। ऐसे में शरीर को बैठे-बैठे तोड़े-मरोड़े और आगे पीछे हों। तेजी से बैठे-बैठे पलंग पर कूदें। यह सब कुछ अकेले में करें। किसी के सामने न तो खाना पचाने के लिए आपको डकार आएगा और दूसरा देखने वाला आपको 'एबनार्मल' भी

समझ सकता है। मेरी बीवी मुझे पहले ही 'एबनार्मल' मानती रही है पर मैं इधर-उधर की बातें कर उसे बहलाता समझाता रहता था कि यह उसकी गलतफहमी है। मैं सामान्य नहीं 'अति सामान्य' हूं। उसने कभी नहीं माना पर मैंने कोशिश करना नहीं छोड़ा। अब मेरी हरकतें देखकर उसे रहा सहा शक भी नहीं रहा। अपनी बची खुची साख बचाने के लिए मैंने उसे अपना भला-चंगा होने का आश्वासन दिया और उसे किसी तरह ऑफिस जाने के तैयार किया। घर पर काम करने वाली को तो जब चाहे इधर-उधर भेजा जा सकता है और खाना हजम करने की उल-जुलूल हरकतों का खुलकर प्रयोग किया जा सकता है।

जल्द स्वस्थ होने की शुभकामनाएं तो थोक के भाव मिलती ही रहीं। मैं भी बिना किसी भेदभाव के उसे संभालता ही रहा। मैंने भी शुभकामनाएं देने वाले और बार-बार काम के लिए अपने को आगे-आगे रखने वालों का भरपूर इस्तेमाल किया। पत्नी के किसी संबंधी के विवाह में शामिल होने की रात देर से लौटने पर पड़ोसी दंपति को हलवा गर्म करने के लिए नौद से उठाया। पत्नी ने पता लगने पर झाड़ा तो उसे बताया कि उसने कई बार सेवा का अवसर देने का निमंत्रण दिया था। मैं उसके दिल की बात को भला कैसे पूरा न करता। मुहल्ले में जब तक साबुत था किसी ने हालचाल पूछने लायक नहीं समझा। टांग टूटने के बाद महत्वपूर्ण हो गया हूं। कुछ शूरवीरों ने घर आकर हालात की जानकारी ली तो शेष ने चलते फिरते देखकर मामला निपटा दिया। ऑफिस में लोगों ने मामले को बड़ी गंभीरता से लिया और हालचाल पूछने में भी कोई कोताही नहीं बरती। यह अलग बात है कि बस में चढ़ते वक्त वे सब मुझे पहले ही बस में चढ़े। सहानुभूति की अपनी जगह है उससे बस में पहले चढ़ने की रिजर्वेशन थोड़े हो जाती है। एक्सीडेंट के पहले मेरी आदत थी कि मैं सबको बस में चढ़ाने के बाद ही खुद बस में चढ़ता। इस चक्कर में कई बार सीट पाने से भी वंचित रह जाता। सब मुझे पहले जैसा चुस्त दुरुस्त मानकर मुझे कोई रियायत नहीं देना चाहते। दिल में हाल दस बार पूछते पर बस में पहले चढ़ने की कोई रियायत नहीं देते। सबको बराबर

समझने की परंपरा का यहां बखूबी निर्वाह किया जाता। सहानुभूति जताना अपनी जगह निपटाना अपनी जगह। सब लोगों को अपनी दिक्कत है उनकी दिक्कत को समझते हुए बेवजह अपनी दिक्कत क्यूं बढ़ाई जाये।

ऑफिस में सबने वरिष्ठता क्रम से हालचाल पूछा। जाहिर है बड़े बॉस का नंबर सबसे बाद में ही आना था। पड़ोसियों ने भी अपनी सुविधानुसार मामले की पूरी तफ्तीश की और मिलने पर उसकी पुष्टि के लिए पूरा मामला मेरे मुंह से उगलवाया। एक्सीडेंट के कार्य- कारण संबंध की यहां भी ब्यौरेवार विस्तारपूर्वक चर्चा हुई और अंततः होनी के आगे किसी का बस नहीं चलता सरीखे शाश्वत दार्शनिक वक्तव्य से पूरे मामले का पटाक्षेप कर दिया जाता।

एलोपैथी-होम्योपैथी और आयुर्वेदिक की लड़ाई पहले की तरह अब भी जारी रही। एलोपैथी तकलीफ दर्द देती है तो ठीक होने का विश्वास भी जमाती है। होम्योपैथी सेवन करने में सुविधाजनक तो होती है पर वक्त बहुत लंबा लेती है। आयुर्वेदिक संभावना तो जगाती है पर इसके नुस्खे तैयार करने की इतनी जटिल और ऊबाऊ होती है कि दवाई तैयार करने से पहले मरीज हांफने लगता है। मसलन 'फलां फलां जड़ी बूटियों को महीन पीसकर उसे साड़ी के पतले कपड़े से छान लें. . . छानने के बाद उसमें तीन चम्मच नमक आधा चम्मच अजवायन, दो तोले हल्दी वगैरह वगैरह डालकर धीमी आंच में करीब सैतीस मिनट पका लें। पकाने के बीच कड़खी से उसे दो-दो मिनट तक अवश्य हिलाते रहें। याद रहे तैयार होने वाला पदार्थ कड़ाही से चिपके नहीं. . .' इस नुस्खे का बनाने में तो जो शीर्षासन करता है वो अलग लेकिन इसे लेने के अपने अद्भुत तौर तरीके हैं। मसलन इसे कड़वे पदार्थ को लेने के तुरंत बाद अति मीठे हलवे का घोल पीना है। मरीज इस नुस्खे के तैयार होने और उसके सेवन की कल्पना से इतना आतंकित हो जाता है कि इसके फायदे उठाने के लिए खुद को तैयार नहीं कर पाता। इससे पहले कि मुझ पर कुछ और नये प्रयोग किये जाएं मैं उठ कर खड़ा हो गया हूं और एक्सीडेंट के रहस्य को कुछ-कुछ समझने लगा हूं।

40, सिद्धार्थ अपार्टमेंट

रोहतक रोड, नई दिल्ली-110087

'व्यंग्य यात्रा'

के निम्नलिखित
शुभचिंतकों से आप
'व्यंग्य यात्रा' अंकों
के लिए संपर्क कर सकते हैं

श्री अशोक आनंद
103/2-1 गुरु रोड, देहरादून
दूरभाष : 9410394466 (मोबाइल)

श्री रमेश सैनी
245, एफ.सी.आई.लाईन, त्रिमूर्ति नगर
दमोह नाका, जबलपुर-482002 (म.प्र.)
दूरभाष : 09425866402

श्री तरसेम गुजराल
78 रामशरणम कॉलोनी, कॉलेज रोड
बस्ती दानिशमंद, जालंधर (पंजाब)

श्री अरविंद विद्रोही
बिरसानगर रोड नं.-2 पूर्व, जौन-2
गुप्ता गैस गोदाम के पीछे
जमशेदपुर (बिहार)

रामबहादुर चौधरी चंदन
फुलकिया, बरियारपुर
मुंगेर-811211 (बिहार)

श्री अतुल चतुर्वेदी
380 शास्त्री नगर
दादाबाड़ी, कोटा (राजस्थान)
दूरभाष : 9414178745

प्रेम विज, 1284 सैक्टर 37 बी
चंडीगढ़ 7110036
दूरभाष : 2688139

परिदृश्य प्रकाशन
दादी संतुल लेन, धोबी तालाब
मरीन लाईन, मुंबई
दूरभाष : 20192689

श्री अनंत श्रीमाली
4/64 'गीतांजली' समता नगर
काँदिवली (पूर्व) मुंबई
दूरभाष : 9819051310

पंजाब बुक सेंटर
एस सी ओ न 1126
सैक्टर 22 बी, चंडीगढ़

श्री शिवानंद सहयोगी
ए-233 गंगानगर, मवाना रोड, मेरठ
दूरभाष : 9412212255

व्यास रोजगार सेंटर
महेश नगर
जयपुर (राजस्थान)

शैलेन्द्र अस्थाना

भगवान से चक चक

वैसे सहूलियत तो बात को भूमिका से शुरू करने में रहती है, किंतु मैं अपनी बात वगैर किसी भूमिका के कहने की इजाजत चाहूंगा, क्योंकि बात एक सपने की करनी है; और सपने वगैर किसी भूमिका के चाहे अनचाहे दिख जाते हैं। हमने यह सपना हाल ही में देखा है। आप कहेंगे इसमें नयी बात क्या है? यह आदमी ही है जो सपने देखता है, सपने दिखाता है और सपने पालता है। सोये हुए कुत्ते को गुर्रते देख कर मुझे लगता है कुत्ते भी सपने देखते हैं। यदि मनुष्य अपने आदिम मित्र कुत्ते की इतनी प्रवृत्तियां अपना सकता है तो क्या कुत्ते मनुष्य से सपने देखना नहीं सीख सकते। सपने दिन में भी देखे जाते हैं जैसा मुहावरों में प्रयोग होता है, और रात में भी जैसा मैं देखा था। मैं ऐसे ही रात में देखे सपने की बात कर रहा हूं।

मेरे सपने में भगवान आये थे। वैसे यह कोई नयी बात नहीं है। इसकी तो परंपरा रही है। हमारे प्राचीन ग्रंथ गवाह हैं। कभी-कभी तो भगवान सपने में आकर पूरी की पूरी किताब लिखवा जाते थे। यानि लेखक केवल एक स्टेनोग्राफर और बाकी काम भगवान का। सोचिये कितने खुशनसीब होंगे वे लेखक। आज के बेचारे लेखकों की तरह नहीं कि चार लाइन लिखने के लिए इतनी तैयारी, इतनी मशक्कत करनी पड़े। तब न भूमिका लिखवाने के लिए इतना पापड़ बेलना पड़ता था और न नोटिस लिए जाने के लिए आलोचकों समीक्षकों की ओर टकटकी लगाये रहना पड़ता था।

आज भी भक्तों के सपने में भगवान अक्सर आते ही रहते हैं। किसी के सपने में आ कर कह दिया, 'अमुक चौक के नीचे दबा कष्ट पा रहा हूं निकाल मुझे।' बस वहां मंदिर बड़ा और सड़क संकरी हो जाती है। पता नहीं सार्वजनिक स्थानों के नीचे ही भगवान क्यों दबे-छुपे रहते हैं?

मेरे सपने में भगवान आये कहा, 'बेटा, सो रहे हो? दादा कहलाने के उम्र में अपने लिए बेटा संबोधन नागवार लगा। मैंने कहा देखने में तो आप मेरे उम्र के ही लग रहे हैं फिर आपने मुझे बेटा कह कर संबोधित क्यों किया?'

'इसलिए कि मैं भगवान हूं।' उनका सीधा सा उत्तर था।

मैंने कहा, भगवान! कौन भगवान? कहां के भगवान?

'अजीब अहमक हो, भगवान को नहीं जानते?' उनके आवाज में तलखी थी।

मैंने भी उतनी ही तलखी से कहा, देश में कितने भगवान हैं, आप किस पंथ, किस संगठन, किस दल के भगवान हैं? अपने मुहल्ले और शहर का नाम तो बतायेंगे।

भगवान तैश में आ गये, कहा, मैं किसी दल वल को नहीं जानता। मेरा कोई ठांव नहीं ठौर नहीं, कोई गली मुहल्ला नहीं।'

'कम से कम पूरा नाम तो बताइये, केवल भगवान नाम तो नहीं होगा। कोई टायटिल तो होगी' मैंने संजीदगी से पूछा।

'भगवान को कोई टायटिल नहीं होती', भगवान ने बेरुखी से जवाब दिया।

'चलो, टायटिल नहीं जाति तो होगी', मैंने तर्क दिया।

'भगवान की जाति नहीं होती।'

'जाति नहीं होती', मतलब आप दूसरे देश से आये हैं।'

'दूसरे देश से नहीं दूसरे लोक से कहो।'

'अच्छा, वो दूसरे ग्रह नक्षत्र से आगे प्राणी, 'एलियन' हैं जैसा अंग्रेजी फिल्मों में दिखाया जाता है', मैंने सरलता से कहा।

'अजीब अहमक हो, मैं किसी दूसरे ग्रह नक्षत्र का प्राणी नहीं, भगवान हूं, भगवान। यानि ईश्वर अल्लाह गॉड।'

'तीनों! यह कैसे हो सकता है कि ईश्वर अल्लाह और गॉड एक ही हो? हमारे यहां तो हर मुहल्ले, हर गांव, हर जाति के भगवान अलग-अलग होते हैं; जिसके लिए लोग कटते-काटते रहते हैं, मरने-मारने के लिए उतारू रहते हैं। और आप कहते हैं कि ईश्वर अल्लाह और गॉड एक हैं। यह कैसे हो सकता है?'

'मैं समझा नहीं', भगवान ने कहा।

'आप नहीं समझेंगे, दूसरे लोक में रहते हैं न!'

भगवान कुछ सोचने लगे। मुझे मौका मिल गया। पूछा, चलो माना कि आप भगवान हैं, फिर कहां है आप का गदा-चक्र-पितांबर; आप भी तो मेरे जैसा ही स्लीपिंग सूट पहने हुए हैं; जिसके ऊपर का एक बटन टूटा हुआ है, ठीक मेरे स्लीपिंग सूट की तरह। यह कैसे हो सकता है कि भगवान मेरे जैसा दिखे?

'क्यों नहीं हो सकता कौन कहता है कि मैं मुकुट पहने गदा-चक्र लिये रहता हूं?'

'मैंने किताबों में पढ़ी है। किताबों में जो लिखा है गलत कैसे हो सकता है?'

'तुमने गलत पढ़ा है। तुम कुछ नहीं जानते।' भगवान ने गंभीरता से कहा।

'मैं कुछ नहीं जानता? इतनी सारी डिग्रियां हैं मेरे पास! पूछिये लोगों से मैं कितना बड़ा विद्वान् माना जाता हूं। बड़े-बड़े लोग मेरा भाषण सुनने आते हैं, बड़े-बड़े अखबारों में, बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में मेरे लेख छपते हैं, लाखों रुपये कमाता हूं और आप कहते हैं मैं कुछ नहीं जानता।

'तुम बुद्धिहीन नासमझ ही नहीं बड़बोले भी हों' भगवान के आवाज में सख्ती आ गयी थी।

मैं थोड़ा नरम हुआ। मेरा घाघ मन हरकत में आ गया। बेशक मान लिया आप

भगवान हैं और यदि आप भगवान हैं तो मेरी कुछ शंकायें हैं क्या आप उनका निराकरण करेंगे।

‘शंकाएं?’

हां मेरे कुछ प्रश्न हैं आपसे उनका उत्तर चाहिए।

मतलब तुम समझदारों जैसी बातें कर सकते हो। बोलो क्या हैं तुम्हारे प्रश्न?

‘भगवान! आपने पुकार सुनकर गज को ग्राह से छुड़ाया, द्रौपदी की लाज बचायी, हिरण्यकश्यपु को मार कर प्रह्लाद की रक्षा की। किंतु आज कितनी ही अबलाएं, कितने पीड़ित-आक्रान्त आपको गुहार लगाते-लगाते, पुकारते-पुकारते दम तोड़ देते हैं; किंतु उनकी रक्षा करना तो दूर की बात आपकी छाया भी वहां नहीं पहुंचती।’

‘तुम्हारी शंका सही है। पर हमारी मजबूरी भी है। उस समय मुझे पुकारने वाला मेरा भक्त होता था और आततायी मेरा विरोधी, मेरा शत्रु। मैं भक्त की पुकार सुन कर झट उसकी सहायता करने पहुंच जाता था और विरोधी को परास्त कर भक्त की रक्षा कर देता था। भक्त की रक्षा भी हो जाती थी और विरोधी के साथ मेरा विरोध भी समाप्त हो जाता था। किंतु आज की स्थिति भिन्न है। दोनों मेरे भक्त होते हैं, पीड़ित भी और आततायी, पीड़क भी, आक्रान्त भी और आक्रामक भी अब तुम्हीं बोलो मैं किसका पक्ष लूँ? एक मेरी पूजा करता है, दूसरा मेरे लिये मंदिर बनवाता है मैं किसकी सुनूँ?’

‘आप को न्याय का पक्ष लेना चाहिए’ मैंने सुझाया।

‘न्याय का? न्याय भी कहां निरपेक्ष होता है? आज का न्याय कल का अन्याय हो जाता है। तुम तो जानते हो न्याय का वास्ता दे कर मुझसे शंबूक का वध करवाया गया; आज मुझे उसी के लिए कोसा जाता है। वर्षों से जड़ बनी अहिल्या को मुझसे जीवन दिलाया गया, किंतु इस प्रकरण के अपराधी इंद्र और चंद्रमा को दंड नहीं दिया इसके लिए मुझ पर उगलियां उठायी जाती हैं। अपनी प्रजा परायणता दिखाने के लिए पत्नी को घर से निकाला आज मुझे इसके लिए दोषी माना जाता है।’

‘फिर भी ... मैं बात को और स्पष्ट

करना चाह रहा था।

फिर भी क्या? जनता को देखो। बुद्धिजीवी हो न इसलिये जनता की ओर नहीं देखते। उम्मीदवार जनता से वोट मांगने जाता है। उम्मीदवार भी कोई ऐसा वैसा नहीं कोई विषधर कोई मणिधर कोई अजगर अब जनता बेचारी क्या करें? किसका पक्ष ले? कह देती है निपट ले भाई आपस में बूथ कैप्चर कर के। कोउ नृप होहिं हमें का हानि, चेरी छोड़ न होयब रानी।’

‘क्या साधारण जन और भगवान में कोई अंतर नहीं है?’

‘जानते नहीं भगवान का दूसरा नाम जनार्दन भी है।’

‘जानता हूँ, किंतु....’

‘मतलब तुम्हारे शंका का समाधान अभी नहीं हुआ। मान लो तुम पुलिस में होते। जनता के पैसे से सरकार तुम्हें तनख्वाह देती और अपराधी अपने अपराध के कमाई से तुम्हें हफ्ता देते। अब जनता और अपराधियों के लफड़े में तुम किसका पक्ष लेते? बहुत होता तो उन्हें आपस में निपट लेने के लिए छोड़ कहीं और मशगूल हो जाते। कैन यू थिंक आफ एनी बेटर आप्शन इन सच सिचुएशन’ (ऐसी परिस्थितियों में इससे अच्छा विकल्प क्या सोच सकते हो)।

‘आप अंग्रेजी बोल रहे हैं?’

‘क्यों, मैं अंग्रेजी नहीं बोल सकता?’

‘मैं तो यही जानता था कि भगवान केवल देव भाषा संस्कृत ही समझता है।’

‘यदि तुम्हारी विद्वता ऐसी ही जानकारियों से बनी है तो तुमस तो मूर्ख भले।’

मेरी तुलना मूर्ख से! मैं अंदर से बौखलाया। जी में आया कि खरी-खोटी सुना दूँ; जैसे मंचों-सेमिनारों में अपने से असहमत होने वालों को सुना दिया करता हूँ। किंतु मामला भगवान का था इसलिए चुपचाप झेल लिया। किंतु मेरा घाघ मन अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिए उधेड़ बुन में लगा रहा।

‘चलो मान लेता हूँ आपकी मजबूरियों को। किंतु ऐसा क्या है कि आप रात में चुपके-चुपके सपने में आते हैं। दिन में सरेआम सड़कों पर क्यों नहीं निकलते?’

भगवान मुस्कुराये, इसमें व्यंग्य था।

विद्वान हो इसका मतलब यह तो नहीं कि किताबों से बाहर जा कर सोचो ही नहीं।

‘इसमें सोचने की कौन सी बात है?’ मैंने कहा।

इतना भी नहीं समझते। एक अदने से वी.आई.पी. के आने से शहर में अफरा-तफरी मच जाती है, सारी व्यवस्था उलट-पुलट हो जाती है। सोचो यदि मैं आ गया तो क्या होगा? कितनी समस्यायें पैदा हो जायेंगी, लॉ एंड आर्डर की, ट्राफिक की, राजनीति की। मैं जहां-जहां से गुजरूंगा भक्त लोग वहां-वहां एक से बढ़ कर एक मंदिर बनवाने लगेंगे। फिर वहां बाजार-होटल बनेंगे तब न वहां चलने के लिए सड़क रह जायेगी और न बच्चों के लिए स्कूल की जगह। बच्चों के खेलने की जगह तो पहले से ही देवी देवताओं के मंदिर के मार्फत कब्जे में ली जा चुकी है। अब तुम क्या चाहते हो कि लोग पेड़ों पर रहें और मेड़ों पर चलें। और यदि शहर ने हमारे आने का प्रापर नोटिस नहीं लिया तो हमारी क्या इज्जत रह जायेगी? किसी क्षेत्रीय दल के नेता की नवटंकी देखने-सुनने के लिए लाखों की भीड़ जुटा ली जाती है और यदि भगवान को देखने के लिए पच्चीस-पचास हजार की भी भीड़ नहीं जुटी तो? फिर लोगों के नाना प्रकार के प्रश्नों का सामना करने जहमत अलग। इससे तो अच्छा है आहिस्ता से सपनों में आ जाना। औवल तो सोया हुआ आदमी प्रश्न नहीं करता और यदि किसी ने प्रश्न कर भी दिया तो उसे अड़बंग सा उत्तर दे कर चलता किया जा सकता है। अब तो हो गया न तुम्हारी शंकाओं का समाधान।’

‘बस एक शेष है’ मेरी हिम्मत थोड़ी बढ़ी थी।

‘कहो।’

मैंने कहा, ‘प्रभु, कच्छप, मत्स्य और नरसिंह रूप में आपके आने की जानकारी तो है अब शूद्र रूप में आने की जानकारी कब मिलेगी?’

भगवान ने आंखें तरेरी। मैं पसीने-पसीने हो गया।

‘लगता है तुम्हारी निद्रा टूट रही है, ‘भगवान ने कहा और लुप्त हो गये।

6 बीसी, सी रोड, वेस्ट, नार्दन टाउन,
जमशेदपुर-831001 मो. 9430745057

विलास गुप्ते

पेशे लायक चेहरा

उन्होंने कुछ कुछ संकोच और कुछ-कुछ व्यंग्य के साथ जो कहा, उसका मतलब यह था कि मेरा चेहरा मेरे पेशे के मुताबिक नहीं है। उनका विचार यह था कि मैं एक प्राध्यापक हूँ और मुझे अपने चेहरे का रखरखाव इस पेशे के अनुकूल रखना चाहिए, जोकि नहीं है!

मैं सोच में पड़ गया— क्या सचमुच पेशे और चेहरे के बीच कोई रिश्ता होता है? मैं जितना सोचता गया, उतना उलझता गया। उनका कहना था कि पेशे के मुताबिक चेहरा होना चाहिए, तो इसका मतलब यह भी तो होना चाहिए कि चेहरे के मुताबिक पेशा होना चाहिए। मैं फिर सोचने लगा। एक-एक कर कई चेहरे और पेशे मेरी आंखों के सामने घूम गये। मैं उनका आपस में मिलान करने लगा।

सबसे पहले मेरा ध्यान 'लोक सेवारत अहर्निश' पुलिस वालों की ओर गया। इससे अधिक लोकापकारी पेशा और क्या हो सकता है? अपराधों पर नियंत्रण, कानून-व्यवस्था का पालन और जनता के जानमाल का रक्षण यह तो बड़ा पुनीत कर्म है। उस हिसाब से तो इस पेशे वालों का चेहरा सौम्य होना चाहिए और वचन मधुर। जब पुलिस वालों का चेहरा सामने आया तो लगा कि यहां पेशा तो सही है, पर चेहरा गलत। कई बार पुलिस वर्दी में डाका डालने आये डाकुओं को मार गिराने वाले पुलिस वालों के फोटो अखबारों में छपते हैं। तब यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि इनमें से कौन डाकू हैं और कौन पुलिस वाला। 'विनम्रता सप्ताह' में भी पुलिस वालों की भाषा सुनकर लगता है कि पेशे और चेहरे में कहीं कुछ गड़बड़ है।

ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसने डॉक्टरों के चेहरे न देखे हों? डॉक्टरों के पेशे से

अधिक मानवीय पेशा और कोई हो ही नहीं सकता। रोग-जर्जर व्यक्ति के मन में आत्मविश्वास जगाने और मरते हुए को जिलाने से अधिक पुण्यप्रद कर्म और क्या हो सकता है? ऊपर से देखने पर डॉक्टरों के चेहरे बड़े भले व शरीफ दिखायी देते हैं, पर उस मुखौटे पर भीतर एक और चेहरा छिपा रहता है, जो उनका असली चेहरा होता है। यह चेहरा चिड़िया पर झपट्टा मारते बाज जैसा दिखायी देता है। यमराज से बचाने का चेहरा पहने ये डॉक्टर कई बार यमराज के दूत का काम भी करते हैं। इस चेहरे में और पेशे में कहीं कोई तालमेल नहीं है।

फिर एक साधु का चेहरा मेरी आंखों के सामने आ गया। पर दुख कातर, शांत रस में निमग्न, आध्यात्मिक आभा से आलोकित। चेहरा तो सही था, पर तभी उसके कर्म मालूम पड़े। उसने उपमहंत बनने के लिए चार लोगों के सिर फोड़े थे। एक बार आश्रम की एक महिला को दबोच लिया था। नशा तो रोज करता था। ये पेशा तो डाकुओं-गुंडों का होता है, साधु ने कैसे अपना लिया? यहां भी चेहरे और पेशे में बहुत फर्क था।

होते-होते अफसरों का चेहरा सामने आ गया। उन पर बहुत अधिक जिम्मेदारी होती है। उनका पेशा जनता की सेवा करना और कल्याणकारी योजनाओं को लागू करना होता है। इसी हिसाब से उनका चेहरा गंभीर और विनम्र होना चाहिए— जो होता भी है। यह तो गौर से देखने पर पता चलता है कि अफसर अपनी जेब भरने की ओर अधिक ध्यान देता है और रिश्वतखोरी उसके कार्यकलाप का अविभाज्य अंग है। यहां भी पेशे और चेहरे में अनुकूलता दिखायी नहीं देती।

सोचते-सोचते एक चेहरा ध्यान में आया। आये दिन ये चेहरा अखबारों में, न्यूज

चैनलों में, सभाओं-जुलूसों में या पोस्टरों में दिखायी देता है। यह चेहरा है राजनेता का। इस चेहरे को लेकर मैंने जितनी गहराई से सोचना शुरू किया, उतना ही मैं चकराता गया। राजनेताओं के कई-कई पेशों के साथ मैंने जितनी गहराई से सोचना शुरू किया, उतना ही मैं चकराता गया। राजनेताओं के कई कई पेशों के साथ मैंने यह भी पाया कि उनके कई-कई चेहरे भी हैं। वक्त जरूरत मौके के हिसाब से पेशे के मुताबिक वे चेहरा बदल लेते हैं। वैसे तो राजनेता के चेहरे से जनसेवा का भाव टपटप टपकता रहता है, पर पेशे से तो वे जनता को लूटने का धंधा करते हैं। इनका दूसरा चेहरा है देशप्रेम का। देशप्रेम इनके शरीर के अंग-अंग में रिसता है। जब बात पेशे की आती है तो ये वोटों की खातिर देशद्रोही ताकतों की पीठ थपथपाने से भी नहीं चूकते। यहां भी पेशे और चेहरे का फार्मूला फेल हो जाता है। राजनेता का एक और चेहरा है— त्याग व तपस्या का। यह चेहरा ऐसा आभास देता है कि वे इतने वीतरागी हैं कि लंगोट धारण करने तक की इच्छा नहीं रखते। फिर जब पेशे की ओर ध्यान जाता है तो पता चलता है कि नंगापन तो उनका प्रिय शगल है! आदर्शों के वस्त्र उन्हें काटने को दौड़ते हैं, इसलिए वे बेशर्मी के साथ अपने कृत्य करते रहते हैं।

होते-होते मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस दुनिया में चेहरे और पेशे में कोई संबंध नहीं होता। अगर आदमी पेशे के हिसाब से चेहरा अपनाने लगे तो मुंह की खायेंगा। उसी प्रकार अगर वह पेशे के हिसाब से चेहरे का रखरखाव करे तो मनुष्यों के सिर पर पशुओं के चेहरे ही नजर आयेंगे।

72, पत्रकार नगर

इन्दौर

दिनेश चन्द्र जोशी

बुलाकी का उस्तरा और राजधानी

बुलाकी को आप नहीं जानते होंगे, जानेंगे भी कैसे? कभी फुटपाथ में सिर घोटया होता तो जानते भी। बहरहाल बुलाकी को जनवाने के लिए मैं आपका सिर नहीं घुटवाउंगा, आप निश्चित रहें। हां, इस कथा को पढ़ने की हजमत अवश्य करें।

बुलाकी के बाप-दादा गांव के पुश्तैनी नाई थे। दादा, गांव के जमींदारों, सेठ-साहूकारों की हजमत बनाया करते थे, लोग कहते हैं उनके उस्तरे में ऐसी सिफत थी कि पता ही नहीं चलता था कब उस्तरा चला और बिना खूं-खरोंच के अपना काम कर गया। रही बात कैंची की, तो, कैंची तो सुना है, ऐसी चलती थी कि पचास फीसदी बाल कम हो जाने के बाद भी पता नहीं चलता था कि बाल कम हुए हैं। यानी कि बाल कट भी जाएं और कटिंग हुई कि नहीं इस बात का पता भी न चले।

इस फने हजमत के एवज में उन्हें इनाम इकराम भी खूब मिला करता था। सो, कहा जाता है कि बुलाकी के दादा के जमाने में घर की माली हालत अच्छी थी। बुलाकी के बारे में एक बड़ा दिलचस्प वाकया यह था कि सन पचास में जिस दिन पहली छब्बीस जनवरी मनाई गई, उसी दिन बुलाकी का जन्म हुआ। आजादी की लहर का जोर था और दूर-दराज के कस्बों गांवों तक छब्बीस जनवरी मनाये जाने की खबर थी, सो इस कारण बुलाकी का जन्म तिथि लोगों की जुबान पर रट गई, यहां तक कि शुरू-शुरू में बुलाकी को गांव में कुछ लोग 'आजाद नाऊ' के नाम से भी पुकारते थे। आजादी के बाद बुलाकी के बाप दादा का धंधा मंदा पड़ा गया, जमींदारों, सेठ-साहूकारों का रौबदाब घट गया, उनकी मूछों का बांकपन कम हुआ और हजमत के काम में भी वो बात नहीं रही जो पहले थी, सो बुलाकी के बाप को गदिर्श के दिन देखने पड़े।

थोड़ी बहुत खेती पाती और थोड़ा हजमत का काम चलाकर बुलाकी के बाप ने किसी तरह बुलाकी व उसके भाई बहिनों को जवानी तक ला खड़ा किया। हजमत के फन में बुलाकी ने भी पुश्तैनी महारत अवश्य हासिल कर ली थी। लेकिन गांव में हजमत बनाने वालों, बाल कटवाने वालों और सिर घुटाने वालों को कस्बे और शहर की 'सैलून' का फैशन भाने लगा था। दो चार बुजुर्गों व सयानों की खोपड़ी व हजमत के भरोसे बुलाकी का उस्तरा कब तक अपना काम चलाता, ऐसे नामुराद वक्त में एक रोज बुलाकी ने अपनी हजमत वाली बक्सिया उठाई और गांव के पास वाले नजदीकी कस्बे की ओर रुख कर लिया। कस्बे के चौराहे पर बरगद के पेड़ तले मौका देखकर उसने अपनी चटाई तथा हजमत बक्सिया जमा दी।

कस्बे में बुलाकी का धंधा ठीक-ठाक चल पड़ा, कस्बे की आबादी गांव से कई गुना ज्यादा थी। आस-पास के गांवों से कई लोग कस्बे में सौदा सुलुफ, डॉक्टर, हकीम, तहसील, स्कूल, नून-तेल राशन के चक्कर में आते थे। लगे हाथों कटिंग, मुंडन व हजमत भी बना लेते थे। बुलाकी एक तो सस्ता था ऊपर से मौके की जगह पर बैठा करता था, सो उसके उस्तरे की धार चमकने लगी। बाल तो व काटता ही था लेकिन जो मजा उसे सिर घोटने में आता था, वो बात हजमत आदि में नहीं थी, सिर घोटने का तो वह एक्सपर्ट ही था। घोटते वक्त जब वह मस्ती में आ जाता था तो घुटे हुए सिर के इंच इंच हिस्से को उंगलियों से चटखाता मालिस करता हुआ चहक उठता था, और ग्राहकों से कहता, 'भैया हम आदमी को चेहरा देखकर नहीं खोपड़ी देखकर पहचानते हैं, अगर घुटी हुई खोपड़ी हो तो कहने ही क्या! एक बार जिस खोपड़ी को हमारा उस्तरा देख लेता है उसे ताजिन्दगी नहीं

भूलता। चेहरा पहचानने में हमसे गलती हो सकती है, लेकिन खोपड़ी पहचानने में कतरई नहीं होगी। आखिर भय्या! खोपड़ी ही तो हमारी रोजी रोटी है, रोजी रोटी को नहीं पहिचानेंगे तो जिंदा कैसे रहेंगे।'

कस्बे में बुलाकी की दिनचर्या बड़ी मजेदार चल रही थी, लेकिन एक रोज ऐसा वाकया हुआ कि कस्बे से उसका मन उचट गया। हुआ यूं कि उस दिन सुबह-सुबह बौहनी के वक्त एक गोल मटोल भारी आवाज व सख्त गलमुच्छों वाली खोपड़ी बुलाकी के समक्ष घुटने के वास्ते प्रस्तुत हुई, खोपड़ी रौबीले अंदाज में बोली, 'ऐ नाऊजी, फटाफट हजमत बनाओ, और सिर घोटो, जल्दी करो यह काम, टैम नहीं है।'

बुलाकी का उस्तरा यूं भी तैयार ही बैठा था, उसने चेहरे पर ज्यादा गौर न कर फटाफट हजमत बना दी, उसके पश्चात सिर घोटने लगा। यह सिर सामान्य सिरों के कुछ ज्यादा ही बड़ा व गोल मटोल था। इसे घोटने में बुलाकी को बड़ा मजा आया।

काम हो चुकने के बाद भारी भरकम आवाज वाली वह खोपड़ी सिर पर चादर लपेटकर, बुलाकी के हाथ में पांच का नोट पकड़ाकर चलती बनी, बकाया पैसे लौटाने के लिए उसने आवाज मारी, पर खोपड़ी इतनी त्वरित गति से चली कि बुलाकी को वे पैसे रखने ही पड़े। बुलाकी को वह व्यक्ति कुछ रहस्यमय कुछ संदिग्ध कुछ भयानक तो अवश्य लगा लेकिन अन्य ग्राहकों में व्यस्त हो जाने के कारण उसके दिमाग से यह बात जाती रही।

उसी दिन दोपहर तीन बजे के लगभग दो पुलिस वाले बुलाकी के पास अकड़ते हुए आए और एक मुच्छैल भयानक किस्म के आदमी का फोटो दिखाते हुए बोले, 'देखो, ये आदमी तुम्हारे पास हजमत बनाने तो नहीं आया था।'

बुलाकी ने फोटो को गौर से देखा,

चेहरा गलमुच्छों से इतना भरा हुआ था कि स्पष्ट रूप से नजर ही नहीं आ रहा था। हाँ, सिर का आकार लगभग वैसा ही था।

बुलाकी बोला, 'हुजूर, चेहरे पर तो हम ध्यान नहीं दिए, लेकिन एक मूछों वाला आदमी सुबह-सुबह बौहनी के वक्त आया था, वह हजामत बनवा ले गया साथ ही सिर भी घुटवा ले गया, हमारे हाथ में पाँच का नोट रख कर चला गया। उसके घुटे हुए सिर की तस्वीर हो तो हम पक्का बता सकते हैं कि वही आदमी था।'

पुलिस वाले बुलाकी पर बिगड़ गए। बोले, 'तुम साले कैसे नाई हो, आदमी का चेहरा न पहचान कर खोपड़ी पहचानते हो, आइन्दा से चेहरा पहचाना करो, और स्साले! गुंडे बदमाशों से घूस लेते हो, उन्होंने बुलाकी को डराया धमकाया साथ ही उसको दो डंडे जमाते हुए बोले, 'जानते हो वो आदमी एक नंबरी गुंडा है, दसियों हत्याओं का इल्जाम है उसके ऊपर, जिसकी तुमने हजामत बनाई है।'

बुलाकी बोला, 'सरकार आइन्दा ऐसी गलती नहीं करूंगा और चेहरा देखकर उस्तरा चलाऊंगा।'

इस घटना से बुलाकी बेहद परेशान व चिंतित हो उठा, कस्बे से उसका जी उचट गया। उसके दिल में कस्बे से पलायन की हूक उठने लगी। इस बाबत उसने जुगाड़ भी लगाना शुरू कर दिया। नतीजा यह निकला कि उक्त घटना को घटे दो माह भी नहीं बीते होंगे कि बुलाकी जी, कस्बे से कूच कर अपने जिला मुख्यालय की कचहरी के बाहर एक चबूतरे के कोने में अपनी चटाई और बक्सिया सहित जम गए। जिला मुख्यालय का तो नजारा ही कुछ और था, फिर कचहरी के तो कहने ही क्या।

मुक्किल, मुहर्रिर, वकीलों, पेशकारों के अलावा शहर गाँव देहात के लोगों का रेला हर समय लगा रहता था। पान, सिगरेट, फल, चाय, समोसा, खस्ता पुड़ी वालों की दिनभर चांदी रहती थी। चबूतरे के पास ही पीपल के नीचे तीन चार नाई और बैठते थे, उनके पास बकायदा कुर्सी, शीश, तौलिया व हजामत वाली क्रीम आदि भी थी। उनकी आमदनी भी ठीक थी। बुलाकी ने फिलहाल अपनी चटाई व बक्सिया से ही काम चलाना शुरू किया। उसके हुनर व कारीगरी से

प्रसन्न होकर ग्राहकों की संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी, सो जिला मुख्यालय में बुलाकी का काम बढ़िया चल निकला। समय का पहिया चलता रहा और कब जिला मुख्यालय में बुलाकी को चार पाँच वर्ष बीत गए, पता ही नहीं चला।

इस बीच बुलाकी ने वकीलों, बाबुओं, अफसरों के घर जाकर छुट्टी के रोज उनके बाल काटने का कार्य प्रारंभ कर के 'डोर टू डोर' सेवा प्रारंभ कर दी। यहां तक कि उसने दो एक जजों को भी अपने हुनर से प्रसन्न करके उनको नियमित ग्राहक बना लिया था। इस दौरान वह शहरी शिष्टाचार, सीप शउर, चुश्ती फुर्ती व बोली बानी से भी वाकिफ हो गया था। उसका भोला देहातीपन कम होता गया और एक शहरी तेज तर्रार किस्म के आदमी के व्यवहार की नकल उसको भाने लगी। अपने उस्तरे के फन की बदौलत उसने कुछ रकम भी जोड़ ली थी सो अपने स्टैंडर्ड में कुछ इजाफा किया और चटाई बक्सिया के बदले कुर्सी, शीशा व तौलिया वाला स्टेट्स हासिल कर लिया। जिला मुख्यालय में बुलाकी की दिनचर्या बड़ी खुशनुमा चल रही थी, लेकिन एक रोज ऐसा वाकया घटा कि बुलाकी हफ्ते दो हफ्ते तक डरा सहमा रहा। हुआ यूँ कि दोपहर के वक्त एक खद्दरधारी हट्टा कट्टा व्यक्ति बुलाकी की कुर्सी पर सिर घुटवाने के लिए जम गया, उसने हजामत भी बनवाई। बुलाकी ने फटाफट उस्तरा फेरना प्रारंभ किया।

अभी तक तिहाई खोपड़ी उसने घोटी ही थी कि वह एकदम से चौंका, उसने अपनी स्मृति पर जोर डाला, उसके सामने वही कस्बे वाली खोपड़ी साकार हो उठी जिसकी बदौलत कस्बे में डंडे खाये थे। किसी तरह डरते-डरते उसने पूरा कार्य सम्पन्न किया, कनखियों से एक दो बार चेहरे को गौर से देखा, चेहरा साफ सुघड़ चिकना हो गया था।

गलमूछें छंटरकर पतली तलवार छाप हो गई थी। हजामत बनाने के बाद बुलाकी डरता हुआ उस्तरा साफ करने के बहाने पास के बम्बे तक चला गया, भय व दहशत के कारण उसकी हालत खराब थी।

खद्दरधारी ने भारी भरकम आवाज देकर उसे बुलाया, 'लो भय्या, मेहनताना तो

ले लो! और सब ठीक-ठाक है, कोई परेशानी हो तो बताना' कहते हुए उसने बुलाकी के हाथ पर दस का नोट रक्खा और चलता बना। आसपास के दुकानदारों ने दोनों हाथ जोड़कर उसका अभिवादन किया, और कहा, 'नेता जी नमस्ते!' 'नमस्ते भाई, नमस्ते कहते हुए सद्यः घुटे हुए नेता जी हाथी की तरह मस्त चाल से चलत हुए कचहरी के गेट के भीतर चले गये। बुलाकी ने इस सिर को पहचानने में कोई गलती नहीं की थी। फिर यह तो असाधारण व अद्भुत सिर था। उसने सोचा, जरूर आज भी पुलिस वाले आएंगे और वही कस्बे वाला प्रश्न दाग देंगे, फिर कैसे बचूंगा? लेकिन बुलाकी की खुशकिस्मती से कोई नहीं आया। हफ्ता बीत गया, पखवाड़ा-महीना बीत गया कोई भी खद्दरधारी सिर की पूछताछ करने नहीं आया। बुलाकी निश्चित हुआ।

जिला मुख्यालय में बुलाकी का काम धंधा बढ़िया चल रहा था, एक रोज बगल के पान वाले रतन ने अखबार पढ़ते हुए आवाज लगाई, 'बुलाकी भय्या, लो सुनो खबर! राजधानी के दो सौ आंदोलनकारियों ने सिर घुटा कर उस पर अपनी मांगें लिखी और विशाल जुलूस निकाला। मजे की बात यह है कि उनकी मांगें मान ली गयी। वाह भाई, वाह! यह तो बड़ा बढ़िया तरीका है अपनी मांगें मनवाने का, तब तो राजधानी में तुम्हारी बड़ी जरूरत है बुलाकी भाई, तुरंत राजधानी जाओ, और अपने उस्तरे का कमाल दिखाओ। आमदनी की आमदनी होगी, समाज सेवा अलग से।'

बुलाकी इस खबर को सुनकर विस्मित हो उठा, यह तो बड़ी मजेदार बात है भय्या, अगर ऐसा है तब तो राजधानी में बड़ी मौज रहेगी। कोई जुगाड़ निकालना पड़ेगा वहां जाने का।' उसने रतन की बात का जवाब दिया। बुलाकी ने यह बात कही तो मजाक में थी लेकिन उसने राजधानी जाने के इस मजाकिया प्रकरण पर गंभीरता से सोचना शुरू कर दिया।

खाली वक्त में बैठे-बैठे बुलाकी अक्सर इसी सपने को साकार करने की चेष्टा करने लगता। इसी कवायद में उसने अपनी याद्दाश्त पर जोर डाला, उसे याद आया उसके गांव में किशन भाई राजधानी में पान की दुकान चलाते हैं। उसने सुना था किशन भाई की

दुकान अच्छी चलती है और वे अच्छे आदमी हैं। इस बात को उसने गाँठ बांध लिया और अगली बार गांव के फेरे से लौटते वक्त किशन भाई का पता ठिकाना मालूम कर लाया। बुलाकी को किशन भाई का पता क्या मिला कि उसकी राजधानी जाने की तमन्ना इतनी बलवती हो उठी कि एक रोज किशन भाई से मिलने वह राजधानी जाने वाली गाड़ी में बैठ लिया।

किशन भाई का पता लगाने में उसे ज्यादा दिक्कत नहीं हुई। ऐन विधानसभा मार्ग पर प्रिन्स सिनेमा के पास उनकी पान की दुकान थी, अच्छी खासी भीड़भाड़ वाली जगह थी, ग्राहकों का रेला लगा था। किशन भाई नेकदिल व मेहनती इंसान थे, बुलाकी को पहचानने में उन्होंने कोई कोताही नहीं की। राजधानी में बुलाकी के लिए ठिकाना तलाशने हेतु उन्होंने प्रयास किया और अपने परिचय व प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए विधानसभा मार्ग पर ही एक तोते वाले ज्योतिषी के बगल में बुलाकी के बैठने की व्यवस्था कर दी।

बुलाकी प्रमुदित हो उठा, फटाफट लौटकर जिला मुख्यालय आया और अपनी हजामत वाली बक्सिया व अन्य माल असबाब को एक लोहे के बक्से में डालकर संगी साथियों को 'राम-राम' कहकर राजधानी के वास्ते रवाना हो गया।

बुलाकी के राजधानी में बैठने की व्यवस्था क्या हुई कि उसने अपने मृदु व्यवहार और मेहनत से आसपास के दुकानदारों, ठेले रेहड़ी पान वालों से दोस्ती गाँठ ली, ध धा भी धीरे-धीरे चलने लगा, ग्राहकों की संख्या में आहिस्ता आहिस्ता वृद्धि होने लगी। बुलाकी का परिचय क्षेत्र बढ़ने लगा, राजधानी उसे रास आई। महीने दो महीने में सामूहिक घुटन्ना करवाने वालों की भीड़ चली आती थी। बुलाकी के उस्तरे को अपने करतब का भरपूर प्रदर्शन करने का मौका मिलने लगा। उसके अतिरिक्त कैंची का काल और हजामत का हुनर भी फलदायी साबित हो रहा था, लिहाजा राजधानी में बुलाकी प्रसन्न था, आमदनी भी बढ़ती जा रही थी। बुलाकी ने 'डोर टू डोर' सर्विस यहां भी जारी रखी। छुट्टी के दिन वह आसपास के रिहायशी इलाकों में जाकर सेवा प्रदान कर आता था इसी सिलसिले में

उसने विधायक निवास व मंत्री आवासों तक अपनी पहुंच बना ली थी। वहां पर विधायकों, नेताओं, छुटभय्यों, चमचों व क्षेत्र से आए हुए कार्यकर्ताओं, समाज, सेविकाओं, खद्दरधारियों, गुंडे-बदमाशों, मुच्छैल हट्टे-कट्टे विशालकाय महापुरुषों की भीड़-भाड़ व आवाजाही लगी रहती थी। वे लोग, दाढ़ी हजामत बाल बनवाने हेतु बुलाकी की सेवाएं प्राप्त कर लेते थे। इस प्रकार राजधानी में बुलाकी पूरी तौर पर फिट हो चुके थे। राजनैतिक क्षेत्र में भी उनके उस्तरे ने दबदबा बना लिया था। कारोबार भी उसने बढ़ा लिया था। लकड़ी की पक्की दुकान बनाकर उसमें शीशा, कुर्सी, कलेन्डर क्रीम, तैलिए का इंतजाम करके दुकान को 'सैलून' का दर्जा दिलवाने योग्य अहर्तायें प्राप्त कर ली थी। एक दो लड़के भी सहयोगी के तौर पर रख लिये थे। कुल मिलाकर बुलाकी जी राजधानी के सुपरिचित नागरिक बन गए थे, सिर्फ गांव से बच्चों को लाने की देर थी। जमीन के एक टुकड़े पर छोटी-सी कुटिया बनाने की योजना भी उनके दिमाग में आकार लेने लगी थी। इस सारी उन्नति व जमजमाव के चलते बुलाकी को राजधानी में आए हुए आठ दस वर्ष हो गए थे। गांव से कस्बे को कूच करते युवा बुलाकी अब अंधेड़ावस्था में पदार्पण कर चुके थे। बालों में सफेदी आ गई थी, चेहरा प्रौढ़ हो गया था, आंखों में उम्र व अनुभव की झलक नजर आने लगी थी। उस्तरा निरंतर कार्यरत था, आए रोज उस्तरे को राजधानी के अनेकों महापुरुषों के मुंडन करने का सौभाग्य प्राप्त होता जा रहा था।

इसी क्रम में एक रोज बुलाकी के पास कालीदास रोड़ स्थित मंत्री आवासों में तत्काल पहुंचने का आदेश प्राप्त हुआ। हुआ यह था कि माननीय न्याय मंत्री जी की माता का स्वर्गवास हो गया था सो मुंडन हेतु नाई की आवश्यकता थी। बुलाकी से ज्यादा इस काम में सक्षम और कौन हो सकता था। बुलाकी ने तुरंत इस नेक काम में सहयोग देना प्रारंभ कर दिया। माननीय मंत्री जी के मुंडन से पूर्व अनेकों छुटभय्ये, चले-चमचे सहयोगी, शुभचिन्तक मुंडन हेतु प्रस्तुत हो गए। मंत्री जी उनकी वफादारी से प्रसन्न हुए, उनका हृदय पसीज गया।

सेवकों के मुंडन के पश्चात अंत में

मंत्री जी मुंडन हेतु प्रस्तुत हुए। बुलाकी ने उनकी सेवा में अतिरिक्त सावधानी व सफाई से उस्तरा चलाना प्रारंभ किया। नाम व गुण के अनुरूप मंत्री जी का सिर अन्य सिरों की अपेक्षा ज्यादा बड़ा व गोलाकार था, बुलाकी ने अभी एक तिहाई सिर घोटा ही था कि उसे यह सिर पूर्व परिचित लगा, आधा सिर घोटने के पश्चात तो वह अचानक चौक कर कांप सा गया, यह तो वही सिर था जिसकी बदौलत कस्बे में पुलिस के डंडे खाये थे। लेकिन यह कैसे हो सकता है? कहां वह गुंडे बदमाश का सिर और महामंत्री जी का। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मुझसे ही कोई गलती हो रही है! बुलाकी अजीब पेशोपेश में पड़ गया। पर, सिर पहचानने में मुझसे गलती नहीं हो सकती, चाहे कुछ हो जाए, यह सिर सौ फीसदी वही है। बुलाकी डरा, सहमा व आश्चर्यचकित था। किसी तरह इसी मनोदशा में उसने पूरा सिर घोटा, उसके समक्ष वही कस्बे वाला विशाल सिर पूर्ण रूप से साकार हो उठा। डर व भय से बुलाकी का हाथ कांपा और मंत्री जी के कान के पास उस्तरे की हल्की खरोंच सी लगी, मंत्री जी थोड़ा क्रुद्ध हुए उन्होंने पलटकर बुलाकी का चेहरा घूरा, इससे पूर्व कि बड़बड़ाते, झुंझलाते उनकी तीक्ष्ण स्मृति ने बुलाकी को चीन्ह लिया, क्रोध के बदले चेहरे पर आत्मीयता के भाव उभरे। सेवक लोग इस बीच गुस्ताखी के लिए बुलाकी पर बरसने ही वाले थे कि मंत्री जी बोल पड़े, 'अरे भाई नाऊ जी से कोई गलती नहीं हुई है, हम ही सिर हिला दिए थे, सो खरोच लग गई।' इसके साथ ही उन्होंने एक सेवक को हिदायत दे डाली, 'तुरंत एक दूसरा नाई बुला कर इनका भी मुंडन किया जाए, ये अपने गांव जवार के आदमी हैं, ऐसे मौकों पर गांव बिरादरी के लोगों का मुंडन जरूरी होता है, माता जी की आत्मा को शांति मिलेगी।' बुलाकी बड़ी असमंजस की स्थिति में था, उसने सेवक से दूसरा नाई लाने हेतु मना कर दिया, और जिंदगी में पहली बार अपने ही हाथों से अपना मुंडन करने लगा।

डी-2/19, विज्ञान विहार
रायपुर, देहरादून-248008

सुधाकर अदीब

हुआ यूं कि. . .

श्याम बाबू अभी पिछले महीने ही साढ़े-साती के चलते दुर्घटनाग्रस्त हुए हैं। शुरू में तो वह लोगों के सवाल का पूरे उत्साह से जवाब देते रहे। उन्हें भी यह सोचकर पीड़ा में आनंद आता था कि उनके खैरख्वाह उससे कहीं अधिक हैं, जितना वह सोच सकते थे।

लोग आफिस से लौटते समय एक-एक दो-दो करके आते। श्याम बाबू का हाल पूछते। उनकी बाईं टांग पर बंधे प्लास्टर को हमदर्दी से देखते। कभी-कभी उस पर ममताभरा एक कोमल स्पर्श भी फेर देते, मानो वह प्लास्टर को नहीं श्यामबाबू की टांग को ही सहला रहे हों। श्याम बाबू की पत्नी यंत्रवत् आंगतुक मेहमानों को चाय थमा देती।

चार दिन से अब वह भी अभ्यस्त हो चली थीं। जानती थीं. . .श्याम का बखत है. . .इनके दफ्तर वाले आते ही होंगे. . .पूछने-पाछने। सो चाय का पानी चूल्हे पर पांच बजे सायं से ही खौलने लगता। दर्जनों लोग अब तक देख गए थे श्याम बाबू को। रोज़ ही आते थे। अपनी-अपनी फुर्सत से।

चाय की प्याली हाथों में आने तक आंगतुक पूछ बैठते—‘अच्छा तो ये हुआ कैसे?’

और श्याम बाबू तोतारतंत की तरह शुरू हो जाते—‘हुआ क्या? . . .श्याम को आफिस के बाद मैं सब्जीमंडी में सब्जी लेने गया था। मोटरसाइकिल खड़ी करके सब्जी ले रहा था। तभी एक सांड ने एक गाय को दौड़ाया. . .’

‘ओ हो हो हो. . .फिर?’

‘बस फिर क्या था. . .बाजार में भगदड़ मच गई। उसी में ये चोट खा गया।’

बात इतनी-सी नहीं थी। और होती भी तो लोग कहां मानने वाले होते हैं। जब तक वह मरीज से खोद-खोद कर उसकी तकलीफ का इतिहास-भूगोल जान न लें

तब तक यह जाहिर कैसे हो कि वही उसके सबसे बड़े हमदर्द-तीमारदार हैं। चाय की चुस्कियों के बीच वे सवाल पर सवाल दागते—‘तो फिर पैर में चोट कैसे आई?’

‘वो हुआ यूं कि जब सांड ने गाय को दौड़ाया तो गाय जाकर पहले एक साइकिल वाले से भिड़ी। साइकिल वाला चकराकर मेरी मोटरसाइकिल पर गिरा और बस. . .ये हादसा हो गया।’

‘लेकिन आप तो तब तक सब्जी खरीदने लगे थे. . .मोटरसाइकिल पर साइकिल गिरने से आपको चोट कैसे. . .?’

‘अरे नहीं भई!’ श्याम बाबू को कुछ-कुछ झल्लाकर बताना पड़ता—‘मैं तो सब्जीवाली की तरफ उकड़ू बैठा सब्जी ले रहा था। जब भगदड़ मची तो शोर सुनकर आधा खड़ा हुआ। जब तक संभलता वह दुर्घटना घटी और मेरी ही मोटरसाइकिल मेरे पैरों पर गिर पड़ी।’

‘अरे-अरे-अरे. . .तुच्छ-चु-चु। इसका मतलब कि आप भाग ही नहीं पाए?’

‘यही समझ लीजिये।’

‘फिर? . . .?’

‘फिर क्या. . .उस समय तो पता ही नहीं चला. . .लोगों ने मोटरसाइकिल उठाकर खड़ी कर दी। भीड़ में से किसी ने मुझे सहारा दिया। मैं भी खड़ा हो गया। लोगों ने पूछा चोट तो नहीं आई। मैंने कहा कोई खास नहीं। दाहिने पैर से ही किक मारने की मेरी आदत है। एक किक मारते ही मोटरसाइकिल स्टार्ट हो गई। मैं घर चला आया। घर पर उतरते समय बाएं पैर में भारी दर्द हुआ. . .उसके बाद ही पता चला कि. . . ‘श्याम बाबू कुछ-कुछ हांफते से बात ख़तम करना चाहते।

मगर वह जानते थे कि पूछने वाले इतने भर से संतुष्ट होने वाले नहीं थे। उन्हें अपनी उस आदत पर रह रहकर क्रोध आता जिसके अभी तक वह आदी थे। वह यह

कि हर बात को बड़े विस्तार से कहना। यह आदत उनमें उनके बाप से आई थी।

उनके बाप भी जब किसी बात को कहना चाहते तो ढाई किलोमीटर पहले से शुरू होते। भारी-भरकम भूमिका के साथ। उदाहरण के लिये अगर उनको यह कहना हो कि—‘पड़ोस के सिंधी की लड़की पुदीना लेने आती है। जब मांगें तब दे दिया करो।’—इस पर वह पूरा-पूरा किस्सा यों बयान करते—

‘सवेरे-सवेरे मैं सोकर उठा। बाहर बगिया में घास काफ़ी उग आई थी। सोचा साफ़ कर दूं। लैट्रीन महसूस नहीं हो रही थी। तय किया कि आने पर कर लूंगा। अब जो खुरपी खोजने चला तो मिलकर न दे।

अब यही सब बड़ी गंदी आदत है तुम लोगों की। कोई चीज़ ढंग से किसी एक जगह पर नहीं रखते। जूता कहीं तो चप्पल कहीं तो खुरपी कहीं. . .

हां तो खैर! . . .अब जनाब राम-राम करके किसी तरह खुरपी खोज मिली। मैंने पहले बाहर फाटक के बाहर निकलकर देखा। सुबह बस हुई-हुई भर थी। मुहल्ले में दूर-दूर तक सन्नाटा था। लगता था कि सारे घरों के लोग अफ़ीम खाकर सोए पड़े हों। . . . तभी सिंधी की वो छोटी लड़की घर से बाहर निकली। उसने सड़क पर कूड़ा फेंका।

. . .बड़े सवेरे उठ जाते हैं ये लोग। बड़े मेहनती हैं। तभी तो इतनी तरक्की की है इन्ने। पाकिस्तान से कैसे लुटे-पिटे आए थे। अब तो कइयों ने बड़ी-बड़ी दुकानें और कोठियां खड़ी कर ली हैं। पर अपना यही सिंधीवा ना जाने कैसे इतना कमजोर निकला?’

श्याम बाबू को अच्छी तरह याद है कि उनको बाबू जी की बात. . .भला हो उनका अब तो वह स्वर्ग में हैं. . .पूरी सुननी पड़ती थी। अगर एक बार बाबूजी ने कुछ कहना शुरू कर दिया, तो निष्कर्ष तक सुने बगैर सामने वाले की खैर नहीं होती थी।

बात को बीच में 'वाइंड अप' करना उन्हें नहीं आता था। अगर घर का कोई कनिष्ठ सदस्य बात के बीच में सामने से हिला तो उसे बाबूजी का कोपभाजन, अन्यथा रूप में, बनना पड़ सकता था। बाबू जी फिर कई-कई दिन उससे बात करना छोड़ देते थे।

एक बार माता जी ने उन्हें बीच में टोक दिया था तो दो दिन तक घर ही में अनशन पर बैठ गए। पुराने गांधीवादी जो ठहरे। तभी से सब घरवालों ने कान पकड़ लिये थे। बाबू जी के किसी 'टॉपिक' पर शुरू हो जाने पर भले ही सबके-सब अपने कानों में अदृश्य रुझां ठूस लें. . मन-मस्तिष्क का 'स्विच-ऑफ' कर दें. . परंतु प्रत्यक्ष में वह उनके सामने बराबर सिर हिलाते जाते थे।

बाबू जी की कथा चलती रहती—
'... फाटक भेड़कर मैं बगिया में घास निराने लगा। तभी क्या देखता हूँ कि वह सिंधी की लौंडिया फाटक ढकेलकर भीतर आ गयी। फ्राक पहने नहीं सी जान। डरते-डरते पास आकर खड़ी हो गयी। मैं घास निराता रहा। अब बोल न फूटें उसके मुंह से। मैंने पूछा क्या है री? . . उंगली से इशारा करके कहने लगी वो चाहिये। . . मैंने कहा वो क्या? तो सुनकर भाग गई। थोड़ी देर में फिर आई। अपनी मां से पूछवूछ कर आई होगी। उंगली से इशारा किया पुदीने की क्यारी की तरफ। बोली—वो. . .। मैंने कहा कि क्या वो—वो लगा रखी है? . . तब बोली—पू. . दी. . ना। पुदीने का नाम तीन टुकड़ों में बोल सकी वह। रट कर आई होगी. . '

— कहकर बाबू जी हंसने लगे। उनके साथ घर के सब लोग हंस पड़े। फिर बोले—
'पू. . दी. . ना. . पू. . दी. . ना. . .। दो-तीन बार बोली लौंडिया तब मेरी समझ में आया कि अरे यह तो पुदीना मांग रही है। भई दे दिया करो बेचारी को. . जब भी आए।'

इस तरह बाबू जी बात को ख़तम करते।

वही आदत श्याम बाबू में भी. . . उतनी तो नहीं मगर पचास-फ़ीसदी. . फिर भी आ गई।

श्याम बाबू को बिस्तर पर पड़े-पड़े एक हफ़्ता बीत गया। वह खिड़की के बाहर

लाचार हालत में देर तक देखते रहते। दिन भर पड़े-पड़े अख़बार का कोना-कोना चाट डालते। राष्ट्रीय के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय ख़बरों पर भी अपना छूटा हुआ सामान्यज्ञान इन दिनों बढ़ाने में लगे थे वह।

परंतु शाम को दफ़्तर से हर दिन आने वालों का सिलसिला अभी जारी था। हालाँकि आगंतुकों की तादात काफी घट गई थी। फिर भी दो-तीन नए चेहरे रोज़ ही टपक पड़ते और उन्हें अपनी पुरानी कहानी फिर से दोहरानी पड़ती—

'सब्जी मंडी में सांड ने गाय को दौड़ाया. . '

यह प्रसंग वह अपनी याददाश्त में दर्जनों बार सुना चुके थे। मगर खैरख़्वाहों और शुभचिंतकों की अभी तृप्ति नहीं हो सकी थी। ऊबकर एक बार उन्होंने अपने कुछ नवागत सहयोगी जन के सामने आपबीती-बयानी के बजाय एक लंबी सांस खींच ली। इस पर उनकी पत्नी वही किस्सा बयान करने लगीं। फ़र्क सिर्फ़ उन्होंने यह किया कि प्रसंग में 'सांड' शब्द की जगह 'बिजार' का प्रयोग किया, जो सब्जीमंडी में तनहा भागा। उसके सामने से भागती हुई गाय को श्रीमती जी ने लज्जावश गायब कर दिया।

अब बिजार भागा. . सीधा श्याम बाबू की मोटरसाइकिल से टकराया और. . . उनका काम तमाम हो गया। डॉक्टर ने प्लास्टर चढ़ा दिया। बीच के काफी अनावश्यक 'डिटेल्स' श्याम बाबू की सुघर-सुशील और सुंदर पत्नी गोल कर गईं।

श्याम बाबू को पहले तो खीझ हुई कि उनकी कम पढ़ी लिखी पत्नी को ऑफिस के अपरिचित लोगों के बीच किस्सागाई करने की क्या ज़रूरत है? लेकिन बाद में उन्हें रोज़-रोज़ घिसीपिटी बातें दोहराने की यंत्रणा से मुक्ति पाकर खासा सुकून भी हुआ। अब यह ज़िम्मेदारी वह अपनी पत्नी के साथ बराबर से बांटने लगे। लेकिन कुछ ही दिन बाद श्याम बाबू को अपनी भूल का अहसास हुआ। उनके हेड ऑफ़िस का एक जूनियर बाबू मनोहर, जो लड़कियां पटाने में माहिर था, एक दिन उनके घर आ धमका।

श्रीमती जी ने बिजार का किस्सा मनोहर के सामने शुरू किया। उसने फ़ौरन किस्से के बीच में 'भाई साहब' के संबोधन

पर श्याम बाबू की पत्नी से श्याम बाबू के सामने ही प्रतिवाद किया—

'अरे भाभी जी! . . हम तो बहुत छोटे हैं. . आपके देवर जैसे. . ये भाई साब-वाई साब नहीं चलेगा. . मुझे मनोहर ही कहियो।'

श्याम बाबू को एक क्षण को सांप सूंघ गया। मनोहर के जाने के बाद श्याम बाबू ने पत्नी को समझाया कि आइंदा से वह इन बाहर वालों के सामने उसके बारे में कुछ न कहे। सामने भी न पड़े। घंटी बजने पर दरवाज़ा खुद न खोले। बच्चों से खुलवाए। घर का बजट सालों ने चाय पी-पीकर बिगाड़ दिया है। ऑफिस से गाहेबगाहे होने वाली अतिरिक्त आमदनी का जुगाड़ भी इस अपाहिजी में बंद हो चला है। इसलिये अब आने-जाने वालों का चाय-बिस्कुट भी बंद।

श्याम बाबू बिस्तर पर पड़े-पड़े सोचते कि उनकी श्रीमती जी भले ही कम पढ़ी-लिखी हैं, लेकिन देखने में अभी भी काफी अच्छी हैं। इसलिए उन्हें इस तरह इन लुच्चे-लफंगों के सामने इतनी आसानी से नहीं आना चाहिए। उनका सोचना ठीक ही था। मनोहर दुबारा आया। अगले ही दिन। चाय उसे नहीं मिली इस बार। उसने ढिठाई से श्याम बाबू के बेड के कोने से ही आवाज़ लगाई—

'भाभी जी! . . क्या आज चाय नहीं पिलाएंगी?'

श्रीमती जी के हाथ से रसोई में एक बर्तन गिर गया। श्याम बाबू ने मुंह बिगाड़कर कहा—'आज दूध ख़त्म हो गया।'

मनोहर थोड़ी देर में चला गया। अगले दिन शाम को फिर आया। इस बार उसके हाथ में दूध का एक पैकेट भी था। बोला—'हैं-हैं-हैं-हैं. . भाई साब! . . मैंने सोचा आप तो अब निकल पाते नहीं। भाभी जी बेचारी कहां तक बाहर निकलेंगी। इसलिये चाय के लिये दूध मैं ही. . '

श्याम बाबू को लगा जैसे उनके सारे बदन में एकाएक लाल चींटियां चिपक गई हों और सारी की सारी उन्हें एकसाथ काटने लगी हों। . . उन्हें यह भी लगा कि उनका बिस्तर अचानक जैसे भीष्म पितामह की शरशैय्या में तब्दील हो गया हो।

मनोज श्रीवास्तव

गंगा-जमुना आख्यान

गंगा गर्भवती हो गई। वह रोज सिर झुकाए घर से निकलती थी। बाड़ी लोशनों और रोगनों से परहेज करते हुए, जवानी की भभक को दबाए हुए, जमीन पर निगाहें गड़ाए हुए और वक्ष के उभार को बमुश्किल ढंकते हुए वह शराफत की बुत बनी फिरती थी।

वह महानगर की किसी मल्टीनेशनल कंपनी में स्टेनो थी। दिलचस्प बात यह थी कि वह बेनागा मंदिरों में जाकर घंटों-घंटों ईश-वंदना में तल्लीन रहती थी। उसकी सादगी और गंभीर चाल-चलन को देख, किसी को भी उससे किसी ओछे बर्ताव करने या आसपास फटकने की हिम्मत नहीं होती थी। क्या मजाल कि कोई कुलीग उसकी तरफ गलत निगाह से देखने की जुर्रत करे? उसकी धारदार नजरों की तरे से अच्छे-अच्छों को पसीना आ जाता था।

चुनांचे, गंगा कुआरेपन में ही गर्भवती हो गई। लोग-बाग ताज्जुब के सैलाब में डूब गए। उसकी जान-हाजिर सहेलियां उससे कतराने लगीं। वह बात-बात में काजल के जिस उन्मत्त सेक्स की खिल्ली उड़ाती थीं, उसी ने उसके नेक नाम पर खुलेआम कालिख पोती। काजल अपने बास, इंचारज और सहकर्मियों के साथ अंतरंग होकर भी साध्वी होने के दर्प में झूम रही थी। कुआरेपन में उसने अपने पाक-साफ चरित्र का दस्तावेज जो प्रस्तुत किया था! जैसाकि बताया जाता है, वह अपने संयम और शुचिता के बल पर बेड से लेकर पेट तक साफ-सुथरी रही। लिहाजा, वह किस-किस की आहों और धड़कनों की सम्राज्ञी नहीं बनी?

उसने गली-कूचों में अपने कूल्हे हिलाए, गोल-मटोल नितंब मटकाए, बाजारों और बसों में जिस्म-मर्दन किया। बहरहाल, वह गंगा की तरह कभी कर्लकित नहीं हुई। इज्जतदार जिंदगी जीने के लिए उसने अपनी कुंवारी कोख को निराप रखा। दूरदर्शन और रेडियो के विज्ञापनों, एड्स से बचाव के

तौर-तरीकों, आधुनिकतम विधियों और मुफ्त वितरित गर्भ-निरोधकों का भरपूर फायदा उठाया। कभी-कभी उसे शुबहा भी हुआ कि दोस्तों के साथ शिष्टाचार के चलते उससे कोई गलती तो नहीं हो गई है। तब, वह किसी गाइनिकालोजिस्ट के पास जाती जो उसका ट्रीटमेंट करते हुए उसे साफ-सुथरी होने या बने रहने का क्लीन चिट दे देती।

गंगा भी हैरत में! आखिर, वह पेट से हुई कैसे? बाप ने उसे उसके कुकर्म के लिए बेरहमी से पीटा। मां ने खानदानी पुरखों की शराफत का नगाड़ा बजा-बजा, उसे भरपूर धिक्कारा। भाई-बहनों ने भी खूब कोसा। लेकिन, वह उन्हें कुछ नहीं बता सकी। बताए भी तो कैसे बताए? उसे तो खुद कुछ पता नहीं। वह इतने बड़े हादसे से कैसे अनजान रही? मर्दों से दूरी बनाए रखना तो उसकी आदत थी। बसों में भी कोई मनचला उसकी गुरेर और झिड़क के कारण उससे फासला ही बनाए रखता था। बस, उसे इतना याद है कि बसों में चढ़ते-उतरते हुए उसका बदन कभी-कभार पुरुषों से रगड़ खा जाया करता था। लेकिन, किसी मामूली रगड़ से ही वह चिनगारी कैसे फूटी कि उसके जीवन में आग लग गई?

गंगा तो बॉस के कमरे में उस चेयर या सोफे पर भी कभी नहीं बैठी जिस पर बैठकर स्टेनो काजल बॉस से घंटों-घंटों डिक्टेट हुआ करती थी। डिक्टेशन के दौरान काजल पसीने से तर-बतर हो जाती थी। शलवार सिकुड़कर उटंग हो जाती थी। सलीकेदार समीज पर बेतहाशा सिलवटें उभर आती थीं। भीतर से बाहर तक सैकड़ों हड्डियां अपनी जगह से हिल जाती थीं मांस पेशियां ढीली पड़ जाती थीं।

लेकिन गंगा के साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बड़ी ऐहतियात बरती थी उसने जिस कारण उसे इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा। उससे जूनियर चंपा असिस्टेंट मैनेजर बन गई थी। पर, गंगा तो स्टेनो से

आगे प्रमोट नहीं हो पाई। प्रमोशन हो भी कैसे? इसके लिए उसमें जरूरी मेरिट नहीं थी। पिछले सात सालों से सभी लेडीज स्टाफ को दर्जनों इन्क्रीमेंट मिली। पर, उसे तो दो-चार ही मिल पाई।

गंगा मार खाई। अंधकूप कमरे में कैद रही। भूखी-प्यासी रही। लेकिन, उसका हाल उतना बेहाल नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। इतना पर भी वह रोई नहीं, सोई नहीं, खोई नहीं। उसका दिमाग बीते चंद माहों में उस काले साए को ढूंढता रहा, जिसने उसके साथ मुंह काला किया और उसे इस मुसीबत में डाल दिया। उसका मुंह आश्चर्य से खुला रहा। आंखें पथरा गईं और नींद से कोसों दूर रहीं। जीभ बिलगोह की तरह तलवे से चिपकी रही और हल्की सी चीख को मुंह से बाहर नहीं धकेल सकी। वह इसी उधेड़बुन में पिछली छोटी-मोटी घटनाओं को याद करती रही कि वह बेवजह पेट से कैसे हो गई। महानगर की भीड़-भाड़ में कुंवारीयां अपने अंग-प्रत्यंग का मर्दन कराकर भी कुंवारीयां ही बनी रहती हैं। बारह से बयालीस तक बेखौफ, बेदाग जिंदगी जीती हैं। पर, वह सत्रह से सत्ताईस के बीच ही दगही कैसे हो गई?

उसके बाप को अपनी बदनामी से उतना गुरेज नहीं था, जितना उसे उस पुरुष से डाह थी जिसका शुक्राणु उसकी बेटी के गर्भ में एक अनचाहे जीव का जनक था। उसे बेहद अफसोस था कि उसकी गंगा इतनी नासमझ कैसे निकली। उसका नाम तो महानगर की सबसे बेवकूफ और गंवार लड़कियों में शुमार हो गया। आखिर, कौन-सी बहू, बेटी या महरी इतनी नासमझ होगी जिसे इतनी समझ न हो कि वह विभिन्न सामाजिक मेल-मिलाप के दौरान जरूरी ऐहतियात बरत सके? उसे इस माहौल में सब कुछ जानने, समझने और कर गुजरने की खुली छूट है। उसे ऐहतियाती साधनों के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए

ज्यादा जद्दोजहद करने की भी जरूरत नहीं है। आंखें फाड़-फाड़कर देखने, यार-दोस्तों के आगे सकुचाते हुए मुंह खोलने और कान पर ज्यादा जोर देने की भी जरूरत नहीं है। बस, तनिक सावधानी बरतनी पड़ती है। गंगा की मां उसे बेनागा सीख देती रहती थी कि से अपने बाँस और कुलीग के साथ बात-व्यवहार में तनिक सावधानी बरतनी चाहिए और दीवारों, बस स्टैंड की शेडों आदि पर लिखे विज्ञापनों का भरपूर फायदा उठाना चाहिए। हिंदुस्तानी लोकतंत्र भी गंगा जैसी लड़कियों को सावधान करने के लिए सदा ही मुस्तैद रहा है। जब तक सेक्स-एजुकेशन पाठशालाओं में पूरी तरह लागू नहीं हो जाता, वह बच्चों को सेफ सेक्स के तरीकों की मुनादी करता रहेगा।

लोकतंत्र के इस समानवतावादी परिवेश में औरत-मर्द को, हर पहर और हर डगर पर पूरी आजादी का मजा लेने का हक है। नंगे नाचने, खुलेआम प्रेमालाप करने और सेक्स विषयों पर बौद्धिक वाद-विवाद करके स्वयं को पश्चिमीवासियों के बराबर खड़ा करने का उन्हें लाइसेंस देकर इस लोकतंत्र ने खासी मकबूलियत हासिल की है। सो, वे मूड़ी-पूँछ समेत तृप्त हो रहे हैं। इसके चलते दिल्ली के मधुबनों अर्थात् पार्कों में रमने-बसने वाली बुद्ध, महावीर, शिवाजी, गांधी, सुभार आदि की आत्माएं (जिनके नाम पर इन पार्कों के नाम रखे गए हैं) भी ऐसे मनोरम दृश्यों को देखकर धन्य हो रही हैं।

औरत-मर्दों में बराबरी के मसले पर टकराहट होनी मामूली-सी बात है। इसके नतीजे आज तक बुरे नहीं निकले हैं देश में इतनी बड़ी जनसंख के फलने-फूलने और बढ़ने का भी यही कारण है। इन टकराहटों के कारण वे कपड़ों पर लगी गर्द को झाड़ू-पोंछकर और सीलन को धूप दिखाकर ही बिल्कुल निश्चित हो जाते हैं। घर पहुंचकर डिनर करते हैं और बेड पर पसरकर, परस्पर टांगें फंसाकर, उलझाकर टी.वी. के रोमांस में खो जाते हैं और अगले दिन आफिस में सीरियलों के पात्रों के बीच फसादों को सुलझाने के लिए बड़े चिंतित नजर आते हैं। बहरहाल, वे टी.वी. के ख्वाबगाह से उतरकर हमबिस्तर होने वाली सोनपरियों और अप्सराओं के साथ रास-अभिसार करते हैं। सूरज के

सिर तक चढ़ने तक जब वे सपनों की सोन-सीढ़ियों से उतरकर अलसाते हुए नींद को बाँय करते हैं तो वे बौखला उठते हैं। क्योंकि घर की औरतों की पिचपिचाई आंखों से रू-ब-रू होना और उनकी बसियाई बदबूदार जम्हाइयों का नाखुशगवार वातावरण उन्हें कतई रास नहीं आता।

चुनांचे, गंगा के बाप की बौखलाहट किसी ऐसी-वैसी वजह से नहीं थी। उसे गंगा न तो कभी अंगड़ाई लेकर बदन से जवानी फोड़ती नजर आई, न ही कभी आईने के सामने पहर के पहर गुजरने तक भौंहे, आंखें, होठ, गाल, बाल आदि पर रंग-रोगन करती या संवारती नजर आई। उसने महानगर के आदर्श बापों की तरह गंगा को बखूबी जांचा-परखा था। लेकिन, उसमें मर्दों के प्रति कोई खास खिंचाव दिखाई नहीं दिया। उसे बड़ा इत्मिनान हुआ कि गंगा के पांव कभी फिसलेंगे नहीं। इसलिए उसने उसे ट्यूशन पढ़ने और हिल स्टेशनों पर जाकर पिकनिक मनाने की खुली छूट दे रखी थी। उसे यह भी सुकून था कि गंगा जहीन नहीं है। उसे लेक्चरों और ट्यूटों से आए दिन यह शिकायत मिलती रहती थी कि गंगा पढ़ने-लिखने में बेहद कमजोर है। सो, उसने इस बात के लिए गंगा को कभी कोई सख्त नसीहत भी नहीं दी। गंगा तो अपने टीचरों से स्कूली सबक सीखने के अलावा किसी अन्य ढंग से उनसे कृतार्थ होने से बेहद कतराती थी। न तो वह कभी उनसे नोट्स लेने उनके घर गई, न ही किसी कठिन सवाल का जवाब पूछने उनके चैंबरों में दस्तक दिया। दूसरी लड़कियां बड़ी जहीन थीं वे ट्यूटों के स्कूटर के पीछे बैठ कर उनके घर जाती थीं। क्लासिज खत्म होने के बाद शाम को लेक्चरों के बिल्कुल प्राइवेट रूम में कठिन सबक पर दोबारा रियाज करने जाती थीं। कोर्स से अलग और क्लास से बाहर, प्रैक्टिकल पाठ पढ़ती थीं और रात-दिन नोट्स तैयार करती-कराती थीं। उनकी मेधा से प्रभावित होकर उनके लेक्चरर उन्हें प्राइवेट खत लिखा करते थे और खतों में भी उनके गाइड बने रहते थे। लिहाजा, गंगा का शिक्षण इस स्तर तक कभी नहीं पहुंच सका। चूंकि दूसरी लड़कियां छात्र जीवन में और छात्र जीवन के बाहर

मेहनतकश छात्राएं थीं, इसलिए उन्हें जहीन घोषित कर दिया गया था। अपने शिक्षकों से बेहतर तालमेल के कारण वे केवल जहीन ही नहीं बनीं, बल्कि जल्दी ही नौकरीशुदा बनकर स्मार्ट बासों की चहेती स्टेनों और अकूत जायदाद वाले घरानों की बहुएं भी बनीं। बहरहाल, कमबख्त, कमअक्ल गंगा कुछ भी नहीं बन पाई, सिवाय कुंवारी मां बनने के।

गंगा के क्लासमेटों और लेक्चररों ने उसे भरसक निचोड़कर रस निकालने की कोशिश की। लेकिन, वह उनके लिए रस का एक कतरा भी नहीं टपका सकी। रसहीन होने के कारण, वह बहुत धीरे-धीरे जवान हुई और हुई भी तो नाममात्र की। बिचारा समय भी जोर लगा-लगाकर थक गया; लेकिन उसे ठीक से जवान नहीं बना सका। गंगा ने भी ऐन वक्त अर्थात् महानगर के टाइम के अनुसार साढ़े ग्यारह साल में जवान न होकर जवानी को खूब ठेंगा दिखाया। लिहाजा, वह जवान भी ऐसे हुई कि पास-पड़ोस के वयस्क-अवयस्क मर्दों को इसकी भनक तक नहीं लगी। उसके बाप और भाई भी बेखबर रहे। उससे दस साल छोटी बहन जमुना पिछले कई सालों से जवान हो रही है और दन्त्य कथाएं रचने की क्षमता रखने वाले मजनुओं की एक जमात तैयार कर रही है। उसमें ऐसे बेशुमार लच्छन हैं कि वह सदाबहार फिल्मी तारिकाओं की तरह अगले चालीस साल तक जवान ही होती रहेगी और बूढ़ी होते-होते भी वह न सत्रह से ऊपर रहेगी न सोलह से कम। क्लबों और पार्टियों में उसकी सदाबहार हुस्न और शबाब की चर्चाएं हमेशा गरम रहेंगी।

फिलहाल, जमुना अपने परिवार, पड़ोस, कालेज, टीचर, ब्वायफ्रेंड सभी से अंतरंग है। वे उसे तारीफों के कुतुबमीनार पर बैठाते हैं। पर, उसके पांव कभी नहीं फिसलते। वह मधुबनों में बेमिसाल ऐहतियात बरतती है। टाकीजों के अंधे कोनों में ब्वायफ्रेंडों से खूब पंजे लड़ाती है, जिस्मानी ताकत की आजमाइश करती है और धूप के उजाले में दातों, उंगलियों और पंजों के निशान को बहाने-बहाने से छिपा लेती है। वह कालेज का रास्ता भूलकर पालिका बाजार, कर्नाट सर्कस आदि के इर्द-गिर्द सीढ़ियों के किनारे, पार्कों के

चारों ओर, लौह रेलिंगों पर बैठकर दूरदराज से आए, थके-मांदे पर्यटकों को अपनी आंखों के रास्ते अपने दिल के आरामबाग में सैर कराती है। वहां अपने तबाहकुन इशारों से उन्हें प्रेम-पाठ का जरूरी सबक सिखाती है।

बेशक! जमुना अपने बाप की परख पर एकदम खरी उतरी है। आजकल उसका मुंहबोला भाई और उसके दोस्त भी उसे जी-भरकर परख रहे हैं। इन परखों पर खरी उतरने के कारण ही जब वह साढ़े दस साल की थी तो उसे 'मैडम' के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

यू तो 'मैडम' बनने के पहले चुनिंदा हुनर का होना जरूरी है; लेकिन, अल्पायु में 'मैडम' से नवाजे जाने पर इस उपाधि की महिमा को वहन करने की योग्यता जमुना जैसी जहीन लड़कियों में खुद-ब-खुद आ जाती है। इसके संबोधन भर से बालिका का मन इतना प्रौढ़ हो जाता है कि उसका तालमेल किसी भी पुरुष के संग बैठ सकता है। उसके तन की कलियां फूट-फूटकर खिलने लगती हैं और खुशबू बिखरने लगती है। आधुनिक सौंदर्यवर्धक रसायन-अवलेह इन फूलों के रंग-रूप-गंध के विकास में सोने में सुहागे का काम करते हैं। लिहाजा, जब जमुना मैडम को कोई अनजान मर्द 'सिस्टर' या 'बहनजी' के संबोधन से पुकारता है तो उसका रंग-रूप-गंध छुई-मुई की भांति मलिन हो जाता है। वह उस अभद्र और अशिष्ट पुरुष को दंडित करने के लिए ऐसे सरेआम मुंह बिचकाती है जैसे कि वह किसी निग्रो के रू-ब-रू हुई हो। वैसे, उसे उसको 'बिहारी' और 'पूरबिया' कहकर ही संतोष करना पड़ता है और अपनी हिकारत का इजहार करना पड़ता है। इस तरह वह बिहार को असमय देश-निकाला देकर अपनी राष्ट्रभक्ति का भी काबिले-तारीफ परिचय देती है और अपने व्यक्तित्व को और आकर्षक बना देती है।

इन जैसी मुखर और संवेदनशील बाला के लिए इस महानगर का कोना-कोना, चप्पा-चप्पा प्रेरणादायक रहा है। वह बसों में बजने वाले कर्ण-स्फोटक रैप-पॉप गीत-संगीत में प्रवाहित भावों की लय पर आहें भरने वाले पुरुषों के मन के रहस्यों को भली-भांति समझती रही है। इन्होंने उस गीत-संगीत की

तर्ज पर सार्वजनिक स्थलों पर भावी ब्वाय फ्रेंडों से आंखें चार करके न केवल हृदय के दुर्गम क्षेत्रों के जज्बातों का इजहार किया है बल्कि इसी तरह जिंदगी की यादगार योजनाएं भी बनाई हैं और उन्हें कार्यान्वित किया है।

जो बाला मन-कर्म-वचन से हिंदुस्तानियत प्रकट करने वाले पुरुष को देखकर फिसकारी न मारे, उसे जमुना मैडम जैसी बहिर्मुखी प्रतिभा का धनी नहीं माना जा सकता। उसके उम्र से पहले जवान होने का कारण भी यही है। वर्ना, इस महानगर की बच्चियां तो दीवारों पर लगे पोस्टरों को देखकर ही जवान होती हैं। यहां दीवारों से ही रज टपकता है जो उनकी तथाकथित झीलनुमा आंखों के रास्ते शरीर की निहायत जरूरी पेशियों और बोटियों में स्रावित होकर उन्हें असमय पुलकित-पल्लवित करता है। इस रज की आंच में उनकी बोटी-बोटी मक्के के लावे की तरह फूटकर निखर जाती है। नतीजतन, इस निखार-प्रक्रिया में उन्हें उड़न-योग्य हल्केपन का अहसास होता है। इस तरह वे बेजान निगाहों की मार से भी फुदकने और कुलांचे भरने लगती हैं। उसे 'कुछ-कुछ' होने लगता है।

इस अवस्था को बाअदम 'प्री-मैच्युरिटी' कहते हैं जिसे तपस्वियों में मोक्ष और निर्वाण प्राप्त होने जैसा माना जाता है। इसकी कुछ विलक्षणताएं होती हैं जिनसे जमुना मैडम का व्यक्तित्व समूलतः आत्मसात है। वह उम्र, अवस्था, पद आदि की तुच्छ सीमाएं तोड़, जाति-धर्म के बंधन काट, लोगों में ऐसे रच-बस गई है जैसेकि कण-कण में भगवान। कच्ची उम्र में ही उन्हें पक्की उम्र वालों को शह देने की हैरतअंगेज, महारत हासिल हो चुकी है। वह जिस्म और जान को दांव पर लगाने से पीछे नहीं हटती। फिजूल संकोच, लज्जा, शुचिता आदि के फेर में भी नहीं पड़ती। अंग्रेजी के शब्दों को टॉफी की तरह चुबलाती हैं और इसके भाव-प्रधान मुहावरों को चुईगम की तरह कचकती हैं। सादी, दाग, फैज़, फिराक की कचोटने-कसकने वाली शोरे-शायरी से मासूम दिलों पर अपनी चोट-खाई संजीदगी का रोब जताकर छैल-छबीलों के दिल पर काबिज होती हैं। उन्हें आशिकी, जो अष्टयोग से भी ज्यादा कठिन है, के मकड़जाल में फंसाती हैं।

गौरतलब है कि उनके लफ्जों में भूतपूर्व लखनउवा शाहजादियों की उर्दू-मिश्रित कूक है जिससे वह जन-जन के ख्यालों की मलिका बनी हैं। उनकी चकरधिन्नी करती आंखों की पुतलियों में भक-भक करती द्यूब लाइटों जैसी चपलता है। लहराती भौंहों में सागरीय ज्वार-भाटों की मारक क्षमता है। जीभ-लिसोढ़ते होठों पर किसी अकथनीय प्यास के हमेशा बने रहने और किसी भी शीतल और गर्म वस्तु से न बुझने की कशिश है।

आजकल मैडम, 'जमुना' के बजाए 'जुम्मी' के नाम से लोकप्रिय हो चली हैं। वैसे, उनके कुछ रिटायर्ड और गैर-रिटायर्ड चहेते उन्हें प्यार से 'चुम्मी' कहकर भी पुकारते हैं। लेकिन, वह इसका कभी बुरा नहीं मानती हैं। बल्कि खिसियायी मुस्कराहट से उनका स्वागत ही करती हैं। लिहाजा, चुम्मी मैडम इतनी जल्दी मुखर-मैच्युर कैसे हुई-इस रहस्य का खुलासा करना गागर में सागर भरने जैसा दुष्कर है। उनके हवाई चुंबन कैद करने, अंकुशमारी की रोमांटिक भाषा समझने और गलबहियां खेलने वाले एक पितृ-मित्र चहेते ने उनके बारे में कुछ जानकारियां किस्तवार दी हैं। इन्हें मैं कमोवेश एकमुश्त देना चाहता हूं। अगर इस जिम्मेदारी के निर्वाह में कोई कमी या भूलचूक रह जाती है जो मेरे लिए घातक भी साबित हो सकती है तो मैं चुम्मी मैडम और उनके प्रौढ़-अप्रौढ़ खूंखार चहेतों से पहले ही माफी मांग रहा हूं। मैं ऐसी एड़ी-चोटी की कोशिश करूंगा कि मैं जो कुछ भी कहूं, सच कहूं और सच के सिवाय कुछ भी नहीं कहूं।

मैडम को पहले-पहल ऐंद्रिक रोमांच तब हुआ था जबकि वह अपनी सीनियरों के नक्शे-कदम पर लिपट लेकर एक बांके-मनचले के स्कूटर पर स्कूल की ओर मार्च कर रही थीं और उनके स्कूटरगामी चहेतों के कई कतार उनका अनुगमन कर रहे थे ऐसे मनचले अपनी कुशल डाइविंग के बल पर उनके साथ हार्ट-एक्सचेंज के फन में माहिर होते हैं। वे 'टच ऐट फर्स्ट मीटिंग' (शेक्सपीयर का 'लव ऐट फर्स्ट साइट') जो प्रेम की एक घिसी-पिटी परंपरा है, चलन से बाहर हो चुका है। नई पीढ़ी इस परंपरा से बाज आ गई है क्योंकि वे प्रथम

दृष्ट्या प्रेम तो रोज कई-कई बार करते हैं जिसे निभा पाना आज की फास्ट लाइफ में संभव नहीं है) को मूर्त रूप देने के लिए लिफ्टार्थिन को उत्तल स्पीड ब्रेकरों, अप्रत्याशित ब्रेकों, औचक रेड लाइटों आदि के बदौलत इस तरह झटके देते हैं कि दोनों के वक्ष और पीठ परस्पर मर्दन करते हैं। ऐसे ही प्रथम मर्दन से चुम्मी मैडल मर्मस्थल तक आहत हुई थीं। तब से उनकी देह में इतनी अबाध छुअन पिपासा जगी है कि वह हजारों लिफ्ट लेने के बाद भी कुछ पल पहले तक अनबुझी रही हैं। अभी चंद मिनटों पहले मैं उनसे मिलकर आया हूँ जबकि वह बिपासा वसु द्वारा जॉन अब्राहम को अथक बार-बार छूने के अंदाज में मेरे शरीर के हर हिस्से को बुरी तरह टटोलने की असफल कोशिश कर रही थीं।

लिफ्ट देने की यह संस्कृति हमारे पौराणिक साहचर्य, समूहचरता, सहयोग आदि की भावनाओं से अनुप्राणित है। इसके कुछेक दृष्टांत भी हैं। वाल्मीकि ने सीता मइया को एक बड़ी शिष्ट लिफ्ट दी थी। स्त्रियां भी लिफ्ट परंपरा का निर्वाह करती रही हैं (यद्यपि यह परंपरा पुरुषों के बढ़ते अहंकार के कारण अप्रचलित है)। मसलन, शकुंतला ने दुर्गम जंगलों में दुष्यंत को लिफ्ट दी थी। उनके लिफ्ट देने के परिणाम भी कमोवेश सुपरिणामी रहे हैं। उन्हें भरत जैसी भारतीय संतान को अपनी कोख से उपजाने का श्रेय मिला; हालांकि इस संतान को वैधता प्रदान करने के लिए उन्हें दुष्यंत की पत्नी होने का अहसास बार-बार दिलाना पड़ा था। लिहाजा, अगर दुष्यंत के मछली के पेट से अपनी अंगूठी न मिलती जिसे उन्होंने शकुंतला को प्रेम-चिह्न के रूप में दिया था तो शकुंतला भी उन्हें बतौर पत्नी याद न आती। ऐसे में भरत अवैध संतान घोषित होकर, कोई असामाजिक प्राणी होता और तब हमारे देश का नाम 'भरत' ('भरत' से भारत) न होकर न जाने क्या होता?

अस्तु, हमें बेहद फख है कि पुरुष वर्ग लिफ्ट देने के प्रति अत्यंत जागरूक बना हुआ है। यह जागरूकता अब टोलों, गांवों और छोटे-मोटे कस्बों में भी महामारी की तरह फैल रही है। बहरहाल, बालिका विद्यालयों और महाविद्यालयों तथा

महिला-प्रधान संस्थाओं के इर्द-गिर्द बहुतेरे पुरुषों को भनभनाते देखा जा सकता है। यहां उनके संवेदनशील वाहन उसी तरह धीमी गति से चलने लगते हैं जिस तरह विष्णुवाहन गीध अपने स्वामी के भक्तों की भावनाएं भांपकर धीरे-धीरे जमीन पर उतरने लगते हैं।

सो, चुम्मी मैडम ने बड़े नेम-धरम से लिफ्टदाताओं को कृतार्थ करते हुए, क्षणभंगुर गर्लफ्रेंड बनकर होटलों-रेस्तराओं और सुविख्यात मधुबनों में उनके साथ रास-विहार किया है। उम्मीद है कि पचास तक वह इसी प्रकार की जिंदगी में मस्त-व्यस्त रहेंगी। उसके बाद वह अपनी उन सीनियरों के नक्शे-कदम पर अमल करेंगी जिन्होंने सब्जी में नमक और खीर में चीनी के कम या अधिक होने जैसे गंभीर विवादों की परिणति तलाक में होने तक आखिरकार, पत्नी बनने का ठेका ले ही लिया है। इस तरह जुम्मी मैडम ने असंख्य लिफ्टदाता मर्दों को पुण्य का भागीदार बनाते हुए स्कूटर से मैच्युर होना शुरू किया और अपनी सीनियरों की भांति निषिद्ध बेलाओं में दिल्ली विहार करके मैच्युरिटी की पराकाष्ठा को छुआ है। यह बात स्मरणीय है कि मैच्युर होने की लालसा रखने वाली कमसिन लड़कियां दिल्ली विहार करके ही पूर्ण स्त्रीत्व को प्राप्त होती हैं और सार्वजनिक रूप से भद्र महिला के रूप में सम्मान-संबोधन का पात्र बनती हैं। हरे-भरे मैदानों में आलिंगनरत प्रेमियों को जी-भर सांगोपांग निहारकर उनके भीतर जो उमंग पैदा होती है, उससे उन्हें यह अहसास होने लगता है कि उनके भीतर की औरत अंगड़ाई लेने लगी है और अब वह बाहर मूर्त रूप में प्रकट होकर जिंदगी को सर्वांगीण भोगने वाली है।

चुनांचे, मैडम ने 'डेटिंग' के माध्यम से बच्चों से लेकर प्रौढ़-अप्रौढ़ पुरुषों तक प्रेम के रोमानी भाव का संचार किया है। उनके साथ परस्पर पंजों को जकड़कर, डेटिंग के सिद्धांत के अनुसार कदम से कदम मिलाकर दौड़ते हुए पंजों पर उंगलियों के दबाव और हथेलियों के आपसी मसाज से प्रेम-तरंगों, प्रेम के भौतिक-अभौतिक उत्तेजनाओं और इसके मुखर-दमित भावों-अनुभावों के व्यक्त करने की एक नई

विधा का सूत्रपात किया है। उनके साथ जागिंग करते समय परस्पर बाजू-मर्दन करना और जानबूझकर उलझकर आलिंगनबद्ध गिर जाना, होठों को प्रकंपित-प्रसंकुचित कर अकथनीय इरादे उद्घाटित करना, एक-दूसरे की आंखों की तथाकथित सुरमई झीलों में डूबते-उतरते हुए भौंहों की प्रत्यंचा को मानों तक खींच तान कर भावनाओं के तल पर गुमसुम बैठी गुप्त इच्छाओं को समझना आदि जैसी योग-साधनाओं को मैडम ने बड़ी मेहनत-मशक्कत से सीखा है। बेशक! इतनी छोटी उम्र में स्त्री-पुरुष के बीच के गूढ़ रहस्यों को उस सीमा-रेखा तक जानकर जहां तक कोई भी व्यक्ति किसी भी काल या देश में नहीं जान पाएगा, मैडम ने मानव-दुर्लभ प्रचंड क्षमताओं और प्रखर बुद्धि का परिचय दिया है।

चुम्मी मैडम दिल्ली के संध्या विहार में नानाविध कद-काठी वालों की सहचरी रही हैं। समूची दिल्ली ने उन्हें मदन-मस्त-मोदक कंदराओं, हरे-भरे लॉनों, वृक्षों की छायाओं आदि में जाने-अनजाने पुरुषों के साथ रास-अभिसार करते देखा है। इस तरह उनके द्वारा रचित प्रेम-मिथकों ने राधा-कृष्ण से संबंधित प्रेम-प्रसंगों वाले मिथकों को बिल्कुल धूमिल कर दिया है। लोगों को लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, ऐंटोनी-क्लियोपेट्रा जैसे प्रख्यात पौराणिक प्रेमियों की घिसी-पिटी कथाओं को भूलने के लिए मजबूर कर दिया है। क्योंकि उनके वैरायटीदार प्रेम-प्रपंच में नानाविध गंधर्व कलाओं और इंद्र की अप्सराओं की होश-चूसक अदाओं का जो पुट मिलता है, उसका दृष्टांत पौराणिक प्रेमियों में कतई नहीं मिलता है। हजारों साल पहले किसी वात्स्यायन ने अपने भविष्यदर्शी चक्षुओं से चुम्मी मैडम की प्रेम-पगी छवियों और उनकी प्रेम-कलाओं को देख लिया था जिसका अत्यंत चित्रोपम और व्यावहारिक निरूपण अपनी महान कृति 'कामसूत्र' में किया है। इसीलिए, चुम्मी मैडम में हजारों वात्स्यायन पैदा करने और लाखों 'कामसूत्र' रचने की क्षमता विद्यमान है।

चुम्मी मैडम के पित्र-मित्र बताते हैं कि सेक्स एजुकेशन के प्रचार-प्रसार में उनके महती अनुभवों का लाभ उठाकर

समूचे राष्ट्र को उनका ऋणी बनाया जा सकता है। उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियों से समस्त भारतवासियों को फायदा पहुंचाया जा सकता है। सो, उनके पित्र-मित्र महोदय एक सेक्स युनिवर्सिटी खोलने की महत्वाकांक्षी योजना बना रहे हैं। इस युनिवर्सिटी में सेक्स लेबोरेटरी, भारी संख्या में क्लासिज, लाइब्रेरी, प्रैक्टिकल डिपार्टमेंट, रिसर्च विंग, सेमीनार हाल, हास्टल, प्रोफेसर्स रेजिडेंस आदि सभी होंगे। उन्होंने अपना प्रस्ताव शिक्षा विभाग, गृह मंत्रालय को भेज दिया है जिसमें चुम्मी मैडम की उपलब्धियों की विशद चर्चा करते हुए उन्हें सेक्स युनिवर्सिटी का पहला और आमरण वाइस चांसलर बनाने की वकालत की गई है। लिहाजा, विश्व में इस अद्वितीय युनिवर्सिटी की भारत में अविलंब स्थापना के लिए देश-विदेश के बड़े-बड़े धन-सेठों से भारी-भरकम अनुदान प्राप्त हो रहे हैं। स्वयंसेवी संगठन हर प्रकार से अपनी निःशुल्क सेवा प्रदान करने के लिए सहर्ष आगे आ रहे हैं। कतिपय मल्टीनेशनल कंपनियां भी इसके आद्योपांत विकास की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने को तैयार हैं। चूंकि इस संस्था को मिलने वाली व्यापक लोकप्रियता का पूर्वाभास हमारी सरकार को मिल गया है और इसके बड़े बाजार के बारे में भी उसे देशवासियों का रुझान पहले से पता चल गया है, इसलिए वह लगे हाथ देशभर के स्कूलों और कालेजों में सेक्स एजुकेशन तत्काल लागू करने पर आमादा हैं। कुछ राज्यों में तो इसे लागू भी कर दिया गया है। ऐसा अंदेसा है कि दूसरी सेक्स युनिवर्सिटी की स्थापना स्वयं सरकार करने जा रही है और वह चुम्मी मैडम की कृपापात्र बनने के लिए सारे हथकंडे अपना रही है। वह अपने अफसरों को उसके पास भेजकर, उसका खुशामद कर रही है और उसे हर संभव प्रलोभन दे रही है ताकि वह उसे अपनी युनिवर्सिटी का वाइस चांसलर अप्वाइंट कर सके।

यह बड़ी दिलचस्प बात है कि गंगा की नामूसी ने उसकी महान बहन (मैं यहां उन्हें परिस्थितिवश सम्मानपूर्वक 'मैडम' संबोधित न करने की गुस्ताखी के लिए माफीनामे की फरियाद करता हूं) के एकदम विपरीत व्यक्तित्व को हमारे सामने उजागर

किया है। उनसे तो सभी जीव-अजीव मन-कर्म-वचन के आधार पर कृतार्थ हुए हैं। सभी ने उन्हें भरपूर देखा, सूंघा, छुआ, चखा और भोगा है। उनकी मन-बसिया छवि को पूजा-संजोया है। निष्प्राण और मनहूस हो चले दिलों के सजीव बनाया है। संघर्ष की तेज धूप में सूख चुके लोगों को रसवान बनाया है।

खेदवश! उनके इस प्रभाव को लोगों ने पूरी तरह आत्मसात नहीं किया है। बहरहाल, यहां लोगबाग हर पल उत्फुल्लित, उमंगित, उत्प्रेरित और उत्कण्ठित क्यों हो रहे हैं? दिल्ली इतनी रमणीक तीर्थस्थली क्यों बनती जा रही है कि दूरदराज के लोग रोजी-रोटी तलाशने के बहाने यहां आकर हमेशा खोए-खोए से कुछ खोजते फिरते हैं। इसका गूढ़ रहस्य यही है कि वे यहां आकर चुम्मी मैडम की शोहबत में जीना-मरना पसंद करते हैं? इसका श्रेय मैडम को ही जाता है जिनके बारे में यह सोलह आने सुनिश्चित-सा लगता है कि इंद्र के दरबार में सभी अप्सराओं को स्वर्ग-निकाला देकर इन्हें पूरे मान-मनौवल के बाद आमंत्रित किया जाने वाला है। इनके सशरीर स्वर्ग-प्रयाण के बाद इस देश में जगह-जगह इनकी मूर्तियां मंदिरों में प्राण-प्रतिष्ठित की जाएंगी ताकि इस दुनिया में प्रलय होने तक चुम्मी मैडम प्रेम की इकलौती देवी के रूप में पुरुषों के दिलों में विराजमान रहें।

लेकिन, आजकल दिल्ली सहमी-सहमी सी है, खासतौर से यहां की कुआरियां जिन्हें कुलच्छनी गंगा के बारे में फैले अफवाहों की वजह से यह भय सताने लगा है कि कहीं उन जैसी 'लड़कियां' भी अकारण दागदार न हो जाएं जबकि वे सारे ऐहतियात बरतती हैं! इसके विपरीत, पुरुषवर्ग गुमान में चौड़ा होता जा रहा है। उसे अपनी क्षमताओं का अंदाजा अब जाकर लगा है। सतयुग और त्रेतायुग से चली आ रही पौराणिक किंवदंतियों में बताई गई बातें अत्यंत आश्चर्यजनक रूप से इस नामुराद कलियुग में सही साबित हो रही हैं कि पुरुष के देखने या हल्के स्पर्श-भर से स्त्रियां सौभाग्यवती हो जाया करती थीं। पुरुष के पसीना या खून का एक कतरा भी स्त्री के जिस्म पर टपक जाए तो उसकी कोख भर जाती थी। तपस्या या वरदान भी

उनकी बांझ गोद को हरा-भरा कर देता था। लिहाजा, ऐसी माएं समाज में सम्मान की पात्र होती थीं और उनकी संतान को ऋषि-पुत्र, सूर्य-पुत्र, समुद्र-पुत्र या किसी देवता-विशेष का पुत्र पुकारकर उसका समाजीकरण किया जाता था।

ऐसी प्रबल संभावना है कि गंगा के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ होगा। या तो किसी देवता के आगे उसकी कोई प्रार्थना फलीभूत हुई होगी या किसी मनचले पुरुष की निगाह या स्पर्श से वह गर्भवती हुई होगी। ऐसी भी अटकलें हैं कि किसी अतिमानवीय (सुपरनेचुरल) शक्ति ने उस पर रीझकर उसे इस तरह कृतार्थ किया होगा। यूं भी आजकल भूत-प्रेतों के अस्तित्व के बारे में पुख्ते सबूत मिल रहे हैं और देश-विदेश की कतिपय मीडिया एजेंसियां उनके फोटो खींचकर उनकी गतिविधियों के बारे में विश्वसनीय जानकारियां दे रही हैं। जहां तक गंगा के चाल-चलन पर कोई शक-शुबहा करने का संबंध है, उसमें ऐसा कोई लक्षण नहीं मिलता है कि उसे बदचलन घोषित किया जा सके। अगर उस पर लगाए गए लांछन सही होते तो वह इतनी गमगीन नहीं होती! बेशक! वह तन-मन से پاک-साफ है। मेरा तो पक्का विश्वास है कि उसके गर्भ से कोई अवतारी जन्म लेने वाला है क्योंकि प्रचलित विश्वास के अनुसार, ज्यादातर अवतारी आत्माएं कुआरियों की कोख से ही जन्म लेती हैं।

इसलिए, मेरे प्रिय देशवासियों! तुम सावधान हो जाओ क्योंकि पापियों का नाश करने वाला और दीन-दुःखियों की पीड़ाओं को हरने वाला एक महापुरुष गंगा की कुआरी कोख से पैदा होने वाला है। मीडियाजनों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वे गंगा के खिलाफ फिजूल अफवाह फैलाने से बाज आएँ और उसका स्वागत एक दुर्लभ मां के रूप में करें जिसे शीघ्र ही एक देवमाता का दर्जा दिया जाने वाला है! मैं उनकी इकलौती बहन चुम्मी देवी के पित्र-मित्र अर्थात् तात से भी अनुरोध करूंगा कि वह खुद चुम्मी मैडम के गंगा के अनुकूल हवा का रुख बदलने के लिए उसे बहलाएं-फुसलाएं।

चुम्मी मैडम की सांठ-गांठ न केवल इस देश के बहुसंख्यक बांके मर्दों से है

बल्कि पवनदेव से भी है। अतः हे तात! चूंकि आपको चुम्मी मैडम के निहायत करीब रहने का सौभाग्य प्राप्त है, इसलिए आप उनसे सभी माध्यमों से गंगा (जो भले ही हर नजरिए से मैडम से भिन्न है, लेकिन है तो उसकी सगी बहन) के दामन पर लगे दाग को मिटाने के लिए व्यापक प्रोपेगैंडा का बंदोबस्त करें। यदि मैडम की कृपादृष्टि हो तो वह पवनदेव को एक हिदायत दे सकती हैं कि पवनदेव हवा में ऐसी तासीर पैदा करें ताकि संपूर्ण जनमानस में गंगा के प्रति न केवल अगाध स्नेह बल्कि अपार सम्मानभाव भी उमड़ सके। पहले भी पवनदेव ने मैडम की सेवा बड़ी तन्मयता से की है। न केवल उनके रंग-रूप-गंध को सर्वत्र विस्तारित किया है बल्कि कास्मेटिक कंपनियों को बेहतर सौंदर्यवर्धक क्रीम-पाउडर बनाने की प्रेरणा भी दी है। महानगर की कोठियों में सजे गमलों में फूलों को बिल्कुल अलग ढंग से खिलने का अवसर दिया है; अन्यथा प्रदूषण ने तो उनकी हुलिया ही बदल डाली थी। वैसे तो, पेट्रोल का धुआं, तंबाकू की भभक, शराब की गमक, मोटर-यंत्रों का कर्णभेदक शोर आदि पवनदेव के तन-मन में रचा-बसा है जिस कारण वह यहां से स्थायी प्रवास करना चाहते हैं। किंतु, चुम्मी मैडम की मीठी हाथ-हैलो, अंगुलियां फोड़न की चनक, उनकी अंगड़ाइयों की कड़क, सांसों के उच्छ्वास, बदन की खुशबू आदि जैसे मनमोहक घटकों के कारण पवनदेव यहां से प्रवास करने के इरादे से बाल-बाल बचे हुए हैं। वर्ना, आज यहां लोगबाग मुंह में आक्सीजन की नली डाले और कंधे पर आक्सीजन का सिलिंडर लादे दिल्ली-विहार करते नजर आते।

एक नजरिए से देखा जाए तो गंगा की वजह से चुम्मी मैडम की मकबूलियत में चार चांद लगे हैं। लोग गंगा को देखकर मैडम को कुछ इस तरह याद करते हैं कि 'देखो, यही है-दुनिया की सबसे अच्छी लड़की मतलब चुम्मी मैडम की बहन।' बेशक! गंगा की बुराइयों ने मैडम की अच्छाइयों को और चमकदार बनाया है। अब, मैडम को और अधिक दिलचस्पी से देखा जाने लगा है। उनकी सराहना और मुक्त कंठ से की जाने लगी है। जो लिजलिजी

कहानी गंगा की जिंदगी से जुड़ी हुई है, उसने मैडम से जुड़े मिथकों को और अधिक लिज्जतदार बना दिया है। यूं भी, इस देश में कुआरी मांओं की परंपरा कोई नई नहीं है। पर, गंगा द्वारा स्थापित परंपरा थोड़ी-सी लीक से हटकर है कि उसे अपनी संतान के डैडी के बारे में कुछ भी पता नहीं है जबकि पुरानी परंपरा के अनुसार बनी कुआरी मांओं को अपनी संतानों के डैडियों के बारे में कोई गलतफहमी नहीं रहती थी; हां, वे इसे जगजाहिर कभी नहीं करती थीं।

सो, मैं भी गंगा की माफी के लिए पुरजोर फरियाद करता हूं। इसके लिए बेशुमार तर्क पहले ही दिए जा चुके हैं। पवनदेव को गंगा के खिलाफ जनाक्रोश को बदलने के काम में लगाया जा चुका है। तात को भी गंगा के भविष्य को लेकर चिंताग्रस्त देखा गया है और उन्हें मैडम से मिन्नतें करते हुए देखा-सुना गया है कि जवानी में किसके पैर नहीं फिसलते। गंगा नासमझ और भोली है। इस लिहाज से वह बिल्कुल बेकसूर है। छोटी-मोटी गलतियों के लिए उसे इतनी बड़ी सजा नहीं दी जानी चाहिए कि देश की दूसरी भोली-भाली लड़कियों के लिए इस सबक को गले से नीचे उतारना ही कठिन हो जाए। उनमें से भी कई गंगाएं पैदा हो सकती हैं। आने वाले कुछ सालों में कुआरी मांओं की भरमार होने जा रही है। अगर अभी से इस तरह के फिसलन को अपराध घोषित किया गया तो देश की कन्याओं के भविष्य का क्या होगा? इससे तो सारी स्त्री-सुधार योजनाएं ही टाय-टाय-फिस्स बोल जाएंगी। ऐसे में तात की दिल खोलकर प्रशंसा की जानी चाहिए क्योंकि वह कुआरी मांओं के गर्भ-समापन के लिए एक ट्रस्ट खोलने जा रहे हैं और खुदा-न-खास्ता उनकी संतान दुनिया में आ भी जाती है तो तात ऐसी संतानों के लिए एक बाल निकेतन खोलने जा रहे हैं। अब, हम जैसे भलेमानुसों की यह जिम्मेदारी है कि हम गंगा जैसी मांओं की देश के चप्पे-चप्पे में खोजबीन करके तात की योजना को सफल बनाएं। तभी हम अमरीका और दूसरे पश्चिमी देशों की बराबरी कर सकेंगे।

सी-66, न्यू पंचवटी, (पवन सिनेमा के सामने)
जी.टी. रोड, गाजियाबाद

... पृष्ठ 72 का शेष

विपत्ति की इस घड़ी में उन्हें और तो कुछ नहीं सूझा। उन्होंने पत्नी को आवाज दी—

‘सुनती हो लल्लू की मां! . . जरा पेशाब आ रहा है।’ पैर में ट्रैक्शन लगा देने के कारण श्याम बाबू का चलना-फिरना वर्जित था ही।

पत्नी ने आकर चादर के नीचे से मूत्रदानी लगा दी। श्याम बाबू के पुरुषत्व को इससे संतोष मिला। वे नेत्र मूंदकर मूत्र-विसर्जन करने का अभिनय करने लगे। लेकिन मनोहर अभी आसानी से टलने वाला नहीं था। अतः कुछ सोचकर श्यामबाबू ने अगले क्षण ट्रंपचाल चली। पत्नी से बोले— ‘सुनो. . अब जरा वो भी आ रहा है।’

मनोहर को आगे के दृश्य की कल्पना करते देर न लगी। इससे पहले कि वातावरण प्रदूषित हो, वह उठा और ‘अच्छा भाई साब! . . चलता हूं।’ कहकर वहां से निकल लिया। दूध का पैकेट बराबर की टेबिल पर धरा का धरा रह गया।

मजबूरी इंसान को बहुत कुछ सिखा देती है। पंद्रह दिन में ही श्याम बाबू लोगों के जवाब देने में एक्सपर्ट हो गए हैं।

अब उन्होंने अपने सिरहाने के निकट एक टेपरिकार्ड रख लिया है। जब कोई हालचाल लेने भूला भटका व्यक्ति आता है तो वह उसके सामने टेप का बटन दबा देते हैं। श्याम बाबू का उसमें रिकार्डेड-स्वर बजने लगता है। वह कह रहे होते हैं—

‘नमस्कार। डाक्टर ने ज़्यादा बोलने को मना किया है। . . गाय को लोग गरुमाता कहते हैं। मगर उसे सब्जीमंडी में इधर-उधर मुंह मारने के लिए और डंडे खाने के वास्ते छोड़ देते हैं। . . (खांसी का स्वर). . . दुर्घटनाएं होती हैं जिसमें. . . मेरे जैसे लोगों के हाथ-पैर टूट जाते हैं। . . यह फ्रैक्चर भी उसी-जैसी एक घटना का नतीजा है। . . सरकार को चाहिये कि गाय-बछड़ों की जगह, उनके ऐसे गैरजिम्मेदार मालिकों को पकड़कर कांजीहाउस में बंद कर दे. . . और रोज़ सुबह-शाम उनके चूतड़ों पर दस-दस कोड़े लगावाएं।’

सरोज सदन, 18/250, इंदिरा नगर, लखनऊ-226016

इष्टदेव सांकृत्यायन

तो क्या कहेंगे?

सलाहू आज बोल ही नहीं रहा है। हमेशा बिन बुलाए बोलने वाला आदमी और बिना मांगे ही बार-बार सलाह देने वाला शख्स अगर अचानक चुप हो जाए तो शुबहा तो होगा ही। यूँ तो वह बिना किसी बात के बहस पर अक्सर उतारू रहा करता है। कोई मामला-फसाद हुए बगैर ही आईपीसी-सीआरपीसी से लेकर भारतीय संविधान के तमाम अनुच्छेदों तक का बात-बात में हवाला देने वाला आदमी आज कुछ भी कह देने पर भी कुछ भी बोलने के लिए तैयार नहीं हो रहा है। मुझे लगा कि आखिर मामला क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि माया मेम साहब द्वारा बापू को नाटकबाज कह देने से उसे सदमा लग गया हो! पर नहीं, इस बारे में पूछे जाने पर उसने मुझे सिर्फ देखा भर। ऐसे जैसे कभी-कभी कोई बड़ी शरारत कर के आने पर मेरे पिताजी देखा करते थे। चुपचाप। पर मैंने ऐसी कोई शरारत तो की नहीं थी। जाहिर है, इसका मतलब साफ तौर पर सिर्फ यही था कि ऐसी कोई बात नहीं थी। फिर क्या वजह है? बार-बार पूछने पर भी सलाहू चुप रहा तो बस चुप ही रहा। जब भी मैंने उससे जो भी आशंका जताई हर बात पर वह सिर्फ चुप ही रहा। आंखों से या चेहरे से, अपनी विभिन्न भाव-भंगिमाओं के जरिये उसने हर बात पर यही जताया कि ऐसी कोई बात नहीं है। अंततः यह आशंका हुई कि कहीं ऐसा तो नहीं कि वह गूंगा हो गया हो। वैसे भी हमारे समाज में जिह्वा को सरस्वती का वास-स्थल माना जाता है और उसने जिह्वा का दुरुपयोग बेहिसाब किया है। मुक्किलों से लेकर मुंसिफों तक। सरकार से लेकर गैर सरकारी लोगों तक किसी को नहीं छोड़ा था। मुझे लगा क्या पता शब्द जिसे ब्रह्म का रूप कहा जाता है उसने इसका साथ छोड़ दिया हो, नाराजगी के नाते। पर आत्मा से तुरंत दूसरी बात आई। अगर ऐसा होता तब तो यह बात पहले अपने

साथ होनी चाहिए थी। आखिर शब्दों का व्यापार करते हुए ऐसा कौन-सा अपराध है जो शब्दों के जरिए अपन ने न किया हो! पर नहीं साहब अपन के साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। ऐसा मास्टर के साथ भी नहीं हुआ, जो केवल हिन्दी ही नहीं, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं के साथ भी शब्दों से हेराफेरी करता आ रहा है, पिछले कई वर्षों से। पर ना, उसके साथ भी ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हुआ तो बेचारे सलाहू के साथ। मुझे लगा कि हो न हो, यह किसी रोग वगैरह का ही मामला हो। मैं बेवजह पाप-पुण्य के लेखे-जोखे में फंसा हुआ हूँ और हर पढ़े-लिखे आदमी की तरह बेचारे अपने सबसे भरोसेमंद मित्र के वैज्ञानिक इलाज के बजाय उसके और अपने पाप-पुण्य के लेखे-जोखे में लग गया हूँ। आखिरकार उसके बार-बार इशारों से मना करने के बावजूद मैं उसे जैसे-तैसे पकड़-धकड़ कर डॉक्टर के पास ले ही गया। लेकिन यह क्या डॉक्टर तो उससे पूछने पर तुला है और है कि बोल ही नहीं पा रहा है। आखिरकार डॉक्टर ने आजिज आकर पता नहीं कौन सा डर्कोमर्कोग्राम एपीएमवीएनेन कराने के लिए कह दिया। तमाम और डॉक्टरी क्रियाओं की तरह मैंने इसका भी नाम तो सुना नहीं था, लिहाजा डॉक्टर से पूछ लेना ही बेहतर समझा कि भाई इसका कितना पैसा लगेगा। लेकिन यह क्या, जैसे ही डॉक्टर ने बताया, 'कुछ खास नहीं, बस बीस हजार रुपये लगेंगे और इस टेस्ट से पता न चला तो फिर अमेरिका जाना पड़ेगा। वैसे यह भी हो सकता है कि स्वाइन फ्लू हुआ हो. . .' सलाहू चुप नहीं रह सका। एकाएक चिल्ला कर बोला, 'अरे मेरी जान के दुश्मनों मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं बिलकुल ठीक हूँ।' अब तो अब तक बोल क्यों नहीं रहा था।, 'बस ऐसे ही।', 'क्या भौजाई ने कुछ कह दिया', 'उंहू फिर' उसने फिर सिर हिलाया। न बोलने का नाटक

करते हुए। 'तो क्या कचहरी में कोई बात हो गई' उसने फिर न में सिर हिलाया। 'तो फिर क्या बात हुई?' अब वह एकदम चुप था। पुनर्मूषकोभव वाली स्थिति में आ गया था। न बोलने की कसम उसने लगता है फिर खाली थी। 'भाई क्या वजह है? बोल और बिलकुल सही-सही बता वरना ये जान लो कि अभी तुम्हारी डर्कोमर्कोग्रामी शुरू।' डर्कोमर्कोग्रामी का नाम सुनते ही उसके होश फिर ठिकाने आ गए। आखिरकार बेचारा बोल ही पड़ा, 'देख भाई, ये न तो घर का मामला है और न कचहरी का। ये मामला असल में है पार्टी का। आज नहीं तो कल पार्टी में मुझे गूंगे होना ही पड़ेगा। लिहाजा उसकी प्रैक्टिस अभी से शुरू कर दी है।' 'वो क्यों भाई? भला तुझे पार्टी में गूंगा कौन बना सकता है?' मैंने पूछा, 'मैडम का तू खास भरोसेमन्द है?' 'सो तो हूँ', उसने बताया, 'लेकिन आज ही से एक नया संकट आ गया है।' 'वह क्या', मैंने फिर पूछा, 'क्या तेरे बराबर भरोसा किसी और ने भी जीत लिया है?' 'नहीं भाई, ऐसी भी कोई बात नहीं है।' 'फिर?' 'असल में आज ही एक नया फरमान जारी हुआ है।' 'वह क्या गूंगे होने का फरमान है।' 'ना गूंगे होने का नहीं, वह गूंगे बनाने का फरमान है।' 'फरमान तो बताओ।' 'बस यह कि अबसे कोई पार्टी और खास तौर से पार्टी मालिकों के परिवार के सदस्यों के लिए सामंतवादी या कहे राजशाही सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं करेगा। अब कोई किसी को युवराज, राजा, राजमाता, महाराज. . .आदि-आदि नहीं कहेगा।' 'तो?' 'तुम्ही बताओ, तब अब हम क्या कहेंगे? इस तरह तो हमारी पार्टी के 99 फीसदी कार्यकर्ताओं का सोचना तक बन्द हो जाएगा। बोलने की तो बात ही छोड़ मेरे यार।' इतना कह कर वह फिर से गहन मौन में चला गया। ऋषि-मुनियों की तरह।

संपादक, जागरण सखी, नोएडा (उ.प्र.)

अजीत श्रीवास्तव

साहब पानी खो गया

नेता जी की कोठी पर इतना कोलाहल व लोगों का आना जाना बढ़ गया, जिले के स्तर के अफसर यथा कलैक्टर सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट, शहर कोतवाल, जिला पुलिस अधीक्षक इनके साथ इनको बैलेंस में रखने वाले छोटे और मझोले अफसर, इतना ही नहीं पत्रकारों से लेकर संभाग एवं राज्य स्तर के लोग जमा हो रहे थे, तरह-तरह की बत्ती लगी गाड़ी व कारें चिल्लपों मचा रही थीं वह फ्लेश लाइटें जिससे पत्रकार एवं संवाददाता भी बेचैन थे।

दरअसल यह तबसे शुरू हुआ जब सुबह एक चार की गार्ड युक्त एवं नेता जी के दो विश्वस्त कारिंदों से भरी जीप आकर रुकी और वह सब लपक कर उतरे व नेताजी के कक्ष में धड़-धड़ाते घुसे और एक कारिंदे ने कहा, 'साहब पानी खो गया।'

यह वह आवाज थी, कि नेता जी उछल पड़े कुर्सी से, घर का सारा अमला एवं परिवार दौड़ कर उस कक्ष में आ गया, सवाल पर सवाल दागे जाने लगे, कब? कैसे? कहाँ? क्यों? आदि सांस लेकर गार्ड ने बताया।

'साहब पानी सुरक्षित मिल गया था, दो जिले तक हम टैंकर की सुरक्षा करते नजर आये, पर यहां से चालीस किलोमीटर पर एक जगह टैंकर मय पानी के गायब हो गया, हमने बहुत दूँदों पर नहीं मिला, तब यहां आये।'

'तुम लोगों की सुरक्षा में कमी रही, लापरवाही की होगी।'

'सब कामचोर हैं कोई काम ढंग से नहीं करते।'

'हद हे गई नेताजी के पानी की भी सुरक्षा नहीं कर सके पानी टैंकर सहित खो गया।'

'इनकी हिम्मत देखो पानी खोने की खबर देने चले आये वह भी सीधे-सीधे, अरे किसी का हार्टफेल हो जाये, ब्रेन हैमरेज

हो जाये।'

'हां खून का दौरा रफ्तार बढ़ा या कमा दे, हार्ट अटैक हो जाये।'

'पानी की कीमत नहीं समझी हम दुष्टों ने, और...?'

यह सब विभिन्न लोगों के बोल सुनते सुनते नेताजी की तंद्रा भंग हो गई, वह कीमती पानी की बात सुन अचानक जैसे जाग गये हों, बोल उठे—

'अरे' वह पानी इस युग में कितना कीमती था, अब पानी मिलने का युग तो है नहीं, बड़ी मुश्किल से मंत्री जी की सिफारिश से तीन जिला छोड़ कर तो एक टैंकर पानी का जुगाड़ बैठाया जिसमें 3-4 माह का समय लगा, हमारे घर के लोग कितने खुश थे कि पूछो नहीं, इतना पानी तुमने खो दिया, शहर में नहीं देखा, दस रुपये का गिलास बिक रहा है...'

'पर साहब इसमें हम लोगों की गलती... ' नेता के कारिंदे का हाथ दबा कर एक व्यक्ति ने बोलने से रोक दिया, वह सहमकर चुप हो गया।

नेता जी पुनः बोले 'टैंकर में पांच हजार लीटर पानी था यानी पच्चीस हजार गिलास पानी, और एक गिलास पानी दस रुपये का मानें तो दो लाख पचास हजार रुपये का पानी था, जिसको मंजूर कराने में ही पांच हजार रुपये खर्च हो गये, दो लाख पचपन हजार का पानी था...'

नेता की बात नेता के पुत्र ने काट दी 'और तो और मंगाने का खर्च ही दस हजार रु. लगा, कीमत हो गई दो लाख पैंसठ हजार रुपये...'

नेता पुत्र की बात नेता के पानी लेने गये कारिंदे ने काट दी।

'साहब, चुंगी और थानों इत्यादि व हम लोगों का खर्चा जोड़कर दस हजार और खर्च हो गये।'

नेता जी ने उंगलियों से कुछ जोड़ा

फिर मुंह खोला—दस हजार यह और पांच हजार रु. की रिश्वत मंत्री के पी.ए. की दी, सो पानी की कीमत हो गई, दो लाख अस्सी हजार रुपया 5-5-5

'कहते-कहते नेताजी ने छाती पकड़ी व कुर्सी पर लुढ़क पड़े कोई चीख उठा—'नेताजी को दौरा पड़ गया' पुनः अफरा तफरी डा. एंबूलेंस सब जुड़ आये।

अंक-दो

डी.आई.जी. पुलिस गर्जे—'देखो वह युग तो अब है नहीं कि पानी सबको मिल जाता था, अब पानी अनमोल है, मुझे नेताजी के पानी का पता चलना चाहिये, कैसे खो गया, कहाँ खो गया, सारी रिपोर्ट सात दिन में चाहिये आखिर लगभग तीन लाख का पानी की बात है।'

उनके अमले के लोगों ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली, तफ्तीश बांट दी गई, कारिंदों और एक चार की गार्ड को पुछाई हेतु हिरासत में ले लिया गया, उसी रात पता चला खाली टैंकर गोरे गांव के पास सड़क किनारे मिला।

अंक-तीन

तफ्तीश बड़े पुलिस अफसरों के काफिला का गोरे गांव से शुरू हुआ। जहां टैंकर खाली मिला था वहीं पास में कोई गांव नहीं था। अलबत्ता कुछ-कुछ दूर पर गोरेगांव, काले गांव, पीले गांव एवं नीले गांव जरूर थे। बड़े आदमी का पानी खो गया था, सो बड़े पैमाने पर जांच-अन्वेषण हुआ, सूंघने वाले कुत्तों का इस्तेमाल हुआ फिंगर प्रिंट वाले आये, डी.एन.ए. टेस्ट वाले आये, फोरेंसिक लैब से सामान और मशीनें लेकर वैज्ञानिक आये और भी ना जाने कौन-कौन स्पेशलिस्ट आये। तफ्तीश ऐसे-ऐसे भी चलती रही।

किसी ने बताया, गांव में सबकी दाढ़ी मूँछ बढ़ी है केवल राम अवतार ने क्लीनशेव करी है लगता है पानी उसे मिल गया है,

राम अवतार पकड़ा गया, पिटाई गालियों के बाद उसने उगला कि पानी नहीं ग्वारपाठा का गूदा घिसकर दाढ़ी फुलाई फिर बनाई है, छूटा तब वह, जब पक्के विश्वास के लिये उसने 'मनीराम' को पेश किया, मनीराम व्यक्ति को नहीं, रुपयों को कहते हैं।

एक दूध बेचता पाया गया, पकड़ा गया, इस युग में दूध बेचना अर्थात् जानवर पालना, अर्थात् पानी होने का शक लेकिन दूध नकली निकला भाग्य से वह बच गया।

दूसरा पता चला गांव में जाने कब से लोगों ने दातुन नहीं की पर मुस्तफा दातुन करता लोगों ने देखा था, मुस्तफा पुलिस के सिस्टम से गुजरा पर उसने बताया कि बिना पानी के बबूल की दातुन की थी, क्योंकि गांव भर के लोगों को पायरिया दांतों में हो गया है, हमारे तो मसूढ़ों से खून निकल रहा था, इस कारण दातुन कर ली, साथ ही उसने पिटाई के भय से ऊपर वाले को सामने रख कभी दातुन ना करने की कसम भी खा ली।

तीसरा चक्कर ऐसा था कि दलू माली की पत्नी कुल्ला करते देखी गई है, पानी जब है ही नहीं, ऐसे में घर के बाहर दलू की घरवाली का पानी का कुल्ला करना गांव वालों और जलने वाले पड़ोसियों को अखर गया, जबकि गांव में हर व्यक्ति दस लीटर पानी, सरकारी कोटे से प्रतिमाह मिल रहा हो। पुलिस का छापा घर में पड़ा कुछ भी पानी नहीं मिला, बहू की संदूकची से ताला खोलने को कहा गया, वह तैयार नहीं हो रही थी, लेडी पुलिस बुलाई गई, धौल-धपाड़े के बाद जबरन ताला खोला गया तो पांच इंच की शीशी पानी से भरी पाई गई, पूछताछ कड़ी की गई तो उसने बताया कि दो माह से पानी बचाकर रिजर्व कर सुरक्षित पेटी संदूकची में रख लिया था, क्योंकि वह गर्भवती है कब बच्चे के हिसाब से पानी जरूरत पड़ जाये और उसने पानी नहीं, गर्भ की दशा में उल्टी कर दी थी, जिसे लोगों ने पानी का कुल्ला समझा था।

अचानक एक घटनाक्रम हुआ— काले गांव की जांच दल दो व्यक्तियों के पकड़ लाये, उनके तुलसी घर में तुलसी के बिरवे में पानी सिंचा पाया गया था, पुलिस के बड़े साब ने गहन पूछताछ की, तो उन्होंने धर्म का वास्ता बताया, ब्राह्मण थे दोनों और पूजा

पाठी, तुलसी को जीवित रखना उनकी मजबूरी थी क्योंकि उनका मानना था कि भगवान बिना तुलसी के भोग स्वीकार नहीं करते। इससे तुलसी में पानी वह रोज डाल देते हैं, उनकी आस्था को बड़े साब ने चोट नहीं पहुंचाई, पर छोटे साहबों ने इस कृत्य का अर्थदंड उनसे वसूल किया था।

ठीक ऐसी ही घटना पीले गांव में हुई एक आदिवासी तीन कन्याओं को भोजन कराते पकड़ा गया। पूछने पर पता चला कि घर में 'महामाई' (जिसे मीजिल्स या चेचक भी कहते हैं) निकली थी बच्चे को, सो किस ने बताया कि देवी को तो पानी चढ़ा नहीं सकते क्योंकि पानी है नहीं सो तीन कन्याओं को भोजन करा देना, उसे भी छोड़ा गया, अलबत्ता तीन कन्याओं को भोजन करा जांच दलों वालों ने भोग स्वरूप उड़ा दिया। एक जैन सेठ के यहां जब हरियाली आधी पृथ्वी से गायब हो चुकी थी। छत के कचरे में पीपल का दो इंची हरा वृक्ष मिला। वह दो हजार में छूटा। क्योंकि किस प्रकार का पौधा अपने आप उग आया था।

पुलिस जांच का पहलू बहुत विशाल था। घर-घर में तलाशी हो रही थी, एक-एक व्यक्ति सवालों जवाबों के दौर से गुजर रहा था ऐसे में कोई खटकने वाली बात होती तो उसकी खैर नहीं। खबर नीले गांव के ठाकुर की मिली वह इस युग में जब गांवों में जानवर, पशु पक्षी जिंदा नहीं बचे, वह एक मिट्टू तोता पाले हैं, वह भी जिंदा। इतनी बड़ी खबर ने उनको पानी खो जाने की घटना में संदिग्ध बना दिया। खोज पड़ताल हुई, ठाकुर साहब ने बताया कि उनकी नातिन दो वर्षीय उस तोते से इतनी हिल मिल गई कि जब तोता खाना खाता है तभी वह खाती है, उसी से खेलती है। इस मजबूरी में ठाकुर साहब उस तोते को जिंदा रखे हैं। वहीं एक सेठ धुला कुर्ता पहने दिखने पर पानी की चोरी की शक के दायरे में आ गया पर खबर झूठ थी वह धुला कुर्ता नहीं, नया बनवाया कुर्ता पहने था। कहने का अर्थ यह कि हर छोटी बड़ी घटना की तहकीकात चल रही थी, पर पानी था नेता जी का, उसका पता नहीं चल रहा था।

इधर सारा वैज्ञानिक पुलिस महकमा और अवैज्ञानिक पुलिस महकमा नेताजी के पानी को खोज पाने में फेल हो रहा था,

उधर ऊपर वाले अफसर और मीडिया नाराज थे 'नेताजी मुर्दाबाद' एवं 'हाय-हाय' 'पानी चोर', 'पानी का दुश्मन' जैसे शब्द प्रयोग कर रहे थे यहां तक कि पानी मंगाने की प्रक्रिया पर मजिस्ट्रेट जांच की मांग कर रहे थे मीडिया ने तो सी.बी.आई जांच की मांग तक की। टी.वी. चैनल इस घटना पर अपने ढंगसे घटनाक्रम बनाकर लोगों को दिखा रहे थे। कुल मिलाकर 'पानी खोना' देशस्तरीय बहस, राष्ट्रीय समाचार की खबर, टी.वी. न्यूज, जनचर्चा का विषय बन चुका था, कई दिन खोज चलती रही, परिणाम रहा सिफर।

पर भला हो एक गांव के मोटर साईकिल सुधारने वाले मिस्त्री का, उसने बताया कि टैंकर में छेद था सो सारा पानी लाते समय रास्ते में ही गिरता रहा और टैंकर खाली हो गया और उस खाली टैंकर के जरूर किसी ने चुराया पर उसमें डीजल न होने से राह में छोड़ कर भाग गया। यही पुलिस की अंतिम रिपोर्ट बनी, मामला शांत हो गया।

मामला शांत हो गया पर देश के प्रधानमंत्री ने इस पर वक्तव्य दिया कि—'सन् 2008 में भी पानी की कमी हुई थी, तब लोग नहीं चेतते और उसी का परिणाम है कि आज सन! 2068 में पानी का यह हाल हो गया और अभी भी पानी संरक्षण पर जनता को चेतने की जरूरत है। हमने जल विषय का पेपर हर कक्षा में चला दिया है। जल पंचायतें, जल किताब, जल स्कूल, जल बिरादरी, जल कालेज, जल मंदिर जैसे विषयों पर भी शासन ने संस्थाएं खोली हैं, जनचेतना के लिये, जनता जाग जाए वरना आगे इससे बुरा हाल होने की विश्व में संभावना है। अभी हाल में पानी पर विश्वयुद्ध होते-होते बचा है, जो पानी सुरक्षा की चेतावनी है।'

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व में गंदा व कम पानी के कारण फैली 'वाटर डिस्सीज' पर अनगिनत रुपयों का फंड सारे संसार के देशों को दिया है, अमेरिका ने पानी से मरने वालों की संख्या विश्व में बढ़ने पर चिंता जाहिर की है, पर जरूरत हर व्यक्ति के पानी पर चिंता जाहिर करने की है।

'राजीव सदन', नायक मुहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

तारकेश्वर शर्मा 'विकास'

रामरस बिना क्या बतरस मजा

पंडित लेखराज जी जब तक जिंदा रहे तब तक कागज गोजते रहे। चाहे हथुआ स्टेट की महारानी के यहां अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए बही खाता में उल्टा-पुल्टा हिसाब-किताब लिखते रहे अथवा अपने खासमखास लोगों को तोहफा दिलाते रहे। बाद के दिनों में जब मोहतरमा महारानी कविता की दीवानी होने लगीं और खुद ही मुशायरा अथवा कवि गोष्ठियों में जाने-आने लगीं तो पंडित लेखराज जी के दिमाग में यह बात घर करने लगी कि आने वाले दिनों में महारानी किसी न किसी कवि अथवा शायर को बाकायदा पुरस्कृत भी करेंगी। इसके पहले ही पंडित लेखराज जी कविताई करने में इस तरह मशगूल हुए कि ता-उम्र शायरी करते रहे। पर देखते-देखते उनके ही सामने कई सिद्धहस्त पंडित लेखराज जी महारानी को खुश करने के लिए एक से एक तरकीब लगाते हुए खुद उनके ऐसे चारण बने कि महारानी ने उन्हें एक दिन एक भव्य समारोह में पुरस्कार स्वरूप कोई एक हजार सोने की मुहरें देती हुई कही कि पंडित लेखराज जी केवल बही-खाता में हिसाब-किताब लिखने के मामले में ही सिद्धहस्त नहीं हैं बल्कि गीत-गजल के क्षेत्र में भी आपका सानी नहीं। तब से पंडित लेखराज जी मुंशी से सीधे कविराज हो गए। वैसे भी पंडित लेखराज जी कवि नहीं तो कविराज थे ही। इस तरह पंडित लेखराज जी के दिन बहुरने लगे। आमदनी का एक और दरवाजा जो खुल गया।

. . .तो ऐसे कविशिरोमणि सह पंडित लेखक लेखराज महाराज के ही ये जुड़वा पुत्र व कवि द्वय हैं भाई जले मिश्राजी और प्रले मिश्राजी। उस समय भले ही पंडित लेखराज जी को हथुआ स्टेट की महारानी ने पुरस्कृत कर उनके नाम में चार चांद लगाया पर उनकी कविताओं और गजलों को लिखने वाले कोई और नहीं बल्कि वही निहितार्थ

राय जी थे, जिनके सुपुत्र हैं छायावादी कवि तार्माजी छपरहिया महाराज। खैर! जो कुछ भी हो आज तो भाई जले मिश्रा और प्रले मिश्राजी साहित्य के क्षेत्र में बखूबी छाए हुए हैं। यह और बात है कि दोनों साहित्य की अलग-अलग विधाओं में महारत हासिल किए हुए हैं, जो वास्तविकता के धरातल पर भले ही सत्य प्रतीत नहीं होता लेकिन पत्र-पत्रिकाओं में दोनों नामों की चर्चा तो आए दिन होती ही रहती है। . .और ऐसा साहित्य के क्षेत्र में हर बार होता रहा है। साहित्य सृजन में जिन लेखकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए उनकी तो की नहीं जाती और जो किसी गुट का सक्रिय सदस्य है वह ऐन वक्त पुरस्कार क्या यूं कहें नाम, शोहरत, . .सब कुछ झटक लेता है। आज भले ही सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान प्रदान करने के लिए कवि निहितार्थ रायजी के नाम से अब तक कइयों को पचासों हजार रुपये की राशि से पुरस्कृत और सम्मानित किया जा चुका है पर उस वक्त के मशहूर कविशिरोमणि सह पंडित लेखक लेखराज महाराज जी ही थे। फिर भी समाज के द्वारा दिया गया सम्मान हमेशा महत्वपूर्ण रहा है। कोई बड़ा से बड़ा पुरस्कार भले ही क्यों न झटक ले पर बाबा तुलसीदास, कबीर दास, रहीम दास आदि तो नहीं ही बन सकता? क्या नर नाहर निराला को कोई महत्वपूर्ण पुरस्कार से नवाजा गया? नहीं न! तो इसका मतलब यह लगा लिया जाए कि नर नाहर निराला उन सभी ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवियों, लेखकों, कहानीकारों आदि के कद से छोटे रहे।

आज के समाज में जो नए-नए शगूफे सामने आते जा रहे हैं उसका ही प्रतिफल है कि आम पाठकों की अभिरूचि साहित्य से दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। हालांकि इन सबके बारे में बहस-मुबाहिसे की जरूरत

नहीं दिखती पर कुछ तो करना ही होगा, नहीं तो आज का साहित्य स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, कुलीन साहित्य विमर्श, बाजारवाद, मार्क्सवाद आदि जैसे अनेकों वाद से तहस-नहस हो जाएगा। इसी को ध्यान में रखते हुए माननीय ज्ञानवान जी की अध्यक्षता में एक विचार-गोष्ठी आयोजित की गई। इस विचार-गोष्ठी में सर्वश्री फटीचर भाई, संतुष्टजी, विन्यस्त साहब, भाई जले, मिश्राजी, भाई प्रले मिश्राजी आदि जैसे मूर्धन्य लेखकों के साथ-साथ युवा लेखिका सुश्री पुष्टि कुलकर्णी और श्रीमती तारिका कल्याणी की उपस्थिति को भला कौन नजरअंदाज कर सकता है? पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े पत्रकार मिस्टर लिंगर ने जो खास अंशों को खास समाचार में उकेड़ा उससे समाज में क्या संदेश गया, समाज ही जाने। लेकिन इस लेखक को तो कुछ बताना ही पड़ेगा क्योंकि आप भी इसी बहाने इस लेखक से भी परिचित हो जाएंगे और इस लेखक का एक लेख भी लिखा जाएगा। सच कहा जाए तो लेखन के माध्यम से यह भी धीरे-धीरे नाम भुनाने का एक ठोस और मजबूत जरिया बनता जा रहा है। लेकिन उस गोष्ठी में सौभाग्यवश चूँकि मैं भी उपस्थित था, अतः जो कुछ भी मैंने सुना, गुना और पाया, उसे सारगर्भित रूप से आपके समक्ष परोसने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह और बात होगी कि आपको कोई आपत्ति हो तो सीधे संपादक महोदय के पास न लिखकर मेरे पास लिखें तो अच्छा होगा। मेरा भी भला और आपका भी भला। अब पूछेंगे आप कि आपका कैसे भला? . . .तो मैं आपके पत्र के उत्तर में सब कुछ लिख दूंगा, जैसा आप जानना चाहते हैं।

पहली बार कि मैं भाई जले मिश्राजी और प्रले मिश्राजी के बारे में एक शब्द भी नहीं बोलूंगा क्योंकि इन दोनों के खिलाफ कुछ भी बोलना मेरे लिए हानिकर सिद्ध होगा। चूँकि मैं भी एक लिक्खाड़ जीव हूँ

जो छपने और खपने के प्रश्न पर आज तक सबसे ज्यादा चिंतनशील की जगह चिंताशील रहा है। इसलिए इन दोनों महानुभावों से पंगा लेना इस लेखक को नहीं सुहाता। यह सत्य है कि मैं इन्हें करीब से नहीं जानता पर जहां तक उनका सवाल है, वे मुझे अच्छी तरह से जानते हैं। क्योंकि कई बार महज मेरे कारण इन दोनों भाइयों को एकाध ख्यात पत्रिका के कुछ खास विशेषांकों में उनके लेखों का न छपना बहुत महंगा पड़ा। तभी तो 'संपादक के नाम पत्र' स्तम्भ में दोनों को मेरे संबंध में लिखने के लिए मात्र उतरना ही नहीं पड़ा बल्कि उन्हें यह भी लिखना पड़ा कि यह विकास नाम का जीव एक ऐसा जोंक है जो नमक के सिवा कुछ से भी नहीं मरेगा। अब आप ही बताएं, मैं इन दोनों भैया जनों के बैर करके साहित्य का 'स' लिखने से भी हाथ धो बैठूंगा कि नहीं। दूसरी बात कि स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य आदि मैं नहीं समझता। मैं प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, महाश्वेता देवी, आशापूर्णा देवी, फणीश्वर नाथ रेणु, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि की कुछेक कहानियां पढ़ा हूं। मुझे कहीं भी स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य आदि की वकालत करने की जरूरत महसूस नहीं हुई। यह ओर बात है कि आपका यह लेखक भले ही अपने लेखन-कर्म से विकास का राग अलापता रहा हो पर यह भी तो किसी गुट के साथ रहना ही चाहता है। कारण तो आप समझ ही गए होंगे। छपने, खपने और पुरस्कार ग्रहण करने की लालसा किसे नहीं होती? सो अब मुझे भी होने लगी है। पर क्या करूं? मुझे कोई भी अपने गुट का सदस्य बनाना ही नहीं चाहता। भांड में जाए ऐसी गुटों की सदस्यता। मैं लिखता हूं, लिखता रहूंगा. . . और बस लिखता ही रहूंगा। खैर, कहां से कहां बढ़ गया मैं। यही कमजोरी तो मेरे लेखन को चौपट कर देती है। पर आप ही बताएं अगर कोई लेखक स्व-पीड़ा और पर-पीड़ा को न लिखे तो वह लेखक है ही क्या? शायद इसी बात पर मेरे अजीत पत्रकार मिस्टर लिंगर डैनियल के प्रश्न के जवाब में हमारे फटीचर भाई साहब बोल पड़े कि पीड़ा किसकी नहीं होती? पर वे भी असली पीड़ा से मुख मोड़ लिए। यानी, निहितार्थ यह रहा कि सबकी पीड़ा बस छपने की है। चाहे खाक ही क्यों

न छपे? . . . वैसे भी आजकल खाक ही तो छप रही है। आखिर खाक की भी कीमत होती है, जनाब। लोग कहते हैं कि धूल, मिट्टी और राख की भी कोई कीमत होती है? लेकिन होती है। मेरा मानना है कि आजकल जो पत्र-पत्रिकाएं खाक लेखन को ज्यादा प्रश्रय दे रही हैं, वे ऐसे ही थोड़े दे रही हैं।

वैसे भी मेरी मानें तो मैं खाक सामग्री पढ़ने का इकलौता शौकीन रहा हूं। इसका कारण यह है कि मैं खाकसार खबरनवीस मिस्टर लिंगर डैनियल साहब का जिगरी दोस्त ही नहीं बल्कि उनका फन और फैन दोनों हूं। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दूं कि मैं भी अभी तक खाक ही छानता रहा हूं और खाक तथा पाक लेखन पर जोर आजमाइशी करता रहा हूं। तो भैया खाक जाने खाक की पीड़ा। जो गरीब-गुरबा तबके के लोग हैं, उन्हीं समुदाय का मैं भी एक जीवट प्राणी हूं। वैसे तो पीड़ाएं बहुत हैं, पर सबसे बड़ी पीड़ा यह है कि मुझ-सम लेखक को कोई भी संपादक तरजीह क्यों नहीं देता? बात भी साफ है। क्यों देगा? क्या मुझसे संपादक को कोई बड़ा विज्ञापन मिल सकता है? क्या मैं किसी उत्कृष्ट पत्रिका का संपादक हूं जिसमें ऐसे संपादकों की खाक रचनाओं को अपनी पत्रिका में छाप सकूं। जब नहीं तो मेरे जैसे लेखक बस कागद कारें। वैसे विषयांतर होना मेरी पुरानी आदत है। पर इसके भी कई फायदे हैं, जो कथा गढ़ने में सहायक तो होते ही हैं साथ ही साथ पाठकों को गुमराह कर कभी-कभी ऐसा चित्र भी गढ़ देने में औवल साबित हो जाते हैं कि 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के हितार्थ रामबाण अथवा रामरस का काम कर देते हैं। यही कारण है कि अब तो मैं भी 'पाठकों के पत्र' स्तंभ से खाकसार लेखकों को शर्मसार करने के उद्देश्य से उनकी प्रकाशित रचनाओं को बिना पढ़े इस तरह से बखिया उधेड़ता हूं कि वे या तो लिखना छोड़ दें अथवा लिखने के क्रम में किसी का खाका न उड़ाएं। भले ही आप 'खाका उड़ाना' मुहावरे से ताल्लुकात न रखते हों पर कवि नचिकेता की इन पंक्तियों में 'लोकनायकों' की जगह अगर 'महान लेखकों' तथा 'खादी' और 'गांधी' की जगह क्रमशः

'लस्सी' और 'तुलसी' को ध्यान में रखकर पढ़ें तो आज के दुर्योधन लेखकों और अर्जुन लेखकों का चित्र भलीभांति उकेरा जा सकता है। तो, नचिकेता की इन पंक्तियों पर जरा गौर करें—

'लोकनायकों का मुंह उज्ज्वल खादी जैसा है।
मिला न चेहरा मुझे एक भी गांधी जैसा है।'

खैर, उस विचार-गोष्ठी में विन्मस्त भाई की बातों में कुछ दम लगा पर बातें तो सिर्फ अब तक उड़ाई ही जाती रही हैं न। उनका मत था कि साहित्य को न तो खेमों में बांटा जाए और न ही किसी. . . विमर्श के तहत रखा जाए। साहित्य को सिर्फ साहित्य समझा जाए, साहित्य की तरह पढ़ा जाए और साहित्य की समीक्षा साहित्य समझने वालों से ही करायी जाए। अब आप ही देखें, एक साहित्यकार हैं। हिन्दुस्तान में रहते हैं। हिंदुस्तानी भी हैं। पर मिस्टर लिंगर की तरह अंग्रेजी खाते हैं, अंग्रेजी पीते हैं और अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं के बिछावन पर ही सोते हैं। उन्हें हिंदी इसलिए अच्छी नहीं लगती क्योंकि हिंदी की बनिस्बत अंग्रेजी में लिखने का मानदेय ज्यादा है। जनाब अपने मुल्क के अज्ञेय, बच्चन, निराला, दिनकर, प्रेमचंद, जैनेन्द्र, रेणु आदि को उतना भाव नहीं देते जितना कि होमर, वर्जिल, दांते, मिल्टन, कार्ल मार्क्स आदि को देते हैं। इससे उन्हें दो फायदे मिलते हैं— पहला यह कि आम पाठक उन्हें अंग्रेजी का ज्ञाता समझ लेता है और दूसरा कि वे जितना है नहीं उससे ज्यादा उन्हें समझ लिया जाता है। हालांकि वे कभी-कभार ही लिखते हैं पर जब भी लिखते हैं विदेशी कवियों, कथाकारों की तुलना में हिंदी कवियों, कथाकारों की तौहीनी करने अथवा नीचा दिखाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। महाशय गांधीजी को जानते हैं, गांधीजी की विचार-धारा को समाज में फैलाते हैं, पर खाने-पीने के मामले में उन्हें अंग्रेजी खान-पान ही ज्यादा रुचिकर लगता है।

मान्यवर आप ही बताएं, मैं कहूं तो कितना कहूं और कहकर भी क्या कर लूंगा? आखिर मैं भी तो समय-कुसमय लिखता, भेजता और छपता रहा हूं। जिस पेड़

शेष पृष्ठ 86 पर. . .

रमाशंकर श्रीवास्तव

मैंने लड़की देखी

शर्म मौका देखकर अपना वार करती है। जब होश हुआ कि मैं लड़का हूँ, वह लड़की है तब शर्म से मैं दोहरा होने लगा। वैसे मैंने बहुत सी लड़कियाँ देखी हैं। उनकी तरह-तरह की बेरायटी दुकान में सजे माल की तरह रह-रहकर टकरायी है। कुछ को तो दुकान पर ही फेंक दिया है मगर कुछ ऐसी भी रहीं जो आँखों की पुतली में चिपक कर मुझे सपने में परेशान करने लगीं। लड़कियों का रूप-रंग, कद-काठी, बोलचाल, हंसी-किलकारी, चकितकारी, चालढाल, पहनावा, बुद्धि-चतुराई, नादानी-भोलापन इन सबमें मेरे सपने ऊब-चूब होते रहे। तब भी हिम्मत नहीं पड़ी कि खुलकर गार्जियन से अपनी पसंद बता सकूँ। ये गार्जियन लोग बनते तो हैं इंसाफ के तराजू, मगर, ऐसे केस जब सामने आते हैं तो उनमें पहले वे अपनी पसंद ढूँढने लगते हैं। सृष्टि के आरंभ से इन लड़कियों ने पुरुषों को कम विचलित नहीं किया है। लड़ाई-दंगे में, सभा-बैठकों में, क्रिकेट के मैचों में यदि सुंदरियाँ न हों तो पुरुषों का सारा प्रदर्शन फीका पड़ जाय।

ये लड़कियाँ जीवन और मृत्यु का काम करती हैं। मात्र एक चितवन या किलकारी पर प्रेम-मोहब्बत का सोना फूट पड़ता है। दीवाने युवक अपनी जिंदगी दांव पर लगा बैठते हैं, जहर खा लेते हैं, रेल लाइन पर कट जाना, फांसी लटक जाना, न जाने कैसी-कैसी घटनाएं घट जाती हैं। कुछ चिंतन-मनन के बाद मैं निष्कर्ष पर पहुँचा कि वैराग्य-संन्यास देने वाली लड़कियाँ ही हैं। ऐसी हालत में यदि आप नार्मल लाइफ जीना चाहते हैं तो लड़कियों से दूर रहिए।

मगर मेरे संकल्प सूखी लकड़ी की तरह बार-बार टूट जाते हैं। एक दिन मेरे मित्र का फोन आया कि आपको लड़की देखने चलना है। पहले तो कलेजा कांप गया। ये मित्र लोग ही हमें गड्ढे में ढकेलते हैं। अरे भाई, लड़की देखनी है तो आप खुद

जाइए, मुझे उस नरक में क्यों घसीट रहे हैं। परंतु उनके प्रस्ताव पर मेरे भीतर का सोया इंसान जाग उठा। लगे हाथ यह भय भी भीतर घुस गया कि इंसानियत के नाम पर आगे बढ़ा और कहीं अपना ही ईमान डोल गया तब क्या होगा। इस मामले में मुनि विश्वामित्र रेकार्ड कायम कर चुके हैं। राजा ययाति भी डगमगा चुके हैं। फिर मेरी क्या गिनती।

उनको कौन बताए कि इस उम्र में मैं लड़की क्या देखूँगा। एक लड़की देखी तो शादी में बंधना पड़ा और उसी दिन से कोल्हू का बैल बन गया। अब अपनी ही बेटियाँ गन्ने की तरह बढ़ती जा रही हैं। श्रीमती जी रह रह कर वार्निंग देती हैं—लड़कियाँ बढ़ी हो गईं, इनकी शादी की चिंता करो। अपनी चिंता-फिकिर को अब तक मैंने ताले में बंद कर रखा था। मगर श्रीमती जी ने अपना पेचकस लगाकर ताला खोल दिया। सड़क चलते भी मैं वर-कन्या की जोड़ी पर विचार करने लगता, कोई युवक मेरी निगाह से बचकर नहीं जा सकता था। मैं उसमें दामाद बनने की योग्यता टटोलने लगता था।

अपनी रिश्तेदारियों में जब दूसरी लड़कियों को देखता तो तारीफ करने के लिए होंठ फड़फड़ा उठते थे। क्या ग़ज़ब की खूबसूरती है। आँखें टंगी की टंगी रह जाती हैं। उनसे निर्मल भाव से कोई सवाल भी पूछता तो वे मुझे शक की निगाह से देखती थीं। अखबारों में वे रोज ही पढ़ती थीं कि आजकल के अंकल लोग दिल के भले नहीं होते। उम्र पचास हो या सत्तर हो, सभी की पतंग उतनी ही ऊँचाई पर उड़ती है। रिश्तेदार कहते—भाई साहब, मेरी बिटिया के लिए कोई अच्छा लड़का बताइए। मैं हाँ-हूँ में जवाब दे देता परंतु मन ही मन कसमसा उठता। महसूस होता कि अपनी शादी में मैं सचमुच बाजी हार गया। परंतु इस नारद-मोह

में अब क्या रखा था। अपना बेटा योग्य होता तो यह शादी आज ही मंजूर कर देता। दहेज से मुँह मोड़ते ही दसों बेटेवाले सामने दंडवत प्रणाम करते। मगर इधर अपना ही माल खोटा था। बड़े बेटे ने लाड़-दुलार में लुढ़कते-ढुलकते आठवीं तक पढ़ायी की। पढ़ते-पढ़ते थककर घर बैठ गया। लेकिन उसकी जवानी तो नहीं बैठ सकती थी। बेटा बचपन में जिन लड़कियों को चिढ़ाता-मारता था, जवानी चढ़ते उन्हीं के पीछे दौड़ने लगा। कई लड़कियों को घर बुलाकर मुझसे परिचय करवा चुका था।

थोड़े दिनों बाद लड़कियों का आना बंद हो गया और उनकी जगह उलाहने आने लगे—अपने बेटे को समझाइए, बिगड़ रहा है।

जब भी चूल्हे पर चढ़ी दाल जलने को हुई है तो मैंने श्रीमती जी का सहयोग कर नुकसान से बचा लिया है। आज अपने बिगड़ते बेटे को बचाने के लिए उनसे सहयोग चाहा—अपने राजकुमार को समझाओ। किसी दिन यह हम लोगों को पुलिस स्टेशन ले जाकर बैठा देगा।

श्रीमती जी ने ठंडे दिल से मुझे समझाया। आप चिंता मत कीजिए, धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। जवान बेटे से जुवान लड़ाना ठीक नहीं होता है। जोश में कुछ बोल गया तो हमारे सारे किये-कराए पर पानी फिर जाएगा। आप हार्ट के मरीज हैं। स्वस्थ रहना है तो नयी पीढ़ी को केवल देखिए, कुछ टोक-टाक मत कीजिए। जवानी में टोक-टाक वैसे भी कड़वी मिर्च की तरह लगती है। उसे पता है कि आपकी बंदूक कहां छिपाकर रखी है।

उनकी बात पर भीतर-भीतर खौल कर मैं फिर ठंडा हो गया। मौका मिलता तो मैं उनसे कहा—बेटा, मैं इतना बूढ़ा नहीं हुआ हूँ कि मेरी हिम्मत परास्त हो गई हो। अभी हिम्मती बुढ़ों को तुमने देखा ही कहां। संसद भवन से लेकर मंदिर-मठों तक देख

आओ। उनसे एक-एक कारनामे पर दांतों तले उंगली दबा लो। मैं खुद कम साहसी नहीं था। तुम्हारी मां के निगेटिव कमेंट्स ने मुझे बूढ़ा-जैसा बना दिया। यही वह देह है जब चढ़ती जवानी में कई बदमाशों को मैंने चौराहे पर पीट दिया था, ससुराल में लाठी से अजगर को मार डाला था, आंधी में खड़ी कार को लुढ़कने से बचाया था। बांह में मोच आ गई मगर कार को टस-से-मस नहीं होने दिया। तो अपने ही आत्मज से दो-चार वाक्य बोलने में क्या रखा था। अपनी संतति से संवाद रखना समझदार पिता का धर्म है।

मैंने बेटे को पुकारा तो उसने झट मुंह का सिगरेट फेंका और सामने आकर खड़ा हो गया—कहिए!

मैं गद्गद् हो गया। जमाना इतना बदल गया तो भी राम के समान आज्ञाकारी बेटे इस दुनिया में मौजूद हैं।

— बेटे, अब तुम बड़े हुए। तुम्हारी डील-डौल पर मुझे गर्व है। ऐसी डील-डौल पाने के लिए मैं वर्षों तक माल-मलीदा खाता रहा। कई वैद्यराजों से पौष्टिक रसायन बटियां लीं। जितनी औषधि उन्होंने दी नहीं उससे अधिक पैसे ले लिए। फिर भी मैं डटा रहा। उन दिनों भारत में महंगाई धीरे-धीरे चलना सीख रही थी। अब तो पूरे साल रेस लगाती रहती है। सरकार उसका पीछा करती रह जाती है और वह आगे निकल जाती है। महंगाई से बड़े-बड़ों की सेहत बिगड़ जाती है। अपनी सेहत के लिए तब मैंने क्या-क्या न किया। सेहत भी किस्मत वालों को ही मिलती है। अपनी शादी के दिन जब मैं लड़की वाले के द्वार कार से उतरा तो कान में आवाज़ आयी—लड़का तो चिड़ीमार है। मेरा श्रीगणेश ही गड़बड़ा गया। मन उदास हो गया। किसी तरह स्वयं को धीरज दिलाया—बस एक रात की देर है। कल लड़की मिल जाएगी तो तुम्हारी दुनिया बदल जाएगी।

धैर्य का फल मीठा होता है। तुम्हारी मां मिलीं और पहली मुस्कान में ही मेरा दिल जीत लिया। विधान तो यह है कि लड़कियां ससुराल की पहली रात में रोती हैं। पता नहीं तुम्हारी मां ने मुझमें क्या देखा कि हंसने लगीं। असल में जल्दी में दो रंग के जूते पहनकर मैं कमरे में आ गया था। शादी की पहली रात में ऐसी गलतियां हो

जाती हैं। ये सब मैं सच कह रहा हूँ। मगर मेरे पुत्र, अपनी मां से पूछताछ मत करना। बेकार का बवाल मचेगा।

बेटे का धैर्य अब अंतिम छोर पर था। उसे शायद क्रिकेट मैच देखने जाना था। बोला—आपने किसलिए मुझे बुलाया?

मैंने कहा—ऐसा है बेटा, इस मुहल्ले में कई तरह की लड़कियां निवास करती हैं। कुछ बाप के घर रहती हैं, कुछ बेबाप के घर रहती हैं। पता नहीं, कौन कब पैतरा बदल दे। जिसे तुम पक्की सड़क समझो वह दलदल निकल जाय।

— अरे, आप बेकार की चिंता में पड़े हैं। आपका वक्त गुजर गया। मुझे इन लड़कियों के नखरे-पैतरे सब मालूम हैं? आप आराम से घर में रहिए। भगवान के भजन में मन लगाइए। मेरे कारण आप पर कोई आंच नहीं आएगी।



वह तीर की तरह चला गया। मैंने अपने बेटे की मां से कहा—यह बात पक्की है कि हमारा बेटा समझदार है। कम पढ़ा लिखा है तो क्या पूरे मुहल्ले को चरा सकता है। पढ़ाई की डिग्री से कुछ नहीं होता। बिना भिक्षा के जब इतना बड़ा देश चल सकता है तो एक मुहल्ला क्यों नहीं चल सकता। मेरा बेटा किसी प्रेम-सेम में फेल भी हुआ तो आत्महत्या नहीं कर सकता। वह मेरा रक्तबीज है। पांच बार सूसाइड करने की कोशिश के बाद भी मैं आज जिंदा हूँ। मानता हूँ कि लड़कियों के पीछे जो लोग

जान गवां बैठते हैं वे अमर हो जाते हैं। वह अमरता मेरी किस्मत में नहीं लिखी थी। बस, डर केवल इतना है कि मेरे बेटे की बाँडी देख कर कोई लड़की उस पर लुढ़क न जाय? तब मजबूरन बिना दहेज की बहू को घर लाना पड़ेगा।

बेटा जब से जवान हुआ है मेरी श्रीमतीजी उसका पक्ष लेने लगी हैं। वह सात खून भी कर दे तो माफ करा देंगी और मेरी एक निगाह किसी महिला पर पड़ जाय तो मैं बलात्कारी घोषित कर दिया जाऊंगा। आजकल के अखबार पढ़कर बलात्कार के कानून को उन्होंने भली-भाँति समझ लिया है। नारी सशक्तिकरण की हवा में आप उनके किचन पर भी कोई कमेंट नहीं कर सकते। सुबह-सुबह अखबार में पढ़ा कि नेशनल हाई वे पर जिंस-टॉप पहने, चश्मा लगाए एक लड़की ने करवाले से लिफ्ट मांगी। कार में बैठते ही लड़की ने लाखों लूट लिए और बेहोश युवक को सड़क पर फेंक दिया। मैं लड़कियों की मर्दानगी पर अपना आश्चर्य प्रकट कर रहा था। भगवान न करे ऐसी मर्दान लड़की मेरे घर में आए। किंतु इस घटना में मेरी श्रीमतीजी को अबला जीवन की कहानी दिखाई पड़ रही थी। बोलीं—उस युवक ने ही लड़की को जबर्दस्ती कार में बैठा लिया होगा।

मैंने विचार किया, दुनिया में सारी लड़कियां एक समान नहीं हैं। मित्र ने लड़की देखने के लिए जब बुलाया है तो मुझे जाना ही चाहिए। घर से निकल रहा था तो धर्मपत्नी ने अपना धर्म निभाते हुए कहा—लड़की देखने जा रहे हो। अपनी खोपड़ी का ध्यान रखना। अब केश वैसे ही गिने-चुने रह गए हैं। मैंने अबोले जवाब दिया, खोपड़ी का केश से क्या वास्ता। केशविहीन साफ-सुथरी चमकती खोपड़ियों से ही यह देश चल रहा है। चिकनी खोपड़ियां हीरे से भी अधिक कीमती होती हैं।

हमारा लड़का-दल लड़कीवाले के घर पहुँचा। दल में हम चार थे। एक सदस्य के बारे में प्रसिद्ध था कि वे लड़कियों के पारखी हैं। प्रथम दृष्टि में जिस लड़की को रिजेक्ट कर दिया वह कभी सेलेक्ट नहीं हुई। नाश्ता-पानी जमकर हुआ। मिठाइयों की कई किस्में थीं। हमारे बीच जो शूगर पेसेंट थे वे इस सुअवसर को हाथ से निकलने

देना नहीं चाहते थे। जो होगा, देखा जाएगा की निरापद मुद्रा में वे पांच गुलाब जामुन और तीन मोहन भोग उदरस्थ कर गए। नाश्ता डकार के लेवल तक जा पहुंचा। लड़की के पिता को इशारा किया गया कि लड़की लाइए।

शर्म-संकोच की मूर्ति लड़की सामने आकर खड़ी हो गई। मित्र मन ही मन अपनी बहू की कसौटी पर उसे कसने लगे। लड़की के पीछे तीन प्रौढ़ महिलाएं खड़ी थीं। उन सभी की साड़ियां बताती थीं कि अभी-अभी पहनी गई हैं। महिलाओं की आंखों में जो भाव बैठा था उसका मुखरित अर्थ था—माल देखो और अपनी हां-ना जल्दी बताओ। लड़की के पिता चुनाव टिकटार्थी जैसी भंगिमा में अतिशय विनम्र बने करुणा पूरित दृष्टि से हमारी ओर एकटक देख रहे थे।

— बेटी, तुम्हारा नाम क्या है?

हमारी कमेटी के एक मेंबर ने पहला सवाल किया।

— सुरभि - लड़की बोली।

— बड़ा सुंदर नाम है। कितना पढ़ी हो?

— एम.ए।

— पास किया है कि पढ़ रही हो?

इस बहक सवाल पर लड़की के पिता ने हस्तक्षेप किया—पास तो दो साल पहले ही कर चुकी होती। मगर मैंने ही रोक दिया।

— क्यों?

— आजकल की लड़कियों को पढ़ाई में धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए। इससे उम्र छिपी रहती है? लड़का खोजने में कई साल लग जाते हैं। आजकल के लड़के कॉलेज गोइंग लड़कियों को ज्यादा पसंद करने लगे हैं।

पिता ने आगे कहा—अगर आप पास चाहते हैं तो यह मेरे लिए कोई कठिन काम नहीं है। कल ही यूनिवर्सिटी आफिस जाऊंगा। हफ्ते भर में डिग्री घर आ जाएगी।

— क्या? मैं चकित हुआ।

— हां, थोड़ा जुगाड़-वुगाड़ लगाना पड़ेगा। मिनिस्ट्रों को पी.एच.डी. की डिग्री वैसे ही मिल जाती है।

हम लोग हंसने लगे। मगर लड़की नहीं हंसी।

एक अन्य सदस्य ने पूछा—सुरभि! हम

तुम्हें देखने आए हैं, तुम्हें पता होगा।

— जी, पिछले साल दूसरे लोग आए थे।

— अच्छा। तो शादी तब क्यों तय नहीं हुई?

— लड़का कुछ बहक गया था।—पिता बोला।

— जी नहीं - लड़की ने खंडन किया—वह मेरा प्रेमी था। आज भी मेरे इंतजार में बैठा है। मगर पिताजी को वह पसंद नहीं है।

— तो हमारे लड़के को तुम पसंद करती हो? बायडाटा तो देखा होगा।

— लेकिन बायडाटा से शादी तो नहीं होगी।—लड़की बोली।

— अरे तुम तो बहुत बोलड हो बेटी। देश को ऐसी ही बोलड लड़कियां चाहिए। तुम्हें कैसा पति चाहिए, हमें खुलकर बता दो।

— जैसा चाहिए, वैसा आपके पास नहीं है।—लड़की के उत्तर पर सभी सन्न रह गए।

मैंने सोचा कमेटी का महत्वपूर्ण मेंबर होकर भी मैंने कुछ खास नहीं पूछा। मैंने पूछ लिया—सुरभि जी, हमें तो आप पसंद हैं।

— लेकिन मुझे तो थोड़ा समय चाहिए।—सुरभि बोली।

— कितना समय चाहती हैं?

— तीन दिन काफी हैं।

— ठीक है, चौथे दिन पूछ लेंगे।

हम लोग चलने के लिए उठे। हमने लड़की के बाप को ऐसे देखा जैसे चार्टर एकाउंटेंट ने आडिट पूरी कर ली हो और संकेत दिया हो कि रिपोर्ट सही भेज देंगे।

एक बार फिर चाय-पानी चला। लड़की की बोलडनेस बाबा रामदेव की भ्रामरी की तरह सभी के कानों में गूंज रही थी। मित्र सास-बहू के भावी एडजस्टमेंट की चिंता में डूबे हुए थे।

अपनी हरी झंडी दिखा कर हम लोग चले आए। लड़की तीसरे दिन की रात अपने प्रेमी के साथ भाग गई। मुझे भारी अफसोस हुआ, उस प्रेम के धुंधलके में हम लड़की देखने गए ही क्यों!

आर-7, वाणी विहार, उत्तम नगर
नई दिल्ली-110059

. . . पृष्ठ 83 का शेष

की डाली पर बैठा हूं उसे ही कालिदास की तरह काट तो नहीं सकता न। चाहे व्यंजन में मिर्च, मसाला अथवा रामरस हो या न हो पर विचार-गोष्ठी के बारे में सदा कि भांति रिपोर्ट यही छपेगा कि माननीय ज्ञानवान जी की अध्यक्षता में संपन्न एक ऐतिहासिक विचार-गोष्ठी में देश के मूर्धन्य एवं वरेण्य विद्वानों ने सभी लेखकों को एक मंच पर आने का स्वागत किया। सभी का कहना था कि साहित्य को जनमानस के काफी निकट लाने में सारे साहित्यकारों को सार्थक प्रयास करना चाहिए। साथ ही सभी को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि नवोदितों को ज्यादा से ज्यादा प्रश्रय दिया जाए ताकि आनेवाले दिनों में साहित्य का भला हो।

जी हां, अब तक साहित्य का भला नहीं हुआ है। कोई भला करने वाला पैदा ही नहीं हुआ। हां, अब कुकुरमुत्ता के मोल को कितने लोग समझ रहे हैं। यह वही कुकुरमुत्ता है जनाब, जिस पर नर निराला नाहर ने सबसे पहले काव्य में केवल स्थान ही नहीं दिया बल्कि कुकुरमुत्ता को अभयदान देकर गुलाब से मुकाबला कराया। आज यह कुकुरमुत्ता 'मशरूम' के नाम से दस अथवा पंद्रह रुपया ज्यादा ही है। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूं कि कब किसका भाग्य चमक जाए और जिसे हम फटीचर कहते हैं, वही ज्ञानपीठ हथिया ले, कहा नहीं जा सकता। यहां सब कुछ संभव है। अब वो जमाना नहीं रहा कि आप भारत रत्न पाकर ही लब्धप्रतिष्ठ होंगे। बल्कि सच यह है कि कई महान गणमान्य लोग भारत रत्न अलंकरण से बचना चाहते हैं। पता नहीं साहित्य के क्षेत्र में वह दिन कब आएगा जब हर विशिष्ट एवं योग्य साहित्यकार ज्ञानपीठ, भारत-भारती, सरस्वती सम्मान आदि से बचकर निकल जाना बेहतर समझेगा क्योंकि जनमानस में हर बार यही संदेश जाता है कि ऐसे पुरस्कार दिए नहीं जाते बल्कि ले लिए जाते हैं। आगे फिर कभी।

मुख्य कार्य प्रबंधक/खड़गपुर कारखाना
(राजभाषा अनुभाग), दक्षिण पूर्व रेलवे
पोस्ट-खड़गपुर, जिला-मिदनापुर पश्चिम-721301 (प.ब.)

मधुसूदन पाटिल

यहां प्यारना मना है

यहां प्यारना मना है। प्यारोगे तो मरोगे। इस देश का यारो क्या कहना। ये हैं नंबर वन गहना। यहां चोरना चलेगा, पर दिल का नहीं। यहां डाका चलेगा, लेकिन दिल पर नहीं। महंगा कर्जाऊ दहेज व्यापार चलेगा, लेकिन बिना दहेज, सहज प्रेम विवाह नहीं। यहां जर खरीद जोरू चलेगी, जमीन के लिए बाप-बेटे का कल्ल चलेगा, पर ये प्यार-व्यार के लिए, नो एण्ट्री। ढाई आखर का फार्मूला यहां फेल है। नौजवानों को सरकार चुनने की आजादी है, पर जीवन साथी चुनने की नहीं। भ्रष्टाचार यहां राजनीतिक शिष्टाचार कहलाता है। सियासत में दागी अच्छे हैं पर उनकी रियासत में प्यार के बागी बहुत बुरे हैं। नेताओं का दल बदल बुरा नहीं, पर छोरे-छोरियों की दिल की अदला-बदली बहुत बुरी है। कोई दिलवाला दुल्हनिया ले गया तो फिर देखो कितने अमरीशपुरी हुंकार भरने लगते हैं।

प्यारना है तो डरना सीखो। खापों की खप से खौफ खाना सीखो। यहां प्रेमी को गले लगाना है, तो पहले मौत को गले लगाने को तैयार रहो। यहां बड़ा वही है जो कानून तोड़ता है, मिलजुल कर तोड़ता है। खापिकी हिंसा हिंसा न भवति। यहां की प्रेम गली अति सांकरि है, जो घुस गया सो घुट-घुटकर मर गया। क्या कबीर ने नहीं समझाया था; सीस उतारे भुई धरे, सो पैसे घर माँहि। तब खुद सीसी उतारना होता था, अब यह ठेका खप पाने वालों ने ले रखा है। अब तो दो खापन के बीच में साबुत बचा न कोय। कैसे नादान हैं ये। मीराबाई ने भी चेताया था; प्रीत किए दुख होय। पर छोरियां हैं कि प्रेम दीवानी हुई जा रही हैं। यहां राधाकिशन की रासलीला सड़क पर सजाई जा सकती है। नौजवानों को प्रेमलीला रचानी है तो प्रदेश ही नहीं दुनिया छोड़नी पड़ेगी। यहां प्रेमीजनों की हालत अनारकली जैसी हो गई है। खापी उन्हें जीने नहीं देते, खपती उन्हें मरने नहीं

देते। याद करो वो गाना और वो जमाना। जब अनारकली ने गाया था, 'प्यार किया तो डरना क्या?' मुगलेआजम ने उसे दीवार में जिंदा चिनवा दिया था। लेकिन मुगलेआजम भी सचमुच के ग्रेट थे। उन्होंने दीवार के नीचे सुरंग बनवाकर उसे देश निकाला दे दिया था। कम से कम उसकी जान तो बख्श दी थी। यहां खापे-आजम छोरा-छोरी को इकट्ठा ही स्वर्ग भेज देते हैं। ये उनके मां-बाप को भी नहीं माफ करते। उन्हें भी गांव निकाला दे देते हैं। ये महाभोज के महापक्षी हैं।

सूफी जिस इश्क को इबादत कहते हैं, खापी उसे बगावत मानते हैं। लव को आजकल फिल्मवाले कमबख्त और कमीना कहते हैं। सूफी शायर मलिक मोहम्मद ने कहा था, 'प्रेम छाड़ि नहीं लोन किछु' उनके लिए प्रेम से बढ़कर संसार में कोई सौंदर्य ही नहीं था। आज खापियों को प्रेमियों की हत्या से बढ़कर इज्जत की बात नजर नहीं आती।

तो मेरे देश के प्यारो, न देखो फिल्मों। न सुनो गाने। प्यार के बोल भी मत बोलो। क्या तुमने नहीं पढ़ा कि इश्क ने गालिब को निकम्मा कर दिया था। काम के आदमी बनना है, तो पंगा मत ले यार। नहीं तो तुम्हारी मां-बाप की हड्डियां गंगा में बहाने वाला नहीं मिलेगा। बहुत हो चुकी प्यार की नाटकबाजी। अब प्यार में कुर्बानी दी नहीं जाती, ली जाती है। अब इतिहास को मत भुलाओ। उस मध्ययुगीन कबीलाई रिवाजों को याद करो जब बलि प्रथा जारी थी। ये नैतिकता के पहरेदार सिर्फ प्यार पर पहरा देते हैं। खापियों की एकमात्र ड्यूटी है प्रेमीजनों की चौकीदारी। यहां प्यार के अलावा बाकी सारे गुनाह माफ हैं। जिनके मुखारविंद बयानों से ओवरफ्लो होते रहते थे उनके ढक्कन अब बंद हो गए हैं। उन्होंने मुंह में दही जमा लिया है। उन्हें और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा। उन्होंने संविधान की रक्षा

राजी सेठ

दुकानदार

दुकानदारों को दुख होने लगा है कि कुछ लोग बिस्कुट के पैकेटों तक को तारीख देखकर खरीदने-खाने लगे हैं।

दुकानदारों को दुख है कि उन्हें पहले से पता क्यों नहीं था कि ग्राहक इतने चालाक हो गए हैं।

दुकानदारों को सोच होती है कि कहीं ऐसा न हो कि इन कुछ लोगों की बात ज्यादातर लोगों तक पहुंच जाए।

दुकानदारों को चिंता होती है कि कब सारे के सारे लोग इन थोड़े से लोगों में बदल जाएंगे और उन्हें पता भी नहीं लग पाएगा।

दुकानदारों को आशंका होती है कि इन सबकी बिनबिकी चीजों को कौन खायेगा?

दुकानदारों की इच्छा होती है कि वे ऐसे लोगों को धुआंधार गालियां दें पर उन्हें उनके सामने लगातार हंसमुख बने रहना पड़ता है।

दुकानदारों की आकांक्षा होती है कि सुनामी जैसा कुछ घट जाए और वे थोक के थोक पैकेट बोरी में भरकर भेज सकें वहां-तारीख की ऐसी तैसी वाले इलाके में।

दुकानदारों को खुशी होती है कि हल निकल आया है। अब वे कुछ समय तक आराम से सो सेकेंगे— देश में आपदाओं की अगली फसल आने तक।

एम-16, साकेत, नई दिल्ली-110017

की कसम खाई है। अब सामाजिक समस्याओं पर मुंह न खोलने की कसम भी खाई है। वे वोटों के सौदागर हैं। वे सिर्फ नोटों की मालाएं पहनते हैं। वरमाला तुम्हारी समस्या है। प्यारो! संभालो अपने अरमान, नहीं तो झेलने को तैयार हो जाओ खापिक फरमान। और नहीं तो कम से कम मोमिन की ही सुन लो 'क्या क्या न किया इश्क में, क्या क्या न करेंगे।' अल्लाह इन्हें माफ करे, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

1041, अर्बन एस्टेट-2, हिसार-125005

कुंवर प्रेमिल

मुफ्त का कुत्ता मिल जाए

और उन्हें कुत्ता मिल गया।

उन्हें यानि मेरे पड़ोसी जी को। हरा न लगा न फिटकरी, रंग चोखा। मुफ्त में कुत्ते का मिल जाना उन्हें कारू के खजाने से कम नहीं था। हुआ यूं कि अलस्सुबह मैं घूमने निकला तो खीसें निपोरते पड़ोसी अपने दरवाजे पर खड़े मिलें बोले, 'भैया, न हो तो आज हमऊं चलत हैं, आपके साथ घूम-घाम आहें। वो क्या है कि हमें धुरकौआ (घूरना) चलत है सो श्रीमती जी की नींद में खलल पड़ता है।'

'वाही से उनकी नींद खराब हो जाती है। सो आप कहें तो आपके साथ तमऊं सैर-सपाटा कर लेंगे। ससुर हिंया इस दरवाजे पर खड़े-खड़े इस ससुरी चीन की दीवाल (बाऊंड्रीवाल) को खड़े-खड़े कब तक निहारते रहेंगे।'

मैंने कहा, 'अजी, मुझे क्या परेशानी होगी। चलिये, चले चलिये।'

'वाही तो भाई साब, पर क्या भाभीजी नहीं जाती हैं, घूमने क्या।'

मैं बोला, 'उन्हें भी धुरकौआ चलता है। सो मैं सुबह टहलने में ही अपनी भलाई समझता हूं।'

पड़ोसी बोला, 'यह भी खूब कहिन। हम दोनों की एक ही कहानी निकली। एक ही मर्ज निकला। अब तो रोज की जोड़ी बन जायेगी हमारी। जो है सो....'

फिर क्या था? हम दोनों ही जी भरकर घूमे। पड़ोसी को इस कदर कुत्ते पसंद होंगे यह तो मुझे उस दिन पता चला। झबरे, मोटे, मरियल, पुंचकटे, थुलथुल, बचकानी, सभी प्रकार के कुत्तों को देख-देख कर वह गदगद हो जाते। अलबत्ता, सड़क छाप-आवारा कुत्तों को देख-देख खूब गरियाते।

आखिर सैर-सपाटा खत्म हुआ तो घर की सुधि आई। हमारे पीछे-पीछे न जाने

कब से एक कुत्ता 'कैटवाक' करता चल रहा था। कभी कुत्ता मेरे पीछे चलता कभी पड़ोसी के।

'अजीब समाजवादी किस्म का कुत्ता है, दोनों को खुश किये है।'

'क्या बोले भाई साहब जो है सो।'



मेरी बात सुनकर पड़ोसी बोल उठे।

'कुछ नहीं यार, कुत्ते की किस्म बता रहा था।' मेरी हंस छूट पड़ी।

'जर्मन सेफर्ड किस्म का दिखाई देता है, जो है सो. . .' पड़ोसी बोल पड़े।

इस बीच हमारा घर आ गया था। अब कुत्ते की सोचने की बारी थी। किसके साथ चले और किस कह दे बाय. . .टाटा। तब तक पड़ोसन ने मुस्कुराते हुये गेट खोल दिया। पड़ोसी और कुत्ता, पड़ोसी के घर में

प्रवेश कर गये।

हमारी श्रीमतीजी हमारे इस्तकबाल के लिये दरवाजे पर खड़ी मिलीं। मुफ्त के कुत्ते को पड़ोसन के घर प्रवेश करते देख उनके मुंह का जायका खराब हो गया। वह मुझ पर गुराहीं, 'उधर खड़े होकर खीसें निपोरने की क्या जरूरत थी? तुरंत चले आते तो कुत्ता इस घर में नहीं आ जाता। अच्छा-भला, पला-पलाया कुत्ता पड़ोसी को मुफ्त में नहीं मिल गया क्या?'

मैंने श्रीमतीजी के तेवर देखकर कहा, 'माफ करना, मैं दो-दो जानवर एक साथ नहीं रख सकता। तुम मुझ पर गुराहीं, वह तुम पर गुराता तो मजा किरकिरा नहीं हो जाता।'

श्रीमतीजी का मूड अस्थिर था। बड़ी देर तक पड़ोसी के बच्चों को कुत्ते के साथ खेलते देखे, जलती-भुनती रहीं। खुन्नस में उस दिन उन्होंने चाय-नाश्ते की व्यवस्था नहीं की। भूखे पेट ही दफ्तर चला गया। आदमी से ज्यादा कुत्ते की अहमियत कितनी है, यह मुझे उस दिन ही पता चली। पड़ोसी के घर में हलचल मची रहती। कुत्ता घर के बाहर-भीतर दौड़ लगाता फिरता। हमारे बच्चे वहां जाने से कतराने लगे। दूर से ही कुत्ते को ललचायी नजरों से देखने लगे।

मजा तो तब आता, जब कम पढ़ी-लिखी पड़ोसन कुत्ते को हिंदी में निर्देश देती, 'इधर आ, उधर मत जा।'

बच्चे पढ़े-लिखे थे, 'गो-गो, कम बैक' कह रहे थे।

बेचारा कुत्ता हिंदी और अंग्रेजी निर्देशों के बीच परेशान था। जैसे-तैसे झेल रहा था।

एक दिन श्रीमती जी कोप भवन से बाहर निकलीं। रानी कैकयी के अंदाज में बोलीं, 'या तो कुत्ता या चली मैं मायके।' एक जेवर तो कभी ला नहीं सके, कम से

प्रदीप शशांक

बगुला

कुलयुगी चूहा अपने काले कारनामों से बहुत बदनाम हो चुका था। वह सफेद पोश खरगोश की ख्याति से मन ही मन जलता था। उसके मन में खरगोश जैसा दिखने की भावना जोर मारने लगी थी। इसी भावना को फलीभूत करने के लिए वह खरगोश के आगे-पीछे घूमने लगा, तथा उसके जैसा बनने का उपाय पूछने लगा।

कुछ दिन तक खरगोश ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और उसे झिड़क दिया। चूहा भी कच्चा खिलाड़ी नहीं था, आखिर उसने साम-दाम-दण्ड-भेद का सहारा लेकर, खरगोश को राजी कर ही लिया। खरगोश ने उसे अपने गुप्त अड्डे पर गुड़ की चासनी का स्नान कराया एवं उसे रूई की गोदाम में छोड़ दिया। कुछ देर बाद चूहा जब बाहर निकला तो उसके पूरे शरीर में रूई चिपकी होने के कारण वह भी खरगोश जैसा दिखने लगा।

उधर खरगोश ने अपनी ख्याति का फायदा उठाते हुए पूरे जंगल में प्रचारित करवा दिया कि बिल्ली से मुठभेड़ में बदमाश चूहा मारा जा चुका है। चूहा खरगोश का धर्म निभाने लगा।

1048, मंजूपथ, दीक्षितपुरा
जबलपुर (म.प्र.)-482002

परमानंद प्राप्त हो जाता है। कुत्ता घर में रहता है, इसलिये उसका स्वस्थ रहना परमावश्यक है। पूरे घर में कुत्ता राज होता है। कुत्ता बेडरूम में भी बिना खांस-खकार के प्रवेश पा जाता है। तभी न वह आदमियों के जैसे किसी भी मौसम में पिल्ले पैदा कर सकता है।

मैं अब रोज बिला नागा घूमता हूँ। शायद कोई मुफ्त का कुत्ता मुझे भी मिल जाये और इस तरह मेरी पत्नी को खुश करने का एक सुअवसर मुझे भी मिल जाये।

एम.आई.जी.-8, विजयनगर
जबलपुर-2 (म.प्र.)

कम एक कुत्ता ही ला देते। मन बहला रहता। कितना वफादार होता है कुत्ता।

‘यह भी खूब कही तुमने। मैं जो तुम्हें इत्ता बहलाता हूँ, वह कुछ ज्यादा नहीं। कुत्ते की जरूरत फिर भी पड़ गयी। महारानी जी, कुत्ता नहीं रोटी वफादार होती है। तुम मुझे रोटी खिलाती हो, इसलिये मैं तुम्हारा वफादार पति हुआ। एक साथ दो वफादारी कैसे रह सकते हैं भला। आई मीन, एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं भला। मेरे रहते तुम्हें कुत्ते की क्या जरूरत है भाई।’

खैर साहेब, बात आई गई हो गयी।

एक दिन कुत्ते के लगातार भोंकने से मेरा बी.पी. बढ़ गया। पड़ौसी को दम देने के ख्याल से मैं उधर गया तो वहां का नजारा देख ठिठक कर रह गया। एक वृद्ध सज्जन सोफे पर अपनी टांगें समेटे बैठे थे। कुत्ता उन्हें देखकर लगातार भोंके जा रहा था। पड़ौसी परिवार का कहीं दूर-दूर तक अता-पता नहीं था।

घर का ताला बंद देखकर वृद्ध अनजाने में कुत्ते के कमरे में घुसते चले गये। ऊपर से गुस्ताखी यह कि वह कुत्ते से बिना पूछे, कुत्ते के ही सोफे पर बैठ गये। कुत्ता उन्हें कैसे माफ कर देता भला। मैंने कुत्ते को अंग्रेजी में डांटा तो तुरंत मान गया। कुत्ते का अंग्रेजी ज्ञान देखकर मैं दंग रह गया। इधर हमारे बच्चे ट्यूशन लगाने के बाद भी बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी में पासिंग मार्क्स ला रहे थे।

खैर ... वृद्ध महाशय की जान में जान आई। कुत्ता चुप हो गया था, पर बाद में निपटूंगा वाले अंदाज में उन्हें घूर रहा था।

मुझे उसी सोफे पर बैठाते हुए वृद्ध महाशय बोले, ‘यह बला कब आई?’

मैं बोला, ‘अभी कुछ दिन पहले ही। बिना बुलाये मेहमान सी आ टपकी।’

वृद्ध बोले, ‘एक नजीर सुनें।

कुत्ता पाले सो कुत्ता

बहन के घर में भाई कुत्ता

ससुर के घर में जमाई कुत्ता

कुत्तों का होगा वह सरदार

जो रहे बेटी के द्वार।

यानि कुत्ता बड़ा निकृष्ट जीव है। जिसने उसे रखा से स्वर्ग तो क्या ठीक से नरक में भी जगह नहीं मिलती।’

कुत्ता पुराण सुनकर मैं फिर

सही-सलामत अपने घर आ गया। अपने घर आकर मैंने अपनी पत्नी को वृद्ध महाशय के अमृत वचन कह सुनाये। साथ ही आश्वस्त किया कि वह पड़ौसन से जलना-भुनना छोड़ दे। वृद्ध महाशय के रहते अब कुत्ता वहां टिकेगा कैसे?

दूसरे दिन पत्नी ने जो खबर सुनाई, मैं हक्का-बक्का रह गया। बहू ने ससुर की टिकिट काट दी। बेचारे वृद्ध दवा कराने गांव से आये थे, बिना दवा कराये ही बैरंग वापिस लौट गये।

दुनिया में न जाने कितने प्रकार के प्रेमी होंगे। सांप-सियार प्रेमी, बिल्ला-बिल्ली प्रेमी, शेर-भालू प्रेमी, हाथी-हथिनी, गेंडा-गेंडी, छछूंदर-गिलहरी प्रेमी आदि-आदि। परंतु सबों से ऊपर हैं कुत्ता-कुतिया प्रेमी। तभी न पांडवों के ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर का कुत्ता प्रेम उन्हें हिमालय की ऊंचाइयों तक ले आया था। वह अपने प्रिय कुत्ते के साथ सशरीर स्वर्ग चले गये थे।

कुत्ता है ही ऐसा जानवर जो लोगों को स्वर्ग तक सीधे पहुंचा देता है। काटे तो चौदह इंजेक्शन से कम में मामला हल नहीं होता। खुदा न खास्ता इंजेक्शन न मिले तो सीधे स्वर्ग पहुंचने में फिर कोई देर नहीं लगती। उसमें बला की दृढ़ता है। स्थायित्व है। दसों साल उसकी पूंछ पुंगेरी में डाल कर रखो, सीधी कभी न होगी। जब भी निकलेगी, टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी।

कलयुग में कुत्ता प्रेम ज्यादा पनप रहा है। हर घर में एक कुत्ता पल रहा है। कुत्ता पालन को बढ़ावा देने के लिए एक टी.वी. चैनल बाकायदा जी-जान से लगा हुआ है। कुत्ता एडाप्ट करने के लिये विज्ञापन पर विज्ञापन दे रहा है। आदमी का बच्चा एडाप्ट करने में दुनियां भर की झंझट है। लेकिन कुत्ते का पिल्ला लाओ, हंसी-खुशी जीवन बिताओ। घरों में भांति-भांति के कुत्ते पाले जा रहे हैं। सोने के लिये सोफे मुहैया कराये जा रहे हैं। अपने बच्चे को दूध मिले न मिले पर कुत्ते को हड्डी जरूर चाहिये। जिन घरों में कभी मांस नहीं पका, वहीं कुत्ते के लिये मांस पकाया जा रहा है। कुत्ता मांस खा रहा है, उसे देखकर मालिक तृप्त हो रहा है।

कुत्ते के बीमार होने पर डाक्टर हैं, अस्पताल हैं। कुत्ता गोलियां, कैप्सूल खाकर रोग से मुक्ति पाता है तो मालिक को

श्रवण कुमार उर्मलिया

शिष्टाचार का कलंक

भ्रष्टाचार ने कहा— ‘मित्र, शिष्टाचार! तुम तो जानते ही हो कि मेरे ऊपर कलंक ही कलंक है। इस मामले में मैं बहुत ही सौभाग्यशाली हूँ, दोस्त! क्योंकि मैं इस देश में रह रहा हूँ। पर क्या तुम्हारे नाम पर भी कुछ कलंक हैं इस देश में? यदि हैं, तो मुझे उनके विषय में बताकर मेरी जिज्ञासा को शांत करो।’

शिष्टाचार ने मुस्कराते हुए कहा— ‘क्या कह रहे हो, मित्र! मेरे नाम पर तो यहां कलंकों की भरमार है। मेरी आड़ लेकर न जाने कितने कलंक यहां बेशर्मी से जी रहे हैं। तुम्हारी उत्सुकता को देखते हुए ही एक कलंक की कथा सुनाता हूँ। तुम ध्यान लगाकर सुनो ताकि तुम्हें पुण्यलाभ हो सके।’

शिष्टाचार ने अपने कलंक की कथा सुनानी शुरू की—

‘मित्र भ्रष्टाचार, विश्व की एक संस्था है जिसका नाम है संयुक्त राष्ट्र संघ। इसके भूतपूर्व महासचिव स्वर्गीय डैग शोल्ड बहुत अकेले रहा करते थे और अपने एकाकीपन से प्रेरणा लेकर उन्होंने कहीं लिखा था— ‘प्रार्थना करो कि तुम्हारा अकेलापन तुम्हें प्रेरित करे ताकि तुम कोई ऐसा कारण तलाश कर सको जिसके लिए जिया जा सके; और वह कारण पर्याप्त महान भी हो ताकि उसके लिए मरा भी जा सके।’

इंसान चूँकि बेहद अकेला होता है, इसलिए जीने के लिए वह तरह-तरह के कारण तलाश लेता है। कोई चोरी का इज्जतदार पेशा अपना लेता है, कोई राहजनी का शालीन धंधा करने लगता है। बेईमानी, उठाईगीरी, स्मगलिंग इत्यादि पवित्र धंधे भी इंसान के अकेलेपन की उपज हैं। एक धनी-मानी व्यक्ति अपने अकेले से इतने ऊब गए कि आजकल सार्वजनिक स्थानों र भीख मांगते हैं।

पर मैं जिस कलंक की कथा कह रहा हूँ वह न चोर है न उठाईगीर। बल्कि

इसने सहारा लिया है पैसों का। पैसों के लिए जीता है और पैसों के लिए मरता है। वह हमेशा फायदे-नुकसान के समीकरणों में उलझा रहता है।

यह सिर्फ इसलिए जिंदा है क्योंकि इसे कोई नुकसान नहीं हो रहा है। नुकसान की बात सोचकर ही इसकी आत्मा चीत्कार कर उठती है।

जिसे दुनिया कंजूसी कहती है, उसे यह अपना श्रृंगार समझता है। इसके लाभ ‘मक्खीचूस’ का विशेषण जुड़ता है तो यह अपने आप को गौरवान्वित महसूस करता है।

इसकी बीवी पाककला में निपुण है। तरह-तरह के व्यंजन बना सकती है। पर यह घर में खाना खाता है तो इसका हाजमा खराब हो जाता है। कोई भी चीज पचती ही नहीं। लेकिन मीटिंगों और सेमिनारों में, जहां मुफ्त का खाना मिलता है, इसकी पाचन-क्रिया सुचारु रूप से चलने लगती है। वहां यह जमकर खाता है। लोग संदेह करते हैं कि इसके पेट में भी गाय-भैंसों की तरह जुगाली करने वाला यंत्र फिट है।

घर आकर यह निढाल हो जाता है और कराहने लगता है। बीवी से कहता है कि उसका पेट बंध गया है— उसे कन्स्टिपेशन हो गया है। बीवी उसे कायमचूर्ण देना चाहती है तो यह कहता है— ‘इससे काम नहीं चलेगा। सामने वाले पड़ोसी से जरा पुदीनहरा मांग लाओ।’

कन्स्टिपेशन (कोष्ठबद्धता) तो इसके लिए वरदान है। यह मन-ही-मन बहुत खुश होता है। चलो, शरीर से कुछ बाहर नहीं निकलेगा, कोई नुकसान नहीं होगा।

जिस दिन इसे खुलकर मोशन (पेट साफ) हो जाता है, यह उदास हो जाता है। शरीर से कुछ नहीं निकल गया। बड़ा नुकसान हो गया।

दफ्तर में कहीं भी इसे समाचार पत्र दिखेगा, यह घर ले आता है। बेशर्मी से

दोस्तों से अखबार मांग लेता है और लौटाता नहीं। गलती से अखबारवाले द्वारा फेंका गया पड़ोसी का अखबार यदि इसके घर पर आ गिरे, तो यह उसे भी पचा जाता है। किसी के घर यदि पति-पत्नी गए हैं और वहां कोई पवित्र इसे दिख जाए, तो पत्नी से कहेगा— लिए चलो पत्रिका। पढ़कर लौटा देंगे।’ शिष्टाचारवश यह इतना भी पूछने की जरूरत नहीं समझता है कि पत्रिका के मालिक ने उसे पढ़ा है या नहीं?

मुफ्त की रद्दी कबाड़ी को बेचने के पहले कबाड़ी से झिंकझिंक करेगा, मोलभाव करेगा और बाजारभाव से पांच पैसे ज्यादा प्रतिकिलो का सौदा तय कर लेगा। यह अपने व्यवहार से कबाड़ी को एहसास करा देगा कि वह अपने से बड़े कबाड़ी से बातें कर रहा है। एक बार एक कबाड़ी ने इससे प्रभावित होकर का था— ‘साहबजी, आप भी इस धंधे में क्यों नहीं चले आते? आपमें तो कबाड़ी की जन्मजात प्रतिभा है।’

वह कबाड़ी क्या जाने कि हमारे समाज में कई वर्ग के कबाड़ी होते हैं। कबाड़ी वर्ग के कबाड़ी, मध्यम श्रेणी के कबाड़ी, उच्च श्रेणी के कबाड़ी, अभिजात वर्ग के कबाड़ी इत्यादि। कबाड़ी तो यह है ही। यह सुविधानुसार हरेक श्रेणी में भ्रमण करता रहता है। साढ़े चार रुपए किलो पेपर की रद्दी बेचते समय वह निम्नस्तर पर रहता है। साठ रुपये किलो एलीम्यूनियम का कबाड़ बेचते समय उच्चस्तर पर आ जाता है।

किराने की दुकान से यह सामान खरीदेगा तो दुकानदार से कहेगा— ‘जरा, पांचों आइटम अलग-अलग पॉलिथीन के पैक में देना।’

दुकानदार प्रतिवाद करेगा, तो यह लड़ पड़ेगा— ‘यार, सामान फ्री में तो दे नहीं रहे हो। और हर सामान में पॉलिथीन बैग का दाम तो लगाते ही होंगे?’

घर आकर अपनी पत्नी को अपनी उपलब्धि बताता है- 'मैंने एक्स्ट्रा बैग ले लिये थे। सब जमा करते रहना। कबाड़ी को बेचेंगे।'

पत्नी अपने पति का गर्व करती हुई अपने मां-बाप को कोसने लगती है कि उन्होंने उसे किस कबाड़ी के हाथों में दे दिया।

यह अपने महीने भर के खर्चों पर कड़ी नज़र रखता है और समय-समय पर उनका मूल्यांकन करता रहता है।

कचरेवाली घर में कचरा ले जाने का महीनेभर का तीस रुपये लेती है। यह हिसाब लगाता है। तीस रुपये अर्थात् एक रुपये प्रतिदिन। कचरा अर्थात् सब्जियों की छीलन, अंडों के छिलके, चाय की पत्ती इत्यादि। कुल मिलाकर एकाध किलो तो होता होगा ही। यदि बेचा जाए तो फ्री में भी न बिके। फ्री का कचरा और इसे ले जाने के लिए एक रुपया प्रतिदिन का खर्च?

अचानक यह कचरेवाली का अस्पृश्य समझने लगा। बीवी से बोला- 'भई, हत अपने घर का कचरा कचरेवाली को नहीं छूने देंगे। मैं खुद कचरा फेंक आया करूंगा।'

यह बड़े सवरे घर का कचरा लेकर निकल पड़ता है। और किसी दूसरे के घर के सामने फेंककर वापस आ जाता है। इसे बहुत आत्मसंतोष होता है। अपने (कु) कृत्य से यह तीस रुपये महीने की बचत कर रहा है। साथ ही शिष्टाचार का कचरा कर है।

यह कचरेवाली पर चिढ़ता भी है क्योंकि वह आठ-दस घरों का कचरा फेंककर ढाई-तीन सौ रुपये महीना कसा लेती है। यह गहराई से सोचता है कि यह काम तो उसकी बीवी भी कर सकती है। फिर यह उदास हो जाता है। बीवी कचरेवाली की तरह सुंदर नहीं है। सुंदर कचरेवाली को ही कचरा मिलता है। यह मन-ही-मन अपने सास-ससुर को कोसने लगता है कि उन्होंने कैसा अमावस का टुकड़ा उसके पल्ले बांध दिया।

यह हमेशा हिसाब लगाता रहता है कि इसे किसी चीज में घाटा तो नहीं हो रहा। घाटे के भय से यह हमेशा शंकित रहता है। कहीं चला जा रहा है और एकदम रुक जाएगा। अपनी जेब से पर्स निकालकर रुपये गिनेगा। फिर चिंतित होकर वापस लौट

पड़ेगा; जमीन को देखते हुए, जैसे कुछ ढूँढ़ रहा हो। फिर रुककर मुस्कराएगा और मन ही मन बड़बड़ाएगा- कल मैंने दो रुपये के पचास ग्राम टमाटर खरीदे थे। कितना बुद्धू हूँ मैं भी। मैंने समझा कि दो रुपये गुम गए।

घर में इसने दो सौ रुपये महीना पर महरी लगा रखी थी। इसने बड़ी गंभीरता से हिसाब लगाया। महीने के दो सौ, साल भर के चौबीस सौ, और दस साल के चौबीस हजार। महरी झाड़ू-पोंछा करती थी, बर्तन धोती थी और कपड़े साफ करती थी। इसने मन-ही-मन सोचा बीवी कचरा नहीं फेंक सकती पर कपड़े तो धो ही सकती है। इससे सौ रुपये महीने बचेंगे। अर्थात् साल में बारह सौ और दस साल में बारह हजार।

इसने पत्नी को स्नेहपूर्वक समझाया- 'सौ रुपये की यह बचत तुम अपने ब्यूटीपार्लर के खर्चों में इस्तेमाल कर सकती हो। सोचो भला, साल के बारह सौ रुपये तुम्हें कितना सौंदर्य दे सकते हैं।'

अमावस-मुखी पत्नी मान गई। सौ रुपये महीने बचने लगे। अब बचे झाड़ू पोंछा और बर्तन। इसने पत्नी को फिर समझाया- 'यह महरी बड़ी लापरवाह है। बर्तन तोड़ती-फोड़ती रहती है। कल से बर्तन मैं धो दिया करूंगा। तुम महरी को मना कर देना।'

पत्नी ने पूछा- 'इससे जो पचास रुपये महीना बचेंगे, उसे भी मैं ब्यूटी-पार्लर पर खर्च कर सकती हूँ?' इसने प्यार से कहा, 'इतना ज्यादा सौंदर्य भी ठीक नहीं, प्रिये! कुछ दूसरी औरतों को भी मौका दो।'

पचास रुपये महीना और बचने लगे। अब बच गए झाड़ू-पोंछा। इसने फिर अपनी अर्द्धांगिनी को समझाया- 'अपना घर है ही तिना बड़ा? मात्र झाड़ू-पोंछे के लिए महरी रखना हमें शोभा भी नहीं देता।'

पत्नी उखड़कर बोली- 'तुम तो चाहते ही हो कि मैं नौकरानियों की तरह तुम्हारे घर का काम करती रहूँ।' इसने कहा, 'भई, झाड़ू-पोंछा करने से शरीर की एक्सरसाइज होती है, मोटापा नहीं चढ़ता। यदि तुम कोई स्लिमिंग-कोर्स ज्वाइन करोगी न तो पांच सौ रुपये महीने के लगेंगे। सोचो जरा, पचास रुपये महरी के और पांच सौ रुपये स्लिमिंग-कोर्स के। तुम पूरे पांच सौ पचास रुपये बचाओगी।'

पत्नी दिन पत्नी बोली, 'कल से मैं ब्यूटीपार्लर जाया करूंगी। जाऊँ न?'

यह चापलूसी करते हुए बोला, 'तुममें तो नैसर्गिक सौंदर्य है, डियर! तुम्हें ब्यूटीपार्लर जाने की क्या जरूरत? ब्यूटीपार्लर जाएं वे जो कुरूप और भौंडी हैं।'

पत्नी मान गई। अपने अमावस के टुकड़े को नैसर्गिक सौंदर्य कहकर इसने ब्यूटीपार्लर का खर्चा भी बना लिया।

बाद में हर तरफ अपनी पत्नी के गुण गाता फिरता, 'बेचारी, सही जीवन-संगिनी है मेरी। मैं कहता हूँ कि घर में महरी रख लें। वह कहती है- नहीं, तुम जब दफ्तर में इतनी मेहनत करते हो तो मैं झाड़ू-पोंछा, बर्तन-कपड़े का जिम्मा संभाल ही सकती हूँ।'

लोग सोचते हैं कि यह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है। हां, करता तो है। पर पैसों से ज्यादा नहीं। एक दिन यह दफ्तर से लौटा तो पत्नी किसी सहेली के घर गई हुई थी। जब वह काफी देर तक नहीं लौटी तो इसकी चिंता बढ़ी। इसने घर के भीतर जाकर गहने-कपड़े देखें, सारे रुपये गिने। सभी कुछ सही-सलामत था। यह निश्चित हो गया। अब कोई चिंता नहीं। बीवी आए या न आए।'

अपनी बात जारी रखते हुए शिष्टाचार ने कहा- 'मित्र, भ्रष्टाचार, बड़ा ही विचित्र है मेरा यह कलंक! पैसों के सिवाय इसके जीवन में सभी कुछ महत्वहीन है। रातों को यह ठीक से सोता नहीं। बेचैन टहलता रहता है। फिर जाकर रुपये गिनता है- एक बार, दो बार, तीन बार। एक बार उसने कहीं दस का नोट खो दिया। इसने उस दिन सुबह-शाम खाना ही नहीं खाया। पत्नी ने सोचा कि पति दस रुपये के गुम हो जाने से बहुत दुखी हैं। वह बेचारी क्या जाने कि यह पांच रुपये प्रति टाइम के हिसाब से अपने दस रुपये की क्षतिपूर्ति कर रहा था।'

भ्रष्टाचार बीच में ही बोल पड़ा- 'बस करो, शिष्टाचार भाई! अब और नहीं सुना जाता। तुम धन्य हो जो शिष्टाचार के नाम पर इतना बड़ा कलंक तुम्हारी झोली में है। यह तो कलंकों का भी हीरा है, हीरा! बस, यदि तुम बुरा न मानो तो मैं तुमसे एक निवेदन करना चाहता हूँ?'

शिष्टाचार ने कहा- 'अवश्य कहो,

मित्र! कहो, मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ?’

भ्रष्टाचार ने कहा- ‘यह कलंक तुम्हारे लायक नहीं है भाई! यह तो उच्च श्रेणी का कलंक है, अतः तुम अपना यह कलंक मुझे दे दो।’

शिष्टाचार ने प्रसन्नतापूर्वक कहा- ‘मित्र, तुम धन्य हो। यह तुम्हारा ही बड़प्पन है जो तुम दूसरे का कलंक अपने ऊपर लेना चाहते हो। सिर्फ इतना बता दो कि तुम इसका करोगे क्या?’

भ्रष्टाचार गर्वपूर्वक बोला- ‘भाई, तुम इसके भीतर छिपे गुणों को नहीं जानते। जब यह शिष्टाचार के नाम पर इतनी नीचता और छिछोरापन प्रदर्शित कर सकता है, तो सोचो भला कि यह भ्रष्टाचार के नाम पर क्या कुछ नहीं कर सकता? ऐसे प्रतिभावान ही तो मेरे श्रृंगार बनते हैं भाई।’

शिष्टाचार ने अपना यह कलंक भ्रष्टाचार के नाम हस्तांतरित कर दिया। यह कलंक धीरे-धीरे से भ्रष्ट होने लगा।

19/207, शिवम् खंड, वसुंधरा, गाजियाबाद



rj l ext jky dk rhl jk mi U; k l

mYV vk [kj

'kk" k. keDr l ekt d ifr ifrc)
, d iBuh; mi U; k l

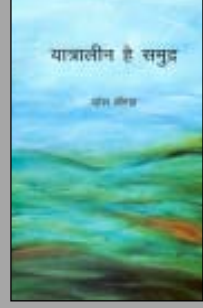
i dk'kd

f'kYik; u ifcy'k l , M

fMLVhC; V l

fnYyh & 110032

eY; % 250 #0] i"B&200



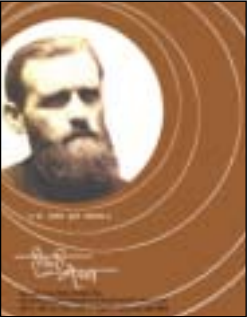
; k=kyhu g l en

I j j'k / kx Mk dh

ekeyi vineh dh
fprkv i j dmr
vtx d i'k j l r dk ryk'krh
dforvk dk l xg

i dk'kd

Voyj ifcyd'k l] èe'kyk



फादर कामिल बुल्के पर

एक अद्वितीय विशेषांक

बेल्जियम मूल के फादर बुल्के ने विदेशी धरती पर हिन्दी भाषा तथा साहित्य के उत्थान एवं प्रचार-प्रसार के लिये एक कर्मठ योद्धा की तरह जो अविस्मरणीय योगदान दिया है, वह अतुलनीय है। ‘हिन्दी चेतना’ के इस विशेषांक में प्रस्तुत सामग्री में उनके कृतित्व तथा व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। इस विशेषांक की प्रमुख विशेषता यह है कि डॉ. बुल्के के जन्म, जीवन, कार्यक्षेत्र, धर्मक्षेत्र, जीवन दर्शन तथा उनके द्वारा रचे विविध साहित्य से जुड़े आलेखों को समाहित करके इस अंक को न केवल पठनीय अपितु संग्रहणीय बनाया गया है। डॉ. दिनेश्वर प्रसाद के आलेख ‘डॉ. कामिल बुल्के- जीवन रेखाएं’ के साथ संलग्न चित्रों के द्वारा पाठकों को इस महान संत के जन्म, परिवार, परिवेश,

अध्ययन एवं धर्म की और उन्मुख होने की परिस्थितियों का बहुत ही रोचक वर्णन मिलता है। डॉ. पूर्णिमा केडिया के संस्मरण में फादर बुल्के के द्वारा समय-समय पर अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हुए उनके अनमोल विचार समाहित हैं। पूर्णिमा जी के अनुसार रांची का डॉ. कामिल बुल्के शोध संस्थान आज भी हिन्दी जगत के लिए कामधेनु बना हुआ है। श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं ‘बाबा बुल्के के रोम-रोम में राम और सांस-सांस में तुलसी बस गए और यह कहा जाए कि वे तुलसी मय हो गए तो कोई अतिरेक नहीं।’ उनके अनुसार ‘वास्तव में तुलसी के प्रति उनकी निष्ठा तथा प्रतिबद्धता ने उन्हें न केवल हिन्दी भाषा का अपितु रामचरित मानस का अधिकारी विद्वान बना दिया।’ इसी विशेषांक में फादर बुल्के के प्रिय कवि गजेले की कविताओं का हिन्दी अनुवाद भी मिलता है। प्रो. हरिशंकर आदेश के लेख ‘एक महान हिन्दी प्रेमी’ में फादर के साथ उनकी भेंट के संस्मरणों का समावेश एक आधुनिक युग के महाकवि के द्वारा बाबा के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि है। इसी प्रकार श्री आत्माराम तथा श्री महेन्द्र पाल जैन के आलेखों में हमें बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ‘हिन्दी चेतना’ के मुख्य सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी ने अपने सम्पादकीय में लिखा है ‘फादर बुल्के के सम्मान में यह अंक विश्व के लिए एक अदभुत उपहार होगा, विशेषकर उन हिन्दी साहित्यकारों के लिये जो सुदूर विदेशी धरती पर बसे हुए हैं।’ ऐसे अनमोल उपहार को ग्रहण करते हुए हम सभी हिन्दी प्रेमी सम्पादक मंडल के मुख सदस्य डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा डॉ. इला प्रसाद को कोटिशः धन्यवाद देना चाहते हैं। जिन्होंने इतनी विविध सामग्री के द्वारा एक महान विभूति के बहु आयामिक व्यक्तित्व से परिचित करवा कर हम पाठकों को भी इस संत की जन्मशती पर श्रद्धा सुमन चढ़ाने का अवसर दिया। यह विशेषांक ‘सागर में बूंद नहीं, अपितु एक दीप स्तम्भ की तरह हिन्दी भाषा तथा साहित्य प्रेमियों का सदैव पथ प्रदर्शन करता रहेगा। उल्लेखनीय बात यह है कि विदेशी धरती पर इस अंक के लिये इतनी प्रचुर मात्रा में सामग्री एकत्रित करके आप सबने हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा, लगन एवं अगाध प्रेम की भावना से हम सब को अभिभूत किया है।

—शशि पाधा, यू एस ए

कैलाश चन्द्र जायसवाल

डंडा ददाति विनयम्

शालेय जीवन में अध्यापक जी ने शुद्ध लेखन में 'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात् विद्या विनय देती है, कम से कम हजार बार लिखवाया और छड़ी की मार से रटवाया होगा। वे शरारती बच्चों की धुनाई करते हुए यह भी कहते थे, कि 'छड़ी पड़े छम छम विद्या आवे झम झम' यानी विद्या और विनय से छड़ी की पुरानी सांठगांठ है। खैर जैसे-जैसे उम्र के पायदान पर रेंगने लगा यह समझ में आया कि 'विनय' विद्या से नहीं अपितु डंडे से मिलती है।

डंडा की महत्ता असीम है। डंडा शक्तिमान है। डंडा दमदारी है, रंगदारी है, वजनदारी है। डंडा महान गुणों की खान है। डंडे की ठकठक से सिरफिरों की अकल ठिकाने आ जाती है, और डंडा-दर्शन मात्र से अच्छे-अच्छे सूरमाओं की पिंडलियां कांपने लगती हैं। संसार में मनुष्य के आपस में सारे व्यवहार डंडे से निर्धारित होते हैं। डंडा है तो भय है, भय है तो प्रीत है। बाबा तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में भय बिन प्रीत नहीं का संदेश दिया है। जब भय का जन्म होता है, तो विनम्रता बिन बुलाये मेहमान की तरह स्वमेव आ जाती है।

डंडा अनुशासन है। डंडा लगाम है। डंडा आन-बान और शान है। डंडा यानि ताकत को लोग सलाम करते हैं। डंडा देखते ही अकड़बाजों की घिघ्घी बंध जाती है। डंडा की फटकार सुनकर सारी अकड़ निकल जाती है। आदमी और जानवर दोनों डंडे से ही काबू में आते हैं, और दोनों डंडे की भाषा समझते हैं। अपने आसपास रोजमर्रा के जीवन में हम आये दिन डंडे का कमाल देखते हैं। देखते ही नहीं अनेक बार जाने अनजाने, चाहे अनचाहे भोगते भी हैं। रेल या बस के सफर में डंडे का रुतबा देखते ही बनता है। अक्सर बर्थ आरक्षित करानेवाला खड़े खड़े और डंडा उसी आरक्षित बर्थ पर लेटे लेटे शान से सफर करता है। एक बार बस के सफर में डंडे का चमत्कार देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भीषण गर्मी में

कंडक्टर भेड़ बकरी के समान सवारियां ठूसता जा रहा था। मैं आगे की सीट पर लगभग फंसा हुआ था। मैंने इस तरह सवारियां ठूसने का विरोध जताया तो कंडक्टर ने तल्ख लहजे में कहा तकलीफ है, तो नीचे उतर जाओ। मैंने कंडक्टर की गर्मी को महसूस और मन मार कर रह गया। अगले स्टेशन पर कंडक्टर को सूचना दी गई कि नसरुल्लागंज से टी.आई. साहब भोपाल जायेंगे, आगे की सीट खाली रखी जाये। ठसाठस भरी बस में तिनका रखने को जगह नहीं और आगे की सीट खाली रखने के फरमान ने कंडक्टर की सारी हेकड़ी निकाल दी। थोड़ी देर पहले तक दहाड़ने वाला कंडक्टर टी.आई. साहब की खबर से मिमियाने लगा और हाथ जोड़-जोड़ कर सीट खाली करवाने लगा। खैर जनता धक्के खा रही थी और साहब शान से बिना टिकिट पैर पसारें सफर कर रहे थे। कंडक्टर बार बार चाय-नाश्ता, पानी को पूछ रहा था। इसे कहते हैं, डंडे का जादू।

सरकारी दफ्तरों के सारे काम डंडे के बल पर सहजता से हो जाते हैं। डंडा है, तो महीनों का काम मिनटों में हो जाता है। बिना डंडे के मिनटोंके काम को बरसों लग जाते हैं, या होते ही नहीं। आर.टी.ओ. में आप महीनों चक्कर लगाइये आपका काम नहीं होगा, किंतु यदि डंडा है, तो तत्काल काम हो जायेगा। एक साधारण व्यक्तित्व का सामान्य आदमी सरकारी दफ्तर में जाता है, तो बड़े बाबू को वह फूटी आंख नहीं सुहाता। उसके अनुनय विनय का चपरासी तक पर कोई असर नहीं होता है। ऐसे लोगों को टरकाने के लिए दफ्तर के अफसर बाबू विशेष रूप से प्रशिक्षित होते हैं। इसके विपरीत आफिस में डंडे के आने पर छोटे बड़े अफसर से लेकर बाबू तक पलक-पावड़े बिछाये उसकी अगवानी करते हैं, और फटाफट उसका काम कर देते हैं। एक बात अच्छी तरह से समझ लीजिये, कि डंडा के लिए न कोई नियम होता है और न कोई कानून।

डंडा इन सबसे परे महान शक्ति है, जिसे समूचा सरकारी तंत्र नमन करता है।

प्रशासन में अफसर का डंडा चलता है और डंडे का ही झंडा लहराता है। अफसर डंडे द्वारा ही अपने मातहतों से बंगले पर झाड़ू लगाने से कुत्ता नहलाने तक का काम करवाते हैं। अफसर का डंडा बहुत खतरनाक माना गया है, इससे दफ्तर के लोग तो भयभीत रहते ही हैं, आम जनता भी कांपती है। डंडाराज के गुणगान करते हुए स्याही का समुद्र सूख जायेगा और सरस्वती की जिह्वा भी थक कर ठठुरा जायेगी। पुलिस, आयकर, वाणिज्यकर, आबकारी, वन, राजस्व व कलेक्टरेट के डंडे का जलवा ही अलग है। असली सरकार तो इनके डंडे से ही चलती है। पुलिस के डंडे से तो चट्टाने भी कांप कर मोम के समान मुलायम हो जाती है। यह बात और है कि इस संसार में बिना बाप का कोई नहीं है। जब कोई भारी डंडा पड़ता है, तो पुलिस का डंडा भी मिमियाने लगता है।

इस क्षेत्र में ताजा अनुसंधानों से यह सिद्धांत प्रकाश में आया है कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है, वैसे ही बड़ा डंडा छोटे डंडे को चट कर जाता है। डंडा संस्कृति में छोटा डंडा सदैव बड़े डंडे के और बड़ा डंडा उससे बड़े डंडे के तलवे चाटता है।

दोस्तो! संसार के सारे सुख डंडे के पास हैं। जिसके पास डंडा है, वह समस्त सुखों का भरपूर उपभोग कर इस धरती पर जन्म लेने को सार्थक करता है। डंडा स्वर्ग में भी अपना स्थान सुरक्षित करवा लेता है। आओ हम इस डंडायुग में डंडा की महत्ता को पहचानें और हमारे सारे प्राचीन ग्रंथों किताबों और उपदेशों से 'विद्या ददाति विनयम्' जैसे निरर्थक वाक्य को हटाकर उसके स्थान पर 'डंडा ददाति विनयम्' को प्रतिस्थापित कर भावी पीढ़ी को सुखमय जीवन बिताने का मार्ग प्रशस्त करें।

अनुराग भवन, पंचवटी नगर-II, करोंद चौ

प्रेमचंद्र स्वर्णकार

स्वास्थ्य सेवा का सौंदर्य

इधर हमारे देश की देशी और विदेशी कंपनियां बड़ी शिद्दत के साथ लोगों के स्वास्थ्य और सौंदर्य को निखारने या उत्कृष्ट बनाने में जुटी हैं। एक बड़ी मुहिम चला रखी है उन्होंने अब इसमें सफल हुई या नहीं या कितनी सफल हुई, यह कुछ विवाद का विषय हो सकता है लेकिन वे पूरे मनोयोग और तन-मन-धन से इस कार्य में जुटी हैं, यह विवाद का विषय नहीं होना चाहिए।

शरीर का स्वास्थ्य और सौंदर्य केवल दांतों, त्वचा एवं बालों में हैं। देखिए तो आप एक के बाद एक लगातार दसों विज्ञापन दिखाकर, करोड़ों रुपया खर्च कर ये कंपनियां हमारे सौंदर्य बोध के प्रति किस कदर जागरूकता ला रही हैं।

अभी बात गोया दांतों की करें। कंपनियों ने असंभव कार्य को संभव कर दिखाया है। दांतों पर घिसने के लिए ऐसे-ऐसे कैल्शियम और विटामिन वाले पेस्ट बनाए हैं जिनको आपके दांत सोखकर मजबूत और चमकदार बन जाते हैं। चूँकि मैं चिकित्सा विज्ञान का डिग्रीधारी चिकित्सक हूँ और यह अच्छी तरह जानता हूँ कि दांत सीधे-सीधे न कैल्शियम सोख सकते हैं न विटामिन, लेकिन देखिए तो हमारी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोधों के परिणाम को। उन्होंने दिखला दिया कि दांत भी विटामिन, मिनरल्स या कैल्शियम सोख सकते हैं। बशर्ते आप इनके बनाए टूथपेस्ट को खरीदकर करिए तो। पेस्ट द्वारा कीटाणु नाश करने की बात तो पुरानी पड़ गई। अब जमाना आ चुका है दांतों को विटामिन्स और मिनरल्स उपलब्ध कराने का। थोड़ी दिक्कत हमारे उपभोक्ताओं को यह जरूर हो गई है कि आज सौ से ऊपर टूथपेस्ट बाजार में हैं, सब एक से बढ़कर एक हैं, तो इनमें से वह चुने कौन सा और फिर पेस्ट का नाम चुनले तो फिर रंग कौन सा चुने क्योंकि एक से बढ़कर एक रंग के पेस्ट हैं। और सभी अनेक गुणों से युक्त हैं।

कुछ का इस्तेमाल तो आपकी प्रेमिका को पास बुला सकता है।

अब आते हैं त्वचा को गोरा बनाने वाली क्रीमों और साबुनों पर। हमारा देश अपेक्षाकृत कुछ सांवले लोगों का देश है। गरम जलवायु के कारण शायद ऐसा है। लेकिन हमारी सभी की इच्छा अंग्रेजों के समान गोरा चिट्ठा बनने की रहती है। जो गोरे नहीं हैं वे दुखी हैं क्योंकि सांवले रंग के कारण उनकी शादियां नहीं हो पा रही हैं। कंपनियों ने भी हमारे देश के लोगों के इस दुख-दर्द को समझा है। उन्हें हमारे यहां के लोगों से सहानुभूति है। कंपनियां बड़ी संवेदनशील होती हैं, वे हमारी परेशानियों को तुरंत ताड़ जाती हैं। सो उन्होंने इसका समाधान भी खोजा है। गोरेपन की कई अच्छी क्रीम बनाकर। कुछ ने गोरापन प्रदान करने वाला साबुन भी बाजार में उतारे हैं। आपको जो पसंद हो खरीदिये और बन जाइये सांवले से गोरे चिट्ठे। फिर करवा लीजिए मनचाही जगह शादी। आप क्या विज्ञापन में नहीं देखते, एक साधारण सी सांवली (या काली) लड़की, जिसका चेहरा दाग, धब्बों से भरा होता है कैसे दो-चार हफ्ते में एक खूबसूरत और गोरी लड़की में तब्दील हो जाती है, वास्तव में हमारी इन कंपनियों ने तो कमाल कर दिया है। पैसे जरूर वे रोज लाखों-करोड़ों बना रहे हैं लेकिन जरा सोचिए तो एक काली उपेक्षित लड़की जिसकी शादी नहीं हो पा रही, यदि हजार-पांच सौ खर्च कर गोरी बन जाती है तो यह कोई महंगा नहीं है। आखिर वर भी तो उसे अच्छा मिल जाता है।

मैं तो तमाम अफ्रीकी देशों के काले स्त्री-पुरुषों को दावत देता हूँ कि हमारे देश आएँ और कुछ दिन रहकर हमारे यहां की कंपनियों की गोरेपन की क्रीम, साबुन इत्यादि का बतलाए अनुसार इस्तेमाल करें फिर दो-चार महीनों बाद गोरे बनकर अपने देश

वापिस लौट जाएँ। वहां पहुंचकर आपके परिचित दंग रह जायेंगे, आपके बदले हुए गोरे रूप को देखकर। हमारे देश को पर्यटन उद्योग के अलावा इस गोरेपन के उद्योग को भी बढ़ावा देना चाहिए, इससे भी विदेशी मुद्रार्जन खूब हो सकता है, ऐसा मेरा मानना है। यह देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारने के लिए एक उपयोगी सुझाव है।

बालों के सौंदर्य के प्रति तो जागरूकता अभियान की पूछिए ही मत। गोया कि हमारा सारा देश डैंड्रफ से ग्रस्त है, परेशान है और शेंपू कंपनियां लगी हैं इनके डैंड्रफ को भगाने में। कैसे भी बाल हों जरा शेंपू करना तो शुरू करें सब कमियां दूर होकर लहलहा उठेंगे। हमारी देशी-विदेशी कंपनियों ने शोध करके एक से बढ़कर एक नायाब शेंपू निकाले हैं। सैकड़ों तरह के शेंपू हैं जो डैंड्रफ हटाते हैं, जो चाहे चुन लें और अपने निर्जीव बालों में जान फूक दें, सजीवता ला दें। टेलीविजन देखकर अब तो ये लगता है कि हमारे पूरे देश को ही जैसे रोज शेंपू का प्रयोग करना चाहिए। जवान और छोटे-छोटे बच्चे सभी बालों के रूसी रहित एवं चमकदार बना रहे हैं। जो शेंपू नहीं कर रहे हैं वे नादान हैं। अतः वे भी सैकड़ों तरह के शेंपू में कोई भी शेंपू चुनकर रोज करने लगे। क्योंकि बालों से व्यक्तित्व निखरता है, सौंदर्य बोध भी बालों से होता है। यही कारण है कि अब चार-पांच साल के छोटे-छोटे बच्चे सभी बालों को रूसी रहित एवं चमकदार बना रहे हैं। जो शेंपू नहीं कर रहे हैं वे नादान हैं। अतः वे भी सैकड़ों तरह के शेंपू में से कोई भी चुनकर रोज करने लगे। क्योंकि बालों से व्यक्तित्व निखरता है, सौंदर्य बोध भी बालों से होता है। यही कारण है कि अब चार-पांच साल के छोटे-छोटे बच्चों को शेंपू की आदत हमारी कंपनियां विज्ञापनों के माध्यम से डाल रही हैं और कोई आश्चर्य नहीं कि नवजात शिशुओं को भी वे शेंपू की सलाह

दे डालें। शायद इसका विज्ञापन भी कुछ इस तरह करेंगी यथा—दो नवजात शिशु आजू-बाजू झूले में झूल रहे हैं, एक शिशु दूसरे की तरफ देखकर मुस्कराता है और पूछता है, 'आज तेरी मम्मी ने अमुक शेंपू से सिर धोया कि नहीं' दूसरा बच्चा थोड़ा उदास सा होकर कहता है, 'नहीं रे, लेकिन मैं अपनी मम्मी से कहूंगा कि मेरे बाल रोज उस अमुक शेंपू से ही धोएं।'

विज्ञापनों का अवलोकन कर अब एक महत्वपूर्ण तथ्य और उभरकर सामने आ गया है कि देश के अधिकांश लोगों के सिर तथा मस्तिष्क गरम हो चुके हैं। और इन्हें ठंडा या कूल-कूल रखने के लिए ठंडे तेल की जरूरत है। इसलिए बड़े-बड़े स्टार और सुपर स्टार करामाती ठंडे तेलों को अपनी-अपनी खोपड़ियों के ऊपर चुपड़ने में लगे हैं। कम से कम तेलों के विज्ञापन देखकर तो ऐसा ही लगता है। ठीक भी है इस उच्च रक्त चाप और तनाव के जमाने में लोगों के सिर तो गरम होंगे ही और इन्हें ठंडा करने के लिए यदि कई तरह के बर्फ जैसे ठंडे बर्फानी तेल उपलब्ध करवाए गए हैं। तो यह तो एक प्रकार की तेल कंपनियों की लोक सेवाएं ही हैं। वैसे भी पृथ्वी का तापक्रम 1 डिग्री बढ़ चुका है, तब लोगों के सिर गरम हो रहे हैं तो आश्चर्य की बात क्या है। तो, साहब अब जमाना मुलतानी मिट्टी से बाल धोने का नहीं रहा। अब हर वस्तु पाउच में उपलब्ध है। कोई मेहनत नहीं कोई कष्ट नहीं। कंपनियों ने जमाने भर की झंझटों से मुक्ति दिला दी है। तभी तेल भी पाउच में आने लगे हैं। अब केवल शेंपू से कुछ नहीं होने वाला जब तक आप इन कंपनियों का तेल बालों में न चुपड़ें। शेंपू द्वारा तो विभिन्न विटामिन्स और पोषक तत्व बालों को मिलते ही हैं लेकिन तेल तो जैसे बालों की सभी समस्याएं—उनका झड़ना, दो मुहां होना, सफेद होना इत्यादि सभी रोक देता है। सिर में ठंडक अलग से ला देता है। ताकि आप गुस्सा न करें।

ये कंपनियां हमारे देश के लोगों का बहुत बड़ा भला कर रही हैं। लोगों के दांतों के साथ बाल निरोगी और सुंदर बना देना अथवा काली चमड़ी वाले इंसान को गोरा बना देना कोई आसान कार्य नहीं है।

गायत्री नगर, दमोह-470661 (म.प्र.)

जगदीश पाठक

निर्भरता एवं नियंत्रण

निर्भरता हमेशा दूसरों पर होती है। सामने वाले का कंधा मजबूत होना चाहिए, फिर उस पर लदे रहने में कोई बुराई नहीं है। अमेरिका का कंधा भी मजबूत है। अनेक देश उस पर लदे हुए हैं। कुछ देश अमेरिका की नाक का खास बाल बनने के लिए दूसरों को उसके कंधे से गिराने में लगे हुए हैं। यों भारत भी लदा है, पर उसकी नीति कुछ ऐसी है कि अमेरिका को उसका लदना मालूम नहीं हो पाता। अमेरिका को भारत हमेशा सामने खड़ा हुआ दीख पड़ता है।

वह भारत से कहता है, 'पाकिस्तान तो लदा है; तुम भी लद जाओ।'

पहले से ही लदा भारत कहता है, 'उसकी आवश्यकता नहीं है, हमारी टांगें मजबूत हैं।'

काम करने वाला मिल जाए तो निर्भरता बढ़ जाती है। हाथ पैर नहीं चलते। हमारी जनता को छूट मिल जाए तो वह अमेरिका से सीधा संपर्क करने लगे, 'हलो अमेरिका, यार, यहां एक के हाथ पैर तुड़वाने हैं; क्या लोगे?'

अमेरिका को अपनी छोड़ दूसरों की बड़ी फिक्र रहती है। वह कहेगा, 'फिक्र मत करो। अपनी सरकार को राजी कर लो; हम सेना भेज देंगे।'

हमारे यहां नियंत्रण भी एक शब्द है। यह नियंत्रण होने से बाल-बाल बचा हुआ शब्द है। अपने यहां अधिक अंतर नहीं रहता। यहां परिस्थितियां कब सम्मन को सम्मान और सम्मान को सम्मन बना देती हैं, पता ही नहीं चलता। यह दोनों शब्द यहीं के हैं। अपना ही उत्पाद है। निर्भरता दूसरों पर होती है जबकि नियंत्रण दूसरों का होता है। नियंत्रण के दो आवश्यक तत्व होते हैं। सहानुभूति और सहयोग। अमेरिका का हमारे देश पर 'दोस्ताना' नियंत्रण है। यह सहानुभूति और सहयोग पर सवार होकर भारत आया है। अमेरिका बीमार भारत को देखने आता है।

साथ में दवा लाता है। दवा सहानुभूति है। सहानुभूति से ठीक होने वाला हमारा देश अमेरिका के उपकार तले दब जाता है। मानवीय आधार पर भारत पर अमेरिकी नियंत्रण का दूसरा तत्व सहयोग है। अमेरिका पूछता है, 'कर्ज चाहिए?'

हमारे नेता कहते हैं, 'तुम्हारे पास और किसलिए कोई आएगा?'

अमेरिका, 'सांसद खरीदने हैं?'

हमारे नेता, 'इतना धन तो हमें अपने यहां के व्यापारियों से ही मिल जाता है।'

अमेरिका, 'फिर किसलिए चाहिए?'

'हमारे कुछ बड़े नेताओं को बिस्तर में नोट बिछाए बिना नींद नहीं आ रही है।'

'कर्ज कब तक चुकाओगे?'

'यह तो हमारी अगली सरकार जानें।'

अमेरिका कहता है, 'ठीक है ले जाओ। और सुनो, तुम्हारे यहां भुखमरी है। सुअरों को खिलाने के बाद हमारे यहां काफी मक्का बच्चा है। जिसे हमने दलिया बना दिया है। अपने यहां के बच्चों को खिला देना। ले जाओ'

हमारे नेता ले आते हैं।

यहां बहस होती है, 'दलिया सुअरों के लिए बना है, उन्हें ही खाना चाहिए।'

'पर अमेरिका ने तो बच्चों के लिए दिया है।'

'सुअर के भी बच्चे होते हैं।'

बहस समाप्त होती है। अमेरिका को दिखाने के लिए कागज पर दलिया आदमी के बच्चों में बांट दिया जाता है। पर वास्तव में वह अनाज उचित माध्यम से 'पोल्ट्री फार्म' पहुंच जाता है। मुर्गी-मुर्गे खाते हैं। मुर्गियां आमलेट के लिए पुष्ट अंडे देती हैं और मुर्गे मांस बढ़ा कर कटने को तैयार हो जाते हैं। अमेरिकी 'दोस्ताना' नियंत्रण मजबूत हो जाता है।

एस-3, सुष्मिता अपार्टमेंट, 110बी, ए सेक्टर, सर्वधर्म कालोनी, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)

डॉ. रामनिवास शर्मा

रोग 'तो' का

यह मर्ज तो पुराना है। पर खोज कुछ नई है। इस लाइलाज बीमारी का इलाज न एलोपैथिक के पास है, न आयुर्वेदिक, न होम्योपैथिक ओर न यूनानी हकीमों के पास है। इस जानलेवा बीमारी के लक्षण पहले-पहल किसी सज्जन को उल्लू में देखने को मिले।

बात यूँ थी। पेड़ की सूखी डाल पर बैठा एक उल्लू अपनी रात की थकान उतार रहा था। एक नौसिखिया शिकारी की गोली उसके कान के पास से सरसराती हुई गुजर गई। भय से छटपटाता पक्षी (उल्लू) किसी दूसरे पेड़ की डाल पर जा गिरा। होश उड़ गए। लंबी-लंबी सांसें लेने लगा। पंख साथ छोड़ गए ओर वहीं से धुन लग गई, 'हाय गोली लग जाती तो! हाय, गोली लग जाती तो।' बस यही रट लगा ली उस बेचारे उल्लू ने खाना-पीना छोड़ दिया। अंत में एक दिन उसके प्राण पखेरू उड़ गये। जो सज्जन इस 'तो' का जायजा ले रहे थे, उन्होंने देखा कि यह गोली से तो बचा गया लेकिन 'तो' से मर गया।

आज यह 'तो' की बीमारी उल्लू को छोड़कर हमारे मानव समाज में आ घुसी है। स्थिति इतनी भयंकर है कि हर चौथा / पांचवां आदमी इसकी लपेट में है। कहीं गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया, चोट के नाम पर खंरोच तक नहीं आयी, परंतु रट लगा बैठे, 'कहीं कुछ हो जाता तो। कहीं कुछ हो जाता तो।'

हमारे एक प्रोफेसर बड़े अनुभवी हैं, जीवनधारा के अच्छे तैराक हैं। सैंकड़ों को डूबते हुए बचाया है, मैं भी उनमें से एक हूँ। एक दिन इस जानलेवा बीमारी की चपेट में आ गये। मसला कोई बड़ा नहीं था और ना ही कोई पेचीदा। इसमें उनका कोई अपराध भी नहीं था। बिजली विभाग के लाइनमेन ने घर के मीटर को देखकर यह कह दिया कि इसकी सील टूटी हुई है और लगता है आपने. . . प्रोफेसर साहब ने चारपाई पकड़

ली एकांतवास ले लिया। बस , एक ही धुन रहती, 'कुछ हो गया तो, कुछ हो गया तो।'

हमारे एक विद्वान प्रोफेसर हैं, मैं उनका नाम नहीं लूंगा। वह आज की वैज्ञानिक रेस में अपने बाल-बच्चों को दौड़ाने तथा



दूसरों को दौड़ते देखने का शौक तो खूब रखते हैं पर खुद दौड़ने से ऐसे कतराते हैं जैसे कौवा कमान से, कर्जदार साहूकार से। तेजगति से मंजिल तय करने वाले वाहनों की उनके पास कमी नहीं है। साइकिल से लेकर कार तक के मालिक हैं। दो किलोमीटर का रास्ता तय करने के लिए एक किलोमीटर साइकिल को हाथों से घसीटकर ही चलने में विश्वास रखते हैं। खड़े मोटर साइकिल या स्कूटर की लगाम पकड़कर ही संतुष्ट हो जाते हैं। किसी के साथ कार में बैठे हों तो उनकी दृष्टि बाहरी सौंदर्य पर न जाकर चालक के स्टेयरिंग या मीटर की सूई पर

ही अटकी रहती है। कार में बैठते हुए भरी सर्दी में भी उन्हें पसीने से सराबोर पाया है। कहीं चालक को ब्रेक लगाना पड़ जाय तो भभक उठते हैं, 'अरे भाई! धीरे चलो, कुछ उन्नीस-बीस हो जाता तो।'

घटना नई न होते हुए 10-15 साल पुरानी है। हमारे एक एक परिचित परिवार की सुशिक्षित महिला को इसी बीमारी ने अचानक आ दबोचा। किसी ढोंगी से पूछ बैठी कि मेरा भाई बीमार रहता है कोई उपाय बताओ। उसने कहा कि कोई प्रियजन अपनी जान दे दे तो अनिष्ट टल सकता है। परिणाम बड़ा घातक रहा वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गयी। पति के लाख उपचार के बावजूद भी उन्होंने आत्महत्या जैसा धिनौना काम कर डाला।

मैंने अनुभव किया कि जहां किसी घटना के बाद 'तो' के कीटाणु पनपे, फिर तो वे भविष्य की आशंका की गोद में पलते रहते हैं। कितनों को देखा है कि भीरु प्रकृति के लोग किसी कार्य में हाथ डालने से पूर्व यही सोचते हैं कि कहीं कुछ हो गया तो घाटा पड़ गया तो। इस भय से कोई कार्य सम्पन्न नहीं कर पाते और जीवन में सदैव असफल होकर भाग्य को कोसते रहते हैं।

इतने अनुभव के बावजूद भी मेरी स्वयं की स्थिति भी ऐसी है कि रोग चाहे सन्निपात हो अथवा मलेरिया, मैं किसी भी रोगी को बड़बड़ाते देखता हूँ तो मुझे यही लगता है कि इसे कहीं 'तो' का रोग तो नहीं। मेरे एक मित्र वर्तमान की पीठ पर सवार होकर भविष्य की अनेक चिंताओं में अपने को लपेटे रखते हैं। मैंने कल ही उनसे कहा था, 'कहीं आपको कुछ हो गया तो। कहने को तो मैं कह गया, पर मेरे रोम खड़े हो गये, बेहिसाब पसीना टपकने लगा।'

रीडर, हिन्दी विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला-147002 (पंजाब)

शिवशंकर मिश्र

सबसे बड़ा सुख

आश्चर्य नहीं होता, बहुत अजब नहीं लगता, सिर्फ मन थोड़ा उत्सुक हो जाता है। सड़क के दायें-बायें किसी गोल हुई चंचल भीड़ को देखकर आंखें जरा ठहर जाती हैं, लेकिन पांव चलते रहते हैं। भीड़ के पास रुकना भीड़ में शामिल होना होगा जो जितना गैरजरूरी है, उससे कहीं ज्यादा गैरमुनासिब है। जो भी शरीफ लोग हैं, इसी सिद्धांत पर चलते हैं। मन में उग आयी किसी उत्सुकता को मन में ही दबा देते हैं क्योंकि भीड़ में शामिल होने में डर लगता है।

डर मुझे भी लगता है। यही मेरा डर मुझे भी शरीफ आदमी बनाता है। मैं भी जब सड़क से गुजरता हूं, ऐसी किसी भीड़ के आगे-पीछे कभी नहीं रुकता। वह तत्व जो सैकड़ों लोगों को पलों में ही एक कसे हुए वृत्त में खींच लेता है उसके आकर्षण से मैं परिचित हूं। मैं भली तरह जानता हूं यह आकर्षण कितना प्रबल और सहज है, लेकिन मेरी मजबूरी है कि मैं एक शरीफ आदमी हूं और डर मेरी शराफत की पहचान और पूंजी दोनों है।

लेकिन उस दिन मैं रुक गया और भीड़ के पास पहुंच गया। मैंने दूर से ही समझ लिया था कि डरने की कोई बात नहीं है। भीड़ छोटी ही थी और भीड़ की परिधि पर खड़े लोग एडियों से उचक-उचककर बीच केंद्र में घटित हो रहे उस कुछ को देखने की उत्सुकता में अपने में ही छोटे-बड़े हो रहे थे। फिर भी यह बताना जरूरी है कि भीड़ के छोटे आकार के बजाय वह चीज कुछ और ही थी जो मुझे आश्चर्य कर रही थी। आदमी हंसता-बोलता नजर आए तो इससे सुंदर और सुरक्षित भला और क्या हो सकता है? मैंने अलग से ही देख लिया था कि भीड़ के बीच के लोग जोर-जोर से हंस रहे हैं और किनारों पर खड़े लोग उनका साथ देने के लिए बेचैन हो रहे हैं। उन की दिक्कत सिर्फ इतनी थी कि वे उस चीज को देख नहीं पा रहे थे जिसको देखकर

हंसना था।

कहने की जरूरत नहीं कि मुझे भी कुछ समय लगा जब मैं हंसने की उस वस्तु को देख पाने में सफल हो पाया। बचपन से आज तक मेरी मां दुखी रही, आश्चर्य भी करती रही कि उन दोनों की ऐसी दर्शनीय जैसी सेहत के बीच में ही इतना दुबला-पतला कैसे हो गया। लेकिन मुझे बुरा नहीं लगता, बल्कि कई बार मुझे इसके फायदे भी हुए हैं, जैसे आज ही जिस तरह मैं भीड़ की आस्तीन चीरकर आगे निकल गया वह क्या किसी मोटे के बस की बात थी?

लेकिन जब सामने देखा, मेरे भी हंसी फूटती और लोगों का साथ देती इसके पहले ही मेरे कंठ में बर्फ जम गयी। मैं अवाक, हतप्रभ, मर्माहत! अब जो भी कहिए, कम होगा। मेरी आंखों के आगे जो दृश्य था वह रोमांच बेचने वाली किसी पत्रिका की सत्यकथा का अंश लग सकता है, लेकिन इसका वाकई सत्य होना किसी समाज के लिए लज्जा और लानत की ही बात है। शायद ही किसी और देश में, किसी ऐसी दशा में कोई स्त्री देखने को मिले और वह भी इतने मनोरंजक रूप में!

मैं चौंक गया, यह तो वही अपनी पगली है! पल भर के लिए मुझे विश्वास नहीं आया, लेकिन अविश्वास के लिए भी कोई जगह नहीं थी। मैं उसे खूब पहचानता था। लगातार कई महीनों तक उसे मैंने अपने मुहल्ले में चलते-फिरते, बैठे-सोते देखा था। उदास, सुन्न और बेआवाज जैसी कोई चीज, कोई बेइक्स रूह, जो सहज ही सामने वाले के दिल को छू लेती थी। जहां से भी गुजरती, लोग उसके बारे में कुछ बातें जरूर करते, जैसे उसे जान लेना चाहते हों, उसके भीतर के दुख को पा लेना चाहते हों, लेकिन वही कठिन था। कभी-कभी लगता उसे कुछ याद ही नहीं है, कभी लगता किसी हादसे ने उसे जीवित तो छोड़ दिया है, लेकिन उस हादसे की जद से वह निकल

भी नहीं पायी है; शायद उसके लिए जिंदगी और मौत जैसे लफ्ज बेमानी हो गए थे।

शुरू-शुरू में जब वह मुहल्ले में दिखी थी, उसके कपड़े थोड़े अच्छे जैसे थे, लेकिन कुछ ही दिनों में वे गंदे चीथड़ों की शक्ल में बदल गए। उसकी सलवार सूट तो नजर आती, लेकिन न रंग का पता चलता, न प्रिंट का। मेरे पड़ोस की एक भद्र महिला ने उसे एक बार एक बढ़िया जैसा सूट दिया भी तो वह उसे वहीं छोड़कर आगे बढ़ गयी। भीख भी वह मांगती नहीं थी, लेकिन अगर कोई रोटी बढ़ा देता था तो ले लेती थी। चूंकि हाथ में कशकोल नहीं होता था, इसलिए कभी कोई रोटी नीचे भी गिर जाती तो वह उसे उठा लेती थी, लेकिन रुपये-आठ आने का सिक्का अगर कोई बढ़ाता तो न वह हाथ खोलती, न नीचे से ही उसे उठाती। शायद इसीलिए वह पगली ज्यादा लगती और भिखारिन कम। फिर धीरे-धीरे ऐसा हो गया कि वह मुहल्ले की ही हो गई और उसे खाने भर न सिर्फ रोटियां मिल जातीं, बल्कि सब्जी वगैरह भी पर्याप्त मिल जाती। परव-त्यौहार के दिनों में तो अच्छे पकवान भी मिल जाते, लेकिन कभी उसके चेहरे के भावों से सूखी रोटी और पकवान के बीच का कोई फर्क नजर नहीं आता।

फिर धीरे-धीरे समय बीतने के साथ उसको लेकर चर्चा-बात तो बंद हो गयी, लेकिन मन में वह सब के बैठी रहीं। कई बार मैं भी सोचने लगता, 'कौन है यह? कहां से कैसे आ गयी यहां?' ध्यान में आता, सिर्फ आधे किलोमीटर की दूरी पर स्टेशन है, 'कहीं से भाग-वागकर तो नहीं?' कई तरह के फिल्मी अंदाज के किस्से जेहर में उभरते जो आपस में एक-दूसरे से भिन्न होकर भी अपनी समानताएं बनाते, लेकिन कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता। इसका एक सीधा कारण यह था कि पैसे को लेकर उसके व्यवहार मेरे लिए हमेशा अस्पष्ट और अबूझ ही बने रहे। कैसा था उसका धिक्कार

का भाव जो पैसे को दुनिया की सबसे घृणित वस्तु बना दे रहा था! और कपड़े क्यों नहीं लिए उसने? क्या पेट भरने की ही मजबूरी होती है, कपड़े बदलने की नहीं? क्या इतना बेपरवाह हुआ जा सकता है, या अपने आकर्षणों के प्रति कहीं न कहीं वह अब भी संशंकित थी?

फिर अचानक वह एक अधेड़ उम्र के पागल के साथ दिखायी देने लगी। उसके रूप-रंग और कपड़े-लत्तों की हालत भी कम बदतर नहीं थी, यद्यपि उसके बड़े-बड़े घुंघराले बाल उसे एक विशिष्टता भी देते लगते थे। दोनों साथ ही चलते-घूमते, लेकिन खाना अभी भी पगली को ही मिलता था जिसे वे दोनों बांटकर खा लेते थे। फिर भी कहा जा सकता है कि मुहल्ले की सहानुभूति, जो पहले श्रद्धा-भाव को भी छूती हुई-सी लगती थी, अब गायब हो गयी थी और देने वाले के मन में उसे कुछ भी देना अब भीख देने से अधिक कोई अर्थ नहीं रखता था।

मैंने एक दिन पत्नी से कहा, 'आश्चर्य है, दोनों कभी एक-दूसरे से बात नहीं करते?'

'बात करने की क्या जरूरत है', पत्नी ने टेढ़ा-सा मुंह बनाकर जवाब दिया, 'जब मन ऐसे ही मिल गया? और क्या उन्हें कोई गृहस्थी चलानी है?'

गरज यह कि उनका यह प्यार लोगों को पसंद नहीं आया। विपरीत-विरुद्ध चर्चाएं भी जल्दी ही शुरू हो गयीं। एक दिन मुहल्ले के कुछ लड़कों ने उन्हें इतना परेशान किया कि अगले दिन से वे दोनों अचानक ही अदृश्य हो गए। फिर कुछ चर्चा-बात हुई, लेकिन बुरा किसी को नहीं लगा।

फिर तो कई महीने बीत गए। सारे लोग पगली को भूल गए, मैं भी भूल गया, यद्यपि यह कहना भी गलत नहीं होगा कि जिस बावरी आत्मा को लोगों ने इतना स्नेह दिया था, उसे वे अपने से काट भी नहीं पाए थे, बल्कि इस तरह एकदम से उसका गायब हो जाना कहीं उनके दिलों में एक गड्ढा भी बना गया था। और अचानक आज वह मिली भी तो किस हालत में?

सुबह करीब साढ़े नौ-दस बजे का समय हो गया था जब आटो ने मुझे कांटायोली चौक पर उतारा। आगे की शेष दूरी के लिए

किसी रिक्षो की तलाश में मैं बढ़ा ही था कि तभी भीड़ पर मेरी नजर गयी। मुझे भी कुछ मनोरंजक जैसा ही लगा, लेकिन जब भीड़ के अंदर दाखिल हुआ तो देखा... चौक के एक परले कोने में लकड़ी की एक बंद गुमटी के नीचे, उसके पीछे की तरफ छिपी पगली, खून में लथपथ हुई, एकदम नंगी, अपने सद्यःजात शिशु को सीने में लगाए जोर-जोर से चीखकर भीड़ को गालियां बकती जा रही थी ... फिर कभी गाने लगती, कभी बच्चे को दूध पिलाने लगती .. रोने लगती ...

मैं हैरान, जिस की किसी ने कभी बोली तक नहीं सुनी, आज वह इस तरह बेहाल-वाचाल ... ? मेरा ध्यान गया, बच्चे की आवाज नहीं आ रही थी? और सच मानिए, जितनी देर मैं वहां रुका, बच्चा निस्पंद ही रहा। तो क्या मर गया? पैदा होने के बाद मर गया? मन में फिर सवाल उठा, कैसे, लेकिन जवाब कौन देता? और जवाब क्या वह इतना दुरुह था?

तभी ट्रैफिक इंस्पेक्टर का डंडा मेरी पीठ पर पड़ा। एक दूसरा डंडा एक सिपाही के हाथ में था जिससे वह पगली की टांगों और पेट में खुचकारकर उसे उठाने की कोशिश कर रहा था। मैं समझ नहीं पा रहा था ये लोग उसे कहां ले जाएंगे। शायद सदर अस्पताल, जो यहां से ज्यादा दूर नहीं है, शायद पागलखाना, जो देश के आजाद होने के बाद तक इस शहर की पहचान था।

मैं भीड़ से छिटककर बाहर आ गया। कुछ पलों के लिए मुझे याद भी नहीं आया कि मैं कहां जा रहा था, क्यों जा रहा था। लोग अब भी हंस रहे थे, लेकिन पता नहीं क्यों मेरा गला एकदम खुश्क हो रहा था। बहुत पहले कहीं पढ़ा था, मातृत्व स्त्री-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, उसका सबसे बड़ा सुख है, लेकिन यह कैसी स्त्री है? यह कैसा मातृत्व है? क्या यही उसका सबसे बड़ा सुख है?

थोड़ा ही आगे बढ़ा तो नजर आया, कालेज के अहाते की दीवार की ओर मुंह कर जहां चलते-फिरते दो-एक राहगीर अपनी राहत निकाल रहे थे, वहीं दो कदम हटकर एक कुत्ता कुछ भींगे हुए कपड़े आराम से बैठकर चबा रहा था। कैसा हो आया था उसका मुंह, लाल?

राम पटवा

जूता निकालो

सुबह की दिनचर्या में दादाजी अपने लाड़ले छोटे पोते को रोज घर के नजदीक स्कूल पैदल छोड़ने जाया करते। स्कूल से लौटने के बाद दादाजी अखबार पढ़ते, चाय पीते फिर घर में मरम्मत करवाए जा रहे, कमरों, दालानों को घूम-घूमकर मुयायना करते थे।

एक दिन स्कूल जाते समय पोते ने अचानक जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। उसके रोने के घरवाले भी बाहर निकल आये। बच्चो रोते-रोते अपनी पैर की ओर इशारा करके बता रहा था। घरवालों ने सोचा कि पैर में शायद दर्द हो रहा होगा।

तुरंत बच्चे को डॉक्टर के पास ले जाया गया। डॉक्टर ने देख-परखा और दर्द के लिए इंजेक्शन और पेन किलर दवा दिया। फिर भी दर्द कम नहीं हुआ। तब कुछ देर बाद डॉक्टर ने बच्चे के पैर से जूता जब निकाला तो जूते के अंदर एक कंकड़ पाया गया, जिसके कारण बच्चे की उंगलियों में चुभन हो रही थी। पैर से जूता निकालने के बाद ही दर्द कम हुआ और बच्चे ने रोना बंद किया।

दादाजी अपनी मित्र मंडली के संग शाम को अपने घर में पोते के बारे में चर्चा करने के बाद टी.व्ही. पर एक आतंकवादी घटना से संबंधित समाचार देख रहे थे। समाचार के अंत में दादाजी बोल पड़े कि— 'आतंकवाद भी इसी तरह इस देश के जूते में एक कंकड़ की तरह घुसा हुआ है।' एक मित्र ने प्रत्युत्तर में कहा कि जब तक कंकड़ नहीं निकलेगा चुभन होती ही रहेगी। दूसरे मित्र ने सहज भाव से कहा कि जूता तो निकालो।

एन-3, साकेत, बसंत पार्क कॉलोनी
महावीर नगर, न्यू पुरै

सिर झुकाए मैं जल्दी ही वहां से निकल गया, जैसे कोई भी शरीफ आदमी निकल जाता।

327, बी, कडरू, रांची-834002

तारिक असलम 'तस्नीम'

सदैव आस्था चूर्ण ही प्रयोग करें. . . ।

हमारे देश में यों तो पान में चूना लगाने की परंपरा सदियों पुरानी है। क्या आम आदमी और क्या राजा-रजवाड़े सबको पान चबाने यानी खाने की आदत होती है। कुछ मनचले शौकिया तौर पर भी पान चबा लेते हैं और वे कुछ यों मुंह बनाते हैं जैसे मुर्गे की टांग चबा रहे हों। अमूमन ऐसे लोग अपने ही होंठों की लाली देख-देख फूले नहीं समाते। पान की महिमा कुछ ऐसी है कि ससुराल में दामाद जी को न केवल साली सरहज बल्कि हंसी-ठिठोली करने में सासू जी भी तनिक पीछे नहीं रहना चाहतीं। इसलिए वह भी दामाद जी को गिलोरियां खिलाना नहीं भूलतीं। जिस पे वह फूली नहीं समातीं। अब उनकी मंशा क्या होती है? ये तो उनका दिल ही जानें। मैं तो बस यही जानता हूं कि सासू मां दामाद जी से अच्छे आचरण और व्यवहार की अपेक्षाएं ही करती हैं। फिर यह भी कि वह बेटी को फूटे भांडू का चना नहीं समझें। उसे अपनी आंखों का तारा बनाए रखें। जो गलत भी नहीं कहा जा सकता है।

अब बात मंशा और आस्था की छिड़ ही गई है तो फिर देश के अनेक आश्रमों जो आज की तारीख में ताजमहल से भी अधिक भव्य और आलीशान होते हैं उनमें जीवन-यापन करते बाबाओं को भी खंगालते चलें। जो बेशक कुंभ के मेले में दिखने वाले बाबाओं से कहीं अधिक तपस्वी, ज्ञानी और हृदय तो जैसे अमृत वचनों से लबालब होता है। उनकी वाणी जैसे जाम में मय छलके। बड़ी-बड़ी ज्ञान की शिक्षाप्रद बातें थोड़ा-सा ग्रहण कर ही लेंगे तो उनका क्या बिगड़ जाएगा। मगर वे तो श्राप दे रहे हैं... बड़े पूंजीपति घरानों को। नाकों चने चबवाने की बातें कर रहे हैं, क्योंकि उनको देश की, राजनीति की और जनता की सेहत की खूब चिंताएं घेरे रहती है। उनको यह भय सताते रहता है कि विदेशी कंपनियां देश को ओर

देश की जनता को लूट रही हैं। उनको दवाइयों के नाम पर कंगाल बना रही हैं। अब भला जो बाबा लोग देश को दुनिया को धरती से महासागरीय जहाजों तक पर पूरे तामझाम के साथ योगा, प्राणायाम और व्यायाम को परोस रहे हो और उनकी देवताओं सी वाणियों पर चैनलों के कैमरे मोरनी से चारों



ओर के नजारे दिखा-दिखाकर करोड़ों के विज्ञापन लूट रहे हों, फिर भला बाबाओं के हाथों में खुजली क्यों न हो? यों भी हमारे देश में दूसरों को गरियाने का मजा लोग रस ले-लेकर सुनते हैं।

अब आपको क्या करना है? बाबा जी के आस्था से स्वयं को जोड़िए और उनकी मंशा को जाने-अंजाने समर्थन दीजिए और सब कुछ हजम कीजिए। केवल योगा और प्राणायाम से लाभ न मिले तो फिर बाबा को देख ही रहे हैं योगासन के साथ-साथ सुबह शाम जड़ी बूटियों के बखान में जमीन आसमान एक किए दे रहे हैं। पहले इसके गुणों को जानिए फिर सेवन कीजिए। यह बात भूल से भी मन में न लाइए कि ये औषधियां अंग्रेजी दवाइयों से कई गुणा अधिक महंगी तो नहीं है? वरना बेशक पाप के भागी होंगे आप।

आपके लिए चिंता की कोई बात नहीं। देश हो या विदेश हर जगह एक-एक बाबा के कई एक आश्रम और असंख्य दुकानें खुल गई हैं। जिसे देखकर पूंजीपतियों की नींद जरूर हराम हो गयी होगी कि

उनको कमबख्त अक्ल क्यों न आयी? सारी जड़ी बूटियों के पेटेंट अपने नाम करा लिया होता तो आज बाबा गरिया तो नहीं सकते थे न? जो अब बाबाओं की बन आयी है। ये जड़ी बूटियों के पाठ भी कंठस्थ करा रहे हैं। तिस पर बाबा यह भी चिल्ला-चिल्ला कर बताना नहीं भूलते कि इसके अलावा सारी दवाइयां सेहत और शरीर दोनों के लिए हानिप्रद है। इसलिए आज ही से आप मेरे अत्याधुनिक और विश्व के एकलौते विश्वसनीय और सर्वाधिक विशाल औद्योगिक ईकाई की आस्थापूर्ण चूर्ण ही उपयोग करें। सदा स्वस्थ एवं मस्त रहें।

हमारे बाबा को यकीन है कि मेरे प्रोडक्ट कतई महंगे नहीं हैं। देश की जनता नब्बे रुपए किला अरहर दाल खा सकती है फिर भला ये औषधियां क्यों नहीं? जो हिमालय के जंगलों में छितरायी हैं। जहां से बस बटोर कर लाना है। जैसे चालीस साल पहले लोग दिशा मैदान के लिए वनों और बीहड़ों में जाते और लौटते समय आम, जामुन, महुआ आदि चुनकर ले आते। जिसके लिए कोई दाम-बट्टा तो लगता नहीं। लेकिन बाबा तो आखिर बाबा है। उनको आश्रम को स्वर्ग बनाना है। धन्ना सेटों से दान लेना है, फिर उनको धरती पर स्वर्ग की सैर करानी है। अब इस स्वर्ग की सीढ़ियां दान के कैसे पैसों से बन रही हैं। यह दान देने वाला और बाबा ही जानें। हमें क्या लेना। भई! हम तो बस इतना जानते हैं कि जब दवाइयां सस्ती थीं तो लगता था कि रोग में लाभ हो रहा है लेकिन जिस दिन से दिन दुनी और रात चौगुनी गति से कीमतें बढ़ी हैं। तब से लगता है कि अब रोग नहीं दवाइयां ही पकड़ से बाहर होती जा रही हैं। फिर भी जय हो बाबा की...मूर्ख देश की जनता की. . . ।

संपादक कथासागर
प्लॉट-6, हारून नगर, फुलवारी शरीफ, पटना

राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

साहित्य जगत के वट वृक्ष

कबीरदास जी ने सही कहा है कि 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर, पंछी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।' बड़प्पन किसी के काम न आए तो उसका क्या लाभ? उस पर विडम्बना यह कि खजूर को वट वृक्ष का भ्रम हो जाए फिर तो भगवान ही मालिक है। यूँ वटवृक्ष एक तरह से गुणों का सागर (भंडार) होता है पर एक दुर्गुण या दोष उसके गुण-सागर को ठहरे हुए सड़ते पानी का संकुचित पोखर जैसा बना देता है। वह दोष है अपनी छाया (प्रभाव क्षेत्र) में अन्य पौधे को न पनपने देना। वटवृक्ष की तरह पीपल भी अपने बड़प्पन की कैद में घिर जाता है। शास्त्रों में भले ही पीपल को देव वृक्ष माना गया हो, आम लोगों में यही माना जाता है कि पीपल पर भूतों का डेरा होता है।

बरगद और पीपल जैसी नियति साहित्यिक जगत में भी देखने को मिलती है। साहित्यिक भूमि पर दूर-दूर तक अपनी जड़ें रोपे ये बरगद और पीपल बड़े होकर भी किसी के काम नहीं आते। न कोई इनके पास फटकता है, न इनकी लकड़ी रोटी सेंकने के काम आती है। इन पीपलों पर भूत दृष्टिकोण इस कदर हावी रहता है कि उन्हें वर्तमान में नए अंकुर मौसमी हरियाली नज़र आते हैं। जबकि मौसमी हरियाली सबकी आंखों को भाती है। वैसे बरगदों और पीपल की संख्या थोड़ी ही होती है पर ये हर गांव, हर कस्बे, हर नगर में दो-चार की संख्या में मिल ही जाते हैं। इनकी स्वभावगत विशेषता होती है कि ये अपनी नीचे घास भी नहीं जमने देते। अब यह बात दूसरी है कि इनके न चाहने पर भी कुछ हम जैसे बेशर्म-से पौधे बिना खाद-पानी के भी इनके आस-पास ही हरियाते रहते हैं।

इन वट वृक्षों और पीपलों में एक विशेषता और भी होती है ये जहां एक बार जड़ें जमाना, अपना विस्तार करना होता है

भले ही आश्रय स्थल खण्डहर में बदल जाए। अगर कोई संस्था इनकी प्रवृत्ति को भांपकर इन्हें जड़ें जमाने से पहले ही उखाड़ फेंके, तो ये उसके जानी दुश्मन बन जाते हैं और समानान्तर गोष्ठी-संगोष्ठी कर अपने मन की भड़ास निकालते रहते हैं। ये अपनी 'अढ़ाई लेडी कौ कौंडो' हमेशा अलग ही जलाए रहते हैं।

इन्हें दूसरी संस्थाओं से जन्मजात बैर



होता है क्योंकि ये कभी-कभार खुद ही कोई संस्था अवैध संतान की तरह पैदा तो कर देते हैं, पर उसको पाल-पोस नहीं पाते और यह संतान अनाथालय (सरकारी संरक्षण) और अनुदान न मिलने के कारण एक वसंत भी नहीं देख पाती है। खुद संतानहीन (संस्थाहीन) होने के कारण दूसरों की पाली-पोसी संतानें (संस्थाओं) की बढ़ती उम्र देखकर इन बांझों के सीने पर सांप लोट जाता है। ईर्ष्या रूपी सांप के जहर में बिंधे ये विषबुझे पुरुष अपना जहर गाहे-बगाहे उगलकर अपनी जलती आत्मा को शांति पहुंचाने की कोशिश कर खुद ही अपनी पीठ भी थपथपा लेते हैं।

जब वट वृक्षों की आयु बढ़ती है तो बाहरी विस्तार जरूर बढ़ जाता है पर इनका तना अंदर से खोखला होने लगता है। अगर किसी का शरीर भले ही हृष्ट-पुष्ट हो पर दिमाग खोखला हो जाए तो वह प्रलाप करने

लगता है। कहते हैं कि आदमी साठ साल का होने के बाद सठिया जाता है और सत्तर वर्ष का होने पर गठिया जाता है। पुराने पेड़ों में गांठें पड़ जाती हैं और उनके पत्तों तक ताजा रस नहीं पहुंच पाता। यही स्थिति साहित्यिक जगत में व्याप्त खोखले हो चुके वटवृक्षों की होती है। जब ये खोखले हो जाते हैं तो सबसे पहले गोष्ठियों में जाना बंद कर देते हैं क्योंकि ताजा कुछ होता नहीं है बासी हो चुकी रचनाएं कोई कब तक सुने। खाना भी कितना ही अच्छा क्यों न हो, बासी हो जाने पर फेंकना ही पड़ता है। सो अपने मन की भड़ास ये साहित्यिक कार्यक्रमों एवं गोष्ठियों की आलोचना करके निकालते हैं कि इनमें कोई श्रेष्ठ रचनाएं नहीं पढ़ी जाती हैं।

आखिर ये क्यों भूल जाते हैं कि सभी साहित्यकार पंत, निराला, प्रसाद, महादेवी या प्रेमचंद आदि नहीं होते। गली, मुहल्ले, गांव, देहात में आदमी टूटे-फूटे शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्त करने के लिए कोई रचना गढ़ता है और दूसरों को सुनाकर संतोष का अनुभव करता है। उदार, समझदार श्रोता भी उसमें मीन-मेख न निकाल वाह-वाह का खाद पानी देकर नए अंकुर को बढ़ने में सहायक होता है। न कि आलोचना का तुषारापात कर उसे सुखा देता है। इन वट वृक्षों की चाहत और भी होती है, ये चाहते हैं कि लोग इन्हीं की परिक्रमा लगाते रहें, इन्हें ही पूजते रहें। अगर कोई दूसरे वृक्ष की पूजा कर दे तो ये जलकर अंगार हो जाते हैं और पुज्य-पूजक दोनों की बखिया उधेड़ने में जुट जाते हैं। मुंह पर बधाई देते हैं और पीठ पीछे निन्दा करते हैं यानी 'मुंह में राम बगल में छुरी।' चेहरे पर कई मुखोटे लगाए आत्मरति के शिकार इन वट वृक्षों को दूर से ही प्रणाम।

शिवनगर कालोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

दिनेश चन्द्र झा 'प्रवासी'

साधारण-असाधारण

सुख-दुःख में जो समभाव रह लेते हैं वे असाधारण जन कैसे होते हैं? क्या उनके भी दो हाथ, दो पैर, दो कान होते हैं? मैं ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गया हूँ। हर जगह साधारण जन ही मिले-बिजली चोरी करने वाले, उधार लेकर न लौटाने वाले, मित्र के फोन पर शहर के बाहर तड़तड़ बीस-तीस फोन कर लेने वाले, बिना आरक्षण के रेल के आरक्षित डब्बों में बेलाग घुस जाने वाले। अब देखिए, मेरे एक मित्र संपादक ने विशेषांक के लिए कहानी मांग कर नहीं छापा तो मुझे जूलियस सीजर ब्रूटस प्रसंग याद आ गया। पत्रिका की दुकान पर अपनी कथा विहीन अंक देख कर लौटा तो इतना उद्विग्न था कि चार कदम चलते ही मोपेड समेत सड़क पर लुढ़क गया। पैर हाथ छिल गए। थोड़ा खून-सून भी बहा। कपड़े सड़क की गंदगी में लिसड़ गये। कहीं हड्डी-सड्डी ते नहीं टूटी? ऑर्थोपेडिक्स के पास गया तो उन्होंने बिना छुए ही कह दिया-हिंदी के लेखक को हड्डी होती भी है? नहीं होती है तो प्रेमचंद ने कैसे लिख दिया था-मनुष्य को सबसे बड़ा आघात अपनों से ही मिलता है। एक चिड़ियाघर में एक बार एक कौतुक देखा था। दर्शकों के चिढ़ाने पर बाड़े के भीतर का बंदर किटकिटा कर दौड़ता, दौड़ता और बंद बाड़े से आगे न आ पाता। क्रोध में वह अपने ही तन को काटकर लहलुहान कर लेता। संपादक मित्र से छला मैं स्वयं में उस नपुंसक आक्रोश की बंदर छवि पा रहा हूँ। खुद को काट खाऊँ तो आश्चर्य नहीं।

गिरकर मर जाता या अस्पताल में भरती होना पड़ता तो शहर संवाददाता के लिए स्टोरी बनती। घर आ गया तो कोई मित्र तक हाल पूछने नहीं आया। यों भी, मैं इतना निरर्थक हूँ कि महीनों न कोई मिलने आता है न फोन करता है। इस पर कुढ़कर एक दिन मनोयोग पूर्वक एक कविता लिख

डाली और श. को सुनायी तो कविता पर मंतव्य देने के बदले उसने आधार पर ही चोट कर दी- जिनकी उपेक्षा पर आपने कविता लिखी है आप स्वयं उन्हें याद करते



हैं? कबीर कह गए हैं- बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय. . .।

श. अगला बंध उगलती या इसकी व्याख्या करती है कि मैं उखड़ गया-मुझे तो यह वाणी ही बड़ी बेतुकी लगती है। होना चाहिए, भला जो देखन मैं चला भला न मिलिया कोय। दूसरी पंक्ति ज्यों की त्यों रखी जा सकती है- जो दिल ढूँढ़ा अपना मुझ सा बुरा न कोय। बुरा कोई दुर्लभ जीव है, कि टार्च लेकर ढूँढ़े फिरो? आसपास, नीचे-ऊपर अगल-बगल चारों तरफ तो स्याही ही स्याही है। ये बुरा, वे बुरे, मैं बुरा, तुम बुरी।

बोलकर मैं डर गया। औरत को बुरी कहो तो इसका एक ही अर्थ निकलता है। पुरुष के लिए वह गर्व की चीज है। औरत के लिए गाली है। सच हो तब भी, झूठ हो तब भी।

श. ने मुझे बख्शा नहीं। दूर से निशाना साधा-आप भला तो जग भला। वह मुझे घुमा फिराकर बुरा कह रही थी। पहले भी कबीर की पंक्ति उद्धृत कर लगभग कह ही चुकी थी।

चोट करने के लिए ही नहीं आत्म स्वीकृति के लिए भी भाषा सबसे बेधक औजार है। और इंकार के लिए तो वह मकरध्वज है। नकारते हम हैं। दोष किसी और का लगा देते हैं। और कुछ नहीं तो परिस्थितियों का ही। मित्र संपादक ने बिन टोके ही सफाई दे दी-स्थानाभाव था। कई और रचनाकारों की रचनाएं भी जाने से रह गई। अगर वह सच कहता तो उसे कहना पड़ता-प्यारे, तुम्हारी कहानी दो कौड़ी की भी नहीं थी।

भाषा जब भी पैदा हुई होगी, उसका छद्म भी उसके साथ ही पैदा हुआ होगा। शिकार करने के लिए जब पहली बार आदम ने हौआ से साथ चलने का अनुरोध किया होगा, तो न जाने की इच्छुक हौआ की सहायता भाषा ने ही की होगी- आज जी ठीक नहीं है।

आज निहितार्थ वाले कथोकथनों का अवसर नहीं है। शरीर से अधिक मेरा मन संतप्त है और पास बैठी श. को मैंने पूरी उबाल-उत्तेजना के साथ अपनी व्यथा सुना दी है। उससे ही मैंने जानना चाहा- प्रतिशोध कैसे लिया जाय। वह नीतिकार की मुद्रा में आ गई है-जो ताको कांटा बुए ताहि बोउ तू फूल. . .।

ईश्वर (यदि है) तो वह रोज हमारे जीवन में कांटे बोता है। हम रोज उसे फूल चढ़ाते हैं। यह हमारी महानता नहीं लाचारी है। हम ईश्वर का कुछ बिगाड़ नहीं सकते, उससे डरते हैं। लाचारी महिमा मंडित करने की चीज नहीं है। असाधारणता मुझे काटने दौड़ती है। मैं साधारण ही रहना चाहता हूँ- ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध आदि से भरपूर। हिंदी के तालव्य 'श' के लिए थोड़े से प्यार से भी। भवानी भाई मेरे आदर्श हैं-मैं जड़ हो जाना चाहता हूँ। चेतन से मुझे नफरत है।

प. सं.-4, रामनगर (नाला पार)
हजारीबाग-825301 (झारखण्ड)

चन्द्र प्रकाश भाटिया

स्थानांतरण शास्त्र

इस शास्त्र को हिंदी में स्थानांतरण शास्त्र, उर्दू में तबादलानामा और अंग्रेजी में ट्रांसफरलोजी भी कह सकते हैं। इस बृहद शास्त्र की आवश्यकता मुझे तब महसूस हुई जब मेरा भी स्थानांतरण हुआ। वैसे इस महान शास्त्र को कलमबद्ध करने की आवश्यकता किसी विद्वान ने नहीं समझी। अतः इस महान कार्य को करने का बीड़ा मैंने ही उठाया।

शायद ऐसे किसी शास्त्र की आवश्यकता हमारे ऋषि-मुनियों को पड़ी ही न हो। उन्होंने तो बस एक ही ट्रांसफर को ज्यादा महत्व दिया जो कि इहलोक से परलोक को होता है और स्थायी होता है। वैसे अपने हिसाब से आत्माओं की पोस्टिंग विभिन्न जीवों में कराने की बात कही गई है। विभिन्न जीवों के चौरासी करोड़ कैंडर होने की बात भी कही गई है। धर्मशास्त्रों ने छोटे-मोटे ट्रांसफरों का भी जिक्र किया है, जैसे ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ आश्रम और फिर वानप्रस्थ आश्रम आदि। परंतु इनकी सेवा-अवधि भी 25 वर्ष थी। संभवतः इसी का हवाला देकर आज भी स्वामिभक्त सेवक इतने ही वर्षों तक मनचाहे स्थान तक जमे रहना अपना धर्म समझते हैं।

स्थानांतरण करते रहने की आवश्यकता पर आचार्य कौटिल्य ने थोड़ा संकेत किया है, पर इतने गौण विषय पर उन्होंने कोई शास्त्र नहीं रचा। लंबे समय के बाद बादशाह शेरशाह सूरी ने इस विषय पर थोड़ा ध्यान दिया और जैसा कि इतिहासकार बताते हैं, उसने तीन वर्षों का अंतराल तय किया जो आज भी एक मानदंड है। बादशाह अकबर के शासनकाल में तो राजा टोडरमल मानो सरकारी कर्मचारियों के पीछे ही पड़ गये थे। अंग्रेजों के शासन काल में इस शास्त्र ने विशेष उन्नति की। आधुनिक काल में इसकी महत्ता असंदिग्ध है। वर्तमान समय में इस शास्त्र के विशेष ज्ञाता उत्तर प्रदेश में हैं।

सुबह-शाम होने वाले स्थानांतरण से तंग आकर कई अधिकारी न्यायालय की शरण में हैं। सुना है कि विश्व बैंक ने अधिकारियों के स्थानांतरण का विकास कार्यक्रमों पर होने वाले असर पर एक शोध के लिए इसी भाग्यशाली को चुना है।

जैसा कि मैंने जिक्र किया है कि मेरा भी स्थानांतरण हुआ। हर सप्ताह आने जाने की प्रक्रिया में कई चेहरे परिचित से लगने लगे। धीरे-धीरे पता चला कि वे भी मेरी तरह विभिन्न विभागों के स्थानांतरित लोग हैं। उनमें से अधिकांश चेहरे पर मायूसी छाई रहती। वे अन्य यात्रियों से कम ही बोलते। उन्हें मोटे तौर पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में वे लोग थे जो तुरंत ही स्थानांतरित हुए थे और पहली बार स्कूल जा रहे बच्चों की तरह विचलित रहते। वे अपनी व्यथा हर किसी को यहां तक कि चायवाले और रिक्शवाले को भी सुनाने को व्याकुल रहते। दूसरे वर्ग में वे लोग थे जो स्वभावतः एक जगह पर टिक नहीं पाते थे। ऐसे लोग तबादलों के अभ्यस्त से हो गए थे और उन्हें इस प्रक्रिया में मजा भी आने लगा था। तीसरे वर्ग में कुछ मध्यम स्तर के अधिकारी थे जो कि कुछ ऐसा उदासीन सा मुंह बनाए रहते जैसा कि सहशिक्षा में छात्राएं किया करती हैं। शायद वे पिछली पोस्टिंग और उससे प्राप्त जायज-नाजायज फायदों के बारे में सोचते रहते। अपने बारे में कोई सूचना इतना आश्वस्त होने पर ही देते कि पूछने वाला व्यक्ति भी अधिकारी स्तर का ही है।

कभी कभार इन दुखी आत्माओं में से कोई अचानक अनुपस्थित हो जाता। शेष सभी यह जिक्र करने लग जाते कि शायद उसका स्थानांतरण हो गया। उसके विभाग के व्यक्ति से जानकारी लेने को सभी उत्सुक हो जाते। यह मालूम होने पर कि वह वास्तव में बीमार है, सभी चैन की सांस

लेते। वैसे इस दैनिक-साप्ताहिक यात्रा के अपने फायदे भी हैं। बसवाले, चायवाले और रिक्शवाले इस तरह पहचानने लगे थे मानों हम उनके धंधे में ही हों। अतः तमाम परेशानियों के बावजूद यह एक प्रकार की उपलब्धि थी।

इन सभी भुक्त-भोगियों के बीच चर्चा का एक ही विषय रहता - स्थानांतरण। किसी भी अन्य मुद्दे को वे स्थानांतरण से जोड़ कर ही देखते। तबादले के कारण अलग-अलग से पर लक्ष्य सबका एक ही था। अतः स्थानांतरण के विभिन्न पहलुओं पर गूढ़ चर्चाएं होतीं। मुझे समझ में आने लगा था कि इस गूढ़ विषय के कितने अंग हैं। इसमें पहला था पैरवीशास्त्र या पंहुचशास्त्र जिसकी कृपा से आप मिनटों में मनचाही जगह जा सकते थे। जातिशास्त्र भी कम महत्वपूर्ण न था। आने वाला अफसर किस जाति का है किन जातियों के समीकरण किन जातियों के साथ नहीं बैठते, यह मुझे पहली बार ज्ञात हुआ। हस्तरेखाओं और ज्योतिष शास्त्र का विशेष महत्व था, मानो राहु-केतु और शनि-मंगल को और कोई काम ही न था। मुझे पहली बार पता चला कि मेरा स्थानांतरण इन्हीं ग्रहों की साजिश का परिणाम है। चिकित्साशास्त्र की महिमा अपरंपार थी। किसी की बीमारी का वास्तविक या काल्पनिक प्रमाण-पत्र उपलब्ध हो जाना तुरूप के पत्ते सी चाल मानी जाती थी। एक सहयात्री ने मुझे बताया कि किस तरह जानवरों की दवाईयों के जानकार ने अपने इसी गुण पर स्थानांतरण करवाया। कुछ लोग सांकेतिक रूप से अर्थशास्त्र की भी चर्चा करते। इसके अलावा तर्कशास्त्र, यूनियनशास्त्र तथा वास्तुशास्त्र भी कम महत्वपूर्ण न थे। संक्षेप में भक्तिशास्त्र से लेकर पाकशास्त्र तक की अपनी महत्ता थी और ये सब

शेष पृष्ठ 104 पर. . .

शरद सिंह

बिन अधिकारी सब सून

गरीबदास जी को गधे से बड़ा लगाव है। यह लगाव कोई आजकल का नहीं है बल्कि उन्हें तो अपनी बाल्यावस्था से ही गधे के प्रति अगाध प्रेम रहा है। इसी कारण जब उनके मास्टर जी उन्हें ककहरा पढ़ा रहे थे तो मास्टर जी ने बालक गरीबदास से कहा, 'बोलो बेटा, 'ग' से गगरी।' तो, गरीबदास जी के मन में प्रश्न उठा कि 'ग' से गगरी ही क्यों गधा क्यों नहीं? और, यही प्रश्न जब उन्होंने अपने मास्टर जी से पूछा तो मास्टर जी झल्ला कर बोले, 'अबे गधे! व्यर्थ की बहस मत कर, जो मैं कहता हूँ उसे दोहरा। बोल 'ग' से गगरी।'

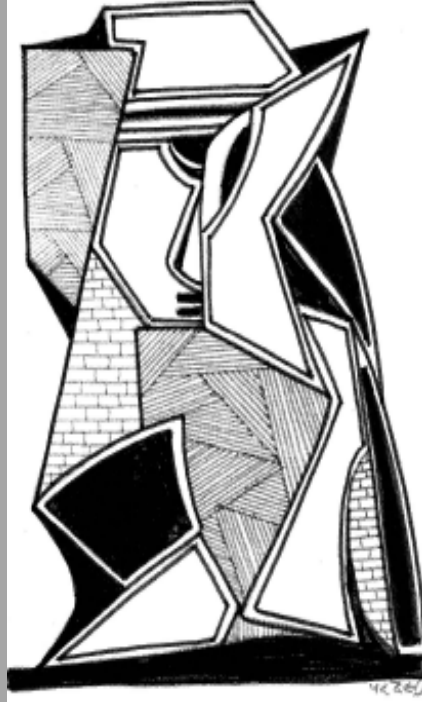
डांट खाकर गरीबदास जी ने ऊपर से तो 'ग' से गगरी तो बोल दिया लेकिन मन ही मन दुहराते रहे 'ग से गधा, ग से गधा, ग से गधा।'

गरीबदास जी थोड़े बड़े हुए अर्थात् किसी तरह दो-चार कक्षा ऊपर चढ़े तो उन्हें इस बात का पता चला कि गधा तो अत्यंत विशेष प्राणी होता है। यहां तक कि गधा परीक्षा में आने वाले महत्वपूर्ण प्रश्न बता सकता है। ये बात गरीब जी को इस प्रकार पता चली कि गरीबदास जी के साथ पढ़ने वाले लड़के परीक्षा के दिनों में पढ़ाई करते समय बहुत चौकन्ने रहते। वे जिस समय पढ़ते रहते यदि उस समय कहीं से किसी गधे के रेंकने का स्वर सुनाई दे जाता तो वे झट से कहते— 'यही प्रश्न इम्पोर्टेंट है। ये परीक्षा में जरूर आएगा।'

गरीबदास जी जब अच्छे-खासे बड़े हो गए तब भी गधे के प्रति उनका प्रेम कम नहीं हुआ। फिर भी एक दिन उन्होंने सोचा कि किसी बच्चे से बात की जाए कि आज कल किस ढंग से ककहरा सिखाया जाता है? अब, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में हिन्दी ककहरे का क्या काम? इसलिए उन्होंने किसी घसियारे हिन्दी स्कूल के घसियारे बच्चे से पूछने का निश्चय किया। गरीबदास

जी जैसे ही घर से बाहर निकले कि उन्हें एक गंदा-फंदा-सा बच्चा मिल गया। गरीबदास जी समझ गए कि यह किसी घसियारे हिन्दी स्कूल का छात्र होगा। गरीबदास जी ने लपक कर उसे रोका और उससे प्रश्न पूछना शुरू कर दिया।

गरीबदास जी ने पूछा, 'तुम्हारा नाम?'



बच्चे ने उत्तर दिया, 'रतौने।'

'तुम्हारे पिता का नाम?'

'भगौने।'

'तुम्हारी मां का नाम?'

'तुम्हें क्या करना?' बच्चे ने तू-तड़ाक वाले अंदाज में उत्तर दिया। गरीबदास जी सितपिटा कर बोले, 'ठीक है, ठीक है, तुम्हारी मां के नाम से मुझे क्या लेना-देना? तुम तो ये बताओ कि तुम स्कूल जाते हो?

'हां, जाते हैं।' लड़के ने शान से कहा।

गरीबदास जी ने आगे पूछा, 'किस कक्षा में पढ़ते हो?'

'तीसरी में।' लड़के ने बताया

'क्या पढ़ते हो?'

लड़का गरीबदास जी का प्रश्न सुनकर पहले तो हंसा फिर अपनी बहती हुई नाक पोंछते हुए बोला, 'ही-ही-ही, पता नहीं।'

'पता नहीं?' गरीबदास जी आश्चर्य से बोले, 'तुम क्या पढ़ते हो तुम्हें पता नहीं तो फिर तुमने पिछली दो कक्षाएं कैसे पास कर लीं?'

लड़के ने बड़ी साफगोई से उत्तर दिया, 'वो तो ऐसे ही पास कर ली। हम मास्टर जी के घर चौका-बरतन कर दिया करते हैं इसलिए मास्टर जी ने खुश होकर हमें ऐसे ही पास कर दिया।'

गरीबदास जी बच्चे की साफगोई से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने बच्चे से बड़े प्यार से पूछा, 'अच्छा, ये तो पता है न कि 'ग' से क्या होता है?'

'ग से होती है गइया।' बच्चे ने तत्काल उत्तर दिया।

बच्चे का उत्तर सुनकर गरीबदास जी खुश हो गए। आखिर उस बच्चे ने भी ग से गए चौपाए को ही चुना। 'ग' से गगरी कहने के बजाए उसने 'ग' से गइया कहा। 'ग' से गधा नहीं तो कम से कम गइया तो थी ही। इस पर उत्साहित होकर गरीबदास जी ने बच्चे से पूछा, और 'अ' से क्या होता है?'

'अ से अधिकारी।' बच्चे ने फौरन कहा।

बच्चे का उत्तर सुनकर गरीबदास जी भौचक रह गए। उन्हें इस उत्तर की आशा नहीं थी। उन्होंने बच्चे से पूछा कि ये किसने सिखाया तुम्हें?

तो बच्चे ने उत्तर दिया कि हमारे मास्टर जी ने हमें सिखाया कि 'अ' से अधिकारी होता है। मास्टर जी ने ये भी कहा था कि— 'अ' से अधिकारी रट ले, जिंदगी

भर उसी के साथ खटना पड़ेगा तुझे। इसलिए हमने रट लिया।'

बच्चे की बात सुनकर गरीबदास जी को उसी क्षण मानो सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया। उन्हें लगा कि 'ग' से चाहे गधा हो या न हो लेकिन 'अ' से अधिकारी अवश्य होना चाहिए और इस प्रकार, ज्ञान का पहला अक्षर अधिकारी से ही शुरू होना चाहिए। इस अधिकारी नामक जीव से जीवन भर पीछा नहीं छूटता है। ये अधिकारी नामक जीव 'साहब जी' के सम्बोधन से पुकारे जाते हैं। जीवन के हर कदम पर छोटे साहब, बड़े साहब, बड़े से बड़े साहब, बड़े से बड़े साहब यानी अधिकारियों की एक लंबी कतार मिलती है। किसी भी काम से चाहे नेता के पास जाओ या अभिनेता के पास, अंततः जाना पड़ता है किसी न किसी अधिकारी के पास। वैसे अधिकारी वह दो-पाया जीव होता है जो शेर जैसे दमदार कर्मचारियों को भी गीदड़ बना देता है। इस दो पाए प्राणी की कार्यप्रणाली सरकस के 'रिंग मास्टर' जैसी होती है। इसके हाथ में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सी.आर. यानी कॉन्फीडेंशल रिपोर्ट यानी गोपनीय चरित्रावली का चाबुक होता है। इसी चाबुक के संकेत पर सभी कर्मचारी करतब दिखाते रहते हैं।

अधिकारी प्रायः धनसम्पन्न प्राणी होता है। इस अधिकारी नामक जीव की जीवनी अर्थात् इसकी जीवन संगिनी भी धन की सम्पन्नता बढ़ाने के लिए इसे सदा प्रेरित करती रहती है। अधिकारी नामक प्राणी की कृपादृष्टि पाने वाले स्वयं का जीवन धन्य समझते हैं और अधिकारी की कृपादृष्टि स्वयं पर बनाए रखने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद से काम लेते रहते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि अधिकारी मेहरबान तो कर्मचारी पहलवान। अधिकारी चाहे तो प्रसन्न होकर खाऊ-पिऊ अनुभाग दे सकता है अन्यथा अप्रसन्न होने पर काला-पानी कहलाने वाले दुर्गम स्थानों पर स्थानान्तरित कर सकता है।

गरीबदास की को यह भी याद आया कि कर्मचारियों को ही नहीं गैर कर्मचारियों को भी इस अधिकारी नामक प्राणी का मुंह जोहना पड़ता है और चरणवन्दन करनी पड़ती है। क्योंकि, यदि राशन चाहिए तो अधिकारी

से राशनकार्ड बनवाओ, दुकान खोलना है तो अधिकारी से अनुमति लो, मकान बनाना है तो अधिकारी के चक्कर लगाओ। यदि अधिकारी से सत्यापित कराए हुए कागजात आपके पास नहीं हैं तो आपके कागजातों की कोई कीमत नहीं है। हर व्यक्ति को अपने जीवन में कभी न कभी किसी न किसी अधिकारी के दर्शन करने ही पड़ते हैं। यदि आय अच्छी है तो आयकर अधिकारी के दर्शन करने पड़ते हैं, विदेश भ्रमण करना है तो स्थानीय अधिकारी से लेकर दूतावास अधिकारी तक के दर्शन करने पड़ते हैं। चोर-डकैतों से पाला पड़े तो पुलिस अधिकारी का मुंह देखना पड़ता है। और, जो कहीं दुर्योग से कवि-लेखक बन गए तो साहित्य अकादमी के अध्यक्षनुमा अधिकारी को सलाम करने में ही भलाई नजर आती है।

इस मानव जीवन में अधिकारी के बिना कोई गति प्राप्त नहीं होती है, बस, दुर्गति ही दुर्गति रहती है। कुछ मिलाकर हाल ये है कि यदि जन्म लो तो पंजीयन अधिकारी के पास दर्ज हो जाओ और मरो तो पंजीयन अधिकारी के पास दर्ज रहो। वरना आपको कोई जिंदा या मूर्दा मानेगा ही नहीं। अर्थात् बिना अधिकारी के आपका कोई अस्तित्व नहीं है।

111, शांतिविहार, रजाखेड़ी
सागर (मध्य प्रदेश)-470004

... पृष्ठ 102 का शेष

अपनी जगह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

वैसे कुछ सहयोगियों का मत था कि शास्त्रों के साथ-साथ शस्त्रों की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका थी और उद्दण्ड लोग जो बात-बात में गोली-बंदूक की चर्चा किया करते थे, के स्थानान्तरण की संभावना कम ही रहती थी।

अभी मेरा परिचय स्थानान्तरण-शास्त्र के प्रारंभिक अध्यायों से ही हुआ है। शायद अगले स्थानान्तरण पर कुछ और अध्यायों से मेरा परिचय हो सके।

टाइप-5, क्वाटर नं. 20, इन्कमटै
13 नंबर टै

साल्ट लेक, कोलकाता-700097 (पश्चिम बंगाल)

txM d ;x dk l Qy fp=.r



मनोहर पुरी का नया उपन्यास 'जिन्दगी और जुगाड़' मुड़कर किसी की ओर न देखने, अपने ही जुगाड़ों में व्यस्त, भागते हुए समाज की जीवंत तस्वीर है। सच तो यह है कि आपाधापी के इस युग में व्यक्ति को अपना अस्तित्व बचाने के लिए जुगाड़ का सहारा लेना ही पड़ रहा है। आर्थिक, राजनीति और यहां तक कि शैक्षणिक जीवन भी जुगाड़ पर निर्भर होकर रह गया है। हर एक व्यक्ति दिन भर किसी न किसी प्रकार के जुगाड़ करके अपने जीवन की गाड़ी को धकेलने का प्रयास कर रहा है।

उपन्यास के पात्र रूपचंद को ललितपुर भा गया तो उसने अपनी पत्नी राजरानी से वहीं रह जाने की इच्छा जताई। दोनों ने वहां ऐसा जुगाड़ बिठाया कि आस-पास के गांवों तक की दुनिया बदल गई। उपन्यास में जगह-जगह दी गई उक्तियां अत्यन्त सटीक हैं। ऐसे तीर जो सीधे निशाने पर लगते हैं। भीखू मांझी का परिवार, गायत्री, गंगा, बुआ, अनारो, राम रत्न रस्तोगी, वीरावाली, महेन्द्र प्रताप आदि अनेक पात्र समाज के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति करते दिखाई देते हैं।

बुआ के घुटनों को लेकर भारतीय संस्कृति पर तीखा व्यंग्य करते हुए लेखक कहता है, 'आज बुआ की हालत देखकर कोई अनुमान नहीं लगा सकता कि भारतीय संस्कृति की तरह उनके पुराने घुटनों का अतीत कितना गौरवमय रहा होगा।' लेखक का मानना है कि इस उपन्यास में जीवन के कुछ ही पक्षों को छूना संभव हो पाया है। इस उपन्यास में विश्वविद्यालयों में पनपते माफिया गिरोह और देह-व्यापार स्तर पर तस्करी और राजनीति में लगातार पनप रहे भ्रष्ट गठजोड़ सरीखे कुछ पक्षों को ही मात्र छुआ जा सका है। ये समाज में फलने फूलने वाले कैसर की बानगी मात्र है। लेखक का कहना है कि समाज के किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग ने इस उपन्यास से प्रेरणा लेकर विरोध का एक स्वर भी उछाला तो वह अपने प्रयास को सार्थक समझेंगे। उपन्यास हर तरह से पठनीय व संग्रहीनीय है।

पुस्तक : जिन्दगी औ
लेखक : मनोहर पुरी
प्रकाशक : वंदना बुक एजेंसी, ग्राउंड फ्लोर
109, ब्लाक बी
प्रीत विहार, दिल्ली-92

शामलाल कौशल

तनाव में कुत्ते

आज के जमाने में लोग न तो अपने रिश्तेदारों से इतने दुखी हैं और न ही धन की कमी के कारण इतने परेशान हैं जितना कि वे तनाव के कारण हर समय हाय तौबा मचाते रहते हैं। हर आदमी आज किसी न किसी प्रकार के तनाव का शिकार बना हुआ है। पत्नी तनावग्रस्त है क्योंकि उसका पति उसका ध्यान कम रखता है तथा अपनी मां तथा बहन के बारे में ज्यादा सोच विचार करता है। बाबू तनाव में क्योंकि साहब उसके काम में किसी न किसी प्रकार का दोष निकालकर लेडी स्टाफ के सामने उसकी धज्जियां उड़ाता रहता है। पड़ोसिन इसलिए दुखी है क्योंकि उसकी पड़ोसिन की साड़ी उसकी साड़ी से ज्यादा सफेद है। आजकल बच्चों को जो बैगभर होम वर्क मिलता है उसके कारण हर समय वे किताबों में आंखें गढ़ाए रहने के कारण तनाव में रहते हैं और उनके मम्मी-पापा आधी रात तक उन्हें पास बिठाकर होमवर्क को पूरा करा के जब सुबह स्कूल भेजते हैं और मैडम उस सारे होम वर्क पर काटा लगा देती है तो उससे उन मासूमों का तनाव और भी बढ़ जाता है। आज हम ही नहीं सारा देश तनाव से जूझ रहा है। जब कभी भी देश के किसी हिस्से में दंगे-फसाद वगैरह के कारण तोड़-फोड़ या मारधाड़ होती है तब हमारा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया खबर देता है, स्थिति तनावपूर्ण लेकिन नियंत्रण में है। अब आदमी किस किस के तनाव का जिक्र करे जब सब तरफ तनाव ही तनाव है। अखबार में छपी एक खबर 'तनाव में जी रहे हैं ब्रिटेन के कुत्ते' पढ़कर बहुत अजीब लगा। वहां कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 26 प्रतिशत कुत्ते अपने तनावग्रस्त मालिकों के प्रति वफादारी निभाते हुए ही तनाव से जी रहे हैं। भाई इंग्लैंड वालो! कमाल कर दिया आपने भी। आपने तो सारी दुनिया पर हकूमत की है, तरह-तरह के अविष्कार भी

सुनील चौरे 'उपमन्यु'

युवा कौन?

दो युवा आपस में झगड़ रहे थे। दोनों ही अपने को युवा होने का दावा कर रहे थे। बात बढ़ती गई। भीड़ इकट्ठी हो गई। युवाओं की तू-तू, मैं-मैं सुन एक बुजुर्ग बोले, भाई! तुम दोनों युवा हो, इसका प्रमाण दो।

पहला युवा बोला, दादाजी मैं दंगे करवा सकता हूँ, आग लगवा सकता हूँ। मर्डर कर सकता हूँ। अपहरण, डकैती आदि को अंजाम दे सकता हूँ। आगे कुछ और बोलता कि भीड़ चिल्लाई, हां! हां! तुम ही युवा हो।

बुजुर्ग ने दूसरे युवा से पूछा, तुम बताओ।

दूसरा युवा बोला, मैं बड़े बुजुर्गों के आशीर्वाद से आगे बढ़ना चाहता हूँ। मैं गांधीजी के बताए मार्ग पर चलना चाहता हूँ। मैं अशांति नहीं शांति बनाये रखना चाहता हूँ। मैं हिंसा नहीं अहिंसा का पाठ पढ़ाना चाहता हूँ। दूसरा युवा आगे कुछ कहता, इसके पहले ही भीड़ चिल्लाई, तुम युवा नहीं नपुंसक हो।

रामेश्वर रोड, खंडवा (म.प्र.)

किए हैं, क्या अपने पालतू कुत्तों को भी ठीक तरह से रखना नहीं आता आपको? आप हमारे कुत्तों से कुछ सीखो। घर में चोर आते हैं, चोरी करके चले जाते हैं, फिर भी कोई तनाव नहीं। पुलिस वाले ट्रेंड कुत्तों को वारदात की जगह पर ले जाते हैं, बहुत बार चोर या मुजरिम फिर भी नहीं पकड़े जाते, फिर भी कोई तनाव नहीं। भैया! खुद भी मजे से जियो और कुत्तों को भी मीट खिलाकर, पार्लर ले जाकर, सुबह शाम पार्क में खुली हवा में ले जाकर मजे से जीने दो।

975-बी/20, राजीव निवास
शक्ति नगर, ग्रीन रोड
रोहतक-124001

प्रेम नारायण गुप्ता

युग बदल गया

कल एक अजीब घटना घटी और पूरी दुनिया बदल गई। हुआ यूँ कि कल भगवान का वो कम्प्यूटर खराब हो गया जिसमें हमारे गुनाहों का हिसाब रखा जाता था। इस खराबी के कारण सभी मानव मस्तिष्कों तक ये सूचना संप्रेषित हो गई कि अब भगवान हमारे गुनाहों का हिसाब नहीं रख पा रहा है। देखते ही देखते दुनिया भर के लोग एकदम बदल गए और दुनिया में पाप और अपराध की



बाढ़ आ गई। सरकारें चिंतित हुईं और निर्णय लिया गया कि सभी पुराने कैदियों की सज़ा माफ कर उन्हें रिहा कर दिया जाए और नए अपराधियों को जेल में डाल दिया जाए क्योंकि अपराधियों को देखते हुए जेलखाने कम पड़ रहे थे।

धीरे-धीरे सब शांत हो गया। दुनिया पहले से खुशहाल हो गई है। सतयुग आ गया है... युग बदल गया है।

ए डी 26 सी, पीतम पुरा, दिल्ली - 110034



*With
Best
Compliments*



पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम)

पंजीकृत कार्यालय : ऊर्जानिधि, 1 बाराखंबा लेन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली — 110 001

फोन नं. 011-23456000, फैक्स : 011-23412545 वेबसाइट : <http://www.pfcindia.com>

हम बेहतर कल की संभावना सृजित करते हैं

विश्वनाथ की कविताएं

हँसो हँसो

हँसो हँसो
खूब हँसो

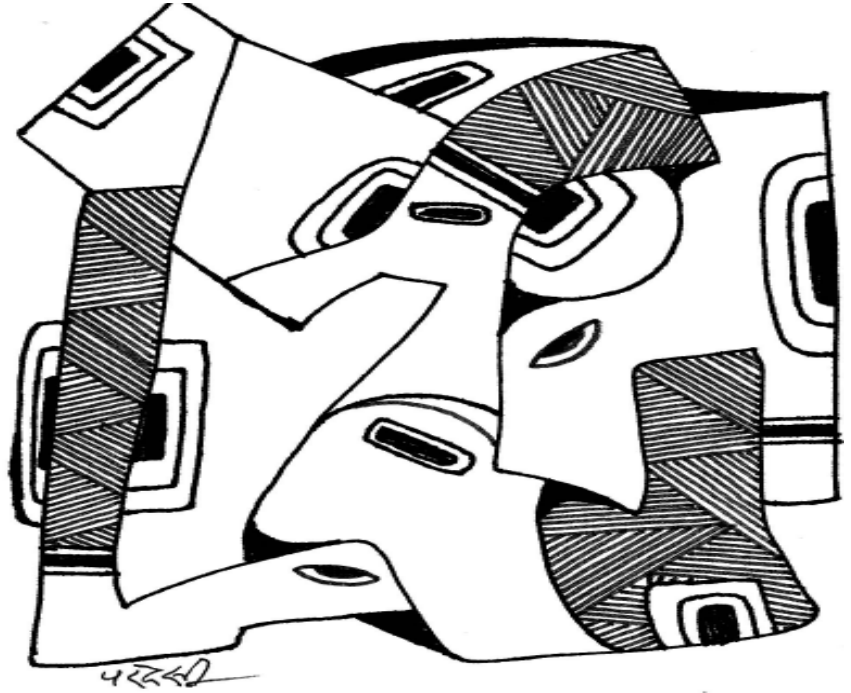
औरों पर
हँसते हो
कभी अपने पर भी
हँसो
अपनी बुद्धिमानी पर
हँसो
अपनी नादानी पर
हँसो
खुद ही जाल बुनो
खुद ही उसमें फँसो

हँसो हँसो
खूब हँसो

अपनी गहराई पर
हँसो
जिसमें डूब उतरा रहे हो
अपनी गुरुता पर
हँसो
जिसके बोझ तले
दबे जा रहे हो

अपनी अक्ल पर
हँसो
कभी अपनी शक्ल पर भी
हँसो
अपनी चतुराई पर
हँसो
उसके कारण बन आई पर
हँसो

हँसो हँसो
कभी अपने पर भी हँसो ।



किसका बुत

यह किसका बुत
लगा रहे हो चौराहे पर

यह तो बेचारा पत्थर है
इसे तो यह भी पता नहीं
किसका बुत है
क्या नाम था उसका, कौन था वह
क्या कुछ किया उसने जीवन में

हां अब पक्षियों को बैठने, सुस्ताने
नित्यकर्म करने का
एक और ठिकाना मिल जाएगा, अवश्य

क्यों लगा रहे हो यह बुत
क्यों दे रहे हो सजा इसे
धूप में तपने
और बरसातें झेलने की।

आदमखोर

जिन्हें आदमी का मांस
लजीज़ लगता है
यह आदिम युग से होता रहा है

यह आज भी हो रहा है
अंतर बस इतना ही है
संभ्रांत लोग
अपने शिकार को
डाइनिंग टेबल पर बुलाकर
मीठी-मीठी बातें करते हुए
बड़े सलीके से, धीरे-धीरे
उसका मांस नोचते हैं
अपनी छुरी-कांटे से

आदमखोर आज भी हैं।

1509, मंदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

राजेन्द्र परदेसी
बाजारवादी युग में

मेरे भाई!
युग के यथार्थ को समझो
व्यर्थ के प्रलाप में
क्यों कर उलझो
लोग तो
सौगंध खाकर
न्याय के मंदिर में भी
झूठ बोलते हैं
और तुम
नैतिकता की गठरी
ढोते फिरते हो
'संतों को
कहां सीकरी सो काम' की भाषा
बोलना छोड़ो
गिरगिट की तरह
रंग बदलना सीखो
बाजारवादी युग में
जी रहे हो तुम
समाज सेवा में भी
खोखा चलता है,
पति के बाद पत्नी को
पिता के बाद पुत्र को
सत्ता फलता है
प्रजातंत्र में
राजतंत्र पलता है
नीतियां बनाई गयीं हैं—
'हरें लगे न फिटकरी
रंग हो चोखा'
नैतिकता के नाम पर
क्यों दे रहे हो
स्वयं को धोखा?
पहले- जुगाड़ करो लासानी
फिर ढोंग रचो
होने का स्वाभिमान
अन्यथा
पीटते रह जाओगे
राजपथ पर सोट।

सूर्य कुमार पांडेय
अलग किस्म के
आतंकवादियों के बीच

वे नहीं चाहते
मैं हंसूं
नहीं चाहते
कि गाऊं
मेरी शांति
उनके कोलाहल में
विघ्न है
मेरा ध्यान
उन्हें डराता है
मेरे चिंतन से
कांपने लगते वे
मुट्ठियों पर रख देते
दर्द के सिक्के
कि मैं और छटपटाऊं

सांपों का नहीं
मनुष्यों का डंसा मैं
स्वार्थी, लोभी, दुष्ट, मूर्ख, कपटी
लोगों के बीच फंसा मैं

रोटी ने बांध रखे हाथ
पांवों में बेड़ियां
जिम्मेदारियों की
छटपटाहट भरी सीने में
एक अलग किस्म के
आतंकवादियों के बीच
प्रतिदिन मैं

बेईमानों ने मिलकर
एक ईमानदार को
और ईमानदार बनाने का
षडयंत्र रचा है
बचा सको
तो बचा लो
स्वयं को पांडे जी!

हलीम आइना
ए.पी.ओ. होने का मजा

खामोश! चुपकर!!
कर्तव्यपरायणी अफसर
बाबू बंशीधर
'गांधीगिरी' में
मत बन बावला,
'चालूगिरी' सीख
बन स्वार्थी कांवला।

देख लेना— ए.पी.ओ. होकर
तू एक दिन
पैपरवेट से अपना ही
माथा फोड़ेगा।

यादकर— बेटा बंशीधर!
'नमक का दरोगा' बनकर
तूने आजादी से पहले भी
भुगती थी।
ईमानदारी की सज़ा।
अब बूढ़ी हो चुकी
आजादी के बाद भी
सहर्ष भुगत,
यही है भारत मां के सच्चे ईमानदार
बेटों की किस्मत।

फर्क इतना—सा है
अब— दिखाई नहीं देता कहीं
लक्ष्मीपुजारी पंडित अलोपीदीन
जो अपनी आत्मा के
धिक्कारने कर
पश्चात के आंसु लिये
चला आयेगा तेरे पास,

तेरी ईमानदारी से प्रभावित होकर
अपनी स्थायी सम्पत्ति का
मैनेजर नियुक्त करने के
शपथ-पत्र के साथ. . .?

अरुण सेदवाल

कविताएं

वर्षों बाद

बहुत वर्षों के बाद
उसे देखा
कंवर लाल को
उसी नीम के पेड़ तले
चबूतरे पर बैठे
निर्भाव निश्चेष्ट
उम्र अस्सी के पार
हड्डियों पर ढीली-सी
लपटी हुई चमड़ी
घुटनों पर रखे
जुड़े दोनों हाथ
मांगते जैसे अभयदान
हर किसी से

तुमने मुझे इतनी लंबी
उम्र क्यों दे दी, बाबू
कैसे काटूंगा?

फिर उसने फैला दी
दाएं हाथ की हथेली
जिस में थी
लंबी उम्र की रेखा
और मलने लगा
अपने दोनों हाथ
निहारते हुए
नीम की डाल पर बैठे
काले कौवों को!

खाली हाथ नहीं

क्यों करते रहते हो
नित ही उठापटक
कंवर लाल?
जानते नहीं तुम
खाली हाथ आए थे
और खाली हाथ जाना है

साथ कुछ भी
नहीं ले जाना है।

यह बात तो
सच नहीं है, बाबू?
कोई नहीं आता खाली हाथ
किसी के हाथ में होते हैं
सोने-चांदी के चम्मच
तो किसी के हाथ में
हल-कुदाल
और किसी के हाथ में
भीख मांगने के कटोरे
मैं जब पैदा हुआ
तो मेरे हाथ में था
एक टुकड़ा जमीन का
और दो बैलों की रस्सी
जब मैं मरूंगा
तो मेरे साथ जाएंगे
बड़े-बड़े खेतों के सपने
साहूकार के कर्ज का बोझ
और
बच्चों के लिए छोड़ा गया
विपन्नता का संताप
नहीं जाऊंगा, बाबू
यहां से मैं खाली हाथ!

भगवान

जीवन में तुम्हें
क्या चाहिए, कंवर लाल?
जो कुछ चाहिए वह
संसार के मालिक
भगवान से क्यों नहीं मांगते?
थोड़ी प्रार्थना करो
मंदिर जाओ
मन्नत करो, प्रसाद चढ़ाओ
वे बहुत दयालु हैं
सर्वशक्तिमान हैं
न्यायप्रिय हैं

अवश्य पूर्ण करेंगे
तुम्हारे इच्छित कार्य।

भगवान से
क्या मांगना, बाबू?
यदि मन्नत-चापलूसी करने से
कर देते हैं किसी के भी
इच्छित कार्य,
तो वे कैसे हुए भगवान?
और यदि
मन्नत-चापलूसी करने पर भी
नहीं कर सकें
चापलूसों के मनचाहे काम
तो भी फिर
कैसे हुए वे भगवान?

बदबू

कंवर लाल
तुमको पकड़ने के लिए
सिपाही आए हैं थाने से
कहते हैं
तुम बहुत
बदबू फैलाते रहते हो

क्या कहते हो बाबू?
मेरे पादने की बदबू तो
मेरी झोंपड़ी के बाहर भी
नहीं जाती
जब बड़े-बड़े लोग पादते हैं
तो बड़ी-बड़ी
फैक्ट्रियां खुल जाती हैं
और उनकी बास से
बहास-रिसाव से
उजाड़-बसाव से
भले तो कितने ही जानवर
और मर जाएं लोग
सरकार को
छींक तक क्यों नहीं आती?

रघुनंदन चिले

बहुत बोलने लगे हो

बहुत
बोलने लगे हो
तुम
कंवर लाल
अनाप-शनाप
जो भी
आए मुंह में
बक देते हो
कुछ तो बोला करो
सोच समझकर।

सच कहा
बोलता तो मैं
बहुत हूँ
पर मेरी
सुनता कौन है?

गदर मची है

कुत्ते खा रहे खीर, गजब की गदर मची है,
गौदड़ हो गये वीर, गजब की गदर मची है।

सच की फाकामस्ती का है चर्चा घर घर,
झूठ को मिले पनीर, गजब की गदर मची है।

हरिश्चन्द्र अब रोते अपनी हालत पर,
भिखमंगे हुए अमीर, गजब की गदर मची है।

जिन्हें देश की रक्षा के हित चुना गया है,
बेचें वे ही ज़मीर, गजब की गदर मची है।

भीड़ बढ़ी संतों की इतनी लेकिन 'चंदन',
हुआ न कोई कबीर, गजब की गदर मची है।

232, मागंज वार्ड, नंबर-1
दमोह, म.प्र.-470661

शान्ति सुमन

खुशियों की खातिर

बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब
भूखों नहीं मरेंगे लोग
अपने ही सपनों को खाकर
अपना पेट भरेंगे लोग।

घर से सर्व हुए चूल्हे तो
इससे क्या बदहाल हुए
राजकुंवर की अगवानी में
कितने मालामाल हुए

पानी की कीमत पूछेंगे
प्यासे नहीं रहेंगे लोग
पूँछ उठाये मछली जैसे
खुद से जिक्र करेंगे लोग।

इससे क्या आगों की धमकी
मिली आज झोंपड़ियों को
बात-बात में करें उतारा
हम आँखों में परियों को।

कागज के दस्तावेजों से अब
अपनी उमर गढ़ेंगे लोग
पत्थर पर भी खुदी रोटियों
की खातिर ललचेंगे लोग।

कच्चे घर से वर्षा में भी
तने हुए जो हाथ यहां
खुशियों की खातिर के कब से
जूझ रहे हैं यहां-वहां।

बेजुबान इस बस्ती को
अब पूरा मुखर करेंगे लोग
खुशियों को कालेपानी से
वापस वही करेंगे लोग।

लालित्य ललित

कविताएं

नेक्स्ट प्लीज

ऐसा क्यों होता है
मृत्यु को करीब देख
देह को छोड़ना नहीं चाहता मन
मन/चल उस ओर
जहां है एक नया नील गगन
नई बस्ती
और यह रहा तुम्हारा नंबर
मन देखता रहा / शरीर खामोश
आसमान में चमकी बिजली
समझें आपका हो गया पंजीकरण
नेक्स्ट प्लीज!

दुखी लोग

कोई काम कराना हो
ड्राइविंग लाइसेंस / दाखिला स्कूल में
अस्पताल में आपरेशन
दुखी लोग खड़े हैं, कतारबद्ध
नियति है यही उनकी
रहना खड़े कतारबद्ध।

सुखी लोग

पूँजीपति लोग, पूजते पूँजी
धर्मशाला बनवाते,
रक्त शिविर लगवाते
धर्मार्थी बन
टैक्स चोरी कर
प्रभु को सहायता के लिए पुकारते।
और प्रभु!
ऐसे भक्तों को दोनों हाथों से
देता है वरदान
तभी तो कार में सवार
जा रहा है एक सुखी आदमी।

श्याम सखा 'श्याम'

कौन है बेहतर

संसद में जेरे बहस एक मुद्दा है
आदमी बेहतर है कि बेहतर कुत्ता है
यह सवाल शून्यकाल में उठा है।

एक पार्टी कह रही है
कि यकीनन बेहतर कुत्ता है
क्योंकि वो न विपक्ष है
ना ही बेचारा सत्ता है।

यह सुनकर कुछ निर्दलीय सदस्य बिगड़ गए
और गुस्सा कर मेजों पर जूतों समेत चढ़ गए

इस पर अध्यक्ष ने उन्हें शांत करवाया
और एनीमल हसबैंडरी को
जवाब के लिए बुलवाया
वे बोले जहां तक हमारा विचार है
यह सवाल संसद की सीमा से बाहर है
कुत्तों के बारे में
संसद में बहस फजूल है बेमानी है
जबकि सांसदों के अपने दुख है
अपनी कहानी है।
कुत्तों को रोज लड़ने की सुविधा है,
सांसदों को चुनाव लड़ने की दुविधा है
हर पांच साल बाद कभी-कभी पहले भी
जनता बीच जाना पड़ता है
कुत्ते की तरह भौंकना पड़ता है
दुम हिलानी पड़ती है
जनता को वायदों- आश्वासनों
की अफीम पिलानी पड़ती है
जाने क्या-क्या करके सीट बचानी
कुर्सी हथियानी पड़ती है
इस पर टिप्पणी आई
कि मंत्री जी विषय से भटक गए हैं
बात आदमी व कुत्ते की थी
वे सांसदों पर अटक गए हैं
मंत्री जी थोड़ा सकपकाए
मन ही मन झुझलाए
फिर बोले
आदमी को तरह-तरह के

पापड़ बेलने पड़ते हैं
कुत्ते भला कहां ऐसे झंझटों में सड़ते हैं
अधिकांश कुत्ते आजाद हैं
आवारा हैं फालतू हैं
आदमी बेचारे तो सदियों से पालतू हैं

आदमी कितने भी सीधे हों
जिंदगी में कई बार दल बदलते हैं
कुत्तों को पूछ बेशक टेढ़ी हो
मगर वे अपनी नाक की सीध में चलते हैं
राकेट बेशक

आदम जात ने बनाया था
पर उसकी सैर का लुत्फ
सबसे पहले एक कुतिया ने उठाया था
क्या आपने किसी कुत्ते को
दफ्तर जाते कार चलाते या
काम करते देखा है
क्या आपने किसी कुत्ते को
आदमी की मौत करते देखा है
कुत्ते अपनी जिंदगी जीते हैं
अपनी मौत मरते हैं
आदमी कुत्ती शय कहलाते हैं
कुत्तों की मौत मरते हैं
आदमियों में हिंदू हैं सिख हैं
ईसाई हैं मुसलमान है
आदमियों में अब नहीं बचे इंसान हैं।
आदमियों में पंडित है, मौलवी है
खतरी है, बनिए है, मेहत्तर हैं
सच कहूं कुत्ते आदमी से
हजार दर्जे बेहतर है
कुत्तों के न बीवी है न बच्चे हैं
ना सामाजिक जिम्मेदारी है
कुत्ता होना गनीमत है
आदमी होना लाचारी है
संसद में अब भी ये बहस जारी है
कि आदमी होना लाचारी है।

वेद प्रकाश प्रजापति 'अंकुर'

क्षणिकाएं

(1) प्रभुत्व

पार्टी की विशाल रैली
अपने प्रभुत्व को
रही दर्शाती
कि कितने बिमार
लोगों की जानें
हुजूम में फंसकर
अस्पताल न पहुंच
पाने के कारण
रही जाती।



(2) संरक्षण

राजनीतिक संरक्षण
उनको इतना फला
सैंकड़ों अपराध किये
कौन क्या कर सका?

सुर-सदन, डब्ल्यू जै
रानी बाग, दिल्ली-110034

सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र
बेतालघाट, नै

रवि शर्मा

भैंस

भारतीय राजनीति के
पानी में
मजे उड़ा रही है
लोट लगा रही है
जुगाली ला रही है
भ्रष्टाचार की
मरखनी, काली भैंस।
चरवाहा खड़ा है
बाहर असहाय,
कर रहा है विफल प्रयास
उसे बाहर निकालने का।

चर जाती है यह
नैतिकता, ईमानदारी की
हरी घास,
चट कर जाती है
देश-प्रेम, निष्ठा का भूसा।

मोटी होती जा रही
यह भ्रष्टाचार की
मरखनी काली भैंस।

झूठ फरेब के
बड़े-बड़े सींगों से
पटखनी दे डालती है
अपने मालिक को ही
और कानून की लंबी पूंछ से
मक्खियां उड़ा रही है
फर्जी खातों जैसे थन
कितना खींचो निकले न कुछ—
फिर भी देश के हर कोने में
छा रही है—
फूलती-फलती
जा रही है
यह भ्रष्टाचार की
मरखनी काली भैंस।

रामनारायण मीणा हलधर

साधारण लाश

लाशों, कितनी कॉमन हो गई हैं
मोबाइल की सिम की तरह— सर्वसुलभ।
ब्रेकफास्ट से लेकर डिनर तक
हम लाशों से सजे
पृष्ठ पलटते रहते हैं।

सड़क की छाती
तीर्थ यात्रियों की कुचली हुई
आस्थाओं से लहुलुहान,
उमंगों से भरी कुलांचें
भविष्य की उम्मीदें, बुढ़ापे की लाठियां
सभी कुछ जलसमाधियां बन जाती हैं।
ईश्वर इतना निर्दयी तो नहीं हो सकता
वो तो इतना दयालु है
कि एक नवजात के ऊपर से
हजारों टन लोहा गुजर जायें
और एक खरोंच तक नहीं।

परिजनों का हाहाकार,
आंसूओं का सैलाब
और हमारी आंखों की सरस्वती
कब की विलुप्त हो चुकी है।

मंदिर, बाजार, दरगाह, रेल की पटरियां
चारों तरफ बस लाशें ही लाशें
लाशें सड़ रही हैं
कितनी ही उम्मीदें परवान चढ़ रही हैं।

उधर तीन साल का भोलू
रो रोकर पूछ रहा है
'मां बापू कब आयदा'
मां की चेतना,
कष्टों के अथाह महासागर में
हमेशा के लिए डूब चुकी है
तब दादू समझाता है—
'भोलू बेटा बापू तेरे लिए
नौकरी लेने गया है।'

विपिन बिहारी 'सुमन'

गुज़ल

(1)

लोग यहां के देखो कितने हैं जाबर,
अपनी मुस्कानों में भी रखते खंजर।
मुझमें और उनमें है बस इतना अंतर,
मैं शीशा हूं उनके हाथों में पत्थर।
उनके शब्द-शब्द रह जायें अनगाये,
जिनमें भावों के न रहते हैं अक्षर।
कल तक चारागर के हाथ मसीहा थे,
हाथ वहीं अब मृत्यु के हैं सौदागर।
तोड़ सका न चांदी की दीवार कोई,
इसके सायें में जो बैठा है अजगर।
पा लेता जो अपने रूतबे से तमगे,
वो नेता होता है या होता अफसर।
बाजारों में खूब खिली है धूप 'सुमन',
लाभ कमाने का अच्छा है ये अवसर।

(2)

सुबह से लेकर संध्या तक हम बस इतना कर पाये हैं,
अपने छलनी-छलनी पावों को घर तक ले आये हैं।
दिन भर अपने पेट की खातिर कलम घिसी है दफ्तर में,
रात-रात भर मंहगाई के घूसे थप्पड़ खाये हैं।
सड़क-सड़क पर शोर मचा है नारों भरे जुलूसों का,
घर की खामोशी में भी फैले ध्वनियों के साये हैं।
कल कुछ भांडों— जैसे फिर गाते घूमंगे गली-गली,
'हम हैं तेरे जात बिरादर वोट मांगने आये हैं।'
मैंने यह महसूस किया है सुनकर उनकी बातों को,
मुझे लूटने आये थे जो वो मेरे हमसाये हैं।
यह कैसा परिवेश हमारा यह कैसी दुनियादारी,
पहने हैं जो हमने कपड़े उन पर रंग पराये हैं।
दोस्त! कोई जब लिए कुल्हाड़ा दिया दिखाई जंगल में,
तब से हरियाली के पंछी लो कितना घबराये हैं।

व्यंग्य यात्रा

वर्ष : 5
अंक : 20

सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी

जुलाई-सितंबर
2009



त्रिकोणीय में सूर्यमाला पर चर्चा

ज्ञान चतुर्वेदी
यश शर्मा
वेदप्रकाश अमिताभ
हरीश नवल
प्रेम जनमेजय



इस अंक में

हरिश्चंकर परसाई, राजकमल चौधरी, दिविक रमेश, सुनील कुमार गंगोपाध्याय, कर्नल मुहम्मदखां, सुबोध कुमार श्रीवास्तव, श्रवण कुमार उमर्लिया, संज्ञा उपाध्याय, राजी सेठ, शिव शर्मा, प्रकाश मनु, श्रीकांत चौधरी, बलराम, रमाशंकर श्रीवास्तव, सुरेश वाहने, राजेन्द्र सहजल, विलास गुप्ते, सुधाकर अदीब, मधुसूदन पाटिल, इष्टदेव सांकृत्यायन, विश्वनाथ, सूर्यकुमार पांडेय,

मूल्य २० रुपए

'व्यंग्य यात्रा' एवं 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्' का संयुक्त आयोजन दिविक रमेश के काव्य संकलन 'गेहूं घर आया है' का लोकार्पण



प्रेम जनमेजय, केदारनाथ, नामवरसिंह,
निर्मला जैन एवं दिविक रमेश

अध्यक्षीय भाषण देते नामवर सिंह

श्रोता के रूप में आनंद लेते विशिष्टजन



प्रो. निर्मला जैन

दिविक रमेश

दिनेश मिश्र

प्रताप सहगल

प्रणव कुमार बंधोपाध्याय

प्रेम जनमेजय

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा आयोजित कविसम्मेलन



दीप प्रज्ज्वलन करते वीरेन्द्र गुप्ता, बेकल उत्साही

संचालन करते अशोक चक्रधर

विशिष्ट श्रोता



सुरेश ऋतुपर्ण की कृति 'ये मेरे कामकाजी
शब्द' का लोकार्पण

हिन्दी अकादमी कवयित्री

जम्मू में नेशनल बुक ट्रस्ट का आयोजन

दिविक रमेश को द्विवागीय सम्मान



सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी

जुलाई-सितंबर 2009

वर्ष-5

अंक-20

एक अंक : 20 रुपए

पांच अंक : सौ रुपए

(डाक व्यय 5 रुपए प्रति अंक अतिरिक्त)

विदेशों में : दो डॉलर प्रति अंक

सहयोग राशि 'व्यंग्य यात्रा' के नाम से ही भेजने का कष्ट करें। दिल्ली से बाहर के चेक पर बीस रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

'केन्द्रीय हिंदी संस्थान', आगरा से
आर्थिक सहयोग प्राप्त।

संपादक
प्रेम जनमेजय

संपर्क

73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063

फोन : 011-25264227, 09811154440

फैक्स : 011-25264227

ई-मेल : vyangya@yahoo.com

मुख्यपृष्ठ रेखांकन
श्रीकांत आप्टे

रेखांकन
राजेन्द्र परदेसी

सहयोग
राजेंद्र सहगल

प्रबंध सहयोग/लेजर टाइपसेटिंग

रामविलास शास्त्री

4, शॉपिंग कॉम्प्लेक्स दयाल बाग
सूरजकुंड, फरीदाबाद (हरियाणा)

09911077754, 0129-4092514

'व्यंग्य यात्रा' में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। विवादास्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अनुक्रम

आरंभ	2-3	विलास गुप्ते	
		पेशे लायक चेहरा	67
चंदन घिरे	4-10	दिनेश चन्द्र जोशी	
		बुलाकी का उस्तरा और राजधानी	68
पाथेय	11-22	सुधाकर अदीब	
		हुआ यू कि. . .	71
		मनोज श्रीवास्तव	
	11	गंगा-जमुना आख्यान	73
		इष्टदेव सांकृत्यायन	
	13	तो क्या कहेंगे?	79
		अजीत श्रीवास्तव	
	14	साहब पानी खो गया	80
		तारकेश्वर शर्मा 'विकास'	
	17	रामरस बिना क्या बतरस मजा	82
		रमाशंकर श्रीवास्तव	
	21	मैंने लड़की देखी	84
		मधुसूदन पाटिल	
चिंतन	23-38	यहां प्यारना मना है	87
		राजी सेठ	
		दुकानदार	87
		कुंवर प्रेमिल	
		मुपत का कुत्ता मिल जाए	88
		प्रदीप शशांक	
		बगुला	89
		श्रवण कुमार उर्मिलया	
	31	शिष्टाचार का कलंक	90
		कैलाश चन्द्र जायसवाल	
	34	डंडा ददाति विनयम्	93
		प्रेमचंद्र स्वर्णकार	
त्रिकोणीय	39-50	स्वास्थ्य सेवा का सौंदर्य	94
		जगदीश पाठक	
	39	निर्भरता एवं नियंत्रण	95
		डॉ. रामनिवास शर्मा	
	40	रोग 'तो' का	96
		शिवशंकर मिश्र	
	41	सबसे बड़ा सुख	97
		राम पटवा	
	43	जूता निकालो	98
		तारिक असलम 'तस्नीम'	
		सदैव आस्था चूर्ण ही प्रयोग करें. . .	99
		राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'	
	47	साहित्य जगत के वट वृक्ष	100
		दिनेश चन्द्र झा 'प्रवासी'	
	49	साधारण-असाधारण	101
		चन्द्र प्रकाश भाटिया	
चिंता	51-54	स्थानांतरण शास्त्र	102
		शरद सिंह	
	51	बिन अधिकारी सब सून	103
		शामलाल कौशल	
व्यंग्य रचनाएं	55-106	तनाव में कृत्ते	105
		सुनील चौरे 'उपमन्यु'	
	55	युवा कौन?	105
		प्रेम नारायण गुप्ता	
	57	युग बदल गया	106
		कविताएं	107-112
		विश्वनाथ, राजेंद्र परदेसी, सूर्य कुमार पांडेय, हलीम आइना, अरुण सेदवाल, रघुनंदन चिले, शान्ति सुमन, लालित्य ललित, श्याम सखा 'श्याम', वेद प्रकाश प्रजापति 'अंकुर', रवि शर्मा, रामनारायण मीणा हलधर, विपिन बिहारी 'सुमन' आदि।	
	58	आलोचक खुद भी कसौटी पर है- दिविक रमेश	113
	59	पुस्तक समीक्षा : मनोहर पुरी	114-118
	60	समाचार	119-128
	62		
	65		

आरंभ

साहित्य से जुड़े ऐसे अनेक सवाल हैं जो लगातार आपके सामने चुनौतियाँ प्रस्तुत करते रहते हैं। सवालों का लगातार सामना करना संभवतः किसी भी कलमकार की विवशता है। सवाल आपकी चेतना को निरंतर प्रताड़ित करते रहते हैं और आप उनके रचनात्मक समाधान की तलाश में अपनी कलम का 'सदुपयोग' करते हैं। पर उस सवाल को क्या कहिए जो किसी हठी बालक-सा, आपके बार-बार समझाने के बावजूद भी आपके सामने खड़ा आपको चिढ़ाता है। हिंदी हास्य-व्यंग्य साहित्य में भी ऐसे ही हठी बालक-सा मासूम दिखने वाला सवाल है जो आपके द्वारा अनेक बार, अनेक माध्यमों से, समझाए-बुझाए-गुस्साए-चिढ़ाए जाने के बावजूद आपके सामने पुनः मूषको भव-सा खड़ा आपके सामने मुंह चिढ़ाता है। यह सवाल पिछले अनेक वर्षों से अपने रूप बदलता हुआ, न केवल 'माध्यम' लखनऊ द्वारा अट्टहास-सम्मान के दौरान आयोजित गोष्ठियों में प्रगट होता रहा है अपितु जहाँ भी हास्य-व्यंग्य की चर्चा होती है और वहाँ मंचीय कवियों की उपस्थिति होती है, यह सवाल अपनी उपस्थिति दर्ज करा देता है। यह सवाल है मंचीय हास्य के कवियों को गंभीरता से लेने की दुहाई का। अपनी व्यावसायिकता के चलते मंचीय कविता ने हास्य के नाम पर चुटकलेबाजी का जो माहौल उपस्थित किया है, उससे सभी परिचित हैं। ये इसी माहौल का परिणाम है कि इस तथाकथित हास्य के साथ व्यंग्य के संबंध के कारण व्यंग्य को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता रहा है। ऐसी गोष्ठियों में मंचित कवियों द्वारा अपनी पीड़ा का ऐसा वर्णन किया जाता है, आप रोए न रोएं, वे रो ही देते हैं। 'माध्यम' द्वारा में आयोजित गोष्ठी में इस विषय पर शैल चतुर्वेदी के ऐसे ही आंसू मेरी स्मृति में अभी भी ताजा हैं।

पिछले दिनों एक ऐसी ही घटना और हो गई। व्यंग्य पर केंद्रित कार्यक्रम बहुत गंभीरता से चल रहा था। युवा व्यंग्यकारों की गंभीर व्यंग्य दृष्टि की प्रशंसा हो रही थी और वक्ता व्यंग्य की गंभीरता को रेखांकित कर रहे थे। जैसे हिंदी कविता के मंच को कुछ लोग गंभीरता से ले रहे हैं और अनावश्यक हास्य पैदा कर हास्यास्पद नहीं हो रहे हैं वैसे ही हिंदी व्यंग्य के कुछ युवा रचनाकार राजनीतिक टिप्पणियों पर आधारित 'रचनाओं' का उत्पादन करने के स्थान पर सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रचनाओं की गंभीरता से रचना कर रहे हैं। यह कार्यक्रम ऐसे ही सृजनशील युवा व्यंग्यकारों पर केंद्रित था।

तभी मंच पर जैसे विस्फोट हुआ। एक धमाके से साथ हास्य-व्यंग्य के बुजुर्ग 'कवि' पधारें। शायद उनको मंच की गंभीरता से ऊब हो रही थी और उनकी दृष्टि में मंच अपनी सही भूमिका नहीं निभा रहा था। भई, ये क्या बात हुई कि व्यंग्य का कार्यक्रम हो और लोग हंसे नहीं। आप तो जानते ही हैं कि गंभीर वातावरण में लोगों को हंसाना कितना कठिन कार्य है। कितनी कलाबाजियाँ खानी पड़ती है, सभागार में बैठे मनहूसियत से भरे गंभीर लोगों को हंसाने में कितना जोर लगता है। अपनी सारी प्रतिभा उड़ेलनी पड़ती है। पहले कविश्री ने कुछ वचन अपने आत्म-प्रदर्शन में कहे, क्योंकि उन्हें लगा कि हास्य-व्यंग्य के एक महान कवि का संचालक ने पूरा

परिचय नहीं दिया। हास्य-कविता का मंच हो तो श्रोता आपकी नस-नस से वाकिफ होते हैं। अब यहाँ तो श्रोताओं की नस से कविश्री को वाकिफ होना था। उनसे एक कविता सुनाने का आग्रह किया था पर वो कविश्री ही क्या कि जो एक कविता सुनाकर संतुष्ट हो ले। एक कविता से तो श्रोताओं की दाढ़ भी गीली नहीं होती है और कवि के लिए माहौल भी नहीं जमता है। आप ये भी जानते होंगे कि मंच पर अच्छी रचना पढ़ना लक्ष्य नहीं होना चाहिए, अच्छा जमना लक्ष्य होना चाहिए। हुजूर इन श्रोताओं का कोई दीन-ईमान नहीं होता, अनेक बार अच्छी रचना पर हूट कर देते हैं और घटिया रचना पर हंस-हंसकर लोट-पोट हो जाते हैं। जब तक सभागार में बैठे पिचहत्तर प्रतिशत श्रोता हंस न लें; समझो आप जमें नहीं। तो हे हास्य-व्यंग्य के प्रिय युवा लेखकों! जब तक जम न जाओ मंच मत छोड़ो। ऐसे में हे युवा! तू अर्जुन मत बन, अपितु कामदेव बन और अपने तरकस से तब तक बाण छोड़ता रह; जब तक श्रोता तेरे मोहपाश में फंस न जाए। बुजुर्ग कवि के आत्म-प्रदर्शन और एक कविता के नाम पर अनेक कविताओं के बाणों ने 'रोताओं' को अधिक विचलित न किया तो उन्होंने अपने तरकस से चुटकलों का अमोघ बाण निकाला और कान तक खींचकर छोड़ दिया। आम आदमी कितना ही गंभीर क्यों न हो, चुटकले उस पर असर डाल ही देते हैं। मंच पर अपना प्रभाव जमते देख बुजुर्ग कविश्री का मन-मयूर नाच उठा और उस नृत्य का 'रोताओं' ने भी आनंद लिया। कविवर जम गए थे और इस जमने का लाभ उठाने को ही थे कि संचालक ने उनके पास परची भेज दी। वो यकायक गंभीर हो गए। शायद उनको याद आ गया कि उनसे पहले के विचारक गंभीर बातें कर गए हैं और मंच की मांग है कि वे भी गंभीर बातें करें। उन्होंने बड़ी पीड़ा के साथ कहा कि लोग हमें गंभीरता से नहीं लेते हैं। उन्होंने चुनौतीपूर्ण स्वर में कहा कि कोई गंभीर कवि हास्य तो लिखकर दिखाए। हास्य लिखना बाबा जी का खेल नहीं है। हम भी गंभीर काम कर रहे हैं। हमें भी गंभीरता से लो, भाई।

इस पीड़ा को व्यक्त करने के बाद वे बोले- 'अब मैं आपको दो गंभीर पद सुना रहा हूँ।' इससे पहले जो सुनाया वो कुछ भी हो कविश्री के हलफिया बयान को मानें तो गंभीर नहीं था। इसके बाद उन्होंने तथाकथित गंभीर सुनाया। जो गंभीर उन्होंने सुनाया उसमें गंभीरता इतनी मात्रा में थी कि उसे वे गंभीर स्वर में सुना रहे थे और उनका 'हंसमुख' चेहरा अनावश्यक गंभीर होने का प्रयत्न कर रहा था।

वे तो गंभीर होकर मंच पर बैठ गए पर मंच की गंभीरता नष्ट कर गए।

सवाल उठता है कि विसंगतियों पर आक्रमण करने का, अभिनय करने वाले इन योद्धाओं को कब समझ आएगा कि जिस तलवार से वो लड़ने का दिखावा कर रहे हैं; वह रामलीला के दौरान बिकने वाली कागजी तलवारों से भी गई बीती है। जिसे वे हथियार समझ रहे हैं, वो बस एक झुनझुना भर है। उन्हें कब समझ आएगा कि साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन के नाम पर फूहड़ता परोसना नहीं है और न ही साहित्य मात्र मनोरंजन है। गंभीरता का चेहरा मात्र ओढ़ लेने से गंभीर दिखा तो जा सकता है पर हुआ नहीं जा सकता है, वो आपके व्यक्तित्व का हिस्सा होना चाहिए।

श्री राजेंद्र यादव के नाम एक खुला पत्र

हिंदी हास्य-व्यंग्य साहित्य की यदि उपरोक्त विसंगति है तो समकालीन साहित्य की एक व्यापक विसंगति भी है। इस विसंगति पर भूमिका स्वरूप कुछ अधिक न कहकर पिछले दिनों राजेंद्र यादव के नाम खुले पत्र को 'व्यंग्य यात्रा' के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहूंगा। इसे पहले मैंने अपने ब्लॉग के माध्यम से नेट पर प्रस्तुत किया जिस पर देश-विदेश से ढेरों प्रतिक्रियाएं मिली। पत्र प्रस्तुत है—

आदरणीय श्री राजेंद्र यादव जी,

परनाम!

साहित्य के इस तथाकथित असार संसार में 'हंस' को पढ़ने/देखने के, 'जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' के अंदाज में अनेक अंदाज हैं। कोई साहित्यिक संत इसकी कहानियों के प्रति आकर्षित हो संत भाव से भर जाता है, कोई 'हमारा छपयो है का' के अंदाज में इसका अवलोकन करता है, कोई 'डॉक्टर' चीर-फाड़ के इरादे से अपने हथियार भांजता हुआ संलग्न होता है, कोई नवयोद्धा (रंगरूट शब्द साहित्यिक नहीं है) सेना में भर्ती होने के लिए इस धर्मग्रंथ का वाचन करता है, कोई पहलवान इसे अखाड़ा मान डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. मार्का कुश्तियों का हिस्सा बनने को लालायित दंड-बैठक लगाता है और कोई विवाद-शिशु के जन्म की जानकारी पा जाने पर तालियां बजाता हुआ बधाइयां गाता है, आदि आदि अनादि। मैं आदि आदि अनादि कारणों से 'हंस' को पढ़ता हूं। 'हंस' एक ऐसी पत्रिका बन गई है जिसका एडिक्शन आपको चैन नहीं लेने देता है। इसके पाठकों/अवलोकनकर्ताओं में भांति-भांति के जीव हैं, जैसे— हमारे देश की संसद में होते हैं। इसमें लिखने वालों की आपके द्वारा तय एक कैटेगरी हो सकती है पर पढ़ने/देखने/सूंधने वालों की कोई कैटेगरी नहीं है।

इस दृष्टि से 'हंस' आज के समय का 'धर्मयुग' है।

बहुत दिनों से मैं इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए उपयुक्त गुरु की तलाश में हूं जो मुझे बता सके कि साहित्य का हाई-कमांड कौन है और साहित्य-सेवा को 'धर्म' मानकर चलने वालों के 'खलीफा' कौन हैं; जो साहित्यिक फतवे जारी करने का एकमात्र अधिकार रखते हैं। साहित्य की उस अदालत के न्यायमूर्ति को मैं जानना चाहता हूं जो यह तय करने की ताकत रखता है कि गुनहगार बेकसूर है और बेकसूर गुनहगार है। साहित्य की मुख्यधारा में ले जाने और इस गंगा में पवित्र-स्नान करने का ठेका किस पंडे के पास है। मुझे आपकी बात पढ़कर लगा कि आप इस दिशा में मेरा मार्गदर्शन कर सकते हैं। आपने अशोक चक्रधर प्रसंग में लिखा है— 'निश्चय ही अशोक के पक्ष में उन साहित्यकारों के बयान आए हैं जो या तो दक्षिणपंथी हैं या ऐसे दुलमुल कि हर सरकार के लिए सुविधाजनक हैं।' अशोक के पक्ष में मैंने भी समर्थन दिया था और मेरे लिए अपने खिलाफ जारी किया गया आपका यह फतवा कोई मायने नहीं रखता क्योंकि मैं आपसे अपने को बेहतर जानता हूं एवं मुझे खलीफाओं के प्रमाण-पत्र प्राप्त कर उन्हें फ्रेम में मंडवाकर दीवारों पर टांगने का मुझे शौक नहीं। पर हुजूर आपने क्या यह बयान अपने पूरे होशो हवास में दिया है? अशोक चक्रधर का समर्थन करने वालों में नामवर सिंह और निर्मला जैन भी थे। इन्हें आप दक्षिणपंथी मानते हैं या फिर ऐसे

दुलमुल कि हर सरकार के लिए सुविधाजनक हैं। कृपया मुझ अबोध की एक और शंका का समाधान करें— ये जो 'हंस' के 'सितंबर अंक' के अंतिम कवर पर 'मध्य प्रदेश जनसंपर्क' द्वारा जारी विज्ञापन प्रकाशित हुआ है, वो किसी पंथ की सरकार का है? प्रभु आपके इस अतिरिक्त स्नेह के कारण भक्तजन कहीं फुसफुसा कर ये न फुसफुसाएं कि राजेंद्र जी पर उम्र अपना असर दिखाने लगी है। आप तो चिर युवा हैं और आपकी जिंदादिली के मेरे समेत अनेक प्रशंसक हैं। आपको तो अनन्य 'नारी विमर्शों' की चर्चा करनी है।

हे गुरुवर! इस एकलव्य को ये ज्ञान भी दें कि नामवर, लोगों को आप अपने कार्यक्रमों में बुलाकर अपनी किस सदाशयता का परिचय देते हैं। कार्यक्रम में यदि नामवर जी मीठा-मीठा बोल गए तो वाह! वाह! अन्यथा 'कौन है ये नामवर के भेस में'। मुझे लगता है इस 'दुर्घटना' के बाद 'शुक्रवार' में प्रकाशित डॉ. कैलाश नारद के 'असली नामवर' को पढ़कर आपकी बांछे खिल गई होंगी जो बकौल श्रीलाल शुक्ल चाहे वे शरीर के किस हिस्से में हैं, मालूम न हों। मैं आपकी बात से पूरी तरह सहमत हूं कि नामवर जी ने जिस तरह से लौंडे शब्द का प्रयोग किया वो उनकी अपनी गरिमा के अनुकूल नहीं है। अजय नावरिया ने जिस मेहनत और लगन से 'हंस' के दोनों अंकों का संपादन किया है और एक मील के पथर को स्थापित करने का श्रम किया है। वो उसकी विलक्षण प्रतिभा को प्रमाणित करता है। अजय नावरिया की इस मेहनत के सामने नामवर जी के शब्द झूठे हो जाते हैं। मुझे नहीं लगता कि इस मुद्दे पर नामवर सिंह को आरंभ से खारिज करने जैसा आक्रोश पैदा किए जाने की आवश्यकता थी। कैलाश नारद या आपकी 'मेरी बात' जैसी सोच का ही परिणाम है कि हिंदी के साहित्य में रचना की अपेक्षा व्यक्ति अधिक केंद्र में रहा है। इसी का परिणाम है कि एक समय हरिशंकर परसाई को और बाद में श्रीलाल शुक्ल को नाली में गिरे-पड़े किसी शराबी के रूप में चित्रित कर, सशक्त रचनाएं न लिख पाने की अपनी कुंठा का विरेचन किया जाता रहा है।

आपका विरोध जायज है, जायज ही नहीं स्वाभाविक है। ये मानवीय प्रकृति है— जहां किसी अपने को बैठना चाहिए वहां कोई दूसरा बैठा हो तो विरोध जागता ही है। आप तो जानते ही हैं कि ये सरकारें, ये राजनेता किसी के सगे नहीं होते हैं। अपने शासन के एक काल में यदि एक को लाभान्वित करते हैं तो दूसरे काल में किसी अन्य को कर देते हैं। ये तो सत्ता के गलियारों की गलियां हैं जिन्हें आप भलि-भांति जानते हैं। ये वो गलियां हैं जिनमें अपनी पहियां घिस जाने की चिंता में कुंभनदास ने जाने से मना कर दिया था। विरोध-प्रदर्शन या दबाव-प्रदर्शन के लिए इस्तीफे दिए जाते हैं और इस्तीफों के चक्कर में सौदे भी तय होते हैं। पर इस घसीटम-घसीटी में फतवे जारी करना किस जायज-नाजायज संतान का पालन-पोषण है?

अजय नावरिया ने अशोक चक्रधर प्रसंग को बहुत समझदारी से देखा-परखा है। उन्होंने इस नियुक्ति में न तो व्यक्तिगत आक्षेप लगाए हैं और न ही व्यक्तिगत कारण सूंधने का प्रयत्न किया है। मुझे लगता है हमारी युवा पीढ़ी बेबाक होते हुए अधिक संतुलित और ईमानदार है।

सादर,

आपका— प्रेम जनमेजय



चन्द्रशेखर तिवारी, गाजीपुर

गुरुवर डॉ. विवेकी राय जी कृपा से आपकी सम्मानित पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' (त्रैमासिकी) के दो अंक पढ़ने को मिले। व्यंग्य-रचनाएं पढ़ना मुझे बहुत पसंद है। शुरू से ही रुचि रही है, इस तरह की रचनाओं को पढ़ने में। जब भी कभी कोई पत्रिका या पुस्तक पाया और उसमें इस विधा की कोई रचना पाई तो सबसे पहले उसी को पढ़ा। अच्छा लगे भी क्यों नहीं? आखिर आइने की तरह बिल्कुल साफ (अपनी) तस्वीर जो दीखती है इस विधा में। समाज का यथार्थ, उसका नंगा स्वरूप जो परदे के पीछे छुपा है, वह विद्रूप इसके माध्यम से सामने आता है। कुछ रचनाएं मैंने भी लिखी हैं, इस विधा में। अपनी इस प्रिय और आत्मीय विधा में एक साथ इतनी भरपूर सामग्री पाकर तबियत खुश हो गयी। एक-एक रचनाओं को पढ़ गया हूँ। पत्र काफी दिनों से लिखना चाह रहा था पर संयोग नहीं बन पा रहा था। कारण, 'मेरे मन कछु और है, विधवा के कछु और'। सो, उस विधवा के हाथों मजबूर रहा। मन ही मन पत्र काफी दिनों से लिख-लिखकर 'पोस्ट-बाक्स' में डालता रहा। पर, सचमुच का उसे मूर्त रूप अब जाकर दे पाया हूँ। अपनी भावना को लंबे समय तक दबाये रहा और पत्र विलम्ब से लिख रहा हूँ, इसके लिए लज्जित हूँ। ऐसी अत्युत्कृष्ट व्यंग्य पत्रिका अब तक मेरे सामने से नहीं गुजरी थी।

आपके कुशल 'संपादन-कौशल' और 'चयन क्षमता' का लोहा मानना पड़ता है, पत्रिका को देखकर। अपने युग के कुछ स्थापित और कुछ नवोदित (पर रचना-क्षमता से समृद्ध) व्यंग्यकारों को एक मंच पर उपस्थित कर आपने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह सर्वथा स्तुत्य व प्रशंसनीय है। इस विधा की उपेक्षा करने वालों आलोचकों को एक बार फिर से इसके विषय में सोचने के लिए यह

आप चंदन घिसें

पत्रिका विवश करेगी, ऐसा विश्वास है। पत्रिका में स्थान पाए कुछ व्यंग्यकारों को यदि अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए (हालांकि ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि गुरुवर डॉ. विवेकीराय जी के शब्दों में कोई भी 'अक्षर-पुरुष' न छोटा होता है न बड़ा। सभी समान होते हैं। पर, सामाजिक मान्यता के अनुरूप अगर बात की जाए तो अधिकांश ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। सबने अपनी व्यंग्य-रचनाओं के माध्यम से अपनी मजबूत पहचान बनाई है। मुझे खुशी है कि ऐसे रचना-प्रतिभा से समृद्ध रचनाकारों का आपको लेखकीय अवदान मिल रहा है जिनसे पत्रिका की गुणवत्ता में अभिवृद्धि साफ दिखाई दे रही है।

पत्रिका के हर कॉलम प्रीतिकर हैं। (एक-एक) शब्दों के चयन में अद्भुत सम्मोहन है। क्या नामकरण किया है आपने? 'आप चंदन घिसें', 'पाथेय', 'चिंता', 'चिंतन' आदि, शीर्षक ही अपने आप में इतने सक्षम हैं कि वे पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लें। आपकी इस चमत्कृत प्रतिभा से प्रभावित हूँ। अंक की सभी रचनाएं बढ़ियां लगीं। कितनी प्रशंसा करूँ और किसको छोड़ दूँ, समझ में नहीं आता। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ, साथ ही आपके भी निरोग, सक्रिय व सार्थक भविष्य की कामना करता हूँ, ताकि पत्रिका का निर्बाध प्रकाशन होता रहे। इस ज्ञान-यज्ञ में लगे सभी लोगों को साधुवाद।

विश्वनाथ, राजपाल एंड संज, दिल्ली

'व्यंग्य यात्रा' के अंक मुझे नियमित रूप से मिल रहे हैं। अभी-अभी जनवरी-जून, 2009 का अंक प्राप्त हुआ, आभारी हूँ। सबसे पहले तो मेरी बधाई स्वीकार करें कि आपको 'व्यंग्यश्री-2009' से सम्मानित किया गया है। आप इस सम्मान के सर्वथा योग्य हैं। आपको सम्मानित करके इस सम्मान की



गरिमा ही बढ़ी है।

जब मैं 'व्यंग्य यात्रा' का अंक पढ़ता हूँ और एक प्रकाशक के नाते यह जानता हूँ कि इसके संपादन, मुद्रण और प्रकाशन में कितना श्रम आपने किया होगा तो मैं आपके अध्यवसाय और आपकी प्रतिबद्धता की प्रशंसा करता हूँ। इस तरह की पत्रिका निकालना बड़े साहस का काम है, श्रम की तो है ही। मन में यह भी विचार आते हैं कि इतने अधिक पृष्ठ ही क्यों, कम पृष्ठों का भी अंक हो सकता है परंतु प्रत्येक अंक पहले की अपेक्षा सभी दृष्टियों से अधिक सुंदर होता है। इस पत्रिका की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं स्वीकार करें।

नमिता सिंह, अररिया

विनिमय स्वरूप 'व्यंग्य यात्रा' के अंक मुझे निरंतर मिलते रहे हैं। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि अपनी साधारण-सी लघु पत्रिका 'परती पलार' की एवज में इतनी अच्छी और महत्वपूर्ण पत्रिका पढ़ ले पाती हूँ। सच पूछें तो 'व्यंग्य यात्रा' कोई पत्रिका मात्र ही नहीं है यह सदैव सहेजकर रखने योग्य एक बहुमूल्य दस्तावेज भी है। परम आदरणीय श्रीलाल शुक्ल जी को समर्पित 'व्यंग्य यात्रा' के पूर्व अंक में तो मैं ऐसी खोई कि आपको कुछ लिख न सकीं क्षमा चाहती हूँ। जनवरी-जून का अंक मेरे हाथों में है और इस अंक की प्रत्येक रचना मन-मस्तिष्क को छूती है। पत्रिका का आरंभ आप जिस कौशल से करते हैं कि मुझे आपसे ईर्ष्या होती है और 'आप चंदन घिसें' से ही पत्रिका की मनमोहक सुगंध बिखरने लगती है। बहुत कुछ जानने-सीखने का मौका मिल जाता है।

वेदप्रकाश अतिताभ, अलीगढ़

'व्यंग्य यात्रा' का जनवरी-जून अंक मिला। शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी के पाथेय के

साथ-साथ सर्वथा नए हस्ताक्षरों का हस्तक्षेप प्रीतिकर लगा।

आपका अपना नाटक समापन चरण में व्यवस्था विशेषतः पुलिस तंत्र के चरित्र पर केन्द्रित है और पुलिस के बहाने तमाम अन्य लोग भी नंगे होते जाते हैं। विशेषतः हमारा सुविधाजीवी मध्यवर्गी। इधर हिन्दी में नाटक विधा का बुरा हाल है। आपका नाटक शायद इस अभाव को कुछ कम करता हुआ लगे।

शिव शर्मा, उज्जैन

‘व्यंग्य यात्रा’ का ताजा मोहक-सा अंक मिला। आभारी हूँ। आश्चर्य हुआ कि मुझ जैसे नाचीज की पुस्तक की समीक्षा इसमें प्रकाशित हुई। हिन्दी में ऐसा कम ही होता है कि एक लेखक दूसरे को घास डाले। सभी अपने-अपने गुटों के केन्द्र में रहकर अपने-अपने को ही घास खिलाने में रत हैं। इसके लिए आपका विशेष आभारी हूँ।

‘व्यंग्य यात्रा’ का नाम तो खूब सुना था। दर्शन भी छोटे नहीं निकले।

मनोज अबोध, बिजनौर

सचमुच संयुक्तांक है, स्तरीय व्यंग्य की बेहतर सामग्री से भरपूर, इतनी कम कीमत में इतनी बेशकीमती पत्रिका. . . धन्य हो! पाथेय में जोशी जी और त्यागी जी के साथ ही आपका संपादकीय लाजवाब है, बधाई!

अंक का काव्य पक्ष निःसंदेह बहुत समृद्ध और प्रभावी है। रामदरश जी, अनामिका, सुदर्शन वसिष्ठ, यज्ञ शर्मा, रवीन्द्र राजहंस की कविताएं श्रेष्ठ व्यंग्य का प्रतिनिधित्व करती हैं तो राम मेश्राम, चांद शेरी और रामबहादुर चौधरी चंदन की गज़लें अच्छी हैं। पुष्पा राही की रचना गुज़ल नहीं है।

आपके नाटक एवं ज्ञान का उपन्यास अंश सहित बहुत सारी व्यंग्य रचनाएं अपने नाम को सार्थक करती हैं। लघु व्यंग्य रचनाओं की मारक क्षमता वाकई अचूक है। इतने संग्रहणीय अंक के लिए हार्दिक बधाई स्वीकारें!

आचार्य खडूसा, दमोह

सन् 1975 से आपको पढ़ रहा हूँ। आप तो ऐसे न थे। ‘व्यंग्य यात्रा’ निकाल कर आपने जो वसंत सृजन किया है। इससे बूढ़े आलोचक जो पतझर प्रेमी गूढ़ गंभीर, गरिष्ठ, उद्भट और

वरहमेश-उदास-सायास व्यक्ति बने हुए, सजे हुए थे, उनकी चिंतना वंचना पर आपने तुषारापात कर दिया।

‘ये भी कोई साहित्यगीरी है जब देखो तब बुलयाना, लुचरयानी बातें, दंतनिपोरन, दंतकढ़ी, शब्दलुखरपन सरस्वती के घाट पे दौंहरा देते दिवाते रहे हो!! इन चीजों से चरित निर्माण होते है का??

अब आपने निकार दियो, ‘चंदन घिसे’ कोयला रगड़ रहे और चंदन बदनाम करें। चंदन तो केवल गोस्वामी ही घिस सकते हैं तुम का खाकें घिस हो बरखुरदार! . . तुमने तो चंदन घिसुओं की खाट खड़ी करी है। तुम तो साहित्य में हमेशा याद रखो जेहे! और हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, गोपाल चतुर्वेदी, द्रोणवीर, हरि जोशी, यशवंत व्यास, जोशी गण, त्यागी, श्रीकांत चौधरी और नये-नये नटवा जौन व्यंग्य के मैदना में दौंहरा मचा रहे हैं, ई से गंभीर साहित्य के लाने बहुत बड़ो खतरा पैदा हो गयो। देखो भइय्या पहले आलोचक होठों से हंसते थे तो होंठों को पता न चलत हतो- बस मूँछें मुसकयात हती। पै तुमाई बमचक ने सब रसातल में डुबो दयो। किस्मत की बात!! पे अपन खुश हैं। अपने कुनबा के संग संग दूधां नहाव, पूता फलो।

सतीश शुक्ल, नवी मुंबई

‘व्यंग्य यात्रा’ की पंचवर्षीय यात्रा व्यंग्य इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। आपकी त्रैमासिक पत्रिका जिस शिद्दत से हाशिये में पड़े और अखबारों, पत्रिकाओं से फिलर की तौर पर इस्तेमाल हो रहे व्यंग्य को पाठकों के केंद्र में ला रहे हैं यह अभिनंदनीय है। श्रीलालजी पर केन्द्रित व्यंग्य यात्रा का अंक व्यंग्य साहित्य में एक उपलब्धि है। जनवरी-जून 2009 के अंक में सूर्यकांत नागर व श्रीलाल शुक्ल जी का पत्र व्यवहार पढ़ा। श्रीलाल जी से मैं भी इंदौर में मिलने का सौभाग्य प्राप्त किया है। जिस आत्मीयता से उन्होंने इस अकिंचन को गले से लगाया था वह आज तक याद है।

नईम जी का पत्र आपकी फाइलों के जंगल में भटक गया अंततः उनकी मृत्यु के साथ मिल गया। फाइलों में तो आम आदमी गुम हो जाता है।

रामबहादुर चौधरी ‘चंदन’, बिहार

‘व्यंग्य यात्रा’ का जनवरी-जून अंक मिला। इसको वैसे तो मैं अक्सर ‘आरंभ’ से पढ़ना शुरू करता हूँ लेकिन इस बार ‘सोते रहो’ को सबसे पहले पढ़ा। इसके बाद ‘मर गए बब्बा’ लेकिन आश्चर्य की बात है कि इन दोनों पाठों को तीन-तीन बार पढ़ना पड़ा और सच तो यह है कि हर बार का पाठ अधिक से अधिक प्रखरता ही देता गया। यह रचना की सार्थकता है। आप दोनों लेखकों को ऐसी जीवंत रचनाओं के लिए कोटिश धन्यवाद! समय सीमा के कारण इस पर विस्तार से विवेचन तो संभव नहीं है फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि ‘सोते रहो’ ऐसा व्यंग्य नाटक है जो अपनी लघुता में विराटता को समेटे हुए है। विविध विसंगतियों को एक साथ साधने का यह उपक्रम लेखकीय दक्षता को दर्शाता है। इसके चुटीले संवाद जहां मन को मोहते हैं वहीं इसके व्यंग्य विसंगतियों को भी बेधते हैं। लेकिन विविध विसंगतियों पर एक साथ प्रहार करने के क्रम में लक्ष्य की एकाग्रता विविध बिन्दुओं में बंट सी गई है, जो प्रभाव को प्रभावित करती है। कैसे शीर्षक की उलटवासी नाटक को बार-बार पढ़ने के लिए उकसाती है और यही नाटक की सार्थकता है।

अंक में चयनित गद्य और पद्य की समस्त रचनाएं स्तरीय ही नहीं सार्थक भी हैं। हां प्रूफदोष ने इस अंक को जरूर आहत किया है। इस बार के ‘आरंभ’ से जहां खुशी मिली वहीं इसका अंत बड़ा दर्दनाक रहा।

विनोद शंकर शुक्ल, रायपुर

पत्रिका के अंक मिल गए थे। व्यंग्यश्री सम्मान पर शुभकामना का एक स्वर मेरा भी।

भाई, अब तक दारू और अट्टहास ही पटियाली हुआ करता था, तुमने नाटक की शुरुआत भी कर दी। राजकपूर की फिल्म ‘जागते रहो’ में जल को लेकर भागमभाग की एक रात की कहानी थी, ‘सोते रहो’ दारू पर केन्द्रित सारी भागदौड़ है। सारे पात्र इतने खुले हैं कि हालीवुड

और बालीवुड की हीरोइने पीछे रह गई हैं। 'खुसरो निजाम के बलि बलि जड़ें' वाली बात पैदा कर दी है, प्रेम भाई आपने। 'मर गए बब्बा' में किस्सागोई का जबर्दस्त रंग है। ज्ञान की किस्सागोई उनके व्यंग्य पर भारी पड़ती है। कभी-कभी मुझे उन्हें पढ़कर देवकीनंदन खत्री की याद आने लगती है। देवकी बाबू दुनिया भर के किस्सागो के बाप थे। शुभकामनाएं!

पंकज भार्गव, देहरादून

'व्यंग्य यात्रा' के प्रत्येक अंक को पढ़ता हूं। अपने ईष्टों मित्रों को सुनाता भी हूं। पुस्तक की हर एक रचना नई चेतना के साथ सीमित होते जा रहे हास्य-व्यंग्य को पुनः जीवित कर देती है।

इस अंक में अभी कुछ ही रचनाओं को पढ़ा है। आपको पत्र लिखने का मन हुआ, खुद को रोक न पाया। इस अंक का संपादकीय लेख 'आरंभ' पढ़कर जीवन के सबसे बड़े सत्य की टिमटिमाती लौ मन में पुनः जल उठी। आज समाज में चारों ओर 'मैं' का बोलबाला है। धन-दौलत और ऐशो-आराम के लिए सब कुछ भुला चुके लोगों के मरे हुए जमीर को ऐसे लेखों से अवश्य प्रेरणा मिलेगी। स्वयंभू डॉक्टर, कवि नहीं फवि, सर जी आप और बाँस का दौरा व्यंग्य के बाण छोड़ने वाली रचनाएं हैं।

देहरादून में कल 'हिन्दी साहित्य अकादमी' नई दिल्ली द्वारा आयोजित कविता पाठ में श्रोता के रूप में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। कुछ प्रबुद्ध पाठकों से 'व्यंग्य यात्रा' के संबंध में चर्चा हुई। सभी का एक मत यही था कि 'व्यंग्य यात्रा' पुस्तक की कीमत कम से कम 50/- अवश्य होनी चाहिए।

रमेश राजहंस, बिजनौर

बहुत समय से मैं 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका का पाठक हूं। निःसंदेह यह पत्रिका साहित्य के क्षेत्र में अति-उत्कृष्ट एवं बेजोड़ है। जनवरी-जून 2009 की पत्रिका पढ़ने को मिली। 'सोते रहो' व्यंग्य नाटक ने बेहद प्रभावित किया। विशेष बात यह है कि इस पत्रिका को सजाने संवारने में आपका जो भागीरथ प्रयास है वह अत्यंत सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। इस बार श्री सी. भास्कर राव

का व्यंग्य 'मंदिर के अंदर' पढ़कर मन को बहुत ठेस लगी। क्या श्री राव अन्य धर्मों का भी इस प्रकार व्यंग्य का निशाना बना सकते हैं? शायद कदापि नहीं। माना कि हिंदू धर्म की सहिष्णुता के फलस्वरूप किसी को भी कुछ कह देने की देवी-देवताओं की मजाक उड़ाने की खुली छूट सी मिली हुई है। किंतु क्या इस प्रकार के करोड़ों हिन्दुओं की आस्थाओं पर बेहूदा व्यंग्य किया जाना उचित है। शिव, गणेश, काली आदि-आदि अनेक देवी-देवता, हिन्दुओं के अराध्य हैं। श्री राव की यह कृति एक ऐसा अनर्गल प्रलाप है जिसे व्यंग्य न कहकर उनकी अजीबो गरीब मानसिकता का बखाना है। भाई श्री अशोक आनंद जी का आलेख, मेघदूत 'जिंदगी के साथ भी, जिंदगी के बाद भी' अच्छा लगा। श्री प्रमोद ताम्बट का व्यंग्य लेख 'स्वयंभू डॉक्टर' एवं अन्य कई व्यंग्य रचनाएं बहुत अच्छी लगी। किंतु 'मंदिर के अंदर' आलेख आपकी सम्पादकीय बौद्धिकता। व्यंग्य की समझ पर स्वयं में एक प्रश्न चिन्ह है। आशा है इसे गंभीरता से लेंगे।

योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', दिल्ली

व्यंग्य तीर्थ स्व. रवीन्द्र त्यागी पर अशोक आनंद की समीक्षा सार्थक लगी है। व्यंग्य नाटक 'सोते रहो' सारे देश को जगा देगा, तो कहीं हमारी 'जागती' पुलिस हथकड़ी लेकर आपको खोजती न फिरे? पढ़कर मजा आ गया। ज्ञान चतुर्वेदी के 'मर गए बब्बा' ने भी कम नहीं हंसाया, हालांकि सी. भास्कर राव ने 'मंदिर के अंदर' जो गुल खिलाए, वे भी याद रहेंगे। मनजीत 'मीरा' की 'महंगाई मार गई' मनमोहन जी और शरद पवार को भिजवा दें, तो शायद 'शून्य' में पिज्जे से भी सस्ता देने वाले 'जन' में 'जय' की भावना जगनी ही चाहिए। आपकी जय हो, विजय हो।

मनोकामना सिंह, जमशेदपुर

व्यंग्य यात्रा का अंक 18-19 पढ़ा। शरद जोशी की रचना 'सरकार का जादू' हमारी सरकार की कथनी-करनी का सजीव चित्रण है। ज्ञान चतुर्वेदी की 'मर गए बब्बा' आपकी 'सोते रहो' एवं रामकुमार कृष्ण की 'जात का सवाल' पढ़ने के बाद मुझे डर है कि व्यंग्य रचना के लिए इसी तरह की भाषा को

रचनाकार आवश्यक शर्त न मान बैठे। इस अंक में व्यंग्य कविताएं पहले अंको के अपेक्षा अधिक पढ़ने को मिली जो निश्चित रूप से व्यंग्य कविगण के लिए शुभ संकेत है। राव साहब इधर अपनी रचनाओं में अनावश्यक अंश को आवश्यकता से अधिक विस्तार देकर अपनी गरिमा को कम करने पर तुले हैं।

जसवंत सिंह जनमेजय, नई दिल्ली

संपादकीय में साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य की क्षतिग्रस्त स्थिति की विभिन्नता की पारदर्शिता सही ढंग से आकी हैं। अपने-अपने जीवन की खट्टी-मिठी यादों को ताजा कर दिया। सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं, हकीकत बन गई, जिनकी उम्मीद नहीं होती है, उन्हें कुदरत बख्शाती है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी की तीन रचनाएं सार्थकता, नैतिकता और मौलिकता की प्रतीक है, उनकी हार्दिक संवेदना करुणा और मैत्री के आत्मीय भावों से साहित्य जगत का दीप प्रज्वलित होता है। श्रीमती शारदा त्यागी जी ने पत्र-संकलन की विधा पर जो रोशनी डाली है वही तो मेघदूत उवाच बहलाया है। लेखक अशोक आनंद के तेवरों और तार्किक विचारों ने मेघदूत उवाच के प्रतिमानों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है। प्रशंसनीय कार्य है। ज्ञान चतुर्वेदी ने व्यंग्य से भरपूर धार्मिक संस्कारों के निरीह उद्देश्यों के लिए 'मर गए बब्बा' के नाम से उपन्यास की प्रारंभिक कड़ी सुनाई है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक ना जाने कितने कष्टों की भरमार रहेगी। उनकी दरकार इस शीर्षक में पढ़ने को नजर आयेगी। 'सोते रहो' में देश के दुख-सुख की चिंता किसे भी नहीं होती है। समाज के प्रत्येक वर्ग के इंसान को इस व्यंग्य नाटक में अहम भूमिका निभाकर पुलिसिया रवैया का व्यवहार दर्शाया। नाटक वाकई में पढ़ने लायक है, वैसे किसी फिल्म सेंटर वाले को सोते रहो की लिपि मिल जाएगी, देर सवेर फिल्म भी बन जाएगी। मंदिर के अंदर, स्वयंभू डॉक्टर, कीमत 499 या कि 4999 का इलाज, चावल में कनकी, बाँस का दौरा, जात का सवाल, पालतू राजनीति में, महंगाई मार गई इत्यादि व्यंग्य रचनाएं मन को प्रभावित कर गईं।

विसंगतियों को ओढ़कर 'सोते रहो'

पुरानी बात है। समाचार पत्र में प्रस्तुति रिपोर्ट पढ़ने के बाद मैं 'अदरक के पंजे' नाटक देखने चला गया था। प्रस्तुति रिपोर्ट में नाटक की जितनी प्रशंसा की गयी थी, उससे भी कहीं अधिक नाटक की प्रस्तुति मुझे लगी। नाटक में वस्तु का अभाव था, पर स्थितियों पर, सामाजिक, राजनीतिक परिवेश पर व्यंग्य तीखा था। व्यंग्य ही उस नाटक का प्राण था और उसे देखने के लिए, सुनने तथा अनुभव करने के दर्शक खिंचे चले आ रहे थे। हल्के-फुल्के व्यंग्य से यदि नाटक के माध्यम से समाज की विसंगतियों को उभारा जा सकता है कि इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है। लंबे अंतराल के बाद शरद जोशी का एक और अच्छा व्यंग्य नाटक 'एक था गधा उर्फ अलादाद खां' देखने का अवसर मिला। इस नाटक में संतुलित कथा वस्तु थी और उसका निर्वाह लेखक तथा निर्देशक ने बखूबी किया था। इस नाटक में व्यंग्य स्थितियों के माध्यम से उभारा गया था। पहले नाटक में निर्देशकीय कुशलता या निपुणता की ज्यादा जरूरत नहीं थी, पर दूसरा नाटक निर्देशक की कुशलता तथा अनुभव की मांग करता है तथा प्रदर्शन के दौरान लगता रहा कि स्थितियों को बेहतर ढंग से उभारा गया था। पहले नाटक में निर्देशकीय कुशलता या निपुणता की ज्यादा जरूरत नहीं थी, पर दूसरा नाटक निर्देशक की कुशलता तथा अनुभव की मांग करता है तथा प्रदर्शन के दौरान लगता रहा कि स्थितियों को बेहतर ढंग से उभारा जा सकता है। इसी नाटक को एक बार फिर देखने का अवसर मिला किसी अन्य के निर्देशन में। तब निर्देशक का महत्व स्पष्ट हो गया। व्यंग्य नाटक मंच पर सफल रहे हैं। उन्हें सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक नाटकों की अपेक्षा अधिक दर्शक मिलते हैं। प्रेम जनमेजय प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हैं, 'व्यंग्य श्री' से सम्मानित हैं उनका नाटकों को पढ़ने का प्रदर्शन देखने का अवसर मिला— इसे पढ़ते हुए उन नाटकों के विषय, उनकी ट्रीटमेंट, प्रस्तुति बार-बार आंखों के सामने कौंधती रही।

नाटक मंच से जुड़ी विधा है। इसमें अनेक विधाओं का सम्मिश्रण है। अतः

नाटककार से यह अपेक्षा स्वाभाविक है कि उसे मंच की गहरी समझ हो तथा विभिन्न विधाओं का उसे आवश्यक ज्ञान तथा अनुभव हो। यदि नाटककार निर्देशक भी है तो उसके नाटक में रंगालेख के सभी गुण देखे जा सकते हैं जो मंचन में सहायक हो सकते हैं। 'सोते रहो' में पहले दृश्य को छोड़कर अन्य सभी दृश्यों में मंच सज्जा, पात्र परिचय संबंधित निर्देशकीय संकेत किए जा सकते थे, पर यह काम उन्होंने उद्घोषणा के द्वारा पूरा किया है। इसी से उनकी निर्देशकीय समझ तथा रंगानुभव स्पष्ट हो जाता है। मात्र वक्तव्य से दृश्यत्व संभव नहीं था पर उद्घोषणा से यह संभव हो सका है।

'सोते रहो' में उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण भारत के परिवार एक ही मोहल्ला में रहते हैं। इन परिवारों के चित्रण से भारत की अनेकता में एकता का दृश्य तो उभरता है, साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि नाटक की स्थितियों का संबंध भारत के किसी एक क्षेत्र से नहीं बल्कि पूरे भारत से है। इन तीनों परिवारों के चरित्र अपनी क्षेत्रगत, जातिगत तथा भाषागत विशिष्टता को लिए हुए हैं। इसके साथ ही बदलते परिवेश समाज की विसंगतियों तथा मूल्यों के अनुभवों का उनके चरित्रों पर स्पष्ट प्रभाव है। इन सभी पात्रों की सदेच्छा है कि 'देश सुख चैन की नींद लेता रहे और ये अपना 'सोना' बटोरते रहें। यहां 'सोना' का 'श्लेष' व्यंग्य को उभारता है। श्लेष का प्रयोग व्यंग्यकार एक हथियार के रूप में करते हैं। इसका सफल प्रयोग व्यंग्य को धार देता है।

परम्परागत नाटकों में मंगलाचरण का प्रयोग किया जाता है जो प्रायः वंदना के रूप में होता है। मंगलाचरण का प्रयोग प्रेम जनमेजय ने भी किया है। इस वंदना में भी सदेच्छा का भाव है। पर इस सदेच्छा में स्वार्थ का भाव हावी है। यह स्वार्थ तभी सिद्ध होता है जब लोग सोते रहें, 'मुंदी आंख से अंधेरा दिखेगा। अंधेरे में न कुछ साफ दिखेगा। न साफ दिखेगा तो माल बनेगा।' इसी मंगलाचरण में वर्तमान परिवेश पर एक विहंगम दृष्टि डाली गई है, 'फाइल पर बाबू सोया है / कचहरी में न्याय सोया है / थाने में सिपाही

सोया है / संसद में नेता सोया है / इस पर नाटककार का प्रश्न है, 'तो प्यारे तू क्यों जगा है / तू भी उठ और अपनी सीट पर / सो जा सो जा . . .'। नाटक का पहला दृश्य उद्घोषणा तथा मंगलाचरण के साथ समाप्त हो जाता है। उद्घोषणा तथा मंगलाचरण के माध्यम से नाटककार आज की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों को उजागर कर देता है। जब वह बार-बार 'सोते रहो' कहता है तो उसका मन्तव्य स्थितियों की निरावरण कर लोगों को जगाना है। मंगलाचरण की प्रस्तुति कैसे की जाएगी यह नाटककार ने निर्देशक की समझ पर छोड़ दिया है। वह ढोल-मंजीरों का प्रयोग भी कर सकता है या पात्रों से सस्वर गायन भी करवा सकता है। नाटक का प्रारंभ दूसरे दृश्य तथा उत्तर भारत के परिवार से होता है। परिवार में मनजीत, सतवंत तथा उनका बेटा बंटी हैं। इस दृश्य में बंटी कुछ क्षणों के लिए ही आता है पर अपना प्रभाव दर्शकों पर छोड़ जाता है। वह नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। पीढ़ियों के बीच के अंतराल को लेखक बंटी के माध्यम से उभारता है। माता-पिता के प्रति सम्मान का अभाव, अंग्रेजी तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, मातृभाषा की उपेक्षा, लेट नाइट पार्टी, म्यूजिक, फन, डांस आदि सभी को लेखक ने कुछ ही क्षणों में समेट लिया है।

पिता को संबोधित करते हुए बंटी, 'ओए डेडी!' कहता है। उसके इस संबोधन से पिता नाराज नहीं है, पर सतवंत को उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता। माता-पिता तथा बच्चों के बीच संबंध तनावपूर्ण होते जा रहे हैं। बंटी का पिता मनजीत क्योंकि स्वयं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है इसलिए उसको बंटी का अंग्रेजी बोलना ज्यादा अच्छा लगता है। वह ठेकेदार है अतः उसकी भाषा में अशिष्टता स्वाभाविक है। शायद इसी कारण उसको बंटी की भाषा से कोई शिकायत नहीं है। बंटी की मां को लगता है कि बेटा बिगड़ रहा है। उसका पढ़ाई में ध्यान नहीं है। घूमना-फिरना, दोस्तों के साथ मस्ती मारना उसका स्वभाव बन गया है। पर पिता को लगता है कि वह

जमाने के साथ चल रहा है। जीवन में उन्नति तथा पैसा कमाने के लिए मनजीत पढ़ाई को आवश्यक नहीं समझता। उसके अनुसार पढ़ाई-लिखाई में बच्चा जितना कमजोर होगा, उतना ही लीडरी में चमकेगा। उसकी दृष्टि भौतिकवादी है, 'मुझे देख दसवीं भी पास नहीं हूं. . .पर ठेकेदारी में इतना बना लिया है कि कोई सरकारी अफसर नहीं बना सकता।' ऐसे ही कई उदाहरण वह अपनी पत्नी सतवंत को देकर उसे निरुत्तर कर देता है। उसका तर्क है, 'पढ़ाई बेकार नहीं, बेकार में पढ़ाई करना बेकार है. . .पढ़ने में मन न लगता हो तो उसमें बच्चे को ठूसना बेकार है।' मनजीत पार्टियों को उन्नति की सीढ़ी समझता है, इसीलिए पार्टी में जाने के लिए वह बंटी को खुलेमन से पैसे देता है। उसका मानना है कि बड़े-बड़े होटलों में आए दिन होने वाली पार्टियां इसका उदाहरण हैं। मनजीत को पार्टी देने का बहाना चाहिए क्योंकि वह जानता है कि पार्टी पर जितना खर्च होगा उससे कई गुना ज्यादा का उसे काम मिल जाएगा। इसी कारण वह नई कार खरीदने पर भी पार्टी रखता है जिससे बेनर्जी से पुल के ठेके की फाइल क्लीयर करवा सके।

नाटक के पहले चार दृश्यों में मनजीत, बेनर्जी तथा महादेवन के परिवार केंद्र में हैं। इन दृश्यों में हमें इन तीनों परिवारों का संक्षिप्त परिचय मिलता है। तीसरे दृश्य में बंगाली बाबू बेनर्जी का परिवार है। बेनर्जी अपने एक संवाद में अपने व्यक्तित्व को दर्शकों के समक्ष खोलकर प्रस्तुत कर देता है, 'जितना हम दफ्तर की फाइल पर सोता, उतना लोग हमें जगाने की कोशिश करता, हम सोता तो लोगों की किस्मत सोता. . .हमें जगाने के लिए लोग लक्ष्मी मां की धुन सुनाता।' महादेवन भी मनजीत की तरह उन्नति पाने के लिए हर साधन अपनाने के लिए तैयार है। उसका बॉस विदेश में रहकर आया है इसलिए स्त्रियों को चूम लेने में उसे कोई बुराई नजर नहीं आती जबकि कल्याणी को उसका यह व्यवहार पसंद नहीं है। महादेवन का मानना है कि इससे यदि प्रमोशन के अवसर बढ़ते हों तो इसमें बुरा क्या है।

नाटक के पांचवें दृश्य में मनजीत द्वारा दी जा रही पार्टी का चित्रण है। इस दृश्य का

प्रारंभ भी प्रथम दृश्य की तरह उद्घोषणा से होता है, 'पार्टी यौवन पर है. . .यौवन के रस में डूबा जीव किसी प्रकार की वर्जनाओं की चिंता नहीं करता है।' पर पार्टी में वर्जनाओं को तोड़ता हुआ कोई दृश्य या घटना हमारे सामने नहीं आती है। यदि ऐसी कोई घटना या प्रसंग इस दृश्य में रहता तो नाटककार उससे नाटकीयता पैदा कर अपने वक्तव्य को सार्थक कर सकता था।

ऐसी पार्टियों में जितनी मौज-मस्ती पुरुष करते हैं उतनी स्त्रियां नहीं कर पातीं। जय श्री की शिकायत है कि पुरुष मौज-मस्ती में स्त्रियों को शामिल नहीं करते। बेनर्जी उत्तर देते हुए कहते हैं, 'मौज-मस्ती में स्त्रियों को शामिल नहीं करते। बेनर्जी उत्तर देते हुए कहते हैं, 'मौज मस्ती करो न, थोड़ा पियो. . .कौन रोकता है।' वे पीने को ही मौज-मस्ती समझते हैं। औरतें प्रायः किचन में चली जाती हैं तभी तो मनजीत कहता है, 'लगता है सब किचन में गप्पे मारने गई हैं। किचन तो औरतों का पिकनिक स्पॉट होता है।' स्त्रियां जानती हैं कि मुफ्त की शराब ज्यादा पी जाती है। इसी कारण सभी मर्दों को चढ़ जाती है और वे बहक जाते हैं। बहकने से हर स्त्री अपने पति को रोकना चाहती है, पर वे कामयाब नहीं हो पातीं। ऐसी पार्टियों में बार-बार जाने के कारण अब काफी महिलाएं भी ड्रिंक लेने लगी हैं। नाटक में इस ओर संकेत है, 'उसका मिसेज कैम्पा कोला में बड़ा-बड़ा पैग डालकर पीता. . .हमारा वाइफ तो बस रेड वाइन लाइक करता।' शराब के प्रति बढ़ते रुझान को तथा पार्टियों में शराब की अनिवार्यता को यह दृश्य उभारता है।

मिस्टर आहूजा को पार्टी में सिर्फ औरतें ही भाती हैं। वह प्रवेश करते ही अपने मित्रों को मिलने के स्थान पहले स्त्रियों से मिलना पसंद करता है, 'भाभी जी कैसी हो, भाभी जी कैसी हो' कहने लगता है। जबकि उसके व्यवहार में लेखक ने कहीं भी अति को दर्शित नहीं किया है, पर फिर भी उसकी नजर से सभी अपनी पत्नियों को बचाए रखना चाहते हैं। हर पार्टी में ऐसे चरित्र देखने को मिल जाते हैं। इसलिए आहूजा का चरित्र स्वाभाविक लगता है।

पुरुषों के मन में अपनी पत्नियों का भय है। इस तरफ भी लेखक का ध्यान गया

है। लोग अपनी बीवियों से बचकर पैग चढ़ाते हैं। बेनर्जी के इस कथन से इसे स्पष्ट किया गया है, 'सबको साला, बीबी से डरकर पीना पड़ता है।' नाटककार ने राम काल से लेकर आज तक के इतिहास के कई उदाहरण देकर इस मत की पुष्टि की है।

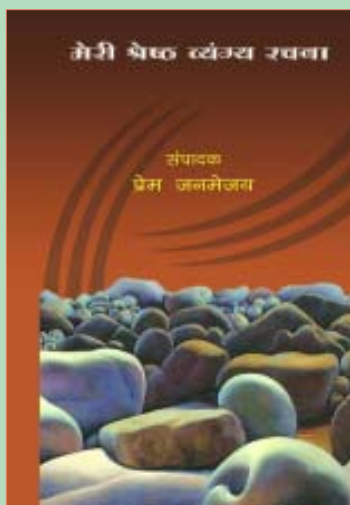
यह दृश्य नाटक का सबसे लंबा दृश्य है। पार्टी में लोग आ रहे हैं, एक-दूसरे का हाल-चाल पूछ रहे हैं, औपचारिकताएं निभाते हुए छोटा-बड़ा पैग पी रहे हैं। पार्टी में कोई उत्तेजना, घटना, नाटकीयता नहीं है। पार्टी का यथार्थ दृश्य ही उभारा गया है। कवि कोंचू के आने तक कोई जिज्ञासा भी नहीं उभरती। कवि के आगमन से साहित्यिक जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, पुरस्कारों का लेन-देन आदि को उभारने का प्रयास किया गया है, लगता है। उसे इसी उद्देश्य से पार्टी में लाया गया है जबकि वह आमंत्रित अतिथि नहीं हैं। कवि भोंक पुरस्कार समिति में हैं और वे पचास प्रतिशत कमीशन पर पुरस्कार दिलवा सकते हैं। कवि भोंक के चरित्र का देखकर साहित्यिक जगत के कई प्रतिष्ठित लेखकों-आलोचकों के चहरे उभरने लगते हैं। कवि कोंचू खुद पार्टी देने की स्थिति में नहीं हैं इसलिए वे भोंक को मनजीत की पार्टी में ले आते हैं। नाटककार लेखकों-कवियों की आर्थिक स्थिति को इससे स्पष्ट कर देता है। कवि कोंचू जानते हैं कि वे भोंक के माध्यम से कवि सम्मेलनों में भाग ले अच्छा पैसा कमा सकते हैं। इस संबंध में मनजीत की टिप्पणी जबकि स्वस्थ नहीं है, पर स्थिति तथा उसकी विडम्बना पर गहरी चोट करती है। प्रायः ऐसा कहा जाता है कि लेखक स्वाभिमानी होता है, पर कवि कोंचू इस टिप्पणी को स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसका समर्थन भी करता है, 'बिना वेश्यावृत्ति के मोटा पौसा नहीं कमाया जा सकता।' इस वेश्यावृत्ति में वह सभी को समेट लेता है, 'कोई खुलेआम मंच पर वेश्यावृत्ति करता है और कोई खादी के कपड़े पहनकर मंच के पीछे। जिस तरह की वेश्यावृत्ति सरकारी दफ्तरों, कोर्ट-कचहरियों और धर्म की दुकानों पर होती है, उसे देखकर तो अच्छी से अच्छी वेश्या भी शरमा जाए।'

मनजीत सिंह जिस फाइल को किलियर

करवाने के लिए यह पार्टी देता है, उस ओर कोई संकेत इस दृश्य में नहीं है। पार्टी के बहाने कैसे लोगों को पटाया तथा अपना उल्लू सीधा किया जाता है, इसका लाभ कवि कौंचू ही उठाता है। ऐसी ही कुछ ओर स्थितियां यदि इस दृश्य में होती तो दृश्य सपाट होने से बच जाता।

पहले अंक के प्रथम दृश्य की तरह दूसरे अंक का प्रथम दृश्य की उद्घोषणा तथा समूहगान के साथ समाप्त होता है। इस दृश्य के केंद्र में पुलिस तंत्र है। सिपाही ठंड को दूर करने के उपाय खोज रहे हैं, 'कैसे मिटे ठंडी रे, कैसे मिटे ठंडी रे / कोई मुर्गा फांस, खाने के लिए मुर्गी / मर्डर कैसे ला / किसी की करें कुर्की रु कच्ची दारू बिकवा / हमें मिले पक्की / चकलेखुलवा। थाने में नाचे इमरती।' इस समूहगान से पुलिस कर्मियों की 'कर्तव्यपरायणता' स्पष्ट हो जाती है। हर स्थिति में वे जनता को लूट लेना चाहते हैं। जब पुलिस ऐसी होगी तो परिवेश कैसा होगा इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। नाटक का दूसरा अंक पुलिस तंत्र, उसका आतंक तथा व्यक्तिगत असुरक्षा के भव को उभारता है। पुलिस सुरक्षा प्रदान करने के स्थान लोगों के मन में असुरक्षा तथा भय का भाव पैदा कर रही है। सुरक्षा तंत्र से जुड़े चौकीदार तथा उसकी कार्य शैली पर दूसरे दृश्य में प्रकाश डाला गया है, 'उधर मोहल्ले की बत्ती बंद हुआ, उधर हमारा आंख बंद हुआ. . यही हमारी ड्युटी।' चौकीदार में वास्तविक स्थिति से भी परिचित करवाता है, 'चोर डाकू के पास स्टेनगन होता है और हमारे पास लाठी।' लाठी से स्टेनगन का सामना संभव नहीं है। चौकीदार की निर्धनता, असहायता, लाचारगी का चित्रण भी नाटककार ने किया है। ऐसा उसके प्रति दर्शकों / पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए तथा वास्तविक स्थिति से रू-ब-रू कराने के लिए किया गया है।

मंच पर एक शराबी का प्रवेश कुछ उत्सुकता जगाता है। पर इस पात्र का भी नाटककार ने पूरा लाभ नहीं उठाया है। शराबी गलती से महादेवन के घर को अपना घर तथा उसकी बीवी को अपनी बीवी समझ लेता है, जिससे झगड़ा होना स्वाभाविक था। इस स्थिति में नाटकीयता है। शराबी के हावी होते ही महादेवन नर्म पड़ जाता है।



मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना

संपादक
प्रेम जनमेजय

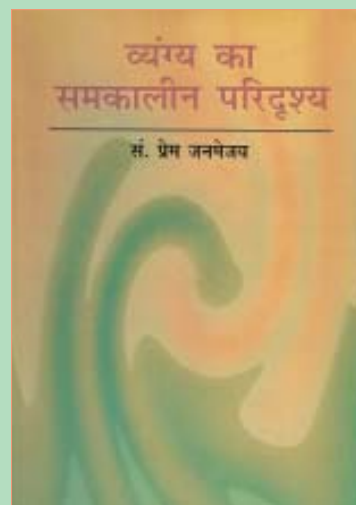
समकालीन हिंदी-व्यंग्य में रचनाशील महत्वपूर्ण व्यंग्य लेखकों द्वारा अपने संपूर्ण व्यंग्य लेखन से चुनी हुई एक श्रेष्ठ व्यंग्य रचना का संकलन, इस टिप्पणी के साथ कि वह रचना उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ क्यों है।

प्रकाशक

भावना प्रकाशन
126, पटपड़गंज
दिल्ली -110091

मूल्य : 500 रुपए

(व्यंग्य यात्रा के पाठकों के लिए विशेष छूट)



व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य

संपादक
प्रेम जनमेजय

समकालीन हिंदी व्यंग्य के महत्वपूर्ण पक्षों- व्यंग्य का मनोविज्ञान, व्यंग्य में मिथकीय प्रयोग, व्यंग्य कविता हाशिए पर क्यों तथा हिंदी व्यंग्य के समकालीन पक्ष पर

विजयेंद्र स्नातक, प्रो. निर्मला जैन, कृष्णदत्त पालीवाल, रमेश उपाध्याय, कन्हैयालाल नंदन, नरेंद्र कोहली, प्रकाश मनु, प्रदीप पंत, खगेंद्र ठाकुर, गोपाल चतुर्वेदी, शंकर पुणतांबेकर, विष्णु नागर, ज्ञान चतुर्वेदी, दिविक रमेश, हरीश नवल आदि विद्वानों के चिंतनपरक आलेख।

प्रकाशक

ग्रंथलोक
10296, गली नं.-1, वेस्ट गोरखपार्क
शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य : 700 रुपए

(व्यंग्य यात्रा के पाठक विशेष छूट के लिए पत्रिका-प्रबंधक से संपर्क करें)

शराबी के मार खाने पर वह चोर-चोर चिल्लाता है इससे स्थिति गहराती है। आस पड़ौस वाले लोग इकट्ठा हो जाते हैं। इन नाटकीय स्थितियों से लेखक सुरक्षा व्यवस्था पर प्रहार करना चाहता है। पर दृश्य में अनावश्यक फैलाव के कारण अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता। तीसरे दृश्य में एक नया चरित्र बंसल आता है। उसकी उपस्थिति स्थितियों को गहराने में सहायक हो सकती थी पर वह 'सही कै रहे रहो, सही कै रहे हो।' कहकर सभी का समर्थन करता रहता है। उस पात्र को यदि नाटक से हटा भी दिया जाए तो न तो नाटक की वस्तु पर और न ही उसके प्रभाव पर कोई प्रभाव पड़ेगा। अपनी जातिगत विशिष्टता भी वह नहीं उभार पाता। नाटककार को उसे बंटी जैसा जीवंत रूप देना चाहिए था।

जयश्री का पुलिस को फोन करना तथा हर बार फोन का कहीं और लग जाना, कभी रेलवे एंक्वारी, जैन संस तथा श्मशान भूमि, इन स्थितियों के माध्यम से लेखक व्यंग्य को पैदा करने की कोशिश करता है, पर वह ऐसा करके क्या सिद्ध करना चाहता है, स्पष्ट नहीं हो पाता। शराबी, चोर तथा जनता में व्याप्त भय को लेकर नाटकीय स्थितियों तथा घटनाओं का चित्रण किया जा सकता था, पर ऐसा हो नहीं पाया है। संवादों में, पात्रों के आपसी व्यवहार में भी नाटकीया का अभाव ही दिखाई देता है। संवाद दृश्य को खड़ा नहीं कर पाते।

आस-पड़ौस के लोग, मित्र महादेवन को पीटता हुआ देखकर भी उसे छुड़ाने का साहस नहीं बटोर पाते। उसके पास चाकू हो सकता है, रिवाल्वर भी हो सकता है, कानून को हमें हाथ में नहीं लेना चाहिए आदि दलीलें लोग देते हैं। सभी पुलिस के आने का इंतजार करते हैं। ऐसी स्थिति में भी आहूजा अपने स्वभाव के अनुसार, 'भाभी जी कैसी हो?' पूछने से बाज नहीं आता।

एक-दूसरे की सहायता के लिए आगे न आना शहरी संस्कृति का अंग बन गया है। जब परिचितों, आस-पड़ौस के लोगों की सहायता के लिए लोग आगे नहीं आते तो अपरिचित की सहायता भला वे क्या करेंगे, इस स्थिति पर तीखी व्यंग्यात्मक टिप्पणी तीसरे-चौथे दृश्य में उभरती है।

'पुलिस का हाथ जनता के साथ का नारा अवश्य दिया गया है, पर वास्तविक

इसके बिल्कुल विपरीत है। पुलिस का भयावह और घिनौना रूप नाटक में उभरता है। यही उसका असली चेहरा है। पुलिस का यह कानून व्यवस्था में बाधक है। लोग चाहकर भी उसकी सहायता करने से कतराते हैं, क्योंकि पुलिस अपराधी तथा निरपराधी दोनों से ही पैसा झटक लेना जानती है। 'अंदर कर दूंगा, कस बना दूंगा।' की धमकियां देते हुए पुलिस को देखा जा सकता है। पुलिस वालों का यह कथन, 'जो हम मानेंगे, वही तो हमारे गवाह कहेंगे।' पुलिस वालों का यह कथन, 'जो हम मानेंगे, वही तो हमारे गवाह कहेंगे।' पुलिस तंत्र तथा न्याय व्यवस्था के असली चेहरे को प्रस्तुत कर देता है। नाटक में भी वह शराबी से उसका पूरा वेतन तथा महादेवन से विहस्की की तीन-चार बोटलें मार लेता है। इस पर भी अपनी शराफत का ढिंढोरा पीटता है, 'तू भी क्या याद रखेगा कि किस शरीफ इंस्पेक्टर से पाला पड़ा था, कोई कंस नहीं बना रहा हूं। शांति स्थापित करने का पुलिस वालों का यह अनोखा ढंग है।

'सोते रहो' नाटक के पात्रों के विविधता है। उत्तर, दक्षिण तथा पूर्व भारत के पात्रों की सृष्टि इस नाटक में की गई है। इसके साथ ही नेपाली चौकीदार है। इन पात्रों के चरित्र तथा व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए नाटककार ने भाषा के विविध रूप तथा क्षेत्रगत विशेषताओं का प्रयोग कुशलता से किया है। मनजीत के संवादों पर पंजाबी का प्रभाव है। पंजाबी शब्दों को बेनर्जी तथा महादेवन नहीं समझ पाते। इसलिए बेनर्जी 'मौतबल' पूछता रहता है। एक जगह पर मनजीत कहता है, 'यहां तो धुन्नी तक धुन देते हैं।' मनजीत का इशारा खूब पीने पिलाने से है। पर बेनर्जी धुन्नी शब्द को नहीं समझ पाता। पर महादेवन उसका अर्थ अपने ढंग से समझाता है, 'धुन्नी! पटियाला से भी बड़ा पैग होता है।' इस तरह भाषा की विविधता के माध्यम से भी नाटककार व्यंग्य की स्थितियां पैदा कर लेता है। पंजाबी भाषा के प्रयोग से लेखक ने पंजाबी मानसिकता को कुशलता से उभारा है। सोणयो, मक्खन दे डेलियो आदि शब्दों का प्रयोग तथा पंजाबी उच्चारण के कारण पुत्तर (पुत्र), मातर (मातृ) आदि का प्रयोग इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

बेनर्जी की भाषा पर बंगला का प्रभाव है, 'जरा जौल्दी करो न', 'कौसम से हम आज नहीं सोयेगा' तो महादेवन की भाषा पर दक्षिण की भाषा का प्रभाव है, 'अइयो साढ़े बज गया. . .हमारे बच्चों को स्कूल जाने का।' चौकीदार की भाषा का एक उदाहरण देखें, 'हम चौकीदार शॉब. . .चोप, साला रात को भी चैन नहीं लेता।' भाषा की यह विविधता न केवल नाटकीय स्थितियों को उभारती है, बल्कि चरित्रों के विकास में भी सहायक हुई है।

'सोते रहो' नाटक में दो अंक हैं तथा दोनों में पांच-पांच दृश्य हैं। लेखक ने मंच को तीन हिस्सों में बांटकर तीन परिवारों के घरों को दिखाया है। जिस घर पर प्रकाश वृत्त डाला जाता है उसी घर के चरित्र उभरते हैं। नाटककार पहले दृश्यों में बारी-बारी इन तीनों परिवारों से पाठकों-दर्शकों का परिचय करवाता है फिर पार्टी में इन परिवारों को हम एक साथ देखते हैं। घरों के आगे के खुले स्थान में पार्टी आयोजन की व्यवस्था की जाती है। इससे लेखक का मंच का ज्ञान तथा अनुभव स्पष्ट हो जाता है।

प्रत्येक दृश्य के प्रारंभ में नाटककार ने निर्देशकीय संकेत दिए हैं, पर बहुत कुछ उसने निर्देशक की कल्पना पर छोड़ दिया है। इन निर्देशकीय संकेतों से नाटककार मंच के उपकरणों के प्रयोग तथा दृश्यों को उभारने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए दृश्य दो में, 'सतवंत अचानक हुए इस वाणी प्रहार से धक्क-सी रह जाती है। हाथ में गिलास गिरकर टूट जाता है।' सतवंत के अभिनय में यह संकेत सहायक है। उसे चेहरे पर किस तरह का भाव लाना है, उसे लेखक स्पष्ट करना चाहता है। गिलास के गिरकर टूट जाने से तथा उससे उत्पन्न ध्वनि से स्थिति और गहराती है। पर इसके साथ ही जब नाटककार लिखता है, 'डार्लिंग शब्द है ही खतरनाक, जवानी में दिल तोड़ता है और प्रौढ़ होने पर गिलास।' इस कथन से किसी दृश्य को खड़ा नहीं किया जा सकता। यह वाक्य व्यंग्य आलेख के लिए तो ठीक है, पर नाटक के लिए नहीं। नाटक में इस तरह के वाक्यों या स्टेटमेंट से लेखक को बचना चाहिए। वर्तमान समय की विसंगतियों को उभारने में 'सोते रहो' नाटक सफल है।

6/15, अशोक नगर, नई दिल्ली-110018

हरिशंकर परसाई जैसे उनके दिन फिरे

आज से पांच वर्ष पूर्व, 22 अगस्त 2004 को, हरिशंकर परसाई के जन्मदिन पर 'व्यंग्य यात्रा' का पहला अंक निकालने की योजना बनाई थी, पर वो योजना ही क्या जो सही समय पर कार्यान्वित हो जाए। पत्रिका पहला अंक अक्टूबर में ही आ पाया पर 'व्यंग्य यात्रा' के लिए हरिशंकर परसाई के जन्मदिन का विशेष महत्व है। इस बार उनके जन्मदिन पर उनको प्रणाम करते हुए, देर आए दुरुस्त आए की शैली में, पत्रिका के पाठकों के लिए हरिशंकर परसाई की एक प्रसिद्ध व्यंग्य रचना 'जैसे उनके दिन फिरे' प्रस्तुत है और साथ ही उनकी इस रचना पर युवा आलोचक एवं 'कथन' की संपादिका संज्ञा उपाध्याय की महत्वपूर्ण टिप्पणी। - संपादक

एक था राजा। राजा के चार लड़के थे। रानियां? रानियां तो अनेक थीं, महल में एक 'पिंजरापोल' ही खुला था। पर बड़ी रानी ने बाकी रानियों के पुत्रों को जहर देकर मार डाला था। और इस बात से राजा साहब बहुत प्रसन्न हुए थे। क्योंकि वे नीतिवान थे और जानते थे कि चाणक्य का आदेश है, राजा अपने पुत्रों को भेड़िया समझे। बड़ी रानी के चारों लड़के जल्दी ही राजगद्दी पर बैठना चाहते थे, इसलिए राजा साहब को बूढ़ा होना पड़ा। एक दिन राजा साहब ने चारों पुत्रों को बुला कर कहा, पुत्रों मेरी अब चौथी अवस्था आ गयी है। दशरथ ने कान के पास के केश श्वेत होते ही राजगद्दी छोड़ दी थी। मेरे बाल खिचड़ी दिखते हैं, यद्यपि जब खिजाब घुल जाता है तब पूरा सिर श्वेत हो जाता है। मैं सन्यास लूंगा, तपस्या करूंगा। उस लोक को सुधारना है, ताकि तुम जब वहां आओ, तो तुम्हारे लिए मैं राजगद्दी तैयार रख सकूँ। आज मैंने तुम्हें यह बतलाने के लिए बुलाया है कि गद्दी पर चार के बैठ सकने लायक जगह नहीं है। अगर किसी प्रकार चारों समा भी गये तो आपस में धक्का-मुक्की होगी और सभी गिरोगे। मगर मैं दशरथ सरीखी गलती नहीं करूंगा कि तुम में से किसी के साथ पक्षपात करूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा लूंगा। तुम चारों ही राज्य से बाहर चले जाओ। ठीक एक साल बाद इसी फाल्गुन की पूर्णिमा को चारों दरबार में उपस्थित होना। मैं देखूंगा कि इस साल में किसने कितना धन कमाया और कौन-सी



योग्यता प्राप्त की। तब मैं मंत्री सलाह से, जिसे सर्वोत्तम समझूंगा, राजगद्दी दे दूंगा। जो आज्ञा, कहकर चारों ने राजा साहब को भक्तिहीन प्रणाम किया और राज्य के बाहर चले गये। पड़ोसी राज्य में पहुँच कर चारों राजकुमारों ने चार रास्ते पकड़े और अपने पुरुषार्थ तथा किस्मत को आजमाने चल पड़े। ठीक एक साल बाद फाल्गुन की पूर्णिमा को राज-सभा में चारों लड़के हाजिर हुए। राजसिंहासन पर राजा साहब विराजमान थे, उनके पास ही कुछ नीचे आसन पर प्रधानमंत्री बैठे थे। आगे भाट, विदूषक और चाटुकार शोभा पा रहे थे। राजा ने कहा,

'पुत्रों! आज एक साल पूरा हुआ और तुम सब यहां हाजिर भी हो गये। मुझे उम्मीद थी कि इस एक साल में तुममें से तीन या बीमारी के शिकार हो जाओगे या कोई एक शेष तीनों को मार डालेगा और मेरी समस्या हल हो जायेगी। पर तुम चारों यहां खड़े हो। खैर! अब तुममें से प्रत्येक मुझे बतलाये कि किसने इस एक साल में क्या काम किया कितना धन कमाया और राजा साहब ने बड़े पुत्र की ओर देखा। बड़ा पुत्र हाथ जोड़कर बोला, 'पिता जी, मैं जब दूसरे राज्य में पहुँचा, तो मैंने विचार किया कि राजा के लिए ईमानदारी और परिश्रम बहुत आवश्यक गुण है। इसलिए मैं एक व्यापारी के यहां गया और उसके यहां बोरे ढोने का काम करने लगा। पीठ पर मैंने एक वर्ष बोरे ढोये हैं, परिश्रम किया है। ईमानदारी से धन कमाया है। मजदूरी में से बचाई हुई ये सौ स्वर्णमुद्राएं ही मेरे पास हैं। मेरा विश्वास है कि ईमानदारी और परिश्रम ही राजा के लिए सबसे आवश्यक है और मुझमें ये हैं, इसलिए राजगद्दी का अधिकारी मैं हूँ। वह मौन हो गया। राज-सभा में सन्नाटा छा गया। राजा ने दूसरे पुत्र को संकेत किया। वह बोला, 'पिताजी, मैंने राज्य से निकलने पर सोचा कि मैं राजकुमार हूँ, क्षत्रिय हूँ- क्षत्रिय बाहुबल पर भरोसा करता है। इसलिए मैंने पड़ोसी राज्य में जाकर डाकुओं का एक गिरोह संगठित किया और लूटमार करने लगा। धीरे-धीरे मुझे राज्य कर्मचारियों का सहयोग मिलने लगा और मेरा काम खूब

अच्छा चलने लगा। बड़े भाई जिसके यहां काम करते थे, उसके यहां मैंने दो बार डाका डाला था। इस एक साल की कमाई में पांच लाख स्वर्णमुद्राएं मेरे पास हैं। मेरा विश्वास है कि राजा को साहसी और लुटेरा होना चाहिए, तभी वह राज्य का विस्तार कर सकता है। ये दोनों गुण मुझमें हैं, इसलिए मैं ही राजगद्दी का अधिकारी हूँ। पांच लाख सुनते ही दरबारियों की आंखें फटी-की फटी रह गयीं। राजा के संकेत पर तीसरा कुमार बोला, 'देव मैंने उस राज्य में जाकर व्यापार किया। राजधानी में मेरी बहुत बड़ी दूकान थी। मैं घी में मूंगफली का तेल और शक्कर में रेत मिलाकर बेचा करता था। मैंने राजा से लेकर मजदूर तक को सालभर घी-शक्कर खिलाया। राज-कर्मचारी मुझे पकड़ते नहीं थे क्योंकि उन सब को मैं मुनाफे में से हिस्सा दिया करता था। एक बार स्वयं राजा ने मुझसे पूछा कि शक्कर में यह रेत-सरीखी क्या मिली रहती है? मैंने उत्तर दिया कि करुणानिधान, यह विशेष प्रकार की उच्चकोटि की खदानों से प्राप्त शक्कर है जो केवल राजा-महाराजाओं के लिए मैं विदेश से मंगाता हूँ। राजा यह सुनकर बहुत खुश हुए। बड़े भाई जिस सेठ के यहां बोरें ढोते थे, वह मेरा ही मिलावटी माल खाता था। और मंझले लुटेरे भाई को भी मूंगफली का तेल-मिला घी तथा रेत-मिली शक्कर मैंने खिलाई है। मेरा विश्वास है कि राजा को बेईमान और धूर्त होना चाहिए तभी उसका राज टिक सकता है। सीधे राजा को कोई एक दिन भी नहीं रहने देगा। मुझमें राजा के योग्य दोनों गुण हैं, इसलिए गद्दी का अधिकारी मैं हूँ। मेरी एक वर्ष की कमाई दस लाख स्वर्णमुद्राएं मेरे पास हैं। 'दस लाख' सुनकर दरबारियों की आंखें और फट गयीं। राजा ने तब सब से छोटे कुमार की ओर देखा। छोटे कुमार की वेशभूषा और भाव-भंगिमा तीनों से भिन्न थी। वह शरीर पर अत्यन्त सादे और मोटे कपड़े पहने था। पांव और सिर नंगे थे। उसके मुख पर बड़ी प्रसन्नता और आंखों में बड़ी करुणा थी। वह बोला, 'देव, मैं जब दूसरे राज्य में पहुंचा तो मुझे पहले तो यह सूझा ही नहीं कि क्या करूं। कई दिन मैं भूखा-प्यासा भटकता रहा। चलते-चलते एक दिन मैं एक अट्टालिका के सामने पहुंचा। उस पर लिखा

था 'सेवा आश्रम'। मैं भीतर गया तो वहां तीन-चार आदमी बैठे ढेर-की-ढेर स्वर्ण-मुद्राएं गिन रहे थे। मैंने उनसे पूछा, भद्रो तुम्हारा धंधा क्या है?' 'उनमें से एक बोला,



त्याग और सेवा।' मैंने कहा, 'भद्रो त्याग और सेवा तो धर्म है। ये धंधे कैसे हुए?' वह आदमी चिढ़कर बोला, तेरी समझ में यह बात नहीं आयेगी। जा, अपना रास्ता ले।' 'स्वर्ण पर मेरी ललचायी दृष्टि अटकी थी। मैंने पूछा, 'भद्रो तुमने इतना स्वर्ण कैसे पाया?' वही आदमी बोला, 'धंधे से।' मैंने पूछा, कौन-सा धंधा? वह गुस्से में बोला, 'अभी बताया न! सेवा और त्याग। तू क्या बहरा है?' 'उनमें से एक को मेरी दशा देख कर दया आ गयी।' उसने कहा, 'तू क्या चाहता है?' 'मैंने कहा, मैं भी आप का धंधा सीखना चाहता हूँ।' 'उस दयालु आदमी ने कहा, 'तो तू हमारे विद्यालय में भरती हो जा। हम एक सप्ताह में तुझे सेवा और त्याग के धंधे में पारंगत कर देंगे। शुल्क कुछ नहीं लिया जायेगा, पर जब तेरा धंधा चल पड़े तब श्रद्धानुसार गुरुदक्षिणा दे देना।' 'पिताजी, मैं सेवा-आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने लगा। मैं वहां राजसी ठाठ से रहता, सुन्दर वस्त्र पहनता, सुस्वादु भोजन करता, सुंदरियां पंखा झलतीं, सेवक हाथ जोड़े सामने खड़े रहते। अंतिम दिन मुझे आश्रम के प्रधान ने बुलाया और कहा, 'वत्स, तू सब कलाएं सीख गया। भगवान का नाम लेकर कार्य आरम्भ कर दे।' उन्होंने मुझे ये मोटे सस्ते वस्त्र दिए और कहा, 'बाहर इन्हें पहनना। कर्ण के कवच-कुण्डल की तरह ये बदनामी से तेरी रक्षा करेंगे। जब तक तेरी अपनी अट्टालिका

नहीं बन जाती, तू इसी भवन में रह सकता है, जा, भगवान तुझे सफलता दें।' 'बस, मैंने उसी दिन 'मानव-सेवा-संघ' खोल दिया। प्रचार कर दिया कि मानव-मात्र की सेवा करने का बीड़ा हमने उठाया है। हमें समाज की उन्नति करना है, देश को आगे बढ़ाना है। गरीबों, भूखों, नंगों, अपाहिजों की हमें सहायता करनी है। हर व्यक्ति हमारे इस पुण्यकार्य में हाथ बंटाए। हमें मानव-सेवा के लिए चंदा दे। पिताजी, उस देश के निवासी बड़े भोले हैं। ऐसा कहने से वे चंदा देने लगे। मंझले भैया से भी मैंने चंदा लिया था, बड़े भैया के सेठ ने भी दिया और बड़े भैया ने भी पेट काट कर दो मुद्राएं रख दीं। लुटेरे भाई ने भी मेरे चेलों को एक सहस्र मुद्राएं दी थीं। क्योंकि एक बार राजा के सैनिक जब उसे पकड़ने आये तो उसे आश्रम में मेरे चेलों ने छिपा लिया था। पिताजी, राज्य का आधार धन है। राजा को प्रजा से धन वसूल करने की विद्या आनी चाहिए। प्रजा से प्रसन्नतापूर्वक धन खींच लेना, राजा का आवश्यक गुण है। उसे बिना नश्वर लगाए खून निकालना आना चाहिए। मुझमें यह गुण है, इसलिए मैं ही राजगद्दी का अधिकारी हूँ। मैंने इस एक साल में चन्दे से बीस लाख स्वर्ण-मुद्राएं कमाई जो मेरे पास हैं।' 'बीस लाख' सुनते ही दरबारियों की आंखें इतनी फटीं कि कोरों से खून टपकने लगा। तब राजा ने मंत्री से पूछा, 'मंत्रिवर आपकी क्या राय है? चारों में कौन कुमार राजा होने के योग्य है?' मंत्रिवर बोले, 'महाराज इसे सारी राजसभा समझती है कि सब से छोटा कुमार ही सबसे योग्य है। उसने एक साल में बीस लाख मुद्राएं इकट्ठी कीं। उसमें अपने गुणों के सिवा शेष तीनों कुमारों के गुण भी हैं- बड़े जैसा परिश्रम उसके पास है, दूसरे कुमार के समान वह साहसी और लुटेरा भी है। तीसरे के समान बेईमान और धूर्त भी। अतएव उसे ही राजगद्दी दी जाए। मंत्री की बात सुनकर राजसभा ने ताली बजाई। दूसरे दिन छोटे राजकुमार का राज्याभिषेक हो गया। तीसरे दिन पड़ोसी राज्य की गुणवती राजकन्या से उसका विवाह भी हो गया। चौथे दिन मुनि की दया से उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ और वह सुख से राज करने लगा। कहानी थी सो खत्म हुई। जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके दिन फिरें।

संज्ञा उपाध्याय

व्यंग्य को अपना औजार और हथियार बनाते हैं परसाई

हरिशंकर परसाई हिंदी की 'नयी कहानी' के दौर के कहानीकार हैं। राजनीति उनकी कहानियों का मुख्य सरोकार है। उनका स्पष्ट मत था कि स्वयं को राजनीति से दूर मानने वाले रचनाकार वास्तव में जन-विरोधी राजनीति के पक्षधर हैं। यथार्थ को देखने के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं और हैं भी। परसाई यथार्थ को जनपक्षीय दृष्टिकोण से देखते हैं। इसलिए उन्हें अपने समय के सामंती और पूंजीवादी समाज के शासक वर्ग तथा उसकी व्यवस्था में अनेक विसंगतियां दिखायी पड़ती हैं, जैसे- झूठ, छल, पाखंड, बेईमानी, भ्रष्टाचार इत्यादि। वे इन तमाम विसंगतियों या बुराइयों पर चोट करते हैं। ऐसा करते समय वे व्यंग्य को अपना औजार और हथियार बनाते हैं- औजार एक नया समाज बनाने के लिए और हथियार उस नये समाज के निर्माण में बाधक तत्वों से निपटने के लिए।

यह काम राजनीति की सही समझ के बिना नहीं किया जा सकता, परंतु अनेक लेखक और बुद्धिजीवी राजनीति को साहित्येतर अनुशासन कहकर नकारने की या साहित्य को उससे अलग रखने की बात करते हैं। लेकिन परसाई न केवल राजनीति से परहेज नहीं करते, वे उसे समझना समाज को सही रूप में समझने के लिए आवश्यक भी मानते हैं।

सामान्य जनता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता के चलते अभिव्यक्ति और शिल्प के स्तर पर उनकी कहानियां उनके समकालीन रचनाकारों से सर्वथा भिन्न हैं। परसाई की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने कथ्य और शिल्प में अत्यंत वैविध्यपूर्ण होने पर भी वर्तमान के ही सामाजिक सरोकारों को सामने लाती हैं। इन कहानियों में भारत की जनतांत्रिक व्यवस्था की विसंगतियों की व्यंग्यपूर्ण आलोचना की गयी है। भेड़ों और भेड़िये, 'इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर', 'एक गोभक्त से भेंट', 'दल बदलने वाला', 'उखड़े खंभे', 'भोलाराम का जीव', 'सदाचार का तावीज', 'हम

बिहार से चुनाव लड़ रहे हैं' जैसी अपनी कई कहानियों में परसाई जनता को मूर्ख समझने और बनाने वाले नेता, भ्रष्ट नौकरशाही, भ्रष्ट और दमनकारी पुलिस व्यवस्था, शासकों का जन-विरोधी चरित्र, चुनावों में जातिवाद और संप्रदायवाद, विभिन्न राजनीतिक दलों का चरित्र, धर्म और राजनीति का गठजोड़, दल बदलने वाले अवसरवादी नेताओं का चरित्र आदि को विषय बनाते हैं।

इसी तरह की उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है 'जैसे उनके दिन फिरे'। इस कहानी में परसाई व्यंग्यात्मक रूप में बताते हैं कि हमारे जनतंत्र में शासकों में किन 'योग्यताओं' का होना जरूरी है! एक राजा यह तय करना चाहता है कि उसके चार पुत्रों में से कौन राजगद्दी पाने का हकदार है। वह कहता है कि एक वर्ष बाद उन चारों को यह बताते हुए कि उन्होंने कितना धन कमाया और क्या योग्यता हासिल की, स्वयं को सर्वोत्तम सिद्ध करना होगा।

लोककथा के रूप में लिखी गयी इस कहानी में पहला और सबसे बड़ा पुत्र, जो मेहनत और ईमानदारी से धन कमाता है, राजा और उसके दरबारियों की निगाह में सबसे निकम्मा सिद्ध होता है। यह पुत्र दरअसल भारत की मेहनतकश जनता का प्रतिनिधि पात्र है, क्योंकि भारत की जनता में अधिकांश लोग ऐसे ही हैं, जो मेहनत और ईमानदारी से काम करते हुए ही जीते हैं। वे अपनी मेहनत-मजदूरी में से की गयी बचत से ही धनी बनने का स्वप्न देखते हैं। लेकिन ऐसे लोग शासक वर्ग तथा उससे सहयोग करने वाले 'चतुर' मध्यवर्गीय लोगों के द्वारा मूर्ख समझे जाते हैं। उन्हें शासन करने योग्य तो क्या, किसी भी काम के योग्य नहीं समझा जाता।

राजा का दूसरा पुत्र भारतीय समाज के उस सामंती तबके का प्रतिनिधि पात्र है, जो बाहुबल को ही सब कुछ समझता है। वह अपने राजकुमार और क्षत्रिय होने को बहुत महत्त्व देता है। यह दूसरा पुत्र भारतीय जनतंत्र के उन 'बाहुबलियों' की याद दिलाता है,

जो अपराध के रास्ते राजनीति में आते हैं और अपराधी बने रहते हुए भी जनता के नेता बनकर अपने प्रभाव और वैभव का विस्तार करते रहते हैं।

राजा का तीसरा पुत्र उस धूर्त व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, जो आम जनता को धोखा देकर मिलावट, बेईमानी, झूठ और भ्रष्टाचार जैसे तरीकों से धनी बनता है और उस धन के बल पर सत्ता हासिल करने में समर्थ हो जाता है।

राजा का सबसे छोटा पुत्र भारतीय जनतंत्र के शासकों तथा राजनीतिक नेताओं का प्रतिनिधि पात्र है। वह अपने तीनों बड़े भाइयों से भिन्न वेश-भूषा और भाव-भंगिमा वाला व्यक्ति है। वह अत्यंत सादे और मोटे कपड़े पहनता है। नंगे सिर और नंगे पांव चलता है। उसके चेहरे पर बड़ी सरलता और आंखों में बड़ी करुणा दिखायी देती है, लेकिन वह अपने सभी भाइयों से बढ़कर धूर्त है।

कहानी का यह चौथा राजकुमार भारतीय प्रजातंत्र के उन नेताओं का प्रतीक है, जो जन-सेवा का ढोंग करते हैं, बाहर अत्यंत दीन-हीन साधारण जन होने का दिखावा करते हैं, किंतु अपने निजी जीवन में ऐश्वर्यवान और विलासी होते हैं। वे आम गरीब मेहनतकश जनता से चंदे के नाम पर तो धन वसूलते ही हैं, व्यापारियों और अपराधियों से भी बड़ी-बड़ी रकमें उगाहते हैं।

यहां हरिशंकर परसाई का सामाजिक यथार्थ-बोध अत्यंत प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुआ है। वे इस कहानी के माध्यम से बताते हैं कि भारत की गरीब जनता सेवा और सहायता जैसे मूल्यों में तो विश्वास करती है, और इन मूल्यों की रक्षा के लिए अपना पेट काटकर भी धन और साधन जुटाती है लेकिन वह इतनी भोली या नासमझ है कि इन मूल्यों के नाम पर ठगने वालों पर विश्वास कर लेती है। दूसरी तरफ बेईमान व्यापारी और अपराधी किस्म के लोग ऐसे

शेष पृष्ठ 16 पर. . .

सुनील गंगोपाध्याय

स्वर्ग दर्शन

युधिष्ठिर महेंद्र शिखर पर आ खड़े हुए थे। सिर पर आकाश का एक सुविशाल छत उसके नीचे अकेला एक मानव अतः और भी बढ़ती गई निःसंगता। चार भाई तथा अपनी स्त्री भी सभी गल चुके हैं। उनका मृत देह पथ पर ही पड़ा रह तो नहीं गया? भले ही पीछे मुड़ युधिष्ठिर ने देखा न हो पर उनका कुत्ता बहुत ही बेचैन हो रहा था। अपने कंधे पर रखी हुई झोली में से युधिष्ठिर थोड़ी-थोड़ी रोटियों के टुकड़े कर-कर उसके मुख के सामने डालते हुए कहते रहे और थोड़ा इंतजार करो बस, और थोड़ा। कुछ ही समय पश्चात् सामने एक अग्निमय रथ दिखा आकाश से जो नीचे उतर आया जब कि एक आकाशचारी उस रथ पर से उतरा। युधिष्ठिर ने उसे अभिवादन करते हुए अपना घुटना टेक दिया। स्वर्ग दूत ने प्रसन्नचित होकर कहा 'हे युधिष्ठिर! तुम एक साधारण मानव ही हो फिर भी तुम्हारे शुभ-बुद्धि और धैर्य भाव को सराहते हुए मैं तुम्हें जीवित ही नक्षत्र लोक में ले जाने के लिए सोच रहा हूँ, हां, तो आओ वत्स। आओ मेरे साथ।'

धीरमति युधिष्ठिर ने जब पहले कुत्ते को भी युआन पर ले जाने के लिए अनुरोध किया तो नभदूत ने आश्चर्यचकित होकर पूछा यह क्या पहले ही कुकुर क्यों युधिष्ठिर के उत्तर में जितनी दृढ़ता थी उतनी ही थी नम्रता। हां महाशय मेरा अभिप्राय कुछ ऐसा ही है। थोड़ी देर निस्तब्ध रह कर नभदूत हंस पड़े। समझा, तुम यथार्थ में हमारी ही परीक्षा ले रहे हो यानि कि यह यान निर्भरशील या कहीं विश्वासयोग्य है या नहीं। तुम देखना चाहते हो पृथ्वी के प्राणी के लिए यह यान किस हद तक इस्तेमाल के लायक है। निःसंदेह यह सत्य है कि काफी बुद्धिमान हो तुम। आज तक भले ही कोई जीवित प्राणी इस यान पर चढ़ कर गया नहीं है तभी इतनी लंबे पथ पर भी तुम कुकुर को साथ ले आए हो, हां तो यही केवल मकसद से। सच, धन्य हो तुम। युधिष्ठिर ने कहा 'आप उचित कह रहे हैं, झूठ मैं नहीं बोलता।

अपने संदेह को दूर करने के लिए ही मैं इस कुकुर को साथ लेकर आया हूँ। कहीं कुकुर भाग न जाए, इस हेतु बीच-बीच में इसे मिठाई के टुकड़े भी खिलाते हुए आया हूँ। समय अधिक नष्ट न करते हुए नभचारी कुकुर को यान पर लेकर आकाश में उड़ गया युधिष्ठिर जब उसी ओर निहारते खड़े रह गये। कुछ क्षण बीते थे कि यान कुकुर को लेकर लौट भी आया और जानवर खुशी खुशी अपनी दुम हिलाता हुआ यान से बाहर निकल आया। युधिष्ठिर के पास बची हुई मिठाई सारे के सारे उन्होंने कुकुर के मुँह के पास ही डाल दिया और बोले जाओ हे जीव तुमने मेरा बहुत उपकार किया है। इसलिए मैं तुम्हें वर दे रहा हूँ कि आज से कुकुर जाति मनुष्य के पालतू बनकर रहेंगे और मर्यादित जीवन बितायेगा।

एक स्वच्छ हेलमेट युधिष्ठिर के सिर पर पहनाते हुए नभचारी बोले, 'सांस लेने में कोई तकलीफ। युधिष्ठिर 'नहीं' 'तो चलें' और स्वर्गीय रथ आकाश से उड़ चला। अंतिम बार के लिए युधिष्ठिर पृथ्वी को निहार रहे थे, उनके हृदय में वेदना अनुभव हो रही थी। कोई भी आत्मीय बंधु जन अब जीवित रहे नहीं थे। फिर भी युधिष्ठिर का बहुत ही प्रिय था, यह जगत। 'क्या तुम सोना चाहते हो? अभी पहुँचने में देरी है सो सकते हो।' नभचारी ने कहा। नहीं बाहर के ऐसे सुंदर दृश्यावलियाँ मैं सोकर खोना नहीं चाहता।' तुम ही प्रथम जीवित प्राणी हो, जिसे ऐसा अवसर दिया गया है? यह श्रेय तुम्हें तुम्हारी कीर्ति के लिए मिली है? जिस कारण तुमको मृतों में परिवर्तित नहीं किया गया पर तुम्हें डर तो नहीं लग रहा है?' 'क्यों डरूंगा क्यों' स्वर्ग नामक यह जगह तुम्हारे लिए नितांत ही अपरिचित है, इसलिए 'क्यों अपरिचित क्यों है? हमारे पूर्वज वहाँ गए हैं। स्वर्ग का गुणगान भी किया है। मैंने भी तो अपने को विविध प्रकार से वंचित किया है, स्वर्ग प्राप्ति के ही लिप्सा से।' 'ठीक है। आगे देखा जाएगा।'

आपने मुझे प्रथम आकाशचारी बनने का सम्मान दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं किंतु मैं आपको स्मरण कराना चाहूँगा कि हमारे पूर्व पुरुष पुरुखा स्वर्ग आए थे। ऐसी और भी कई कथाएँ मैं जानता हूँ।

अफवाहें फैलती रही हैं परंतु ऐसी उड़ान में तुम एक मात्र हो इसमें कोई संदेह नहीं और तुम्हें ले जा रहे हैं, एक विशेष परीक्षा चलाने के उद्देश्य से ही।

'परीक्षा?' हां, वैज्ञानिक परीक्षा। प्रश्न जटिल है। समझोगे नहीं। तो भी संक्षेप में बता रहा हूँ। सुनो शरीर वस्तु है, तो प्राण शक्ति है। वस्तु को शक्ति में परिवर्तित करने का कौशल हम जानते हैं। यह कौशल पृथ्वी के मनुष्य नहीं जानते। किन्हीं-किन्हीं चुने हुए मुर्दों के प्राण को ऊपर ले आकर हम संरक्षित करते हैं और वस्तु में रूपांतरित करने के साथ साथ वे पुनः जीवित हो उठते हैं परंतु ध्यान रखा जाता है कि इस कौशल के करने से पहले लोभ, मोह, हिंसा जैसी दुर्वृत्तियों जो पृथ्वी में जाकर बनती हैं, उन्हें हम मिटा लें। फिलहाल, तुम्हारे द्वारा यह चेष्टा चला कर देखा जाएगा कि मृत्यु न होने पर भी लोभ मोह आदि बुरी आदतों को तुम्हारे अंदर से मिटाया जा सकता है या नहीं। थोड़ा सा दुख और अहंकार मिश्रित वाणी से युधिष्ठिर बोले हे देव! पृथ्वी पर रहते हुए भी मेरे अंदर यह दोष नहीं थे।

हां, तभी तुम्हें चुना गया है। फिर भी अपने को जितना दोष मुक्त समझते हो, उतना तुम हो नहीं। पृथ्वी दोषमुक्त है। अतः तुम्हें भी वह अवगुण स्पर्श होंगे। मैं यहां भ्रमण कर आना कतई पसंद नहीं करता। हां, विष्णु प्रायः आते हैं। पृथ्वी के खर्बाकर मनुष्य उन्हें बहुत पसंद हैं। चुन-चुन कर तभी कितने ही खर्बाकार नारियों को उन्होंने विवाह किया है। कहिए आप भी तो जानते हैं। देवता के लीला प्रसंगों में युधिष्ठिर निरुत्तर और नतमस्तक बने रहे। यान की गति मद्धिम होने लगी थी, नभचारी बोले, क्षण भर के लिए मुझे नर्क नामक उपग्रह में

रुकना होगा पर ध्यान रहे वहीं रह जाने की इच्छा नहीं जताना। बहुत लोग उस स्थान को अधिक पसंद करने लगते हैं।

युधिष्ठिर, यद्यपि उस उपग्रह में यान से उतरे तक नहीं थे, अपनी आंखों को, कानों को कस कर बंद रखने के बावजूद तरह-तरह की भयप्रद, और दुखद चीत्कार उनके कर्ण कुहरों को तथा नेत्रों को असह्य प्रतीत होने लगे थे। नर्क और स्वर्ग के बीच रास्ता बहुत सामान्य था। स्वर्ग पर उतरते ही नभचारी ने घोषित किया कि उनका कर्तव्य अब समाप्त हो गया है। अतः दूसरे विशेषज्ञों के काम शुरू होंगे। आज, पर कुछ होने वाला नहीं और यह ज्ञात हो कि यहां का कोई भी खाद्य वस्तु कोई भी गृह द्वार और कोई भी जल सब कुछ अपना है। पराया कुछ नहीं यहां तक कि कोई भी नारी को अपनी बल्लभा बना सकते हो।

राकेट के स्टेशन से बाहर आकर युधिष्ठिर ने किसी भी एक पथ को पकड़ लिया और अग्रसर होने लगे। मन ही मन सोचते रहे जहां खुशी जा सकता हूं। राह भूलने का भय नहीं है, कारण सभी राह तो अपने ही हैं। इसके अलावा राह सभी समंतराल स्वच्छ भी। गली कूचों के जटिलता से रहित सीधे-साधे पथों के दोनों किनारे पर सारबद्ध वृक्ष शोभित हे रहे थे। पर यह हरे नहीं नील वर्ण के युधिष्ठिर ताड़ गए कि देवता को शायद नील वर्ण इसीलिए प्रिय होती है पर युधिष्ठिर तो हरे वर्ण के आदी थे। अतः हरा ही उनका प्रिय वर्ण है। उन्हें यह रंग पीड़ा पहुंचा रही थी। अपने जनों से साक्षात् होने की अभिलाषा से युधिष्ठिर व्यग्र हो रहे थे। खासतौर से वह पितामह भीष्म से मिलना चाहते थे। स्वर्ग का हाल चाल बताने वाले भरोसेमंद व्यक्ति पितामह जैसे और कौन हो सकते हैं। पृथ्वी पर तो हर परामर्श में पितामह का ही प्रधान हस्तक्षेप हुआ करता था। थोड़े ही दूर पर दीख गए सर्वप्रथम दुर्योधन तथा कर्ण। युधिष्ठिर चौंक उठे बेशक उन्हें थोड़ा दुख भी हुआ। हमसे किते ही पहले उन्हें स्वर्ग सुख प्राप्ति हो चुकी है। जहां मेरी परम आदरणीय मेर द्रोपदी और सहोदरगण अभी तक पहुंच ही नहीं पाए हैं क्या? चूंकि दोनों ने ही युधिष्ठिर को देखा नहीं युधिष्ठिर में आंख बचा कर चले जाने की इच्छा प्रबल हुई। पुनः वह चौंक उठे, यह सोच कर कि ईर्ष्या तथा भय

का जन्म उनमें होना ही नहीं चाहिए। कहीं किसी को यह बात पता तो नहीं चल गया होगा। अतः तत्परता से युधिष्ठिर आगे बढ़े और कर्ण के प्रणाम किया। दुर्योधन ही सर्वप्रथम बोले ओ हो आप धर्मराज? तो आ पहुंचे हैं, यहां। यहां की भूमि बहुत ही स्वास्थ्यकर है। अतः कोई दर्द की शिकायत यहां नहीं होती। मैं पूर्णतः स्वस्थ हूं। कर्ण नीरव थे। युधिष्ठिर का दिल धड़कने लगा था। कारण, अपने सहोदर भाई जानते हुए भी इस प्रकार आमने-सामने खड़े होकर उन्होंने कर्ण से कभी बातें नहीं की थी। कुरुक्षेत्र के युद्ध में उसे अपनी मुट्ठी के भीतर पा कर भी युधिष्ठिर ने हत्या नहीं किया था। न जाने कितने कटु वचन उन्होंने कर्ण से कहे थे। वे ही युधिष्ठिर अब कर्ण को घुटने टेक वंदना करते हुए बोले, हे ज्येष्ठ, आप सर्वरूपेण कुशल तो हैं। कर्ण तो बराबर ही कटु तथा विनय विहीन भाषण के लिए प्रसिद्ध थे। पर आश्चर्य की बात है कि उनके उत्तर में भी मधु वर्षण हो रहा था। कर्ण ने युधिष्ठिर का सिर चूमा फिर उसका सुग्राण लिया और बोले, तुम्हें देख कर मुझे आशातीत खुशी हुई। तुम पृथ्वी के गौरव थे और स्वर्ग भूमि तुम्हें पाकर गौरवान्वित होगी। दुर्योधन ने पुनः प्रश्न किया आपने कुछ खाया पिया या नहीं। बहुत ही सुबह-सुबह निकल पड़े होंगे। साथ ही असंख्य पर्वत मालाओं को पार कर के आना पड़ा है। हम सभी आप लोगों का पर्वतारोहण दूरदर्शन में देख रहे थे। यह सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था फिर दाहिनी ओर उंगली उचा कर दिखाते हुए कर्ण बोले, उस दिशा में अतिथिशाला है। आप भोजन ग्रहण कर लें। दो शब्द दुर्योधन ने और भी जोड़ दिए। जितनी खुशी भोजन करें, ऐसी अच्छी रसोई कभी न मिली होगी। मूल्य चुकाना भी नहीं पड़ेगा। कर्ण बोले, पर्वतारोहण के श्रम से आप परिश्रान्त तो हैं ही किसी भी भवन में पहुंच कर आप विश्राम ग्रहण करें। दुर्योधन बोले, सेवा तथा विलास हेतु यदि दासी की आवश्यकता अनुभव हो तो दूरभाष के जरिये कार्यालय में अपनी ख्वाहिश अवश्य पेश करें। इच्छानुसार सेविकाएं मिल जाएंगी पर कर्ण सावधान करते हुए बोले, हां केवल उर्वशी को न मांगिए। यद्यपि उर्वशी चिर यौवना तथा सुंदरियों में श्रेष्ठा है, फिर भी सूर्यवंशियों के लिए वह दुर्लभ है। उनका दावा है, वह हम लोगों की नानी हैं, कारण

वह सूर्यवंश के पूर्व पुरुष पुरुवा की पत्नी थी। हालांकि युधिष्ठिर ना ही क्षुधार्त थे ना ही स्त्री संभोग के लिए अभिलाषी केवल वे आतुर थे तो आत्मीय और मित्रों से मिलने के लिए। उन्होंने पितामह से भेंट करने की अभिलाषा व्यक्त की। दुर्योधन से पता चला कि यहां पर पितामह को जितेंद्रिय बन कर रहना पड़ रहा है। यहां ना ही शादी होती है और न ही संतान जनन। इसी कारण उन्हें प्रतिज्ञा पालन की आवश्यकता नहीं रही। युधिष्ठिर ने पूछा, 'पितामह कहां होंगे।'

खोज लीजिए। हम तो यहां बैठे हैं याज्ञसेनी को देखने की अभिलाषा से। युधिष्ठिर चौंक उठे। द्रोपदी! मन मन बोले मधुभाषिणों द्रपदतनया अवश्य ही स्वर्ग आने की अधिकारिणी है। दुर्योधन बोल पड़े। दूसरी कोई उन्हें अपनी प्रार्थना सुनाए। उससे पहले मैं सुनाऊंगा। जुए में मैंने उन्हें जीत लिया था, पर पिता के भर्त्सना से भयभीत होकर तुम लोगों के पास उन्हें लौटा देने को बाध्य हुआ और उसके लिए महायुद्ध हुआ। वह सब क्रोध-ओध अब मेरे में अवशेष नहीं रहा है। परम रमणीय उस सुंदरी को मैं अपने क्रोध पर बैठाऊंगा। युधिष्ठिर के मानो सर्वांग में घाव बन गये हो सुनकर इस भांति अंग जलने लगे। मानो इस घाव पर नमक छिड़का गया हो। भयंकर पलायन की इच्छा होने लगी, नहीं चाहिए, यह स्वर्ग। द्रोपदी को भी मना कर दूंगा। स्वर्ग में न आए। इधर दुर्योधन क्रमशः अनाप-शनाप बकते जा रहे थे। कर्ण की ओर दृष्टि पड़ते ही जीभ काट कर चुप हो गए और अपना कान आप ही मारते हुए बोले मैंने गलत कहा है। महामान्य मात्मा कर्ण का ही द्रोपदी पर सर्वप्रथम अधिकार है। द्रुपद राजा के दरबार में लक्ष्य भेद कर सफल कर्ण अर्जुन से पहले ही द्रोपदी को ले जाते। परंतु उन्हें इस अवसर से वंचित किया गया था। स्वयं वे सूर्य पुत्र हैं। राजमाता कुंती जननी हैं। ऐसे महाक्षत्रिय को सूतपूत कहकर स्वयंवर सभा में अपमानित किया गया था। चूंकि स्वर्ग में मिथ्या का कोई स्थान नहीं है अब इस बात का अवसान हो जाएगा। कर्ण चुपचाप हंस रहे थे। युधिष्ठिर स्तब्ध और निर्वाक थे, मानो होश हवास खो बैठे हों। हम पांच भाइयों जिस द्रोपदी के लिए न जाने क्या क्या कष्ट झेले हैं, उसे दुर्योधन अब अंक-शायिनी बनाना चाहता है। कर्ण ज्येष्ठ भ्राता होकर

छोटे भाई के वधू को कामना कर रहे हैं। नहीं-नहीं मुझे नहीं चाहिए स्वर्ग। अपने को यथासंभव संभालते हुए दो चार भद्रता सुलभ वाक्य कह कर युधिष्ठिर वहां से चले गए। उनके भीतर क्रोध का जन्म होने लगा था। वह कहना चाह रहे थे, द्रोपदी नहीं आएगी, कारण वह अभी भी जीवित है। या कहना यह भी चाह रहे थे कि रथ चालक वाहीलक की स्त्री का नाम भी कृष्णा है। जो अभी मरी नहीं। अतः गज वाली बात की तरह . . .ओ हो स्वर्ग में भी छलना। युधिष्ठिर अधिक दूर तक चल नहीं पाए। एक पेड़ की ओट में खड़े हो गए। लगा, उन्हें पीछे से कोई चुंबक जैसा खींच रहा है। अफसोस यदि द्रोपदी को पूर्व से सचेत कर पाते वे सोचने लगे शायद भीम या अर्जुन पहले आ पहुंचते तो उन लोगों से द्रोपदी को छीन कर ग्रहण करना आसान नहीं होगा और यदि वे बाद में आए तो अर्जुन में अत्यधिक भद्रता है। कहीं यह न कह बैठें कि स्त्री को प्रथम अधिकार है सो रथ में पहले द्रोपदी जाएगी। युधिष्ठिर समझ रहे थे कि स्वर्ग में आकर भी ईर्ष्या तथा युद्ध की इच्छा उन्हें सता रही है। सोच रहे थे, द्रोपदी को लेकर भीम, अर्जुन और कर्ण में लड़ाई हो जाए। ऐसा ही कुछ. . .छिः छिः छिः।

आत्मग्लानि से मन भाराक्रांत था। पेड़ के नीचे बैठे-बैठे युधिष्ठिर ने आंखें बंद किया फिर चित्त शुद्धि करने लगे। वे चित्त वृत्ति को किसी भांति काबू में नहीं कर पा रहे थे। द्रोपदी का मुख मंडल दृष्टि के सामने उद्भाषित हो रहा था। पर्वत पर चलते-चलते जब वह पत्थर पर लुढ़क रही थी तो युधिष्ठिर ने उन्हें उठाने की कोशिश तक नहीं किए। पत्थरों पर उस राजनंदिनी का कोमल देह न जाने कितनी व्यथाओं से कातर हुआ। द्रोपदी ने पूछा था। हम यह किस पाप का फल भोग रहे हैं। युधिष्ठिर ने कहा था, यह जानते हुए कि तुम पांचों की है तुमने अर्जुन को ही अधिक चाहा था। शायद यह कटाक्ष श्लेष से भरा हुआ था। उन्होंने अर्जुन से भी ईर्ष्या किया। अब यह कांटों जैसा चुभ रहा था। हमेशा ही। नहीं . . . नहीं।

अर्जुन मेरा सर्वाधिक प्रिय है, द्रोपदी से भी अधिक। द्रोपदी को मैंने प्यार दिखाना चाहा। पर द्रोपदी बल और वीरता की ओर अधिक झुकी हुई थी। मेरे शास्त्र ज्ञान और

धर्म बोध को द्रोपदी ने उतनी मर्यादा नहीं दी थी युधिष्ठिर को याद आ रहा था, व्यास देव ने पांच भाइयों में सदभावना कायम कराने की विधि बताई थी वह थी कि हर एक भाई एक-एक दिन द्रोपदी को ग्रहण करेंगे। अलग-अलग दिनों में उसे पूर्ण रूप से वे पा सकेंगे। युधिष्ठिर ने जान-बूझकर रविवार का दिन चुना था। वह छुट्टी का दिन होता है। राजकाज नहीं हो तो तभी की एक दिन की बात याद आई कि वे रतिक्रीड़ा में व्यस्त थे अर्जुन कमरे में आ गया था इस हेतु अर्जुन को एक वर्ष का वनवास भोगना पड़ा था। युधिष्ठिर एक ओर तो उसे बार बार वन जाने को मना कर रहे थे और दूसरी ओर मन ही मन खुश हो रहे थे कि वे द्रोपदी को एक वर्ष और अधिक भोग लेंगे।

अचानक ही बहुत परिचित एक आवाज से युधिष्ठिर चौंक उठे। मुड़कर देखा तो वह द्रोपदी की ही थी। हाथ हिला-हिलाकर युधिष्ठिर इशारे से से अपनी ओर बुलाने लगे परंतु द्रोपदी ने तो उन्हें देखा तक नहीं। कितनी अधिक सुंदर लग रही थी द्रोपदी तथा उसमें वयोवृद्धि का कोई निशान तक नहीं दीखता था त्वचा कितनी मुलायम थी कमर से नीचे तक फैले केश, गोलाकार वर्तुल स्तन, सिंहनी जैसी पतला कटितट, भारी नितंब। रोशनी करती हुई आंखें, होठ पके बिंब या अंगूर फल की तरह। दुर्योधन और कर्ण को उनकी ओर बढ़ते देखा है वरवर्णिनी तुम्हारे आगमन से सुरलोक धन्य हुआ है। तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हैं। तुम कितनी मोहमयी हो जैसा कि इस दो जीवन में मैंने और कहीं नहीं देखा।

द्रोपदी मधुमय हास्य से बोली— हे वीर! श्रेष्ठ सुधा वर्षण के समान आपकी वाणी है। आप जैसे तेज, दीप्त पुरुष के सम्मुख खड़े होते मात्र शरीर रोमांचित हो रहा है। दुर्योधन— हे याज्ञसेनी! मुझे नहीं देख पा रही हो, मैं भी तो व्याकुल होकर खड़ा हूँ तुम्हारे लिए ही। द्रोपदी, हे सखा! वैसा हंसमुख वदन देखे बिना कौन नारी रह सकती है। युधिष्ठिर सह नहीं पा रहे थे द्रोपदी का यों लाड़ दुलार से बोलना क्यों वह इन जन्म शत्रुओं से ऐसे. . .। घृणा भरे वह चली क्यों नहीं जाती उन्हें अवहेलना करके।

अचानक नभचारी की बातें स्मृति पर छाने लगीं। दुर्योधन कर्ण द्रोपदी ये तीनों मृत्यु

पश्चात यहां आए हैं। अतः उनके शरीर से क्रोध, हिंसा और द्वेष मिट गया है। चिर आनंद और संभोग सुख में वे निमज्जित रहेंगे। दुर्योधन तुम्हें देख हम अधीर हैं। याद है राजसभा में तुमने जंघा पर बैठाना चाहा था मुझे, पर असफल हुए थे हां तभी से वह इच्छा मुझे अधीर बना रही है। तुम आओ एक बार मेरे जंघा पर. . .। द्रोपदी पर अभी नहीं, मैं तो इंतजार करूंगा। पहले कर्ण की बारी है। पुरुष श्रेष्ठ भी तुम्हारे प्रार्थी हैं। प्रणय की लिप्सा उनकी भी पुरानी है यह कौन नहीं जानता। जितने दिनों तक संभव हो सुख संभोग करो। स्वर्ग में कोई नारी जूटी नहीं होती। अर्थात् यहां के अमृत और नारी समान हैं। 'हे कर्ण मुझे देखें। आपके दर्शन मात्र से हे सूर्यपुत्र, हमारे रोयें खड़े हो रहे हैं। मैंने दीर्घ काल से आपको कामना किया है आप मुझे धन्य करें।'

अनुवादक : जलज भादुड़ी

परिजात फलै

कलकत्ता-700001

. . . पृष्ठ 13 का शेष

नेताओं को जो बड़ी-बड़ी धनराशियां देते हैं, व्यापार की सुविधाएं पाने और कानून की पकड़ से बचे रहने के लिए देते हैं।

जिस तरह नीतिकथाओं में शासक की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करने की परंपरा हमारे यहां रही है, उनकी शैली का अनुकरण करते हुए परसाई ने व्यंग्यात्मक ढंग से भविष्य के शासक के गुणों के बजाय वर्तमान शासकों की दुष्प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है। कहानी जनता के नाम पर शासन करने वाले भारत के शासक वर्ग के चरित्र को उजागर करती है और पूंजीपतियों तथा अपराधियों से उसके गठजोड़ को स्पष्ट करती है, जिसके लिए आम मेहनतकश जनता केवल धन उगाहने का एक स्रोत है।

ऊपर से हल्की-फुल्की लोककथा-सी लगने वाली यह कहानी वास्तव में भारतीय जनतंत्र, जनता और नेताओं की वास्तविकता को उजागर करने वाली यथार्थवादी कहानी है। सत्ता पर अपना कब्जा बनाये रखने के लिए शासकवर्ग जन-सेवक का मुखौटा पहनकर जनता को धोखे में रखता है। यही उसकी वास्तविक योग्यता है!

107, साक्षरा अपार्टमेंट्स,

ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

कर्नल मुहम्मदखां लेफ्टिनी का इश्क़

हमें हिटलर से हमेशा शिकायत रहेगी कि उसने दूसरे महायुद्ध शुरू करने से पहले हम से मशवरा न किया। यह नहीं कि हम उसे इस शुभ कार्य से रोकने की कोशिश करते, हम फ़क़त ऐलाने-जंग में दो महीने का इल्तवा चाहते थे, ताकि अपनी तालीम पूरी कर लेते, लेकिन हम बमुश्किल गर्मियों की छुट्टियाँ गुजार कर कालेज पहुँचे ही थे कि जनाब ने हमसे बाला-बाला पोलैंड पर चढ़ाई कर दी जिसका बाद में हमारे ज़ाती प्रोग्राम पर ख़ास गहरा असर पड़ा।

जनवरी, 1940 में हरचंद कि पोलैंड और हिटलर के दूसरे हमसाथे जर्मन बमबारों और टैंकों के दरमियान ऐसी शांत ज़िंदगी बसर नहीं कर रहे थे फिर भी बाकी दुनिया खुदा के फ़ज़ल से ख़ैरियत से थी और हमारे अपने मुल्क हिंदुस्तान में तो अंग्रेज़ की बरकत से ऐसा अमन बरपा था कि शेर, बकरी, हिंदुस्तानियों सहित एक घाट पानी पी रहे थे। इसलिये भाईचारे के उस खुशगवार माहौल में किसी को गुमान तक न था कि ऐन वक्त मुल्क के एक कोने में अहम जंगी घटना की शुरुआत हो रही है, यानी लाहौर में एक नौजवान कालेज छोड़ कर जंग में कूद पड़ने पर तुल गया है... ये नौजवान मैं ही था।

लेकिन भर्ती होने से न तो हिटलर को दुःख पहुँचाना था, न अंग्रेज़ों का दिल बहलाना। हमारे संबंध दोनों से दोस्ताना थे। हमें फ़क़त लेफ्टिनेंट बनने का शौक था और कुदरत और हिटलर ने मिल कर इस शौक को पूरा करने का सामान पैदा कर दिया था, इसलिए हमने फौज में कमीशन के लिये दरख्वास्त दे दी।

उन दिनों अभी वो मुसीबत नाज़िल नहीं हुई जिसे आजकल सलेक्शन बोर्ड कहते हैं। इंटरव्यू तो ख़ैर उन दिनों भी होते थे, बल्कि एक छोड़ तीन-तीन, लेकिन निहायत शरीफ़ाना किस्म के। एक बुजुर्ग-सा जरनैल और कुछ नीम बुजुर्ग ब्रिगेडियर और

कर्नल बैठे होते थे। सामने कुर्सी पर उम्मीदवार को बिठा दिया जाता था और फिर उससे निहायत आसान से सवाल पूछे जाते थे:

आपका नाम क्या है? तालीम कहाँ तक है? फौज में कोई रिश्तेदार है? वगैरह... और ज़हिर है कि इन सवालों का जवाब देते हुए हरचंद कि कुछ खानदानी राज़ फ़ाश करना पड़ते थे, लेकिन दिमाग़ पर ऐसा नागवार बोझ न पड़ता था कि उठाये न उठे। बल्कि सच तो यह है कि एक हल्का-फुल्का सा इंटरव्यू होता था। उन दिनों न तो उम्मीदवारों की ज़हानत की परख होती थी, न उनके अवचेतन की तलाशी ली जाती थी। ये बुराइयाँ चंद साल बाद की पैदावार हैं।

लिहाज़ा हम दो इंटरव्यू जेहलम और पिंडी में हुए और हम कामयाब रहे। आखिरी इंटरव्यू के लिये हुक्म मिला कि फलां तारीख़ शिमला हाज़िर हो जाओ। यह सुन कर हमारी खुशी की इतिहा न थी। हमारा ख़याल था कि अगर आखिरी इंटरव्यू में कामयाबी नसीब हो जाये, तो इंसान फ़ोर लेफ्टीन बन जाता है और बाक़ाइदा लेफ्टिनी करने लगता है। इस बात का इल्म न था कि आखिरी इंटरव्यू और लेफ्टिनी के दरमियान ट्रेनिंग का एक ख़ासा ख़तरनाक अंतराल भी होता है।

इसलिये हम एक नीम लेफ्टिनी के आलम में शिमला रवाना हुए और जब इंटरव्यू हो चुका, तो हमें महसूस हुआ कि अब किसी लम्हे पूरे लेफ्टिन हुए, क्योंकि इंटरव्यू तसल्लीबख़्श किस्म का हुआ था। हम में कोई ऐसी बुनियादी ख़ामी भी न थी। तालीम की शर्त मैट्रिक थी और हमने तो मैट्रिक के अलावा काफ़ी फ़ालतू तालीम भी हासिल कर रखी थी। हमारे ख़ानदान की फौजी ख़िदमतों की फ़ेहरिस्त बेशक ऐसी लंबी न थी, लेकिन हमने वंशावली को थोड़ा-सा खींचतान कर इस क़दर सूबेदार चर्चों और कप्तान चचाज़ादों को समेट लिया

था कि जरनैल साहिब को मुत्मईन करने के बाद कुछ बच भी गये थे। बहरहाल यह राज़ हमारे और खुदा के दरमियान ही था। पुलिस की तरफ़ से सफ़ाई की भी शर्त थी, तो हम ने यूँ भी कभी शांति-भंग नहीं की थी, लेकिन चूँकि पुलिस वाले भी आख़िर इंसान होते हैं, लिहाज़ा हमने एहतियातन उनकी इंसानियत का तज़ाज़ा भी पूरा कर दिया था।

शिमले से घर पहुँचे तो लेफ्टिनी के हुक्म का बेचैनी से इंतज़ार करने लगे। उधर कुछ उतावले बुजुर्गों ने हमारी लेफ्टिनी की खुशी में पेशगी दावतें देना शुरू कर दीं। जिन्हें हम वाजिबी बरख़ुरदारी, मगर अफ़सरी गरिमा के साथ क़बूल करते रहे। आख़िर एक दिन डाकिया खुला तार लेकर आया और दूर ही से बोला, 'लेफ्टिन साहब, लेफ्टिनी मुबारक हो।'

लेकिन तार पढ़ा तो फ़क़त इतना लिखा था, 'तुम्हें ओटीएस महू में ट्रेनिंग के लिये चुन लिया गया है। 8 अगस्त, 1940 को हाज़िर हो जाओ।'

यह पढ़कर कुछ मायूसी तो हुई, लेकिन फिर सोचा कि आख़िर लेफ्टिनी है, यह थोड़ा ही है कि यूँ उठा कर बांट दी जाए। इसके कुछ अदब-आदाब सिखाने होंगे, कुछ खुफ़िया गुर बताने होंगे कि लेफ्टिनी चलायी कैसे जाती है। इसलिये खुशी-खुशी दोस्तों से रुख़्सत हुए। हर तरफ़ से 'लेफ्टिन साहब' कह कर पुकारा जा रहा था जो हमें बेहद ग़वारा महसूस होने लगा, बल्कि सच तो यह है कि हमारे उठने-बैठने, बोलने-चालने से भी लेफ्टिनी टपकने लगी।

रेल के सफ़र के लिए फ़र्स्ट क्लास का टिकट मिला। यह भी हमारी यात्रा की शान थी। टिकट देखने वाले डिब्बे में दाख़िल हुए, तो 'सर' कह कर संबोधित करते। खुदा जाने, उन्हें कैसे महसूस हो जाता कि यह आम आदमी नहीं, लेफ्टिन है। बहरहाल, हम उनसे वही सुलूक करते जो एक अफ़सर को दरमियाने दर्जे के सरकारी

मुलाजिम से करना चाहिये। हमसफ़रों में अंग्रेज़ भी थे। ये लोग अगर हम से बोलना चाहते तो पहले कहते, 'मुआफ़ कीजियेगा'। और फिर अपना मुद्दआ बयान करते। हमें न सिर्फ़ अपनी लेफ़्टिनी का यक़ीन हो गया, बल्कि उसकी बुलंदी का एहसास होने लगा। चुनांचे दिल्ली से आगे जब गाड़ी में हम जैसे लेफ़्टिनों की तादाद काफ़ी हो गयी, तो बातचीत का विषय ज्यादातर यही रहा कि लेफ़्टिनी और कप्तानी में आख़िर क्या फ़र्क़ है? और सहमति इस बात पर हुई कि मामूली फ़र्क़ है। इसलिये रतलाम और महु के दरमियान हमारा मिज़ाज तख़्ते-ताउस से कुछ उधर ही था, बल्कि कई एक ते दबी जुबान से यह भी पूछ रहे थे कि आख़िर उन इतिहासकारों ने नेपोलियन को क्यों सर चढ़ा रखा है।

आख़िर महु का स्टेशन आ गया। उम्मीद थी कि हमारे स्वागत के लिए फ़ौज का दस्ता आयेगा, बैंड होगा, मोटरें होंगी जिनके ड्राइवर हमारे लिये दरवाज़ा खोलेंगे और बाअदम, बामुलाहज़ा हमें अपने बंगलों तक पहुंचा देंगे, लेकिन देखा तो यहां का बंदोबस्त किसी क़दर मुख़्तालिफ़ नज़र आया। स्वागत के लिए आदमी तो थे, लेकिन उनमें आदमियत कम थी। गाड़ी रुकी तो हमारे डिब्बे में एक गोरा दाख़िल हुआ, जिसके बाजू पर तीन सफ़ेद धज्जियां लगी थीं। आते ही बोला, 'गर इस डिब्बे में कोई केडिट है, तो अभी मत बाहर निकलो।'

हम बैठ तो गये, लेकिन इस गोरे की ज़बान बेहद खुरदरी लगी। इसके अलावा 'केडिट' का शब्द सुनकर कुछ चिंता-हुई कि हम से कोई-कोई धोखा तो नहीं हो रहा। लेफ़्टिन तो लेफ़्टिन हुआ, यह केडिट क्या बला है? इसलिये हमें ज़रा पक्का-सा संदेह होने लगा कि इन अंग्रेज़ों ने लेफ़्टिनी से मिलाप की कुछ खुफ़िया शर्तें भी ठहरा रखी हैं जिनसे हमें पहले आगाह नहीं किया गया।

जब स्टेशन दूसरे मुसाफ़िरों से ख़ाली हो गया तो गोरा फिर आया और हम सब को गाड़ी से बाहर निकलने का गुस्ताख़ाना-सा हुक्म दिया। बाहर निकले तो दूसरे डिब्बों से भी तीस-चालीस हमारे जैसे व्यक्ति निकलते दिखायी दिये। स्टेशन पर तीन चार और गोरे भी मौजूद थे। उनमें से एक जो बज़ाहिर

सीनियर था, अचानक चिल्लाया, 'सब केडिट मेरे सामने कतार में खड़े हो जाए।'

हमने किसी क़दर हैरानी से एक दूसरे को देखा और कुछ बेदिली से क़दर भी बना ली। गोरा फिर चीखा, 'दाएं से एक दो तीन बोलो।'

हमने हुक्म की तामील की, लेकिन महसूस हुआ कि यह सुलूक हमारी शान के शायान नहीं, आख़िर हम रंगरूट तो थे नहीं, जो क़दरें बनाते फिरते या गिनती शुरू कर देते। बहरहाल हमें तीन टोलियों में बांट दिया गया और फिर वही गोरा बोला, 'बाहर तीन ट्रक खड़े हैं, हर टोली एक एक ट्रक में सवार हो जाएं।'

हमें यक़ीन हो गया कि ज़रूर कोई ग़लतफ़हमी हुई है, कुछ भी हो, हमें ट्रकों में ले जाना शायद ग़लती, बल्कि बेअदबी है। मोटर कारें होना चाहिये थीं, मगर सोचा इन मामूली टॉमियों से उलझना हमें शोभा नहीं देता, इसलिये हमने कुलियों को आवाज़ दी कि हमारा सामान ट्रकों में ही रख दें। हमारा यह कहना था कि गोरा गरज कर बोला, 'क्या कहा? कुली? तुम फ़ौजी स्कूल में आये हो, अस्पताल में नहीं, अपना सामान खुद उठाओ, ट्रकों में लादो और ऊपर बैठ जाओ या खड़े रहो-समझे?'

समझ तो आ गयी और हमारी खुश फ़हमियों पर कुछ ओस भी पड़ी। लेकिन हम सब ने सामर्थ्यानुसार जलाल में आकर उस बेअदब टॉमी को गहरे और सामूहिक ग़ज़ब से देखा और खड़े-खड़े फ़ौजी ज़िंदगी का पहला फैसला कर डाला कि ज्यों ही लेफ़्टिन हो गये, इस गुस्ताख़ गोरे का कोर्ट मार्शल कर देंगे। इस दिलोराना फैसले पर हर तरफ़ से मरहबा की सदा उठी। उस वक़्त हम कोर्ट मॉर्शल को मॉर्शल-लॉ का क़रीबी रिश्तेदार समझते थे। और गोरे के भविष्य को दिल ही दिल में तबाह करके ट्रकों पर सवार हो गये।

मंज़िले-मक्सूद की झलक उम्मीदों के ख़िलाफ़ थी। हमारी रिहाइश के आकार-प्रकार बंगले की निस्वत जेल से ज़्यादा मिलते-जुलते थे। एक संगीन, बल्कि संगदिल सी बैरक थी, तंग व अंधेरी और लंबी जिसके अंदर दीवारों के साथ लोहे की चारपाइयां पड़ी थीं और चारपाइयों पर हमारी नामों की तख़्तियां लगी थीं। उन्हें देखकर

हमें झटका-सा लगा, गोरा जैसे हमारे ख़ौफ़ को भांप गया और कड़क कर बोला, 'ये तख़्तियां गले में लटकाने के लिये नहीं, महज़ तुम्हारी जगह के लिये हैं। अब अपनी-अपनी चारपाइयां ढूंढ़ लो और अपना सामान वहां उठा कर ले जाओ।'

साथ ही फ़रमान हुआ कि सामान उठाने और चलने-फिरने में चुस्ती दिखाओ और शोर मत करो। हमें यह आख़िरी हुक्म ख़ास तौर पर नागवार गुज़रा। हमने पुराने फ़ौजियों से सुन रखा था कि ये लेफ़्टिन लोग हर वक़्त गिटपिट करते रहते हैं, उन्हें ज़बानबंदी का हुक्म देना छोटे मुंह की बहुत बड़ी बदतमीज़ी है। एक हज़रत बोले, 'इन जाहिल गोरों को क्या मालूम कि एक लेफ़्टिन करने पर आये तो क्या कुछ कर सकता है, लेकिन कुछ सोचने के बाद हमें यही मुनासिब मालूम हुआ कि कोर्ट मार्शल तक गरिमामय चुप्पी धारना ही ठीक है।'

शाम हुई तो खाने के लिए मैस में गये। यह पहली जगह थी जहां से लेफ़्टिनी के आसार नुमायां थे। हम सब एक अफ़सरी ठाठ से ड्राइंग रूम में सोफ़ो पर बैठ गये। बाअदब और बावर्दी बैरों ने हमारी ख़्वाहिश के मुताबिक पेय पेश किये। इस खुशगवार माहौल में हमने स्टेशन और बैरक के उन नाखुशगवार घटनाओं को भुला दिया जो इन घटिया खानदानों के गोरों से हुई थीं और एक सुरूर के आलम में बाहम गिटपिट, गिटपिट करने लगे। इतने में दो खुशालिबास अंग्रेज़ अंदर आये। वो भी फ़ौजी वर्दियां पहने हुए थे। लेकिन उनके बाजूओं पर तीन धज्जियां न थीं, बल्कि कंधों पर पीतल के तीन, तीन चमकते सितारे थे। ये अफ़सर थे और वो सार्जेंट। इनके रख-रखाव, बातचीत और तौर-तरीकों में शाइस्तगी और वक़ार था। उन्हें देखा तो फ़ख़ महसूस हुआ कि उसूलन हम और ये अफ़सर एक ही लड़ी के मोती थे। आज नहीं तो कल हमारे कंधों पर भी वही जगमग करते सितारे उभरने वाले थे।

थोड़ी देर के बाद साथ के कमरे में खाने के लिए गये। अंग्रेज़ी खाने और देशी खाने के अंदाज़ में तक़रीबन वही फ़र्क़ है जो अंग्रेज़ी और उर्दू बोलने में है। जिस तरह एक नौसीखिये की ज़बान से अंग्रेज़ी शब्द या मुहावरे फिसल-फिसल जाते हैं, उसी

तरह हमारा अंग्रेजी 'मटर गोश्त' भी हमारी अनाड़ी छुरी-कांटों की पकड़ में न आता था।

इधर हाथों से खाना खिलाफ़े-शान था, लेकिन भूखा रहना भी मुम्किन न था, इसलिये जिस तरह बोलते-बोलते अंग्रेजी जवाब दे जाए, तो उर्दू पर हाथ या ज़बान साफ़ कर ली जाती है, उसी तरह जहाँ अंग्रेजी छुरी-कांटे से काम न चलता, हम आंख बचा कर उंगलियों से ही बोटी उचक लेते। गोया अंग्रेजी खाना उर्दू में खा लेते। कुछ हज़रत अलबत्ता ऐसे भी थे जो लेफ़्टिनी के सम्मान में औज़ारों के बग़ैर कोई चीज़ हलक़ से उतारते ही न थे। उनमें से कई एक को देखा कि छुरी-कांटा लिये प्लेट में मटरों का पीछा कर रहे हैं और मटर है कि इधर डूबे, उधर निकले, उधर डूबे इधर निकले। किस्सा मुख़्तसर, इसके पहले कि इन मासूम मटरों को कोई नुक़सान पहुंचता, बैरे प्लेटें उठा कर चल दिये और लेफ़्टिन साहिबान अपना-सा मुंह और छुरी-कांटा ले कर रह गये। कई बार ये भी मालूम न होता था कि बैरा जो कुछ सामने रख गया है, उसके साथ सुलूक क्या करना है? इसलिये कानी आंख से उन अंग्रेज़ों को देखते और पीछे उन इमामों के चमचे और कांटे उठा कर सज्दों में जाते।

खाना ख़त्म हुआ तो सेंटी रूम में आये और कॉफी का दौर चला, लेकिन थोड़ी देर बाद दोनों अंग्रेज़ कप्तान उठ खड़े हुए और यह खुशगवार मजलिस बरखास्त हो गयी। यूँ महसूस हुआ जैसे यार की एक झलक ही देख पाए। वहाँ से उठ कर बैरक में वापस आए, तो वही बदज़बान गोरा पहले से मौजूद था, सबको मुख़ातिब करके कहने लगा, 'कुल सुबह सात सौ बजे पी.टी. के मैदान में हाज़िर होना है। लिबास, बनियान, नीकर और रबड़ के जूते।' और इतना कहकर अकड़ता हुआ चल दिया। गोया यह गोरा बाज़ नहीं आ रहा था। वही हरकतें करता था जो लेफ़्टिनी के खिलाफ़ थीं।

किसी ने पूछा, 'अरे यार, यह सात सौ बजे किस बला का नाम है?'

एक साहब बोले, 'बेमानी बात है, गोरा अंग्रेजी गुलत बोलता है।'

एक फ़ौजी क्रेडिट ने आहिस्ता से

कह दिया, 'इसका मतलब है सुबह सात बजे।'

दिन भर के थके थे। सुबह तैयार होते-होते हम से कई एक पी.टी. के लिये सात बजे से एक दो मिनट बाद पहुंचे। कॉलेज में हम घंटों देर से पहुंचा करते थे और अगर प्रोफ़ेसर साहब के माथे पर एकाध हल्की-सी शिकन आ जाती, तो लम्हे भर में बग़ैर इस्तरी के हमवार भी हो जाती थी, लेकिन इस गोरे ने हमें ज़रा देर से आते देखा, तो कुछ इस अंदाज़ से चिल्लाया, गोया भूचाल आ गया। रहीं उसकी पेशानी की शिकन, तो उनको समेटने के लिये इस्तरी के बजाय रोड रॉलर दरकार था। मालूम हुआ कि गोरा महज़ फट ही नहीं गया, कुछ बोल भी रहा है। लेकिन उसकी अंग्रेजी उस अंग्रेजी से बहुत मुख़्तलिफ़ थी जो हमने किताबों में पढ़ी थी। गोरे के शब्द तो ख़ैर हमारी समझ में न आए, लेकिन उनकी तासीर हमारे दिलों में आनन-फ़ानन घुस गयी, क्योंकि उसके हर शब्द के साथ हमारी रही-सही लेफ़्टिनी उत्तरोत्तर घुलती जा रही थी।

हम ख़ामोशी से क़तारों में खड़े हो गये और पी.टी. शुरू हुई। पहले तो हमें मैदान के इर्द-गिर्द दौड़ाया गया यानी डबल कराया गया। (डबल के यह मानी हमें पहली दफ़ा मालूम हुए) इसके बाद ऐसे कोपों पर झुकने का हुक्म मिला जो कुदरत की मंशा के सरासर खिलाफ़ था। कोई आध-पौन घंटे की पी.टी. के बाद हम कुदरत को जीतने में तो किसी क़दर कामयाब हो गये, लेकिन हमारी अपनी पोज़ीशन में फ़र्क़ आ गया।

आख़िर पी.टी. ख़त्म हुई और हुक्म दिया कि नाश्ते के बाद फिर यहीं हाज़िर होना है और वक़्त नौ सौ तीन बजे का मिला। फ़ौजी क्रेडिट से मानी पूछे तो मालूम हुआ कि सुबह के साढ़े नौ बजे आशय है। साथ ही यह भी खुला कि यह गोरा कंपनी का सार्जेंट मेजर है जिसकी नाफ़रमानी एक क्रेडिट के लिये सख़्त नुक़सानदेह साबित हो सकती है।

नाश्ते के बाद जब मैदान में पहुंचे, तो सार्जेंट मेजर को ग़ैर हाज़िर पाया। घड़ी देखी तो मालूम हुआ कि वो ग़ैर हाज़िर नहीं, हम ही वक़्त से पहले पहुंच गये हैं। गोया फ़ौजी

ज़ाब्ले की पहली ख़ुराक ही इस क़दर असरदार निकली। सही वक़्त पर सार्जेंट मेजर प्रकट हुआ, तो अपनी फ़तह पर ज़रा मुस्कराया। लेकिन फ़ौरन चेहरा सख़्त बना लिया और हमें हुक्म दिया कि क्वार्टर मास्टर स्टोर में जाकर अपने-अपने साइज़ के बूट ले आओ।

बूट देखे तो महसूस हुआ कि हमें पहनने को वो चीज़ दी जा रही है, जो गैंडों के पांव के लिये ज़्यादा मुनासिब है और जब पहन कर दो चार क़दम चलने की कोशिश की, तो यूँ लगा जैसे नांगा पर्वत घसीट रहे हैं। फ़ौजी क्रेडिट ने आहिस्ता से कह दिया कि इन बूटों के साथ तो डबल भी करना पड़ेगा। यह सुना तो होश उड़ गये।

दो तीन दिन ख़ाकी कपड़ों की तैयारी में लग गये और ट्रेनिंग के सिलसिले में फ़क़त पी.टी. हुई, लेकिन जब ख़ाकी यूनिफ़ार्म तैयार हो गयी और हमने बूट पट्टी पहनना सीख लिया, तो बाक़ाइदा ड्रिल शुरू हुई।

ड्रिल की शुरुआत से पहले कप्तान साब ने हमारी टर्न आउट यानी यूनिफ़ार्म वग़ैरह का मुआयना किया और मुआयना किया गया, गोया हमें खुर्दबीन के नीचे रख दिया। वो ऐब भी ढूँढ़ निकाले जो दरमियानी क़ाबिलियत का फ़रिश्ता भी न देख पाता या देख भी लेता, तो नज़रअंदाज़ कर देता। हमने ड्रिल में शिरकत से पहले फ़ौजी क्रेडिट को बूट, पट्टी, नंबर, बटन, पेटी, फ़्लेश वग़ैरह दिखा ली थी, लेकिन कंपनी कमांडर साहब ने हमें देखते ही जैसे पहचान लिया और फ़रमाया, 'क्रेडिट नंबर 14 पर एक सफ़ेद ज़र्रा इनकरेक्टली ड्रेस्ड. . . सज़ा तीन एक्स्ट्रा ड्रिल।'

सार्जेंट मेजर ने जो कॉपी, पेंसिल लिये कंपनी कमांडर के निर्देश लिख रहा था, फ़ौरन हमारे ख़ाने में हमारी सज़ा का इंड्राज किया। कमोबेश ऐसा ही हथ्र हर क्रेडिट का हुआ। यहां तक कि बेचारे फ़ौजी क्रेडिट भी न बच सके जो बज़ाहिर पैदा ही यूनिफ़ार्म में हुए थे।

इसके बाद ड्रिल शुरू हुई और ख़ूब तेज़ी से हुक्म मिलने लगे।

'सीधे देखो, छाती बाहर, ठोड़ी ऊपर, बाजू हिलाओ, हॉल्ट, हिलो मत, मक्खी मत उड़ाओ, हंसो मत, वग़ैरह वग़ैरह।

इन सब में 'हिलो मत' के हुक्म पर

अमल करना बड़ा अजीब था। सीधे बुत बने खड़े हैं कि कान पर खुजली महसूस होती है। अब हाथ को जुंभिश देना जुर्म है, कंधा कान तक नहीं पहुँच सकता। कान का खुद का हिलना कुदरतन नहीं होता और वहाँ तक हाथ ले जाना सार्जेंट को मंजूर नहीं। ऐन उस वक्त एक मक्खी नाक पर अवतरित होती है। मक्खी को फना करने की बेपनाह ख्वाहिश दिल में पैदा होती है, लेकिन सार्जेंट से आंख बचाना यमदूत से आंख बचाना है। मक्खी पर कभी दस्तदराजी का खयाल आता है, तो सार्जेंट गोया हाथ हिलाने के खयाल ही को देख लेता है और अपनी गंवारू अंग्रेजी में चिल्ला उठता है— ‘डोंट किल नो फ्लाई. . .’ यानी मक्खी मत मारो, हाथ वहीं का वहीं सूख जाता है और मक्खी निहायत इत्मीनान से नाक के उतार-चढ़ाव का मुआयना करती है। ऐसे हंगामी हालात में बेहरकत खड़े रहना सही मानों में जुल्म है। उस वक्त जिंदगी की एकमात्र ख्वाहिश सिर्फ इतनी होती कि कब ड्रिल खत्म हो और जी भरकर नाक और कान खुजाएं और आखिरकार जब ड्रिल खत्म होती है और हम बिना डर कानों को छू सकते और मक्खियों को उड़ा सकते तो हमें महसूस होता कि कान खुजाना, मक्खी उड़ाना भी किस कदर दुर्लभ अय्याशी है, बल्कि इसी खुशी में वो छाले भी भूल जाते जो उन सख्त बूटों के अंतर ही बनते और फूटते थे।

लेकिन इस ड्रिल का एक पहलू जरूर था जिसने उसकी कठोरता को गवारा कर दिया था और वो थीं सार्जेंटों की निरंतर फुब्तियां, जो वो बेबस कैंडिडों की हरकतों पर कसते थे। सार्जेंटों ने नस्ल-दर-नस्ल इस विषय पर एक अनोखा लिटरेचर छोड़ा है, जो अपने अनूठेपन की वजह से प्रकाशित तो शायद कभी होगा, लेकिन उस उच्च साहित्य के नष्ट होने भी ऐसा खतरा नहीं, क्योंकि यह लिटरेचर बेशुमार सिपाहियों के मजबूत सीनों में सुरक्षित है। एक दिन ड्रिल करते हुए मेरे साथ के कैंडिट ने फुर्ती से दो, तीन गुलतियां कर दीं। तीसरी गुलती पर सार्जेंट का रंग पहले लाल, फिर पीला और अंत में नीला हुआ। एक पल के लिये जहां खड़ा था, वहीं रुक गया। फिर बाकी दुनिया से नज़रअंदाज़ करते हुए दोषी कैंडिट की तरफ बढ़ा। जब सार्जेंट और कैंडिट के बीच का

फासला सिर्फ था यानी दोनों की नाकें छू रही थीं, तो सार्जेंट शब्दों को पीस-पीस कर शिकार से यूँ मुखातिब हुआ: ‘मैं जब भी तुम्हें देखता हूँ, परिवार नियोजन सरासर जायज़ मालूम होने लगता है।’

हंसी के बेपनाह रेलों से हमारे मुंह खुलने ही वाले थे कि सार्जेंट के मुंह से ‘हंसो मत’ का एटमी धमाका बरामद हुआ। हमने दांत तो भींच लिये, लेकिन हमारी अंदरूनी कैफियत वो टायर ही समझ सकता था जिसके फटने से थोड़ी-सी और हवा की जरूरत हो।

बदकिस्मती से हम में से एक कैंडिट ज़ब्त न कर सका और बेइख़तियार खिलखिलाने लगा। यह सार्जेंट के लिये दूसरा चैलेंज था। अब के ज़रा ऊंची आवाज़ से मुजरिम से मुखातिब हुआ और उसी पुराने मजमून को नये जामे में पेश किया, ‘ज़रा आप ही बताएं कि आपने पैदाइश की ज़हमत क्यों गवारा की?’

कैंडिट ज़रा खिसियाता होकर नीचे देखने लगा, तो सार्जेंट गरजा, ‘ऊपर देखो, ज़मीन का मुआयना सफ़ाई वाला सुबह-सवेरे कर चुका है।’

कैंडिट सार्जेंट की डपट से लड़खड़ाया और बेचैनी में आस्मान की तरफ देखने लगा। इस पर सार्जेंट दूसरे कैंडिटों को मुखातिब करके कहने लगा, ‘ज़रा देखना, अब यह हज़रत सीधे खुदा से आर्डर लेना चाहते हैं।’

फिर कैंडिट की तरफ मुड़कर चिल्लाया, ‘मेरी नाक की सीध में देखो, खुदा बहुत बुलंद लेवल पर है।’

परेड के बाद उस कैंडिट का वज़न खासा हल्का हो चुका था।

ड्रिल के बाद तमाम पीरियड पढ़ाई या पिस्तौल और मशीनगन वगैरह की सिखलायी के थे। हालांकि लेक्चरारों के कमरों तक जाना भी डबल के अधीन था, फिर कमरों के अंदर हाथ-पैर की हरकतों पर पाबंदी न थी। मसलन मक्खी या मच्छर से सुरक्षा हमारे बस की बात थी। उनकी नाजायज़ परवाज़ पर हम हस्बे-जरूरत हाथ-पांव हिला सकते थे और फ़क़त इतनी-सी आज़ादी से जिंदगी में लुत्फ़ आ जाता था।

गरज़ यह कि लेफ़्टिनी का वो हसीन

व जमील महल जिसे हमने कल्पनाओं की कूची से बनाया और सजाया था, पहले रोज ही ध्वस्त हो गया और यह अभी शुरुआत थी। जो कुछ आगे हुआ, उसकी रूदाद लंबी भी है और तकलीफ़देह भी। मुख़्तसर यह कि पहली ड्रिल में पांव सूज गये थे। कुछ दिनों में राइफल मिली तो स्लोप करते करते हाथ भी लहलुहान हो गये। राइफल पर संगीन का इज़ाफ़ा हुआ और बनावटी दुश्मन को मारने का अभ्यास कराया जाने लगा, तो तक़रीबन खुदकुशी होकर रह गयी। मीलों तक बे आबो-दाना, मगर वज़नी थैले के साथ मार्च किया, यहां तक कि उन ज़ालिम बूटों के दिल भी मोम हो गये, लेकिन किसी सार्जेंट को रहम न आया। लगातार खुदाई से महू का सीना फट गया, लेकिन कंपनी कमांडर का दिल न पिघला। कमांडर साहब ने हमारे खोदे हुए मोर्चों का हर तरह से जायज़ा लिया, लेकिन हमारे ज़ख़्मे-जिगर की ख़बर न ली। नीमच रोड के चप्पे-चप्पे पर हमने थके हुए कदमों के निशान छोड़े। हेमा पहाड़ी के हर कंकड़-पत्थर पर हमने छाले फोड़े। हमारी हर सुबह लकड़ी के घोड़े पर से कूदने और रस्से पर चढ़ने में नष्ट हुई और हमारी हर शाम बेमिर्च और बेस्वाद अंग्रेजी डिनर की वजह से हाराम हो गयी। एक्स्ट्रा ड्रिल से बचने के लिये अस्पताल में दाख़िल होने की कई बार कोशिश की, लेकिन नाकाम रहे। देशी खाने के लिये बावर्ची की हज़ार मिन्नतें कीं, लेकिन बदबख़्त सार्जेंट के डर से राज़ी न हुआ। जी चाहता कि अगर सार्जेंट को नहीं, तो कम से कम बावर्ची ही को क़त्ल कर डालें, लेकिन इसकी हिम्मत भी होती। तो फुर्सत कहाँ थी? और आखिर एक रोज़ फुर्सत मिली, तो मालूम हुआ कि लेफ़्टिनी हो गए हैं।

लेकिन यह लेफ़्टिनी हम पर दूसरे जुमे ही नाज़िल नहीं हो गयी थी, बल्कि इसकी पैदाइश के लिये हमें बेचारी नर्गिस की तरह पूरे नौ महीने अपनी बेनूरी पर रोना पड़ा। इसलिये हम जाती तज़र्बे की बिना पर कह सकते हैं कि:

‘बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।’

लिप्यांतर-हसन जमाल
संपादक ‘शेष’
लोहारपुर, जोधपुर-342002

लेखक के बही खाते का एक 'अव्यक्तिगत' अंश

राजकमल चौधरी

सुनो मूर्खों

अक्सर लोगों को मुझसे शिकायत है कि मैं उनके लिए नहीं लिखता हूँ। सिर्फ मुझसे ही नहीं, मेरी पीढ़ी के अधिकांश लेखकों से लोगों की यही शिकायत है। बात, शायद यहां तक बढ़ गई है कि एक लेखक भी दूसरे लेखक से शिकायत करने लगा है, और असली मुसीबत यही है कि लेखक भी रचनाएं समझ नहीं पाते। 'खग ही जाने खग की भाषा' का मुहावरा गलत पड़ता जा रहा है।

दूसरे लेखक मेरी रचनाएं समझ नहीं पाते। मैं दूसरे लेखकों की रचनाएं समझ नहीं पाता। लेखक ही क्या, रचना (क्रिएशन) के विभिन्न के विभिन्न माध्यमों में लगे हुए लोग एक दूसरे को समझ नहीं पाते। कवि अ. की कविता 'रक्त-स्राव संगीतिक धारा, वासनास्खलित सर्प' ब. की कलाकृति 'कमोड में सोई हुई बिल्ली'. . . 'नृत्यांगना स. का सोलो नृत्य' 'गर्भस्थ शिशु का प्रणय-गीत'. . .

यह सोचने को विवश हूँ कि जनसाधारण की बात तो दूर, संस्कृति के विभिन्न अंगों उपांगों को समृद्ध करने की अथक चेष्टा में लगे हुए बुद्धिजीवी शिल्पजीवी सौन्दर्यजीवी लोग स्वयं एक दूसरे को अब समझ नहीं पाते हैं। हमारी रचनाएं हमारे संस्कार और हमारी संस्कृति की अभिव्यक्तियां हैं- मैं यही मानता हूँ और अब हम सब की अभिव्यक्तियां क्रमशः एक दूसरे से अधिक व्यक्तिगत बनती जा रही हैं। शायद पाउण्ड और इलियट भी एक दूसरे को समझ नहीं पाते हैं। पिकासो और सिल्वेदोर डाली भी एक दूसरे को नहीं समझ पाते हैं और अब तो एब्सट्रैक्ट कलाकृतियों का जमाना आ गया है जब कि समझने-समझाने की कोई जरूरत भी है, महसूस नहीं होता. . .

तय है कि मौलिक रचना के किसी भी कार्य में जुटा हुआ प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान काल में समाज से अपने चतुर्दिक के हर

समाज से टूटकर अलग हो गया है। दो बजे रात को फुटपाथ पर खड़े अंधे भिखारी की तरह वह अकेला है, और सेकेण्ड शो से लौटती हुई टैक्सियां तेजी से गुजर जाती हैं। 'अंधों पर दया करो, मालिक' की चीख टैक्सियों में खिलखिलाते हुए लोग समझ नहीं पाते। बुद्धिजीवी, शिल्पी, साहित्यकार, संगीतज्ञ, दार्शनिक सभी अंधे भिखारी हैं। उनकी रचनाएं उनके हाथों से टूटी हुई छड़ी है, जिसके



सहारे घर तक वापस लौटा नहीं जा सकता।

हम वापस लौटना चाहते भी नहीं। हमने फुटपाथ के अंधेरे और एकांत में अपने को कैद कर लिया है। रात है, और हम अकेले हैं, और अपनी आत्मा को अपने समान नंगी करके बलात्कार करते रहते हैं।

चन्द व्यावसायिक संस्थाओं या कल्चलर प्रोग्राम वाली सरकारी अर्धसरकारी संस्थाओं के अलावा कोई जगह नहीं रह गई है, जहां कलाकार एकत्र हो सकें, सम्मिलित रूप से कलासाधना कर सकें,

कलाकृतियों का निर्माण कर सकें। और, व्यावसायिक या सरकारी संस्थाओं को, मैं या मेरी पीढ़ी का कोई भी कलाकार कला-संस्थाएं मानने को तैयार नहीं है। हम मानते हैं कि कलाकृतियां फैक्ट्रियों में मास स्केल पर तैयार नहीं की जा सकती हैं। हम मानते हैं, और अकेलेपन में डूबे रहते हैं। किसी को किसी का भी साथ या सहयोग पसंद नहीं है। कविता एकांत में। चित्र-रचना एकांत में। नृत्य का अभ्यास एकांत में। गीत का आलाप एकांत में। अब कलाकार मुगल दरबार में मुशायरे का गजल तो नहीं रह गया है। अब कलाकार एक समूह बनाकर, अजंता की कलाकृतियां रचने वाला चित्रकार-मूर्तिकार नहीं रह गया है।

एक तो आवश्यक है एकांत। फिर यह भी आवश्यक है कि आपकी रचना एकदम मौलिक हो। उपमा, प्रतीक, भाव, अर्थ, शिल्प, माध्यम इनमें से कुछ भी किसी पूर्ववर्ती रचना से मेल नहीं खा जाए। मौलिकता की यह पागल तलाश कलाकार को किसी सांसत में डाल देती है। जितना वक्त सृजन में नहीं लगता, उतना वक्त मौलिकता की सिद्धि में लगता है। पहले ऐसा नहीं था। पहले सृजन अपने आप में मौलिक होता था, और हिन्दू-युग या बौद्ध-युग की करीब करीब सभी मूर्तियां, नटराज, यक्षिणी, ध्यानावस्थित बुद्ध, मैथुन मूर्तियां, नर्तकी, चवरधारिणी चाहे खजुराहो की हों, चाहे कोणार्क की, महाबलीपुरम की एक ही शिल्प और एक ही शैली में बनाई गई हैं- और उन पर किसी दिन भी अ-मौलिकता का आरोप नहीं लगाया गया। मगर, आज अगर भारतीय चित्रकार द. की कलाकृति मैक्सिको या अर्जेंटाइना के किसी चित्रकार की किसी कलाकृति से 'फार्म' या 'स्टाइल' में मिल गई, तो देश के सारे अखबार बिचारे भारतीय चित्रकार पर टिड्डियों के दल की तरह धावा बोल देते हैं।

अपनी रचनाओं पर किसी समवर्ती रचनाकार की किसी रचना की छाप नहीं पड़

जाए, इसीलिए कवियों ने कविसम्मेलन सुनना छोड़ दिया है, चित्रकारों ने 'आर्ट-एग्जिविशन' देखना बंद कर दिया है, संगीतज्ञों ने संगीत समारोह में भाग लेना रोक दिया है। रचनाकारों में सहयोग और सहचिंतन ऐसी दशा में किसी प्रकार भी संभव नहीं रह गया है।

सहयोग-सहचिंतन होता है, मगर इसी तरह जैसे **वईसवर्थ** और **कालरिज** के इर्दगिर्द समान विचारों वाले चंद लोग जमा हो गए थे। या जैसे **मलामे** के ड्राइंगरूम में समकालीन कवि शाम को जुटते थे या जैसे **पिंजा** नगर में **शैली** और **नायान** ने अपना एक अलग समाज कायम करना चाहा था। या जैसे '**लावर्ट**' 'क्रोसेट' के एकांत में रहता था और 'मैग्नी' के प्रसिद्ध रेस्तरां में दोस्तों के साथ कहवे और शराब के दौर में खो जाता था। सहयोग होता है, सहचिंतन भी होता है, मगर कला और सौंदर्य के विषय में नहीं, ऐसी चीजों के विषय में जिनसे उनकी रचनाओं का या उनके रचनाकार का कोई मतलब नहीं है, अपनी किताब 'ए गैदरिंग ऑव 'यूजिटिव्स' में **लियोनेल ट्रिलिंग** ने लिखा है, 'द जेनरलाइजेशन ऑव दिज अर्ज टू कम्युनिटी इज बोहेमिया- दैट मिथिकल पालिटी व्हिच इज रूल्ड बाई नदिंग बट सेण्टिमेण्ट आव जेनेरसिटी आव लव एण्ड फेलो फीलिंग।'

अधिकतर आधुनिक लेखकों ने शराब पीना छोड़ दिया है, इसलिए इन दिनों कॉफी-हाउस ही आज की बोहेमियन सोसाइटी के मिलन-स्थल बन गए हैं। कॉफी-हाउसों में लेखक और कवि और पत्रकार और समीक्षक और चित्रकार जमा होते हैं और अपनी कला या अपने व्यवसाय के विषय में नहीं, बल्कि कॉफी के स्वाद, फिल्में, प्रेमिकाएं, राजनीति, ट्रामों-बसों की भीड़, अमरीकन ढंग के मजाक, रेसकोर्स के घोड़े, साड़ियों के दामों के विषय में बातें करते हैं। काफी हाउस में या किसी साहित्यिक के घर की सायंकालीन बैठकों में साहित्य की बातें नहीं हुआ करती हैं।

साहित्य की बातें उन गोष्ठियों में होती हैं, जो शिक्षण संस्थाएं अपने सालाना

जल्से के अवसर पर आयोजित करती हैं, या कभी कभी रेडियो पर कोई साहित्यिक वाद-विवाद कर लिया जाता है, या कभी किसी मिनिस्टर या बड़े व्यवसायी के सभापतित्व में कोई संस्था कोई परिसंवाद या लेक्चर कर-करा लेती है। मगर ऐसी गोष्ठियों, वाद-विवादों, परिसम्वादों लेक्चरों से साहित्य का या साहित्यजीवियों का क्या लाभ होता है, यह सभी जानते हैं। चेहरे पर नकाब और जुबान पर झूठ की पर्तें चढ़ाकर हम ऐसी जगहों में जाते हैं, और वापस लौट आते हैं। जो जी में आता है या अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिए जो आवश्यक लगता है, बोल कर वापस लौट आते हैं। किसी की कुछ सुनते नहीं। सुनने की आवश्यकता क्या है? हम लोग एक दूसरे के सहयोगी नहीं हैं। हम सभी व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं। हम एक दूसरे की क्यों सुने?

डब्ल्यू. बी. यीट्स ने अपनी आत्मकथा में एक जगह लिखा है- धार्मिक जीवनचर्या से बुद्धिजीवी और कलाकार की जीवनचर्या में यह फर्क देखा जा सकता है: पहले का कहना है- हम सभी समान हैं, एक हैं- और दूसरा अपना प्रत्येक वाक्य इसी तरह शुरू करता है, 'सुनो मूर्खों'- और आज के हमारे जीवन में और रचना में 'सुनो मूर्खों' का यही संबोधन व्याप्त है। हम समझते हैं और अपनी इस समझदारी पर पूरी ईमानदारी से विश्वास करते हैं कि हमारे अतिरिक्त बाकी सारे लोग मूर्ख हैं।

और, अगर मुझसे कोई पूछे कि आधुनिक साहित्य की, और आधुनिक संस्कृति की, और आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या क्या है- तो मैं सिर्फ इतना ही कहूंगा कि हम लोग एक-दूसरे को मूर्ख समझ रहे हैं। आर्थिक वैषम्य नहीं, व्यापारिक बुद्धि का विस्तार नहीं, तीसरे महायुद्ध का भय नहीं, कम्युनिज्म का खतरा नहीं, 'हालीउडियन'-सभ्यता का आक्रमण नहीं मानता 'वल्गरिटी' नहीं- आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या है कि हम लोग समकालीन रचनाकारों और कलाकारों का आदर करना भूल गए हैं, जनसामान्य को स्नेह करना भूल गए हैं। यह आदर और यह स्नेह मेरे मन में, हम सबके मन में कैसे जन्म ग्रहण करेगा?

प्रस्तुति- देवशंकर नवीन



दसवां लीलारानी स्मृति पुरस्कार

'कौन कुटिल खल कामी'

व्यंग्य संकलन पर
प्रेम जनमेजय
को

अब तक यह पुरस्कार रवींद्रनाथ त्यागी, ज्ञान चतुर्वेदी, जगत सिंह बिष्ट आदि को दिया जा चुका है।

व्यंग्य यात्र के दो आगामी महत्वपूर्ण अंक

'विभिन्न भारतीय भाषाओं में व्यंग्य की स्थिति'

तथा

नरेंद्र कोहली के 70वें जन्मदिन पर हिंदी व्यंग्य के परिप्रेक्ष्य में नरेंद्र कोहली पर केंद्रित अंक

उक्त दोनों अंकों के लिए रचनात्मक सहयोग सादर यथाशीघ्र आमंत्रित है।

प्रकाश मनु

श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य-स्कूल के बड़े शालीन मास्टर जी!

(1)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी साहित्य में किसी अद्भुत करिश्मे की तरह 'व्यंग्य का एक महान एवरेस्ट' रच डालने में व्यंग्य-स्कूल के जिन तीन उस्तादों या कहिए बड़े महारथियों ने बड़ा काम किया, उनके नाम लेने की जरूरत नहीं है। और उनका महान कारनामा क्या था, यह बताने की भी। क्योंकि 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' की तरह इसकी चर्चा इतनी लंबी है कि इन तीन धर्मधुरीणों के नाम लो, तो एक पूरी रामायण खुद-ब-खुद रची जाने लगती है।

पर इन तीन धुरंधरों के साथ व्यंग्य-स्कूल के बड़े शालीन और प्रसन्नचित मास्टर जी का चेहरा भी अगली-बगली बराबर झांकता है। हमेशा कुछ न कुछ रचते, गुनते हुए। ज्यादा दिखावे और नाम-धाम वाली 'नामाकूलता' से परे, अपने आप में लीन। अपने शांत लहजे और मीठी चिकोटियों से कुछ न कहकर भी बराबर ध्यान खींचते हुए। और उन्होंने अपने शांत लहजे और मीठी प्रसन्न मार से व्यंग्य को जो कुछ दिया और जैसा ऊंचा-ऊंचा-सा असाधारण गुंबद गढ़ा, वह खुद में एक इतिहास रचने सरीखा ही है।

यों श्रीलाल शुक्ल का नाम आते ही राग दरबारी आता है और उसके साथ ही 'महान-महान' और 'असाधारण' का उच्चार होने लगता है। . . 'विश्रामपुर का संत' आता है और उसके साथ 'बढ़िया-बढ़िया' की गूंज उठती है। फिर उनके 'मकान' और इस तरह के कुछ और भी बेहतरीन उपन्यास। पर उनकी व्यंग्य रचनाएं जरा देर से आंखों के प्रकाश-वलय में आती हैं। शायद इसलिए कि उनमें वैसा तेज धूम-धड़ाका नहीं है, जैसा व्यंग्य शब्द जुबान पर आते ही जेहन में बनने लगता है। पर नहीं, उनमें बहुत कुछ है

जो आपको अपने महाशय श्रीलाल शुक्ल के 'अंगने' में ही मिल सकता है। भले ही श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य-स्कूल के सबसे शालीन मास्टर जी हैं, पर व्यंग्य उनके पोर-पोर में बिदा है और उनके यहां व्यंग्य की इतनी गहरी समझ है कि उन्हें व्यंग्य बनाना नहीं पड़ता, जो कुछ वे लिखते हैं, उसमें व्यंग्य कुदरती उजाले की तरह खुद ब खुद उतरता है। उसे उतरना ही होता है क्योंकि यह व्यंग्य बाहरी कला या कलाबाजी नहीं, भीतरी चेतना के साथ नत्थी है।

यही वजह है कि रघुवीर सहाय ने श्रीलाल शुक्ल के इन महीन व्यंग्यों पर टिप्पणी करते हुए अपने अंदाज में लिखा है— 'आज की बांझ राजनीति के जमाने में, जहां हजारों आदमियों के मिलकर पत्थर फेंकने से या एक आदमी के अनशन कर आन दे देने से भी सत्ता के कान पर जूं नहीं रेंगती, वहां श्रीलाल शुक्ल जबर्दस्ती चिकोटी काटते चले जा रहे हैं, जैसे कि इससे कोई चेत जाएगा। यह उनकी जिद है, इसलिए कि हिंदी के जिस पांव को वह काट रहे हैं, वह बड़ी देर से हाथ-पर-हाथ रखे रहने से सो गया है।'

यहां रघुवीर सहाय बड़ा महीन इशारा करते नजर आते हैं, जिससे श्रीलालजी की व्यंग्यकार तबीयत और कहना चाहिए 'उस्तादी' समझ में आती है। व्यंग्य को चाहे हमारे यहां थोड़ा हेठा यानी निचला दर्जा दिया जाता हो और उसे महज मनोरंजन की चीज समझ लिया गया हो, पर श्रीलाल शुक्ल के यहां व्यंग्य बेहद शालीन ही नहीं, संजीदा भी है, जो उन्हें आहिस्ता-आहिस्ता चीजों की तह तक जाने के लिए उकसाता है। इसीलिए तमाम लोकप्रियता के लटके-झटके वाले व्यंग्यकारों से वे एकदम अलग नजर आते हैं। सहाय जी ने अपनी बात को थोड़ा और स्पष्ट करते हुए टीप जड़ी है :

'श्रीलाल की मुश्किल सिर्फ ही नहीं।

व्यंग्य के मारे बेचारे हिंदी में गद्य लिखते हैं जिसने पिछले पचास वर्षों के साहित्य को कुछ ऐसा सवर्ण बनाकर छोड़ दिया है कि कुछ भी करो, व्यंग्य को वहां अनुसूचित जाति का दर्जा मिलता है। पहले तो ऐसा माना जाता था कि व्यंग्य लिखना किसी तरह के मनोरंजन का काम है, फिर जब व्यावसायिक प्रकाशन बढ़ा तो व्यंग्य वाकई मनोरंजन की वस्तु बन गया और आज ऐसे लेखकों की कमी नहीं जो प्यारी-प्यारी उंगलियों से महीन-महीन गुदगुदी कर पाठक को प्रफुल्ल करते हैं, विचलित नहीं करते।'

इस टिप्पणी में तथाकथित 'सवर्ण' या 'कुलीन' साहित्य में व्यंग्य की स्थिति को लेकर सहाय जी की बेधक और दो-टूक टिप्पणी गौर करने लायक है। उन्होंने साहित्य में आज व्यंग्य और व्यंग्यकार की जो हालत है, उस पर एकदम मार्के की टिप्पणी की है। और इसी में यह इशारा भी शामिल है कि जब कुल मिलाकर व्यंग्य की यह 'गपड़ चौथ' वाली हालत है, तो कोई अच्छा लिखे या कूड़ा फैलाए, इसमें फर्क ही कहां रह जाता है? शायद यही वजह है कि श्रीलाल शुक्ल जी के व्यंग्य पर जिस तरह ध्यान जाना चाहिए था, हमारे 'विद्वान' साहित्यिकों और आलोचकों का नहीं गया।

हां, दूर-दूर से 'राग दरबारी' को धन्य-धन्य कहकर छुट्टी पा ली गई। और इस शाब्दिक आखेट में श्रीलाल जी की व्यंग्य रचनाएं छूट गईं— या कहें कि 'राग दरबारी' की ओट में ही रह गईं।

(2)

पर श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्यकार की तमाम बारीकियां और बड़ी खासियतें हैं, जिनकी तरफ ध्यान जाना चाहिए। इसलिए भी कि व्यंग्य भी सर्जना हो सकता है, सचमुच सर्जना— वे इसके अप्रतिम उदाहरण हैं। उनकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि

उन्होंने व्यंग्यकारों के चुने हुए विषयों पर लिखने के मिथक को तोड़ा। और जीवन के तमाम क्षेत्रों के व्यक्तित्वों और घटनाओं को व्यंग्य की चौहद्दी में लाए। 'अंगद का पांव' के एक व्यंग्य में वे संगीत की दुनिया में जाते हैं, तो वहां भी बहुत कुछ खोज लेते हैं। जरा उनके शब्दों में उतरकर प्रसिद्ध गायिका सुरमादेवी के इस खयाल गायन का आनंद तो लीजिए।

'इसके पहले नगर की प्रसिद्ध गायिका सुरमादेवी ने लगभग घंटे भर तक खयाल का गायन किया था। खयाल के बोल थे, 'सकल बन ढूंढूं' सुरमादेवी के गाने की विशेषता यह थी कि जो उसे सुनकर नहीं समझ पाते थे, वे उनको देखकर समझ जाते थे। इसी नीति से उन्होंने ऐसी-ऐसी मुद्राएं दिखाई कि साफ जाहिर हो गया कि वे विरहिणी हैं और किसी को ढूंढने के लिए जंगल-जंगल मारी-मारी फिर रही हैं। वे बार-बार आसमान की ओर देखकर कहती थीं, 'सकल बन ढूंढूं' इससे जान पड़ता है कि संसार के सब जंगल आसमान में ही उगे हैं और उनका प्रेमी वहीं कहीं छिपा है।'

यह वह व्यंग्य है जिसमें एक छिपी हुई 'महीन मद्धिम मुसकराहट' तो है, लेकिन कोई अशालीन अट्टहास या मजा लेने वाला भाव नहीं। शास्त्रीय संगीत की अतिशय बीहड़ कलाबाजी एक आम श्रोता के दिल पर कैसा 'भीषण प्रभाव' छोड़ती है, श्रीलाल जी इसकी ओर एक बारीक इशारा भर करते हैं। और कुछ ऐसी गहरी-गहरी प्रसन्न व्यंजना के साथ कि सच्ची-मुच्ची समझ में आने लगता है कि व्यंग्य स्कूल के हमारे ये शालीन मास्टर जी व्यंग्य के सुर-ताल की गहराइयों में कहां तक पहुंचे हुए हैं।

और अगले पल लीजिए, एक शिकारी महोदय की महान शिकार कला का राज भी जान लीजिए, यानी एकदम नया अनुभव-क्षेत्र। इसके पीछे किस्सा यह है कि श्रीलाल जी शिकार की दुनिया में गए और उन्हें विलसन नाम का एक अजब-गजब शिकारी मिल गया। विलसन का उन्होंने बड़ा ही गजब कारनामा देखा। फिर वे उसकी तारीफ में जुटे, तो बहुत कुछ ऐसा कह गए जो बस वही कह सकते थे:

'मैंने उसे दिलासा देते हुए कहा, पार्टनर, इसी तरह किसी एक बड़े शिकारी

ने कभी एक तीतर मारा था और उसके साथ बटेर भी मर गई थी और तब से 'आधा तीतर आधा बटेर' की कहावत चालू हो गई है। पर यह पुराना रिकार्ड था। आज तुमने कमला का काम किया है। तुम्हारे एक ही फायर में आधा तीतर और चार-पांच आधे बटेर निकल आए हैं। यह नया रिकार्ड है। तुम्हारा निशाना गजब का है। तुम्हारे कारतूस को कमाल हासिल है। तुम्हारी बंदूक में सुर्खाब के पर लगे हैं।' (67)

यहां आप देखें कि व्यंग्य की भाषा और मिजाज एकदम बदल गया। मगर उसमें बात कहने की शालीनता वही बरकरार है। यानी व्यंग्य को अगर जीवन के भिन्न क्षेत्रों में जाकर सीढ़ियां उतरनी हैं तो उसे उन-उन जगहों की खांटी भाषा भी लानी होगी। श्रीलाल शुक्ल की भाषा यहां एक पक्के ठेठ शिकारी की भाषा लगती है जिसका व्यंग्य भी बड़ा अचूक और सधा हुआ है। एकदम अर्जुन के तीर की तरह। और 'आधा तीतर आधा बटेर' मुहावरे के साथ खेलने की कला का तो खैर जवाब ही नहीं।

ऐसे ही व्यंग्य का एक प्रिय और सनातन विषय है 'हमारा देश हमारी धरती'। यानी हमारे देश और समाज की मौजूदा हालत। हम कोई मामूली देश नहीं, महान देश के वासी हैं और इसलिए हमारी और हमारे देश की चाल-ढाल और लहजा सबसे अलग है। व्यंग्य-स्कूल के हमारे मास्टर जी बड़ी बारीक नजरों से इसे देखते और कुछ अजब भंगिमा में कहते हैं। इसमें कुछ-कुछ यह भाव है कि दुनिया चाहे मंगल ग्रह पर पहुंच जाए, पर हमारी तो वही बैलगाड़ी जिंदाबाद! खरामा-खरामा चलते कभी न कभी, कहीं न कहीं तो पहुंचेगी ही। बैलगाड़ी के बारे में सोचते हुए श्रीलाल को खरगोश और कछुए की चिरपरिचित कहानी याद आती है और वह अपनी साथ पाठकों का यह विश्वास भी पुख्ता करते जान पड़ते हैं कि हम भारतीय चाहे जैसे भी हों, पर कभी न कभी तो धुर पर पहुंच ही जाएंगे। यों उनकी इस सोच में, यकीन मानिए, धर्म और अध्यात्म का ऊंचा उदात्त भाव भी शामिल है।

'मेरे मन में, न जाने क्यों, बड़े ही उदात्त भाव पैदा हो रहे थे। इसी गाड़ी को बैल चलाते हैं। बैल धर्म का प्रतीक है। अतः

बैलगाड़ी वह गाड़ी है जो धर्म से चलती है। यह हमारी धर्मधुरीण प्राचीन संस्कृति का उपलक्षण है। इसके सहारे हमारी संस्कृति जहां थी, वहीं है और वहीं रहेगी। हम स्पुटनिक और रॉकेट वाले देशों का मुकाबला भले ही न कर सकें, पर हमने भी कछुए और खरगोश की कहानी पढ़ी है और जब हम हमारी बैलगाड़ी का कछुआ सत्यता की लीक पर चल रहा है, हमें हार का डर नहीं है. . .।'

ऐसे ही साहित्य के महारथियों की ओर भी वे बड़ी गहरी सी नजर डालते हैं। बेशक साहित्य-कला में विहार करने वाले सदानंदी लोग सारी दुनिया में अलग होते हैं, रात हो या दिन अपनी आनंदी तान में लीन। श्रीलाल जी बांकी मुस्कान से ऐसे सदानंदियों को देखते हैं और फिर बड़े सधे लहजे में उनका वर्णन करते हैं। बेशक कवि सदानंद जी की सदानंदी मुद्रा का बखान करते-करते लगता है कि श्रीलाल शुक्ल भी थोड़ी सदानंदी ताल में आ गए हैं। सदानंद जी को कविता में थोड़ा प्रयोग का चस्का लगा है तो बेचारे श्रद्धाभिभूत होकर अपने गुरुदेव को बड़े आग्रह के साथ मार्गनिर्देशन के लिए पत्र लिख भेजते हैं।

'मैं अब प्रयोग करने लगा हूं। आज मैंने एक कविता में अस्पताल का प्रयोग किया है। डिसइंफेक्टेंट, एंटीबाइोटिक्स, ऐनीस्थीसिया, क्लोरोमाइसिटिन आदि शब्द कल सीखे थे। इनका इस्तेमाल इस एक कविता में आज दिखाया है। अब एक कविता मुझे रात के झिलमिले तारों पर लिखनी है। उसमें इंजीनियरी का प्रयोग करना पड़ेगा। गुरुदेव, बचपन में सड़क कूटने के कारण, दरेसी, गैंग आदि शब्द तो मुझे आते हैं पर कोई लंबा शब्द याद नहीं है। सुनते हैं, ट्यूबवेल बनाने की मशीन में कई पुर्जों के अद्भुत नाम हैं। आप किसी मिस्त्री से पूछकर लिख भेजने की कृपा करें।'

सदानंद जी की इस अद्भुत 'विनय पत्रिका' को श्रीलाल शुक्ल ने मानो बगैर किसी छेड़छाड़ के पूरी सदानंदी तान में पेश किया है। जाहिर है, अपने साहित्यिक गुरु के आगे सदानंद जी के दिल के कपाट एकदम भड़ाक से खुल गए हैं और अब वे 'मैं ओर मेरा समय' वाली मनोज्ञ शैली में अपनी कविता की तुक-ताल और किस्म-किस्म

के प्रयोगों का पूरा इतिहास वर्णित करने के मूड में है। साहित्य के पुराने और अनुभवी 'रोगी' ही जानते हैं कि यह कितना आनंदपूर्ण मामला है और इसमें आदमी क्या-क्या और कैसे कह जाता है! तो हे पाठक-वृंद, सदानंद जी की यह सदानंदी तान, जिसमें किस्म-किस्म की कविता का स्वाद है, आप जरा श्रीलाल जी की एक व्यंग्य-रचना में देखें और सुनें:

'और सच तो यह है कि मेरी कविता बदली, पर मैं नहीं बदला। 'जग बदलेगा, किंतु न जीवना।' सदानंद था। सदानंद रहा। सवैया लिखकर भी 'संदेश' नहीं बना। 'सरस्वती' में छंद छपाकर भी सदानंदशरण नहीं कहलाया। सरस्वती प्रेस तक जाकर भी मैं कामरेड सिद्ध नहीं हुआ। अब नई कविता लिखूंगा। पर सदानंदायन नहीं बूनेगा। यश बढ़ता रहे, अर्थ बढ़ता रहे, राजसम्मान बढ़ता रहे, पर नाम वहीं का वहीं रहेगा। इसी में आनंद है। सदानंद हूं। सदानंद रहूंगा।'

इस विनय पत्रिका का अंत होते-होते लगता है, साहित्य-सरोवर की अनंत मणियां और मौक्तिक आपके चारों ओर छिटक गए हैं और अब आपकी नजर व्यंग्यकार को ढूंढती हैं तो पता चलता है कि हमारे व्यंग्य-स्कूल के ये शालीन मास्टर जी दूर खड़े बड़ी अदा से मंद-मंद मुसकरा रहे हैं।

श्रीलाल जी की एक खासियत यह भी है कि वे व्यंग्य के ही नहीं, साहित्य और शास्त्र के भी खासे विद्वान हैं। वे वर्तमान का जितना रमकर वर्णन करते हैं, उतरा ही पुराने वक्तों में भी रमे हुए हैं। और पुराने वक्तों की बात की जाए, तो भला कालिदास कैसे छूट जाएंगे, जो कि उचित ही 'कवि-कुल-गुरु' कहे जाते हैं। सो अचानक एक दिन श्रीलाल जी के व्यंग्यकार को कालिदास पर शोध करने की सूझी। वे डंडा-डोली लेकर चल पड़े और कालिदास को खोजते-खोजते शोध कार्य की अनंत गहराई में डूबते चले गए। अंत में एक से एक गजब की मणियां ढूंढ लाए। इनमें एक तो यही है कि 'कालिदास का रचनाकार तीन शताब्दियों तक फैला हुआ है।' यानी बड़ी ही लंबी उम्र उन्हें मिली थी। और फिर कविता लिखते-लिखते कालिदास नाटक लिखने क्यों बैठ गए, इस पर भी उनकी बड़ी मौलिक उद्भावना है:

'वे तीन शताब्दियों तक 'मेघदूत',

'कुमारसंभव' और 'रघुवंश' जैसे काव्यग्रंथ लिखते रहे। (ऋतुसंहार अप्रामाणिक है) बाद में उन्होंने नाटक लिखे क्योंकि जो कविता लिखना है वह सदैव कविता नहीं लिख सकता। कभी न कभी अकस्मात आलोचना पर आने के पहले वह नाटक पर अवश्य ही उतरता है। उदशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा आदि इसके उदाहरण हैं। तीन शताब्दियों में कालिदास के तीन नाटक, 'अभिज्ञान-शाकुंतल', 'विक्रमोर्वशीय' और 'मालविकाग्निमित्र' प्रकट हुए।'

अब कालिदास तीन शताब्दियों तक कैसे जी गए, इस पर आप लाख सिर धुनते रहिए। पर श्रीलाल जी की एक साथ शोध और व्यंग्य की 'महान स्पिरिट' की तो आपको जी भरकर सराहना करनी ही होगी। हां, चाहे तो दांतों तले उंगली दबाकर आप चकित भी हो सकते हैं।

पर श्रीलाल जी का व्यंग्यकार खाली 'पुराकालिक' ही नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि वर्तमान पर उसकी नजरें कहीं ज्यादा टिकती है। इस लिहाज से उनका सबसे प्रतिनिधि व्यंग्य या कि मौजू व्यंग्य-शैली खोजनी हो, तो सबसे पहले याद आता है 'अंगद का पांव'। इसलिए कि 'अंगद का पांव' खासा मजेदार व्यंग्य है, जो थोड़ी बतकही के साथ-साथ कथात्मक रूप में है। श्रीलाल शुक्ल अपने एक मित्र को स्टेशन पर छोड़ने आए हैं और वहां और भी तमाम परिचित लोग हैं जो उन्हीं सज्जन को विदा करने आए हैं। सबका औपचारिक बातों का खजाना खत्म हो गया, पर गाड़ी है कि चलने का नाम ही नहीं लेती। वह अंगद के पांव की तरह अपनी जगह ठहरी हुई है। बार-बार सीटी देती तो है पर चलती नहीं है। मानो व्यंग्य के रस की बौछारों में भीगने के लिए वह भी आकुल हो। तब फौरन श्रीलाल जी का व्यंग्यकार जागता है। और तब बतकही के लिए क्या-क्या फिजूल बातें और नाटक होते हैं। श्रीलाल शुक्ल ने इसका बहुत मजेदार वर्णन किया है :

'वैसे तो मुझे स्टेशन जाकर लोगों को विदा देने काक चलन नापसंद है, पर इस बार मुझे स्टेशन जाना पड़ा और मित्र को विदा देनी पड़ी। इसके कई कारण थे। पहला तो यही कि वे मित्र थे। और, मित्रों के सामने सिद्धांत का प्रश्न उठाना ही बेकार

होता है। दूसरे, वे आज निश्चय ही पहले दर्जे में सफर करने वाले थे, जिसके सामने खड़े होकर रूमाल हिलाना मुझे एक निहायत दिलचस्प हरकत जान पड़ती है।'

आगे का वर्णन और भी मजेदार है जिसमें 'ऊब' और 'मनोरंजन' की एकदम बराबर मात्रा है। और इससे समझ में आता है कि जहां बड़े से बड़े सूरमां झांकने की भी हिम्मत नहीं कर पाते, वहां से भी श्रीलाल जी व्यंग्य ढूंढ लाते हैं और वह भी ऐसा बेजोड़-एकदम मास्टरपीस!

(3)

श्रीलाल जी के व्यंग्य का थोड़ा अलग और मौजू अंदाज 'खबरों क जुगाली' में है। 'खबरों की जुगाली' संग्रह में छोटी-छोटी खबरों पर श्रीलाल जी की बड़ी सधी हुई व्यंग्यात्मक टीपें हैं। ये टीपें 'इंडिया टुडे' के एक कॉमन में नियमित रूप से छपी थीं और पाठकों ने इन्हें खूब पसंद किया था। इनमें कई तो बड़ी चुस्त और दमदार हैं जो आज भी पढ़ने पर एकदम ताजा लगती हैं। मसलन ऐसी ही एक व्यंग्यात्मक टीप में आम चुनाव को पास देख नेता कहां-कहां मत्था टेकने जाते हैं और कैसे-कैसे दिव्य और अलौकिक साधु बाबा उन दिनों नजर आ जाते हैं, इस पर टिप्पणी है :

'मैंने उनके बारे में सुन रखा था। वे एक झोंपड़ी में रहते हैं, धोती और बंडी पहने हैं। सिर पर मजदूरों जैसा अंगोछा बांधे रहते हैं। बोलते बहुत कम हैं। मुंह में लगातार बीड़ी लगी रहती है। जब वे बीड़ी का ठोंठा कोने में फेंक देते हैं तो कोई भक्त दूसरी बीड़ी जलाकर उनके मुंह में लगा देता है। प्रायः वे किसी भी भक्त से दो से ज्यादा बीड़ियां स्वीकार नहीं करते। जिससे तीन बीड़ियां ले लेते हैं, समझा जाता है कि उसे आशीर्वाद मिल गया, उसकी मनोकामना पूरी होगी। अकेला जी की तीन बीड़ियां पीकर बाबा ने जब उन्हें जाने का इशारा किया तो वह उनके पांव पर खड़े बॉस जैसे गिर पड़े। शुकुराने में उन्होंने बाबा के मुंह से चौथी बीड़ी लगा दी थी।'

कमाल की बात तो यह है कि चुनाव में समय ऐसे-ऐसे चमत्कारी बाबाजीयों का गालियां देना भी 'प्रसाद' सरीखा लगता है। और अपने चिकने-चुपड़े नेता जी साष्टांग

प्रणाम कर, बड़े भक्तिभाव से उसे रेशमी बटुए में भरकर ले आते हैं। फिर आकर बड़ी रहस्यपूर्ण हंसी के साथ कहते हैं कि अब हमें कोई नहीं हरा सकता क्योंकि जनाब, फलां या टिकां बाबा जी का आशीर्वाद मिल गया है। और अब यह ससुरी जनता कौन होती है हमें हराने वाली!

भले ही 'इट हैपस ओनली इन इंडिया' मगर 'इट हैपस' और यह 'हैपनिंग' भला श्रीलाल शुक्ल की चौकन्नी नजरों से कैसे बच जाती।

ऐसे ही श्रीलाल शुक्ल एक दफा एक हारे हुए नेता जी से मिलने पहुंचे तो उन्हें बड़ा दिलचस्प अनुभव हुआ। हारे हुए दिलवाले उन नेता जी को वे भावनात्मक सहारा देने की पुरजोर कोशिश करते हैं:

'मैंने उन्हें बढ़ावा देते हुए कहा कि आपकी हालत नेपोलियन जैसी है। आप सिर्फ हारे हैं, मरे नहीं हैं। इस हालत में आप और कुछ भले ही न दे सकें, इंटरव्यू तो दे ही सकते हैं। आप अपने दूसरे बुजुर्ग साथियों को देखें। कई सालों से देश को उन्होंने इंटरव्यू के सिवाय और दिया ही क्या है?'

फिर अचानक उन हारे हुए नेता का बड़ा विलक्षण इंटरव्यू शुरू हो जाता है, तो ऐसी-ऐसी काम की बातें निकलकर आई कि क्या कहने। इन्हीं से पता चला कि जनता के मूड, विरोधियों की चालें वगैरह-वगैरह तो एकदम बेकार की बातें हैं। असल में उन्हें तो बुरे ग्रहों ने हराया। उनके मुखारबिंद से निकली जो बातें श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्यकार ने अपनी लाल बही में नोट कीं, उन्हें आप भी सुने :

'नीतियां, सिद्धांत, जनता का मूड- ये सब कहने की बातें हैं। वास्तव में मुझे ग्रहों ने हराया है। मुझे पहले से ही पता था। सात-सात ज्योतिषियों ने मुझे चेतावनी दी थी कि गोचर में बारहवें हानि-स्थान पर शनैश्वर और राहु विराजमान हैं और उनके ऊपर मंगल की पूर्ण दृष्टि है।'

असल में अपना हिंदुस्तान बड़ा अजब-गजब देश है। हिंदुस्तान में आप गीता, रामायण, अध्यात्म हर चीज चुटकियों में समझ सकते हैं। यहां तक कि विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, अर्थशास्त्र, अनर्थशास्त्र, पोंगाशास्त्र, पंडाशास्त्र, अराजकताशास्त्र कुछ जानना और सीखना मुश्किल नहीं है। पर हिंदुस्तान में

राजनीति के चरित्र को समझ पाना मुश्किल ही नहीं है, असंभव है। इसलिए बड़े-बड़े महाबली योद्धा यहां औंधे मुंह गिरते हैं। ऐसे में श्रीलाल शुक्ल को जरूरी लगा कि अपने परम दुखी मित्र को गीता के कृष्ण के अंदाज में राजनीति का यह महादर्शन समझाया जाए। राजनीति में महान दर्शन को आसान बिंबों में समझाने के लिए उन्हें याद आई रेलगाड़ी और फिर बड़ी ही अनोखी सूझ मिली कि हिंदुस्तान में रेलगाड़ी और राजनीति एकदम मिलती-जुलती सी हैं और ये दोनों ही बड़ी दिव्य चीजें हैं। और बस वे चालू हो गए।

'जानते हो, यह मुसीबत तुम पर क्यों आई है? इसीलिए कि राजनीति में घुसकर भी तुम राजनीति और रेलगाड़ी के बारे में कुछ नहीं जानते। पुरानी कथाओं में अता है कि पूरब, पश्चिम और उत्तर जाना, पर दक्खिन की ओर कभी न जाना। मैंने तुमसे पहले ही कहा कि राजनीति में पार्टी, गुट और अपनी भलाई पहचानना, पर जनता को कभी पहचानने की कोशिश न करना। तुमने वह सलाह नहीं मानी और जो किया, उसका नतीजा अब सामने है। पूरी बात मैं फिर से समझाता हूं, हालांकि यह सबक जो एक बार नहीं समझता वह कभी नहीं समझ पाता।'

इसी तरह अफसर-लीला या 'अफसर नामा' व्यंग्यकारों का बड़ा प्रिय और सदाबहार विषय है। अकसर नेताओं के साथ-साथ वे अफसरों पर भी कुछ न कुछ कृपा कि रहते हैं। मगर श्रीलाल शुक्ल जो अफसरी तंत्र के रेशे-रेशे से वाकिफ हैं, वे इस अफसरलीला की क्रूरता पर जैसी शालीन लेकिन गहरी चोट करते हैं।, वैसी कर सकने का माददा बहुत कम व्यंग्यकारों में है। पता नहीं, दुनिया के और देशों में अफसरों का क्या हाल है या कि वे किस कदर महान हैं कि नहीं हैं, पर अपने देश में तो सचमुच वे महान हैं। और वे इस कदर महान हैं कि बाढ़ और सूखा सरकारी अफसरों के लिए वे किसी उत्सव से कम नहीं है, जब उन्हें दो नहीं, दस-बीस हाथों से माल खाने का मौका मिलता है। पर इन दोनों उत्सवों में ज्यादा बड़ा और आनंददायी उत्सव कौन सा है? इस पर अफसरों में थोड़ा मतभेद पाया जाता है। अलबत्ता दो अफसर इसी गंभीर मुद्दे पर बात करते हैं

तो बड़ी मजेदार और रसमय स्थितियां बनती हैं। श्रीलाल शुक्ल के शब्दों में वह पूरा दृश्य उतर आया है:

'रिटायर होने के पहले दोनों मंझोली हैसियत के हाकिम थे। आज भी वे अपनी हर बात 'हमारे जमाने में तो ऐसा होता था' से शुरू करते हैं। इस समय दोनों इस पर बहस कर रहे थे कि सूखा ज्यादा अच्छा है या बाढ़. . . ? पहला कह रहा था, 'पब्लिक के बारे में तो मैं जानता नहीं, पहले भी बहुत कम जानता था और अब बचा-खुचा रिश्ता भी टूट चुका है, पर सरकारी मुलजिमाओं के नजरिए से मैं बेहिचक कह सकता हूं कि बाढ़ को सूखे पर तरजीह दी जानी चाहिए। एक हफ्ते की जोरदार बाढ़ में राहत के लिए जितने करोड़ के वारे-न्यारे हो जाते हैं, उतने एक साल तक चलने वाले सूखे की राहत में कहां?'

(4)

लेकिन श्रीलाल जी के व्यंग्य की एक और अदा उनके ऐसे व्यंग्यों में प्रकट हुई है, जो एकदम अनायास और सदा है। यहां उनका व्यंग्य एकदम महीन और अप्रकट है। कहीं शब्दों और पंक्तियों के बीच के स्पेस में लुका-छिपा सा। धूप-छांह सा। यह व्यंग्य किसी थिराई हुई कविता की तरह शांत, शालीन, उजला और गहरा-गहरा होकर भी कैसे अपने निराले ढंग से चोट करता है, कर सकता है, इसे तमाम व्यंग्यकार ही नहीं, उन व्यंग्यकारों के उस्ताद भी श्रीलाल शुक्ल से सीख सकते हैं।

'सवरे नहा-धोकर मैंने लांड्री से धुलकर आई कमीज और पतलून पहनने को निकाली और ताज्जुब के साथ देखा, उनका कोई भी बटन टूटा नहीं है। तभी एक कोने में रखे हुए जूतों पर निगाह पड़ी, पुरानी आदत के मुताबिक आज के दिन नौकर ने उन पर काली पालिश लाल वाले ब्रुश से नहीं की थी। जूते पर सही ब्रुश का प्रयोग हुआ था। मन ही मन मैंने कहा, यह मेरे जीवन का एक सुखी दिन होगा।'

ऐसे ही श्रीलाल शुक्ल जी के एक व्यंग्य में चिर-विद्रोही जी के याद रह जाने वाले अक्स हैं। साहित्य में एक दौर था जब लेखक कलम बाद में पकड़ता था, पहले उसके होंठों की बुदबुदाहट से निकलता

था— क्रांति. . विद्रोह! और फिर कलम हाथ में आते ही वे विद्रोह की साकार प्रतिमा बन जाते थे। मगर चाहे कितने ही विद्रोही क्यों न हो जाएं, रहना तो उन्हें इसी दुनिया में पड़ता था और इसी धरती पर जहां सब ओर धूल-धक्कड़ है और जिंदगी का एक घिसा-पिटा टेढ़ा-सीधा तरीका है, तमाम बुराइयां और अंधविश्वास भी हैं। तो फिर हमारे युवा विद्रोही जी क्या करें? इस हाल में जो किस्म-किस्म के विद्रोही होते थे, वे किस्म किस्म के रास्ते अख्तियार करते थे। उनमें से जो सबसे सीधी लाइन वाला 'अचूक अवसरवादी' रास्ता होता था, उसे श्रीलाल जी ने बड़े गजब के अंदाज में अपने शब्दों में ढाल लिया। यह एक ऐसा चिरविद्रोही रास्ता है जिसमें बंदा विद्रोही भी रहता है और कैरियरिस्ट भी। और चीजें खुद-ब-खुद बैलेंस हो जाती हैं।

ऐसे होनहार नौजवान आगे बढ़ने के लिए कैसे-कैसे 'प्रबंधन' करते हैं, इसकी एक मनोहारी झलक भी श्रीलाल शुक्ल ने पेश की है। हुआ यह कि सब कुछ का जुगाड़ हो जाने के बाद विद्रोही जी के जीवन में बस कमी थी तो एक कार की। मगर उसका भी रास्ता निकल आया— शादी! उनके 'दिव्य चक्षु' खुले और इसके साथ ही उन्हें एक गजब का सिद्धांत सूझा कि जिंदगी में और चाहे जो भी दंद-फंद करो, पर शादी मां-बाप की मर्जी से करो तो 'फायदा' होता है:

'सिर्फ एक फिक्र थी। एक कार की कमी थी। वह हो जाती तो देहात की डॉक्टरी के साथ-साथ शहर की पुरानी जिंदगी भी चलाई जा सकती थी। कार पाने का एक तरीका था। जिस तरह बाजार में एक खास किस्म का साबुन खरीदने पर रूमाल मुफ्त मिल जाता है, वैसे ही मां की राय के अनुसार एक खास परिवार में शादी करने पर एक कार मुफ्त में मिल सकती थी।'

खास बात यह है कि यह किसी व्यक्ति पर नहीं, एक पूरे वर्ग पर टिप्पणी है— एकदम बेधक और तिलमिला देने वाली। देखा जाए तो हमारे युवा विद्रोहियों का यह एक साथ आजू-बाजू या दाएं-बाएं होना हिंदुस्तानी मध्य वर्ग के रहस्यात्मक चरित्र के भीतर से निकला है। श्रीलाल जी का

व्यंग्य कमर कसकर उसके भीतर जब-तब खुदाई करने उतरता है। इसी में हिंदुस्तानियों के लिये बसे अमरीका का गुणानुवाद भी शामिल है। जब सारी दुनिया अमरीका की ओर भाग रही है और किसी अमरीकी के दर्शन होना सौभाग्य से कम नहीं है, तो भला श्रीलाल शुक्ल हिंदुस्तान के दिल में विराजे अमरीका और अमरीकी की गदगद भव से आरती क्यों न उतारें? और इसमें सच ही उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। आप भी चाहें तो इसमें साथ ही साथ पूजा की थाली पकड़कर 'जय अमरीका देवा' उच्चार सकते हैं:

'अहा! अमरीकी के दर्शन हो गए! वही अमरीकी, जो हमारे बच्चों का मिल्क पाउडर और हमको अन्न पहुंचाता है। वह हमारे अफसरों को जीप, हमारे नगर सेठों को चमचमाती इम्पाला खिसकाता है, हमारे लड़कों को काकटेल पीने और कारोबार करने की तमीज सिखाता है और जिनके असर से हमारी मरियल लड़कियां चहककर बोलती हैं, 'हाई'!'

आपकी जानकारी के लिए बता दें कि इसी 'हाई' संस्कृति के एक प्रतिनिधि 'महान कुत्तापालक' मि. प्रसाद जी भी हैं। कुत्ते को पालने वाले मि. प्रसाद ने वैसे तो संयोगवश या फिर हॉबी की वजह से यह सिलसिला शुरू किया था। मगर न जाने कैसे धीरे-धीरे पूरे मोहल्ले में वे कुत्ता-विशेषज्ञ की हैसियत पा गए। फिर तो उनके बोलने का अंदाज ही नहीं, जीवन-दर्शन ही बदल गया और वे खुद भी 'कुत्तामय' हो गए। इस अजब लीला का आनंद, हे पाठक-वृंद, जरा श्रीलाल शुक्ल के शब्दों में ही लीजिए।

'पड़ोसी तो यही समझा कि कोका कोला पीकर भी उन्हें नशा हो गया है, पर उसी के दूसरे दिन वे रोटरी-क्लब में 'डॉग-केयर' पर भाषण देने के लिए बुलाए गए। कुत्ता-विशेषज्ञ की हैसियत से अब उन्हें काफी बड़े पैमाने पर स्वीकार कर लिया गया। उनको कुत्ता-प्रदर्शनियों के उद्घाटन के लिए और उनकी बीवी को पुरस्कार-वितरण के लिए बुलाया जाने लगा। वे जहां-जहां तबादले पर गए, वहां-वहां उनकी अध्यक्षता में कुत्ता-कल्याण-समितियां बनाई गईं। सफलता की इन मंजिलों को पार करके आखिर उन्हें यह आध्यात्मिक अनुभव हुआ

कि उनके भी जीवन का एक अर्थ है और उस अर्थ का नाम कुत्ता है।'

(5)

ऐसे ही ऐतिहासिक दुनिया पर श्रीलाल जी के 'मधुर-मधुर' किस्म के व्यंग्य के तीर बड़े महीन लेकिन अर्थपूर्ण हैं। एक पद्मभूषण साहित्यिक सम्मान समारोह में वाग्शूर संयोजक हो, तो कैसे-कैसे अजब-गजब दृश्य पैदा होते हैं और वक्तृता के कैसे-कैसे बांके तेवर देखने को मिलते हैं। इसकी भी एक दर्शनीय झांकी श्रीलाल जी ने पेश की है:

'... यह मौका तो केवल आनंद मनाने का है। अभी किसी ने कहा है कि पद्मभूषण मिल जाने से ही कोई महाकवि नहीं हो जाता। उसने ठीक कहा है। यहीं किसी और ने कहा है कि पद्मभूषण महाकवियों को ही मिलता है। उसने भी ठीक कहा है। हमें इससे क्या मतलब? हमारा मतलब ही आनंद मनाने से है। हमारे नगर के एक महाकवि को सम्मानित किया गया, हमारे लिए इतना काफी है। यह मौका तो...'

हालांकि हिंदी में आनंद मनाने के जैसे मौके होते हैं, वैसे ही शोक मनाने के भी होते हैं। आप यकीन मानिए, हिंदी साहित्य का कबाड़ा हो जाए, अगर यहां शोक-सभाएं न हों। शोक-सभाएं हिंदी साहित्य को कितना रंगारंग, ऊर्जावान और राजनीतिमय बनाए रखती हैं। और कवि सम्मेलनी मंचों की तरह शोकसभाओं पर भी कब्जे की कैसी लड़ाई लड़ी जाती है, इस पर श्रीलाल जी ने व्यंग्य के दो-तीन तीर छोड़े हैं जिनकी मार बड़ी घातक है। एक अल्हड़ और अलबेली मित्रता के रस में पगे इस तीखे व्यंग्य का आनंद आप भी लीजिए।

'मित्र, कल ही मैंने एक मासिक पत्रिका में तुम्हारे शहर की एक शोक-सभा का वर्णन पढ़ा है, सचित्र और काव्यपूर्ण। यह जानकार संतोष हुआ कि दिवंगत प्रधानमंत्री के शोक में की गई इस सभा की अध्यक्षता तुमने की, और बाबू रामाधार टापते रह गए। तुम्हारे व्याख्यान में दिवंगत नेता के लिए दी गई उपमाएं पुरानी होते हुए भी काफी चुस्त थीं, खासतौर से वह सूरज और कोहरे वाली उपमा। उस मौके पर पढ़ी गई कविताओं में

कुछ बहुत ही उम्दा थीं, एक तो बिलकुल वैसी थी, जैसे कि अभी हाल में आकाशवाणी के एक शोकपूर्ण कवि-सम्मेलन में एक कवि ने प्लेबैक सिंगर मुहम्मद रफी को पछाड़कर गाई थी।’

जब साहित्य की बात की जाए तो साहित्य के कर्णधारों की भी बात करनी चाहिए। ऐसे महान कर्णधार जो बेचारे लेखकों, कलाकारों पर कृपा-कटाक्ष किए रहते हैं। ये होते हैं हमारे वक्तों के राजे-महाराजे या बादशाह। सो श्रीलाल शुक्ल की एक बांकी नजर बड़े-बड़े महाराजाओं पर भी पड़ती है। ये महाराजा लोग जैसे बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाते थे, ऐसे ही और भी बड़े-बड़े काम करते थे जिसमें साहित्य-कला को थामे रहना भी बहुत बड़ा काम था। मगर ऐसे बादशाह क्या केवल पुराने जमाने में ही होते थे, आज नहीं है? आज के बादशाहों के तमाम शौक या शगलों में भी ऐतिहासिक महत्व की इमारतें बनवाने के साथ-साथ साहित्य की दुनिया और लेखकों पर कृपा-दृष्टि रखना शामिल है। ऐसे जहांपनाह बेचारे साहित्य-संगीत और कलाओं की चिंता में दोहरे हुए जा रहे हैं। हां, साहित्य और कलाओं में जहांपनाहों की इस कृपा-दृष्टि से कुल मिलाकर होता क्या है, यह अलग बात है:

‘जहांपनाह ने संगीत, साहित्य, कला आदि की बड़ी-बड़ी शानदार संस्थाएं खोली थीं और उनकी इमारतें आज भी उनके कला-प्रेम के पथराए हुए सबूत हैं। पर इमारतों के बारे में बाद में लिखा जाएगा, क्योंकि देश में स्वर्ण-युग लाने का असली श्रेय उन्हीं को है। सम्राट अशोक जिस तरह बौद्ध धर्म के संबंध में बड़ी-बड़ी सभाएं करता था, वैसे ही उस जमाने में जहांपनाह ने संगीत, साहित्य, नाटक आदि के सभी पक्षों पर विचार करने के लिए बड़ी-बड़ी संभाएं बुलाई, ताकि किसी अकेले कलाकार को उनके किसी पक्ष पर मनमाना प्रयोग करने की गुंजाइश न रह जाए।’

श्रीलाल शुक्ल ने जब बिना भेदभाव के सब पर कृपा की, तो भला लखनऊ को कैसे भूल जाते? यों भी वे लखनऊ के हैं तो भला लखनऊ की हकीकत उनके व्यंग्य का विषय बनने से कैसे बच सकती थी! लखनऊ की व्यंग्यात्मक तस्वीर पेश करते

समय उन्हें वहां के एकदम अलग काट के बुद्धिजीवी भी याद आते हैं जो बड़ी-बड़ी समस्याओं पर बड़े-बड़े विचार पेश करते हैं। यहां सब कुछ बड़ा-बड़ा और चमकीला ठें मगर कुछ है जो श्रीलाल शुक्ल की पकड़ में आ जाता है। और फिर चीजें देखते प्रहसनात्मक हो जाती हैं।

‘रेस्त्रां में किसी संदिग्ध चित्रकार ने अपने चित्रों की बेशर्म नुमाइश लगाई थी। अंदर मेज पर कुछ मनीषी लोग (इंटेलेक्चुअल) बिना किसी खास वजह से कुछ समस्याओं पर विचार कर रहे थे। उन्हें बिना सुने ही मैं जानता था कि न समस्याएं उनकी हैं, न विचार उनके हैं। जो भ्रम यह रेस्त्रां और तस्वीरें पैदा करती थीं, वही ये मनीषी भी पैदा करते थे। बाहर भी, जैसे कह चुका हूं, आधुनिकता का भ्रम देने वाली बहुत-सी चीजें थीं।’

मुझे कभी-कभी लगता है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्यकार हमारे त्रेतायुगीन लक्ष्मण जी की तरह खेल-खेल में भ्रम के ऐसे तमाम धनुषों खिलौनों की तरह तोड़ता है। और व्यंग्यकार चोट करते तो हैं पर उनका अपना कोई पक्ष नहीं। सब पर हंसना-हंसना ही उनके उद्देश्य होता है। जबकि श्रीलाल शुक्ल की पक्ष साफ समझ में आता है- उनके अपने लोग, यानी जनता।

यों हैं पाठक-वृंद, श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य के ऐसे उस्ताद जादूगर हैं जिनके यहां जादू की कई-कई अदाएं हैं और उनकी सबसे खास अदा यह है कि वे कभी मीठी चुकौटी काटकर छिप जाते हैं तो कभी मीठी-मीठी फुरफुरी छोड़कर दूर खड़े बारीक-बारीक हंस रहे होते हैं। व्यंग्य की मार करते हुए भी उनकी आंखों में मीठी-शरारत ही आएगी, कोई क्रूर-कठिन भाव नहीं। और अपनी इस शालीन और नायाब उस्तादाना कला से वे सहज ही पाठकों के दिलों पर राज करने लगते हैं। इसलिए कि वे पाठक को हक्का-बक्का करने में यकीन नहीं करते। किसी उम्दा कविता-कहानी की तरह व्यंग्य में भी पाठक को साथ लेकर वे उसके साथ अपना सृजन-सुख बांटते हैं। यह व्यंग्य की ऐसी सृजनात्मक भूमिका है जिसे बड़े अनुभवों और भाषा की बड़ी सिद्धता से ही पाया जा सकता है।

यहां व्यंग्य-स्कूल के हमारे शालीन



मनोरंजनपूर्ण ज्ञानवर्धन

‘बाजाप्ता ‘वैधानिक चेतावनी’
के साथ पीली पन्नी में बंद
किताबों की तरह आई
यशवंत व्यास की किताब
‘हिट उपदेश’

... एक विलक्षण तैयारी से लिखी
गई संपूर्ण व्यंग्य पुस्तक है।
अरविंद मोहन, इडिया टुडे
संपर्क
अंतरा, तिलक नगर जयपुर
मूल्य : 295 रुपये

मास्टर जी अपनी धीमी, लेकिन सही जगह पर की गई सही मार से बड़े-बड़े महारथियों को भी मात देते जान पड़ते हैं। लेकिन उनमें ‘ओह, मैंने क्या कर डाला!’ वाला दर्प और दंभ नहीं है। और न बेकार हल्ला-गुल्ला मचाना उन्हें रुचता है।

कोई अचरज नहीं कि यह लेख पढ़कर भी एक महीन और तटस्थ मुसकराहट के साथ वे अपने उसी विनम्र लहजे में कहें, हां, प्रकाश मनु, ठीक! तुमने कोशिश की तो है, पर अभी तो बहुत कुछ छूट गया है।

और बेशक छूट ही गया है। वह तो छूटना ही था।

यह जो काफी कुछ कह लेने के बाद बहुत कुछ छूट जाना है, असल में यही उस नायाब कला का ‘जादू’ है, जिसे हमारे व्यंग्य-स्कूल के शालीन मास्टर जी जानते ही नहीं, बल्कि उसमें पगे हुए हैं। यह दीगर बात है कि वे उसका दिखावा कभी नहीं करते। वे महज व्यंग्यकार नहीं, व्यंग्य के उस्ताद जो ठहरे।

454, सै

(हरियाणा)

अजय अनुरागी

आत्म विश्लेषण के आलोक में एक प्रायश्चित्त-कथा: 'अज्ञातवास'

श्रीलाल शुक्ल का 'अज्ञातवास' आत्म की खोज तथा आत्म विश्लेषण में रत ऐसे व्यक्ति की कथा है जो अपनी पत्नी की भावनाओं का सम्मान किए बिना उसके निरादर और अपमान करने की व्यथा को सीने में छिपाए हुए प्रायश्चित्त स्वरूप जी रहा है। शहरी परिवेश की परिधि का अतिक्रमण करते हुए श्रीलाल शुक्ल अपनी स्मृति में गंवई संस्कारों को बसाए हुए हैं। ग्राम्य जीवन उनकी आत्मा में रचा बसा है जो रचना के स्तर पर उभर आता है। ये संस्कार उनकी जिंदगी से जोंक की तरह चिपके हुए हैं। उन्हें चाहकर भी वे अपने से अलग नहीं कर पाते हैं।

उपन्यास का मुख्य पात्र रजनीकांत जमींदार का बेटा है तथा गांव में पैदा होकर उम्रभर वहां रहकर भी वहां के जीवन को मन से अपना नहीं सका है। वह आगे चलकर सुपरिटेन्डिंग इंजीनियर हो जाता है। प्रभा उसकी अकेली अविवाहित संतान है जो अमेरिका से शिक्षा पाकर आने वाले प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही है।

ग्राम्य जीवन श्रीलाल शुक्ल की चेतना में विस्तार से समाया हुआ है। वहां के हर क्रिया-कलाप, हर स्थिति और हर घटना पर उनकी नजर है। उनके लेखन में ग्राम्य जीवन की सरलताएं एवं जटिलताएं दोनों ही विद्यमान हैं। जमीन-जायदाद के झगड़े, धोखे, कानूनी दाव-पेंच, वकीलों के शिकंजे, मुहरिरी की चापलूसी, अर्जी-नवीसों की धोखेबाजी, हाकिमों की निगाह, अहलकारों के इरादे तथा पैतृक सम्पत्ति बचाने की विद्या यहां के लोगों को सीखनी पड़ती है। गांव की जिंदगी का सटीक चित्र खींचते हुए श्रीलाल जी लिखते हैं- 'यहां आज भी बर्बरता का शासन है। यहां कमजोर होकर चलने में सबकी ताकत का बोझा ढोना पड़ता है। ताकतवर होने के लिए सब कमजोरियों से समझौता करना पड़ता है। पार्टीबंद दूसरे

बदमाशों को नीचा दिखाने के लिए अपने घर पर बदमाश पालना। अपने पाले हुए बदमाशों से अपने पड़ोसियों को धमकाना पर उनसे अपने आप भी डरना। उनकी उद्दण्डता को सहना। उनके अपराधों को अपनाना। उनके लिए अदालतों में मुकदमे लड़ना। पुलिस का आतंक। दिन-रात उनकी आराधना करना। उसके लिए झूठे गवाह ढूँढना। वैसा न करने पर खुद झूठे गवाहों का शिकार बनना। चारों ओर डकैतों का खतरा अरक्षा और आतुरता की जिंदगी। प्रकृति के उत्पात गर्मियों के सर्वग्रासी अग्निकांड। वर्षा का प्रलयंकार धारा सम्पात। गिरते हुए घर। धार में बहते हुए छप्पर। पानी में डूबती-सड़ती हुई फसलें। जाड़ों की उपलावृष्टि। पाला, ओस, कुहरा। पछुवा हवा, टिड्डियां, चूहे। हड्डियों को गलाकर पैदा की हुई, लहलहाती खेती को निरूपाय होकर इनके सामने सर पटकते, घिसटते देखना। सबसे डरना। अपने से ऊंची जाति वालों से, ऊंचे वर्ग वालों से, महाजनों से, वैद्यों से, थाने से, तहसील से, भूतप्रेत से, महामारी से, भाग्य से, भगवान से-सबसे डरना। जिससे न डरना उसके लिए डर बनकर रहना। कदम-कदम पर झगड़े और मुकदमे की बातें। नहर के पानी के झगड़े। बागों से फल व लकड़ी लेने के झगड़े। खेतों की मेड़ के लिए होने वाली फौजदारियां। अपनी जमीन पर से जानवरों के निकास को लेकर होने वाले हत्याकांड।' (अज्ञातवास : पृष्ठ 20-21)

यह पूरा का पूरा परिदृश्य गांव की विशेषताओं के साथ-साथ विद्रूपताओं एवं जटिलताओं को उभारता है। श्रीलाल जी की पैनी नजर और व्यापक दृष्टि में खेत-खलिहान से लेकर तीनों तापों दैहिक, दैविक, भौतिक तथा मन, वचन, कर्म की विकृतियों की विवरणात्मक प्रस्तुति हुई है। गांवों एवं ग्रामीणों की बदलती तस्वीर श्रीलाल शुक्ल के इस उपन्यास में देखी जा सकती है।

वे ग्रामीण जीवन में आये पतनोन्मुखी परिवर्तन को प्रकट करते हुए लिखते हैं- 'जहां बातचीत के केवल दो रूप हों- खुशामद या गाली गलौज। शिष्ट भाषा जहां बुजदिली की निशानी है। उदारता जहां अपने स्वत्व को अपने पास रोक रखने की असमर्थता का नाम है। दूसरे को सहायता जहां इसलिए दी जाती है कि वह बाद में सामने आंख न उठा सके। छोटे से छोटे मसले को जहां बड़े मुकदमे का रूप दिया जाता है कि लोग बड़े मसले पैदा करने की हिम्मत न दिखा सकें। जहां गरीबी एक ऐसा चुम्बक है जो सभी उपद्रवों से लौह अघातों को दूर से अपनी ओर खींच लेती है। जहां अमीरों में ऐसी आग है जो पड़ोसियों को जला देती है।' (वही पृष्ठ : 21)

यहां श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य प्रतिभा दिखायी पड़ती है। यह व्यंग्य की हलकी टीस है जो उनके वाक्य विन्यासों का हिस्सा बन गयी है।

उपन्यास की कथा ठहरी हुई है तथा विश्लेषणपरक अधिक है। रजनीकांत को एवं उनकी पुत्री को ग्राम गीत अच्छे लगते हैं। इसके पीछे भी कारण है। रजनीकांत की पत्नी गांव की न होने के बावजूद शादी के बाद गांव से एकाकार कर लेती है तथा उसके मन व आत्मा में गांव बस जाता है। वह जब तक जीवित रही तब तक रजनीकांत की उपेक्षा एवं प्रताड़ना का शिकार रही। अब रजनीकांत उसकी अनुपस्थिति में उसके अभाव को भरने के लिए ग्रामगीतों का आयोजन जब-तब अपने बंगले पर करा लेता है। इस कथा के क्रमानुसार भी उसने ग्रामगीतों का आयोजन रखा है तथा बंगले पर ग्राम से गायकों को बुलवा लिया है। दूसरी ओर अपने मित्रों 'गंगाधर एण्ड पार्टी' को भी इसी समय बुलवाने का निमंत्रण दे दिया है। इधर गायक मंडली तैयार होकर रजनीकांत के आने की प्रतीक्षा कर रही है और उधर

रजनीकांत अपने मित्रों के साथ शराब पी रहे हैं। ठहाकों पर ठहाके लग रहे हैं। उन्हें बार-बार सूचना दी जाती है कि आप आयें तो गीत गाना शुरू हो। मगर रजनीकांत और उनके मित्र पीते हुए गप्पे हांक रहे हैं। बेगार के रूप में बुलाये गये गायकों के सम्मान और भावना की उनको फिक्र नहीं है। वे अपनी मस्ती में वार्तालाप कर रहे हैं। प्रभा अपने कमरे में परेशान हो रही है। उसे इस बात पर खीझ हो रही है कि उसके पिता को गीत सुनने थे तो शराब वाली गंगाधर एण्ड पार्टी को क्यों बुलवाया? इसके अलावा एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न भी उसके मन में कोंध रहा है- 'ये लोग एक-दूसरे के साथ मिलते ही पीने क्यों लगते हैं? बिना पिये हुए उन्हें आपस में बैठना पड़े तो ये क्या करेंगे? ताश भी छीन लिये जाएं तो क्या ये सचमुच जमुहाने लगेंगे? इतने दोस्त हैं एक-दूसरे के, पर एक दूसरे को मन की स्वाभाविक अवस्था में सह क्यों नहीं पाते? क्या हो गया है इन्हें?' (वही : पृष्ठ 33)

जब पीना ही लक्ष्य हो तो संवेदनाएं शून्य हो जाती हैं। रजनीकांत भूल चुका है कि उसकी बेटी अकेली उसका इंतजार दूसरे कमरे में कर रही है तथा दिन भर अपने-अपने काम करके थके हारे गायक गाने के लिए उसके यहां इकट्ठा हो गये हैं। काफी देर हो जाती है। रजनीकांत शराब पीने से गीत सुनने की फुर्सत नहीं निकाल पाता। ग्राम गीत शुरू करा दिये गये हैं। ये लोक गायक तमलाल, घसीटे, बनवारी, बहरैची, राधे, बसंत आदि गरीब किसान या मजदूर हैं। जब गाते हैं तो अपनी पीड़ा, दुःख, परेशानियां भूलकर गाते हैं। अच्छा गायक 'अपने को भुलाकर' गाता है। प्रभा पिता के न आने से खुद ही लोकगीत सुन रही हैं- 'इस कविता को क्या कहा जाए जो जिंदगी की छटपटाहट से उतने को संवारती-सिंगारती है। उसकी जीर्णता से अपने यौवन का रस खींचती है। घर के भीतर की प्रताड़ना, बाहर के संघर्ष और अपमान-इन सबमें मिठास भर देती है।' (वही पृष्ठ 43)

इन गायकों में बसंत जो अच्छा गाता था आज नहीं आया। सभी लोग बसंत का इंतजार करते हैं। प्रभा भी उसकी प्रतीक्षा में हैं। प्रभा उसके न आने का कारण किसी से पूछती है तो वह बताता है- 'क्या बतावें मेम

साहब, बात यह है कि वह चमार नहीं रहा। उसका लड़का कुछ पढ़ लिख गया है न इसलिए वह चमार नहीं, अपने को लम्बरदार समझने लगा है।' (वही पृष्ठ : 49)

सम्पत्ति शिक्षा के कारण यह जो बदलाव समाज में आया है उससे उसने शोषण और बेगार का विरोध करना शुरू कर दिया है। बसंत का लड़का यहां आया हुआ है। उसने पिता के न आने का कारण निडरता के साथ बता दिया है- 'नहीं मेरा बाप तुम्हारे सामने गाए ऐसा नहीं होगा। हमारे दो बीघे के हरे-भरे खेत। सामने से नहर बहती रही, पर उनमें एक बूंद भी पानी नहीं पहुंचा। लहलहाती हुई ईख की फसल लू में जलकर राख हो गयी। इसलिए न कि ओवर सिमर साहब, कि मेरा बाप तुम्हारी पूजा नहीं कर सकता था? नीचे के खेतों के लिए अलग से मुलाबा लगा दिया था? क्यों? इन सबको मालूम है कि ऐसा क्यों हुआ?' (वही : पृष्ठ 51)

वह प्रभा से भी प्रश्न करता है निडरता के साथ- 'और मेम साहब। आप आपको ये लोकगीत बहुत अच्छे लगते हैं न? आपने जेठ की तपन में झुलसता हुआ ईख का खेत देखा है कभी? उसी के सहारे पूरे परिवार का एक साल कटता। और वही फसल जल गयी।' (पृष्ठ 51)

X X X

'आप ये गीत क्यों सुनना चाहती हैं? हमारा कुछ भी तो आपको अच्छा नहीं लगता। तब हमारे ये गीत ही आपको अच्छे क्यों लगते हैं? आप हमारे बारे में कुछ भी नहीं जानती हैं। यह घसीटे बनमानुसों की तरह झोंपड़ी में पड़ा रहता है। दया में हाफंता है। जानती हैं आप? ये मंगरू, लालू, लोटन इनके घर दो-दो दिन के बाद चूल्हा जलता है। आप यह भी नहीं जानती? सिर्फ आपको ये गीत अच्छे लगते हैं?' (वही : पृष्ठ 51)

X X X

'आप हमारा रोना नहीं सुन सकती। गाना ही क्यों सुनना चाहती हैं?' (पृष्ठ:51)

उपर्युक्त प्रश्न वे हैं जो शोषण और दमन का शिकार होने वाले किसान और मजदूर की ओर से पूछे गये हैं यह साहस बसंत के युवा पुत्र ने दिखाया है। शायद

बसंत नहीं दिखा सका था। जिस तरह प्रेमचंद ने 'गोदान' में होरी का पुत्र 'गोबर' अन्याय और शोषण के सामंती चक्र से मुक्त होकर शहर में मजदूरी के लिए चला जाता है तथा वह प्रतिकार के लिए खड़ा हो जाता है। उसी तरह का चरित्र बसंत के पुत्र का प्रकट हुआ है। हालांकि यह कथा उतनी विस्तृत और सघन नहीं है। फिर भी जिस ढंग से ये लघु किसान या किसान के रूप में मजदूरी करने वाले लोग सिंचाई विभाग के इंजीनियर के कहने पर एकत्र हुए हैं, उसके पीछे भी दबाव है। सिंचाई विभाग ही उनके खेतों को नहरों के द्वारा सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध कराता है। इसमें भी बड़े किसान या रिश्वत देने वाले किसानों को जल्दी व अधिक पानी प्राप्त हो जाता है। जो गरीब किसान हैं, रिश्वत देने में सक्षम नहीं हैं, उनके खेतों को नियमानुसार पानी नहीं मिल पाता है। जो इंजीनियर और ओवरसीयर उन्हें पानी से वंचित रखते हैं उन्हीं के मनोरंजन एवं चित्त को प्रसन्न करने वाले लोक गीत गाने के लिए इकट्ठा हो जाते हैं। यह उनकी मजबूरी भी है और विडम्बना भी है।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि परिश्रम करने वाले तथा पसीना बहाने वाले गरीब किसान बहुत भोले और निश्छल होते हैं। थोड़ी-सी सहानुभूति तथा थोड़ी-सी राहत की उम्मीद में ये अपने दुख, पीड़ा, शोषण आदि भूलकर जीवन का उत्सव मनाने लगते हैं। लोकगीतों एवं लोकनृत्यों में डूबकर अपनी पीड़ा एवं थकान मिटा देते हैं। उस समय ये लोक संगीत की लय में अपने अभावों को बिसरा देते हैं। थोड़ी ही देर के लिए लोक लय में डूबकर जीवन के कष्टों से लड़ने की ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में घसीटे, मंगरू, लालू, लोटन, बसंत आदि ऐसे ही गायक हैं जो दिन भर लू और तपन में मजदूरी करते हैं और रात को गीतों के आयोजनों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। दिनभर ईख के झुलसते हुए खेतों को देख-देखकर आंसू बहाते हैं और रात को लोक गीतों में रसधर बहा देते हैं। कैसा हृदय है इनका? पानी के अभाव में खेत की फसल का सूख जाना किसान के पूरे परिवार के अरमानों पर पानी फिर जाना होता है। इसका दुष्परिणाम पूरे साल तक भोगना

पड़ता है उस किसान को। अगले वर्ष फिर फसल होगी तब जाकर कुछ प्राप्त होगा।

श्रीलाल शुक्ल इस उपन्यास में गरीब और खेतीहर किसानों की पीड़ा का सूत्र रूप में चित्रण करते हैं। वे इस विडम्बना को भी उभारने में सफल रहे हैं कि हम अनपढ़, गंवार, गरीब किसानों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं किन्तु उन्हीं की कला या गाये जाने वाले लोकगीतों को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं।

प्रभा कहती है- 'अच्छे तो मुझे बस यही ग्राम गीत लगते हैं। पढ़े-लिखे लोगों की कविता मुझे झूठ मालूम होती है। जिसकी बुद्धि विकसित हो गयी है वह कविता नहीं लिख सकता।' (वही पृष्ठ : 18)

यदि हम उनकी कला से प्रेम करते हैं तो उनसे भी प्रेम करें? श्रीलाल शुक्ल को मंतव्य यही है। इसके अतिरिक्त हम उनके पढ़-लिख जाने, कमाकर पेट भर लेने को भी सहन नहीं कर पा रहे हैं? गीतों की शुरुआत हो जाने पर मेजबान को बुलाने हेतु ओवर सीयर ने जाकर शराब पीते हुए रजनीकांत को बसंत के वापस चले जाने की बात कही तो विनायक को प्रतिक्रिया थी। 'आजकल

के जमाने में गंवारों के भी दिमाग हो गये हैं।' ये टिप्पणी अभिजात्य वर्ग के दंभ की प्रतीक है। जो उनकी गरीबी का फायदा उठाना चाहते हैं तथा उसे कभी भी ऊंचाई तक उठने नहीं देना चाहते। रजनीकांत लोकगीत सुनने नहीं आ पाते हैं। गायक गीत गाना शुरू कर देते हैं। प्रभा को उनकी पीड़ा का अनुभव होने लगता है- 'इन गीतों की भी क्या विडम्बना है। जिसके जीवन में प्रेम का एक आंसू भी न गिरा होगा, सहानुभूति की एक झलक भी मिली होगी, अंधेरी रात सा गहन, स्नेहहीन जीवन उसे जीकर वही प्रेम का गीत गाता है। आवेग भरी इस आवाज में, चमकती आंखों के उल्लास में जो मूर्छा छिपी है उसका अनुभव कौन कर सकता है? जीवन निराशा और संघर्षों से जर्जर हो रहा है। दो बीघे खेतों के साथ अस्तित्व से श्वास बांधे। उसको छीनने का भय दिखाकर जिस निरानन्द की विभीषिका सामने रखी गयी होगी, उसी से इस आनन्द की सृष्टि हो रही है।' (वही, पृष्ठ 62)

यह उपन्यास गरीबों के प्रति उपेक्षा एवं अपमान के विरुद्ध उनके प्रति आदर एवं सम्मान का भाव जगाता है। उनकी कला के

प्रति श्रद्धा प्रकट करता है। बड़े लोगों के शौक शराब पार्टी और शिकार करना, गरीबों व असहायों का उपहास उड़ाना उनका तिरस्कार करना आदि हैं। वे विचारों की 'कै' भी एक दूसरे पर करते रहते हैं। वे जीवन के उल्लास को अनुभव करना तथा उसका आनंद उठाना नहीं जानते। भावनात्मक ब्लैक मेल करना जानते हैं। बेगार लेना जानते हैं। श्रीलाल शुक्ल सूत्रात्मक ढंग से इन सभी मुद्दों को उठाते चलते हैं।

एक प्रायश्चित्त कथा के रूप में 'अज्ञातवास' एक नये ढंग का उपन्यास सिद्ध होता है। यह सभ्य और असभ्य, श्रमिक और अफसर के बीच के संबंधों एवं भेदों को सूक्ष्मता के साथ उजागर करता है।

विरल कथा के रूप में सघन संवेदनाओं को प्रस्तुत करने में श्रीलाल शुक्ल का यह उपन्यास नयी जमीन को तलाशता प्रतीत होता है।

1, न्यू कॉलोनी, झोखाड़ा
जयपुर (राजस्थान)

कैलाश मंडलेकर

हिंदी व्यंग्य के उपन्यासों की श्रृंखला

हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों की लम्बी फेहरिस्त नहीं है। यह अलहदा बात है कि हिंदी का पाठक व्यंग्य उपन्यासों को चाव से पढ़ता है तथा प्रतीक्षा में रहता है। यह सच है कि उपन्यास लेखन एक श्रमसाध्य कार्य है। फिर व्यंग्य उपन्यास तो एक अलहदा किस्म की मनःस्थिति और गहरी रचनात्मक ऊर्जा की मांग करता है। एक ऐसी ऊर्जा जो पाठक को उसके विसंगत यथार्थ से रूबरू भी कराती जाए और हंसी हंसी में उस नासूर को चीरती भी चली जाए जो एक लंबी बीमारी के फलस्वरूप बनता चला गया है। हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों ने यह काम बखूबी किया है। कहा जाता है कि जब श्रीलालजी का रागदरबारी आया तो उपन्यासों के परंपरागत आलोचकों ने उसका पर्याप्त गर्मजोशी से

स्वागत नहीं किया, उन्हें लगा कि यह उपन्यासों को जानी-पहचानी कथावस्तु से कुछ भिन्न है तथा इसमें उस किस्म की शैली, विन्यास अथवा सामाजिक ढांचे का निर्वाह नहीं हुआ है जिसका स्वाद वर्षों से हिंदी का पाठक चखता आया है। लेकिन पाठक वृंद ने रागदरबारी को जिस अंतरंगता और रूचि से हाथों हाथ लिया उसकी सच्चाई सबके सामने है। वही वाली बात कि हाथ कंगन को आरसी क्या?? पुरस्कार हालांकि किसी कृति की कसौटी नहीं होता लेकिन यह एक किस्म की मान्यता तो है ही! रागदरबारी अंततः पाठकीय अदालत में सर्वमान्य साबित हुआ और साहित्य अकादमी से पुरस्कृत एवं सम्मानित भी। अब तक उसके अनेक संस्करण आ चुके हैं और यह

सिलसिला अभी रूका भी नहीं है। अर्थात् अब भी बदस्तूर जारी है। अपने अनुभव से कहूं तो आज भी 'रागदरबारी' मेरे सिरहाने रहता है और गाहे बगाहे में उसके किसी भी पृष्ठ को खोलकर पढ़ लिया करता हूं। 'रागदरबारी' का हर पृष्ठ एक मुकम्मिल कथावस्तु का सारतत्व लिए हुए है। श्रीलाल जी का मन सिर्फ एक 'रागदरबारी' लिखकर नहीं भरा। उनकी स्मृति में भारतीय समाज और राजनीति के कतिपय विरल और महत्वपूर्ण पक्ष शेष रह गए थे जो 'रागदरबारी' में अट नहीं पाए लेकिन जिन्हें सामने लाना जरूरी था लिहाजा 'पहला पड़ाव' उमराव नगर में कुछ दिन तथा 'विश्रामपुर का संत' आदि लिखकर उन्होंने हिंदी व्यंग्य उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण फेहरिस्त को अंजाम

दिया और निसंदेह ये सभी कृतियां 'रागदरबारी' की तरह ही महत्व रखती हैं तथा एक वृहद पाठक समुदाय में समादृत हैं।

परसाईजी का पहला उपन्यास 'तट की खोज' है जो वास्तव में एक लघु उपन्यास है 'रानी नागफनी की कहानी' दूसरा व्यंग्य उपन्यास है लेकिन उन्होंने स्वयं इसे एक मुकम्मिल उपन्यास नहीं माना। परसाईजी ने खुद स्वीकार किया है कि उनमें उपन्यास लेखन का धैर्य और अवकाश नहीं है। समसामयिक राजनीति एवं सामयिक घटनाक्रम उनके भीतर एक ऐसे रचनात्मक स्फुरण को जन्म देता है कि वे तत्काल प्रतिक्रिया के लिए उद्यत हो उठते हैं और औपन्यासिक विस्तरण के लिए विचारदीर्घता फिर शेष नहीं रह जाती। यों 'रानी नागफनी की कहानी' एक महत्वपूर्ण कृति है तथा समकालीन जीवन एवं सामाजिक विद्रूप पर पर्याप्त व्यंग्य प्रहार करती है। यह भी गौरतलब है कि हिंदी व्यंग्य को समृद्ध और संस्थापित करने में परसाई जी के अवदान को सारी दुनिया स्वीकारती है। उन्होंने व्यंग्य उपन्यास भले ही न लिखें हों लेकिन उनकी तमाम व्यंग्य कथाओं में कई व्यंग्य उपन्यासों की सामग्री विद्यमान है बल्कि व्यंग्य कथाओं का सूत्रपात ही परसाईजी से होता है। डॉ. प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित 'व्यंग्य यात्रा' के प्रवेशांक में महावीर अग्रवाल को दिए गए एक साक्षात्कार में परसाई जी ने एक बड़ा व्यंग्य उपन्यास लिखने की इच्छा जाहिर की है, दुर्भाग्य से ऐसा संभव नहीं हो सका।

मनोहर श्याम जोशी ने हिंदी में कई महत्वपूर्ण व्यंग्य उपन्यासों की रचना की जो शैली, बुनावट और विन्यास की दृष्टि से अपना एक अलहदा महत्व रखते हैं। कुंमाउनी की आंचलिक शुचिता और लोक समृद्धि से संपन्न उनका लोकप्रिय उपन्यास 'कसप' प्रेम और मनुहार की एक ऐसी कथा है जो युवाओं के मनोविज्ञान को गहराई से रेखांकित करती है। इस कृति में व्यंग्य की जो शिष्ट अंतर्धारा है वह एक वृहद पाठक वर्ग को आकर्षित करती है। इस श्रृंखला में 'कुरु कुरु स्वाह', 'हमजाद', 'टटा प्रोफेसर', 'षष्ठीवल्लभ पंत' तथा 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' जैसे उपन्यास उनके विट्संपन्न गद्य तथा व्यंग्य के नए तेवर का परिचय देते

हैं। मनोहर श्याम जोशी मूलतः कथाकार हैं तथा उन्होंने अपनी पत्रकारिता के अनुभवों के जरिए सर्वथा नई फिजा के व्यंग्य उपन्यासों की रचना की। उनका आखिरी उपन्यास 'कसप' भी एक उल्लेखनीय व्यंग्य उपन्यास है। जिसमें रहस्य रोमांच और यात्रा तथा ऐतिहासिकता जैसे तत्वों को व्यंग्यपरक मुद्रा में प्रस्तुत किया गया है।

नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' तथा 'पांच एक्सर्ड उपन्यास' अपने समय के सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों पर जमकर प्रहार करते हैं। नरेन्द्र कोहली यदि व्यंग्य उपन्यासों की दिशा में काम करते तो व्यंग्य साहित्य का पर्याप्त इजाफा होता किंतु उनकी रुचि पौराणिक एवं मिथकीय उपन्यासों की ओर सक्रिय हुई और इस क्षेत्र में उनकी कई कृतियां सामने आईं। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी के लगातार तीन व्यंग्य उपन्यास आए। इन उपन्यासों की रचना के पूर्व उनके व्यंग्य निबंध जिस तादाद में छप रहे थे उन्हें पढ़कर लग रहा था कि लेखक के पास कहने को इतना कुछ है कि वह लघु आकार के व्यंग्य निबंधों में समाहित नहीं हो पाएगा। और बिना व्यंग्य निबंध जिस तादाद में छप रहे थे उन्हें पढ़कर लग रहा था कि लेखक के पास कहने को इतना कुछ है कि वह लघु आकार के व्यंग्य निबंधों में समाहित नहीं हो पाएगा। और बिना व्यंग्य उपन्यास लिखे ज्ञान चतुर्वेदी मानेंगे नहीं। ज्ञान का 'नरकयात्रा' डॉक्टरों और अस्पतालों की आतंरिक विसंगतियों पर एकाग्र एक गहरा व्यंग्य उपन्यास है। इस उपन्यास की लोकप्रियता ने ज्ञान को एक बड़ा और महत्वपूर्ण लेखक बना दिया। मैंने अपने एक अन्य निबंध में नरक यात्रा के बाबत टिप्पणी करते हुए लिखा है— 'समूचे चिकित्सा तंत्र की बारीक शल्य चिकित्सा करके रख देने वाले इस अद्वितीय उपन्यास में ज्ञान का आत्म संघर्ष पराकाष्ठा पर है। खुद से लड़े बिना उसकी रचना असंभव है। ज्ञान चतुर्वेदी की यह औपन्यासिक यात्रा यदि मुहावरे का इस्तेमाल करते हुए कहूं तो तलवार की धार पर चलने जैसी है जिसकी परिणति सिवा लहुलुहान होने के और क्या हो सकती है। उस बीमार भोर में बलभद्र की लाठी खाता कुत्ता और किसी मनहूस वर्ष में टांग लटकाए कनछेदी की मौत तक का समूचा कथा

विस्तार व्यवस्था के विद्रूप पर तीखा प्रहार है। कुत्ते और गिद्ध यदि नरक यात्रा में यात्रा की शिखिसयत हासिल लिए हुए हैं तो यह अकारण नहीं है। वस्तुतः ज्ञान के अवचेतन में यह तथ्य गहराई से धंस चुका है कि अस्पताल का समूचा तंत्र गिद्धवत होता जा रहा है। लाठी प्रहार झेलता कुत्ता और छत पर संवादरत गिद्ध यदि कथा को गतिशीलता देते हैं तो यह ठीक ही है। काल की क्रूरता और परिवेश की गंध यदि असहनीय हो जाए तथा आदमी अपने अस्तित्व की ऊंचाईयां भूलकर बोनोपन की हड्डें छूने लगे तो मनुष्यों की कहानी को कुत्ते और गिद्ध ही आगे बढ़ाते हैं।'

ज्ञान चतुर्वेदी का दूसरा उपन्यास बारामासी 'नरक यात्रा' की तुलना में ज्यादा बड़ा केनवास लिए हुए है। बुंदेलखंड की आंचलिकता और सामाजिक अंतर्विरोधों पर यह उपन्यास एक विस्तृत और प्रतिनिधिक बयान की तरह है। ज्ञान चतुर्वेदी के एक अन्य उपन्यास 'मरीचिका' की चर्चा यद्यपि कम हुई है किंतु पौराणिकता का पुट लिए यह प्रयोगधर्मी उपन्यास ज्ञान की विट्संपन्नता और व्यंग्य बोध का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

शरद जोशी के एक व्यंग्य उपन्यास की चर्चा मैंने मित्रों से सुनी थी जो कदाचित्त उनके अवसान के बाद प्रकाशित हुआ है। दुर्भाग्यवश मैं उसे अभी तक जुटा नहीं पाया हूँ। यहाँ यह भी गौर तलब है कि शरद जोशी और परसाई अपने दौर में व्यंग्य स्तंभ लिखने की तात्कालिकता में मसरूफ रहे और 'व्यंग्य उपन्यास' लिखने के लिए पर्याप्त अवकाश नहीं निकाल सके। शरद जोशी और परसाई के स्तंभ लेखन अथवा अखबारी लेखन के बाबत प्रतिष्ठित व्यंग्यकार, संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय ने 'शरद जोशी एक यात्रा' में महत्वपूर्ण टिप्पणी की है, उन्होंने लिखा है 'शरद जोशी का लगभग व्यंग्य साहित्य विशेषकर सामाजिक लेखन सामाजिक घटनाओं की साहित्यिक प्रतिक्रिया दृष्टिगत होता है। मैं इसे हिंदी व्यंग्य साहित्य का दुर्भाग्य मानूंगा, हिंदी के दो प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और शरद जोशी की प्रतिभा का प्रयोग व्यंग्य के माध्यम से जीविकोपार्जन रहा है। व्यंग्य की अद्भुत शक्ति उनके पास है परंतु उस शक्ति का प्रयोग पत्र पत्रिकाओं में कॉलम लिखने में अधिक हुआ। राजनीतिक

घटनाओं पर लिखा गया व्यंग्य तत्कालीन घटनाओं के संदर्भ में तो ग्रहणीय हो सकता है परंतु कालांतर में संदर्भ विहीन होने के कारण पाठक के लिए सार्थक नहीं रह जाता है। (डॉ. प्रेम जनमेजय शरद जोशी : एक यात्रा में)। शंकर पुणतांबेकर के दो व्यंग्य उपन्यासों में अपने समय की अनेक विसंगतियां मौजूद हैं, इनमें एक मंत्री स्वर्गलोक में काफी चर्चित रहा। इसी तरह त्रिभुवन पांडे के दो व्यंग्य उपन्यास— ‘भगवान विष्णु की भारत यात्रा’ तथा ‘झूठ जैसा सच’ एवं श्रीराम ठाकुर दादा का ‘पच्चीस घंटे’ भी व्यंग्य के चर्चित उपन्यास हैं।

व्यंग्य उपन्यासों की शृंखला में एक नई भाषा और तेवर को लेकर यशवंत व्यास के दो उपन्यास अभी-अभी ही आए हैं। यशवंत व्यास की औपन्यासिकता गहरी राजनीतिक अंतर्दृष्टि लिए हुए होती है तिस पर वे पत्रकारिता के अनुभवों का विरल इस्तेमाल भी बखूबी करते हैं। यशवंत के व्यंग्य में हास्य का प्रायः अभाव रहता है लेकिन उनका व्यंग्यबोध खुखरी की तरह तीक्ष्ण और धारदार होता है। वे स्थितियों और व्यंग्य पात्रों पर प्रहार के वक्त इस फिक्क से प्रायः ऊपर रहते हैं कि चोट कितनी गहरी लगेगी और मरहम का क्या इंतजाम है। यशवंत फिल्मी लटकों और लोक मुहावरों का बेहिचक प्रयोग करते हैं बशर्ते बात मुकम्मिल हो और लक्ष्य तक पहुंचने में किसी तरह का अवरोध न रहे। तीर वहीं लगे जहां छोड़ा गया है। यशवंत के ‘चिंताघर’ तथा ‘कामरेड गोडसे’ हमारे समय के सामाजिक तथा राजनीतिक हालातों पर गहरी व्यंग्य प्रतिक्रियाओं के रूप में समादृत हैं। कामरेड गोडसे के बाबत आलोचक भारत भारद्वाज ने लिखा है— ‘कामरेड गोडसे व्यंग्य रूपकों से मीडिया, राजनीति और दंगे की कला को उत्तर आधुनिक समय में खिलंदड़ी भाषा के साथ और नए बिम्बों के मार्फत रचता है।’

दरअसल विषय की नवीनता तथा पठनीयता यशवंत व्यास के उपन्यासों की दुर्लभ विशेषता है। ये उपन्यास स्थितियों के विद्रूप और सच्चाई को स्पष्ट और विवेक सम्मत तार्किकता के साथ देखते हैं।

हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों की इस सुदीर्घ शृंखला में विनोद साव के दो उपन्यास

अपनी उपस्थिति को गहराई से रेखांकित करते हैं। विनोद का पहला उपन्यास ‘चुनाव’ भारतीय प्रजातंत्र और राजनीतिक अंतर्विरोधों पर केन्द्रित है जिसके बारे में कथाकार परदेशी राम वर्मा का मानना है कि ‘इस कृति ने विनोद को एकाएक सार्थक व्यंग्यकारों की जमात में ला खड़ा किया।’

‘चुनाव’ एक महत्वपूर्ण और चर्चित व्यंग्य उपन्यास है जिसने एक बड़े पाठक वर्ग का ध्यान खींचा। अपनी लोकाभिमुख विषय वस्तु तथा सहज व्यंग्य बोध के कारण उसकी व्याप्ति और पठनीयता संदिग्ध है। ‘भोंगपुर 30 कि.मी.’ विनोद साव का नया उपन्यास है। इस आलेख में इस उपन्यास की चर्चा विशेष रूप से की जा रही है। ‘भोंगपुर 30 कि.मी.’ शीर्षक चौंकाता है। लेकिन उक्त शीर्षक सिर्फ चौंकाने भर के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। उपन्यास की अंतर्वस्तु में 30 कि.मी. की यह दूरी एक कस्बे की भौगोलिकता तथा सामाजार्थिक संरचना को समझने में एक अनिवार्य तत्व की तरह इस्तेमाल हुई है। भोंगपुर कस्बा जोकि एक छोटा जिला मुख्यालय भी है तथा दुर्ग जैसे झझोले शहर से सिर्फ 30 कि. मी. की दूरी पर अवस्थित है। गति की तीव्रता एवं ग्लोबल विलेज के इस उत्तर आधुनिक समय में 30 कि.मी. की दूरी कोई माने नहीं रखती लेकिन भोंगपुर पहुंचने के लिए अथवा भोंगपुर से दुर्ग आने के लिए हमारे पास सिर्फ ‘हाफटेन’ नामक लारी हो, जो स्टार्ट होने के बाद कहीं भी खड़ी हो जाने की यांत्रिक विवशता से अभिशप्त हो तथा जिसकी तकनीकी में धकियाए जाने की अनिवार्यता जन्मना संलग्न हो, तब 30 कि.मी. की यह दूरी लंबी और महत्वपूर्ण हो जाती है।

‘भोंगपुर 30 कि.मी.’ एक ऐसे कस्बे की कथायात्रा है जो अपने कस्बाईहीनता बोध से बाहर निकलने की उतावली में है। शहर न हो पाने की पीड़ा भोगता भोंगपुर वस्तुतः शहरी होने के दिवास्वप्नों में खोया हुआ है और अपनी इस मानसिकता के कारण ठीक ठीक गांव भी नहीं रह पाता बल्कि गांव से भी बदतर हो जाता है। देश के असंख्य जनपदों की तरह भोंगपुर भी एक जनपद ही है जो मुगलई पराठा, कचहरी और दीगर रंगीनियों का स्वाद चखने की लिप्सा

में बार-बार दौड़कर शहर आता है। यहां गौर करने लायक बात यह है कि पचास साला आजादी और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की सरकारी गवर्णितियों के बावजूद भोंगपुर आज भी वहीं है और वैसा ही है तथा योजनाकारों को ठेंगा बताते हुए शहर जाने वाली हाफटेन पर लदाफदा बेतहासा भाग रहा है। विनोद साव बेहद कम शब्दों के इस्तेमाल से शहर और गांव के बीच पसरी हुई इस दूरी और राजनीतिक तथा सामाजिक विषमता को स्पष्ट करते हैं।

शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं की सामाजिक हैसियत, किशोर वय का प्रेम, जाति प्रथा, जीवन मूल्य और सांस्कृतिक विरासत जैसी कसौटियों को केन्द्रीय आधार मानकर रचा गया उक्त व्यंग्य उपन्यास अपनी कथावस्तु और चुटीली व्यंग्य स्थितियों के लिए भी एक प्रातिनिधिक कथा संसार का निर्माण करता है। जातियों के परस्पर अंतर्कलह का ढिंढोरा पीटे बगैर विनोद साव जातिगत दंशों को साफगोई से उकेरने में कामयाब होते हैं।

धार्मिकता एवं अंधविश्वास ऐसे प्रेरक तत्व हैं जो ग्रामीण जनजीवन में व्याप्त ऊब और नीरसता को कम करते हैं। भोंगपुर में बने शिवमंदिर के कारण लोगों में आस्था और विश्वास का वातावरण है। जैसी कि देवताओं की आदत रही है कि वे यदि प्रगट होते हैं तो अपने प्रगट होने के पूर्व लोगों को सपना देते हैं। भोंगपुर में बनने वाले शिवमंदिर के पीछे देवताओं का यही आचरण है जिसकी परिणति भोंगपुर के शिवमंदिर है।

यहां गौर करने लायक बात यह है कि विनोद साव व्यंग्य के हालात निर्मित नहीं करते वरन जो स्थितियां विद्यमान हैं उनके भीतर ही व्यंग्य को खोज लेते हैं और इस खोज के पीछे निर्ममता से किसी की खिल्ली उड़ाने अथवा उपहास करने का उनका मंतव्य बिल्कुल नहीं होता। दरअसल विनोद हालातों में सकारात्मक बदलाव के इरादे से समूचे घटना विधान की रचना करते हैं। इस रचना की प्रक्रिया ही विनोद के व्यंग्य को आकार देती है। विनोद खंजर और मरहम एक साथ लेकर चलते हैं। वे सुई का इस्तेमाल उघाड़ने के लिए ही नहीं उघड़े हुए को सिलने के लिए भी करते हैं।

38, नाका जसवाड़ा रोड, खंडवा, म.प्र.-450001

सुरेश सिंह यादव

व्यंग्य : प्रकृति और प्रभाव

समाज निर्माण और विकास प्रक्रिया में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य में हित-निहित होता है। जिसमें हित नहीं, वह साहित्य नहीं। साहित्य लोग हित-चिंतक और पद-प्रदर्शक होता है। वह बुराइयों को दूर कर भलाई का मार्ग प्रशस्त करता है। लोक में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों तथा अंधविश्वासों को हटाकर नैतिक मूल्यों की स्थापना, समानता की भावना और वैज्ञानिक सोच विकसित करने के लिए साहित्य ने जिन विधाओं का आश्रय लिया है, उसमें व्यंग्य प्रमुख है।

संवेदनशील हृदय और ज्ञान-बुद्धिमान मस्तिष्क के संयोग से निःसृत व्यक्ति, समाज और लोक हितकारी रचना 'साहित्य' है। साहित्यकार पर तत्कालीन यथार्थ का गहरा प्रभाव होता है। उसमें युग को समझने की क्षमता होती है। उसका लेखन तत्कालीन परिस्थितियों की मांग और अभिव्यक्ति है। यथार्थ से हट कर सृजित साहित्य समाज से कट जाता है। दुर्व्यवस्था, दुष्कृत्य, विषमता, अनैतिकता के विरुद्ध वाणी, विचार और लेखनी सदा चलती रही है। वाणी और विचार साहित्य में स्थान पाकर दीर्घकाल तक अपना कार्य करते हैं। साहित्य में बुराई का विरोध और अच्छाई की स्थापना के लिए आग्रह छिपा होता है। व्यंग्य यह कार्य अत्यंत प्रभावी, कलात्मक और तीखे तेवर के साथ करता है। इसके तीखे आग्रह की गूंज अंतस्तल को हिला देती है। व्यंग्य प्रतिबद्ध होकर समाज द्रोहियों पर गंभीर प्रहार करते हुए उन्हें सुमार्ग पर खींचने का प्रयास करता है। व्यंग्य शक्तिशाली, शोषक, भ्रष्टाचारियों नहीं दुर्बल, असहाय, शोषित, निरीह जन का पक्षधर होता है। वह इनके उपकार के लिए संकल्पित होता है। वह जीवन के सरोकारों से पूर्णतः जुड़ा होता है।

वि+अंग=व्यंग्य से 'व्यंग्य' की उत्पत्ति हुई है। हिंदी में यह अंग्रेजी शब्द 'सेटायर'

के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यद्यपि 'सेटायर' शब्द प्रायः व्यंग्य गीत के रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन हिंदी 'व्यंग्य' शब्द अपने व्यापक अर्थ में साहित्य की हर विधाओं में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होता रहा है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य का शुभारंभ कबीर दास ने किया। कबीर साहित्य में ऊंच-नीच, जाति-पाति, छुआछूत की भावना और पाखंड पर गंभीर चोट किया है। भक्ति काल में 'स्वातःसुखाय' और रीतिकाल में 'स्वामिनः सुखाय (प्रशस्तिगान)' की भावना से रचनाएं हुईं। इन कालों में यत्र-तत्र ही व्यंग्य मिलते हैं। कबीर के बाद धारदार व्यंग्य की परंपरा खंडित हो गयी। आधुनिक काल में व्यंग्य अपनी समस्त विशेषताओं के साथ हिंदी-साहित्य में उपस्थित हुआ जो अनवरत प्रगति के पथ पर अग्रसर है। प्रारंभिक काल में व्यंग्य एक शैली के रूप में व्यक्त हुआ। इसकी प्रकृति धीरे-धीरे तीखी होती गयी। उसके प्रभाव, प्रहारक क्षमता और रोचकता में निरंतर वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप व्यंग्य ने हिंदी साहित्य में अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया। अब व्यंग्य साहित्य की एक 'विशिष्ट' विधा बन चुका है। विशिष्ट इसलिए कि वह समस्त विधाओं में अपनी विशेष प्रकृति (रोचकता, तीखे तेवर, गंभीर प्रहार और संवेदना) के साथ स्थापित है। व्यंग्य की शैली से विधा बनने तक की यात्रा कठिन नहीं, बल्कि सुखानंदपूर्ण रही है। परिणाम स्वरूप अल्पकाल में ही 'व्यंग्य' ने हिंदी ही नहीं अनेक साहित्य में अपनी मजबूत जमीन बना लिया।

हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं में व्यंग्य को सम्मान जनक स्थान मिला है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, एकांकी में व्यंग्य के प्रवेश से उसमें नयी स्फूर्ति भर गयी है। व्यंग्य साहित्य के भंडार में निरंतर वृद्धि होना उसकी महत्ता का

निर्विवाद प्रमाण है। व्यंग्य अपना लक्ष्य प्राप्त करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर रहा है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य को सम्मानित स्थान पर आसीन करने वाले साहित्यकारों की लंबी सूची है। भारतेंदु हरिश्चंद एवं समकालीन व्यंग्यकारों ने व्यंग्य के लिए जो उर्वर भूमि तैयार की उसमें वह शीघ्र ही नये रंग, रूप में अंकुरित हुआ। उसे प्रेषित और पल्लवित करने के लिए साहित्यकारों की लंबी पंक्ति लग गयी। बेदब बनारसी (कृष्ण देव प्रसाद गौड़), बेधड़क बनारसी (काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'), कांतानाथ पांडेय 'चोंच' (राजहंस), परिपूर्णानंद वर्मा, भैया जी बनारसी (मोहन लाल गुप्त), गुरु बनारसी (रुद्र काशिकेय), गोपाल प्रसाद व्यास, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जी.पी. श्रीवास्तव, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', विंध्याचल प्रसाद गुप्त, नागार्जुन, केशवचंद्र वर्मा, हरिशंकर परसाई, रवींद्र नाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी, शरद जोशी, नरेंद्र कोहली, रांगेय राघव, वदीउज्जमा, राधेश्याम वर्मा, श्याम सुंदर घोष, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, गोपाल चतुर्वेदी, शेरजंग गर्ग, लतीफ घोषी, बालेंदु शेखर तिवारी, अजातशत्रु (राधेश्याम यादव), सूर्यबाला, सुभाष चंद्र, हरीश नवल, सुरेश कांत, अशोक शुक्ल, रोशनलाल सुरीरवाला, श्रीनारायण चतुर्वेदी, निरंकुश (हरिश्चंद्र), दामोदर दत्त दीक्षित, यशवंत व्यास, ईश्वर शर्मा आदि के उल्लेखनीय योगदान से 'व्यंग्य' हिंदी साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो चुका है।

व्यंग्य व्यक्ति और समाज में व्याप्त बुराइयों से उत्पन्न अभिव्यक्ति है। वह बुराइयों को उजागर कर जनता को सावधान करता है। व्यंग्य बुरे लोगों और बुराइयों से लड़ने वाला अहिंसक हथियार है। वह व्यक्ति नहीं उसके दुष्कर्मों पर प्रहार करता है, फिर भी

उसका हृदय घायल हो जाता है। वह पीड़ा से तिलमिलाता है और क्रोध से बौखलाता है। बुराई पैदा करने वाले ऐरे-गैरे नहीं बल्कि प्रभावशाली होते हैं। इतने प्रभावशाली कि यदि ये चाहें तो बुराई की जड़ तक समाप्त हो सकती है, परंतु ऐसा नहीं चाहते। इसलिए कि इनकी प्रकृति ही ऐसी होती है। इनको दुष्प्रवृत्ति से निवृत्त करना कठिन है। हां उस पर लगाम लगाया जा सकता है। यह कार्य बिना हिंसा के व्यंग्य ही कर सकता है। व्यंग्यकार इस कार्य को चुनौती मानकर, प्रतिबद्ध होकर करता है। मंजा-मंजाया व्यंग्यकार ही बुराई और उसके जन्मदाता, प्रश्रयदाता, समर्थकों पर प्रभावी व्यंग्यास्त्र छोड़ सकता है।

व्यंग्यास्त्र जब लक्ष्य पर प्रहार करता है तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत गंभीर होती है। यह स्वाभाविक है, क्योंकि सामने वाला कोई लल्लू-बुद्धू नहीं होता। इस प्रहार से यदि वह उबर जाता है तो और प्रबल होकर प्रहारक पर ही वार करता है। अब व्यंग्यास्त्रधारी की परीक्षा शुरू हो जाती है। वह असफल हो गया तो अस्त्र रख देगा। यदि साहसी और प्रतिबद्ध है तो और गंभीर व्यंग्यास्त्र का प्रयोग करेगा। इस बार वह सामने वाले को चित कर सकता है। कभी-कभी चित होने के बावजूद ये पीठ की धूल झाड़कर विजयी मुद्रा में चितकर्ता का उपहास करते हैं। उसकी घोर निंदा कर उसे नकारात्मक सोंच वाला बताकर शांत करने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग पक्के दुष्कर्मों होते हैं। दुष्कर्म से पके हुए ये अपनी पराजय स्वीकारना हेंटी समझते हैं। कुछ भी हो सत्य तो सत्य ही होता है। समाज सत्य से परिचित हो चुका होता है। जब ये सिर उठाकर छाती फुलाते हैं, तो समाज मुस्कराता है। यह मुस्कराहट उसके हृदय पर चोट करती है। अब वह अंतरात्मा के दबाव से स्वयं को पराजित स्वीकारते हुए सुमार्ग पर चलने का प्रयास करते हैं।

‘व्यंग्य’ रचनात्मक और सकारात्मक होता है। बुराई का विरोध और अच्छाई का समर्थन उसकी मूल भावना होती है। व्यंग्य का सृजन व्यक्ति, समाज और लोकहित के निमित्त होता है। उसकी प्रवृत्ति आलोचनात्मक होने के कारण उसमें उग्रता होती है। कभी-कभी उसका तेवर इतना तीखा हो

जाता है कि कुमार्गियों के लिए असहनीय हो जाता है। व्यंग्य दुराचारियों के लिए जितना असहनीय होता है, उनसे पीड़ित लोग उतना ही संतोष प्राप्त करते हैं।

‘व्यंग्य’ सदा कड़वा भी नहीं होता। कभी-कभी वह हास्य को साथ लेकर प्रहार करता है। इसे व्यंग्य का प्राथमिक प्रहार कहा जा सकता है। इस स्तर पर वह सहलाकर, गुदगुदाकर हंसाते हुए वार करता है। यहां व्यंग्य भले ठंडा लगे लेकिन उसकी प्रकृति गर्म ही रहती है। यदि वह सफल नहीं हुआ तो स्पष्ट है कि लक्ष्य कठिन है। ऐसे पके बिगड़ैलों को सुधारने के लिए कड़े तमाचे की आवश्यकता होती है। व्यंग्य यह कार्य करने में पारंगत तो है ही। जब वह प्रतिबद्ध होकर चलता है, तो गाल लाल कर हृदय को तिलमिला देता है।

‘व्यंग्य’ बुराइयों के विरोध में वह कथन या लेखन है, जो व्यक्ति, समाज या व्यवस्था में व्याप्त दोषों को उजागर कर से दूर करने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति, समाज, मानवता, अच्छे, बुरे सभी का हितैषी होता है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिबद्ध होता है।

हां में हां मिलाने और मीठी-मीठी बातें करने वाले तो सर्वत्र सुलभ होते हैं, परंतु सत्य और हितकारी बातें बोलने वो दुर्लभ हैं। सुलभ लोग धनी, शक्तिशाली और कुर्सी धारियों के अगल-बगल, आगे-पीछे मंडराते रहते हैं। वे अपने कर्म-धर्म का पालन करने के लिए हृदय से सक्रिय रहते हैं। इसके बदले वे उचित सम्मान तो प्राप्त करते ही हैं, अपना स्वार्थ भी सिद्ध कर लेते हैं। प्रशंसा से गद्गद उनके आराध्य सीना तानकर चलते हुए स्वयं को धन्य समझते हैं। इन मदांशों को पता नहीं कि मेरे गुणगायक मेरी लुटिया डुबाने का कार्य कर रहे हैं। दुर्लभ निंदक ही मेरे हित-चिंतक हैं। उल्लेखनीय है कि स्वार्थी निंदक भी हित-चिंतक हो सकता है। निंदा ज्वर से सदाग्रस्त रहने वालों की अक-बक कभी बंद नहीं होती, इसलिए वह कभी-कभी ही हितकारी निंदा करते हैं। आदत के वशीभूत निंदक निश्चय ही निंदा ज्वर से ग्रस्त होते हैं। वह अच्छे-बुरे समस्त कार्यों की निंदा करते हैं। निंदा उनकी प्रकृति बन जाती है। अतः वे निंदा के विशेष पात्र होते हैं। उत्तम निंदक

बुरे कार्यों की ही निंदा करते हैं, इसलिए वह हितकारी होती है। ऐसे निंदक प्रशंसनीय हैं।

सत्य बात कड़वी परंतु हितकारी होती है। सत्यभाषी (दुर्लभ) समाज और लोक-हितकारी होते हैं। व्यंग्यकार इन्हीं में से पैदा होते हैं। निर्भीकता, सच्चाई, ईमानदारी और बुराइयों को उजागर करने के लिए प्रतिबद्धता सच्चे व्यंग्यकार की कसौटी है। यही उसका कर्म और धर्म होता है। इस पर खरा उतरने वाला सच्चा और पक्का व्यंग्यकार होता है। वह समाज का बहुत उपयोगी प्राणी होता है। उसका होना कुछ लोगों को भले खटकें लेकिन मंगलकारी होता है। उसकी अनुपस्थिति में बुराइयों की बेलें दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती हैं। वह इनकी जड़ों में गर्म पानी डालता है। वह ऊपर से भले ही निर्दयी लगता है लेकिन अंदर से दयालु होता है। वह अपने साथ भी उतनी ही दया या निर्दयता करता है, जितना औरों के साथ।

व्यंग्यकार समाज का जिम्मेदार व्यक्ति होता है। कोई माने या न माने वह ऐसा मानता है। इसलिए है भी। वह संवेदनशील होता है, इसलिए दुष्कर्मों की भनक से ही बौखला जाता है। व्यक्ति, समाज और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार उसके हृदय में पके फोड़े की तरह मथने लगता है। वह उसे जब तक फोड़ नहीं देता, शांति नहीं पाता। उसके प्रहार से बुराई के पोषक आहत होते हैं, तो डूबते निरीह, शोषित, असहायों को मजबूत सहारा मिल जाता है। इन्हें लगता है कि हमारे पक्ष में भी कोई है। इसलिए व्यंग्यकार असहायों का प्रिय और पीड़कों के लिए अप्रिय होता है। बुरे कर्मों के कर्ता-धर्ता आंखें होने पर भी उसे देखना नहीं चाहते। ये उसे मूर्ख घोषित कर उसके मार्ग में कांटे बिखेरते हैं। पक्का व्यंग्यकार अपना मार्ग नहीं बदलता बल्कि कांटों को रौंद कर चलता है। वह इसलिए संतुष्ट होता है कि मैंने कुछ किया। जैसे परसाई को पिटाई परोसी गयी तो संतुष्ट होकर बोले—‘मेरा लेखन आज सफल हो गया।’ हरि से अधिक शंकर ‘हरिशंकर’ विष पीकर उगलते तो समाज विरोधी छटपटाने लगते। हरिशंकर स्वयं तो शांति पाते ही पीड़ितों को भी प्रदान करते। व्यंग्यकार में जब ऐसी क्षमता आ जाती है तो उसे पक्का व्यंग्यकार बनने में विलंब नहीं होता।

व्यंग्यकार का बुराईयों से छतीस सा संबंध होता है। सफल व्यंग्यकार स्वयं छः बनकर बुराईयों को तीन बना देता है। अच्छा तो तब होता जब वह स्वयं भले तीन बन जाय लेकिन बुराईयों को शून्य बना देता। यह बहुत बड़ी चुनौती है। इस पर विजय प्राप्त करना बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

व्यंग्य लेखन शौक नहीं गंभीर पीड़ा की कलात्मक अभिव्यक्ति है। व्यक्ति और समाज में व्याप्त बुराईयां व्यंग्यकार के हृदय में आग की तरह धधकती रहती हैं। वह उसे ठंडा करने के लिए सदा प्रयासरत रहता है। व्यंग्य प्रहार एक जोखिमपूर्ण कार्य है। उसके सफल होने पर प्रहारक की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है और सफलता पर उसका उपहास किया जाता है। व्यंग्यकार को सौ सोनारों जैसा नहीं, एक लोहार जैसा प्रहारक होना चाहिए ताकि उसके एक हथौड़े से सैकड़ों बुराईयों के फन कुचल जाय।

मेरीडिथ ने व्यंग्यकार को 'नैतिकता का ठेकेदार', बर्नार्ड शा ने 'विश्व का उद्धारक' और सदरलैंड ने 'न्यायाधीश की तरह न्याय-पालन तथा शिष्ट समाज की मर्यादाओं की रक्षा करने वाला' माना है।

परसाई ने अपने व्यंग्य लेखन का उद्देश्य बताते हुए कहा है कि 'मैं इसलिए लिखता हूँ कि व्यक्ति और समाज आत्म साक्षात्कार और आत्मालोचना करे। अपनी कमजोरियाँ, बुराईयाँ, विसंगतियाँ, विवेकहीनता, न्यायहीनता त्याग कर जैसा वह है, उससे बेहतर बने। अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं, अवैज्ञानिक आग्रहों और आत्मघाती रूढ़ियों से मुक्त हो। वह न्यायी, दयालु और संवेदनशील हो।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यंग्यकार का कार्य महान है। व्यंग्य सोद्देश्य होता है। वह लोक में सत्यं शिवं सुंदरम् की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध होता है। व्यंग्य का प्रयोजन विद्रूपताओं, असमानताओं, छल छद्मों, भ्रष्टाचार और अंधविश्वासों को दूर कर जनकल्याणकारी व्यवस्था स्थापित करने के लिए किया जाता है।

आज विश्व विकास के पथ पर तीव्र गति से चल रहा है। हर क्षेत्र में विकास हो रहा है। भ्रष्टाचार के विकास की गति कुछ अधिक ही तीव्र है। स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अनेकानेक युक्तियाँ अपनायी जा रही

हैं। इसमें ऐसी युक्तियों की अधिकता है जिससे सामाजिक और मानवीय मूल्यों पर गंभीर ठेस लग रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्य का स्वर तीखा होना स्वाभाविक है। व्यंग्य ही वह प्रभावी अस्त्र है, जिससे बुराईयों को नियंत्रित किया जा सकता है। व्यंग्य में घृणा और भर्त्सना गोले में बारूद जैसा काम करती है। व्यंग्यास्त्र जहाँ समाज विरोधियों को घायल कर उनके घाव पर नमक छिड़कता है, वहीं असहाय और प्रताड़ितों का चिकित्सक बनकर मरहम लगाता है। परिणाम स्वरूप समाज विरोधी व्यंग्य प्रहारों से बचने के लिए निंदनीय कार्यों से दूर रहने का प्रयास करते हैं।

व्यंग्य को समझने के लिए मस्तिष्क पर बल लगाना पड़ता है। कभी-कभी पाठक और श्रोता को अभिधा और लक्षणा से आगे व्यंजना तक जाना पड़ता है। व्यंग्य जब अपने उत्कर्ष में होता है तो व्यंजना में चलने लगता है। यहाँ तक न पहुँचने वाले उत्कृष्ट व्यंग्य को नहीं समझ पाते। उनकी स्थिति उस चुटकुला न समझ पाने वाले की तरह होती है, जो हंसकर आनंद प्राप्त कर रहे लोगों का मुंह देखता रहता है।

व्यंग्य की प्रकृति प्रहारक और सुधारक है। यदि उसमें मनोरंजन की उत्पत्ति हो जाती है तो कभी-कभी उसका कुछ नहीं बिगड़ता, कभी-कभी सब कुछ बिगड़ जाता है। गंभीर विषयों में गंभीरता ही नष्ट हो जायेगी तो व्यंग्य निष्प्रभावी हो जायेगा। उसका प्रहार शिथिल पड़ जायेगा और सुधार का संकल्प पूर्ण नहीं होगा। मनोरंजन के लिए 'हास्य' है। हास्य को व्यंग्य से दूर करना आवश्यक है। दोनों के घालमेल से किसी का उपकार नहीं हो सकता। अलग-अलग रहने पर वे अपना कार्य प्रभावी ढंग से करेंगे। हास्य और व्यंग्य की बहुत निभी। प्रारंभिक काल में उन्नति के लिए इनका एक साथ रहना आवश्यक था। यद्यपि दोनों की अलग-अलग प्रकृति, कर्म, प्रभाव और उद्देश्य है। इसलिए ये स्वतंत्र रहकर एक साथ रहने की अपेक्षा उत्कृष्ट कार्य करेंगे। पहले शुद्ध व्यंग्यकार या हास्यकार को एक नाम (हास्य व्यंग्यकार) से जाना जाता था। गंभीर विषयों पर कलम चलाने वाले व्यंग्यकार इस नाम को स्वीकारने से बचते थे। शायद इसीलिए परसाई जी व्यंग्य को विधा नहीं मानते और स्वयं को

‘समता संदेश’

शिक्षा की पड़ताल

2009 अंक



प्रधान संपादक-हिम्मत सेठ

हेमंटर चण्डालिया, नंद चतुर्वेदी

सुरेश पंडित आदि के

विचारोत्तेजक लेख

संपर्क

30 ए भूपालपुरा, उदयपुर-1

केवल साहित्यकार बनाये रखना चाहते थे। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि व्यंग्य का भी अपना हास्य होता है। जो उस हास्य (मनोरंजन वाले) से अलग होता है। व्यंग्य के हास्य को 'उपहास' कहना उचित होगा।

व्यंग्य ने जीवन और साहित्य के हर क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। यह बड़े-बड़े भ्रष्ट, शोषक एवं अन्य समाज विरोधी कार्यों में लिप्त लोगों पर गंभीर प्रहार कर उन्हें कदम बढ़ाने से पूर्व सोचने को विवश करता है। व्यंग्य के भय से अनेक अनैतिक कार्य रुक जाते हैं। साहित्य में यदि व्यंग्य का आगमन न होता तो सर्वत्र अनैतिकता का ही राज रहता।

मनुष्य एक कठिन प्राणी है। उसका हृदय और मस्तिष्क बहुत ही चंचल है। वह कब, क्या सोचने और करने लगेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। कई मामलों में पशु मनुष्य से उत्तम है। पशु अपने आश्रयदाता के प्रति समर्पित रहता है, लेकिन मनुष्य समर्थ होने पर उसके सिर पर चढ़ जाता है। उपकारी का अपकार करता है। उपदेश देने पर स्वयं को उपदेशक से विद्वान समझ कर अकड़ता है। सम्मान देने पर घमंड करने लगता है। विश्वास करने पर छल करता है। दया और क्षमा को दुर्बलता समझता है। परिश्रम से सुख प्राप्त करने वालों से ईर्ष्या करता है तथा उसे उससे वंचित करने का कुचक्र रचता है। 'व्यंग्य' ऐसे मनुष्यों को उनकी गलतियों और सीमा का ज्ञान कराता है। यदि वह अक्खड़, बिगड़ैल है तो उसे व्यंग्यास्त्र से सुधारने का प्रयास करता है।

निवास-ग्राम-भटौ

जनपद-गाजीपुर, उ.प्र., पिन-233304

डॉ० उर्मिला मिश्रा

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य

विरेचित मनःस्थिति से निकलता हुआ, व्यंग्य के आलंबन को नश्वर की तरह चुभाता हुआ, झिल की तरह कुरेदता हुआ तथा सहृदयों को हास्य में लपेटता हुआ, करुणा से भिगोता हुआ शब्द व्यंग्य की संज्ञा पाता है। व्यंग्य त्रिविमिय है अतः सृजक आलंबन एवं सामाजिक आलंबन को चुभन देता है तथा सामाजिक को राहत प्रदान करता है। जबकि अन्य भाव जैसे भक्ति, प्रेम, क्रोध आदि एक विमिय ही है। भक्ति का भाव श्रोता में भी भक्ति भरता है एवं रचियता में भी। इसी प्रकार प्रेम, क्रोधादि भाव जितने लेखक के मन में रहते हैं, कमोवेष्टा रूप में उसी तरह सामाजिक के मन में भी अपनी प्रतिक्रिया छोड़ते हैं। यह त्रिविमिय व्यंग्य साहित्य की कोई विधा नहीं है अपितु संपूर्ण विद्याओं में स्थान पाने वाला वह अस्त्र है जो अपनी भेदन क्षमता के कारण दिल के आर-पार हो जाता है और अपनी सांद्रता के कारण तुरंत प्रभावी होकर आक्रोशादि भावों को जन्म देता है। व्यंग्य परिस्थिति से जन्म लेता है, परिस्थिति में सांस लेता है और परिस्थिति के साथ मर जाता है। व्यंग्य से उत्पन्न हास्य का क्षेत्र केवल होठों को चौड़ा करके बत्तीसी दिखाने तक ही सीमित नहीं रहता। वह तो साहित्य एवं पत्रकारिता में भागीदारी निबाहते हुए सामयिक चेतना को झकझोर के रख देता है। पत्रकारिता की जद में मौजूद व्यंग्य देश और काल को प्रभावित करता है। अखबारों में छपने वाले व्यंग्य हास्य में लिपटे हुए होने पर भी अपने चारों तरफ एक पूरे युग की त्रासदी को चिपकाए रहते हैं अर्थात् साहित्य एवं पत्रकारिता की हंसी नहीं होती। उच्च स्तर के हास्य व्यंग्य के लिए उदात्त चित्तवृत्ति और परिष्कृत रुचि आवश्यक है। कुंठित एवं विकृत मनःस्थिति-परिस्थिति दोनों ही व्यंग्य की धरती को बंजर बना देती है। इसलिए प्रत्येक युग की जमीन पर व्यंग्य पैदा नहीं हो

सकता है।

व्यंग्यकार स्वतंत्र होता है। न वह आश्रित होता है और न पराजित मनोवृत्ति का होता है। वह आत्मा से भी स्वतंत्र होता है और विधा के बंधन से भी। इसलिए विवक्त परिस्थितियों, विवक्त व्यक्तियों, विवक्त कालों एवं विवक्त घटनाओं में ताल-मेल स्थापित कर लेता है। इतने विवक्त तत्वों में तालमेल के कारण ही व्यंग्य सीधे ही प्रहार क्षमता से संपन्न होता है। प्रतिशोध लेने की क्षमता से वंचित स्वस्थ मनोवृत्ति के व्यक्ति के लिए व्यंग्य आक्सीजन का कार्य करता है क्योंकि आज के पूंजीवादी समाज में, अफरातफरी के युग में जबकि भौतिकता ही स्तर का पर्याय बन गई है, बौद्धिक एवं ईमानदार व्यक्ति अपनी अस्मिता को समाप्त होते हुए पाता है, ऐसे समय में व्यंग्य की तलवार ही उसके पास अस्मिता को बचाने का तथा अपने शत्रु पर प्रहार करने का सशक्त माध्यम रह जाती है। इसलिए आज व्यंग्य वृश्चिक-दंशन की सी तीखी लहर के साथ खड़ा हुआ है। हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा चालीस वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है क्योंकि विशुद्ध व्यंग्य एवं हास्य का विस्तार स्वस्थ परिष्कृत एवं विरेचित मनःस्थिति में ही होता है।

भारतेंदु युग में व्यंग्य को फलित होने को उपयुक्त जमीन मिली। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में हास्य-व्यंग्य के स्तंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से ही शुरू किए। यथा 'देखी तुमरी काशी लोगों' आदि व्यंग्य और विनोद के सुंदर स्तंभों के शीर्षक बन गए। प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट में भी हास्य विनोद की प्रवृत्ति मिलती है। पराभूत राष्ट्र को पुनः जागृत करने के लिए यथा शोषक शासकों पर गुप्त प्रहार करने के लिए व्यंग्य को हास्य मिश्रित बनाया गया और सांस्कृतिक संजीवनी हास्य के पेय से उसे वीर्यवान बनाया गया और व्यंग्य से उसकी

प्रहारात्मक चेतना को बल दिया। इस युग में व्यंग्य में विस्तार कम है घनत्व अधिक।

दरअसल व्यंग्य का मूलाधार असंतुलन विसंगति आक्रोश विद्रोही आदि है। विसंगति का जितना व्यापक विस्तार होगा उतना ही व्यापक विस्तार व्यंग्य कथ्य का होगा। व्यंग्य के लिए स्वतंत्र मानसिकता का होना अनिवार्य है। इसलिए स्वतंत्रता से पूर्व व्यंग्य पनपने के लिए कोई विशेष अनुकूल स्थिति नहीं थी लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद परिवेश में अनेक परिवर्तन हुए। अंग्रेज गए 'भारतीय' व्यवस्था में आए अपेक्षाएं बढ़ीं परंतु मोहभंग के अलावा अधिक कुछ नहीं हुआ और व्यंग्य विधा के विकास के प्रेरक तत्व दिखायी देने लगे जैसे—

1. मोहभंग
2. करनी और कथनी में भेद
3. नैतिकता के स्तर में गिरावट
4. भौतिकता के प्रभाव
5. समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षित उन्नति का न होना।

स्वातंत्र्योत्तर काल में दुनिया भर की विसंगतियों ने व्यंग्य विधा को बहुमुखी आयामों में वाणी दी। 60 वर्षों की पूरी विकृतियों को व्यंग्यकारों ने सूक्ष्मता से देखा परखा भोगा तत्पश्चात् प्रकट किया। जीवन के विविध क्षेत्रों में भारत भर में व्यंग्य का प्रादुर्भाव रहा। व्यष्टि से समष्टि तक के मानवीय क्रिया-कलापों में जर्जर नृशंस अनैतिक भ्रष्ट पापी भयानक व्यवस्था का पर्याय आज व्यंग्य विधा है। बड़े-बड़े विद्वान धर्म धुरंधर मंत्री नेता प्रशासक आदर्श गुरु प्रधानाचार्य आदि की करनी और कथनी में जितना अंतर है उतना ही गहरा व्यंग्य अस्तित्व में आ रहा है। व्यंग्य प्रत्यक्ष जीवन से साक्षात्कार करता है। अतः हम उसे विशुद्ध जीवन की विधा समझते हैं। व्यंग्य विधा सभ्यता का चोला पहनने वालों की रिश्वतखोरी पक्षपात सिफारिश समय की अपव्ययता आदि कारनामों को

लेकर पर्दाफाश करता है और पर्दे के पीछे रह कर भी अपने पैसेपन का संकेत देता रहता है। व्यंग्य एक दूरबीन की तरह है जिसमें हम दूर तक देख सकते हैं। इसमें खट्टा-मीठापन चिह्न छटपटाहट निंदा आक्रोश आदि सभी भाव समाहित हैं। व्यंग्य विधा के इस शस्त्र ने जीवन के सभी आयामों पर प्रहार किया है। विशेषतः राजनैतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिपरक असंगतियों का रहस्य प्रकट किया है। आचार्य मम्मट और आनंदवर्धन ने तो अपने ग्रंथों में व्यंग्य की चर्चा विस्तार से की है।

पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य विधा के रूप में अठारहवीं शताब्दी में ही स्वीकृति पा चुका था। इसके स्वरूप निर्धारण में अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अपना योगदान दिया है। जिनमें आर्चिलेचस सिमोना इडस हिप्पोनकस गोयस लुसिलियस ज्यूहेनाल इरंस्मस उचरिच ह्वान हंटेजा जोसफ हाल जानकार्टन मॉलियर सक्वेयुल बटलर ड्रायन अलैक्जंडर पोप जोनाथन स्वीफ्ट हवोलटेयर बायरन जेम्स रूझेल लंवेल्स मालांक जार्ज बर्नाड शा कारलाईल जार्ज आरवेल इहलन आदि हैं।

परंतु जब हिंदी व्यंग्य साहित्य का अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि व्यंग्य कबीर, बिहारी, निराला मेंसे गुजरता हुआ प्रगतिवाद साहित्य में प्रविष्ट हुआ फिर प्रयोगवाद एवं नई कविता में फला फूला और समकालीन कविता में उसकी जड़ें इतनी गहरी हो गई कि स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो गया। अब तो हिंदी साहित्य में स्वतंत्र रूप से धारदार व्यंग्य लिखने वाले व्यंग्यकार हैं यथा हरशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, राधाकृष्ण, केशवचंद्र वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, डा. नरेंद्र कोहली, लतीफ घोंघी, डा. बलेंदु शेखर तिवारी, डा. शंकर पुणतांबेकर, डा. रोशनलाल सुरीरवाला, डा. इंद्रनाथ मदान, डा. संसारचंद्र अमृतराय, डा. सुदर्शन मजीठिया, अशोक शुक्ल, सुबोधकुमार श्रीवास्तव, संतोष खरे, स्व. लक्ष्मीकांत वैष्णव, डा. ज्ञान चतुर्वेदी, के.पी. सक्सेना, सुरेश सेठ, प्रेम जनमेजय, श्रीराम ठाकुर, विष्णुदेव पांडेय, डा. शिव ठाकुर, डा. रामेश्वरप्रसाद सिंह आदि।

उपरोक्त व्यंग्यकारों में से शीर्षस्थ व्यंग्यकार हरशंकर परसाई की परसाई

रचनावली प्रकाशित होने के बाद भी वे परंपरागत विधा लेखन के चौखटों को निरंतर तोड़कर रचना करते रहे। इन्होंने अपने व्यंग्यों में रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों पर जोरदार आक्रमण किया। इनके व्यंग्यों के विषय रोजमर्रा की जिंदगी के विषय हैं पर उनमें ताजगी है। जिस प्रकार कहा जाता है कि आजादी से पूर्व के हिंदुस्तान की स्थिति को पढ़ना है तो प्रेमचंद पढ़ें इसी प्रकार इनके विषय में भी कहा जाता है कि आजादी के बाद की हिंदुस्तान की स्थिति को देखना चाहते हैं तो परसाई को पढ़िये। परसाई के संदर्भ में मुक्ति बोध ने लिखा है कि 'परसाई का सबसे बड़ा सामर्थ्य संवेदनात्मक रूप से यथार्थ का आंकलन है चाहे वह राजनैतिक प्रश्न हो या चरित्रगत। हमारे यहां भी साहित्यिक संस्कृति ने सच्चाई के प्रकटीकरण पर जो हठबंदी करके रखी है उसे देखते हुए परसाईजी की कला सहज ही वामपक्षी हो जाती है।

शरद जोशी हिंदी व्यंग्य विधा को सशक्त करने में संसार की बड़ी हस्ती है। नुकीले गहरे तथा तीखे व्यंग्य के लिए हिंदी साहित्य में विख्यात शरद जोशी की समग्र रचनाओं में राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और प्रशासनिक विसंगतियों का पर्दाफाश मिलता है। विसंगति की उर्वरा भूमि में व्यंग्य-पौध को खाद देने वालों में शरद जोशी के समग्र व्यंग्य-साहित्य का अवलोकन कर डा. शंकर पुणतांबेकर को निम्नांकित वक्तव्य देना पड़ा। शरद जोशी आज के जाने-माने साहित्यकारों में से एक हैं इनके व्यंग्य में विवरण का कौशल तर्क चुटकी भरी विमुग्धता और रूप विधान में रचना-वक्रता मिलेगी। यह व्यंग्य अंततः रिझाता है।

व्यंग्य विधा को सशक्त बनाने वालों में परसाईजी की तरह रवींद्रनाथ त्यागी का नाम भी गौरव से लिया जाता है। उनके व्यंग्यों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य प्रतिभावान लेखकों के दृष्टांत तथा संदर्भों का उपयोग किया है। जैसे शेक्सपीयर, वुडहाउस, कालीदास, भृतरि, पंत, बिहारी, गालिब, मोमिन, इत्यादि। त्यागी ने व्यंग्य लेखन में वाक्यों की आंतरिक बनावट में वैदग्ध्य का पूरा खयाल रखा है। जैसे 'आपके जाने से यह दफ्तर विधवा हो जाएगा जबकि आपके रहते-रहते सती हो



प्रख्यात कथाकार संजीव पर केंद्रित

नामवर सिंह, राजेंद्र यादव,
विश्वनाथ त्रिपाठी, गोपेश्वर सिंह,
रोहिणी अग्रवाल, सत्यकाम
शिवमूर्ति, प्रेमपाल शर्मा आदि

संपर्क

बी-107, सैक्टर-43, नोएडा

रहा था।'

इसके अनंतर एक अन्य महान चिंतन, विचारक, संस्कृति रक्षक तथा व्यंग्यकार के रूप में विख्यात केशवचंद्र शर्मा के अनमोल योगदान की मैं सराहना करती हूं जिन्होंने आठ रचनाएं साहित्य को दीं। उनके व्यंग्यों का उद्देश्य थीकी हुई भारतीय संस्कृति को आधुनिकतम बनाना है।

व्यंग्य की प्रभावसत्ता बहुआयामी है और व्यंग्यकार सीमाओं में बंधा है। उसमें पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। भाषा में कसावट हो अतिरेक नहीं। जे. मिडिल्टन मर्रे का व्यंग्य की भाषा शैली के संदर्भ में विचार है कि व्यंग्य भाषा की शैलीय चरमता वक्तव्य की संक्षिप्ति और प्रभावसिद्धि में निहित है। प्रहारक भाषा की निर्मित के लिए व्यंग्यकार को बहुत घुमावदार अर्थधारियों और शब्दों से गुजरना पड़ता है। अनुभव और अभिव्यक्ति को नई दीक्षा ही विराट सार्थकता का नाम है-व्यंग्य लेखन। आगामी समय में संभावना यह है कि व्यंग्य अनुभव और संप्रेषण की तीखी धार की नूतन जाली बुनेगा।

विभागाध्यक्ष हिंदी,

मीरा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, संगरिया (राज.)

प
रि
च
य

सूर्यशाला



जन्म स्थान, तिथि	: वाराणसी, 25 अक्टूबर 1943
शैक्षणिक योग्यता	: काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'रीति काव्य' में पी.एच.डी। प्रारंभिक शिक्षा के स्नातक शिक्षा तक, आर्य महिला महाविद्यालय, वाराणसी।
मां	: स्वर्गीय श्रीमती केशर कुमारी
पिता	: स्वर्गीय श्रीवारप्रताप सिंह
भाई-बहन	: चार बहनें क्रमशः वीर बाला, केशर बाला, चन्द्र बाला तथा भाई विष्णुप्रताप।
विवाह	: जून 1963, वाराणसी
पति	: श्री आर.के. लाल, मर्चेन्ट नेवी में मरीन इंजीनियर— तत्पश्चात बहुराष्ट्रीय कंपनी में उच्च प्रबंधक- वर्तमान सेवानिवृत्त दो पुत्र एक पुत्री अभिलाष लाल, अनुराग लाल, दिव्या लाल। पौत्र-पौत्री-दौहित्री-शुचिता, अभिनय, अनन्दिता, नन्दिनी एवं अदिति।
लेखन की पृष्ठभूमि	: घर परिवार में पढ़ने लिखने, कला संगीत का सुरुचिपूर्ण वातावरण। पिता शिक्षा-विभाग में उच्च पदाधिकारी। माता-पिता की कला, संगीत एवं साहित्य में रुचि, घर में हारमोनियम, बांसुरी, ग्रामोफोन। पहली कहानी 'जीजी' सारिका में अक्टूबर 1972 अंक में प्रकाशित। पहली व्यंग्य रचना 'खाना ईट का, आना समाजवाल का' और दूसरी कहानी 'अविभाज्य' धर्मयुग 1973 के अंकों में प्रकाशित। दूसरा व तीसरा लघु उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' एवं 'अग्निपंखी' साप्ताहिक रविवार में (79) धारावाहिक प्रकाशित। लंबी कहानी रेस (धर्मयुग) विशेष रूप से चर्चित। उपन्यास 'दीक्षान्त' सारिका में सम्पूर्ण प्रकाशित एवं पाठकों द्वारा प्रशंसित। रचनाओं का मराठी, उर्दू, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़ और अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर प्रायः सभी उपन्यासों एवं कहानियों का रूपांतर एवं प्रस्तुति। नेहरू सेंटर (लंदन) न्यूयार्क के 'शब्द स्टार' टी.वी. कार्यक्रम में कहानी एवं व्यंग्य रचनाओं का पाठ।
सम्मान	: प्रियदर्शिनी पुरस्कार, घनश्यामदास पुरस्कार, व्यंग्यश्री सम्मान एवं पुरस्कार, कमलादेवी गोइनका वाग्देवी पुरस्कार आदि।
कृतियां उपन्यास कथा संग्रह	: मेरे संधि पत्र, सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी, दीक्षान्त, यामिनी कथा। : एक इन्द्रधनुष : जुबेदा के नाम, दिशाहीन, थालीभर चांद, मुंडेर पर, गृह-प्रवेश, कात्यायिनी-संवाद, सांझवाती, इक्कीस कहानियां, पांच लंबी कहानियां, मानुष गंध सिस्टर प्लीज आप जाना नहीं, वे जरी के फूल तथा अन्य प्रेम कहानियां।
शीघ्र प्रकाश्य व्यंग्य संग्रह	: गौरागुनवन्ती। : अजगर करे न चाकरी, धृतराष्ट्र टाइम्स, देश सेवा के अखाड़े में, भगवान ने कहा था।
शीघ्र प्रकाश्य	: मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं।

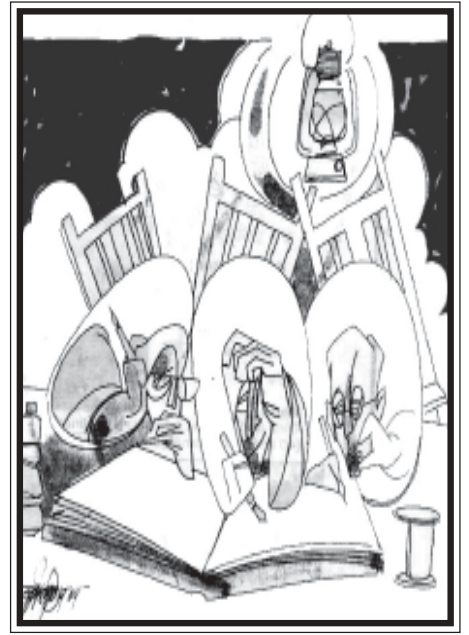
अपनी तस्वीर से अलग

यदि हम किसी लेखक की कोई कृति पढ़ते हैं और उस लेखक से न तो मिले हों और न ही उसके बारे में कुछ पढ़ा हो तो बहुत स्वाभाविक है कि हम उसकी तस्वीर कृति के आधार पर बना लेते हैं। इसी मानसिकता के चलते धार्मिक पुस्तकें लिखने वाले लेखक की तस्वीर तिलकधारी की बनती है और हास्य लेखक की किसी हंसोड़ जोकर की जो बात-बात पर आपको हंसाएगा। लेखक की कृति उसके व्यक्तित्व का रेखाचित्र निर्मित करती है और ये दीगर बात है कि अक्सर ये तस्वीर बहुत कुछ झूठी साबित होती है।

सूर्यबाला के लेखन से मैं वर्षों से परिचित था, धर्मयुग के समय से। 1973 और उसके लगभग दस साल बाद तक का वो धर्मयुगीय समय है जिसमें मेरी पीढ़ी के अनेक लेखकों को भारती जी ने न केवल खूब छापा अपितु साहित्य जगत में स्थापित कर दिया। सूर्यबाला एक ऐसी ही रचनाकार हैं। 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'रेस', 'मेरे संधि पत्र' जैसी उनकी अनेक कृतियों ने धीरे-धीरे मुझे उनका प्रशंसक बना दिया। 1989 में उनका पहला व्यंग्य संकलन आया तो उन्होंने मुझे भेजा और उसके पहले पृष्ठ के आरंभ में लिखा सम्मति एवं समीक्षार्थ तथा मध्य में लिखा- भाई प्रेम जनमेजय को शुभकामनाओं सहित। मुझे याद है कि मैंने उनका यह संकलन एक ही सिटिंग में किसी रोचक उपन्यास की तरह पढ़ लिया। मुझे सूर्यबाला की दो बातों ने विशेष रूप से प्रभावित किया, पहली तो यह कि वे हास्य या व्यंग्य को जबरदस्ती रचना में इंजेक्ट नहीं करती हैं और दूसरी यह कि वह अपने और पाठक के बीच बहुत कम दूरी बनाकर चलती हैं। ऐसा लगता है कि लेखिका आपके पास बैठी आपको रचना सुना रही है। वे न तो चलते फैंशन की विषयों की वासनाओं में फंसती हैं और न ही किसी अपने किसी अग्रज की कार्वन कॉपी बनने में विश्वास करती हैं। 'साक्षात्कार' में प्रकाशित अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने चाहे ज्ञान चतुर्वेदी से कहा हो- डिमांड से लिखने का मूड बनता है। व्यंग्य तो मैंने अक्सर पत्रिकाओं के आये पत्रों के पीछे से ही लिखना शुरू किया है। अभी भी मैं फोन पर डिमांड करने वालों से विनम्रतापूर्वक अनुरोध करती हूँ कि वे कम-से-कम एक डेढ़ माह का समय अवश्य दें तथा बीच में एकाध बार फोन पर खटखटा दें। डिमांड की इस सादगी पर आपका भी मरने का दिल चाहेगा। मैंने भी उनसे पत्रिका के लिए रचना-प्रक्रिया डिमांड पर ही लिखवाई और डिमांड पर लिखने वाली इस लेखिका से जब एक महीने तक केवल आश्वासन ही मिले तो संपादक का धैर्य जवाब दे गया और स्वर कुछ तेज तो बहुत शालीनता के साथ सूर्यबाला ने कहा- प्रेम मैंने तुम्हारा स्वर ऐसा कभी नहीं सुना है, लगता है बहुत परेशान हो। इस वाक्य में संपादक के प्रति संवेदना भी थी और लेखकीय स्वाभिमान कि हे संपादक! सावधान, अपनी परेशानी के चलते स्वर को तीखा मत करा।

पिछले दस वर्षों में लगातार मिलने से मैं सूर्यबाला और उनके स्वभाव को समझ गया हूँ परंतु जब पहली बार लम्बी मुलाकात हुई तो उनके संबंध में बनी मेरी तस्वीर टूटी थी। त्रिनिदाद में जब मई 2002 में होने वाली अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी की योजना बनी तो मैंने सूर्यबाला जी को भी निमंत्रण भेजा। निमंत्रण इस अंदाज में भेजा था कि वे आएंगी तो नहीं, भेज देते हैं क्योंकि इतनी लंबी यात्रा कर उन जैसी छुई-मुई व्यक्तित्व वाली महिला के त्रिनिदाद जैसे कम लुभावने देश में आने की संभावना लगभग शून्य ही होती है। पर आश्चर्य तब हुआ जब उनका 'कैरेबियन में हिंदी के प्रचार-प्रसार में कबीर और तुलसी के योगदान' पर उनके आलेख की रूपरेखा और त्रिनिदाद में आने की उत्सुकता परिचय हुआ। ये एक लंबा प्रसंग है, पर संक्षेप में कहूँ तो, जब वे अकेली पहुंच गई और उनके बारे में निरंतर और जानने का अवसर मिला, तो भी विश्वास नहीं हुआ कि वे अकेली यहां पहुंची हैं।

सूर्यबाला जब भी साहित्य, प्रकाशक, पुरस्कार आदि के बारे में चर्चा करती हैं तो इतनी अज्ञानी और मासूम नज़र आती हैं कि सोचने को विवश होना पड़ता है कि



विसंगतियों पर तीखे प्रहार करने वाली लेखिका सूर्यबाला क्या ये ही हैं। 'सारे राह कुढ़ते-कुढ़ते' से एक अंश देखिए- पहले छोटे दर्जे के साहित्यकार थे, कम कुढ़ते थे। अब साहित्य के भरे-पूरे पंडाल में आ गये हैं, सो जिम्मेदारियां, व्यस्तताएं बढ़ गई हैं। पहले की अपेक्षा बड़े पैमाने पर कुढ़ना पड़ता है। बड़ा साहित्यकार होने के साथ ही सबसे अहम दायित्व लेखक का यही होता है कि इसमें लेखक की क्वालिटी बदतर हो या बेहतर, इससे किसी को कोई खास फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उसके कुढ़ने की क्वालिटी और क्वांटिटी फौरन बढ़ जानी चाहिए, क्योंकि छोटी साहित्यकारी के जमाने में जो काम खुदरे स्केल पर टटपूँजिए किस्म का होता था, वह अब थोक व्यापार के रूप में योजनाबद्ध तरीके से होता है। महफिलें बैठती हैं, गोष्ठियां होती हैं, साथ-साथ मिल-जुलकर यह क्रिया संपन्न की जाती है। शास्त्रों में इसे ही 'ब्रह्मानंद सहोदर' का सुख कहा गया है।

यदि शांति मेहरोत्रा, सूर्यबाला, अलका पाठक जैसी लेखिकाएं व्यंग्य नहीं लिखती तो व्यंग्य-लेखन को पुरुषोचित लेखन मानने से आलोचकों को कोई नहीं रोक सकता था और हिंदी व्यंग्य नारी-विमर्श-विहीन होने का अभिशाप झेलता। मेरी एक इच्छा है सूर्यबाला जी के पास कथा का अद्भुत शिल्प है और लंबी रचना लिखने में वे सिद्धहस्त भी हैं, यदि वे व्यंग्य उपन्यास भी लिखें तो कृपा होगी।

-प्रेम जनमेजय

सूर्यबाला

‘यह व्यंग्य कौ पंथ’ अर्थात ‘रचने की प्रक्रिया’

मैंने कभी अपने होशोहवास में व्यंग्य लिखने या व्यंग्यकार बनने की कोशिश नहीं की लेकिन न जाने कैसे थोड़ी न थोड़ी होती चली गई। अब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो लगता है, थी जरूर बचपन से ही, बल्कि जन्म-जात (जोकि एक व्यंग्यकार होता है) जिंदगी से खाद पानी मिली तो लेखन में भी एक छोटी-मोटी फसल लहलहा उठी वरना यह साहित्य नाम की दुनिया तो गुरुगंभीरता से इतनी ठुंसी-ठुंसाई होती है कि आम तौर पर उसमें हास्य-व्यंग्य के लिए जगह बनाना आसान नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यंग्य गंभीर नहीं होता, सिर्फ वह गंभीरता का ढोंग नहीं भरता।

‘लिखने’ की बात करें तो मेरा पूरा लेखन ही व्यवस्था और तरतीबी से कोसों दूर है और व्यंग्य लेखन तो सही मायने में ‘अचानक की उपज’ और ‘अनायास की उपलब्धि’ है।

धूमकेतु-सा प्रगट होता है। व्यंग्य रचने का मूलभाव और अंदर बाहर का सब कुछ उखाड़ता पटकता अपना रास्ता बनाना शुरू कर देता है। एकद ज़िद्दी बच्चे-सा कि ‘यह चीज’ अभी ही चाहिए ही यह चीज यानी मेरी कलम। ज़िद्दी हठी बच्चे प्रायः अपना काम करवा ले जाते हैं, कभी-कभी चांटा खा वापस चले जाते हैं. . . अच्छे शालीन बच्चे अपने प्राण्य की प्रतीक्षा करते रह जाते हैं।

तो मुझ जैसी संतुलित, अनुशासित गृहणी की दिनचर्या के सारे तारतम्य अपनी निदियाई ठोकर से धितराता यह ज़िद्दी बच्चा दिल-दिमाग पर काबिज हो जाता है। आज अगर समय ने मुहलत दी कलम हाथ में थमाई तो बात की बात में सहयोगी शब्दों, विचारों के हुजूम जुटते चले आते हैं और कारवां चल पड़ता है, वरना यह ज़िद्दी बच्चा चांटा खाकर घर-बाहर के भीड़ भड़ाके में कहीं गुम हो जाता है।

विसंगतियां और विद्रूप तो तुंसे हैं जीवन में अंदर-बाहर चारों तरफ. . .दिमाग में भीड़ लगी ही होती है, घनघोर ट्रैफिक जात तक की स्थितियां. . .और आप जानते हैं कि भयंकर ट्रैफिक जाम में कोई आवागमन तरीके से चल सकता है? . . .ये रचनाकार के जीवन की विडम्बना है जिनके बीच उसे हमेशा एक अनजानी-सी प्रतीक्षा उस आहद के इल्हाम की होती है जिसमें बिना न कोई रचना अपना रूपाकार ले सकती है न उसमें प्राण-प्रतिष्ठा हो सकती है। एक बार यह इल्हामी क्षण हाथों से छूटता है तो वापस उसी रूप में शायद ही फिर कभी मिल पाता है। यह वह क्षण होता है जो व्यंग्य रचना का व्यंग्य की तराश देता है। शैली से विधा जनाता है और साधन से साध्य भी। बेशक जब कभी जीवन के किसी पक्ष या समाज के किसी क्षेत्र से जुड़े गहरे और व्यापक अनुभव का कच्चा माल इकट्ठा हो जाता है तब ज्ञान चतुर्वेदी भी नरक यात्रा, बारामासी,

विष्णु नागर भी ‘आदमी स्वर्ग में’ यशवंत व्यास की ‘कामरेड गोडसे’ और गिरीश पंकज की ‘माफिया’ जैसी लंबी पारी की कृतियां सामने आती हैं। लेकिन चूंकि विधा के रूप में मेरा व्यंग्य-लेखन छोटी रचनाओं का ज्यादा करीबी रहा, इसलिए मेरे लिए यह कौंधा विशेष अहमियत रहती है। शब्द शक्तियों के सिर्फ शब्दबेधी बाण अर्थात केवल ‘व्यंजना’ के ही उपयोग की घूटा। यहां के व्यंजना शब्दों को बेध, तराश, उलट-पलट कर व्यंग्य-विषय और विचार के अनुकूल बनाती है। क्योंकि उद्रेक करुणा का हो या अवसाद का, तीक्ष्णता विसंगति की हो या विद्रूप की, पेश उसे चटपटा, जायकेदार और स्वास्थ्यवर्द्धक बनाकर ही करना है।

अनायास चलती यह रचना-प्रक्रिया एक अनूठा हल्कापन और निश्चितता सौंपती है, अपने अनुभव में अनिवर्यनीय होती है। इसी दौरान एक और बड़ी तृप्ति तब मिलती है जब प्रमुख मुद्दे के साथ-साथ कुछ और विचार (पहले से बिलकुल न सोचे हुए) एकदम फ्रेश, बाई-प्रोडक्ट की तरह हाथ लग जाते हैं और एक अतिरिक्त रचना का बोनस मिल जाता है। संयमों से संदर्भों के खुलने की यह प्रक्रिया भी एक अजूबा होती है। मेरी प्रिय व्यंग्य रचना भगवान के हाथ में भगवान द्वारा व्यक्त किए गए, एक के बाद एक दिलचस्प और विद्रूप भरे उद्गारों में से अधिकांश लिखते हुए ही आ जुड़े थे, इसी तरह गजानन बनाम गजा नायक में गणपति के हाथ में शंख, पदम, मदिरा के साथ मोबाइल थमाने का आइडिया भी तत्क्षा की उपलब्धि रही। ऐसी प्राप्ति के क्षण लिखने के दौरान मिले खुशगवार झोंके की तरह होते हैं, प्रवाह को सुगम और सुखमय बनाते हैं वरना इसके उलट कभी-कभी ऐसे अवरोध भी आते हैं।

अचानक शब्दों विचारों की जबरदस्त टकराहटों के बीच सोचे हुए. . .जाम हो जाता है। अब स्थिति यह होती है खिन्नताओं और फुफुलाहट के झाड़, खण्डहरों के बीचों-बीच गाड़ी अड़ी है और रास्ता ठप्प बंद। ऐसे में मैं चुपचाप कागज कलम वह छोड़ उठ आती हूँ और मौसम बदलने का इंतजार करती हूँ। सचमुच दृश्य बदलता है या मूड रुकी हुई गाड़ी अचानक स्टार्ट हो जाती है, अवरोध स्वयमेव हट जाते हैं और रचना शब्दों, विचारों भरवों के ग्रीन सिगलों को पार करती, सहजता से रास्ता निकाल ले जाती है।

एक रचना की चलती प्रक्रिया के बीच से निकल आई एक अतिरिक्त रचना का सर्वोत्तम उदाहरण मेरे पुरस्कारों पर लिखें, व्यंग्य हैं। ‘हिंदी साहित्य की पुरस्कार परंपरा’ ‘एक पुरस्कार यात्रा’ और ‘आयोजन पुरस्कार मेले का’ जैसे व्यंग्य एक से ही मूल गृह नक्षत्र से टूटे कई उल्का पिंड के समान हैं लेकिन मूल विषय एक होने के बावजूद, तीनों तीन भिन्न संदर्भों की आयरनी को डील करते हैं।

शुरुआती आवेग में लिखी गयी मेरी रचना के बेतरतीब और अराजकता हो जाने का मुझे प्रायः कहर रहता है। यह भी मूल भाव की शुद्धता और तीक्ष्णता को ज्यादा से ज्यादा प्रभावी बनाने के अतिउत्साहित होता है। उस समय सावन के अंधे को हरा-हरा ही दिखाई देता है। इसीलिए जरूरी होता है कि रचना पूरी होने के लिए उसे आंखों से ओझल कर दिया जाए। दो-चार दिन ही सही पर व्यंग्य रचना को दिमाग से क्लीन प्लेट की तरह, साफ कर देना मेरे लिए अनिवार्य हो जाता है। उसके बाद पूरी तरह तटस्थ बल्कि आलोचकी दृष्टि से पुनरावलोकन करती हूँ और सारे अतिरेकी बयर में काट-छांट अर्थात एडिटिंग होती है। मैं इसे लेकर अतिरिक्त सर्तक रहती हूँ क्योंकि व्यंग्य के बेकाबू हो जाने के बहुत खतरे होते हैं। अन्य विधाओं का शिल्प ज्यादा से ज्यादा आरोपित सायास या सपाट लग सकता है जबकि व्यंग्य जरा-सी असावधानी से फूहड़ और अशिष्ट तक हो सकता है जो मेरी प्रकृति के विरुद्ध है।

खुद में और खुद से जुड़ी चीजों को लेकर हृद की मीन-मेख निकालने वाली मेरी प्रकृति बड़े से बड़े व्यंग्यकार की भी इस असावधानी आदत और कमजोरी को नहीं बखानती। संपूर्ण आस्था से किसी भी बड़े व्यंग्यकार के लेखन पर समर्पित होने के बावजूद अंध भक्ति मैं नहीं कर पाती।

यह तो हुआ छोटी-व्यंग्य रचनाओं के साथ किया जाने वाला सुलूक। बड़ी रचना या छोटे-बड़े व्यंग्य उपन्यास के मंसूबे कई बार अंधे जरूर लेकिन कागज पर उतर नहीं पाये। सिर्फ एक रचना 'गजानन बनाम गण नायक' लंबी कहानी की शक्ति ले पाई। थोड़े परिश्रम से यह रचना एक औसत उपन्यास में परिवर्तित हो सकती थी। इसकी मूल उद्भावना सर्वथा अधूरी, मेरी रुचि के अनुकूल थी लेकिन तब तक अन्य विधाओं ने ऐसा धावा बोला कि बात लंबी व्यंग्य कहानी पर छूट गई।

यह अन्याय या ज्यादाती अक्सर मेरी रचनाओं के साथ हो गई है। कई विधाओं में समान रुचि और लगाव होने के कारण मैं व्यंग्य को उतना समय नहीं दे पायी जितने की यह विधा अधिकारी थी और मैं स्वयं भी चाहती थी। इतनी कोशिश अवश्य रही कि असर 'क्वांटिटी' पर भले हो, पर नहीं।

प्रारंभ से ही थोड़ी स्ट्रेटजी बनाकर महत्वाकांक्षी योजनाओं के साथ लिखती और किसी भी एक विषय पर केंद्रित करती तो संभवतः उपलिब्ध और बाहरी सफलताओं की दृष्टि से थोड़ा बेहतर दर्जा हासिल कर पाती लेकिन उस सबकी मुझे न समझ, न सुविधा, न शऊर रहीं यह सब मेरी प्राथमिकता में कभी शुमार न हो पाया। मेरे लिए 'लिखने' से मिलने वाला सुख ही सर्वोपरि था, और यह सुख रचना से मिलता है, 'विधा' से नहीं।

जब इस विधा रचना कलम की नोक पर हो, वही मेरा इष्ट। यह इष्ट, यह सुख मुझे भरपूर मिला। रही 'मनचाहा' लिखने और अपना 'सर्वश्रेष्ठ' न दे पाने वाली बात तो वह 'मलाल' प्रायः सभी रचनाकारों के साथ जुड़ा होता है। हमारा पूरा लेखन, अपने उस सर्वश्रेष्ठ तक पहुंचने की कोशिश भर होता है। इस कोशिश में यानी मेरे पूरे लेखन में 'व्यंग्य' ने बेहद अहम भूमिका निभायी है, विधा के रूप में भी, शैली के रूप में भी। सफर के रूप में भी, साधन के रूप में भी। क्योंकि शुद्ध व्यंग्य लेख से अलग मेरी कहानियों में



त्रिनिदाद में आयोजित संगोष्ठी के अवसर पर देशी-विदेशी साहित्यकारों के साथ सूर्यबाला

भी जहां सिचुएशन्स ने झोली फैलायी मेरी कलम ने अलादीनी चिराग के जिन की तरह हुकूम बजाया। ऐसी कहानियों में 'साऊजी और बंदर', 'एक स्त्री के कारनाम', 'होगी जय पुरुषोत्तम नवीन', 'सुनंदा छोकरी कर डायरी', 'मातम', 'मानुषगंध', 'गजानन बनाम गण नायक', 'शदी और रिमोट', 'शहर की सबसे दर्दनाम खबर' आदि हैं। प्रमुख हैं जिनमें 'सपोर्टिंग आर्टिस्ट' होने के बावजूद कहानी की शक्ति और सौंदर्य व्यंग्य के कंधों पर टिका है। बेशक 'गजानन बनाम . . . और मातम' जैसी कहानियों को शुद्ध व्यंग्य कहानी की श्रेणी में डाला जा सकता है।

'समय' ने भी पिछले दशक वर्षों में जो छलांग लगायी है, उसने भी मनोयोग, से मन मुताबिक लिखने का इत्मीनान छीन लिया है। उसे पाने, जुटाने के लिए हमें ऐड़ी चोटी का पसीना एक करना होता है। अस्त-व्यस्तताओं और आपाधापियों के कम कहर नहीं टूटते। मुझे लगता है कभी-कभी तो लेखक बने रहने के लिए मनुष्य बने रहने वाली शर्तों को भी अनदेखा करना पड़ता है। मुझे आपको पता भी नहीं चलता कि विसंगतियों के खिलाफ चलने वाली हमारी कलम इन्हीं विसंगतियों के साथ कितने गलत समझौते करती चल रही है अनजाने।

एक अंतिम बात जिस तरह लोग मुझे घेर कर पूछते हैं कि आपकी प्रमुख विधा क्या है? . . . (आशय यही कि मैं खुद अपने मुंह से स्वीकार लूं कि व्यंग्य मेरी प्रमुख विधा नहीं है) तो स्वयं मैं भी अक्सर खुद को कटघरे में खड़ा कर यह सवाल दुहराती हूँ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं सायास हठपूर्वक किसी महत्वाकांक्षा के तहत जबरदस्ती जिद ठानकर व्यंग्य के अहाते में जगह छंका कर बैठ गयी हूँ? . . . लेकिन तब रात यह सोच कर मिलती है कि साहित्य के विस्तृत मंच पर प्रवेश के लिए, जिस रचना के माध्यम से मुझे कमलेश्वर जी का प्रमाण-पत्र मिला था, वह रचना, सारिका में छपी 'निर्गुण' जी का एक प्रेम कहानी अब शीर्षक याद नहीं पर लिखी एक व्यंग्य प्रतिक्रिया ही थी और उसका शीर्षक था, 'यादों की चेन में बरसात की रात का एक लॉकेट।'

बी-504, रुनवाल सेंटर, गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार (चेंबूर), मुंबई-88

ज्ञान चतुर्वेदी

जैसी हैं वैसी बनी रहें सूर्यबाला

बहुत कठिन है सूर्यबाला पर लिखना।

ऐसी लेखिका का भी क्या मतलब जो बस लिखने में ही विश्वास करती रही हो? ऐसी कथाकार को क्या नाम देंगे जिसे स्वयं को व्यंग्यकार कहलवाने में गर्व महसूस होता हो जबकि माहौल यह है कि तुरंत में जो जो व्यंग्य की ही खाते-पचाते रहे हैं वे तक स्वयं को व्यंग्यकार कहे जाने पर आहत महसूस करते हैं? जैसी लेखिका का क्या करें कि जिसे यह न पता हो कि हिंदी की आलोचना, संपादन तथा पुरस्कारों की राजनीति में हाईकमान के दफ्तर कहां-कहां हैं और उनको कैसे साधा जाता है? ऐसी लेखिका का क्या करें कि जिसने सारा जीवन घर, पति, बच्चों, गृहस्थी, रिश्तेदारी, चूल्हा करते नष्ट कर दिया हो ओर जिसके कोई ऐसे किस्से ही न हों कि जिन्हें सुरापान करते वह लोग चटखारे लेकर सुना सकें? और ऐसी लेखिका का क्या करें जो अपने पाठकों के सिवाय किसी की चिंता ही न करती हो?

सूर्यबाला ऐसी ही कठिन लेखिका हैं। साधारण सी, सीधी-साधी स्त्री। ऐसे में अब क्या तो लिखो ऐसे व्यक्तित्व पर आज जब तथाकथित स्त्रीविमर्श की चौपर खेलते सिद्धहस्त महिला विमर्शी संपादकों और आलोचकों के बीच गोष्ठियों की तरह वापसी जाती लेखिकाओं का एक समूह साहित्य पर कबिज होने को आतुर है, ऐसे में इस तरह के नकली स्त्री विमर्श के विरुद्ध तीखे और बेबाक व्यंग्य लिखने वाली सूर्यबाला पर लिखकर आप क्यों स्वयं को रुढ़िवादी, पोंगापंथी लेखक कहलवाना चाहेंगे?

आमतौर पर मानना यह है कि सीधे-साधे लोगों के या कोई किस्से ही नहीं हो या फिर बार-बार किस्से होते हैं या फिर वे कहानियां बड़े रूटीन से धार्मिक कहानियां स्वयं ही होती या हो सकती हैं। रंगबिरंगे किस्से जिन्हें पाठक रुचिपूर्वक पढ़ें, वे तो उनके ही होते या हो सकते हैं जिनके बारे में महफिल में फुसफुसाकर बात की जाती है। बहरहाल मैं सूर्यबाला पर इसलिए लिखना चाहता हूं कि पाठक एक ऐसे व्यक्तित्व को जाने जैसे व्यक्तित्व बनाने आजकल ईश्वर ने लगभग बंद कर दिए हैं।

उसका क्या कहेंगे आप ऐसी लेखिका को, जो ज्ञान चतुर्वेदी जैसे लेखक पर मात्र उसे पढ़कर ही, या एक दो पत्र या फोन पर बातें करके ही ऐसा अगाध विश्वास कर बैठे कि उन्नीस सौ पचानवे में अचानक ही उनके निवास पर बिना आमंत्रण या चेतावनी के अचानक आ धमके। ज्ञान चतुर्वेदी को अग्रहपूर्वक पंद्रह हजार रुपए दे दे कि तुम फ्रांस जा रहे हो इतने कम पैसे लेकर तो ये भी साथ रखो। कभी वहां जरूरत हो तो? आओ तो लौटा देना। मैं कार्डियोलॉजी ट्रेनिंग के लिए फ्रांस जा रहा था। जीवन में मेरी पहली विदेश यात्रा फॉरेन एक्सचेंज क्या होता है, इससे पहले पता ही नहीं था। थोड़े

बहुत फ्रेंक लेकर भोपाल से चल दिया फ्रांस का फतह करने। रात की उड़ान थी। बंबई सुबह पहुंच गया, हां किसी को जानता नहीं था। सूर्यबाला से भी पहले कभी मिला नहीं था। फिर भी न जाने कौन सा विश्वास था मन में कि भेल के गेस्ट हाउस में सीधे उनके घर। पहली मुलाकात और ऐसी आत्मीयता या तो आपकी दीदी दे सके या मां। पता ही नहीं चला कि यह मेरा घर नहीं है। कितनी बातें। पेट भर खाना खिलाया। यहां वहां की गप्पे चलीं। कि बातचीत में ही अचानक उनको पता चला कि इतने कम पैसे लेकर मैं बाहर जा रहा हूं। इन्होंने तभी दो तीन घंटे पहले घर का कुछ कबाड़ बेचा था वे पैसे घर पर थे खुद के पैसे। जबरन पकड़ाये मुझे। फिर पता करके बताया कि चर्चगेट पर फॉरेन एक्सचेंज मिलेगा। व्यवस्था कराई। मैं बाद में रास्तेभर सोचता रहा कि क्या रिश्ते होते हैं जिनका कोई नाम नहीं होता। पर जो इतने प्रगाढ़ और ऐसे पवित्र होते हैं कि लगते हैं कि जन्मों से हम इस व्यक्ति को हम जानते हैं। . .यह बात अलग हुई कि मैं उतना खर्च नहीं कर सका। मेरी पत्नी शशि कहती है कि तुम कंजूस हो। पता नहीं कि हूं कि नहीं। हां फिजूल खर्च नहीं हूं। नहीं खर्च किए। बंबई लौटते से सबसे पहले वापस करने निकल पड़ा तो सूर्यबाला की आत्मीय फटकार कि ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी रेजमरी?

मुझे नहीं मालूम था कि सूर्यबाला के साथ अपने संबंध को कैसे परिभाषित करूं? मां कहूं, बड़ी भेनजी कह दूं, दोस्त कह दूं, अपनी प्रशंसिका कह दूं, मेरी प्रिय लेखिका कहूं- क्या कहूं? वे सब कुछ एक साथ हैं। मेरे लेखन की घनघोर प्रशंसिका हैं। इतनी पीठ ठोकती हैं और पीठ ठोकने के लिए लंबे-लंबे ट्रंकॉल करती हैं। वे मेरी इतनी सहज प्रशंसक हैं कि मैं असहज हो जाता हूं। पर उनकी प्रशंसा सुनकर मुझे बड़ा भला भी लगता है। ठीक वैसे ही जैसे कि मेरे मां या भाई मेरी रचना की तारीफ करते हैं तो उसमें रचना से ज्यादा मेरे प्रति प्रेम ही झलकता है। ठीक वही। मैंने भी उनकी हर रचना पढ़ी है। मैंने उनकी कहानियों के लिए 'साक्षात्कार' के लिए उनसे एक बार इंटरव्यू लिया था, जिसका अलग ही किस्सा है। मैं भोपाल से टेलीफोन पर लंबे-लंबे प्रश्न उन्हें लिखता रहा और वे बंबई में प्रश्न पाकर ऐसे गदगद हो रही थी कि ज्ञान ऐसे प्रश्न सिर्फ तुम ही कर सकते हो। बहुत लंबा इंटरव्यू बना था वह। वे बच्चों की तरह उत्सुक थीं कि उन्होंने मेरे 'ट्रिकी' प्रश्नों पर जो उत्तर दिए हैं उनके बारे में ज्ञान की राय क्या ही होता रहा? वो उत्तर कि लिखा न? तुम देखो। तुम बताओ। बालसुलभ सहजता मेरे भोलापन जो मायने या तो किस्सों में पढ़ा होगा या जिसे हम गप्प मान सकते हैं। पर सूर्यबाला तो यही हैं। किस्सों सी। परिकथाओं सी।

एक दिन फोन आया कि ज्ञान, मुझे एनजाइनी हो रहा है और

डॉक्टर एन्जियोग्राफी करने वाले हैं। मैं यहां भोपाल आकर बहुत सारे लेखक मित्रों का फोन वाला डॉक्टर हूं। मित्र लेखक तथा अग्रज मुझे से यदा कदा डॉक्टरी सलाह लेते रहते हैं। भोपाल शहर में भी और बाहर से भी। ज्ञानरंजन, जितेन्द्र भाटिया, प्रभु जोशी, कन्हैयालाल नंदन, सरोज कुमार, वीणा सिन्हा, हरि भटनाटकर, नवीन सागर, हरि नारायण, महेश करारे, स्व. नईमजी और प्रेम जनमेजय। ऐसे ही कई नाम। मैंने सूर्यबाला से यही कहा कि आपको कुछ नहीं निकलेगा। पर करवाया। कुछ नहीं निकला। वही अस्पताल से फोन करके बताया कि सब ठीक निकला है। फिर पांच महीने बाद एलियोजफी का कुछ कॉम्प्लीकेशन हो गया। बड़े कष्ट में रही कुछ दिनों तक सूर्यबाला। रोज फोन पर सलाह होती। दुख शेयर किए जाते। बात तबीयत से शुरू होकर दुनिया के हर दुख-सुख तक जाती। सूर्यबाला जैसी बड़ी लेखिका और मेरे जैसा एक छोटा-सा डॉक्टर- पर साहब, क्या तो उनका मेरे ऊपर विश्वास और क्या ही मेरी बातों को पंखर की तामीर सा मानना। इन दिनों मैंने एक नई सूर्यबाला को जाना जो बेहद मानवीय संवेदनशील Vulnerable, Frangible और मेले में भटक गई बच्ची सी असुरक्षा भाव से भरी थी। बीमारी में हर सीधा-साधा व्यक्ति ऐसा ही हो जाता है शायद. . .

मैं भोपाल आ रही हूं। तुम मुझे केनियन स्कूल के पास की कॉलोनी से ले लेना। वे फोन कर रही हैं। रिश्तेदार हैं उनके भोपाल में। सूर्यबाला यदि भोपाल से इमरजेंसी हो मुझे फोन अवश्य कर लेंगी कि यह शख्स बाद में बुरा मानेगा कि भोपाल की हवाओं को आपके यहां से गुजरने का पता था तो ज्ञान चतुर्वेदी को क्यों नहीं? मैं उनको लेकर घर आया। शशि से मिली। बच्चे तक स्कूल में थे। नेहा और ध्रुव से खूब प्यार किया। घर तक न जाने क्या-क्या पूछती रहीं। शशि से पूरा हाल लिया मानों घर पर कोई बड़ी आ गई हों और चिंतित हों सब कुछ जानने को। चार-पांच घंटे रहीं। रख बातें। लेखन की, लेखकों की। लेखन की राजनीति का मैं भी बहुत ज्ञानी तो नहीं परंतु सूर्यबाला से तो बेहतर ही जानता हूं इस प्रपंच को। सुनाता रहा। वे हर बात पर कहतीं कि देखो हमें तो यह पता ही नहीं। . . अरे, ऐसा भी होता है कहीं? अच्छा!! . . बच्चों से वायदे हुए कि बच्चों के लिए लिखी- अपनी किताबें बंबई पहुंचते ही भेजूंगी। भेजी भी। मेरी बेटा नेहा अब डॉक्टर बन गई है और बेटा इंजीनियर- पर ये सूर्यबाला को वैसा ही याद रखे हैं। फिर तो आप जब भी भोपाल आतीं हम मिलते ही। एक लंबा सिलसिला कभी-कभी मिलने और कभी-कभी लंबे फोन कॉल्स का बना हुआ है हमारे बीच। दुनिया की बातें। मेरी इतनी तारीफ कि मुझे स्वयं से ईर्ष्या हो जाए। कहती हैं कि पीठ टूटने के डर से ज्यादा पीठ थपथपाती नहीं हूं तुम्हारी वरना खूब थपथपाऊं। पता नहीं कि कभी यह हाल है तो सच में थपथपाती तो क्या करती।

मेरा मत है कि लेखक को बस लिखना, लिखना और लिखते रहना चाहिए। नाम, पुरस्कार, पहचान, ख्याति सब अपने आप पीछे-पीछे आता है। और न भी आये तो परवाह नहीं करनी चाहिए। मुझे वे लेखक दयनीय नजर आते हैं जो एक किताब छपवाने के बाद उसकी समीक्षा, पुरस्कार आदि के जुगाड़ में इतने व्यस्त हो जाते हैं, मानो लड़की की शादी में लगे हों। हो सकता है कि मुझे दुनियादारी से अनजान बेवकूफ ही माने- पर मैं ऐसा ही हूं और यही मानता हूं। सूर्यबाला को देखकर मुझे और मेरी इस धारणा को बल मिलता है

ज्ञान चतुर्वेदी- आप व्यंग्य तो लिखती हैं लेकिन मजेदार बात यह है कि आपकी कहानी से व्यंग्य नदारद है। और आपके व्यंग्य प्रायः कथात्मक नहीं हैं। जबकि मुझे



यह लगता है कि कहानी का यह लंबा अनुभव यदि आपकी व्यंग्य कथाओं के रूप में आ पाता तो शायद एक नई बात पैदा होती। यह कंपार्टमेंटलाइजेशन सायास है या अनायास?

सूर्यबाला- परिश्रमपूर्वक सुनियोजित व्यंग्य रूपक या व्यंग्य कथा मैं नहीं लिख पाई। सोचा कई बार लेकिन हो नहीं पाया जैसा तुम्हारी कुछ लाजवाब व्यंग्य कथाओं में हुआ है, शंकर पुणतांबेकर और प्रेम जनमेजय ने भी ऐसे सफल प्रयोग किये हैं। मेरा बहुत सारा समय और शक्ति कहानी में चुक जाती है। अब दो-दो नावों में पैर देने वाला तो डूबता ही है न! और मेरे तो इतनी नावें, इतने घाट फिर भी कुछ शुरुआती और एकाध इधर की व्यंग्य रचनाओं में कथा-प्रवाह का आभास आया है जैसे- 'सोफानामा', 'किस्सा-ए-खानम्', 'बन गई मेरे उपन्यास पर कला फिल्म', 'और इधर के', 'भगवान ने कहा था', 'गणनायक बनाम गजानन' आदि। इसी तरह कहानियों में भी, जहां जीवन के अंदरूनी और ऊपरी व्यंग्य विद्रूप उभरे हैं वहां छोटे व्यंग्य प्रसंग बन पड़े हैं। जैसे 'होगी जय पुरुषोत्तम नवीन', 'बाऊजी और बंदर', 'माय नेम इज ताता', 'मातम', 'सुनंदा छोकरा की डायरी' आदि में व्यंग्य की भरपूर ब्लेंडिंग है।

‘साक्षात्कार’ से आभार

कि लिखो और लिखते रहो, बस लिखते ही जाओ। मेरी तो यही कामना है कि सूर्यबाला वैसी ही सूर्यबाला बनी रहें। हिंदी साहित्य की राजनीति को न ही समझें तो बेहतर। मंच, पुरस्कार, ढोल ढमाके, सेमीनार, गोष्ठी, मुख्य अतिथि, सम्मान, कमेटी के प्रलोभनों से यूं ही बची रहें। यही मेरी कामना है। और यही कामना उनके हजारों पाठकों की भी होगी ही।

ए-40, अलकापुरी, भोपाल

यज्ञ शर्मा

बड़ी बहन, मौसी और एक सामान्य भारतीय गृहिणी- सूर्यबाला

क्या आप कभी सूर्यबाला से मिले हैं? वे कहीं से भी हिंदी लेखक जैसी नहीं लगतीं। सामान्यतः हिंदी लेखक की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि अगर आप हिंदी नहीं जानते तो भी पांच-सात मिनट में जान जाते हैं कि सामने खड़ा व्यक्ति हिंदी लेखक है। सूर्यबाला के साथ ऐसा नहीं होता। वे सभी को बड़ी बहन या मौसी जैसी लगती हैं। उनके चेहरे पर हमेशा एक मधुर मुस्कान खेलती रहती है। स्नेह उनके चेहरे से बरसता रहता है। बोलती भी इतने सुर में हैं कि यह जानकर ताज्जुब होता है कि वे व्यंग्य भी लिखती हैं। मेरी उम्र उनसे ज्यादा है, लेकिन मुझे भी वे बड़ी बहन या मौसी जैसी ही लगती हैं। हाल ही में उनका नया व्यंग्य संग्रह आया है, 'भगवान ने कहा था'। अगर आप सोच रहे हैं कि मैं संग्रह की चर्चा करने से पहले उनके व्यक्तित्व की चर्चा क्यों कर रहा हूँ, तो उसका कारण यह है कि उनका स्वभाव जानने के बाद उनके व्यंग्य बेहतर समझे जा सकते हैं।

अगर आप हिंदी के पाठक हैं तो आप भी जानते होंगे कि जिस रचना के साथ सूर्यबाला का नाम जुड़ा हो उसे पढ़े बिना आप नहीं रह सकते। हिंदी कहानी के क्षेत्र में सूर्यबाला का नाम बड़ा प्रतिष्ठित है, पर हिंदी गद्य व्यंग्य के क्षेत्र में भी कोई कम प्रतिष्ठित नहीं है। 'भगवान ने कहा था' में उनकी 23 रचनाएं संकलित हैं। 'भगवान ने कहा था' संकलन की शीर्षक रचना है। भक्त भगवान के अनेक रूप देखते हैं। एक रूप सूर्यबाला के व्यंग्यकार ने भी देखा। भगवान सर्वव्यापी माने जाते हैं। सूर्यबाला के भगवान मंदिर तक सीमित हैं। भगवान सर्वशक्तिमान हैं। सूर्यबाला के भगवान लाचार हैं। भगवान भक्तों की मनोकामनाएं पूरी करते हैं। सूर्यबाला के भगवान अपने मंदिर के कलश का उखड़ा पतरा तक ठीक नहीं करवा सकते। तो, पतरा ठीक होगा कैसे? भगवान को किसी समर्थ अधिकारी से निवेदन करना पड़ेगा। और भगवान अपने से बड़ी शक्ति से- शासन के संस्कृति सचिव से, रिरिया कर निवेदन करते हैं कि क्या उनके कलश के पतरे की मरम्मत हो सकती है? इस देश में सरकार सबकी अंतिम शरणस्थली है- भगवान की भी। कुछ दिन पहले सुप्रीम कोर्ट के एक जज ने कहा भी था- 'इस देश को भगवान भी नहीं बचा सकता'।

'भगवान ने कहा था' की कई रचनाएं आत्मकथात्मक हैं। उनमें से चार वक्तव्यों के रूप में हैं, जिनमें सूर्यबाला ने यह समझाने की कोशिश की है कि वे व्यंग्य क्यों लिखती हैं। जब आप इन



श्याम गोइन्का, मुकुल उपाध्याय एवं विश्वनाथ सचदेव से वाग्देवी सम्मान ग्रहण करतीं सूर्यबाला

वक्तव्यों को पढ़ेंगे तो आप तुरंत जान जाएंगे कि उनके लेखन में कटाक्ष इतने स्वाभाविक रूप से कैसे आ जाते हैं। जैसे कि 'मेरे व्यंग्य लिखने के कारण' में वे लिखती हैं- 'जिन लोगों को इन दिनों लिखने के लिए कुछ नहीं मिल पा रहा था, अर्थात् जो लोग लिख नहीं पा रहे थे, वे अब न लिखने के कारणों पर लिखकर लेखक बने रह सकते हैं'। आगे वे कहती हैं- 'मेरे लिखने का कारण वे स्वनामधन्य संपादक भी हैं जो मेरी रचनाएं बिना पढ़े ताबड़तोड़ छाप देते हैं, जबकि दूसरे लेखकों की मुझसे कहीं अच्छी रचनाएं बिना पढ़े ही वापस कर देते हैं 'ऐसा इन लेखकों का कहना है'।

कई बार सूर्यबाला के व्यंग्य बड़े नर्म-नर्म से महसूस होते हैं, कारण आप जान ही गये हैं- उनका स्वभाव। बड़ी बहन या मौसी खीझ तो सकती है, नाराज नहीं होती। मां समान महिला के मन में व्यक्तिगत दुर्भावना नहीं होती। तभी तो 'सब्र का अंत ही व्यंग्य की शुरुआत' रचना में सूर्यबाला व्यंग्य के संबंध में अपना मंतव्य स्पष्ट



व्यंग्यभूषण सम्मान तथा वाग्देवी सम्मान ग्रहण करने के बाद प्रेम जनमेजय एवं सूर्यबाला

करती हैं- 'यह धुलाई और धुनाई व्यक्ति की नहीं, उसके मुखों और मुद्राओं की होती है, प्रवृत्तियों और विसंगतियों की होती है। इसलिए व्यंग्य में व्यक्तिगत कुछ नहीं होता, न राग-द्वेष और न क्षुद्रता-संकीर्णता।

व्यंग्यकारों पर अकसर यह आरोप लगता है कि वे अपनी बिरादरी के लोगों यानी लिखने वालों को छोड़ देते हैं। जात-बिरादरी प्रधान इस देश में यह अस्वाभाविक भी नहीं है। लेकिन सूर्यबाला के लिए कुछ भी अस्वाभाविक नहीं होता। अपनी रचना 'साठ के हुए लेखक' में वे लिखती हैं- 'जिस तरह विदेहराज जनक देह होने पर भी 'देहखाव' छोड़ चुके थे, उसी प्रकार साठ का हुआ लेखक भी लिखना-पढ़ना लगखग छोड़ चुका होता है। उसे लिखने-पढ़ने की ज़रूरत भी नहीं होती। कारण- वह किसी भी विषय अथवा पुस्तक पर कुछ भी बोल सकता है, बिना जाने कि विषय क्या है और पुस्तक कौन-सी है। साप्ताहिक भविष्य-फल की तरह उसका कहा हर विषय, हर पुस्तक और हर अवसर पर ठीक बैठता है।' 'स्नेहलता व्यंग्यभूषण' तथा अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने जब व्यंग्य यात्रा पत्रिका का संपादन-प्रकाशन प्रारंभ किया था, तब सूर्यबाला ने उन्हें एक पत्र में लिखा था- 'मिथक से सबक लो, समझदार को इशारा काफ़ी कि लेखकों को पारिश्रमिक देकर संपादकों की जात से रार मत मोल लो। उनकी चलाई परंपरा और नीतियों के हिसाब से चलो। लेखक को हमेशा उसकी औकात में रखो।'।

लेखकों के अलावा सूर्यबाला की एक बिरादरी और है- महिला। सूर्यबाला महिला बिरादरी को भी उसकी विसंगतियों के लिए नहीं बख्शातीं। अपने इस संकलन में उन्होंने स्त्री-मुक्ति और स्त्री-विमर्श के ढकोसलों पर भी कलम चलाई है। 'पांच सितारा लेखिका सम्मेलन' रचना की ये पंक्तियां देखिए- 'प्रायः हर लेखिका के खाते में दो-तीन सरकारी-गैरसरकारी गाड़ियां, चार-छह नौकर-गुमाश्ते और इतनी ही स्वरचित, संपादित पुस्तकें दर्ज थीं। वे निकट भविष्य में विभिन्न विधाओं में अनेक पुस्तकें लिखने की घोषणा भी कर चुकी थीं। कोठियों और पेंट हाउसों वालियों में प्रायः सभी की

आत्मकथाएं भी आ चुकी थीं।'

सूर्यबाला के 'भगवान ने कहा था' संकलन में राजनैतिक व्यंग्य नहीं हैं, लेकिन राजनीति भी कोई भगवान से कम नहीं होती। जहां ज़रूरत नहीं होती वहां भी पहुंच ही जाती है। सूर्यबाला की रचनाओं में खी कहीं-कहीं राजनीति आ ही जाती है। लेकिन सूर्यबाला राजनीति को ज़्यादा देर तक टिकने नहीं देतीं, दो-चार वाक्यों में ही उसे चलता कर देती हैं।

हर व्यक्ति के अंदर अकसर दो व्यक्ति होते हैं। सूर्यबाला के अंदर तीन हैं। अद्भुत कहानी लेखिका हैं। प्रखर व्यंग्य लेखिका हैं। साथ ही, सामान्य भारतीय गृहिणी भी हैं। वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचने पर सबसे पहले किसी दबंग व्यक्ति का चित्र मन में उभरता है। लेकिन, जैसा कि इस लेख के प्रारंभ में ही कहा गया है, जब आप उनसे मिलते हैं तो वे आपको एक स्नेहशील बड़ी बहन या मौसी जैसी ही लगती हैं। सिर्फ लगती नहीं हैं, उनका स्वभाव ही वैसा है। निजी जीवन में उनका व्यक्तित्व किसी सामान्य भारतीय गृहिणी जैसा ही है। अपने घर में, अपने परिचित परिवेश में (और सूर्यबाला के मामले में अपने लेखन के क्षेत्र में भी) भारतीय महिला बड़े आत्मविश्वास के साथ अपने काम निपटाती हैं। लेकिन जैसे ही वह अपने जाने-पहचाने माहौल से बाहर निकलती वह आत्मविश्वास जैसे गायब हो जाता है। वह एकदम असहाय नज़र आने लगती हैं। व्यंग्य लेखक अक्सर दूसरों की कमज़ोरियों की परतें खोलते हैं, लेकिन सूर्यबाला खुद अपने को भी नहीं बख्शातीं। विदेश यात्रा से संबंधित अपनी एक रचना 'यात्रा एक सम्मेलन की' में सूर्यबाला ने अपनी असहायता और बौखलाहट का बेहद रोचक वर्णन बड़ी बेबाकी से किया है। सूर्यबाला अपने व्यंग्यों में खुद को भी बख्शातीं नहीं हैं।

सूर्यबाला के बारे में एक सवाल अकसर पूछा जाता है कि वे कहानी लेखिका हैं या व्यंग्य लेखिका हैं? आपको अंदर की बात बताऊं, वे दोनों हैं। इस तरह के विभाजन मंच पर होते हैं, जिंदगी में नहीं। जीवन में आप जो कुछ करते हैं, वह आपके व्यवहार और स्वभाव के अभिन्न अंग होते हैं। मां को जब बच्चे को डांटना होता है तो वह डांटती है और जब पुचकारना होता है तो पुचकारती है। जीवन में तो कोई नहीं पूछता कि यह कौन-सी मां है- डांटने वाली या पुचकारने वाली! सूर्यबाला पुचकारने वाली लेखिका भी हैं और डांटने वाली भी। दोनों उनके रचनात्मक चरित्र के हिस्से हैं और शायद व्यक्तिगत चरित्र के भी। इसीलिए उनकी रचनाओं में जब जैसी स्थितियां आती हैं, उनके अनुरूप स्वर भी उभर आते हैं। उनकी कहानियों में कटाक्ष स्पष्ट दिखाई देते हैं, तो उनके व्यंग्यों में कहानियों जैसी संरचना भी साफ दिखाई देती है। रचना का प्रमुख स्वर क्या होगा- व्यंग्य या भावनात्मकता, जाहिर है यह विषय-वस्तु पर निर्भर होगा। यही कारण है कि उनकी कहानी लेखिका को उनकी व्यंग्य लेखिका से अलग नहीं किया जा सकता। वैसे, करने की ज़रूरत भी क्या है? जब हम जिंदगी को टुकड़ों में नहीं जीते तो लेखन को क्यों जिएं?

बी-10, जमुना दर्शन, बांगड़ नगर
गोरगांव (पश्चिम), मुंबई 400 090

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

सूर्यबाला का व्यंग्य-कर्म

एक समर्थ कथाकार को स्वतंत्र रूप में लेखन की क्या अनिवार्यता हो सकती है? कथा साहित्य में तमाम अवसर हैं, जहाँ वह अपने व्यंग्यात्मक तेवर खपा सकता है। लेकिन जब समूचा परिवेश विडम्बनाओं की पकड़ में हो, परिस्थितियाँ उकसाने वाली हों, बदलाव की कौंध धूमिल सी हो तब शायद व्यंग्य लिखे बगैर काम नहीं चलता। बहुत पहले अंग्रेज व्यंग्यकार जुवेनल ने अपने व्यंग्य लिखने का कारण बताते हुए जो कुछ लिखा था वह आज भी सत्य और सटीक है: 'दुष्टता और भ्रष्टाचार, जीवन में इतने अधिक व्याप्त हो गए हैं कि एक ईमानदार व्यक्ति के लिए व्यंग्य न लिखना असंभव है।' सूर्यबाला जी के व्यंग्य कर्म के पीछे जीवन की इन्हीं विसंगतियों का गहरा दबाव सक्रिय लगता है। भगवान ने कहा था 'में संकलित' 'सब्र का अंत ही व्यंग्य की शुरुआत में उनका एक वाक्य है, 'व्यंग्य झूठ व फरेब के खिलाफ होता है।' हालाँकि वे इस तथ्य से अवगत हैं कि 'हिंदी में व्यंग्य लिखकर नाम, यश कमाना असान नहीं है।' लेकिन इसमें दो राय नहीं है कि सूर्यबाला ने 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'भगवान ने कहा था' सरीखे व्यंग्य संकलनों से न केवल यश अर्जित किया है, अपितु अपने शिष्ट व्यंग्य लेखन से अपनी स्वतंत्र पहचान भी बनायी है।

एक व्यंग्य तत्काल शीर्षक रचना में लेखिका ने परिवेश के निरंतर भयावह, त्रासद और असहनीय होते जाने का उल्लेख किया है, 'व्यंग्य में सबसे बड़ी समस्या सिर्फ यह है कि जिन स्थितियों पर दसों वर्ष पूर्व आप व्यंग्य लिख सकते थे, वे आज आपकी दैनिक दिनचर्या की अविभाज्य अंग बन चुकी हैं। पहले जिन दृश्यों, बातों, कृत्यों पर आप सिहर कर कांप उठते थे, सिर शर्म से झुक जाया करता था, आज आप उन्हें सरेआम देखने सुनने के लिए लाचार हैं।' बतौर लेखक सूर्यबाला के लिए भी इन हादसों को देखना-सुनना एक लाचारी हैं, किंतु इन्हें देख-सुनकर व्यंग्य लिखने की एक सर्जनात्मक लाचारी भी है, जिसे वे एक लाक्षणिक उक्ति- 'मुझे पागल कुत्ते ने काटा है' के माध्यम से स्वीकृति देती हैं। उनके पास व्यंग्य-प्रहार के विषयों की कमी नहीं है। वे राजनीतिक कदाचार, धार्मिक, सामाजिक, विडम्बना, मध्यवर्गीय टुच्चेपन से लेकर साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में पनपने अधःपतन तक समान अधिकार से लिखती हैं। बहुत सहज ढंग से किसी विसंगति, विडम्बना पर अंगुली रखते हुए बगैर उग्र और कटु हुए वे समूचे छद्म को उधेड़ कर रख देती हैं।

यह आकस्मिक नहीं है कि सूर्यबाला ने साहित्य, कला, फिल्म और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े मुद्दों पर प्रचुर मात्रा में लिखा है। वस्तुतः गत दिनों इन क्षेत्रों में अवमूल्यन और अपसंस्कृति का वर्चस्व बढ़ा है और यह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को चिंतित कर सकता है। 'बन गयी मेरे उपन्यास पर एक अदद कला फिल्म',

'मेरी आत्मकथा के कुछ महत्वपूर्ण अंश', 'यादें न जायें हाये' . . . 'रचना शिविर की अंतिम यात्रा की', 'मेरा टॉमी बनाम फिल्म स्टार', 'हिंदी साहित्य और पति', 'रचनात्मक आयोग से बचते बचाते' आदि दर्जनों व्यंग्य इस संदर्भ में पढनीय और विचारणीय हैं। इन रचनाओं की ध्वनि है कि 'कला' प्रायोजित और व्यावसायिक, हो गयी है, चाहे चित्रकला हो या फिल्म कला। पुरस्कार मखौल बन गए हैं और साहित्य 'बाजार' की शर्तों पर लिखा और बेचा जा रहा है। कला फिल्म में टोटल इफेक्ट के नाम पर कैमरामैन अंधेरे की शूटिंग करता है और उसे हम विलक्षण प्रयोग पर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा जाता है। फिल्म जनता की समझ में न आए तो न जाए। साहित्य में पुरस्कार ज्यादातर देशी हैं और प्रायोजित भी। इन पुरस्कारों का एक पक्ष यह भी है— 'हर लेखक अपने पिता, पुत्र, पत्नी (दिवंगत होने की स्थिति में) के नाम से एक पुरस्कार घोषित कर उसे तत्काल अपने एक मित्र के नाम आवंटित कर देता है। पुरस्कृत मित्र भी ठीक यही प्रक्रिया दोहराता है और इस प्रकार कालांतर में दूसरा मित्र भी अपुरस्कृत रह जाने के कलंक से मुक्ति पा लेता है। निरंतर प्रगति करती हुई यह प्रक्रिया तेजी से लेखकों की एक विशाल जनसंख्या को पुरस्कृत करने का दृश्य भयावह है और यहाँ पुरस्कृत करने का अर्थ स्वयं को प्रकाश में लाना है। पुरस्कार समिति के लोग डॉक्टर को पुरस्कृत करने का प्रलोभन देकर उससे मरणासन्न साहित्यकार को किसी किसी तकिए से टिकवा देते हैं और स्वयं मुदित भाव से तस्वीरें खिंचवा कर तृप्त हो लेते हैं।

साहित्य में पिछले दिनों बहुत से राजपत्रित अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों, राजनेताओं के नाम 'रचनाकार' के रूप में बहुत चर्चित हुए हैं। इस विडम्बना पर लेखिका अपनी तलखी को छिपा नहीं पायी है— 'जो बड़ा साहित्यकार होता है, वह बड़ा अफसर हो न हो, लेकिन जो बड़ा अफसर होता है, वह या उसकी पत्नी या दोनों ही उच्च-कोटि के साहित्यकार होते ही होते हैं।' साहित्य में 'सर्जन' के बजाय सनसनी फैलाकर चर्चित होने की प्रवृत्ति 'रचनात्मक आयामों से बचते-बचाते' में निशाने पर है। साहित्य में सन्नाटे की बात करने वाले कुछ सर्जनात्मक लिखकर इस जड़ता को नहीं तोड़ना चाहते, गैर साहित्यिक कार्यों का आयोजन करते हैं, वैचारिक धरातलों पर दंगल लड़ते हैं, मंचीय गतिविधियाँ सक्रिय होती हैं लेकिन 'सन्नाटा अपनी जगह कायम। क्योंकि साहित्य वहाँ था ही नहीं। इन सारे ताम-झामों से दूर साहित्य कहीं लिखा जा रहा था, पढ़ा भी जा रहा था, समझने-समझाने की कोशिश भी जारी थी, बस शोरगुल नहीं हो पा रहा था।'

'बन गयी मेरे उपन्यास पर एक अदद कला फिल्म' कई अंतर्विरोधों को उजागर करती है। 'कला फिल्म' बनाने के नाम पर अंततः व्यावसायिक फार्मूलों की घुसपैठ, बाजार की मांग पर रचना

का चीरहरण और कुछ रुपयों के लोभ में रचनाकार की सहमति ये सब नेपथ्य की वास्तविकताएं हैं। जब लेखिका फिल्म में नायिका को वस्त्रविहीन देखने को प्रस्तुत नहीं होती तो उसे देश-विदेश के अनेक कलात्मक प्रयोगों के हवाले से राजी करने का प्रयास होता है। वह राजी हो जाती है, लेकिन पारिश्रमिक के पांच हजार रुपयों की वृद्धि के बाद। इसी रचना में फिल्म जगत की भाषा का संदर्भ भी है। लेखिका हिंदी साहित्य लिखती है अतः उसकी भाषा का यह रूप स्वाभाविक है, 'मेरी हार्दिक आकांक्षा थी कि. . .'। लेकिन फिल्म-निर्देशक के प्रतिवाद करने पर भाषा इस रूप में ढालनी पड़ती है। 'मेरा दिली अरमान है कि. . .'। हिंदी के प्रति गैर जिम्मेदार रवैया केवल फिल्म वालों का नहीं है, 'अगली सदी का शोध पत्र' में संकेत है कि जनतांत्रिक सरकार का दृष्टिकोण भी कम आपत्तिजनक नहीं है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी के बारे में सरकारी निर्देश कुछ इस किस्म के रहे, '...साक्षात्कारों तथा स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के अध्ययन तक हिंदी के जरिए जो पहुंचने की कोशिश करेगा, उसका प्रमोशन, परीक्षाफल, फाइल, आवेदन, अनुरोध, प्रार्थना तथा सारे अटके पड़े काम हमेशा के लिए अटके रह जाएंगे। वह लोगों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाने वाला उपेक्षा का पात्र होगा।' इस तरह के निर्देशों से कुछ समझदार तबकों और विशेषतः युवा पीढ़ी ने यह सबक सीखा है कि सभी देशी भाषाओं का एक भी शब्द सार्थक नहीं है— 'गये जमाने की भाषा में कहें तो'— 'एक भरोसो एक बल एक आत्मविश्वास'— अंग्रेजी का— और समझो बेड़ा पार— धन्य-धन्य' (नौनिहाल नामा बनाम शीशा हो या दिल)।

चाहे सूर्यबाला मीठी चुटकी ले रही हो या किसी विसंगति पर टूटी पड़ रही हों, उनकी अपनी 'दृष्टि' बराबर ध्वनित होती है। भाषा-समस्या हो या भ्रष्टाचार की भयावहता, शिक्षा जगत की कोई फांस हो या साहित्य कला की कोई कुरूप स्थिति, सर्वत्र एक प्रतिवाद का स्वर है और उसे एक स्थूल अवधारणा 'व्यवस्था विरोध' के तहत रख और देख सकते हैं। हिंदी पढ़ाये जाने की शैली 'अजगर करे न चाकरी' में समग्र शिक्षा तंत्र की पोल खोलती है— 'हमने विश्वस्त सूत्रों से पता चलाया था कि उनकी अध्यापिका और उन अध्यापिका की अध्यापिका' को भी इस दोहे गूढ़ार्थ नहीं मालूम था इसलिए गूढ़ार्थ न समझा पाने की यह सुखद परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रभित होती चली गयी। विद्यार्थी और शिक्षक बड़े फन्न से इस गौरवशाली परम्परा को ढोते हुए गूढ़ार्थ समझने-समझाने की फजीहत से बचे रहे।' यह उदाहरण पीढ़ी दर पीढ़ी पुष्ट होते हुए छल की न केवल भर्त्सना करता है अपितु उस व्यवस्था को दोषी भी ठहराता है, जिसमें हर तरह के छल की सुविधा और गुंजाइश है। संस्पेंड न हुए प्रियतम की त्रासदी' में व्यवस्था का कुरूप चेहरा सरकारी दफ्तरों के ब्याज से अनावृत्त हुआ है, जहां 'भ्रष्टाचार' खुलेआम समता, न्याय, ईमानदारी आदि मूल्यों को चुनौती दे रहा है।

'अरे अपने पैसे से खरीदी तेजाब छिड़क कर अटेंडेंस रजिस्टर के पन्ने के पन्ने गायब किए हैं। रातों रात हजार के आंकड़ों को लाखों में तब्दील करके चेहरे पर शिकन नहीं आने दी। टेंडर के टेंडर मनमानी खानापूरियों से भर दिए। एक जरा से इंक-इरेजर की मदद से सैकड़ों पचासों नामों का आबूदाना रजिस्टर से उड़ाया और बसाया। कितनी की कितनी पुलिया, सड़के नक्शे में ही खुदवाई और नक्शे में ही बाढ़ में बहवाई।'

इस उद्धरण में 'अपने पैसे', 'रातों रात', 'एक जरा से', 'कितनी की कितनी' जैसे पद विडम्बनात्मक, स्थितियों को और सघन तथा तीक्ष्ण बनाने में सफल हुए हैं। 'अथक अकर्मण्यक यज्ञ-उपदेशामृत', 'देश सेवा के अखाड़े में', 'रंग बदल नीति और खरबूजे', 'बड़े बाबू बिलॉक साहब. . .', 'देश सेवा की तालमेल किश्तें', 'दल निर्माण की पूर्व संध्या पर' आदि रचनाओं में व्यवस्था के महत्वपूर्ण स्तंभ-सत्ता, विरोधी पक्ष, अधिकारी आदि निशाने पर हैं। स्वास्थ्य विभाग की कारगुजारियों का कच्चा चिट्ठा 'बड़े बाबू बिलॉक साहब बनाम. . .' में प्रत्यक्ष हैं। 'इसी शहर में डी.डी.टी. की जगह धूल-मिट्टी छिड़काव कर कितने कीटाणुओं की जानें बचाई हैं साहबजी। उन सबकी दुआएं नहीं लगेंगे क्या? डेढ़ पंक्तियों का यह उद्धरण पर्याप्त हैं यह बताने के लिए कि हमारी विकास योजनाओं के सुफल जनसाधारण तक क्यों नहीं पहुंचें?'

'जनतंत्र' जिन हाथों में सुरक्षित समझा जाता है, वे तत्व अवसरवाद और दलबदल को राजनीति को एक रणनीति मात्र मानते हैं। सरकार गिराने के लिए एक नए दल के निर्माण के अवसर पर जनप्रतिनिधियों के मुखारबिन्द से जो कुछ सुनने को मिलता है, वह हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था के मुलम्मे को उतार देने के लिए काफी है। एक विपक्षी नेता की आत्म स्वीकारोक्ति है— 'और मैं आपको बता दूं कि आपके इस लोकतंत्र की रक्षा के लिए जितने सदस्य मैंने और पार्टियों ने फोड़े हैं, उतने आपने नहीं। आप अध्यक्ष बनाते हैं, मुझे या मैं उठाऊं अपने फोड़े हुए सदस्यों की सूची का खोंमचा? तमाम ग्राहक खड़े हैं लोकतंत्र, जनतांत्रिक मूल्यों और जनहित को मुंह मांगे दामों में खरीदने के लिए।' राजनीति और अपराध जगत के कुत्सित गठजोड़ पर 'सिफर हो गयी राजनीति और सूत उवाच' में तीखी टिप्पणी है— 'बस यहीं इन निरीह आत्माओं की घिघी बंध जाती है। ये भय से थरथर कांपने लगती हैं, क्योंकि सड़क, चौराहों, बाजार, मेला-फुटपाथ से प्लेटफार्म तक फूटते बम तो वैसे ही उनकी कुर्बानी की आगवानी कर रहे हैं। अब बंदूकों से लैस पोलिंग बूथ उनमें ओर जुड़ गया।'

यह आकस्मिक नहीं है कि सूर्यबाला ने साम्प्रदायिकता, दंगा-फसाद आदि के लिए भी व्यवस्था के नियामकों-पहरुओं को ही जिम्मेदार ठहराया है। उन्माद और धर्म के पहियों पर सवार मुट्ठियां तानती आत्माओं के हाथ में ही देश की बागडोर है ('सिफर हो गयी राजनीति और सूत्र उवाच')। ऐसे लोगों के लिए 'देश माने हम' है। 'हम जैसे चरायेंगे, सब चरेंगे। जिस कुएं में चाहेंगे, सबको ढकेल देंगे' यह बड़बोलापन नहीं हकीकत है। इसी रचना (बोल री कठपुतली) में पत्नी का एक वाक्य बहुत व्यंजक है और लेखिका की प्रतिवाद- दृष्टि का प्रमाण भी, 'लेकिन इतिहासों से कुछ तो सबक लीजिए।'

सूर्यबाला के व्यंग्य-लेखन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। महिला आरक्षण, बालवर्ष, महिला दिवस, 'क्रिकेट' सरीता गीत से लेकर बसयात्रा, रेलयात्रा तक के कुछ स्थायी तो कुछ कालांकित सवालोंने पर उनकी कलम दौड़ी है। इस दौड़ में लेखिका ने खुद को भी नहीं बख्शा है। उनका आत्म व्यंग्य 'चंद पूर्वजन्मों का लेखा जोखा', 'सरेराह कुढ़ते कुढ़ते', 'चोटी पर न पहुंचे हुए लोग', 'तुर्भे वाली

शेष पृष्ठ 50 पर. . .

सूर्यबाला

देश-सेवा के अखाड़े में . .

यह खबर चारों तरफ आग की तरह फैल गई कि मैं देश-सेवा के लिए उतरने वाला हूँ। जिसने सुना, भागा आया और मेरे निर्णय की दाद दी। बधाई संदेशों का तांता लग गया, 'सुना, आप देश-सेवा पर उतर रहे हैं, ईश्वर देश का भला करें!'

प्रस्ताव पर प्रस्ताव आने लगे कि बाइ द वे, शुरुआत कहाँ से कर रहे हैं? कौन-सा एरिया चुन रहे हैं? हमारे अंचल से करिए न! बहुत स्कोप है। हेलीपैड बनकर विकसित होने लायक इफरात जमीन पड़ी है। आबोहवा भी स्वास्थ्यप्रद है। ईश्वर की दया से गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा आदि किसी बात की कमी नहीं। लोग भी सीधे-सादे नादान किस्म के हैं- आंखें मूंदकर माई-बाप का रिश्ता जोड़ लेने वाले। अगले दस सालों तक तो बहकने की कोई गुंजाईश नहीं। वर्षों सुख-शांति, अमन-चैन से गुजार सकेंगे, आप 'माई-बाप', इन देश के लालों के साथ। ये हमेशा रोटी के लाले पड़े रहने पर भी कभी शिकवे-शिकायत नहीं करते। हर हाल में मुंह सिलकर रहने की जबरदस्त ट्रेनिंग मिली है इन्हें।

मैंने सोचा, जगहें तो सारी एक-सी हैं; ऐसे स्कोप कहाँ नहीं है! लेकिन जब कहा जा रहा है, आफर मिला है तो उन्हीं के एरिया से शुरुआत हो जाए। मेरा निश्चय सुनते ही प्रेस वाले दौड़े आए और आग की तरह फैलती इस खबर में घी डाल गए।

शाम को उस एरिया का सबसे बड़ा कांटेक्टर आया और सलाम करते बोला, 'बंगला कहा छवेगा?'

मैं हैरान! कैसा बंगला? अभी देश-सेवा तो हुई नहीं कुछ, उससे पहले बंगला छवाने आ गया!

उसने उसी अदब भरी मुस्तैदी से कहा, 'वही तो, जब तक बंगला नहीं छवेगा, देश-सेवा, जनहित जैसे महान काम कहाँ बैठकर करेंगे आप? लोक-सेवक लोग आकर कहा ठहरेंगे? मुलाकाती कहाँ लाइन लगाएंगे? संतरी कहा सिड़केगा उन्हें? . . फूस की छत या टिन के शैड के नीचे मुलाकाती नहीं इकट्ठे होते। कोई बेवकूफ थोड़े हैं। सीधी-सी बात है, जो अपने सिर पर छत नहीं खड़ी कर पाया, वह उनके सिरों पर साया कहाँ से करेगा? अपना नहीं तो कम-से-कम अपने दुख-दर्द सुनाने वालों का तो ख्याल कीजिए।'

मैंने कहा, 'तब फिर छवा दीजिए, जहाँ ठीक समझिए।'

वह खुश हो गया। वहीं-का-वहीं बैठकर नक्शा वगैरह खींचकर वह बोला, 'गेराज एक रहेगा या दो?'

मैंने कहा, 'अरे यार पहल कार तो हो. . .'।

उसने कहा, 'आपकी न सही, मुलाकातियों की तो होगी! और फिर यों समझ लीजिए कि बप्पा साहब को देशहित के पैवेलियन में कुछ छः महीने ही गुजरे हैं और आलरेडी दोनों बेटों के ट्रकों और स्टेशन-वैगनों के लिए जगह की कमी पड़ रही है।'

मैंने आज्ञाकारी बच्चे की तरह कहा, 'तब जैसा आप लोग

उचित समझिए।'

कांटेक्टर खुश हो गया, 'ऐसा करते हैं एक गेराज बना देते हैं और दो की जगह छोड़ देते हैं. . पोर्च पोर्टिको आलीशान बनाएंगे, नहीं तो संतरी टुटपुंजिए मुलाकातियों को रुआब से दुतकारेगा कैसे? संतरी जितना कटखना होता है, आदमी उतना ही पहुंच वाला माना जाता है। . . अच्छा मैं चलता हूँ। बंगले का अहाता, लान सींचने, साग-सब्जी, फूल-पत्तों की क्यारी संवारने के लिए मेरा एक आदमी है, बड़ा नेक और विश्वासपात्र। इस काम के लिए उसी को रखिएगा, जनहित जैसे काम करने जा रहे हैं तो इस एरिया के नक्कालों से सावधान रहने की जरूरत है।'

शाम को उस एरिया के व्यापारी-संगठन का प्रमुख आया और आजिजी से बोला, 'देश-सेवियों का भोजन तो अत्यंत संतुलित और नियमित होता है। साहब तो अनाज को हाथ नहीं लगाते थे और देख लीजिए काठी ऐसी है कि सत्तर की उम्र में सत्ताईस वालों को बगल में दबाकर घूमें। अखोड़ेबाजों-सा सधा और तना हुआ शरीर . . . सिर्फ मीनू की बदौलत ही तो! बाइ द वे आपका मीनू?'

मैंने झंपकर कहा, 'अभी बनाया नहीं. . .'।

उसने ताकीद की, 'तो झटपट बना डालिए- खानपान की दुरुस्ती पहले। आप जानो रुखी-सूखी वाले महात्मा को कौन पूछता है? मेरा तो आज तक किसी नमक-रोटी खाने वाली महान आत्मा से साबका पड़ा नहीं। मेरे देखते-देखते कितने ही जनसेवी नमक, रोटी, प्याज से शुरू होकर फल, दूध और सूखे मेवों वाले मीनू पर स्थानांतरित हो आज तक स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।'

मैंने संकोच से कहा, 'सूखे मेवे तो गरिष्ठ होंगे। सोचता हूँ, शुरू-शुरू में रोटी-दाल ही ठीक रहेगा।'

उसने फौरन टोककर कहा, 'देखिए, आप दाल-रोटी खाए या नमक-रोटी, लेकिन एक बात समझ लीजिए- इधर भड़काने वाले बहुत हैं, घर-घर यह बात पहुंच जाएगी कि जो खुद नमक-रोटी खाता है वह हमें मालपुए कहाँ से खिलाएगा? और इस एरिया के लोग भोले-भाले, नादान हैं।'

मैंने कहा, 'आपकी बात ठीक है, लेकिन मेवे बहुत मंहगे भी तो हैं।'

वह बेतकल्लुकी से बोला, 'क्यों शर्मिदा कर रहे हैं आप? आप इस एरिया के जनसेवक होकर आ रहे हैं और खरीदकर मेवे खाएंगे? लानत नहीं होगी इस जमीन के बाशिंदों के लिए? आखिर हम किस मर्ज की दवा हैं? आज ही सूखे मेवों का एक टोकरा भेजे देते हैं।'

मैंने जल्दी से कहा, 'नहीं-नहीं, आपके मेवे. . .'

उन्होंने बात काटकर कहा, 'उन्हें मेरे मेवे नहीं, देश-सेवा के मेवे समझकर खाइएगा, बस! वैसे भी आप चखकर देखिएगा तब

समझिएगा कि खरीदकर खाए मेवों में वो स्वाद और लज्जत कहाँ जो देश-सेवा से प्राप्त मेवे में होती है! पैसों की चिंता मत कीजिएगा! मुझे आप पर भरोसा है; मेरे पैसे कहीं नहीं जाएंगे। सब वसूल हो जाएंगे।'

अगले दिन उस एरिया का नामी-गिरामी दर्जी आया और बड़े प्यार से मुझे अपने फीते में जकड़ते हुए बोला, 'आप फिक्र न कीजिए। मुझे सब अंदाज है। वप्पा साहब से मैंने पहली बार नाप लेते वक्त ही कह दिया था कि अगली अचकन और पाजामे के लिए कम-से-कम पौना-पौना मीटर कपड़ा ज्यादा लाइएगा। और वही हुआ! वैसे ही आप भी करिएगा. . . लिबास तो यही रखेंगे न! रखना भी चाहिए। शुभ्र, स्वच्छ बकुल-पंखी अर्थात् बगुले की तरह सफेद शम्फाफ। हर मौके और हर जगह के लिए पूरी तरह दुरुस्त। जमाने की हवा सर्द हो या गर्म, ये वस्त्र पूरी तरह वातानुकूलित रहते हैं। समझ लीजिए, लिफाफे हैं जो अपना मजमून बदलते रहते हैं। कोई बाहर से इनके अंदर का मजमून भांप नहीं सकता। और इधर तो इस लिबास की महिमा और बढ़ गई है। इतिहास बताता है कि पहले इस लिबास को महान लोग पहनते थे, अब इसे जो पहन लेता है तुरत-फुरत महान हो जाता है।'

अगले दिन सुबह-सुबह तेल-पिलाई लाठी और बुल-बर्करी सीने वाला एक मुच्छड़ आया और सलाम ठोंककर बोला, 'मैं संतरी हूँ, सिर्फ देश-सेवियों के पोर्टिकों और पोर्चों के लिए समर्पित। अब तक की सारी जिंदगी, समझ लीजिए, देश-सेवी फाटकों और पोर्चों पर ही कुर्बान की है। खिदमत में कोई कोर-कसर नहीं रहेगी, इसका भरोसा रखे। वप्पा साहब ने तो पूरी हक-हुकूमत दे रखी थी। जिसे चाहता अंदर जाने देता, जिसे चाहता चार धक्के दे, कालर पकड़, बाहर कर देता। बप्पा साहब कभी दखल न देते थे।

'अहा, क्या आदमी थे! कभी पूछा पैरवी की ही नहीं। मेरी वजह से कभी टुटपुंजिए, फटेहाल मुकालती उनके पास फाटक ही नहीं पाए। समझ लीजिए, वे तो नाम के मंत्री थे। असली मंत्री तो मैं यानी उनका संतरी ही हुआ करता था। अब आपको क्या बताना, समझ लीजिए एक तरह से पूरे देश की बागडोर संतरियों के हाथ में ही होती है. . . अच्छा चलता हूँ। फाटक, पोर्टिको तैयार हो जाए तो बुलवा लीजिएगा। ये रहा मेरा विजिटिंग कार्ड। मेरे सिवा कोई और यहां संतरी न होने पाए, इसका ख्याल रखिएगा। यह ओहदा जिस-तिस को सौंपने लायक नहीं। बड़ी जिम्मेदारी, बड़े जोखम का काम है। हाँ, सांझ को इस इलाके के कुछ और नामी-गिरामी, तावेदार लोग आपसे दुआ-सलाम किया चाहते हैं। जिससे आपको पूरा इत्मीनान हो सके।'

शाम को, सर पे टोपी लाल, गले में रेशम का रुमाल बांधे वे लोग भी आए और मुझे पूरा भरोसा दिला गए कि 'हमारे रहते इस पूरे इलाकेभर में किसी की हिम्मत नहीं जो आपके काम में दखल दे। न आपकी तरफ कोई आंख उठा सकता है, न कोई इन्क्वायरी बैठ सकती है। हम जो हैं! आप तो बस खाइए और चैन से सोते हुए देश की खुशहाली का सपना देखिए। किसी की मजाल नहीं जो कोई रोड़ा अटकाए! अटकाए तो हमें तलब कीजिएगा। इसी तरह हमें पूरा भरोसा है कि आपके रहते हम पर आंच न आने पाएगी। है कि नहीं? न हमारा काम रुके, न आपका। बप्पा साहब जब तक रहे अपनी बात

रखी, हम निर्द्वंद्व घूमते रहे। अब यह जिम्मेदारी आप पर। आप अपना हाथ हमारे सर पे रख दें तो हमें भी इत्मीनान हो जाए।'

मैंने ससंकोच उन्हें समझाने की कोशिश की, 'लगता है आप लोगों को कुछ गलतफहमी हो गई, मैं तो यहां देश-सेवा के इरादे से आया हूँ।'

उन्होंने फौरन कहा, 'लीजिए, तो हम कौन-से देश के बाहर हैं? हम भी तो उसी देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है, प्रदूषण की। हमें कोई गलतफहमी नहीं है! और एक बात आपको भी याद दिला दें कि आप भी किसी गलतफहमी में न पड़िएगा, यह इलाका जितना आपका है उतना ही हमारा भी। इतना ध्यान रखिएगा, देश-सेवा के क्षेत्र में रहकर हमारे जैसे देशवासियों के द्रोह न मोल लीजिएगा। बाकी जिम्मेदारी हमारी। न वोट की कमी होने देंगे न नोट की। आप चैन से सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र के पिछड़े हुए तमाम काम कीजिए, चाहे काम तमाम कीजिए।'

इस प्रकार धमकी भरे आश्वासन और आश्वासनभरी धमकियाँ देते हुए भूतपूर्व मंत्री के संतरी और उसके बिरादरों ने अपने-अपने क्षेत्रों को गमन किया और उस विचारोत्तेजक धमकी से प्रेरित हुआ मैं, और मेरे क्षेत्रवासियों, आपके नाम यह संदेशनुमा धमकी जारी करता हूँ कि चूँकि मुझे अब कुछ भरोसेमंद साथी मिल गए हैं, अतः मैं बेखौफ, बेहिचक आपके क्षेत्र की सेवा के अखाड़े के कूदने वाला हूँ। सावधान!

... पृष्ठ 48 का शेष

बस', 'हाय मैंने क्यों नहीं लिखा सीरियल' आदि में मुखर है। हालाँकि स्वयं को केन्द्र में रखकर भी वे चोट कुरूपों और विसंगतियों पर ही करती हैं। रचनाकारों की प्रायोजित आत्ममुग्धता के संदर्भ में वे व्यावसायिकता का कृत्रिम तिरस्कार करने की लेखकीय मजबूरी पर अपना नाम लेकर प्रहार करती है— 'इस क्लोज अप' में सिर धुनती हुई लेखिका स्पेशल साउंड इफेक्ट के साथ आपका यही सवाल एक संवाद के रूप में बार-बार दोहराती हुई नजर आएगी कि 'हाय मैंने क्यों नहीं लिखा टी.वी. सीरियल?' 'आत्म व्यंग्य बनाम हकीकत पचपनवीं मॉडल की' शीर्षक रचना में निशाना सीधे अपने ऊपर है। क्या वे कोई योजना बनाकर लिखती हैं? इसका जवाब है, 'कभी कोई छोटी-सी योजना बनी भी तो 'समय' ने विद्रूप कर ऐसा जबर्दस्त धक्का दिया कि औंधी जमीन पर आ गिरी।' चाहे व्यंग्य अपने पर हो या व्यवस्था पर, सूर्यबाला के व्यंग्य में एक किस्म की शालीनता है। उन्होंने लिखा है कि जी.पी. श्रीवास्तव की 'क्रूडिटी' मेरी प्रकृति से मेल नहीं खाती थी। यह 'क्रूडिटी' उनके अपने सम्पूर्ण लेखन में अनुपस्थित है। उनका व्यंग्य आलपीन चुमो देने पर बिना बेहोश किए नशतर घुसेड़ देने की निर्ममता से भी बचा हुआ है। अधिकतर रचनाओं में सेफ्टीरेजर की हल्की चुभन या प्रेसर कुकर की सनसनाहट बराबर महसूस होती है। बाद की 'जनआकांक्षा का टाइटल सांग' जैसी रचनाओं में व्यंग्य की चुभन बढ़ गयी है। विदेश यात्राओं के अनुभवों से बुनी गयी 'प्रभुजी तुम डालर हम पानी', 'बाया अमेरिका' आदि रचनाएं भी मारक और बेधक हैं।

डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

आत्म व्यंग्य, व्यंग्य लेखन का निष्कर्ष है

प्रस्तुति— हरीश नवल

अगस्त का उमस भरा महीना, दिल्ली में बारिश को तरसते नागरिक, कूलर केंद्रित गोष्ठियों-सी सफल शेष में भद्रजन गायब! राजधानी का सांस्कृतिक माहौल गर्मियों में गरमाने की बजाय वैसे भी ठण्डा ही रहता है, ऐसे में मुंबई से आई हमारी दोस्त डॉ. सूर्यबाला। वे ठहरी सूर्य पुत्री अतः उन्हें गरमी सता नहीं पाई। बरसों बरस उनके 'संधिपत्रों' ने हिंदी के पाठक को झकझोरा था और जब वे बाकायदा व्यंग्यकार के रूप में उभरीं तो हम भी झकझोरित होने लगे। धर्मयुगीन और साप्ताहिक हिंदुस्तानीय संदर्भों ने 'बैठे ठाले' और 'तेहरवें पृष्ठ' की रचनाओं को व्यंग्य की अस्मिता प्रदान की और बाद में 'सारिका' के सागर में व्यंग्य के गोते लगने से हिंदी का पाठक कमोवेश सभी छोटे-बड़े पत्र-पत्रिकाओं आदि में व्यंग्य की डिमांड करने लगा। अर्थशास्त्र के नियम के अनुसार भारी डिमांड के कारण भारी सप्लाई होने लगी जिससे गुणवत्ता पर फर्क पड़ने लगा। ऐसे में श्रेष्ठ व्यंग्य लेखन के कायदे को जानने के लिए जिन कतिपय व्यंग्यकारों की उपरोक्त लिखित पत्रिकाओं में व्यंग्य रचनाएं प्रकाशित होने लगीं, उनमें सूर्यबाला एक यशस्वी नाम बना. . .

. . .हां तो जनाब ऐसी यशस्वी बाला उमस भरे मौसम में दिल्ली आई— आती तो वे अक्सर हैं पर इस बार विशेष आयोजन यह था कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में उनकी एक कहानी का मंचन था तथा उन्हें अपनी एक अन्य कहानी का वाचन करना था। मौका भी था, दस्तूर भी था, व्यंग्य यात्रा के संवाहक मूर्धन्य जनमेजय जी ने एक कुछ यात्री बालकों को बाला से पत्रिका के लिए बातचीत करने की पेशकश की। फलस्वरूप तीन पीढ़ियों के प्रतीक रूपों में बड़ी पीढ़ी के लेखक चिंतक श्री बी. डी. बजाज, मंजली पीढ़ी के हम खुद, खासकर हरीश नवल (सूर्यबाला समपीढ़ीक) और नई पीढ़ी के नवेले व्यंग्यकार डॉ. रवि शर्मा तयशुदा वक्त पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रांगण में पहुंच गए। भाई प्रेम जनमेजय भी पहुंचे तो थे पर वे चैकिंग पर थे, चैक लौट गए कि हम तीन बातचीत की त्रिकोणीय भूमिका के साथ पधार चुके हैं। सूर्यबाला से भेंट कर प्रेम जी की फ्लाईंग स्कवायड के जाने के बाद हम लोग कहीं शीतल स्थल की तलाश में जुटे और संयोग से (पुराने मित्र नहीं के एक अधिकारी श्री जी.बी. श्रीवास्तव मिल गए और हमें एक श्रेष्ठ स्थान पर मय चाय के छोड़कर अंतर्ध्यान हो गए।

चाय के प्यालों और उभरते सवालों के बीच सौम्य, शालीन



और सरल गरिमामय व्यक्तित्व की धनी सूर्यबाला ने बड़े मन से सचिन तेंदुलकर की तरह बैटिंग की और क्रीज पर डटी रहीं। ओपनिंग बॉल के रूप में प्रश्न फेंका गया था, 'नई पीढ़ी की जिज्ञासा के रूप में रवि शर्मा द्वारा कि वे व्यंग्य लेखन का मूल तत्व किसे मानती हैं। धीरे से बॉल को मिड ऑफ की तरफ सरकते हुए उन्होंने कहा था, 'व्यंग्य के मूल में कुछ भी हो सकता है। कोई भी चीज बहुत जरूरी हो सकती है। चारों तरफ बेचैनी, विद्रोह, विद्रूप है। इतना

विद्रूप पहले कभी नहीं रहा। हम बेचैन होकर रिएक्ट करते हैं, उस समय कोई लेखन योजना हमारे सामने नहीं होती। बस एक तुरंत उपजी तीक्ष्ण प्रतिक्रिया होती है और श्रृंखला बनती जाती है। चीजें एक से एक जुड़ती चलती हैं और रचना बन जाती है।

एक गुगली हमने फेंकी, 'आप कहती हैं आपको पागल कुत्ता काटता है इसलिए आप व्यंग्य लिखती हैं। क्या हम सभी व्यंग्य-यात्री कुत्ते के काटे हुए हैं? आपकी रचनाओं में आखिर कुत्ते का क्या महत्व है? सिली समझते हुए मानों उन्होंने सिली ऑन की तरफ बॉल ड्राईव की, 'मेरे व्यंग्य लेखन में कुत्ते ने एक अहम रोल निभाया है। मैंने विस्तार



से 'कॉलोनी में कुत्ता' व्यंग्य रचना में इसके विषय में लिखा है। मैं 35 साल से लिख रही हूँ पर साहित्य का कुत्ता कभी फटका नहीं। कुत्ते के नाम से भड़कने की जरूरत नहीं क्योंकि साहित्य तीखा होता है। भारत के किसी तीर्थ में कुत्ता ना हो, यह कैसे संभव है। मेरे पति की जबरदस्त पहरेदारी के कारण कुत्ता नहीं फटका 'क्यों नहीं फटका' यह स्त्री विमर्श का प्रश्न है। अगली बॉल बाई की बॉल बनी जब प्रश्न किया गया, 'तो आपको साहित्य का नहीं, पागल हुआ कुत्ता काटता है।' जिसे हिट किया गया वह था, 'अपने से होकर यानि व्यक्ति से होकर व्यंग्य वर्ग का बन जाता है यह आत्म व्यंग्य है। क्या कहेंगे इसके बारे में?'

'देखिए व्यंग्य लेखन यदि गद्य-लेखन का निकष है तो निश्चित रूप से आत्म-व्यंग्य, व्यंग्य लेखन का निकष है।' चर्चा करते हुए चारों परिचर्चक और उपस्थित एक और अदद शोध छात्रा जो फोटो भी खींच रहीं थीं और भाग भी ले रही थी, व्यंग्य की महिमा पर आ टिके। सूर्यबाला ने यूँ चौंका जड़ा, 'लेखक तो किसी तरह भी बनाया जा सकता है पर व्यंग्यकार नहीं।'

बात मध्य प्रदेश और उसकी व्यंग्य सामर्थ्य पर भी पहुँची। सभी की भाँति सूर्यबाला का निष्कर्ष भी यही है, 'व्यंग्य के लिए मध्य प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है।'

तभी बी.डी. बजाज के मन में एक सवाल उपजा, 'प्रासंगिकता से संबंधित प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि आपके द्वारा लिखा गया व्यंग्य, यह देश और सोनिया गांधी' क्या अब प्रासंगिक है?'

इस बार सिकसर था, 'यह 12 साल पहले लिखा था, आज यह भी प्रासंगिक है, तब जो चीजें शुरू हुई थी, अब चार सीढ़ियाँ और आगे निकल गई।'

ओवर की अगली गेंद, इस हमाम में... रचना की प्रेरणा कहां, कैसे मिली? सूर्यबाला के बेट की टकराहट, 'अमेरिका से कुछ सोचकर नहीं लिखी थी पर वहां की संस्कृति देखी, रचना बनी। आपको अच्छी लगी- धन्यवाद! पाठक को मैं अहमियत देती हूँ।

रचना लिखते समय मैं पाठकों के बारे में काफी सोचती हूँ। क्या से क्या मिल पायेगा जो वह चाहता है। वहां की संस्कृति आर्तकित करती है, उसी को विचार कर रचना बनी, पाठक ने पसंद की, शायद मैं उसकी अपेक्षा पूरी कर सकी, उसे वहां की संस्कृति की फिल्म दिखा पाई।'

'कैसी फिल्मों पसंद है आपको? क्या फिल्मों आपको प्रभावित करती हैं?' खाकसार ने आम जिंदगी का एक आम प्रश्न रखा। उत्तर प्रदत्त हुआ। 'फिल्में दो तरह से प्रभावित करती हैं। एक सोद्देश्यता से दूसरे स्वस्थ मनोरंजन से पुरानी फिल्मों में मुझे एक ओर 'गरम हवा' अच्छी लगी और दूसरी ओर, 'चलती का नाम गाड़ी'। नई फिल्मों में 'ए वैडनस्टे' ने प्रभावित किया, 'पेजथ्री' भी अच्छी लगी और 'वीर सावरकर' भी। हां पुरानी फिल्मों में एक 'पडौसन' भी अच्छी लगी थी।'

लगे हाथ हमने पडौसन से पूछ लिया, 'आपके मनपसंद हीरो कौन हैं?' पडौसी को जवाब मिला, 'पुराने वक्तों के बलराज साहनी और अशोक कुमार तथा नए के नसीरुद्दीन शाह।' हमने बस मन में ही सोचा 'नसीरुद्दीन नए हीरो? दर्जनों खान बंधुओं का क्या होगा?'

अचानक एक प्रश्न मन से टपक पड़ा, 'आपके समक्ष ओबामा और क्लिंटन हों, किससे मिलना चाहेंगी आप?' (वैसे प्रश्न वाजिब था क्योंकि सूर्यबाला अपने बेटे के पास अमरीका जाती रहती हैं)

जाने क्यों सूर्यबाला अपेक्षाकृत ज्यादा गंभीर सी हो गई, तनिक दृढ़ स्वर में बोली, 'दोनों में से किसी से भी नहीं। मैं बहुत स्वाभिमानी हूँ— फिल्मी हीरो, राजनेताओं, एंकरों आदि किसी से मिलना में रुचि नहीं। एक बार किसी ने श्री मुरली मनोहर जोशी से परिचय कराया। जोशी जी ने कहा, 'मैंने आपको पढ़ा है।'

प्रिय सूर्यबाला जी हो सकता है ओबामा और क्लिंटन ने भी आपको पढ़ा हो। हो सकता है वे भी आपकी तरह बड़े स्वाभिमानी हों— तब? (यह प्रश्न आऊट ऑफ कोर्स है)

बजाज वाणी उद्धोषित हुई, 'पटनी और पुरस्कार' रचना मैंने

पढ़ी, क्या ज़माना कुछ बदला नहीं है? क्या बदलाव देखकर आज जेनरेशन गैप महसूस करती हैं?

क्रीज में खड़ी सूर्यबाला उवाच, 'हां जमाना बदल रहा है, कहीं ज्यादा ही ना बदल जाए। पीढ़ी अंतराल तेजी से बदल रहा है। पहले तीस चालीस लगते थे, अब पांच-छह साल में बदलाव महसूस होने लगा है। मैं चाहती हूं कि बदलाव समाज के हित में हो एक संतुलन बना रहे। ये बदलाव जिस ओर संकेत करते हैं, वह रुककर सोचने के लिए विवश करता है. . .हां मेरी उस रचना में हम वहीं हैं बच्चे आगे बढ़ गए हैं। बच्चे कह रहे हैं, अब पुरस्कार लायक हो गई हैं। दाल तो ठीक ना बन पाई, लेखन में प्राइज मिलने लगे हैं. . .।

एक ढर्रेदार सवाल किया गया, 'आपके प्रिय व्यंग्यकार कौन हैं?' फरिटेदार जवाब मिला, 'श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी और परसाई' तभी रेस्ट टाईम में परसाई, जोशी, त्यागी, श्रीलाल आदि के विषय में चर्चा हुई। ऐतिहासिक महत्व, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न व व्यंग्यकारों की आजादी के बाद की पहली पीढ़ी आदि को लेकर बातें हुई। एक विशेष उल्लेखनीय बात सूर्यबाला द्वारा दर्द के साथ कही गई, 'के.पी. सक्सेना को उनकी जगह नहीं दी गई।'

रेस्ट के बाद पुनः त्रिकोणीय स्थितियों ने करवटें ली और रवि शर्मा ने आदिकालीन सर्वदा नवीन प्रश्न किया, 'व्यंग्य को आप क्या मानती हैं शैली या विधा?'

'मैं शान से इसे विधा मानती हूं। पाठक भी अब जानता है कि व्यंग्य क्या है। पहले व्यंग्य को उतना विशेष नहीं माना गया था, इसलिए शायद अब तो शैली ही रचना हो गई है। आलोचक भी अब ध्यान देने लगे हैं।'

'आलोचक और समीक्षक की भूमिका क्या है, 'खाकसार को याद आ गया था कि वह एक प्राध्यापक भी हैं।

सूर्यबाला ने स्थिर होते हुए कहा, 'आलोचक या समीक्षक पाठकों में किसी विधा या रचनाकार के प्रति रुचि पैदा करता है। आलोचना साफ नीयत के साथ होनी अनिवार्य है, ऐसा मैं चाहती हूं, मानती हूं।

आलोचक का प्रवेश होते ही मुलाकात गरमा उठी। सवाल, जवाब परिचर्चा में परिवर्तित हो उठे। बी.डी. बजाज उपन्यास, व्यंग्य कहानी आदि को व्यंग्य विधा के अंतर्गत रखने पर बल देते दिखाई दिए तो रवि शर्मा जानना चाह रहे थे कि व्यंग्य स्तम्भ लेखन की भूमिका क्या है। जवाब में हम फरमा रहे थे कि व्यंग्य के नाम पर कटाक्ष, टिप्पणी, त्वरित प्रतिक्रिया, चुटकुला, तुकांत शब्दावली आदि जाने किस किस को 'व्यंग्य स्तम्भ' के अंतर्गत छाप दिया जाता है। सूर्यबाला का मत था कि इसमें सम्पादक का दोष है। सम्पादक में व्यंग्य की समझ और विवेक होना जरूरी है।

रवि का असमंजस कि व्यंग्य और हास्य का मेल कितना और कैसे हो। हमारा बताना कि व्यंग्य के भोज्य में हास्य चटनी जितना हो। यहां तक समस्त भोजन चटनी के साथ ही खाया जा रहा है।

सूर्यबाला का कहना था, 'मैं हास्य को व्यंग्य के साथ अनिवार्य मानती हूं। पर जरा भी अशिष्ट होना नष्ट हो जाएगा। केवल



व्यंग्यकार का विवेक उसे रोकेंगा।'

एक बात और उनकी हिट लगी वह एक 'कोटेबल कोट' ही है। हास्य व्यंग्य का नक्काशी है।'

रवि शर्मा का एक अन्य प्रश्न कि 'व्यंग्यकार के नाम पर महिलाओं की उपस्थिति कम क्यों होती है।'

सूर्यबाला का आवेश था, 'महिलाओं को बोलने की मनाही जो है। वरना महिलाओं के ताने, कटाक्ष आदि निपुणता लिए होते हैं। रत्नावली के कटाक्ष ने तुलसीदास को बनाया। पत्नियों के ताने सुनकर बहुत से पुरुष व्यंग्यकार बने हैं।'

जाने क्यों हमारा सिर उस समय कुछ झुका-झुका था और गला कुछ रुका-रुका था।

बी.डी. बजाज ने दलित साहित्य संदर्भित प्रश्न उठाए जिन पर चर्चा करने के बाद सूर्यबाला ने रूलिंग दे दी, 'किसी भी लेखन में प्रतिशोध का स्वर नहीं होना चाहिए।'

रवि शर्मा ने समसामयिक हिंदी व्यंग्य की स्थिति के विषय में बात करते हुए कई सवाल किए। उनका शमन करने के बाद तसल्ली देते हुए सूर्यबाला ने कहा, 'आज हिंदी व्यंग्य का एक विहंगम दृश्य मुझे दिखाई दे रहा है जो आश्चर्य देता है। जो विश्वसनीय नाम तुरंत ध्यान आ रहे हैं, कुछ रह भी सकते हैं उनमें ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, हरि जोशी, कृष्ण चराटे, यज्ञ शर्मा, अजातशत्रु, सुरेश कांत, यशवंत व्यास, अशोक शुक्ल, विनोद शंकर शुक्ल, आदि एक लंबी प्रथम कतार है।

'व्यंग्य यात्रा' को लेकर की गई बातचीत में सूर्यबाला का अम्पायर डिसिजन था, 'व्यंग्य यात्रा' द्वारा व्यंग्य केंद्रीय धारा में आ गया है। पूरा श्रेय प्रेम जनमेजय का है। लेखक और सम्पादक रूपों में उत्कृष्ट काम कर रहे हैं। उनके पास रचना और रचनाकार चयन की आंख है। पत्रिका पठनीय, सार्थक और संग्रहणीय है। श्रीलाल शुक्ल संदर्भित सामग्री सर्वोपरि थी।'

इस प्रकार सूर्यबाला ने अपनी पूरी पारी खेली। तत्पश्चात उनका दूसरा रूप प्रकट हुआ। 'आप मंच' के मंच पर उनकी कहानी का बेहतरीन मंच हुआ। एक कहानी का वाचन भी उन्होंने किया जिसे सुनकर रंगकर्म निष्णात संयोजन देवेंद्र अंकुर ने कहा, 'जितना नाटकीय श्रेष्ठ वाचन सूर्यबाला जी ने किया इतना तो कई अभिनेता भी नहीं कर सकते।'

मंचन पश्चात हुए समोसा चाय समारोह में सूर्यबाला के पतिदेव से भी मिलना संभव हुआ। वे मेरिन इंजीनियर हैं। ग्लैक्सो जैसी बड़ी कंपनी में बरसों बरस उच्च पद पर कार्य करने के बाद लगभग सात वर्ष एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के चीफ रहे। सम्प्रति वे सूर्यबाला जी को निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। उनकी प्रेरणा पर ही सूर्यबाला अचानक आगे निकल गईं और हम मकुए से चाय-समोसा की प्लेटें पकड़े खड़े के खड़े रह गए।

आमीन।

हिन्दू कॉलेज स्टाफ क्वार्टर
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के नवीनतम प्रकाशन

नेशनल बुक ट्रस्ट किताब क्लब के सदस्य बनें और नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रकाशनों पर २० प्रतिशत की छूट पाएं



कामतानाथ : संकलित कहानियां

पृ.208

रु.90-00

स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी कहानी को नई दिशा देने वाले प्रसिद्ध कथाकार कामतानाथ की चुनिंदा कहानियों का संकलन।



काशीनाथ सिंह : संकलित कहानियां

पृ.216

रु.90-00

स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी कहानी की अगली खेप को अद्यतन कर नई दिशा देने वाले प्रसिद्ध कथाकार काशीनाथ सिंह की चुनिंदा कहानियों का संकलन।



मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियां

पृ.188

रु.45-00

स्त्री मन की आकांक्षाएं, प्रेम, दाम्पत्य, पारिवारिक-सामाजिक ढांचे, छद्म आधुनिकता के दुष्प्रभाव आदि विषयों पर लिखी गई मन्नू भंडारी की कहानियों का अनूठा संकलन जिसमें पाठकों को अपने समय का स्वर पहचानने का बेहतरीन अवसर उपलब्ध है।



पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियां
संकलन एवं संपादन : रमणिका गुप्ता

पृ.168

रु.60-00

'पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियां' नाम से इस संकलन में अरुणाचल प्रदेश, असम, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, मणिपुर आदि क्षेत्रों के रचनाकारों की रचनाओं को सम्मिलित किया गया है। यह संकलन पढ़ने को प्रेरित और काफी कुछ जानने को उत्साहित करता है।



राजेन्द्र यादव : संकलित कहानियां

पृ.224

रु.75-00

श्रेष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव की चुनी हुई कहानियों का संकलन।



सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कहानियां
आनंद प्रकाश

पृ.166

रु.80-00

स्वाधीनता आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ता सुभद्रा कुमारी चौहान की बाईस श्रेष्ठ कहानियों का संचयन उनके समर्थ कथा लेखक रूप को पाठकों के सामने रखता है।



महाश्वेता देवी की श्रेष्ठ कहानियां
अनुवाद : माहेश्वर

पृ.160

रु.35-00

बांग्ला की सुप्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी द्वारा संकलित उनकी इन कहानियों के केन्द्र में मुख्यतया आदिवासी जनजीवन है, जो समाज की मूलधारा से कटकर जी रहा है।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,
बसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
दूरभाष : 24526169, 24526164, 24526174
फैक्स : 26121883
ई-मेल : nbtindia@nbtindia.org.in
वेबसाइट : <http://www.nbtindia.org.in>



मुंबई : दूरभाष व फैक्स : 91-22-23720442
ई-मेल : nbtindiamumbai@yahoo.com
बंगलुरु : दूरभाष व फैक्स : 91-80-26711994
ई-मेल : nbtindiasro@vsnl.net
कोलकाता : दूरभाष व फैक्स : 91-33-22413899
ई-मेल : nbter@dataone.in

पुस्तक विक्रेता हमारे पंजीकृत एजेंट के रूप में स्वयं को पंजीकृत करवाकर ने.बु.ट्र. परिवार के सदस्य बन सकते हैं। शर्तों के लिए कृपया हमारी वेबसाइट देखें अथवा हमसे संपर्क करें।

सुबोध कुमार श्रीवास्तव

सुसंस्कृत भिखमंगे

कमाऊ पुत्रों के उबाऊ बापों से हर बेटी के बाप का पाला कभी न कभी तो पड़ता ही है। भौतिकवाद और बाजारवाद के इस घनघोर युग में लड़के के बापों की एक नई नस्ल पैदा हुई है, विकसित हो रही है और खूब फल-फूल रही है। इस नस्ल के जीवाणु रातोंरात लखपति हो जाने का हुनर जानने लगे हैं। इन्हें आप और हम सुसंस्कृत भिखमंगे कह सकते हैं। इनके पास भीख मांगने के तरह-तरह के करिश्मे हैं। ये किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते, कटोरा आगे नहीं बढ़ाते। इनका मुंह ही अल्यूमिनियम के भद्दे कटोरे का काम करता है। पूजास्थलों के आसपास, स्टेशन और बसस्टैंड पर, सड़कों, चौराहों-तिगड़ों पर, गलियों-गलियों और घर-घर में भीख मांगने वाले भिखारी इन तीन तारा और पांचतारा भिखारियों के सामने कहीं नहीं टिकते। ये भव्य भिखारी लड़की के बाप पर अहसान लादते हुए वैज्ञानिक तरीके से इस तरह भीख मांगते हैं कि इनके सामने 'भीख' भी शर्मिंदा हो जाती है। भीख को ये दहेज कहते हैं और 'पिता द्वारा पुत्री के लिए किया गया संकल्प' जैसा वाक्य बोलकर उसे महिमामंडित भी करते हैं। दहेज के नाम पर लाखों रुपये हड़ लेने के पक्ष में इनके पास बेजोड़ तर्क हैं। सड़कछाप भिखारी ज्यादा से ज्यादा एक रुपया मांगता है पर ये सुसंस्कृत भिखारी एक के आगे कम से कम छः शून्य लगाकर बात शुरू करते हैं। एक की जगह 'दो' और 'तीन' भी हो सकते हैं। ये भव्य और विशिष्ट भिखारी हमारे देश के वित्त और विदेश मंत्री को भी यह परामर्श और सीख दे सकते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और विदेशों से किस प्रकार कर्ज हथियाया जा सकता है। हालांकि भीख और ऋण में कुछ भेद है। ऋण और भीख सगे नहीं तो

सौतेले भाई-बहन तो हैं ही।

दहेज के नाम पर भीख मांगने की क्रिया को दहेज प्रेमियों ने कलात्मक रूप प्रदान कर दिया है और इसके समर्थन में इतने आकर्षक तर्क परोसे जाते हैं कि सामने वाले व्यक्ति को भी यह आभास होने लगता है कि दहेज का लेन-देन कोई पाप या अपराध नहीं है, बल्कि पुण्य का काम है। बेचारा लड़की का बाप उधार लेकर, घर बेचकर, यदि हैं तो पत्नी के गहने बेचकर दहेज देता है और बेटी की विदा कर देता है। उसे इस बात का कुछ-कुछ संतोष रहता है कि लड़के के घर पर स्टोव नहीं फटेगा और उसकी बेटी जीवित रहेगी।

भव्य और सुसंस्कृत भिखारियों से कई बार मेरा पाला पड़ा। गाजरघास और बेशरम की झाड़ियों की तरह यह नस्ल फैलती ही जा रही है। पहले आपका परिचय करा रहा हूँ श्रीवास्तवजी से। इनके ऊपर एक जिले के बेरोजगारों को रोजगार दिलाने का दायित्व था और यह जिम्मेदारी शासन द्वारा सौंपी गई थी। इन्होंने बेरोजगारों से भी भीख ली और इस कमाई से अपने दो बेटों को डाक्टर बनवाया। डॉक्टर यानी हीरा-पन्ना जिसका दहेज बाजार में मूल्य लाखों रुपये। डॉक्टर यानी बियरर चैक। मैं श्रीवास्तवजी के घर पहुंचा तो उन्होंने मुझे अपना ग्राहक समझा और बड़े दुलार से पूछा, 'अपने बेटे का रजिस्ट्रेशन रोजगार कार्यालय में आपने कितने युग पहले कराया था? मैं इंटरव्यू कॉल लेटर निकलवा दूंगा। लेकिन. . .

मैंने उन्हें वाक्य पूरा करने का अवसर ही नहीं दिया, 'भाई साहब, मेरा बेटा बेरोजगार नहीं है और मैं उसकी नौकरी के संबंध में नहीं आया हूँ। मैं लड़की का बाप हूँ और आपके द्वारा अखबार में दिये वैवाहिक विज्ञापन को पढ़कर आया हूँ। आपके दोनों बेटे

अविवाहित हैं। मेरी दो बेटियां हैं। उनके विवाह के संबंध में बातचीत करने आया हूँ।'

श्रीवास्तवजी ने मुझे तौलती हुई नजरों से देखा। जूतों की पालिश से लेकर सिर के बालों में लगे तेल तक का सूक्ष्म अध्ययन किया। फिर बोले, 'आपने विवाह बाजार में क्वारे डॉक्टर लड़कों के भाव तो मालूम कर ही लिए होंगे? तभी तो यहां आए हैं। शुरुआती बोली दस लाख रुपया नकद है। कार और एच.आई.जी. फ्लैट अलग से। मैं जेवर और कपड़ों की बात नहीं करूंगा। मां-बाप अपनी लाड़ली बेटी को बीस-तीस तोला सोना और डेढ़-दो लाख रुपये के कपड़े तो देते ही हैं। यह स्थिति अपने मध्यप्रदेश की है। उत्तरप्रदेश और बिहार में भाव इससे दुगुने-तिगुने हैं। आप बैठिए। ठंडा पानी पीजिए।' वे पुनः जूतों से लेकर सिर के बालों तक मेरा अध्ययन करने लगे। मेरे जूते उनके चेहरे की अपेक्षा अधिक चमक रहे थे और सिर के बाल भी पूरी तरह व्यवस्थित थे जबकि वे लगभग गंजे थे।

मैंने कहा, 'मोलभाव करना मुझे आता नहीं है। मेरी बेटी सुंदर, आकर्षक, पढ़ी-लिखी और निपुण है। आप उसे देख सकते हैं, उससे बातचीत कर सकते हैं।'

वे हंसने लगे और हंसते हुए ही बोले, 'बंधु, हर बाप को अपनी बेटी सुंदर लगती है लेकिन इस देश में सिर्फ रुपया सुंदर और आकर्षक होता है। वह कुरूपता को भी खरीद सकता है। आप शिक्षक रहे हैं तो यहां आने से पहले ही सोच लेना चाहिये था। यदि मैं आपको दो-चार लाख रुपये की छूट भी दूंगा तो भी आप हमारे यहां विवाह-संबंध स्थापित नहीं कर सकेंगे। मैंने दोनों बेटों की पढ़ाई-लिखाई पर लाखों रुपये खर्च किए थे। यह एक प्रकार का विनियोग था। अब

लाभ का अवसर आया है तो मैं हानि का सौदा कैसे कर सकता हूँ।’

मैंने भी पूरी विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर कहा, ‘आपकी बात से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। यूँ बाजार में हर चीज की कीमत उछाल पर है। कद्दू के दाम तक बढ़ चुके हैं। पर कमाऊ बेटों की कीमतें तो आसमान छू रही हैं। मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपका बेटा नहीं खरीद सकता।’

प्रांत की राजधानी के प्रमुख ठेकेदार श्री रायजादा साहब के बारे में सुना था कि वे सुलझे हुए व्यक्ति हैं, दहेज विरोधी हैं, अमीर व्यक्ति हैं और लाखों रुपया आयकर का पूरी ईमानदारी के साथ जमा करते हैं। वे समाज में प्रतिष्ठित थे। लगभग मुखिया की सी स्थिति थी उनकी। उन्हें अपने छोटे बेटे के लिए सुंदर लड़की चाहिए थी जो गोरी भी हो। उनका तर्क था कि वे खुद जामुनी रंग के हैं और उनके स्वर्गीय मां-बाप ने जिस लड़की के साथ उनके जीवन की डोर बांध दी, वह भी उनकी टक्कर की। नतीजा यह निकला कि उनके तीनों बेटे भी काले-कलूटे और दोनों बेटियाँ भी भटे रंग की। अब वे इस तरह की भूल करना नहीं चाहते थे। उनके मन में यह बात बैठ चुकी थी कि गोरी बहू उन्हें गोरा पोता देगी। उनकी एक बहू ने यह कमाल किया भी था।

मेरी बेटी गोरी थी सो मैं उनके यहां पहुंच गया, अपनी औकात भूलकर। उन्होंने मेरी अच्छी खातिरदारी की। मेरी बेटी का फोटो देखकर वे खुश हुए और बोले, ‘मैं और मेरे परिवार के लोग आपकी बेटी को देख चुके हैं और उसे पसंद भी कर चुके हैं। आपको इसका पता भी नहीं चला। लड़की देखने का हमारा तरीका अलग है। किसी के घर जाकर लड़की देखना मुझे नापसंद है। आखिर वह मेरी भी तो बेटी ही हुई। दहेज शब्द से मुझे घृणा है। आप मुझे सिर्फ इतना बतला दीजिए कि आपने अपनी बेटी के लिए कितना संकल्प किया है। पिता पुत्री के लिए कुछ न कुछ संकल्प तो करता ही है। उसे उसका हिस्सा देता है।’ वे अनुभवी आंखों से मुझे आंकने लगे। उम्र और अनुभव ने उनके सिर के बालों को ही नहीं, भौंहों

को भी बर्फ सा सफेद कर दिया था।

मेरा संकल्प सुनकर वे मुस्कुराए फिर बोले, ‘मैंने अपनी दोनों बेटियों के लिए पच्चीस-पच्चीस लाख रुपये का संकल्प किया था, जो पूरा किया। मैंने कोई दहेज नहीं दिया था। दोनों दामाद मेरे साथ ही रहते हैं और ठेकेदारी में मेरी मदद करते हैं। आपने जो संकल्प बतलाया है, उतनी राशि मेरे दोनों समर्थियों ने मेरे बेटों को देखते ही पकड़ा दी थी। पर आपकी बेटी मुझे पसंद है। आपने जो संकल्प बतलाया है, वह भी चलेगा। एक काम कीजिए। आप अपनी बेटी को जो भी सामान देंगे, उसका भी नकदीकरण कर दीजिए। स्कूटर, फ्रिज, टी.वी., वाशिंग-मशीन, कूलर, फरनीचर, बर्तन आदि लेकर मैं क्या करूंगा। घर में दो कार हैं, एक जीप, तीन-चार स्कूटर, मोटर साइकिलें भी। मुझे तो गिनती भी याद नहीं। ठेकेदारी करता हूँ सो एक दर्जन ट्रक और दो ट्रैक्टर भी खरीदने पड़े हैं। हर बेटे-बहू, बेटी-दामाद के कमरों में ए.सी. है, फ्रिज है, टी.वी. है और हर तरह का फरनीचर है। आप सामान के नाम पर कुछ भी नहीं दीजिए। अपना संकल्प अपनी बेटी-दामाद के नाम बैंक में खाता खोल कर जमा कर दीजिए। मुझे दहेज से चिढ़ है। मेरी पत्नी, बहुएं, बेटियाँ, आपकी पत्नी के साथ बाजार चली जाएंगी और अपनी-अपनी पसंद की डेढ़-दो दर्जन साड़ियाँ पसंद कर लेंगी। दामाद-बेटे भी इतने ही सूट के कपड़े पसंद कर लेंगे। वहीं बांबे टेलर्स में नाम भी दे देंगे। भाई, ये तो नेग-दस्तूर है। निर्वाह करना ही पड़ेगा। इतना कुछ कहते-कहते रायजादा साहब हांफने से लगे।

मुझे उस दहेज विरोधी व्यक्ति पर बड़ी दया आई। बेचारा दहेज नहीं संकल्प चाहता है। मैंने इतना ही कहा, ‘बाबूजी, आज के युग में आपकी तरह के उदार और दहेज विरोधी व्यक्ति भी हैं, मुझे आश्चर्य हो रहा है। मैं दहेज में लड़की के ससुराल वालों को नेग-दस्तूर के नाम पर कपड़े दे सकता हूँ पर संकल्प के नाम पर बाजार से एक पूरी दुकान उठा कर नहीं ला सकता। आप दहेज को समाज का कोढ़ मानते हैं और मैं आपको। अच्छा मैं चलता हूँ। आप कोई दूसरी दुकान देखिए।’

अस्थानाजी के साथ हुई मुलाकात और भी दिलचस्प है। उनके परिवार के लोगों ने तीन बार मेरी बेटी को देखा। पहले लड़के के मां-बाप ने फिर उनकी बेटी-दामाद ने और अंत में लड़के ने अपने तीन मित्रों के साथ। चौथी बार उन्होंने फिर खबर भेजी कि वे अपने पूरे परिवार के साथ एक बार फिर लड़की को देखना चाहते हैं। इस बार मैंने उन्हें खबर भेज दी कि वे अपने चाय-नाश्ते और खाने के लिए कोई दूसरा ठिकाना ढूँढ लें। मेरा घर कोई होटल नहीं है और मेरी बेटी प्रदर्शन की वस्तु नहीं। मैंने उन्हें यह सलाह भी दे डाली कि वे, परिवार सहित, अपनी आंखों की जांच किसी नेत्र विशेषज्ञ से करा लें। इस बीच मुझे यह जानकारी भी मिल चुकी थी कि लड़के के विधुर चाचा ने किसी कार्यालय में पदस्थ अपनी रखैल चपरासिन की, भेद खुल जाने पर, हत्या करने की कोशिश की थी। कुछ खोजी पत्रकार चाचा के साथ भतीजे का नाम भी जोड़ रहे थे। यूँ अस्थानाजी के पुत्र को शादी में सिर्फ कार चाहिये थी। वह कार से शादी करना चाहता था और बेटी के दहेज में ले जाने की चाह रखता था।

प्रधान साहब का किस्सा भी कम मजेदार नहीं। उन्होंने पत्नी सहित सारी बातें नापतौल कर की। मसलन जो गहने मैं बेटी को दूंगा, वे कितने कैरेट सोने के होंगे, फ्रिज, टी.वी. वाशिंग मशीन, कूलर आदि किस कंपनी के होंगे। बारातियों को विदाई में क्या दूंगा? लड़के को मोटर साइकिल तो देनी ही होगी क्योंकि देश के समस्त बापों ने यह भार बेटे के भावी ससुरों पर लाद रखा है। खाने में कितने तरह का मीठा परोसा जावेगा? एक शर्त उनकी यह भी थी कि मैं उनके शहर में जाकर ही शादी करूँ और डेढ़ हजार बारातियों के प्रीतिभोज की व्यवस्था किसी तीन-तारा होटल में करूँ। यदि मैं अपने शहर से बेटी की शादी करूँगा तो डेढ़ सौ बारातियों के आने-जाने का रेलभाड़ा भी मुझे वहन करना होगा। इनमें से दस बाराती ए.सी. प्रथम श्रेणी में यात्रा करेंगे।

चूँकि बातचीत के दौरान प्रधानजी की पत्नी काफी उत्साहित होकर उचक रहीं थी, मेरी पत्नी ने उन्हें संबोधित किया, ‘बहनजी,

आप अपने बड़े बेटे की शादी करने जा रही हैं। कुछ अपनी ओर से भी खर्च करें। कम से कम अपने व्यवहारियों को तो अपने खर्च से भोजन करा दें। शादी में हम लोग एक-डेढ़ हजार भिखारियों को तो भोजन करा सकते हैं पर इतने बारातियों को नहीं। मुफ्तखोरी की भी एक सीमा होती है। हमारी बेटी का आपके परिवार में दम घुट जाएगा। हमें क्षमा करें।’

यहां यदि मैं वैध साहब का उल्लेख नहीं करूंगा तो उनके साथ अन्याय होगा। उन्हें और उनके बेटे को इस बात का गर्व था कि हिंदी प्रदेश के होने के बावजूद वे अच्छी अंग्रेजी बोल लेते हैं। लड़के को धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने वाली लड़की चाहिए थी। यूँ उसकी मां ठेठ बुंदेलखंड की थीं और ‘टॉपी कम, टॉमी गो’ या ‘आप एक कप टी तो ड्रिंक करेंगे ही’ की तरह की अंग्रेजी बोल लेती थीं। उन्होंने मुझे अपना नया मकान भी दिखलाया जो बन रहा था, और जिसमें खिड़की-दरवाजे नहीं लगे थे। मुझसे बोलीं, ‘भाई साहब, और तो सब ठीक है पर अभी खिड़कियों में विंडो और दरवाजों में डोर लगाना बाकी है।’ लड़के की छोटी बहन भी सामान्य अंग्रेजी के प्रश्नपत्र में दो साल से लुढ़क रही थी। पर वैधजी की शर्त थी कि उनकी बहू फर्स्टेदार अंग्रेजी बोले।

मैंने कहा, ‘उचित वातावरण मिलने पर यह भी संभव है। मेरी बेटी को अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान है। वह कभी अंग्रेजी विषय में फेल नहीं हुई। दो-चार माह के अभ्यास के बाद वह इस योग्य हो जाएगी। पर क्या आपका बेटा दो-चार माह में अपनी ऊंचाई दो-तीन इंच बढ़ा सकता है? . . नमस्कार। मैं चलता हूँ।’

भटनागरजी और सक्सेनाजी को इस तरह की बहू चाहिए थी जो हर माह उनके हाथ में दहेज रख दे यानी कमाऊ लड़की। उन्हें अपने बेटों की औकात पर भरोसा नहीं था। मेरी बेटी उनके बेटों की अपेक्षा अधिक कमाती थी, यह बात भी उन्हें और उनके कमाऊ बेटों को रास नहीं आई। तर्क था कि वर की कमाई वधू की कमाई से कुछ अधिक ही होनी चाहिए। उन दोनों आत्माओं ने मुझसे कहा कि उनके बेटों को अधिक वेतन वाली नौकरी मिल सकती है बशर्ते वे रिश्वत में पांच लाख रुपये भ्रष्ट अधिकारियों तक पहुंचा दें। दोनों ही सज्जनों ने बड़े अधिकार के साथ मुझसे अपने भावी दामाद का जीवन संवारने के लिए इस रकम की मांग की जो मैंने यह कहकर ठुकरा दी, ‘मेरी बेटी का कहना है कि गधों को कितनी भी अच्छी घास क्यों न खिला दी जाए, उन्हें घोड़ा नहीं बनाया जा सकता। हड़पी गई घास के द्वारा तो हरगिज नहीं।’

कभी आपको श्री सिन्हा जी, कुलश्रेष्ठजी, खरेजी, वर्माजी, निगमजी, राय साहब आदि के किस्से भी बतलाऊंगा। ये सभी या अधिकांश बेहद पढ़े-लिखे लोग हैं, अच्छी नौकरियों में हैं पर इनकी सोच कुछ इस तरह की है कि जब कभी मूतने बैठते हैं तो कान पर जनेऊ चढ़ा लेते हैं। लड़की के बाप की गाढ़ी कमाई पर सुनियोजित डाका डालना ये अपना नैतिक अधिकार समझते हैं।

अशोक कालोनी, कटनी (म.प्र.)-483501

श्रीकांत चौधरी

उत्तरदायी सरकार

एक समय की बात है, प्रदेश के दो वरिष्ठ मंत्री पत्रकार वार्ता को संबोधित कर रहे थे, चुनाव में विजय के दो माह बाद यह वार्ता बुलाई गई थी। प्रस्तुत है मंत्री और पत्रकार में वार्तालाप।

पत्रकार- आपने चुनाव से पहले कहा कि हर बेकार को काम, और बेघर को एक छत देंगे? लेकिन महीनों बाद भी लाखों बेकार और बेघर हैं?

मंत्री- तब हमें क्यों मालूम था कि हम जीत जाएंगे और सरकार बनाने में सफल हो जाएंगे।

मंहगाई की मार से आम जनता त्रस्त है, लोगों का जीना दूभर हो गया है, आप क्या कहेंगे।

हमें लोगों से पूर्ण सहानुभूति है और हमें बड़ा खेद है, हमें बड़ी चिंता है, हमेशा रहेगी! मानसून और विश्व बैंक की मदद से सब ठीक हो जाएगा।

सरकारी तंत्र, विशेषकर नौकरशाह, चाहे जिस विभाग में हो न केवल भ्रष्ट हैं वरन कामचोर हैं और संवेदनहीन भी है, सूचना के अधिकार को विफल किया जा रहा है इस संबंध में सरकार क्या कर रही है?

हम एक ‘भ्रष्टाचार निवारण आयोग’ बना रहे हैं, जिसमें इन्हीं नौकरशाहों में से दस बीस लोग सदस्य रहेंगे, दो तीन हमारी पार्टी के मेंबर भी उसमें रहेंगे, ये लोग दो चार साल के अंदर अपनी रिपोर्ट हमें देंगे, रिपोर्ट आने पर उसकी समीक्षा के लिए मंत्रीमंडल की एक समिति विचार करेगी, सरकार आमजन के प्रति पूरी तरह संवेदनशील है और रहेगी और रही है। अतः समिति की रिपोर्ट पर मंत्रीमंडल यथाशीघ्र चुनाव के पूर्व निर्णय लेगा कि क्या करना है?

आपके मंत्रीमंडल के दो सदस्य करोड़ों रुपये के भूमि घोटाले, दो मंत्री खलीचारा खरीदी के, चार हत्या बलात्कार के मामलों में फंसे हुए हैं, लोक आयुक्त ने उन्हें हटाने, आपराधिक प्रकरण दर्ज कराने की सलाह दी है, क्या कहेंगे आप?

यह सब केन्द्र सरकार की गलत नीतियों की वजह से है! विरोधियों का प्रोपेगंडा है।

आपकी सरकार के समक्ष सबसे बड़ा नीतिगत मुद्दा कौन-सा रहेगा?

जैसे भी हो हमारी सरकार बनी रहे।

क्या आपकी सरकार बनी रहे।

क्या आपकी सरकार वाकई पार्टी के घोषणा-पत्र पर अमल करेगी?

सवाल ही नहीं उठता! घोषणा पत्र का संबंध केवल चुनाव के पहले तक रहता है, वैसे भी न हम इसे सीरियसली लेते हैं, न ही जनता।

एक्स सिविल जज वर्ग-1, नया बाजार नंबर-1, दमोह (म.प्र.)

शिव शर्मा

स्व. भोला गुरु रसासिक्त साहित्य मंडल

जलेबी में जो स्थान रस का होता है, कमोबेश साहित्य में भी रसों का वही महत्व होता है। इन दिनों रस गायब हो रहा है। स्व. भोला गुरु का जलेबी भंडार, रियासती राज से ही प्रसिद्ध रहा है। साहित्य में भी नौ रसों का उल्लेख प्राचीन काल से हो रहा है। भोला गुरु अपने जीवन काल से ही काव्य प्रेमी थे, वह भी जलेबियों की तरह रसदार काव्य के दुर्भाग्य से इन दिनों साहित्य में रसों का नितांत अभाव हो गया है। अन्य जलेबी विक्रेता भी उनकी तरह रसासिक्त जलेबियों के स्थान पर सूखी जलेबियां बेचने लगे थे। जलेबी एवं साहित्य को जोड़ने हेतु उनकी मृत्युपरांत स्मृति में उनके सुपुत्र बंधु गुरु ने स्व. भोला गुरु रसासिक्त साहित्य मंडल में कविगण जलेबियों के साथ रस मंडल में रसासिक्त कविताओं का पाठ करते थे। इससे भोला गुरु की जलेबियां और कविगण भी चल निकले थे।



रसासिक्त साहित्य का अभाव-सा चल रहा है। कविताएं और गद्य साहित्य में लट्ट एवं जूतों का चलन अधि क हो गया है। प्राचीन रसदार साहित्य लुप्त हो गया है। पुस्तकें भी योग एवं भोग पर छपने लगी हैं। कविसम्मेलन में फूहड़ हास्य कवि अपने तुक्कड़ बेच रहे हैं। एकाध लंदन-न्यूयार्क की गली में, गुजराती या पंजाबी समाज में कविता क्यों पढ़ आए, अपने को अंतर्राष्ट्रीय कवि मानने लगे हैं। चैन लो पर ग्रेट कॉमेडी शो में गंदे से गंदे जोक्स सुनानेवाले राजू जो करो पर हंसी तो क्या रोना आता है। इन पर जजों के रिकार्डेड ठहाकों से सीन लेना पड़ता है। एक पूर्व

क्रिकेटर नेता ने तो बिना बात के ठहाके लगाने का विश्व रिकार्ड बना दिया है। हास्य व्यंग्य का पुरस्कार वीररस के कवियों को दिया जा रहा है क्योंकि उन्होंने महारानी मुख्यमंत्री मायावती के लिए चालीसा लिख दिया है। कुल मिलाकर साहित्य से जलेबी वाला रस गायब हो गया है।

मेरे कस्बे के रसासिक्त कवियों ने इस कमी की पूर्ति के लिए रसासिक्त साहित्य मंडल स्थापित कर डाला है। स्व. भोला गुरु की सर्राफा बाजार में प्रसिद्ध जलेबी की दुकान है, जहां प्रति सप्ताह गोष्ठी का आयोजन किया जाता है। जीवनभर

भोला गुरु कवियों को बुलवाकर जलेबी का रसपान करवाते और स्वयं उनकी रसासिक्त कविताओं का रसपान करते थे। साथ में महाकाल भांग घोट, हाउस की युद्ध गोली भी छनवाते थे। उनकी मृत्यु से मेरे कस्बे का साहित्य मर सा गया था।

उनके पुत्र यूं तो दिन रात अखाड़े में मल दंगल करने के प्रेमी थे। किंतु स्व. पिता की स्मृति को संजोए रखने हेतु इस मंडल की स्थापना हेतु आगे आ गए थे। अपने पिता का असर तो होना ही था। अब कवियों की संगत में वे भी सुरम्य एवं सुरीला कविताई करने लगे। लोकल कवियों ने इतना उकसाया कि वे कालिदासनुमा मंडल की कविताएं सुनने-सुनाने के लिए अपने भोला-गुरु जलेबी भंडार के बाहर स्व. भोला गुरु रसासिक्त साहित्य मंडल का साइन बोर्ड लगाकर ही मानें।

शाश्वत साहित्य की रचनाओं में अमर होने के लिए लोग क्या-क्या पापड़ नहीं बेलते। एक कवि मित्र तो अपने स्वर्गीय पिता की स्मृति को शाश्वत बनाने के लिए अपनी जेब से एक दर्जन पुरस्कार बांटने लगे। शर्त यही थी कि सभी कवित्त उनके पिताश्री को समर्पित हो। भोला गुरु साहित्य मंडल की प्रथम गोष्ठी का उद्घाटन किया। जिले के खाद्य अधिकारी मिश्रीलाल जी जायसवाल ने बेची कंट्रोल अनाज की अफरा-तफरी कराते-कराते साहित्य प्रेमियों को आमंत्रित किया गया। इनमें आबकारी निरीक्षक श्री घंटा प्रसाद, नायब तहसीलदार जमना लाल एवं नगर कोतवाल रौबदार सिंह भी सम्मिलित हुए।

हुआ यह था कि कई कविगण इसी प्रत्याशी में गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे कि उनकी प्रेरणा को जागृत करने के लिए आबकारी विभाग वाले अवश्य ही सस्ती दरों पर सोमरस की व्यवस्था कर ही देंगे। इन सब महत्वपूर्ण लोगों की उपस्थिति इस बात की गारंटी थी कि साहित्य-गोष्ठी के लिए चंदे की चिंता अब कवियों को नहीं करना पड़ेगा।

स्व. भोला गुरु के चित्र पर माल्यार्पण के साथ गोष्ठी का शुभारंभ हुआ। हुआ यह कि आयोजकों ने एक साथ नगर के सभी काव्य-गुरुओं को आमंत्रित कर लिया। फलस्वरूप प्रतिस्पर्धी कवि गुटों में फौजदारी होते-होते बच गई। कस्बे में कवियों के दो गुट हुआ करते थे एक के नेता हास्य कवि मुंह फट जी थे और दूसरे के नेता चातक जी, जो जाहिर है कि श्रृंगार के कवि थे। शीत युद्ध तो दोनों में निगम के मेले में कवि-सम्मेलन का ठेका हास्य कवि को मिल गया था। मुंहफट जी काफी लोकप्रिय हो चुके थे। वे बहुरूपि की तरह चोटी रखते और जब लोग उनकी कविताओं पर नहीं हंसते तो वे अपनी उसी चोटी और अपने अंगों के विचित्र संचालन से हंसाने में कामयाब हो जाते। इसीलिए वे लंदन, न्यूयार्क तक काव्य पाठ कर आए थे। शीतयुद्ध का कारण यह था कि उदीयमान कवयित्री शीतल जी को कौन पहले मंच पर स्थापित करे? शीतल जी दोनों को अपना काव्य गुरु मानती थी और गाहे-बगाहे दोनों को प्रेरणा देने हेतु देर रात के कवि-सम्मेलनों में अपने कंठ और संपूर्ण तन-मन-धन से उनका झंडा बुलंद करती रहती थी।

स्व. भोला गुरु मंडल की इस काव्य-गोष्ठी में, शीतलजी श्रृंगार-रस के कवि गुरु चातक जी के साथ चली गई थी। इस पर हास्य कवि गुरु को पारा चढ़ गया था। अच्छा यह हुआ कि बात जूतों-चप्पलों तक नहीं पहुंची और रसासिक्त जलेबियों के आदान-प्रदान से ही विवाद का पटाक्षेप हो गया। गोष्ठी इसलिए भी सफल रही कि सभी कवियों के वस्त्र रसासिक्त हो गए थे, कविताओं से नहीं, तो क्या हुआ भोला गुरु की रसासिक्त जलेबियों ने तो अपना कमाल कर ही दिखाया।

442, ऋषि नगर, उज्जैन

सुरेश वाहने

भीखू का चन्द्र अभियान

धुआं उड़ता चन्द्रयान देखते ही अंतरिक्ष पहुंच गया। यान पर सवार दुबला-पतला भीखू अब देश के प्रधानमंत्री से बातें कर रहा था। प्रधानमंत्री ने उसे बधाई देते हुए पूछा— ‘ऊपर से पृथ्वी कैसी दिख रही है।’

भीखू की आंखें छलछला गईं। उसने कहा— ‘सर, मुझे पृथ्वी उधजली रोटी की तरह गोल और धब्बेदार दिखायी दे रही है।’

सात दिवसीय चन्द्र अभियान के दूसरे दिन चन्द्र सतह पर खड़े भीखू से पुनः प्रधानमंत्री ने प्रश्न किया— ‘वहां का परिवेश कैसा है?’

भीखू ने उत्तर दिया, ‘सर, यहां सब कुछ अपने गांव-सा ही लग रहा है, गांव की तरह यहां भी पर्वतीय प्रदेश है, जहां सड़क नाम की कोई चीज नहीं है। रात में आसमान के तारों के सिवाय यहां रोशन करने वाली कोई व्यवस्था नहीं है। गांव के बंजर हो चुके खेत की तरह यहां की धरातल सूखी और ऊबड़-खाबड़ है। यहां सूखी घाटियां हैं, जो मुझे पृथ्वी की सूखी नदियों की याद दिला रही हैं।’

जिज्ञासु प्रधानमंत्री ने फिर पूछा— ‘वहां तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है?’

इस प्रश्न से वह उद्वेलित हो उठा, लेकिन संयत स्वर में उसने कहना शुरू किया, ‘सर, यहां में अपने अभियान में जी-जान से जुटा हूं लेकिन मैं भूख से जूझ रहा हूं, क्योंकि अधिकारी मेरा टिफिन बॉक्स यान पर रखना भूल गए हैं। मैं जानता हूं, मेरा धरती पर जीवित लौट पाना संभव नहीं, लेकिन प्लीज सर, नियमानुसार यान में मेरे मरने के बाद बीमा कंपनी से प्राप्त रकम मेरे परिवार तक जरूर पहुंचवा दीजिएगा। घर पर पत्नी के अलावा दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, जिनका मैं एक मात्र सहारा हूं जी।’

प्रधानमंत्री ने ढाढ़स बंधाते हुए कहा, ‘हां, मुझे खेद है कि अधिकारियों की लापरवाही से तुम्हें शहीद होना पड़ेगा। मैंने

इस अभियान का नाम तुम्हारे स्मृति में तुम्हारे नाम पर रखने की घोषणा कर दी है। अब तुम और तुम्हारा गांव इतिहास में अमर हो जाएगा। तुम चिंता मत करो। मरणोपरांत बीमा की रकम तो मिलेगी ही, तुम्हारी पत्नी को दफ्तर में चपरासी की नौकरी भी दे दी जाएगी। वैसे इस लापरवाही की जांच के लिए मैंने एक उच्च स्तरीय समिति गठित करने का फैसला किया है।’

भीखू को चन्द्र अभियान पर जाने का कोई शौक नहीं था। वह इसलिए चला गया था कि लौटने पर शायद कहीं अच्छी नौकरी मिल जाएगी। यदि कोलम्बिया शटल यान की तरह कोई दुर्घटना होती भी है, तो परिवार के लिए बीमा कंपनी से इतनी रकम मिलेगी, जितनी जिंदगीभर कमाकर भी जुटा नहीं सकता। उसे मरने का दुख नहीं था। उसे सुकुन था कि अब उसका परिवार पैसे का मोहताज नहीं रहेगा।

चन्द्रयान धरती पर वापिस लौटा। भीखू के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

आज पांच साल हो गए। भीखू की विधवा भीख मांगकर गुजारा कर रही है। उसे बीमा कंपनी से कोई मुआवजा नहीं मिला। कंपनी का मानना था कि उसके पति भीखू की मौत भूख से हुई है, इसलिए यह आत्म हत्या है, न कि दुर्घटना। इतने बड़े अरबों रुपयों के अभियान पर भोजन नहीं ले जाने के लिए उसके पति को ही कंपनी ने जिम्मेदार माना। उसे नौकरी भी नहीं मिली, क्योंकि उसके पास भीखू की पत्नी होने का सरकारी सर्टिफिकेट नहीं था।

भीखू की पत्नी अक्सर रो उठती, ‘आखिर तुम चन्द्र अभियान पर गये क्यों?’

कोषाध्यक्ष, जन संस्कृति मंच
भिलाई-कुम्हारी इकाई
शिवनगर, मु.वपो.-कुम्हारी, जिला-दुर्ग

बलराम

पैटर्निटी लीव

अपने लेखनीय जीवन की शुरुआत में ही मैंने 'नौ दो ग्यारह' नाम से एक हास्य रचना 1970 में लिखी थी, जो मुंबई से छपने वाली पत्रिका 'रंग' में छपी थी, जिसके संपादक रामावतार चेतन हुआ करते थे। तब नहीं जानता था कि वे श्रद्धेय कन्हैयालाल नंदन के इतने निकट रिश्तेदार हैं। इससे पहले 1969 में मेरी पहली कहानी 'उसने देखा' आगरा से छपने वाली पत्रिका 'युवक' में मेरे फोटो के साथ छप चुकी थी। तब मैं 10वीं पास कर कानपुर के बी.एन.एस.डी. कॉलेज में दाखिला ले चुका था। इस तरह से देखें तो कहानी के साथ हास्य-व्यंग्य रचनाएं भी मैंने अपने लेखन के प्रारंभ में ही लिखनी शुरू कर दी थीं। 1981 में 'नेताजी की वापसी' नाम से जिनका मेरा व्यंग्य संग्रह भी छपा था, जिसका बाद में दूसरा संस्करण भी हुआ। बाद में मेरे व्यंग्य लेखक ने विश्राम में ज्यादा रुचि लेनी शुरू की तो कहानी और उपन्यास मेरे सिर पर सवार हो गए। बहरहाल, इसी महीने प्रकाशित होने वाले कथा संग्रह 'गोवा में तुम' में कहानियों के साथ कुछ व्यंग्य रचनाएं भी शामिल हैं, जिनमें से एक है 'पैटर्निटी लीव', जिस मैं अपनी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना के रूप में आपके सामने रखना चाहता हूं।

कोई पैंतीस बरस पहले जब मैंने इसे कागज पर उतरा था तो स्त्री विमर्श का कहीं नामोनिशान तक न था। तब 'मियां भरें घर में पनिया, कइसे सफरी' जैसे गीत कुएं से पानी भरकर लानेवाले पतियों का उपहास उड़ाते थे। स्त्री के नौकरी-चाकरी पर जाने की तब सामान्य आदमी कल्पना भी नहीं कर पाता था। आज समय पूरी तरह से बदल गया है। पानी नल से आने लगा है तो मियां को कुएं पर जाकर पानी भरने की जरूरत ही नहीं रही, लेकिन नौकरी करने वाली पत्नी के साथ पति को घर के सारे काम लगभग उसी तरह से करने पड़ते हैं, जिस तरह से स्त्रियां करती रही हैं अब स्त्री और पुरुष के काम अलग-अलग नहीं रह गए हैं। समलैंगिक विवाहों को विधि सम्मत करार दिए जाने के बाद अब तो शायद पैटर्निटी-पैटर्निटी लीव का लफड़ा ही खत्म हो जाए, लेकिन पैंतीस बरस पहले बच्चे के जन्म के समय मिलने वाली पैटर्निटी लीव के साथ पैटर्निटी लीव की मांग उठाकर मेरे व्यंग्यकार ने समय से बहुत आगे की बात जान ली थी। इस रूप में आज अपने इस व्यंग्य को मैं अपने पसंदीदा सृजनकर्म के रूप में पाता हूं। उम्मीद करता हूं कि आप और आपके पाठक इसे पढ़कर इसकी अंतिम पंक्तियों पर ठहरकर सोचने के लिए विवश हो जाएंगे। मेरी कहानियां भी ऐसी ही हैं, जो पहली पंक्ति से लेकर आखिरी पंक्ति तक इस तरह से एकमेक होती है कि उनके

किसी भी तार को कहीं से भी छेड़िए, आनंद मिलना शुरू हो जाएगा। अपनी व्यंग्य रचनाओं को भी मैंने कहानियों की तरह से ही रचने की कोशिश की है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना 'पैटर्निटी लीव' नमूने के तौर पर भी पढ़ी जा सकती है। अगर आप नौकरी करते होंगे तो छुट्टी की बात सुनकर उछल पड़े होंगे। और अगर मालिक होंगे तो सनक गए होंगे कि वैसे ही हिंदुस्तान में छुट्टियों की भरमार है और मैं एक नई छुट्टी की मांग कर रहा हूं। तो जनाब, मैं वैसे छुट्टी की बात नहीं कर रहा। मैं तो स्पेशल की मांग कर रहा हूं।

मेरी मांग है कि पत्नी के प्रसवकाल में पति को पैटर्निटी लीव मिलनी चाहिए। अब आप कहेंगे कि प्रसवपत्नी को होता है तो प्रसवकालीन अवकाश पति को क्यों? मेरे सवाल को आप फिर बेतुका कह देंगे। मेरा सवाल सुनकर महिलाएं भी नाराज हो सकती हैं कि उनके स्पेशल अवकाश पर कुदृष्टि क्यों डाल रहा हूं। उनसे मेरा निवेदन है कि जरा सोचें, जब वे पुरुष के समान सारे अधिकार नहीं दिलाना चाहेंगी?

महिला मुक्ति आंदोलन के इस दौर में मुझसे पूछा जा सकता है कि पुरुषों के लिए पैटर्निटी लीव की वकालत क्यों कर रहा हूं। मित्रो, प्रसव करने वाली महिलाओं के इस स्पेशल अधिकार पर अंगुली उठाने का मेरा इरादा नहीं है। मैं तो स्त्री और पुरुष, दोनों के भले की बात सोच रहा हूं। स्त्रियों से कहना

चाहता हूं कि जब तुम्हारा प्रसवकाल आता है, तब तुम सुस्त हो जाती हो। कुछ भी करने का मन नहीं करता। सोचती हो कि कोई नौकर या नौकरानी हो, जो सब काम कर डाले। मेरी मांग का मकसद नौकर या नौकरानी की उसी आवश्यकता को पूरा करना है, क्योंकि तुम भली भांति जानती हो आज की परिस्थितियों में मामूली नौकरी करने वाले पिया की जेब नौकर-नौकरानियों का बोझ संभाल पाने में समर्थ नहीं हैं। पुरुष को पैटर्निटी लीव दिवाकर मैं तो सिर्फ यह बताना चाहता हूं कि जो काम अभी तक पत्नी करती रही, प्रसवकाल में वह काम पतिदेव करें। उठकर सुबह-सुबह पत्नी और बच्चों को बेड-टी पेश करें। उसके बाद झाड़ू लगाएं। घर को धोएं और पोछें। पानी भरें। इसके बाद बाजार जाकर साग-सब्जी लाएं और फिर अंगीठी सुलगा कर दाल चढ़ा दें। जब तक दाल पके, जल्दी-जल्दी नहा-धोकर संतोषी मां की पूजा कर लें। दाल पक जाए, तब कुकर में पानी डाल उसे चूल्हे पर चढ़ाकर चावल बीनें। सब्जी काटें, बनाएं और फिर रोटी। खाना बन जाए तो सबसे पहले पत्नी को खिलाएं और फिर बच्चों को। बाद में बचा-खुचा खाना पत्नी की जूठी थाली में खुद खाएं। फिर चौका-बर्तन करें। बच्चों के, पत्नी के कपड़े-लत्ते धोएं और अगर साबुन सर्फ बच जाए तो अपने भी धो लो। इस बीच बच्चों को नित्यकर्म निवृत्त भी करवाएं। इतने काम निबटाकर पत्नी के

पैर दबाएं। सिर में मालिश करें और पूरे शरीर में तेल लगाएं। समय मिले तो दोपहर में एकाध घंटा आराम भी कर सकते हैं।

इसके बाद शाम के लिए दाल-चावल साफ करें। सब्जी काटे और फिर पत्नी के पास जाएं। उसके सुख-दुख की बात पूछें। जब पत्नी को नींद आ जाए तो रात में चुपके-चुपके दाढ़ी बना लें। इस तरह प्रसवकाल में पति को पैटर्निटी लीव मिल जाने पर हिंदुस्तान की पत्नियां असली पति-सुख को भोग सकेंगी। तब पति भी सुख का असली मजा ले सकेंगे। मैं समझता हूँ कि अब मेरी मांग का औचित्य स्त्री और पुरुष, दोनों की समझ में आ गया होगा। अब सब लोग समझ गए होंगे कि मेरा यह प्रस्ताव अटपटा, उल्टा, बेतुका या गलत नहीं है। पुरुषों को यदि शर्म आती है तो महिला सांसदों द्वारा इस मांग को हिंदुस्तान की संसद में उठाकर पुरुषों के लिए पैटर्निटी लीव का कानून पास करवाया जा सकता है। इति। मेरा लेख पूरा हो चुका था। अब मैं कबीरदास और लोई भाभी की प्रतिक्रिया का इंतजार कर रहा था। कबीरदास छत को देख रहे थे और लोई भाभी मुझे। पहले तो वह मुस्कराई और फिर एकाएक मुंह बनाकर सिसियाई। कबीरदास चौंके और पूछा, 'क्यों, क्या हुआ. . . ?'

'इस लेख का असर. . .पेट में दर्द है। शरीर का जोड़-जोड़ दुख रहा है।'

'फिर फिर?'

'आराम करना चाहती हूँ। चूल्हे पर खिचड़ी पक रही है, तुम जरा देखो. . .चूल्हा शायद बुझ गया है, जलाकर खिचड़ी पका लो।' कहकर लोई भाभी चारपाई पर लेट गई और कबीरदास उठकर चूल्हा फूंकने लगे। सारा धुआं उनकी आंखों में भर गया। कुछ देर बाद चूल्हा जलाकर लौटे तो चेहरे पर आंसू थे। आंसू पोंछते हुए उन्होंने घूरते हुए कहा, 'साले, ऐसा लेख लिखते हो? मेरे घर में सुनाकर मेरी यह हालत कर दी। यह अगर छप गया तो परिणाम भयंकर होगा। पूरा का पूरा हिंदुस्तान पुरुषों के आंसुओं में डूब जाएगा।' कहते हुए उन्होंने लेख को चिंदी-चिंदी कर हवा में उछाल दिया। घर से बाहर निकला तो चारपाई पर बैठा जंगली मुस्कराया। वह चिमटी से कान खोद रहा था। मैंने पूछा, 'क्या हो रहा है?'

'म्यूनिस्पैल्टी का कचड़ा कान में इकट्ठा हो गया है। उसे ही खोद-खोदकर फेंक रहा हूँ।'

'बरसात आ रही है, कान पक सकते हैं।'

'शहर का शोर सुनते-सुनते कान तो पक ही गए हैं, और क्या पकेंगे।'

सोचा, जंगली तो जंगली है, इसके मुंह लगना ठीक नहीं। उठकर चलने लगा तो उसने टोक दिया, 'सवेरे-सवेरे कहां चल दिए बलदाऊ जी?'

'बलदाऊ नाम सुनकर मेरी भवें तन गई। वह समझ गया और माफी मांगते हुए हाथ जोड़कर बोला, 'बाबू! गलती हो गई। फैक्ट्री में हेड मिस्त्री को दाऊजी कहता हूँ। उसी धोखे में आपको भी कह जाता हूँ। अब नहीं कहूंगा।'

बिना कुछ कहे आगे बढ़ गया। कबीरदास के घर की तरफ। पहुंचकर देख तो वे सूत कात रहे थे। दुआ-सलाम करके बैठ गये तो उन्होंने पूछा, 'और क्या हाल है?' मैंने बता दिया, 'एक समस्या प्रधान लेख लिखा है। सोच रहा हूँ कि आप उसे सुनकर जरूरी संशोधन सुझा दें और नर्मदेश्वरजी को पत्र लिखकर किसी की रचना छपवाता हूँ? नर्मदेश्वर मेरे दोस्त हैं, दिल्ली से आकर मेरे घर ठहरते हैं? लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि मेरी सिफारिश पर वह किसी की कोई भी रचना छाप देंगे। मैं नहीं सुनूंगा तुम्हारा लेख-वेखा।'

कबीरदास मेरी बात सुनकर भड़क उठे। मुझे डांट-फटकार कर वह फिर सूत कातने लगे। थोड़ी देर बाद मैं बोला, 'वो संतराम जी कह रहे थे कि. . .'

कबीरदास फिर भड़क उठे, 'अरे, वो साला संतराम! नगर के लेखकों में मेरी इमेज खराब कर रहा है कि मैंने नर्मदेश्वर को पटा लिया है। तुम उसकी बातों पर मत जाओ। मेहनत से लिखो। अच्छा लिखोगे तो छपेगा ही।'

कबीरदास की बात से मैं आश्चर्य में हुआ। तब तक फूला हुआ पेट लेकर लोई भाभी आ गई और वहीं पास में बैठ गई। कबीरदास ने सूत कातना बंद कर दिया और बोले, 'सुनाओ, क्या लिखकर लाये हो, तुम्हारी भाभी भी सुन लें।'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, यह तो अति

उत्तम रहेगा।' कहकर मैंने अपना लेख निकाला और पढ़ना प्रारंभ कर दिया। 'पैटर्निटी लीव।'

प्रसवकालीन अवकाश यानी पैटर्निटी लीव। नौकरीपेशा स्त्रियों को तो यह छुट्टी मिलती ही है। अगर पुरुषों के लिए भी प्रसव कालीन अवकाश यानी पैटर्निटी लीव की बात उठाऊं तो शायद पांचों कर्मद्वियां लेफ्ट-राइट करने लगें और आपकी आखें बड़े नींद वालों को निहारने लगें कि कहीं उनके पेट में कोई बच्चा तो नहीं, जिसकी वजह से पुरुषों के प्रसवकालीन अवकाश की बात कर रहा हूँ। आपके कान उस बच्चे की आवाज सुनने के लिए उतावले हो उठेंगे और आपके मुंह यह खबर औरों को सुनाने के लिए बेकाबू, क्योंकि जब ऑपरेशन से एक लड़के को लड़की बना दिया गया तो उसे देखने के लिए पूरा शहर उमड़ पड़ा था। लेकिन तोंद वाले तो सेठ होते हैं, साहूकार होते हैं, उन्हें किसी से छुट्टी लेने की जरूरत ही कहां पड़ती है। मेरी बात सुनकर अपने पेट में बच्चा होने के भ्रम में अपना ही पेट तो नहीं टटोलने लगे। पहले मेरी पूरी बात सुनिए। सुनकर सोचिए और सोचकर समझने की कोशिश कीजिए।

मेरा आशय सामान्य आदमी को पैटर्निटी लीव दिलाने से है। मैं दफ्तरों, कारखानों, स्कूलों और दुकानों आदि में नौकरी करने वालों के लिए सरकार से पैटर्निटी लीव की मांग कर रहा हूँ। मेरा सवाल है कि प्रसवकाल में स्त्रियों को पैटर्निटी लीव मिलती है तो पुरुषों को पैटर्निटी लीव क्यों नहीं?

मेरा सवाल आपको अटपटा लग सकता है और उल्टा भी, शायद गलत भी लगे, लेकिन सवाल न तो अटपटा है और न उल्टा। सेंट परसेंट सही है, उतना ही, जितना आपका सिर और उसमें फिट आंखें।

पुनश्च: पैंतीस बरस बाद कबीरदास ने लेखक को लिखा, 'बधाई! तुम्हारी मांग सरकार और कोर्ट, दोनों ने स्वीकार कर ली। एक अध्यापक की याचिका पर उसे पैटर्निटी लीव प्रदान कर दी है, लेकिन दूसरी तरफ कोर्ट ने समलैंगिकों की मांग भी मानकर उन्हें विवाह का अधिकार दे दिया है। अब पैटर्निटी लीव का क्या होगा, तुम मुझे जरा सोच-समझकर बताओ।

सी-69, उपकार अपार्टमेंट्स

मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

राजेन्द्र सहगल

एक्सीडेंट का रहस्य

मैं सड़क दुर्घटना में हाथ पैर तुड़वाए पड़ा हूँ। मिलने आने वाले अपनी-अपनी तरह से मुझे तसल्ली दे रहे हैं। अच्छा श्रोता तो पहले भी रहा हूँ पर अब और बेहतर श्रोता हो गया हूँ। दरअसल मेरे इर्द-गिर्द ज्ञान की वर्षा हो रही है। 'होनी को कौन टाल सकता है', 'संकट को आने में समय नहीं लगता पर वह जाता बेहद धीमी चल से है', 'अच्छा वक्त नहीं रहा तो बुरा भी नहीं रहेगा' 'चलो इसी बहाने प्रभु स्मरण कर लो' 'जो किस्मत में लिखा है हो कर रहता है' 'यह न सोचे कि क्या हुआ यह सोचो कि क्या हो सकता था।' जैसे गहन चिंतन से उपजे उच्चरित आप्त वाक्यों से मैं बराबर नहाने की हद तक भीगता रहा। मुश्किल तब हुई जब एक विकट ज्ञानी मेरी टूटी टांगों का गहराई से मुआयना करते हुए बोला, 'इसे क्या कहेंगे. . .कर्मों का खेल ही कह सकते हैं' मैं घबरा गया। मुझे लगा अगले पल कहीं यह न पूछ डालें कि भले मानुष तूने कौन से बुरे काम किए हैं. . . जो यह सब हुआ. . . खैर बाद में पता नहीं क्या सोच कर उसे मुझ पर रहम आ गया और वह पूरी दरयाफ्त करना टाल गया। मेरी सांस में सांस आई। बिस्तर पर पड़ा आदमी दूसरे की निर्णायक बातों को स्वीकारने के अलावा कर भी क्या सकता है।

बिस्तर पर पड़ा मरीज हर किसी के काम का होता है। दयावान दयालुता का थोक के भाव बखान करता है। ज्ञानी ज्ञान की वर्षा करता है। मिलने-जुलने वाले दल बल समेत चढ़ाई कर सकते हैं। जिंदा हाथी लाख का तो मरा हाथ सवा लाख का यूँ ही नहीं होता है। मरीज का सभी भला चाहते हैं। खाने-पीने के नये-नये नुस्खे सामने लाए जा रहे हैं। हर जगह स्वस्थ मतभेद उजागर हो रहे हैं। शाकाहार और मांसाहार के फायदे-नुकसान का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। मांसाहार के बारे में

खासतौर पर बकरे के खुर यानि खरोड़े के सेवन पर आकर मांसाहारी, शाकाहारी के बीच किसी विवाद की गुंजाइश नहीं बचती। अलबत्ता खरोड़े के बनाने की विधियों पर विवाद की असीम संभावनाएं मौजूद हैं पर इससे विवाद को धार ही मिलती है और दोनों पार्टियां मिल बैठकर भी कोई अंतिम निर्णय लेने के लिए रजामंद होने से गुरेज नहीं करती।

डॉक्टर कहते हैं खुश रहो। एक साथ तीन ऑपरेशन हुए हैं। हाथ पैर हिला नहीं सकता। दीवारें ताकने और आने जाने वालों के उपदेश-निर्देश बिना किसी अंतराल के बराबर सुनने पड़ रहे हैं। मैं अच्छे बच्चे की तरह मौन स्वीकृति दे रहा हूँ। ज्यादा और ठोस खाने के निर्देश जारी किये जा रहे हैं। चलना तो दूर बैठ तक नहीं सकता। पर ठोस खा-पीकर हजम करने का चमत्कार पैदा करना है। इस बीच डॉक्टर की बात नहीं टालता। मैं भी खुश होने के नाम पर होठों को ताकत के हिसाब से फैला लेता हूँ। डॉक्टर मेरी इस खुशी को देखकर आश्वस्त हो जाता है। खुश होना भले ही मुश्किल हो पर खुश दिखा तो जा सकता है। कहीं सुना था कि जैसा आदमी खुद होता है उसे वैसे ही लोग मिलते हैं। मैं जैसा खुद था मुझे डॉक्टर भी वैसे ही मिले। एक डॉक्टर मेरी मरहम पट्टी बड़ी बेरहमी से कर रहा है। मैं जोर-जोर से भगवान का नाम बीच में ले लेकर रोता चीखता जा रहा हूँ। डॉक्टर बराबर मुस्कराये जा रहा है। जब बीस पच्चीस मिनट के रुदन-क्रंदन के बाद मरहम पट्टी पूरी हुई तो मैं रो-रोकर थक चुका था। आंसू तो खैर पहले भी नहीं आ रहे थे। पर अब चीखने के कारण मैं डॉक्टर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश कर रहा हूँ। डॉक्टर को पता था कि ऐसे में कितना चीखना चिल्लाना वाजिब होता है और कितना फालतू। लिहाजा उसने काम

जारी रखा। मैंने दूसरा पासा फेंका और दहाड़ना बंद कर दिया। डॉक्टर ने मेरे इस प्रतिरोध को भी भांप लिया। वो घिसा हुआ अनुभवी डॉक्टर था। उसे मरीज के सारे दंदफंद पता थे। अब वह और भी इतमीनान से अपना काम करने लगा था। मैंने भी सारे नुक्ते आजमाने के बाद अपने को डॉक्टर के हवाले छोड़ दिया। मुझे अचानक ज्ञान प्राप्त हो गया। मैंने सोचा कि जितना बुरा हो चुका है उससे ज्यादा बुरा यह डॉक्टर भी क्या कर लेगा। तब तक मेरी रूलाई सुबकियों में बदल चुकी थी। डॉक्टर ने सोचा उसका काम तसल्ली बख्श तरीके से पूरा हो गया।

मरीज की चारपाई मनोरंजन-स्थल होती है। यहां कोई भी आकर अपने बच्चे खिला सकता है। बच्चा कितना भी उद्यम करें या चीखे चिंघाड़े। उन पर कोई रोक टोक और बंदिश नहीं। एक नवप्रसूता के उर्जावान सपूत ने मेरे सिरहाने किलकारियों से सारा वातावरण इस तरह गुंजायमान कर दिया कि मेरा दर्द तिरोहित हो कर सिर को चकरायमान करने लगा। चूँकि मां का मातृत्व पहली बार छलका था इसलिए वह भी नवजात शिशु के अदम्य उत्साह से विशेष प्रभावित होने लगी थी और उस पर बेवजह रोक-टोक न लगाकर उसके ऊर्जा स्रोतों को हवा दे रही थी। मां के ममत्व और नवजात शिशु के कृतत्व को खुली आंखों से देखने और खुलेमन से स्वीकार करने के अलावा मैं कर भी क्या सकता था। जैसे हमारे न्यायालय झूठ बोलने के सबसे अधिक सुरक्षित स्थल होते हैं ठीक उसी तर्ज पर मरीज का सिरहाना सबसे अधिक सुरक्षित स्थल होता है।

आफिस के लोग आफिस के वक्त में आए अपना प्राइवेट वक्त इन फालतू के कामों पर कौन खराब करें। मुझे प संद करने वालों ने भले ही देर कर दी हो पर नापसंद करने वाले जल्दी से आए। जिन्हें मैं साबुत

दिखना नागवार गुजरता था वे मुझे टूटा फूटा देखकर कुछ-कुछ आश्चर्य होने लगे। जरूरत से ज्यादा चाहने वाले सामना करना तो दूर बल्कि फोन पर भी हालचाल पूछने से बचते रहें। इनमें कुछ संकोची थे तो कुछ शांति। कुछ ऑफिस के लोग वरिष्ठता क्रम से आए। कुछ का वरिष्ठता क्रम इतना दूर था कि वे दो महीने बाद आए। शेष अति वरिष्ठ लोगों ने इसे समय का अपव्यय समझा और मेरे ठीक होने तक मिलना टालते रहे।

दूसरी बार आपरेशन टेबल पर पड़ा हूँ। एनथीसिया दिया जाने वाला है। डॉक्टर पूछ रहा है 'तुम्हारा मामला क्या है' आपरेशन डॉक्टर ने करना है पर मामला मुझे बताना है। जब मैंने शंका से भयग्रस्त होने पर बताया कि मामला बाई टांग का नहीं दाई का है तो डॉक्टर ने कहा 'आप तो बस पड़े रहें... हमें पता है हमें क्या करना है।' मुझे लगा कि दो टांगे मरीज के लिए भले ही सुविधाजनक है पर डॉक्टर के लिए यह गफलत पैदा करने वाली होती है। एक टांग हो तो कंफ्यूजन का कोई खतरा नहीं रहता। जब मुझे होश आया तो सबसे पहले मैंने अपनी टांगें गिनीं। दो ही थी। हड्डी कितनी जुड़ी है या जख्म कितना भरा है यह बाद की बातें हैं। ज्ञानी कहते हैं आदमी जैसा होता है उसे वैसे ही लोग मिलते हैं। मैं कहता हूँ मरीज जैसा होता है उसे डॉक्टर भी वैसे ही मिलते हैं।

ऑपरेशन पूरा होने पर मैंने पैर को हिलाया-डुलाया। इतनी देर से डॉक्टर ने आकर हालचाल पूछा। मैंने मरीज की भोली जिज्ञासावश पूछा, 'डॉक्टर साहब! मैं कब तक चलने लगूंगा।' डॉक्टर ने मेरे इस भोले सवाल का दार्शनिक जवाब दिया 'आपके पाँव बड़े खूबसूरत हैं। इन्हें जमीन पर मत उतारिएगा मैले हो जाएंगे।' मैंने सोचा डॉक्टर हंसमुख है मेरी हिम्मत बढ़ा रहा है। पर डाक्टर घिसा हुआ था। उसने यह डॉयलाग कई बार दोहराया और हर बार जांच के बाद पैर जमीन पर न रखनी की हिदायत दी। जब तक उस डॉक्टर का डॉयलाग मेरी समझ में आया मुझे बिस्तर पर चढ़े चार महीने पूरे हो चुके थे। उसके बाद डॉक्टर की आधी-अधूरी

सहमति से मैंने पैर मैले कर ही लिए। मैंने भी डॉक्टर की हंसी ठिठोली पर एक बार जवाब में कह दिया 'डॉक्टर साहब आप भले ही राजकुमार हो सकते हैं पर मैं मीना कुमारी नहीं हूँ। इसलिए इन पैरों को मैला होने ही दीजिए।'।

कहीं सुना था कि पुराने मरीज आधा डॉक्टर हो जाता है। हालाँकि मेरी डॉक्टर होने की इच्छा कभी नहीं रही। पर लोगों ने एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी के बारे में इतने विस्तार से जानकारी उपलब्ध करवा दी कि हाथ पैर ठीक हो जाने के बाद मैं भी छोटी-मोटी प्रेक्टिस चलाने की सोच सकता



हूँ। होम्योपैथी और आयुर्वेद के प्रशंसक इस दोनों पैथियों का कितना ही गुणगान क्यों न कर लें पर एलोपैथी के वर्चस्व को वे नकार नहीं सकते। मैंने पहले कई बार हार्डब्लड प्रेशर के लिए होम्योपैथी को छोड़ने की इजाजत मांगी तो किसी भी शुभचिंतक ने मुझे एलोपैथी छोड़ने की इजाजत नहीं दी अलबत्ता आयुर्वेद की गोली अतिरिक्त तौर पर मेरे हवाले कर दी।

इस बीच कई नए-नए नुस्खों के प्रयोग मुझ पर किए जाने लगे। इसी बीच एक अति उत्साही शुभचिंतक ने पहाड़ों की

जड़ी-बूटियाँ लाकर दी। सुअर के तेल की मालिश, खरोड़ों अर्थात् बकरे के खुरों का पानी तो मैं पहले से ही ले रहा था। दवाइयों की भरमार, खाने के विभिन्न व्यंजन तथा दवाई लगाने के नये-नये प्रयोगों को अपना कर उनका ईमानदारी से पालन करते हुए समय कब बीत जाता पता ही न चलता। लोग यह कहते हैं पड़े पड़े टाइम कैसे काटता होगा पर मेरे पास तो बिस्तर में भी वक्त की कमी हो जाती। कभी होम्योपैथी की एकाध डोज़ छूट जाती तो कभी कोई कैल्शियम की गोली लेने से रह जाती। खैर मैं बात अपने अति उत्साही शुभचिंतक की कर रहा था। चूँकि मुझे ठीक होना था। इसलिए मुझे सभी की बात शिरोधार्य थी। पता नहीं कौन-सी दवा रामबाण साबित हो जाये। पर्वत से निकलकर लाई जड़ी-बूटियाँ तो मैंने ग्रहण कर ली। लेकिन उसके इस्तेमाल का तरीका किसी को भी चक्कर में डाल सकता था। नुस्खा कुछ इस प्रकार था 'इन जड़ी बूटियों को सिलबट्टे पर पीसकर फिर सूती कपड़े से छानकर उसमें फलों फलों सामान मिला लें। फिर छानकर उसे अलग कर लें। उसमें कुछ सूखे मेवे (जिनके नाम अब तक न सुने होंगे दिखने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता) मिला लें। फिर उसे कटोरी में शहद के साथ मिला लें। उसके बाद गरम-गरम हलवे को पी जायें। इस पिसी हुई कड़वी दवाई को फांके और उस के बाद हलवा खायें। पानी बिल्कुल न पीएं। कड़वाहट से जीभ जल जाए तो परवाह न करें। अच्छे फायदेमंद नुस्खों से कुछ नुकसान भी हो जाए तो अन्ततः होने वाले फायदे को ध्यान में रखकर इस छोटे मोटे नुकसान को हंसकर झेलें।

पार्क में योग क्रियाएं तो आपने बहुत सुनी होंगी पर बिस्तर पर पड़े भी योग क्रियाएं की जा सकती हैं। डॉक्टर की हिदायत पर ठोस खाना है और बैठे-बैठे पचाना है। ऐसे में शरीर को बैठे-बैठे तोड़े-मरोड़े और आगे पीछे हों। तेजी से बैठे-बैठे पलंग पर कूदें। यह सब कुछ अकेले में करें। किसी के सामने न तो खाना पचाने के लिए आपको डकार आएगा और दूसरा देखने वाला आपको 'एबनार्मल' भी

समझ सकता है। मेरी बीवी मुझे पहले ही 'एबनार्मल' मानती रही है पर मैं इधर-उधर की बातें कर उसे बहलाता समझाता रहता था कि यह उसकी गलतफहमी है। मैं सामान्य नहीं 'अति सामान्य' हूं। उसने कभी नहीं माना पर मैंने कोशिश करना नहीं छोड़ा। अब मेरी हरकतें देखकर उसे रहा सहा शक भी नहीं रहा। अपनी बची खुची साख बचाने के लिए मैंने उसे अपना भला-चंगा होने का आश्वासन दिया और उसे किसी तरह ऑफिस जाने के तैयार किया। घर पर काम करने वाली को तो जब चाहे इधर-उधर भेजा जा सकता है और खाना हजम करने की उल-जुलूल हरकतों का खुलकर प्रयोग किया जा सकता है।

जल्द स्वस्थ होने की शुभकामनाएं तो थोक के भाव मिलती ही रहीं। मैं भी बिना किसी भेदभाव के उसे संभालता ही रहा। मैंने भी शुभकामनाएं देने वाले और बार-बार काम के लिए अपने को आगे-आगे रखने वालों का भरपूर इस्तेमाल किया। पत्नी के किसी संबंधी के विवाह में शामिल होने की रात देर से लौटने पर पड़ोसी दंपति को हलवा गर्म करने के लिए नौद से उठाया। पत्नी ने पता लगने पर झाड़ा तो उसे बताया कि उसने कई बार सेवा का अवसर देने का निमंत्रण दिया था। मैं उसके दिल की बात को भला कैसे पूरा न करता। मुहल्ले में जब तक साबुत था किसी ने हालचाल पूछने लायक नहीं समझा। टांग टूटने के बाद महत्वपूर्ण हो गया हूं। कुछ शूरवीरों ने घर आकर हालात की जानकारी ली तो शेष ने चलते फिरते देखकर मामला निपटा दिया। ऑफिस में लोगों ने मामले को बड़ी गंभीरता से लिया और हालचाल पूछने में भी कोई कोताही नहीं बरती। यह अलग बात है कि बस में चढ़ते वक्त वे सब मुझे पहले ही बस में चढ़े। सहानुभूति की अपनी जगह है उससे बस में पहले चढ़ने की रिजर्वेशन थोड़े हो जाती है। एक्सीडेंट के पहले मेरी आदत थी कि मैं सबको बस में चढ़ाने के बाद ही खुद बस में चढ़ता। इस चक्कर में कई बार सीट पाने से भी वंचित रह जाता। सब मुझे पहले जैसा चुस्त दुरुस्त मानकर मुझे कोई रियायत नहीं देना चाहते। दिल में हाल दस बार पूछते पर बस में पहले चढ़ने की कोई रियायत नहीं देते। सबको बराबर

समझने की परंपरा का यहां बखूबी निर्वाह किया जाता। सहानुभूति जताना अपनी जगह निपटाना अपनी जगह। सब लोगों को अपनी दिक्कत है उनकी दिक्कत को समझते हुए बेवजह अपनी दिक्कत क्यूं बढ़ाई जाये।

ऑफिस में सबने वरिष्ठता क्रम से हालचाल पूछा। जाहिर है बड़े बॉस का नंबर सबसे बाद में ही आना था। पड़ोसियों ने भी अपनी सुविधानुसार मामले की पूरी तफ्तीश की और मिलने पर उसकी पुष्टि के लिए पूरा मामला मेरे मुंह से उगलवाया। एक्सीडेंट के कार्य- कारण संबंध की यहां भी ब्यौरेवार विस्तारपूर्वक चर्चा हुई और अंततः होनी के आगे किसी का बस नहीं चलता सरीखे शाश्वत दार्शनिक वक्तव्य से पूरे मामले का पटाक्षेप कर दिया जाता।

एलोपैथी-होम्योपैथी और आयुर्वेदिक की लड़ाई पहले की तरह अब भी जारी रही। एलोपैथी तकलीफ दर्द देती है तो ठीक होने का विश्वास भी जमाती है। होम्योपैथी सेवन करने में सुविधाजनक तो होती है पर वक्त बहुत लंबा लेती है। आयुर्वेदिक संभावना तो जगाती है पर इसके नुस्खे तैयार करने की इतनी जटिल और ऊबाऊ होती है कि दवाई तैयार करने से पहले मरीज हांफने लगता है। मसलन 'फलां फलां जड़ी बूटियों को महीन पीसकर उसे साड़ी के पतले कपड़े से छान लें. . . छानने के बाद उसमें तीन चम्मच नमक आधा चम्मच अजवायन, दो तोले हल्दी वगैरह वगैरह डालकर धीमी आंच में करीब सैतीस मिनट पका लें। पकाने के बीच कड़खी से उसे दो-दो मिनट तक अवश्य हिलाते रहें। याद रहे तैयार होने वाला पदार्थ कड़ाही से चिपके नहीं. . .' इस नुस्खे का बनाने में तो जो शीर्षासन करता है वो अलग लेकिन इसे लेने के अपने अद्भुत तौर तरीके हैं। मसलन इसे कड़वे पदार्थ को लेने के तुरंत बाद अति मीठे हलवे का घोल पीना है। मरीज इस नुस्खे के तैयार होने और उसके सेवन की कल्पना से इतना आतंकित हो जाता है कि इसके फायदे उठाने के लिए खुद को तैयार नहीं कर पाता। इससे पहले कि मुझ पर कुछ और नये प्रयोग किये जाएं मैं उठ कर खड़ा हो गया हूं और एक्सीडेंट के रहस्य को कुछ-कुछ समझने लगा हूं।

40, सिद्धार्थ अपार्टमेंट

रोहतक रोड, नई दिल्ली-110087

'व्यंग्य यात्रा'

के निम्नलिखित
शुभचिंतकों से आप
'व्यंग्य यात्रा' अंकों
के लिए संपर्क कर सकते हैं

श्री अशोक आनंद
103/2-1 गुरु रोड, देहरादून
दूरभाष : 9410394466 (मोबाइल)

श्री रमेश सैनी
245, एफ.सी.आई.लाईन, त्रिमूर्ति नगर
दमोह नाका, जबलपुर-482002 (म.प्र.)
दूरभाष : 09425866402

श्री तरसेम गुजराल
78 रामशरणम कॉलोनी, कॉलेज रोड
बस्ती दानिशमंद, जालंधर (पंजाब)

श्री अरविंद विद्रोही
बिरसानगर रोड नं.-2 पूर्व, जौन-2
गुप्ता गैस गोदाम के पीछे
जमशेदपुर (बिहार)

रामबहादुर चौधरी चंदन
फुलकिया, बरियारपुर
मुंगेर-811211 (बिहार)

श्री अतुल चतुर्वेदी
380 शास्त्री नगर
दादाबाड़ी, कोटा (राजस्थान)
दूरभाष : 9414178745

प्रेम विज, 1284 सैक्टर 37 बी
चंडीगढ़ 7110036
दूरभाष : 2688139

परिदृश्य प्रकाशन
दादी संतुल लेन, धोबी तालाब
मरीन लाईन, मुंबई
दूरभाष : 20192689

श्री अनंत श्रीमाली
4/64 'गीतांजली' समता नगर
काँदिवली (पूर्व) मुंबई
दूरभाष : 9819051310

पंजाब बुक सेंटर
एस सी ओ न 1126
सैक्टर 22 बी, चंडीगढ़

श्री शिवानंद सहयोगी
ए-233 गंगानगर, मवाना रोड, मेरठ
दूरभाष : 9412212255

व्यास रोजगार सेंटर
महेश नगर
जयपुर (राजस्थान)

शैलेन्द्र अस्थाना

भगवान से चक चक

वैसे सहूलियत तो बात को भूमिका से शुरू करने में रहती है, किंतु मैं अपनी बात वगैर किसी भूमिका के कहने की इजाजत चाहूंगा, क्योंकि बात एक सपने की करनी है; और सपने वगैर किसी भूमिका के चाहे अनचाहे दिख जाते हैं। हमने यह सपना हाल ही में देखा है। आप कहेंगे इसमें नयी बात क्या है? यह आदमी ही है जो सपने देखता है, सपने दिखाता है और सपने पालता है। सोये हुए कुत्ते को गुर्रते देख कर मुझे लगता है कुत्ते भी सपने देखते हैं। यदि मनुष्य अपने आदिम मित्र कुत्ते की इतनी प्रवृत्तियां अपना सकता है तो क्या कुत्ते मनुष्य से सपने देखना नहीं सीख सकते। सपने दिन में भी देखे जाते हैं जैसा मुहावरों में प्रयोग होता है, और रात में भी जैसा मैं देखा था। मैं ऐसे ही रात में देखे सपने की बात कर रहा हूं।

मेरे सपने में भगवान आये थे। वैसे यह कोई नयी बात नहीं है। इसकी तो परंपरा रही है। हमारे प्राचीन ग्रंथ गवाह हैं। कभी-कभी तो भगवान सपने में आकर पूरी की पूरी किताब लिखवा जाते थे। यानि लेखक केवल एक स्टेनोग्राफर और बाकी काम भगवान का। सोचिये कितने खुशनसीब होंगे वे लेखक। आज के बेचारे लेखकों की तरह नहीं कि चार लाइन लिखने के लिए इतनी तैयारी, इतनी मशक्कत करनी पड़े। तब न भूमिका लिखवाने के लिए इतना पापड़ बेलना पड़ता था और न नोटिस लिए जाने के लिए आलोचकों समीक्षकों की ओर टकटकी लगाये रहना पड़ता था।

आज भी भक्तों के सपने में भगवान अक्सर आते ही रहते हैं। किसी के सपने में आ कर कह दिया, 'अमुक चौक के नीचे दबा कष्ट पा रहा हूं निकाल मुझे।' बस वहां मंदिर बड़ा और सड़क संकरी हो जाती है। पता नहीं सार्वजनिक स्थानों के नीचे ही भगवान क्यों दबे-छुपे रहते हैं?

मेरे सपने में भगवान आये कहा, 'बेटा, सो रहे हो? दादा कहलाने के उम्र में अपने लिए बेटा संबोधन नागवार लगा। मैंने कहा देखने में तो आप मेरे उम्र के ही लग रहे हैं फिर आपने मुझे बेटा कह कर संबोधित क्यों किया?'

'इसलिए कि मैं भगवान हूं।' उनका सीधा सा उत्तर था।

मैंने कहा, भगवान! कौन भगवान? कहां के भगवान?

'अजीब अहमक हो, भगवान को नहीं जानते?' उनके आवाज में तलखी थी।

मैंने भी उतनी ही तलखी से कहा, देश में कितने भगवान हैं, आप किस पंथ, किस संगठन, किस दल के भगवान हैं? अपने मुहल्ले और शहर का नाम तो बतायेंगे।

भगवान तैश में आ गये, कहा, मैं किसी दल वल को नहीं जानता। मेरा कोई ठांव नहीं ठौर नहीं, कोई गली मुहल्ला नहीं।'

'कम से कम पूरा नाम तो बताइये, केवल भगवान नाम तो नहीं होगा। कोई टायटिल तो होगी' मैंने संजीदगी से पूछा।

'भगवान को कोई टायटिल नहीं होती', भगवान ने बेरुखी से जवाब दिया।

'चलो, टायटिल नहीं जाति तो होगी', मैंने तर्क दिया।

'भगवान की जाति नहीं होती।'

'जाति नहीं होती', मतलब आप दूसरे देश से आये हैं।'

'दूसरे देश से नहीं दूसरे लोक से कहो।'

'अच्छा, वो दूसरे ग्रह नक्षत्र से आगे प्राणी, 'एलियन' हैं जैसा अंग्रेजी फिल्मों में दिखाया जाता है', मैंने सरलता से कहा।

'अजीब अहमक हो, मैं किसी दूसरे ग्रह नक्षत्र का प्राणी नहीं, भगवान हूं, भगवान। यानि ईश्वर अल्लाह गॉड।'

'तीनों! यह कैसे हो सकता है कि ईश्वर अल्लाह और गॉड एक ही हो? हमारे यहां तो हर मुहल्ले, हर गांव, हर जाति के भगवान अलग-अलग होते हैं; जिसके लिए लोग कटते-काटते रहते हैं, मरने-मारने के लिए उतारू रहते हैं। और आप कहते हैं कि ईश्वर अल्लाह और गॉड एक हैं। यह कैसे हो सकता है?'

'मैं समझा नहीं', भगवान ने कहा।

'आप नहीं समझेंगे, दूसरे लोक में रहते हैं न!'

भगवान कुछ सोचने लगे। मुझे मौका मिल गया। पूछा, चलो माना कि आप भगवान हैं, फिर कहां है आप का गदा-चक्र-पितांबर; आप भी तो मेरे जैसा ही स्लीपिंग सूट पहने हुए हैं; जिसके ऊपर का एक बटन टूटा हुआ है, ठीक मेरे स्लीपिंग सूट की तरह। यह कैसे हो सकता है कि भगवान मेरे जैसा दिखे?

'क्यों नहीं हो सकता कौन कहता है कि मैं मुकुट पहने गदा-चक्र लिये रहता हूं?'

'मैंने किताबों में पढ़ी है। किताबों में जो लिखा है गलत कैसे हो सकता है?'

'तुमने गलत पढ़ा है। तुम कुछ नहीं जानते।' भगवान ने गंभीरता से कहा।

'मैं कुछ नहीं जानता? इतनी सारी डिग्रियां हैं मेरे पास! पूछिये लोगों से मैं कितना बड़ा विद्वान् माना जाता हूं। बड़े-बड़े लोग मेरा भाषण सुनने आते हैं, बड़े-बड़े अखबारों में, बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में मेरे लेख छपते हैं, लाखों रुपये कमाता हूं और आप कहते हैं मैं कुछ नहीं जानता।

'तुम बुद्धिहीन नासमझ ही नहीं बड़बोले भी हों' भगवान के आवाज में सख्ती आ गयी थी।

मैं थोड़ा नरम हुआ। मेरा घाघ मन हरकत में आ गया। बेशक मान लिया आप

भगवान हैं और यदि आप भगवान हैं तो मेरी कुछ शंकायें हैं क्या आप उनका निराकरण करेंगे।

‘शंकाएं?’

हां मेरे कुछ प्रश्न हैं आपसे उनका उत्तर चाहिए।

मतलब तुम समझदारों जैसी बातें कर सकते हो। बोलो क्या हैं तुम्हारे प्रश्न?

‘भगवान! आपने पुकार सुनकर गज को ग्राह से छुड़ाया, द्रौपदी की लाज बचायी, हिरण्यकश्यपु को मार कर प्रह्लाद की रक्षा की। किंतु आज कितनी ही अबलाएं, कितने पीड़ित-आक्रान्त आपको गुहार लगाते-लगाते, पुकारते-पुकारते दम तोड़ देते हैं; किंतु उनकी रक्षा करना तो दूर की बात आपकी छाया भी वहां नहीं पहुंचती।’

‘तुम्हारी शंका सही है। पर हमारी मजबूरी भी है। उस समय मुझे पुकारने वाला मेरा भक्त होता था और आततायी मेरा विरोधी, मेरा शत्रु। मैं भक्त की पुकार सुन कर झट उसकी सहायता करने पहुंच जाता था और विरोधी को परास्त कर भक्त की रक्षा कर देता था। भक्त की रक्षा भी हो जाती थी और विरोधी के साथ मेरा विरोध भी समाप्त हो जाता था। किंतु आज की स्थिति भिन्न है। दोनों मेरे भक्त होते हैं, पीड़ित भी और आततायी, पीड़क भी, आक्रान्त भी और आक्रामक भी अब तुम्हीं बोलो मैं किसका पक्ष लूँ? एक मेरी पूजा करता है, दूसरा मेरे लिये मंदिर बनवाता है मैं किसकी सुनूँ?’

‘आप को न्याय का पक्ष लेना चाहिए’ मैंने सुझाया।

‘न्याय का? न्याय भी कहां निरपेक्ष होता है? आज का न्याय कल का अन्याय हो जाता है। तुम तो जानते हो न्याय का वास्ता दे कर मुझसे शंबूक का वध करवाया गया; आज मुझे उसी के लिए कोसा जाता है। वर्षों से जड़ बनी अहिल्या को मुझसे जीवन दिलाया गया, किंतु इस प्रकरण के अपराधी इंद्र और चंद्रमा को दंड नहीं दिया इसके लिए मुझ पर उगलियां उठायी जाती हैं। अपनी प्रजा परायणता दिखाने के लिए पत्नी को घर से निकाला आज मुझे इसके लिए दोषी माना जाता है।’

‘फिर भी ... मैं बात को और स्पष्ट

करना चाह रहा था।

फिर भी क्या? जनता को देखो। बुद्धिजीवी हो न इसलिये जनता की ओर नहीं देखते। उम्मीदवार जनता से वोट मांगने जाता है। उम्मीदवार भी कोई ऐसा वैसा नहीं कोई विषधर कोई मणिधर कोई अजगर अब जनता बेचारी क्या करें? किसका पक्ष ले? कह देती है निपट ले भाई आपस में बूथ कैप्चर कर के। कोउ नृप होहिं हमें का हानि, चेरी छोड़ न होयब रानी।’

‘क्या साधारण जन और भगवान में कोई अंतर नहीं है?’

‘जानते नहीं भगवान का दूसरा नाम जनार्दन भी है।’

‘जानता हूँ, किंतु....’

‘मतलब तुम्हारे शंका का समाधान अभी नहीं हुआ। मान लो तुम पुलिस में होते। जनता के पैसे से सरकार तुम्हें तनख्वाह देती और अपराधी अपने अपराध के कमाई से तुम्हें हफ्ता देते। अब जनता और अपराधियों के लफड़े में तुम किसका पक्ष लेते? बहुत होता तो उन्हें आपस में निपट लेने के लिए छोड़ कहीं और मशगूल हो जाते। कैन यू थिंक आफ एनी बेटर ऑप्शन इन सच सिचुएशन’ (ऐसी परिस्थितियों में इससे अच्छा विकल्प क्या सोच सकते हो)।

‘आप अंग्रेजी बोल रहे हैं?’

‘क्यों, मैं अंग्रेजी नहीं बोल सकता?’

‘मैं तो यही जानता था कि भगवान केवल देव भाषा संस्कृत ही समझता है।’

‘यदि तुम्हारी विद्वता ऐसी ही जानकारियों से बनी है तो तुमस तो मूर्ख भले।’

मेरी तुलना मूर्ख से! मैं अंदर से बौखलाया। जी में आया कि खरी-खोटी सुना दूँ; जैसे मंचों-सेमिनारों में अपने से असहमत होने वालों को सुना दिया करता हूँ। किंतु मामला भगवान का था इसलिए चुपचाप झेल लिया। किंतु मेरा घाघ मन अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिए उधेड़ बुन में लगा रहा।

‘चलो मान लेता हूँ आपकी मजबूरियों को। किंतु ऐसा क्या है कि आप रात में चुपके-चुपके सपने में आते हैं। दिन में सरेआम सड़कों पर क्यों नहीं निकलते?’

भगवान मुस्कुराये, इसमें व्यंग्य था।

विद्वान हो इसका मतलब यह तो नहीं कि किताबों से बाहर जा कर सोचो ही नहीं।

‘इसमें सोचने की कौन सी बात है?’ मैंने कहा।

इतना भी नहीं समझते। एक अदने से वी.आई.पी. के आने से शहर में अफरा-तफरी मच जाती है, सारी व्यवस्था उलट-पुलट हो जाती है। सोचो यदि मैं आ गया तो क्या होगा? कितनी समस्यायें पैदा हो जायेंगी, लॉ एंड आर्डर की, ट्राफिक की, राजनीति की। मैं जहां-जहां से गुजरूंगा भक्त लोग वहां-वहां एक से बढ़ कर एक मंदिर बनवाने लगेंगे। फिर वहां बाजार-होटल बनेंगे तब न वहां चलने के लिए सड़क रह जायेगी और न बच्चों के लिए स्कूल की जगह। बच्चों के खेलने की जगह तो पहले से ही देवी देवताओं के मंदिर के मार्फत कब्जे में ली जा चुकी है। अब तुम क्या चाहते हो कि लोग पेड़ों पर रहें और मेड़ों पर चलें। और यदि शहर ने हमारे आने का प्रापर नोटिस नहीं लिया तो हमारी क्या इज्जत रह जायेगी? किसी क्षेत्रीय दल के नेता की नवटंकी देखने-सुनने के लिए लाखों की भीड़ जुटा ली जाती है और यदि भगवान को देखने के लिए पच्चीस-पचास हजार की भी भीड़ नहीं जुटी तो? फिर लोगों के नाना प्रकार के प्रश्नों का सामना करने जहमत अलग। इससे तो अच्छा है आहिस्ता से सपनों में आ जाना। औवल तो सोया हुआ आदमी प्रश्न नहीं करता और यदि किसी ने प्रश्न कर भी दिया तो उसे अड़बंग सा उत्तर दे कर चलता किया जा सकता है। अब तो हो गया न तुम्हारी शंकाओं का समाधान।’

‘बस एक शेष है’ मेरी हिम्मत थोड़ी बढ़ी थी।

‘कहो।’

मैंने कहा, ‘प्रभु, कच्छप, मत्स्य और नरसिंह रूप में आपके आने की जानकारी तो है अब शूद्र रूप में आने की जानकारी कब मिलेगी?’

भगवान ने आंखें तरेरी। मैं पसीने-पसीने हो गया।

‘लगता है तुम्हारी निद्रा टूट रही है, ‘भगवान ने कहा और लुप्त हो गये।

6 बीसी, सी रोड, वेस्ट, नार्दन टाउन, जमशेदपुर-831001 मो. 9430745057

विलास गुप्ते

पेशे लायक चेहरा

उन्होंने कुछ कुछ संकोच और कुछ-कुछ व्यंग्य के साथ जो कहा, उसका मतलब यह था कि मेरा चेहरा मेरे पेशे के मुताबिक नहीं है। उनका विचार यह था कि मैं एक प्राध्यापक हूँ और मुझे अपने चेहरे का रखरखाव इस पेशे के अनुकूल रखना चाहिए, जोकि नहीं है!

मैं सोच में पड़ गया— क्या सचमुच पेशे और चेहरे के बीच कोई रिश्ता होता है? मैं जितना सोचता गया, उतना उलझता गया। उनका कहना था कि पेशे के मुताबिक चेहरा होना चाहिए, तो इसका मतलब यह भी तो होना चाहिए कि चेहरे के मुताबिक पेशा होना चाहिए। मैं फिर सोचने लगा। एक-एक कर कई चेहरे और पेशे मेरी आंखों के सामने घूम गये। मैं उनका आपस में मिलान करने लगा।

सबसे पहले मेरा ध्यान 'लोक सेवारत अहर्निश' पुलिस वालों की ओर गया। इससे अधिक लोकापकारी पेशा और क्या हो सकता है? अपराधों पर नियंत्रण, कानून-व्यवस्था का पालन और जनता के जानमाल का रक्षण यह तो बड़ा पुनीत कर्म है। उस हिसाब से तो इस पेशे वालों का चेहरा सौम्य होना चाहिए और वचन मधुर। जब पुलिस वालों का चेहरा सामने आया तो लगा कि यहां पेशा तो सही है, पर चेहरा गलत। कई बार पुलिस वर्दी में डाका डालने आये डाकुओं को मार गिराने वाले पुलिस वालों के फोटो अखबारों में छपते हैं। तब यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि इनमें से कौन डाकू हैं और कौन पुलिस वाला। 'विनम्रता सप्ताह' में भी पुलिस वालों की भाषा सुनकर लगता है कि पेशे और चेहरे में कहीं कुछ गड़बड़ है।

ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसने डॉक्टरों के चेहरे न देखे हों? डॉक्टरों के पेशे से

अधिक मानवीय पेशा और कोई हो ही नहीं सकता। रोग-जर्जर व्यक्ति के मन में आत्मविश्वास जगाने और मरते हुए को जिलाने से अधिक पुण्यप्रद कर्म और क्या हो सकता है? ऊपर से देखने पर डॉक्टरों के चेहरे बड़े भले व शरीफ दिखायी देते हैं, पर उस मुखौटे पर भीतर एक और चेहरा छिपा रहता है, जो उनका असली चेहरा होता है। यह चेहरा चिड़िया पर झपट्टा मारते बाज जैसा दिखायी देता है। यमराज से बचाने का चेहरा पहने ये डॉक्टर कई बार यमराज के दूत का काम भी करते हैं। इस चेहरे में और पेशे में कहीं कोई तालमेल नहीं है।

फिर एक साधु का चेहरा मेरी आंखों के सामने आ गया। पर दुख कातर, शांत रस में निमग्न, आध्यात्मिक आभा से आलोकित। चेहरा तो सही था, पर तभी उसके कर्म मालूम पड़े। उसने उपमहंत बनने के लिए चार लोगों के सिर फोड़े थे। एक बार आश्रम की एक महिला को दबोच लिया था। नशा तो रोज करता था। ये पेशा तो डाकुओं-गुंडों का होता है, साधु ने कैसे अपना लिया? यहां भी चेहरे और पेशे में बहुत फर्क था।

होते-होते अफसरों का चेहरा सामने आ गया। उन पर बहुत अधिक जिम्मेदारी होती है। उनका पेशा जनता की सेवा करना और कल्याणकारी योजनाओं को लागू करना होता है। इसी हिसाब से उनका चेहरा गंभीर और विनम्र होना चाहिए— जो होता भी है। यह तो गौर से देखने पर पता चलता है कि अफसर अपनी जेब भरने की ओर अधिक ध्यान देता है और रिश्वतखोरी उसके कार्यकलाप का अविभाज्य अंग है। यहां भी पेशे और चेहरे में अनुकूलता दिखायी नहीं देती।

सोचते-सोचते एक चेहरा ध्यान में आया। आये दिन ये चेहरा अखबारों में, न्यूज

चैनलों में, सभाओं-जुलूसों में या पोस्टरों में दिखायी देता है। यह चेहरा है राजनेता का। इस चेहरे को लेकर मैंने जितनी गहराई से सोचना शुरू किया, उतना ही मैं चकराता गया। राजनेताओं के कई-कई पेशों के साथ मैंने जितनी गहराई से सोचना शुरू किया, उतना ही मैं चकराता गया। राजनेताओं के कई कई पेशों के साथ मैंने यह भी पाया कि उनके कई-कई चेहरे भी हैं। वक्त जरूरत मौके के हिसाब से पेशे के मुताबिक वे चेहरा बदल लेते हैं। वैसे तो राजनेता के चेहरे से जनसेवा का भाव टपटप टपकता रहता है, पर पेशे से तो वे जनता को लूटने का धंधा करते हैं। इनका दूसरा चेहरा है देशप्रेम का। देशप्रेम इनके शरीर के अंग-अंग में रिसता है। जब बात पेशे की आती है तो ये वोटों की खातिर देशद्रोही ताकतों की पीठ थपथपाने से भी नहीं चूकते। यहां भी पेशे और चेहरे का फार्मूला फेल हो जाता है। राजनेता का एक और चेहरा है— त्याग व तपस्या का। यह चेहरा ऐसा आभास देता है कि वे इतने वीतरागी हैं कि लंगोट धारण करने तक की इच्छा नहीं रखते। फिर जब पेशे की ओर ध्यान जाता है तो पता चलता है कि नंगापन तो उनका प्रिय शगल है! आदर्शों के वस्त्र उन्हें काटने को दौड़ते हैं, इसलिए वे बेशर्मी के साथ अपने कृत्य करते रहते हैं।

होते-होते मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस दुनिया में चेहरे और पेशे में कोई संबंध नहीं होता। अगर आदमी पेशे के हिसाब से चेहरा अपनाने लगे तो मुंह की खायेंगा। उसी प्रकार अगर वह पेशे के हिसाब से चेहरे का रखरखाव करे तो मनुष्यों के सिर पर पशुओं के चेहरे ही नजर आयेंगे।

72, पत्रकार नगर

इन्दौर

दिनेश चन्द्र जोशी

बुलाकी का उस्तरा और राजधानी

बुलाकी को आप नहीं जानते होंगे, जानेंगे भी कैसे? कभी फुटपाथ में सिर घोटया होता तो जानते भी। बहरहाल बुलाकी को जनवाने के लिए मैं आपका सिर नहीं घुटवाउंगा, आप निश्चित रहें। हां, इस कथा को पढ़ने की हजमत अवश्य करें।

बुलाकी के बाप-दादा गांव के पुश्तैनी नाई थे। दादा, गांव के जमीदारों, सेठ-साहूकारों की हजमत बनाया करते थे, लोग कहते हैं उनके उस्तरे में ऐसी सिफत थी कि पता ही नहीं चलता था कब उस्तरा चला और बिना खूं-खरोंच के अपना काम कर गया। रही बात कैंची की, तो, कैंची तो सुना है, ऐसी चलती थी कि पचास फीसदी बाल कम हो जाने के बाद भी पता नहीं चलता था कि बाल कम हुए हैं। यानी कि बाल कट भी जाएं और कटिंग हुई कि नहीं इस बात का पता भी न चले।

इस फने हजमत के एवज में उन्हें इनाम इकराम भी खूब मिला करता था। सो, कहा जाता है कि बुलाकी के दादा के जमाने में घर की माली हालत अच्छी थी। बुलाकी के बारे में एक बड़ा दिलचस्प वाकया यह था कि सन पचास में जिस दिन पहली छब्बीस जनवरी मनाई गई, उसी दिन बुलाकी का जन्म हुआ। आजादी की लहर का जोर था और दूर-दराज के कस्बों गांवों तक छब्बीस जनवरी मनाये जाने की खबर थी, सो इस कारण बुलाकी का जन्म तिथि लोगों की जुबान पर रट गई, यहां तक कि शुरू-शुरू में बुलाकी को गांव में कुछ लोग 'आजाद नाऊ' के नाम से भी पुकारते थे। आजादी के बाद बुलाकी के बाप दादा का धंधा मंदा पड़ा गया, जमीदारों, सेठ-साहूकारों का रौबदाब घट गया, उनकी मूछों का बांकपन कम हुआ और हजमत के काम में भी वो बात नहीं रही जो पहले थी, सो बुलाकी के बाप को गदिर्श के दिन देखने पड़े।

थोड़ी बहुत खेती पाती और थोड़ा हजमत का काम चलाकर बुलाकी के बाप ने किसी तरह बुलाकी व उसके भाई बहिनों को जवानी तक ला खड़ा किया। हजमत के फन में बुलाकी ने भी पुश्तैनी महारत अवश्य हासिल कर ली थी। लेकिन गांव में हजमत बनाने वालों, बाल कटवाने वालों और सिर घुटाने वालों को कस्बे और शहर की 'सैलून' का फैशन भाने लगा था। दो चार बुजुर्गों व सयानों की खोपड़ी व हजमत के भरोसे बुलाकी का उस्तरा कब तक अपना काम चलाता, ऐसे नामुराद वक्त में एक रोज बुलाकी ने अपनी हजमत वाली बक्सिया उठाई और गांव के पास वाले नजदीकी कस्बे की ओर रुख कर लिया। कस्बे के चौराहे पर बरगद के पेड़ तले मौका देखकर उसने अपनी चटाई तथा हजमत बक्सिया जमा दी।

कस्बे में बुलाकी का धंधा ठीक-ठाक चल पड़ा, कस्बे की आबादी गांव से कई गुना ज्यादा थी। आस-पास के गांवों से कई लोग कस्बे में सौदा सुलुफ, डॉक्टर, हकीम, तहसील, स्कूल, नून-तेल राशन के चक्कर में आते थे। लगे हाथों कटिंग, मुंडन व हजमत भी बना लेते थे। बुलाकी एक तो सस्ता था ऊपर से मौके की जगह पर बैठा करता था, सो उसके उस्तरे की धार चमकने लगी। बाल तो व काटता ही था लेकिन जो मजा उसे सिर घोटने में आता था, वो बात हजमत आदि में नहीं थी, सिर घोटने का तो वह एक्सपर्ट ही था। घोटते वक्त जब वह मस्ती में आ जाता था तो घुटे हुए सिर के इंच इंच हिस्से को उंगलियों से चटखाता मालिस करता हुआ चहक उठता था, और ग्राहकों से कहता, 'भैया हम आदमी को चेहरा देखकर नहीं खोपड़ी देखकर पहचानते हैं, अगर घुटी हुई खोपड़ी हो तो कहने ही क्या! एक बार जिस खोपड़ी को हमारा उस्तरा देख लेता है उसे ताजिन्दगी नहीं

भूलता। चेहरा पहचानने में हमसे गलती हो सकती है, लेकिन खोपड़ी पहचानने में कतई नहीं होगी। आखिर भय्या! खोपड़ी ही तो हमारी रोजी रोटी है, रोजी रोटी को नहीं पहिचानेंगे तो जिंदा कैसे रहेंगे।'

कस्बे में बुलाकी की दिनचर्या बड़ी मजेदार चल रही थी, लेकिन एक रोज ऐसा वाकया हुआ कि कस्बे से उसका मन उचट गया। हुआ यूं कि उस दिन सुबह-सुबह बौहनी के वक्त एक गोल मटोल भारी आवाज व सख्त गलमुच्छों वाली खोपड़ी बुलाकी के समक्ष घुटने के वास्ते प्रस्तुत हुई, खोपड़ी रौबीले अंदाज में बोली, 'ऐ नाऊजी, फटाफट हजमत बनाओ, और सिर घोटो, जल्दी करो यह काम, टैम नहीं है।'

बुलाकी का उस्तरा यूं भी तैयार ही बैठा था, उसने चेहरे पर ज्यादा गौर न कर फटाफट हजमत बना दी, उसके पश्चात सिर घोटने लगा। यह सिर सामान्य सिरों के कुछ ज्यादा ही बड़ा व गोल मटोल था। इसे घोटने में बुलाकी को बड़ा मजा आया।

काम हो चुकने के बाद भारी भरकम आवाज वाली वह खोपड़ी सिर पर चादर लपेटकर, बुलाकी के हाथ में पांच का नोट पकड़ाकर चलती बनी, बकाया पैसे लौटाने के लिए उसने आवाज मारी, पर खोपड़ी इतनी त्वरित गति से चली कि बुलाकी को वे पैसे रखने ही पड़े। बुलाकी को वह व्यक्ति कुछ रहस्यमय कुछ संदिग्ध कुछ भयानक तो अवश्य लगा लेकिन अन्य ग्राहकों में व्यस्त हो जाने के कारण उसके दिमाग से यह बात जाती रही।

उसी दिन दोपहर तीन बजे के लगभग दो पुलिस वाले बुलाकी के पास अकड़ते हुए आए और एक मुच्छैल भयानक किस्म के आदमी का फोटो दिखाते हुए बोले, 'देखो, ये आदमी तुम्हारे पास हजमत बनाने तो नहीं आया था।'

बुलाकी ने फोटो को गौर से देखा,

चेहरा गलमुच्छों से इतना भरा हुआ था कि स्पष्ट रूप से नजर ही नहीं आ रहा था। हाँ, सिर का आकार लगभग वैसा ही था।

बुलाकी बोला, 'हुजूर, चेहरे पर तो हम ध्यान नहीं दिए, लेकिन एक मूछों वाला आदमी सुबह-सुबह बौहनी के वक्त आया था, वह हजामत बनवा ले गया साथ ही सिर भी घुटवा ले गया, हमारे हाथ में पाँच का नोट रख कर चला गया। उसके घुटे हुए सिर की तस्वीर हो तो हम पक्का बता सकते हैं कि वही आदमी था।'

पुलिस वाले बुलाकी पर बिगड़ गए। बोले, 'तुम साले कैसे नाई हो, आदमी का चेहरा न पहचान कर खोपड़ी पहचानते हो, आइन्दा से चेहरा पहचाना करो, और स्साले! गुंडे बदमाशों से घूस लेते हो, उन्होंने बुलाकी को डराया धमकाया साथ ही उसको दो डंडे जमाते हुए बोले, 'जानते हो वो आदमी एक नंबरी गुंडा है, दसियों हत्याओं का इल्जाम है उसके ऊपर, जिसकी तुमने हजामत बनाई है।'

बुलाकी बोला, 'सरकार आइन्दा ऐसी गलती नहीं करूंगा और चेहरा देखकर उस्तरा चलाऊंगा।'

इस घटना से बुलाकी बेहद परेशान व चिंतित हो उठा, कस्बे से उसका जी उचट गया। उसके दिल में कस्बे से पलायन की हूक उठने लगी। इस बाबत उसने जुगाड़ भी लगाना शुरू कर दिया। नतीजा यह निकला कि उक्त घटना को घटे दो माह भी नहीं बीते होंगे कि बुलाकी जी, कस्बे से कूच कर अपने जिला मुख्यालय की कचहरी के बाहर एक चबूतरे के कोने में अपनी चटाई और बक्सिया सहित जम गए। जिला मुख्यालय का तो नजारा ही कुछ और था, फिर कचहरी के तो कहने ही क्या।

मुक्किल, मुहर्रिर, वकीलों, पेशकारों के अलावा शहर गाँव देहात के लोगों का रेला हर समय लगा रहता था। पान, सिगरेट, फल, चाय, समोसा, खस्ता पुड़ी वालों की दिनभर चांदी रहती थी। चबूतरे के पास ही पीपल के नीचे तीन चार नाई और बैठते थे, उनके पास बकायदा कुर्सी, शीश, तौलिया व हजामत वाली क्रीम आदि भी थी। उनकी आमदनी भी ठीक थी। बुलाकी ने फिलहाल अपनी चटाई व बक्सिया से ही काम चलाना शुरू किया। उसके हुनर व कारीगरी से

प्रसन्न होकर ग्राहकों की संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी, सो जिला मुख्यालय में बुलाकी का काम बढ़िया चल निकला। समय का पहिया चलता रहा और कब जिला मुख्यालय में बुलाकी को चार पाँच वर्ष बीत गए, पता ही नहीं चला।

इस बीच बुलाकी ने वकीलों, बाबुओं, अफसरों के घर जाकर छुट्टी के रोज उनके बाल काटने का कार्य प्रारंभ कर के 'डोर टू डोर' सेवा प्रारंभ कर दी। यहां तक कि उसने दो एक जजों को भी अपने हुनर से प्रसन्न करके उनको नियमित ग्राहक बना लिया था। इस दौरान वह शहरी शिष्टाचार, सीप शउर, चुश्ती फुर्ती व बोली बानी से भी वाकिफ हो गया था। उसका भोला देहातीपन कम होता गया और एक शहरी तेज तर्रार किस्म के आदमी के व्यवहार की नकल उसको भाने लगी। अपने उस्तरे के फन की बदौलत उसने कुछ रकम भी जोड़ ली थी सो अपने स्टैंडर्ड में कुछ इजाफा किया और चटाई बक्सिया के बदले कुर्सी, शीशा व तौलिया वाला स्टेट्स हासिल कर लिया। जिला मुख्यालय में बुलाकी की दिनचर्या बड़ी खुशनुमा चल रही थी, लेकिन एक रोज ऐसा वाकया घटा कि बुलाकी हफ्ते दो हफ्ते तक डरा सहमा रहा। हुआ यूँ कि दोपहर के वक्त एक खद्दरधारी हट्टा कट्टा व्यक्ति बुलाकी की कुर्सी पर सिर घुटवाने के लिए जम गया, उसने हजामत भी बनवाई। बुलाकी ने फटाफट उस्तरा फेरना प्रारंभ किया।

अभी तक तिहाई खोपड़ी उसने घोटी ही थी कि वह एकदम से चौंका, उसने अपनी स्मृति पर जोर डाला, उसके सामने वही कस्बे वाली खोपड़ी साकार हो उठी जिसकी बदौलत कस्बे में डंडे खाये थे। किसी तरह डरते-डरते उसने पूरा कार्य सम्पन्न किया, कनखियों से एक दो बार चेहरे को गौर से देखा, चेहरा साफ सुघड़ चिकना हो गया था।

गलमूछें छंटरकर पतली तलवार छाप हो गई थी। हजामत बनाने के बाद बुलाकी डरता हुआ उस्तरा साफ करने के बहाने पास के बम्बे तक चला गया, भय व दहशत के कारण उसकी हालत खराब थी।

खद्दरधारी ने भारी भरकम आवाज देकर उसे बुलाया, 'लो भय्या, मेहनताना तो

ले लो! और सब ठीक-ठाक है, कोई परेशानी हो तो बताना' कहते हुए उसने बुलाकी के हाथ पर दस का नोट रक्खा और चलता बना। आसपास के दुकानदारों ने दोनों हाथ जोड़कर उसका अभिवादन किया, और कहा, 'नेता जी नमस्ते!' 'नमस्ते भाई, नमस्ते कहते हुए सद्यः घुटे हुए नेता जी हाथी की तरह मस्त चाल से चलत हुए कचहरी के गेट के भीतर चले गये। बुलाकी ने इस सिर को पहचानने में कोई गलती नहीं की थी। फिर यह तो असाधारण व अद्भुत सिर था। उसने सोचा, जरूर आज भी पुलिस वाले आएंगे और वही कस्बे वाला प्रश्न दाग देंगे, फिर कैसे बचूंगा? लेकिन बुलाकी की खुशकिस्मती से कोई नहीं आया। हफ्ता बीत गया, पखवाड़ा-महीना बीत गया कोई भी खद्दरधारी सिर की पूछताछ करने नहीं आया। बुलाकी निश्चित हुआ।

जिला मुख्यालय में बुलाकी का काम धंधा बढ़िया चल रहा था, एक रोज बगल के पान वाले रतन ने अखबार पढ़ते हुए आवाज लगाई, 'बुलाकी भय्या, लो सुनो खबर! राजधानी के दो सौ आंदोलनकारियों ने सिर घुटा कर उस पर अपनी मांगें लिखी और विशाल जुलूस निकाला। मजे की बात यह है कि उनकी मांगें मान ली गयी। वाह भाई, वाह! यह तो बड़ा बढ़िया तरीका है अपनी मांगें मनवाने का, तब तो राजधानी में तुम्हारी बड़ी जरूरत है बुलाकी भाई, तुरंत राजधानी जाओ, और अपने उस्तरे का कमाल दिखाओ। आमदनी की आमदनी होगी, समाज सेवा अलग से।'

बुलाकी इस खबर को सुनकर विस्मित हो उठा, यह तो बड़ी मजेदार बात है भय्या, अगर ऐसा है तब तो राजधानी में बड़ी मौज रहेगी। कोई जुगाड़ निकालना पड़ेगा वहां जाने का।' उसने रतन की बात का जवाब दिया। बुलाकी ने यह बात कही तो मजाक में थी लेकिन उसने राजधानी जाने के इस मजाकिया प्रकरण पर गंभीरता से सोचना शुरू कर दिया।

खाली वक्त में बैठे-बैठे बुलाकी अक्सर इसी सपने को साकार करने की चेष्टा करने लगता। इसी कवायद में उसने अपनी याद्दाश्त पर जोर डाला, उसे याद आया उसके गांव में किशन भाई राजधानी में पान की दुकान चलाते हैं। उसने सुना था किशन भाई की

दुकान अच्छी चलती है और वे अच्छे आदमी हैं। इस बात को उसने गाँठ बांध लिया और अगली बार गांव के फेरे से लौटते वक्त किशन भाई का पता ठिकाना मालूम कर लाया। बुलाकी को किशन भाई का पता क्या मिला कि उसकी राजधानी जाने की तमन्ना इतनी बलवती हो उठी कि एक रोज किशन भाई से मिलने वह राजधानी जाने वाली गाड़ी में बैठ लिया।

किशन भाई का पता लगाने में उसे ज्यादा दिक्कत नहीं हुई। ऐन विधानसभा मार्ग पर प्रिन्स सिनेमा के पास उनकी पान की दुकान थी, अच्छी खासी भीड़भाड़ वाली जगह थी, ग्राहकों का रेला लगा था। किशन भाई नेकदिल व मेहनती इंसान थे, बुलाकी को पहचानने में उन्होंने कोई कोताही नहीं की। राजधानी में बुलाकी के लिए ठिकाना तलाशने हेतु उन्होंने प्रयास किया और अपने परिचय व प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए विधानसभा मार्ग पर ही एक तोते वाले ज्योतिषी के बगल में बुलाकी के बैठने की व्यवस्था कर दी।

बुलाकी प्रमुदित हो उठा, फटाफट लौटकर जिला मुख्यालय आया और अपनी हजामत वाली बक्सिया व अन्य माल असबाब को एक लोहे के बक्से में डालकर संगी साथियों को 'राम-राम' कहकर राजधानी के वास्ते रवाना हो गया।

बुलाकी के राजधानी में बैठने की व्यवस्था क्या हुई कि उसने अपने मृदु व्यवहार और मेहनत से आसपास के दुकानदारों, ठेले रेहड़ी पान वालों से दोस्ती गाँठ ली, ध धा भी धीरे-धीरे चलने लगा, ग्राहकों की संख्या में आहिस्ता आहिस्ता वृद्धि होने लगी। बुलाकी का परिचय क्षेत्र बढ़ने लगा, राजधानी उसे रास आई। महीने दो महीने में सामूहिक घुटन्ना करवाने वालों की भीड़ चली आती थी। बुलाकी के उस्तरे को अपने करतब का भरपूर प्रदर्शन करने का मौका मिलने लगा। उसके अतिरिक्त कैंची का काल और हजामत का हुनर भी फलदायी साबित हो रहा था, लिहाजा राजधानी में बुलाकी प्रसन्न था, आमदनी भी बढ़ती जा रही थी। बुलाकी ने 'डोर टू डोर' सर्विस यहां भी जारी रखी। छुट्टी के दिन वह आसपास के रिहायशी इलाकों में जाकर सेवा प्रदान कर आता था इसी सिलसिले में

उसने विधायक निवास व मंत्री आवासों तक अपनी पहुंच बना ली थी। वहां पर विधायकों, नेताओं, छुटभय्यों, चमचों व क्षेत्र से आए हुए कार्यकर्ताओं, समाज, सेविकाओं, खद्दरधारियों, गुंडे-बदमाशों, मुच्छैल हट्टे-कट्टे विशालकाय महापुरुषों की भीड़-भाड़ व आवाजाही लगी रहती थी। वे लोग, दाड़ी हजामत बाल बनवाने हेतु बुलाकी की सेवाएं प्राप्त कर लेते थे। इस प्रकार राजधानी में बुलाकी पूरी तौर पर फिट हो चुके थे। राजनैतिक क्षेत्र में भी उनके उस्तरे ने दबदबा बना लिया था। कारोबार भी उसने बढ़ा लिया था। लकड़ी की पक्की दुकान बनाकर उसमें शीशा, कुर्सी, कलेन्डर क्रीम, तैलिए का इंतजाम करके दुकान को 'सैलून' का दर्जा दिलवाने योग्य अहर्तायें प्राप्त कर ली थी। एक दो लड़के भी सहयोगी के तौर पर रख लिये थे। कुल मिलाकर बुलाकी जी राजधानी के सुपरिचित नागरिक बन गए थे, सिर्फ गांव से बच्चों को लाने की देर थी। जमीन के एक टुकड़े पर छोटी-सी कुटिया बनाने की योजना भी उनके दिमाग में आकार लेने लगी थी। इस सारी उन्नति व जमजमाव के चलते बुलाकी को राजधानी में आए हुए आठ दस वर्ष हो गए थे। गांव से कस्बे को कूच करते युवा बुलाकी अब अंधेड़ावस्था में पदार्पण कर चुके थे। बालों में सफेदी आ गई थी, चेहरा प्रौढ़ हो गया था, आंखों में उम्र व अनुभव की झलक नजर आने लगी थी। उस्तरा निरंतर कार्यरत था, आए रोज उस्तरे को राजधानी के अनेकों महापुरुषों के मुंडन करने का सौभाग्य प्राप्त होता जा रहा था।

इसी क्रम में एक रोज बुलाकी के पास कालीदास रोड़ स्थित मंत्री आवासों में तत्काल पहुंचने का आदेश प्राप्त हुआ। हुआ यह था कि माननीय न्याय मंत्री जी की माता का स्वर्गवास हो गया था सो मुंडन हेतु नाई की आवश्यकता थी। बुलाकी से ज्यादा इस काम में सक्षम और कौन हो सकता था। बुलाकी ने तुरंत इस नेक काम में सहयोग देना प्रारंभ कर दिया। माननीय मंत्री जी के मुंडन से पूर्व अनेकों छुटभय्ये, चले-चमचे सहयोगी, शुभचिन्तक मुंडन हेतु प्रस्तुत हो गए। मंत्री जी उनकी वफादारी से प्रसन्न हुए, उनका हृदय पसीज गया।

सेवकों के मुंडन के पश्चात अंत में

मंत्री जी मुंडन हेतु प्रस्तुत हुए। बुलाकी ने उनकी सेवा में अतिरिक्त सावधानी व सफाई से उस्तरा चलाना प्रारंभ किया। नाम व गुण के अनुरूप मंत्री जी का सिर अन्य सिरों की अपेक्षा ज्यादा बड़ा व गोलाकार था, बुलाकी ने अभी एक तिहाई सिर घोटा ही था कि उसे यह सिर पूर्व परिचित लगा, आधा सिर घोटने के पश्चात तो वह अचानक चौंक कर कांप सा गया, यह तो वही सिर था जिसकी बदौलत कस्बे में पुलिस के डंडे खाये थे। लेकिन यह कैसे हो सकता है? कहां वह गुंडे बदमाश का सिर और महामंत्री जी का। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मुझसे ही कोई गलती हो रही है! बुलाकी अजीब पेशोपेश में पड़ गया। पर, सिर पहचानने में मुझसे गलती नहीं हो सकती, चाहे कुछ हो जाए, यह सिर सौ फीसदी वही है। बुलाकी डरा, सहमा व आश्चर्यचकित था। किसी तरह इसी मनोदशा में उसने पूरा सिर घोटा, उसके समक्ष वही कस्बे वाला विशाल सिर पूर्ण रूप से साकार हो उठा। डर व भय से बुलाकी का हाथ कांपा और मंत्री जी के कान के पास उस्तरे की हल्की खरोंच सी लगी, मंत्री जी थोड़ा क्रुद्ध हुए उन्होंने पलटकर बुलाकी का चेहरा घूरा, इससे पूर्व कि बड़बड़ाते, झुंझलाते उनकी तीक्ष्ण स्मृति ने बुलाकी को चीन्ह लिया, क्रोध के बदले चेहरे पर आत्मीयता के भाव उभरे। सेवक लोग इस बीच गुस्ताखी के लिए बुलाकी पर बरसने ही वाले थे कि मंत्री जी बोल पड़े, 'अरे भाई नाऊ जी से कोई गलती नहीं हुई है, हम ही सिर हिला दिए थे, सो खरोच लग गई।' इसके साथ ही उन्होंने एक सेवक को हिदायत दे डाली, 'तुरंत एक दूसरा नाई बुला कर इनका भी मुंडन किया जाए, ये अपने गांव जवार के आदमी हैं, ऐसे मौकों पर गांव बिरादरी के लोगों का मुंडन जरूरी होता है, माता जी की आत्मा को शांति मिलेगी।' बुलाकी बड़ी असमंजस की स्थिति में था, उसने सेवक से दूसरा नाई लाने हेतु मना कर दिया, और जिंदगी में पहली बार अपने ही हाथों से अपना मुंडन करने लगा।

डी-2/19, विज्ञान विहार
रायपुर, देहरादून-248008

सुधाकर अदीब

हुआ यूं कि. . .

श्याम बाबू अभी पिछले महीने ही साढ़े-साती के चलते दुर्घटनाग्रस्त हुए हैं। शुरू में तो वह लोगों के सवाल का पूरे उत्साह से जवाब देते रहे। उन्हें भी यह सोचकर पीड़ा में आनंद आता था कि उनके खैरख्वाह उससे कहीं अधिक हैं, जितना वह सोच सकते थे।

लोग आफिस से लौटते समय एक-एक दो-दो करके आते। श्याम बाबू का हाल पूछते। उनकी बाईं टांग पर बंधे प्लास्टर को हमदर्दी से देखते। कभी-कभी उस पर ममताभरा एक कोमल स्पर्श भी फेर देते, मानो वह प्लास्टर को नहीं श्यामबाबू की टांग को ही सहला रहे हों। श्याम बाबू की पत्नी यंत्रवत् आंगतुक मेहमानों को चाय थमा देती।

चार दिन से अब वह भी अभ्यस्त हो चली थीं। जानती थीं. . .श्याम का बखत है. . .इनके दफ्तर वाले आते ही होंगे. . .पूछने-पाछने। सो चाय का पानी चूल्हे पर पांच बजे सायं से ही खौलने लगता। दर्जनों लोग अब तक देख गए थे श्याम बाबू को। रोज़ ही आते थे। अपनी-अपनी फुर्सत से।

चाय की प्याली हाथों में आने तक आंगतुक पूछ बैठते—‘अच्छा तो ये हुआ कैसे?’

और श्याम बाबू तोतारतंत की तरह शुरू हो जाते—‘हुआ क्या? . . .श्याम को आफिस के बाद मैं सब्जीमंडी में सब्जी लेने गया था। मोटरसाइकिल खड़ी करके सब्जी ले रहा था। तभी एक सांड ने एक गाय को दौड़ाया. . .’

‘ओ हो हो हो. . .फिर?’

‘बस फिर क्या था. . .बाजार में भगदड़ मच गई। उसी में ये चोट खा गया।’

बात इतनी-सी नहीं थी। और होती भी तो लोग कहां मानने वाले होते हैं। जब तक वह मरीज से खोद-खोद कर उसकी तकलीफ का इतिहास-भूगोल जान न लें

तब तक यह जाहिर कैसे हो कि वही उसके सबसे बड़े हमदर्द-तीमारदार हैं। चाय की चुस्कियों के बीच वे सवाल पर सवाल दागते—‘तो फिर पैर में चोट कैसे आई?’

‘वो हुआ यूं कि जब सांड ने गाय को दौड़ाया तो गाय जाकर पहले एक साइकिल वाले से भिड़ी। साइकिल वाला चकराकर मेरी मोटरसाइकिल पर गिरा और बस. . .ये हादसा हो गया।’

‘लेकिन आप तो तब तक सब्जी खरीदने लगे थे. . .मोटरसाइकिल पर साइकिल गिरने से आपको चोट कैसे. . .?’

‘अरे नहीं भई!’ श्याम बाबू को कुछ-कुछ झल्लाकर बताना पड़ता—‘मैं तो सब्जीवाली की तरफ उकड़ू बैठा सब्जी ले रहा था। जब भगदड़ मची तो शोर सुनकर आधा खड़ा हुआ। जब तक संभलता वह दुर्घटना घटी और मेरी ही मोटरसाइकिल मेरे पैरों पर गिर पड़ी।’

‘अरे-अरे-अरे. . .तुच्छ-चु-चु। इसका मतलब कि आप भाग ही नहीं पाए?’

‘यही समझ लीजिये।’

‘फिर? . . .?’

‘फिर क्या. . .उस समय तो पता ही नहीं चला. . .लोगों ने मोटरसाइकिल उठाकर खड़ी कर दी। भीड़ में से किसी ने मुझे सहारा दिया। मैं भी खड़ा हो गया। लोगों ने पूछा चोट तो नहीं आई। मैंने कहा कोई खास नहीं। दाहिने पैर से ही किक मारने की मेरी आदत है। एक किक मारते ही मोटरसाइकिल स्टार्ट हो गई। मैं घर चला आया। घर पर उतरते समय बाएं पैर में भारी दर्द हुआ. . .उसके बाद ही पता चला कि. . . ‘श्याम बाबू कुछ-कुछ हांफते से बात खतम करना चाहते।

मगर वह जानते थे कि पूछने वाले इतने भर से संतुष्ट होने वाले नहीं थे। उन्हें अपनी उस आदत पर रह रहकर क्रोध आता जिसके अभी तक वह आदी थे। वह यह

कि हर बात को बड़े विस्तार से कहना। यह आदत उनमें उनके बाप से आई थी।

उनके बाप भी जब किसी बात को कहना चाहते तो ढाई किलोमीटर पहले से शुरू होते। भारी-भरकम भूमिका के साथ। उदाहरण के लिये अगर उनको यह कहना हो कि—‘पड़ोस के सिंधी की लड़की पुदीना लेने आती है। जब मांगें तब दे दिया करो।’—इस पर वह पूरा-पूरा किस्सा यों बयान करते—

‘सवेरे-सवेरे मैं सोकर उठा। बाहर बगिया में घास काफ़ी उग आई थी। सोचा साफ़ कर दूं। लैट्रीन महसूस नहीं हो रही थी। तय किया कि आने पर कर लूंगा। अब जो खुरपी खोजने चला तो मिलकर न दे।

अब यही सब बड़ी गंदी आदत है तुम लोगों की। कोई चीज़ ढंग से किसी एक जगह पर नहीं रखते। जूता कहीं तो चप्पल कहीं तो खुरपी कहीं. . .

हां तो खैर! . . .अब जनाब राम-राम करके किसी तरह खुरपी खोज मिली। मैंने पहले बाहर फाटक के बाहर निकलकर देखा। सुबह बस हुई-हुई भर थी। मुहल्ले में दूर-दूर तक सन्नाटा था। लगता था कि सारे घरों के लोग अफ़ीम खाकर सोए पड़े हों। . . . तभी सिंधी की वो छोटी लड़की घर से बाहर निकली। उसने सड़क पर कूड़ा फेंका।

. . .बड़े सवेरे उठ जाते हैं ये लोग। बड़े मेहनती हैं। तभी तो इतनी तरक्की की है इन्ने। पाकिस्तान से कैसे लुटे-पिटे आए थे। अब तो कइयों ने बड़ी-बड़ी दुकानें और कोठियां खड़ी कर ली हैं। पर अपना यही सिंधीवा ना जाने कैसे इतना कमजोर निकला?’

श्याम बाबू को अच्छी तरह याद है कि उनको बाबू जी की बात. . .भला हो उनका अब तो वह स्वर्ग में हैं. . .पूरी सुननी पड़ती थी। अगर एक बार बाबूजी ने कुछ कहना शुरू कर दिया, तो निष्कर्ष तक सुने बगैर सामने वाले की खैर नहीं होती थी।

बात को बीच में 'वाइंड अप' करना उन्हें नहीं आता था। अगर घर का कोई कनिष्ठ सदस्य बात के बीच में सामने से हिला तो उसे बाबूजी का कोपभाजन, अन्यथा रूप में, बनना पड़ सकता था। बाबू जी फिर कई-कई दिन उससे बात करना छोड़ देते थे।

एक बार माता जी ने उन्हें बीच में टोक दिया था तो दो दिन तक घर ही में अनशन पर बैठ गए। पुराने गांधीवादी जो ठहरे। तभी से सब घरवालों ने कान पकड़ लिये थे। बाबू जी के किसी 'टॉपिक' पर शुरू हो जाने पर भले ही सबके-सब अपने कानों में अदृश्य रुझां ठूस लें . . मन-मस्तिष्क का 'स्विच-ऑफ' कर दें . . परंतु प्रत्यक्ष में वह उनके सामने बराबर सिर हिलाते जाते थे।

बाबू जी की कथा चलती रहती—
' . . . फाटक भेड़कर मैं बगिया में घास निराने लगा। तभी क्या देखता हूँ कि वह सिंधी की लौंडिया फाटक ढकेलकर भीतर आ गयी। फ्राक पहने नहीं सी जान। डरते-डरते पास आकर खड़ी हो गयी। मैं घास निराता रहा। अब बोल न फूटें उसके मुंह से। मैंने पूछा क्या है री? . . उंगली से इशारा करके कहने लगी वो चाहिये। . . मैंने कहा वो क्या? तो सुनकर भाग गई। थोड़ी देर में फिर आई। अपनी मां से पूछवूछ कर आई होगी। उंगली से इशारा किया पुदीने की क्यारी की तरफ। बोली—वो . . .। मैंने कहा कि क्या वो—वो लगा रखी है? . . तब बोली—पू. . . दी. . . ना. पुदीने का नाम तीन टुकड़ों में बोल सकी वह। रट कर आई होगी. . . '

— कहकर बाबू जी हंसने लगे। उनके साथ घर के सब लोग हंस पड़े। फिर बोले—
'पू . . दी. . . ना. . . पू. . . दी. . . ना . . .। दो-तीन बार बोली लौंडिया तब मेरी समझ में आया कि अरे यह तो पुदीना मांग रही है। भई दे दिया करो बेचारी को. . . जब भी आए।'

इस तरह बाबू जी बात को ख़तम करते।

वही आदत श्याम बाबू में भी. . . उतनी तो नहीं मगर पचास-फ़ीसदी. . . फिर भी आ गई।

श्याम बाबू को बिस्तर पर पड़े-पड़े एक हफ़्ता बीत गया। वह खिड़की के बाहर

लाचार हालत में देर तक देखते रहते। दिन भर पड़े-पड़े अख़बार का कोना-कोना चाट डालते। राष्ट्रीय के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय ख़बरों पर भी अपना छूटा हुआ सामान्यज्ञान इन दिनों बढ़ाने में लगे थे वह।

परंतु शाम को दफ़्तर से हर दिन आने वालों का सिलसिला अभी जारी था। हालाँकि आगंतुकों की तादात काफी घट गई थी। फिर भी दो-तीन नए चेहरे रोज़ ही टपक पड़ते और उन्हें अपनी पुरानी कहानी फिर से दोहरानी पड़ती—

'सब्जी मंडी में सांड ने गाय को दौड़ाया. . . '

यह प्रसंग वह अपनी याददाश्त में दर्जनों बार सुना चुके थे। मगर ख़ैरख़्वाहों और शुभचिंतकों की अभी तृप्ति नहीं हो सकी थी। ऊबकर एक बार उन्होंने अपने कुछ नवागत सहयोगी जन के सामने आपबीती-बयानी के बजाय एक लंबी सांस खींच ली। इस पर उनकी पत्नी वही किस्सा बयान करने लगीं। फ़र्क सिर्फ़ उन्होंने यह किया कि प्रसंग में 'सांड' शब्द की जगह 'बिजार' का प्रयोग किया, जो सब्जीमंडी में तनहा भागा। उसके सामने से भागती हुई गाय को श्रीमती जी ने लज्जावश गायब कर दिया।

अब बिजार भागा. . . सीधा श्याम बाबू की मोटरसाइकिल से टकराया और. . . उनका काम तमाम हो गया। डॉक्टर ने प्लास्टर चढ़ा दिया। बीच के काफी अनावश्यक 'डिटेल्स' श्याम बाबू की सुघर-सुशील और सुंदर पत्नी गोल कर गईं।

श्याम बाबू को पहले तो खीझ हुई कि उनकी कम पढ़ी लिखी पत्नी को ऑफिस के अपरिचित लोगों के बीच किस्सागाई करने की क्या ज़रूरत है? लेकिन बाद में उन्हें रोज़-रोज़ घिसीपिटी बातें दोहराने की यंत्रणा से मुक्ति पाकर खासा सुकून भी हुआ। अब यह ज़िम्मेदारी वह अपनी पत्नी के साथ बराबर से बांटने लगे। लेकिन कुछ ही दिन बाद श्याम बाबू को अपनी भूल का अहसास हुआ। उनके हेड ऑफ़िस का एक जूनियर बाबू मनोहर, जो लड़कियां पटाने में माहिर था, एक दिन उनके घर आ धमका।

श्रीमती जी ने बिजार का किस्सा मनोहर के सामने शुरू किया। उसने फ़ौरन किस्से के बीच में 'भाई साहब' के संबोधन

पर श्याम बाबू की पत्नी से श्याम बाबू के सामने ही प्रतिवाद किया—

'अरे भाभी जी! . . हम तो बहुत छोटे हैं. . . आपके देवर जैसे. . . ये भाई साब-वाई साब नहीं चलेगा. . . मुझे मनोहर ही कहियो।'

श्याम बाबू को एक क्षण को सांप सूंघ गया। मनोहर के जाने के बाद श्याम बाबू ने पत्नी को समझाया कि आइंदा से वह इन बाहर वालों के सामने उसके बारे में कुछ न कहे। सामने भी न पड़े। घंटी बजने पर दरवाज़ा खुद न खोले। बच्चों से खुलवाए। घर का बजट सालों ने चाय पी-पीकर बिगाड़ दिया है। ऑफिस से गाहेबगाहे होने वाली अतिरिक्त आमदनी का जुगाड़ भी इस अपाहिजी में बंद हो चला है। इसलिये अब आने-जाने वालों का चाय-बिस्कुट भी बंद।

श्याम बाबू बिस्तर पर पड़े-पड़े सोचते कि उनकी श्रीमती जी भले ही कम पढ़ी-लिखी हैं, लेकिन देखने में अभी भी काफी अच्छी हैं। इसलिए उन्हें इस तरह इन लुच्चे-लफंगों के सामने इतनी आसानी से नहीं आना चाहिए। उनका सोचना ठीक ही था। मनोहर दुबारा आया। अगले ही दिन। चाय उसे नहीं मिली इस बार। उसने ढिठाई से श्याम बाबू के बेड के कोने से ही आवाज़ लगाई—

'भाभी जी! . . क्या आज चाय नहीं पिलाएंगी?'

श्रीमती जी के हाथ से रसोई में एक बर्तन गिर गया। श्याम बाबू ने मुंह बिगाड़कर कहा—'आज दूध ख़त्म हो गया।'

मनोहर थोड़ी देर में चला गया। अगले दिन शाम को फिर आया। इस बार उसके हाथ में दूध का एक पैकेट भी था। बोला—'हैं-हैं-हैं-हैं. . . भाई साब! . . मैंने सोचा आप तो अब निकल पाते नहीं। भाभी जी बेचारी कहां तक बाहर निकलेंगी। इसलिये चाय के लिये दूध मैं ही. . . '

श्याम बाबू को लगा जैसे उनके सारे बदन में एकाएक लाल चींटियां चिपक गई हों और सारी की सारी उन्हें एकसाथ काटने लगी हों। . . उन्हें यह भी लगा कि उनका बिस्तर अचानक जैसे भीष्म पितामह की शरशैय्या में तब्दील हो गया हो।

मनोज श्रीवास्तव

गंगा-जमुना आख्यान

गंगा गर्भवती हो गई। वह रोज सिर झुकाए घर से निकलती थी। बाड़ी लोशनों और रोगनों से परहेज करते हुए, जवानी की भभक को दबाए हुए, जमीन पर निगाहें गड़ाए हुए और वक्ष के उभार को बमुश्किल ढंकते हुए वह शराफत की बुत बनी फिरती थी।

वह महानगर की किसी मल्टीनेशनल कंपनी में स्टेनो थी। दिलचस्प बात यह थी कि वह बेनागा मंदिरों में जाकर घंटों-घंटों ईश-वंदना में तल्लीन रहती थी। उसकी सादगी और गंभीर चाल-चलन को देख, किसी को भी उससे किसी ओछे बर्ताव करने या आसपास फटकने की हिम्मत नहीं होती थी। क्या मजाल कि कोई कुलीग उसकी तरफ गलत निगाह से देखने की जुर्रत करे? उसकी धारदार नजरों की तरे से अच्छे-अच्छों को पसीना आ जाता था।

चुनांचे, गंगा कुआरेपन में ही गर्भवती हो गई। लोग-बाग ताज्जुब के सैलाब में डूब गए। उसकी जान-हाजिर सहेलियां उससे कतराने लगीं। वह बात-बात में काजल के जिस उन्मत्त सेक्स की खिल्ली उड़ाती थीं, उसी ने उसके नेक नाम पर खुलेआम कालिख पोती। काजल अपने बास, इंचारज और सहकर्मियों के साथ अंतरंग होकर भी साध्वी होने के दर्प में झूम रही थी। कुआरेपन में उसने अपने पाक-साफ चरित्र का दस्तावेज जो प्रस्तुत किया था! जैसाकि बताया जाता है, वह अपने संयम और शुचिता के बल पर बेड से लेकर पेट तक साफ-सुथरी रही। लिहाजा, वह किस-किस की आहों और धड़कनों की सम्राज्ञी नहीं बनी?

उसने गली-कूचों में अपने कूल्हे हिलाए, गोल-मटोल नितंब मटकाए, बाजारों और बसों में जिस्म-मर्दन किया। बहरहाल, वह गंगा की तरह कभी कर्लकित नहीं हुई। इज्जतदार जिंदगी जीने के लिए उसने अपनी कुंवारी कोख को निराप रखा। दूरदर्शन और रेडियो के विज्ञापनों, एड्स से बचाव के

तौर-तरीकों, आधुनिकतम विधियों और मुफ्त वितरित गर्भ-निरोधकों का भरपूर फायदा उठाया। कभी-कभी उसे शुबहा भी हुआ कि दोस्तों के साथ शिष्टाचार के चलते उससे कोई गलती तो नहीं हो गई है। तब, वह किसी गाइनिकालोजिस्ट के पास जाती जो उसका ट्रीटमेंट करते हुए उसे साफ-सुथरी होने या बने रहने का क्लीन चिट दे देती।

गंगा भी हैरत में! आखिर, वह पेट से हुई कैसे? बाप ने उसे उसके कुकर्म के लिए बेरहमी से पीटा। मां ने खानदानी पुरखों की शराफत का नगाड़ा बजा-बजा, उसे भरपूर धिक्कारा। भाई-बहनों ने भी खूब कोसा। लेकिन, वह उन्हें कुछ नहीं बता सकी। बताए भी तो कैसे बताए? उसे तो खुद कुछ पता नहीं। वह इतने बड़े हादसे से कैसे अनजान रही? मर्दों से दूरी बनाए रखना तो उसकी आदत थी। बसों में भी कोई मनचला उसकी गुरेर और झिड़क के कारण उससे फासला ही बनाए रखता था। बस, उसे इतना याद है कि बसों में चढ़ते-उतरते हुए उसका बदन कभी-कभार पुरुषों से रगड़ खा जाया करता था। लेकिन, किसी मामूली रगड़ से ही वह चिनगारी कैसे फूटी कि उसके जीवन में आग लग गई?

गंगा तो बॉस के कमरे में उस चेयर या सोफे पर भी कभी नहीं बैठी जिस पर बैठकर स्टेनो काजल बॉस से घंटों-घंटों डिक्टेट हुआ करती थी। डिक्टेडेशन के दौरान काजल पसीने से तर-बतर हो जाती थी। शलवार सिकुड़कर उटंग हो जाती थी। सलीकेदार समीज पर बेतहाशा सिलवटें उभर आती थीं। भीतर से बाहर तक सैकड़ों हड्डियां अपनी जगह से हिल जाती थीं मांस पेशियां ढीली पड़ जाती थीं।

लेकिन गंगा के साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बड़ी ऐहतियात बरती थी उसने जिस कारण उसे इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा। उससे जूनियर चंपा असिस्टेंट मैनेजर बन गई थी। पर, गंगा तो स्टेनो से

आगे प्रमोट नहीं हो पाई। प्रमोशन हो भी कैसे? इसके लिए उसमें जरूरी मेरिट नहीं थी। पिछले सात सालों से सभी लेडीज स्टाफ को दर्जनों इन्क्रीमेंट मिली। पर, उसे तो दो-चार ही मिल पाई।

गंगा मार खाई। अंधकूप कमरे में कैद रही। भूखी-प्यासी रही। लेकिन, उसका हाल उतना बेहाल नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। इतना पर भी वह रोई नहीं, सोई नहीं, खोई नहीं। उसका दिमाग बीते चंद माहों में उस काले साए को ढूंढता रहा, जिसने उसके साथ मुंह काला किया और उसे इस मुसीबत में डाल दिया। उसका मुंह आश्चर्य से खुला रहा। आंखें पथरा गईं और नींद से कोसों दूर रहीं। जीभ बिलगोह की तरह तलवे से चिपकी रही और हल्की सी चीख को मुंह से बाहर नहीं धकेल सकी। वह इसी उधेड़बुन में पिछली छोटी-मोटी घटनाओं को याद करती रही कि वह बेवजह पेट से कैसे हो गई। महानगर की भीड़-भाड़ में कुंवारीयां अपने अंग-प्रत्यंग का मर्दन कराकर भी कुंवारीयां ही बनी रहती हैं। बारह से बयालीस तक बेखौफ, बेदाग जिंदगी जीती हैं। पर, वह सत्रह से सत्ताईस के बीच ही दगही कैसे हो गई?

उसके बाप को अपनी बदनामी से उतना गुरेज नहीं था, जितना उसे उस पुरुष से डाह थी जिसका शुक्राणु उसकी बेटी के गर्भ में एक अनचाहे जीव का जनक था। उसे बेहद अफसोस था कि उसकी गंगा इतनी नासमझ कैसे निकली। उसका नाम तो महानगर की सबसे बेवकूफ और गंवार लड़कियों में शुमार हो गया। आखिर, कौन-सी बहू, बेटी या महरी इतनी नासमझ होगी जिसे इतनी समझ न हो कि वह विभिन्न सामाजिक मेल-मिलाप के दौरान जरूरी ऐहतियात बरत सके? उसे इस माहौल में सब कुछ जानने, समझने और कर गुजरने की खुली छूट है। उसे ऐहतियाती साधनों के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए

ज्यादा जद्दोजहद करने की भी जरूरत नहीं है। आंखें फाड़-फाड़कर देखने, यार-दोस्तों के आगे सकुचाते हुए मुंह खोलने और कान पर ज्यादा जोर देने की भी जरूरत नहीं है। बस, तनिक सावधानी बरतनी पड़ती है। गंगा की मां उसे बेनागा सीख देती रहती थी कि से अपने बाँस और कुलीग के साथ बात-व्यवहार में तनिक सावधानी बरतनी चाहिए और दीवारों, बस स्टैंड की शेडों आदि पर लिखे विज्ञापनों का भरपूर फायदा उठाना चाहिए। हिंदुस्तानी लोकतंत्र भी गंगा जैसी लड़कियों को सावधान करने के लिए सदा ही मुस्तैद रहा है। जब तक सेक्स-एजुकेशन पाठशालाओं में पूरी तरह लागू नहीं हो जाता, वह बच्चों को सेफ सेक्स के तरीकों की मुनादी करता रहेगा।

लोकतंत्र के इस समानवतावादी परिवेश में औरत-मर्द को, हर पहर और हर डगर पर पूरी आजादी का मजा लेने का हक है। नंगे नाचने, खुलेआम प्रेमालाप करने और सेक्स विषयों पर बौद्धिक वाद-विवाद करके स्वयं को पश्चिमीवासियों के बराबर खड़ा करने का उन्हें लाइसेंस देकर इस लोकतंत्र ने खासी मकबूलियत हासिल की है। सो, वे मूड़ी-पूँछ समेत तृप्त हो रहे हैं। इसके चलते दिल्ली के मधुबनों अर्थात् पार्कों में रमने-बसने वाली बुद्ध, महावीर, शिवाजी, गांधी, सुभार आदि की आत्माएं (जिनके नाम पर इन पार्कों के नाम रखे गए हैं) भी ऐसे मनोरम दृश्यों को देखकर धन्य हो रही हैं।

औरत-मर्दों में बराबरी के मसले पर टकराहट होनी मामूली-सी बात है। इसके नतीजे आज तक बुरे नहीं निकले हैं देश में इतनी बड़ी जनसंख के फलने-फूलने और बढ़ने का भी यही कारण है। इन टकराहटों के कारण वे कपड़ों पर लगी गर्द को झाड़ू-पोंछकर और सीलन को धूप दिखाकर ही बिल्कुल निश्चित हो जाते हैं। घर पहुंचकर डिनर करते हैं और बेड पर पसरकर, परस्पर टांगें फंसाकर, उलझाकर टी.वी. के रोमांस में खो जाते हैं और अगले दिन आफिस में सीरियलों के पात्रों के बीच फसादों को सुलझाने के लिए बड़े चिंतित नजर आते हैं। बहरहाल, वे टी.वी. के ख्वाबगाह से उतरकर हमबिस्तर होने वाली सोनपरियों और अप्सराओं के साथ रास-अभिसार करते हैं। सूरज के

सिर तक चढ़ने तक जब वे सपनों की सोन-सीढ़ियों से उतरकर अलसाते हुए नींद को बाँय करते हैं तो वे बौखला उठते हैं। क्योंकि घर की औरतों की पिचपिचाई आंखों से रू-ब-रू होना और उनकी बसियाई बदबूदार जम्हाइयों का नाखुशगवार वातावरण उन्हें कतई रास नहीं आता।

चुनांचे, गंगा के बाप की बौखलाहट किसी ऐसी-वैसी वजह से नहीं थी। उसे गंगा न तो कभी अंगड़ाई लेकर बदन से जवानी फोड़ती नजर आई, न ही कभी आईने के सामने पहर के पहर गुजरने तक भौंहे, आंखें, होठ, गाल, बाल आदि पर रंग-रोगन करती या संवारती नजर आई। उसने महानगर के आदर्श बापों की तरह गंगा को बखूबी जांचा-परखा था। लेकिन, उसमें मर्दों के प्रति कोई खास खिंचाव दिखाई नहीं दिया। उसे बड़ा इत्मिना हुआ कि गंगा के पांच कभी फिसलेंगे नहीं। इसलिए उसने उसे ट्यूशन पढ़ने और हिल स्टेशनों पर जाकर पिकनिक मनाने की खुली छूट दे रखी थी। उसे यह भी सुकून था कि गंगा जहीन नहीं है। उसे लेक्चरों और ट्यूटों से आए दिन यह शिकायत मिलती रहती थी कि गंगा पढ़ने-लिखने में बेहद कमजोर है। सो, उसने इस बात के लिए गंगा को कभी कोई सख्त नसीहत भी नहीं दी। गंगा तो अपने टीचरों से स्कूली सबक सीखने के अलावा किसी अन्य ढंग से उनसे कृतार्थ होने से बेहद कतराती थी। न तो वह कभी उनसे नोट्स लेने उनके घर गई, न ही किसी कठिन सवाल का जवाब पूछने उनके चैंबरों में दस्तक दिया। दूसरी लड़कियां बड़ी जहीन थीं वे ट्यूटों के स्कूटर के पीछे बैठ कर उनके घर जाती थीं। क्लासिज खत्म होने के बाद शाम को लेक्चरों के बिल्कुल प्राइवेट रूम में कठिन सबक पर दोबारा रियाज करने जाती थीं। कोर्स से अलग और क्लास से बाहर, प्रैक्टिकल पाठ पढ़ती थीं और रात-दिन नोट्स तैयार करती-कराती थीं। उनकी मेधा से प्रभावित होकर उनके लेक्चरर उन्हें प्राइवेट खत लिखा करते थे और खतों में भी उनके गाइड बने रहते थे। लिहाजा, गंगा का शिक्षण इस स्तर तक कभी नहीं पहुंच सका। चूंकि दूसरी लड़कियां छात्र जीवन में और छात्र जीवन के बाहर

मेहनतकश छात्राएं थीं, इसलिए उन्हें जहीन घोषित कर दिया गया था। अपने शिक्षकों से बेहतर तालमेल के कारण वे केवल जहीन ही नहीं बनीं, बल्कि जल्दी ही नौकरीशुदा बनकर स्मार्ट बासों की चहेती स्टेनों और अकूत जायदाद वाले घरानों की बहुएं भी बनीं। बहरहाल, कमबख्त, कमअक्ल गंगा कुछ भी नहीं बन पाई, सिवाय कुंवारी मां बनने के।

गंगा के क्लासमेटों और लेक्चररों ने उसे भरसक निचोड़कर रस निकालने की कोशिश की। लेकिन, वह उनके लिए रस का एक कतरा भी नहीं टपका सकी। रसहीन होने के कारण, वह बहुत धीरे-धीरे जवान हुई और हुई भी तो नाममात्र की। बिचारा समय भी जोर लगा-लगाकर थक गया; लेकिन उसे ठीक से जवान नहीं बना सका। गंगा ने भी ऐन वक्त अर्थात् महानगर के टाइम के अनुसार साढ़े ग्यारह साल में जवान न होकर जवानी को खूब ठेंगा दिखाया। लिहाजा, वह जवान भी ऐसे हुई कि पास-पड़ोस के वयस्क-अवयस्क मर्दों को इसकी भनक तक नहीं लगी। उसके बाप और भाई भी बेखबर रहे। उससे दस साल छोटी बहन जमुना पिछले कई सालों से जवान हो रही है और दन्त्य कथाएं रचने की क्षमता रखने वाले मजनुओं की एक जमात तैयार कर रही है। उसमें ऐसे बेशुमार लच्छन हैं कि वह सदाबहार फिल्मी तारिकाओं की तरह अगले चालीस साल तक जवान ही होती रहेगी और बूढ़ी होते-होते भी वह न सत्रह से ऊपर रहेगी न सोलह से कम। क्लबों और पार्टियों में उसकी सदाबहार हुस्न और शबाब की चर्चाएं हमेशा गरम रहेंगी।

फिलहाल, जमुना अपने परिवार, पड़ोस, कालेज, टीचर, ब्वायफ्रेंड सभी से अंतरंग है। वे उसे तारीफों के कुतुबमीनार पर बैठाते हैं। पर, उसके पांच कभी नहीं फिसलते। वह मधुबनों में बेमिसाल ऐहतियात बरतती है। टाकीजों के अंधे कोनों में ब्वायफ्रेंडों से खूब पंजे लड़ाती है, जिस्मानी ताकत की आजमाइश करती है और धूप के उजाले में दातों, उंगलियों और पंजों के निशान को बहाने-बहाने से छिपा लेती है। वह कालेज का रास्ता भूलकर पालिका बाजार, कर्नाट सर्कस आदि के इर्द-गिर्द सीढ़ियों के किनारे, पार्कों के

चारों ओर, लौह रेलिंगों पर बैठकर दूरदराज से आए, थके-मांदे पर्यटकों को अपनी आंखों के रास्ते अपने दिल के आरामबाग में सैर कराती है। वहां अपने तबाहकुन इशारों से उन्हें प्रेम-पाठ का जरूरी सबक सिखाती है।

बेशक! जमुना अपने बाप की परख पर एकदम खरी उतरी है। आजकल उसका मुंहबोला भाई और उसके दोस्त भी उसे जी-भरकर परख रहे हैं। इन परखों पर खरी उतरने के कारण ही जब वह साढ़े दस साल की थी तो उसे 'मैडम' के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

यू तो 'मैडम' बनने के पहले चुनिंदा हुनर का होना जरूरी है; लेकिन, अल्पायु में 'मैडम' से नवाजे जाने पर इस उपाधि की महिमा को वहन करने की योग्यता जमुना जैसी जहीन लड़कियों में खुद-ब-खुद आ जाती है। इसके संबोधन भर से बालिका का मन इतना प्रौढ़ हो जाता है कि उसका तालमेल किसी भी पुरुष के संग बैठ सकता है। उसके तन की कलियां फूट-फूटकर खिलने लगती हैं और खुशबू बिखरने लगती है। आधुनिक सौंदर्यवर्धक रसायन-अवलेह इन फूलों के रंग-रूप-गंध के विकास में सोने में सुहागे का काम करते हैं। लिहाजा, जब जमुना मैडम को कोई अनजान मर्द 'सिस्टर' या 'बहनजी' के संबोधन से पुकारता है तो उसका रंग-रूप-गंध छुई-मुई की भांति मलिन हो जाता है। वह उस अभद्र और अशिष्ट पुरुष को दंडित करने के लिए ऐसे सरेआम मुंह बिचकाती है जैसे कि वह किसी निग्रो के रू-ब-रू हुई हो। वैसे, उसे उसको 'बिहारी' और 'पूरबिया' कहकर ही संतोष करना पड़ता है और अपनी हिकारत का इजहार करना पड़ता है। इस तरह वह बिहार को असमय देश-निकाला देकर अपनी राष्ट्रभक्ति का भी काबिले-तारीफ परिचय देती है और अपने व्यक्तित्व को और आकर्षक बना देती है।

इन जैसी मुखर और संवेदनशील बाला के लिए इस महानगर का कोना-कोना, चप्पा-चप्पा प्रेरणादायक रहा है। वह बसों में बजने वाले कर्ण-स्फोटक रैप-पॉप गीत-संगीत में प्रवाहित भावों की लय पर आहें भरने वाले पुरुषों के मन के रहस्यों को भली-भांति समझती रही है। इन्होंने उस गीत-संगीत की

तर्ज पर सार्वजनिक स्थलों पर भावी ब्वाय फ्रेंडों से आंखें चार करके न केवल हृदय के दुर्गम क्षेत्रों के जज्बातों का इजहार किया है बल्कि इसी तरह जिंदगी की यादगार योजनाएं भी बनाई हैं और उन्हें कार्यान्वित किया है।

जो बाला मन-कर्म-वचन से हिंदुस्तानियत प्रकट करने वाले पुरुष को देखकर फिसकारी न मारे, उसे जमुना मैडम जैसी बहिर्मुखी प्रतिभा का धनी नहीं माना जा सकता। उसके उम्र से पहले जवान होने का कारण भी यही है। वर्ना, इस महानगर की बच्चियां तो दीवारों पर लगे पोस्टरों को देखकर ही जवान होती हैं। यहां दीवारों से ही रज टपकता है जो उनकी तथाकथित झीलनुमा आंखों के रास्ते शरीर की निहायत जरूरी पेशियों और बोटियों में स्रावित होकर उन्हें असमय पुलकित-पल्लवित करता है। इस रज की आंच में उनकी बोटी-बोटी मक्के के लावे की तरह फूटकर निखर जाती है। नतीजतन, इस निखार-प्रक्रिया में उन्हें उड़न-योग्य हल्केपन का अहसास होता है। इस तरह वे बेजान निगाहों की मार से भी फुदकने और कुलांचे भरने लगती हैं। उसे 'कुछ-कुछ' होने लगता है।

इस अवस्था को बाअदम 'प्री-मैच्युरिटी' कहते हैं जिसे तपस्वियों में मोक्ष और निर्वाण प्राप्त होने जैसा माना जाता है। इसकी कुछ विलक्षणताएं होती हैं जिनसे जमुना मैडम का व्यक्तित्व समूलतः आत्मसात है। वह उम्र, अवस्था, पद आदि की तुच्छ सीमाएं तोड़, जाति-धर्म के बंधन काट, लोगों में ऐसे रच-बस गई है जैसेकि कण-कण में भगवान। कच्ची उम्र में ही उन्हें पक्की उम्र वालों को शह देने की हैरतअंगेज, महारत हासिल हो चुकी है। वह जिस्म और जान को दांव पर लगाने से पीछे नहीं हटती। फिजूल संकोच, लज्जा, शुचिता आदि के फेर में भी नहीं पड़ती। अंग्रेजी के शब्दों को टॉफी की तरह चुबलाती हैं और इसके भाव-प्रधान मुहावरों को चुईगम की तरह कचकती हैं। सादी, दाग, फैज़, फिराक की कचोटने-कसकने वाली शोरे-शायरी से मासूम दिलों पर अपनी चोट-खाई संजीदगी का रोब जताकर छैल-छबीलों के दिल पर काबिज होती हैं। उन्हें आशिकी, जो अष्टयोग से भी ज्यादा कठिन है, के मकड़जाल में फंसाती हैं।

गौरतलब है कि उनके लफ्जों में भूतपूर्व लखनउवा शाहजादियों की उर्दू-मिश्रित कूक है जिससे वह जन-जन के ख्यालों की मलिका बनी हैं। उनकी चकरधिन्नी करती आंखों की पुतलियों में भक-भक करती द्यूब लाइटों जैसी चपलता है। लहराती भौंहों में सागरीय ज्वार-भाटों की मारक क्षमता है। जीभ-लिसोढ़ते होठों पर किसी अकथनीय प्यास के हमेशा बने रहने और किसी भी शीतल और गर्म वस्तु से न बुझने की कशिश है।

आजकल मैडम, 'जमुना' के बजाए 'जुम्मी' के नाम से लोकप्रिय हो चली हैं। वैसे, उनके कुछ रिटायर्ड और गैर-रिटायर्ड चहेते उन्हें प्यार से 'चुम्मी' कहकर भी पुकारते हैं। लेकिन, वह इसका कभी बुरा नहीं मानती हैं। बल्कि खिसियायी मुस्कराहट से उनका स्वागत ही करती हैं। लिहाजा, चुम्मी मैडम इतनी जल्दी मुखर-मैच्युर कैसे हुई-इस रहस्य का खुलासा करना गागर में सागर भरने जैसा दुष्कर है। उनके हवाई चुंबन कैद करने, अंखमारी की रोमांटिक भाषा समझने और गलबहियां खेलने वाले एक पितृ-मित्र चहेते ने उनके बारे में कुछ जानकारियां किस्तवार दी हैं। इन्हें मैं कमोवेश एकमुश्त देना चाहता हूं। अगर इस जिम्मेदारी के निर्वाह में कोई कमी या भूलचूक रह जाती है जो मेरे लिए घातक भी साबित हो सकती है तो मैं चुम्मी मैडम और उनके प्रौढ़-अप्रौढ़ खूंखार चहेतों से पहले ही माफी मांग रहा हूं। मैं ऐसी एड़ी-चोटी की कोशिश करूंगा कि मैं जो कुछ भी कहूं, सच कहूं और सच के सिवाय कुछ भी नहीं कहूं।

मैडम को पहले-पहल ऐंद्रिक रोमांच तब हुआ था जबकि वह अपनी सीनियरों के नक्शे-कदम पर लिपट लेकर एक बांके-मनचले के स्कूटर पर स्कूल की ओर मार्च कर रही थीं और उनके स्कूटरगामी चहेतों के कई कतार उनका अनुगमन कर रहे थे ऐसे मनचले अपनी कुशल डाइविंग के बल पर उनके साथ हार्ट-एक्सचेंज के फन में माहिर होते हैं। वे 'टच ऐट फर्स्ट मीटिंग' (शेक्सपीयर का 'लव ऐट फर्स्ट साइट' जो प्रेम की एक घिसी-पिटी परंपरा है, चलन से बाहर हो चुका है। नई पीढ़ी इस परंपरा से बाज आ गई है क्योंकि वे प्रथम

दृष्ट्या प्रेम तो रोज कई-कई बार करते हैं जिसे निभा पाना आज की फास्ट लाइफ में संभव नहीं है) को मूर्त रूप देने के लिए लिफ्टार्थिन को उत्तल स्पीड ब्रेकरों, अप्रत्याशित ब्रेकों, औचक रेड लाइटों आदि के बदौलत इस तरह झटके देते हैं कि दोनों के वक्ष और पीठ परस्पर मर्दन करते हैं। ऐसे ही प्रथम मर्दन से चुम्मी मैडल मर्मस्थल तक आहत हुई थीं। तब से उनकी देह में इतनी अबाध छुअन पिपासा जगी है कि वह हजारों लिफ्ट लेने के बाद भी कुछ पल पहले तक अनबुझी रही हैं। अभी चंद मिनटों पहले मैं उनसे मिलकर आया हूँ जबकि वह बिपासा वसु द्वारा जॉन अब्राहम को अथक बार-बार छूने के अंदाज में मेरे शरीर के हर हिस्से को बुरी तरह टटोलने की असफल कोशिश कर रही थीं।

लिफ्ट देने की यह संस्कृति हमारे पौराणिक साहचर्य, समूहचरता, सहयोग आदि की भावनाओं से अनुप्राणित है। इसके कुछेक दृष्टांत भी हैं। वाल्मीकि ने सीता मइया को एक बड़ी शिष्ट लिफ्ट दी थी। स्त्रियां भी लिफ्ट परंपरा का निर्वाह करती रही हैं (यद्यपि यह परंपरा पुरुषों के बढ़ते अहंकार के कारण अप्रचलित है)। मसलन, शकुंतला ने दुर्गम जंगलों में दुष्यंत को लिफ्ट दी थी। उनके लिफ्ट देने के परिणाम भी कमोवेश सुपरिणामी रहे हैं। उन्हें भरत जैसी भारतीय संतान को अपनी कोख से उपजाने का श्रेय मिला; हालांकि इस संतान को वैधता प्रदान करने के लिए उन्हें दुष्यंत की पत्नी होने का अहसास बार-बार दिलाना पड़ा था। लिहाजा, अगर दुष्यंत के मछली के पेट से अपनी अंगूठी न मिलती जिसे उन्होंने शकुंतला को प्रेम-चिह्न के रूप में दिया था तो शकुंतला भी उन्हें बतौर पत्नी याद न आती। ऐसे में भरत अवैध संतान घोषित होकर, कोई असामाजिक प्राणी होता और तब हमारे देश का नाम 'भरत' ('भरत' से भारत) न होकर न जाने क्या होता?

अस्तु, हमें बेहद फख है कि पुरुष वर्ग लिफ्ट देने के प्रति अत्यंत जागरूक बना हुआ है। यह जागरूकता अब टोलों, गांवों और छोटे-मोटे कस्बों में भी महामारी की तरह फैल रही है। बहरहाल, बालिका विद्यालयों और महाविद्यालयों तथा

महिला-प्रधान संस्थाओं के इर्द-गिर्द बहुतेरे पुरुषों को भनभनाते देखा जा सकता है। यहां उनके संवेदनशील वाहन उसी तरह धीमी गति से चलने लगते हैं जिस तरह विष्णुवाहन गीध अपने स्वामी के भक्तों की भावनाएं भांपकर धीरे-धीरे जमीन पर उतरने लगते हैं।

सो, चुम्मी मैडम ने बड़े नेम-धरम से लिफ्टदाताओं को कृतार्थ करते हुए, क्षणभंगुर गर्लफ्रेंड बनकर होटलों-रेस्तराओं और सुविख्यात मधुबनों में उनके साथ रास-विहार किया है। उम्मीद है कि पचास तक वह इसी प्रकार की जिंदगी में मस्त-व्यस्त रहेंगी। उसके बाद वह अपनी उन सीनियरों के नक्शे-कदम पर अमल करेंगी जिन्होंने सब्जी में नमक और खीर में चीनी के कम या अधिक होने जैसे गंभीर विवादों की परिणति तलाक में होने तक आखिरकार, पत्नी बनने का ठेका ले ही लिया है। इस तरह चुम्मी मैडम ने असंख्य लिफ्टदाता मर्दों को पुण्य का भागीदार बनाते हुए स्कूटर से मैच्युर होना शुरू किया और अपनी सीनियरों की भांति निषिद्ध बेलाओं में दिल्ली विहार करके मैच्युरिटी की पराकाष्ठा को छुआ है। यह बात स्मरणीय है कि मैच्युर होने की लालसा रखने वाली कमसिन लड़कियां दिल्ली विहार करके ही पूर्ण स्त्रीत्व को प्राप्त होती हैं और सार्वजनिक रूप से भद्र महिला के रूप में सम्मान-संबोधन का पात्र बनती हैं। हरे-भरे मैदानों में आलिंगनरत प्रेमियों को जी-भर सांगोपांग निहारकर उनके भीतर जो उमंग पैदा होती है, उससे उन्हें यह अहसास होने लगता है कि उनके भीतर की औरत अंगड़ाई लेने लगी है और अब वह बाहर मूर्त रूप में प्रकट होकर जिंदगी को सर्वांगीण भोगने वाली है।

चुनांचे, मैडम ने 'डेटिंग' के माध्यम से बच्चों से लेकर प्रौढ़-अप्रौढ़ पुरुषों तक प्रेम के रोमानी भाव का संचार किया है। उनके साथ परस्पर पंजों को जकड़कर, डेटिंग के सिद्धांत के अनुसार कदम से कदम मिलाकर दौड़ते हुए पंजों पर उंगलियों के दबाव और हथेलियों के आपसी मसाज से प्रेम-तरंगों, प्रेम के भौतिक-अभौतिक उत्तेजनाओं और इसके मुखर-दमित भावों-अनुभावों के व्यक्त करने की एक नई

विधा का सूत्रपात किया है। उनके साथ जागिंग करते समय परस्पर बाजू-मर्दन करना और जानबूझकर उलझकर आलिंगनबद्ध गिर जाना, होठों को प्रकंपित-प्रसंकुचित कर अकथनीय इरादे उद्घाटित करना, एक-दूसरे की आंखों की तथाकथित सुरमई झीलों में डूबते-उतरते हुए भौंहों की प्रत्यंचा को मानों तक खींच तान कर भावनाओं के तल पर गुमसुम बैठी गुप्त इच्छाओं को समझना आदि जैसी योग-साधनाओं को मैडम ने बड़ी मेहनत-मशक्कत से सीखा है। बेशक! इतनी छोटी उम्र में स्त्री-पुरुष के बीच के गूढ़ रहस्यों को उस सीमा-रेखा तक जानकर जहां तक कोई भी व्यक्ति किसी भी काल या देश में नहीं जान पाएगा, मैडम ने मानव-दुर्लभ प्रचंड क्षमताओं और प्रखर बुद्धि का परिचय दिया है।

चुम्मी मैडम दिल्ली के संध्या विहार में नानाविध कद-काठी वालों की सहचरी रही हैं। समूची दिल्ली ने उन्हें मदन-मस्त-मोदक कंदराओं, हरे-भरे लॉनों, वृक्षों की छायाओं आदि में जाने-अनजाने पुरुषों के साथ रास-अभिसार करते देखा है। इस तरह उनके द्वारा रचित प्रेम-मिथकों ने राधा-कृष्ण से संबंधित प्रेम-प्रसंगों वाले मिथकों को बिल्कुल धूमिल कर दिया है। लोगों को लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, ऐंटोनी-क्लियोपेट्रा जैसे प्रख्यात पौराणिक प्रेमियों की घिसी-पिटी कथाओं को भूलने के लिए मजबूर कर दिया है। क्योंकि उनके वैरायटीदार प्रेम-प्रपंच में नानाविध गंधर्व कलाओं और इंद्र की अप्सराओं की होश-चूसक अदाओं का जो पुट मिलता है, उसका दृष्टांत पौराणिक प्रेमियों में कतई नहीं मिलता है। हजारों साल पहले किसी वात्स्यायन ने अपने भविष्यदर्शी चक्षुओं से चुम्मी मैडम की प्रेम-पगी छवियों और उनकी प्रेम-कलाओं को देख लिया था जिसका अत्यंत चित्रोपम और व्यावहारिक निरूपण अपनी महान कृति 'कामसूत्र' में किया है। इसीलिए, चुम्मी मैडम में हजारों वात्स्यायन पैदा करने और लाखों 'कामसूत्र' रचने की क्षमता विद्यमान है।

चुम्मी मैडम के पित्र-मित्र बताते हैं कि सेक्स एजुकेशन के प्रचार-प्रसार में उनके महती अनुभवों का लाभ उठाकर

समूचे राष्ट्र को उनका ऋणी बनाया जा सकता है। उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियों से समस्त भारतवासियों को फायदा पहुंचाया जा सकता है। सो, उनके पित्र-मित्र महोदय एक सेक्स युनिवर्सिटी खोलने की महत्वाकांक्षी योजना बना रहे हैं। इस युनिवर्सिटी में सेक्स लेबोरेटरी, भारी संख्या में क्लासिज, लाइब्रेरी, प्रैक्टिकल डिपार्टमेंट, रिसर्च विंग, सेमीनार हाल, हास्टल, प्रोफेसर्स रेजिडेंस आदि सभी होंगे। उन्होंने अपना प्रस्ताव शिक्षा विभाग, गृह मंत्रालय को भेज दिया है जिसमें चुम्मी मैडम की उपलब्धियों की विशद चर्चा करते हुए उन्हें सेक्स युनिवर्सिटी का पहला और आमरण वाइस चांसलर बनाने की वकालत की गई है। लिहाजा, विश्व में इस अद्वितीय युनिवर्सिटी की भारत में अविलंब स्थापना के लिए देश-विदेश के बड़े-बड़े धन-सेठों से भारी-भरकम अनुदान प्राप्त हो रहे हैं। स्वयंसेवी संगठन हर प्रकार से अपनी निःशुल्क सेवा प्रदान करने के लिए सहर्ष आगे आ रहे हैं। कतिपय मल्टीनेशनल कंपनियां भी इसके आद्योपांत विकास की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने को तैयार हैं। चूंकि इस संस्था को मिलने वाली व्यापक लोकप्रियता का पूर्वाभास हमारी सरकार को मिल गया है और इसके बड़े बाजार के बारे में भी उसे देशवासियों का रुझान पहले से पता चल गया है, इसलिए वह लगे हाथ देशभर के स्कूलों और कालेजों में सेक्स एजुकेशन तत्काल लागू करने पर आमादा हैं। कुछ राज्यों में तो इसे लागू भी कर दिया गया है। ऐसा अंदेसा है कि दूसरी सेक्स युनिवर्सिटी की स्थापना स्वयं सरकार करने जा रही है और वह चुम्मी मैडम की कृपापात्र बनने के लिए सारे हथकंडे अपना रही है। वह अपने अफसरों को उसके पास भेजकर, उसका खुशामद कर रही है और उसे हर संभव प्रलोभन दे रही है ताकि वह उसे अपनी युनिवर्सिटी का वाइस चांसलर अप्वाइंट कर सके।

यह बड़ी दिलचस्प बात है कि गंगा की नामूसी ने उसकी महान बहन (मैं यहां उन्हें परिस्थितिवश सम्मानपूर्वक 'मैडम' संबोधित न करने की गुस्ताखी के लिए माफीनामे की फरियाद करता हूँ) के एकदम विपरीत व्यक्तित्व को हमारे सामने उजागर

किया है। उनसे तो सभी जीव-अजीव मन-कर्म-वचन के आधार पर कृतार्थ हुए हैं। सभी ने उन्हें भरपूर देखा, सूंघा, छुआ, चखा और भोगा है। उनकी मन-बसिया छवि को पूजा-संजोया है। निष्प्राण और मनहूस हो चले दिलों के सजीव बनाया है। संघर्ष की तेज धूप में सूख चुके लोगों को रसवान बनाया है।

खेदवश! उनके इस प्रभाव को लोगों ने पूरी तरह आत्मसात नहीं किया है। बहरहाल, यहां लोगबाग हर पल उत्फुल्लित, उमंगित, उत्प्रेरित और उत्कण्ठित क्यों हो रहे हैं? दिल्ली इतनी रमणीक तीर्थस्थली क्यों बनती जा रही है कि दूरदराज के लोग रोजी-रोटी तलाशने के बहाने यहां आकर हमेशा खोए-खोए से कुछ खोजते फिरते हैं। इसका गूढ़ रहस्य यही है कि वे यहां आकर चुम्मी मैडम की शोहबत में जीना-मरना पसंद करते हैं? इसका श्रेय मैडम को ही जाता है जिनके बारे में यह सोलह आने सुनिश्चित-सा लगता है कि इंद्र के दरबार में सभी अप्सराओं को स्वर्ग-निकाला देकर इन्हें पूरे मान-मनौवल के बाद आमंत्रित किया जाने वाला है। इनके सशरीर स्वर्ग-प्रयाण के बाद इस देश में जगह-जगह इनकी मूर्तियां मंदिरों में प्राण-प्रतिष्ठित की जाएंगी ताकि इस दुनिया में प्रलय होने तक चुम्मी मैडम प्रेम की इकलौती देवी के रूप में पुरुषों के दिलों में विराजमान रहें।

लेकिन, आजकल दिल्ली सहमी-सहमी सी है, खासतौर से यहां की कुआरियां जिन्हें कुलच्छनी गंगा के बारे में फैले अफवाहों की वजह से यह भय सताने लगा है कि कहीं उन जैसी 'लड़कियां' भी अकारण दागदार न हो जाएं जबकि वे सारे ऐहतियात बरतती हैं! इसके विपरीत, पुरुषवर्ग गुमान में चौड़ा होता जा रहा है। उसे अपनी क्षमताओं का अंदाजा अब जाकर लगा है। सतयुग और त्रेतायुग से चली आ रही पौराणिक किंवदंतियों में बताई गई बातें अत्यंत आश्चर्यजनक रूप से इस नामुराद कलियुग में सही साबित हो रही हैं कि पुरुष के देखने या हल्के स्पर्श-भर से स्त्रियां सौभाग्यवती हो जाया करती थीं। पुरुष के पसीना या खून का एक कतरा भी स्त्री के जिस्म पर टपक जाए तो उसकी कोख भर जाती थी। तपस्या या वरदान भी

उनकी बांझ गोद को हरा-भरा कर देता था। लिहाजा, ऐसी माएं समाज में सम्मान की पात्र होती थीं और उनकी संतान को ऋषि-पुत्र, सूर्य-पुत्र, समुद्र-पुत्र या किसी देवता-विशेष का पुत्र पुकारकर उसका समाजीकरण किया जाता था।

ऐसी प्रबल संभावना है कि गंगा के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ होगा। या तो किसी देवता के आगे उसकी कोई प्रार्थना फलीभूत हुई होगी या किसी मनचले पुरुष की निगाह या स्पर्श से वह गर्भवती हुई होगी। ऐसी भी अटकलें हैं कि किसी अतिमानवीय (सुपरनेचुरल) शक्ति ने उस पर रीझकर उसे इस तरह कृतार्थ किया होगा। यूं भी आजकल भूत-प्रेतों के अस्तित्व के बारे में पुख्ते सबूत मिल रहे हैं और देश-विदेश की कतिपय मीडिया एजेंसियां उनके फोटो खींचकर उनकी गतिविधियों के बारे में विश्वसनीय जानकारियां दे रही हैं। जहां तक गंगा के चाल-चलन पर कोई शक-शुबहा करने का संबंध है, उसमें ऐसा कोई लक्षण नहीं मिलता है कि उसे बदचलन घोषित किया जा सके। अगर उस पर लगाए गए लांछन सही होते तो वह इतनी गमगीन नहीं होती! बेशक! वह तन-मन से پاک-साफ है। मेरा तो पक्का विश्वास है कि उसके गर्भ से कोई अवतारी जन्म लेने वाला है क्योंकि प्रचलित विश्वास के अनुसार, ज्यादातर अवतारी आत्माएं कुआरियों की कोख से ही जन्म लेती हैं।

इसलिए, मेरे प्रिय देशवासियों! तुम सावधान हो जाओ क्योंकि पापियों का नाश करने वाला और दीन-दुःखियों की पीड़ाओं को हरने वाला एक महापुरुष गंगा की कुआरी कोख से पैदा होने वाला है। मीडियाजनों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वे गंगा के खिलाफ फिजूल अफवाह फैलाने से बाज आएँ और उसका स्वागत एक दुर्लभ मां के रूप में करें जिसे शीघ्र ही एक देवमाता का दर्जा दिया जाने वाला है! मैं उनकी इकलौती बहन चुम्मी देवी के पित्र-मित्र अर्थात् तात से भी अनुरोध करूंगा कि वह खुद चुम्मी मैडम के गंगा के अनुकूल हवा का रुख बदलने के लिए उसे बहलाएं-फुसलाएं।

चुम्मी मैडम की सांठ-गांठ न केवल इस देश के बहुसंख्यक बांके मर्दों से है

बल्कि पवनदेव से भी है। अतः हे तात! चूंकि आपको चुम्मी मैडम के निहायत करीब रहने का सौभाग्य प्राप्त है, इसलिए आप उनसे सभी माध्यमों से गंगा (जो भले ही हर नजरिए से मैडम से भिन्न है, लेकिन है तो उसकी सगी बहन) के दामन पर लगे दाग को मिटाने के लिए व्यापक प्रोपेगैंडा का बंदोबस्त करें। यदि मैडम की कृपादृष्टि हो तो वह पवनदेव को एक हिदायत दे सकती हैं कि पवनदेव हवा में ऐसी तासीर पैदा करें ताकि संपूर्ण जनमानस में गंगा के प्रति न केवल अगाध स्नेह बल्कि अपार सम्मानभाव भी उमड़ सके। पहले भी पवनदेव ने मैडम की सेवा बड़ी तन्मयता से की है। न केवल उनके रंग-रूप-गंध को सर्वत्र विस्तारित किया है बल्कि कास्मेटिक कंपनियों को बेहतर सौंदर्यवर्धक क्रीम-पाउडर बनाने की प्रेरणा भी दी है। महानगर की कोठियों में सजे गमलों में फूलों को बिल्कुल अलग ढंग से खिलने का अवसर दिया है; अन्यथा प्रदूषण ने तो उनकी हुलिया ही बदल डाली थी। वैसे तो, पेट्रोल का धुआं, तंबाकू की भभक, शराब की गमक, मोटर-यंत्रों का कर्णभेदक शोर आदि पवनदेव के तन-मन में रचा-बसा है जिस कारण वह यहां से स्थायी प्रवास करना चाहते हैं। किंतु, चुम्मी मैडम की मीठी हाथ-हैलो, अंगुलियां फोड़न की चनक, उनकी अंगड़ाइयों की कड़क, सांसों के उच्छ्वास, बदन की खुशबू आदि जैसे मनमोहक घटकों के कारण पवनदेव यहां से प्रवास करने के इरादे से बाल-बाल बचे हुए हैं। वर्ना, आज यहां लोगबाग मुंह में आक्सीजन की नली डाले और कंधे पर आक्सीजन का सिलिंडर लादे दिल्ली-विहार करते नजर आते।

एक नजरिए से देखा जाए तो गंगा की वजह से चुम्मी मैडम की मकबूलियत में चार चांद लगे हैं। लोग गंगा को देखकर मैडम को कुछ इस तरह याद करते हैं कि 'देखो, यही है-दुनिया की सबसे अच्छी लड़की मतलब चुम्मी मैडम की बहन।' बेशक! गंगा की बुराइयों ने मैडम की अच्छाइयों को और चमकदार बनाया है। अब, मैडम को और अधिक दिलचस्पी से देखा जाने लगा है। उनकी सराहना और मुक्त कंठ से की जाने लगी है। जो लिजलिजी

कहानी गंगा की जिंदगी से जुड़ी हुई है, उसने मैडम से जुड़े मिथकों को और अधिक लिज्जतदार बना दिया है। यूं भी, इस देश में कुआरी मांओं की परंपरा कोई नई नहीं है। पर, गंगा द्वारा स्थापित परंपरा थोड़ी-सी लीक से हटकर है कि उसे अपनी संतान के डैडी के बारे में कुछ भी पता नहीं है जबकि पुरानी परंपरा के अनुसार बनी कुआरी मांओं को अपनी संतानों के डैडियों के बारे में कोई गलतफहमी नहीं रहती थी; हां, वे इसे जगजाहिर कभी नहीं करती थीं।

सो, मैं भी गंगा की माफी के लिए पुरजोर फरियाद करता हूं। इसके लिए बेशुमार तर्क पहले ही दिए जा चुके हैं। पवनदेव को गंगा के खिलाफ जनाक्रोश को बदलने के काम में लगाया जा चुका है। तात को भी गंगा के भविष्य को लेकर चिंताग्रस्त देखा गया है और उन्हें मैडम से मिन्नतें करते हुए देखा-सुना गया है कि जवानी में किसके पैर नहीं फिसलते। गंगा नासमझ और भोली है। इस लिहाज से वह बिल्कुल बेकसूर है। छोटी-मोटी गलतियों के लिए उसे इतनी बड़ी सजा नहीं दी जानी चाहिए कि देश की दूसरी भोली-भाली लड़कियों के लिए इस सबक को गले से नीचे उतारना ही कठिन हो जाए। उनमें से भी कई गंगाएं पैदा हो सकती हैं। आने वाले कुछ सालों में कुआरी मांओं की भरमार होने जा रही है। अगर अभी से इस तरह के फिसलन को अपराध घोषित किया गया तो देश की कन्याओं के भविष्य का क्या होगा? इससे तो सारी स्त्री-सुधार योजनाएं ही टाय-टाय-फिस्स बोल जाएंगी। ऐसे में तात की दिल खोलकर प्रशंसा की जानी चाहिए क्योंकि वह कुआरी मांओं के गर्भ-समापन के लिए एक ट्रस्ट खोलने जा रहे हैं और खुदा-न-खास्ता उनकी संतान दुनिया में आ भी जाती है तो तात ऐसी संतानों के लिए एक बाल निकेतन खोलने जा रहे हैं। अब, हम जैसे भलेमानुसों की यह जिम्मेदारी है कि हम गंगा जैसी मांओं की देश के चप्पे-चप्पे में खोजबीन करके तात की योजना को सफल बनाएं। तभी हम अमरीका और दूसरे पश्चिमी देशों की बराबरी कर सकेंगे।

सी-66, न्यू पंचवटी, (पवन सिनेमा के सामने)
जी.टी. रोड, गाजियाबाद

... पृष्ठ 72 का शेष

विपत्ति की इस घड़ी में उन्हें और तो कुछ नहीं सूझा। उन्होंने पत्नी को आवाज दी—

‘सुनती हो लल्लू की मां! . . जरा पेशाब आ रहा है।’ पैर में ट्रैक्शन लगा देने के कारण श्याम बाबू का चलना-फिरना वर्जित था ही।

पत्नी ने आकर चादर के नीचे से मूत्रदानी लगा दी। श्याम बाबू के पुरुषत्व को इससे संतोष मिला। वे नेत्र मूंदकर मूत्र-विसर्जन करने का अभिनय करने लगे। लेकिन मनोहर अभी आसानी से टलने वाला नहीं था। अतः कुछ सोचकर श्यामबाबू ने अगले क्षण ट्रंपचाल चली। पत्नी से बोले— ‘सुनो. . अब जरा वो भी आ रहा है।’

मनोहर को आगे के दृश्य की कल्पना करते देर न लगी। इससे पहले कि वातावरण प्रदूषित हो, वह उठा और ‘अच्छा भाई साब! . . चलता हूं।’ कहकर वहां से निकल लिया। दूध का पैकेट बराबर की टेबिल पर धरा का धरा रह गया।

मजबूरी इंसान को बहुत कुछ सिखा देती है। पंद्रह दिन में ही श्याम बाबू लोगों के जवाब देने में एक्सपर्ट हो गए हैं।

अब उन्होंने अपने सिरहाने के निकट एक टेपरिकार्ड रख लिया है। जब कोई हालचाल लेने भूला भटका व्यक्ति आता है तो वह उसके सामने टेप का बटन दबा देते हैं। श्याम बाबू का उसमें रिकार्डेड-स्वर बजने लगता है। वह कह रहे होते हैं—

‘नमस्कार। डाक्टर ने ज़्यादा बोलने को मना किया है। . . गाय को लोग गरुमाता कहते हैं। मगर उसे सब्जीमंडी में इधर-उधर मुंह मारने के लिए और डंडे खाने के वास्ते छोड़ देते हैं। . . (खांसी का स्वर). . . दुर्घटनाएं होती हैं जिसमें. . . मेरे जैसे लोगों के हाथ-पैर टूट जाते हैं। . . यह फ्रैक्चर भी उसी-जैसी एक घटना का नतीजा है। . . सरकार को चाहिये कि गाय-बछड़ों की जगह, उनके ऐसे गैरजिम्मेदार मालिकों को पकड़कर कांजीहाउस में बंद कर दे. . . और रोज़ सुबह-शाम उनके चूतड़ों पर दस-दस कोड़े लगवाएं।’

सरोज सदन, 18/250, इंदिरा नगर, लखनऊ-226016

इष्टदेव सांकृत्यायन

तो क्या कहेंगे?

सलाहू आज बोल ही नहीं रहा है। हमेशा बिन बुलाए बोलने वाला आदमी और बिना मांगे ही बार-बार सलाह देने वाला शख्स अगर अचानक चुप हो जाए तो शुबहा तो होगा ही। यूँ तो वह बिना किसी बात के बहस पर अक्सर उतारू रहा करता है। कोई मामला-फसाद हुए बगैर ही आईपीसी-सीआरपीसी से लेकर भारतीय संविधान के तमाम अनुच्छेदों तक का बात-बात में हवाला देने वाला आदमी आज कुछ भी कह देने पर भी कुछ भी बोलने के लिए तैयार नहीं हो रहा है। मुझे लगा कि आखिर मामला क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि माया मेम साहब द्वारा बापू को नाटकबाज कह देने से उसे सदमा लग गया हो! पर नहीं, इस बारे में पूछे जाने पर उसने मुझे सिर्फ देखा भर। ऐसे जैसे कभी-कभी कोई बड़ी शरारत कर के आने पर मेरे पिताजी देखा करते थे। चुपचाप। पर मैंने ऐसी कोई शरारत तो की नहीं थी। जाहिर है, इसका मतलब साफ तौर पर सिर्फ यही था कि ऐसी कोई बात नहीं थी। फिर क्या वजह है? बार-बार पूछने पर भी सलाहू चुप रहा तो बस चुप ही रहा। जब भी मैंने उससे जो भी आशंका जताई हर बात पर वह सिर्फ चुप ही रहा। आंखों से या चेहरे से, अपनी विभिन्न भाव-भंगिमाओं के जरिये उसने हर बात पर यही जताया कि ऐसी कोई बात नहीं है। अंततः यह आशंका हुई कि कहीं ऐसा तो नहीं कि वह गूंगा हो गया हो। वैसे भी हमारे समाज में जिह्वा को सरस्वती का वास-स्थल माना जाता है और उसने जिह्वा का दुरुपयोग बेहिसाब किया है। मुक्किलों से लेकर मुंसिफों तक। सरकार से लेकर गैर सरकारी लोगों तक किसी को नहीं छोड़ा था। मुझे लगा क्या पता शब्द जिसे ब्रह्म का रूप कहा जाता है उसने इसका साथ छोड़ दिया हो, नाराजगी के नाते। पर आत्मा से तुरंत दूसरी बात आई। अगर ऐसा होता तब तो यह बात पहले अपने

साथ होनी चाहिए थी। आखिर शब्दों का व्यापार करते हुए ऐसा कौन-सा अपराध है जो शब्दों के जरिए अपन ने न किया हो! पर नहीं साहब अपन के साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। ऐसा मास्टर के साथ भी नहीं हुआ, जो केवल हिन्दी ही नहीं, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं के साथ भी शब्दों से हेराफेरी करता आ रहा है, पिछले कई वर्षों से। पर ना, उसके साथ भी ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हुआ तो बेचारे सलाहू के साथ। मुझे लगा कि हो न हो, यह किसी रोग वगैरह का ही मामला हो। मैं बेवजह पाप-पुण्य के लेखे-जोखे में फंसा हुआ हूँ और हर पढ़े-लिखे आदमी की तरह बेचारे अपने सबसे भरोसेमंद मित्र के वैज्ञानिक इलाज के बजाय उसके और अपने पाप-पुण्य के लेखे-जोखे में लग गया हूँ। आखिरकार उसके बार-बार इशारों से मना करने के बावजूद मैं उसे जैसे-तैसे पकड़-धकड़ कर डॉक्टर के पास ले ही गया। लेकिन यह क्या डॉक्टर तो उससे पूछने पर तुला है और है कि बोल ही नहीं पा रहा है। आखिरकार डॉक्टर ने आजिज आकर पता नहीं कौन सा डर्कोमर्कोग्राम एपीएमवीएनेन कराने के लिए कह दिया। तमाम और डॉक्टरी क्रियाओं की तरह मैंने इसका भी नाम तो सुना नहीं था, लिहाजा डॉक्टर से पूछ लेना ही बेहतर समझा कि भाई इसका कितना पैसा लगेगा। लेकिन यह क्या, जैसे ही डॉक्टर ने बताया, 'कुछ खास नहीं, बस बीस हजार रुपये लगेंगे और इस टेस्ट से पता न चला तो फिर अमेरिका जाना पड़ेगा। वैसे यह भी हो सकता है कि स्वाइन फ्लू हुआ हो. . .' सलाहू चुप नहीं रह सका। एकाएक चिल्ला कर बोला, 'अरे मेरी जान के दुश्मनों मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं बिलकुल ठीक हूँ।' अब तो अब तक बोल क्यों नहीं रहा था।, 'बस ऐसे ही।', 'क्या भौजाई ने कुछ कह दिया', 'उंहू फिर' उसने फिर सिर हिलाया। न बोलने का नाटक

करते हुए। 'तो क्या कचहरी में कोई बात हो गई' उसने फिर न में सिर हिलाया। 'तो फिर क्या बात हुई?' अब वह एकदम चुप था। पुनर्मूषकोभव वाली स्थिति में आ गया था। न बोलने की कसम उसने लगता है फिर खाली थी। 'भाई क्या वजह है? बोल और बिलकुल सही-सही बता वरना ये जान लो कि अभी तुम्हारी डर्कोमर्कोग्रामी शुरू।' डर्कोमर्कोग्रामी का नाम सुनते ही उसके होश फिर ठिकाने आ गए। आखिरकार बेचारा बोल ही पड़ा, 'देख भाई, ये न तो घर का मामला है और न कचहरी का। ये मामला असल में है पार्टी का। आज नहीं तो कल पार्टी में मुझे गूंगे होना ही पड़ेगा। लिहाजा उसकी प्रैक्टिस अभी से शुरू कर दी है।' 'वो क्यों भाई? भला तुझे पार्टी में गूंगा कौन बना सकता है?' मैंने पूछा, 'मैडम का तू खास भरोसेमन्द है?' 'सो तो हूँ', उसने बताया, 'लेकिन आज ही से एक नया संकट आ गया है।' 'वह क्या', मैंने फिर पूछा, 'क्या तेरे बराबर भरोसा किसी और ने भी जीत लिया है?' 'नहीं भाई, ऐसी भी कोई बात नहीं है।' 'फिर?' 'असल में आज ही एक नया फरमान जारी हुआ है।' 'वह क्या गूंगे होने का फरमान है।' 'ना गूंगे होने का नहीं, वह गूंगे बनाने का फरमान है।' 'फरमान तो बताओ।' 'बस यह कि अबसे कोई पार्टी और खास तौर से पार्टी मालिकों के परिवार के सदस्यों के लिए सामंतवादी या कहे राजशाही सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं करेगा। अब कोई किसी को युवराज, राजा, राजमाता, महाराज. . .आदि-आदि नहीं कहेगा।' 'तो?' 'तुम्ही बताओ, तब अब हम क्या कहेंगे? इस तरह तो हमारी पार्टी के 99 फीसदी कार्यकर्ताओं का सोचना तक बन्द हो जाएगा। बोलने की तो बात ही छोड़ मेरे यार।' इतना कह कर वह फिर से गहन मौन में चला गया। ऋषि-मुनियों की तरह।

संपादक, जागरण सखी, नोएडा (उ.प्र.)

अजीत श्रीवास्तव

साहब पानी खो गया

नेता जी की कोठी पर इतना कोलाहल व लोगों का आना जाना बढ़ गया, जिले के स्तर के अफसर यथा कलैक्टर सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट, शहर कोतवाल, जिला पुलिस अधीक्षक इनके साथ इनको बैलेंस में रखने वाले छोटे और मझोले अफसर, इतना ही नहीं पत्रकारों से लेकर संभाग एवं राज्य स्तर के लोग जमा हो रहे थे, तरह-तरह की बत्ती लगी गाड़ी व कारें चिल्लपों मचा रही थीं वह फ्लेश लाइटें जिससे पत्रकार एवं संवाददाता भी बेचैन थे।

दरअसल यह तबसे शुरू हुआ जब सुबह एक चार की गार्ड युक्त एवं नेता जी के दो विश्वस्त कारिंदों से भरी जीप आकर रुकी और वह सब लपक कर उतरे व नेताजी के कक्ष में धड़-धड़ाते घुसे और एक कारिंदे ने कहा, 'साहब पानी खो गया।'

यह वह आवाज थी, कि नेता जी उछल पड़े कुर्सी से, घर का सारा अमला एवं परिवार दौड़ कर उस कक्ष में आ गया, सवाल पर सवाल दागे जाने लगे, कब? कैसे? कहाँ? क्यों? आदि सांस लेकर गार्ड ने बताया।

'साहब पानी सुरक्षित मिल गया था, दो जिले तक हम टैंकर की सुरक्षा करते नजर आये, पर यहां से चालीस किलोमीटर पर एक जगह टैंकर मय पानी के गायब हो गया, हमने बहुत दूँदों पर नहीं मिला, तब यहां आये।'

'तुम लोगों की सुरक्षा में कमी रही, लापरवाही की होगी।'

'सब कामचोर हैं कोई काम ढंग से नहीं करते।'

'हद हे गई नेताजी के पानी की भी सुरक्षा नहीं कर सके पानी टैंकर सहित खो गया।'

'इनकी हिम्मत देखो पानी खोने की खबर देने चले आये वह भी सीधे-सीधे, अरे किसी का हार्टफेल हो जाये, ब्रेन हैमरेज

हो जाये।'

'हां खून का दौरा रफ्तार बढ़ा या कमा दे, हार्ट अटैक हो जाये।'

'पानी की कीमत नहीं समझी हम दुष्टों ने, और...?'

यह सब विभिन्न लोगों के बोल सुनते सुनते नेताजी की तंद्रा भंग हो गई, वह कीमती पानी की बात सुन अचानक जैसे जाग गये हों, बोल उठे—

'अरे' वह पानी इस युग में कितना कीमती था, अब पानी मिलने का युग तो है नहीं, बड़ी मुश्किल से मंत्री जी की सिफारिश से तीन जिला छोड़ कर तो एक टैंकर पानी का जुगाड़ बैठाया जिसमें 3-4 माह का समय लगा, हमारे घर के लोग कितने खुश थे कि पूछो नहीं, इतना पानी तुमने खो दिया, शहर में नहीं देखा, दस रुपये का गिलास बिक रहा है...'

'पर साहब इसमें हम लोगों की गलती...।' नेता के कारिंदे का हाथ दबा कर एक व्यक्ति ने बोलने से रोक दिया, वह सहमकर चुप हो गया।

नेता जी पुनः बोले 'टैंकर में पांच हजार लीटर पानी था यानी पच्चीस हजार गिलास पानी, और एक गिलास पानी दस रुपये का मानें तो दो लाख पचास हजार रुपये का पानी था, जिसको मंजूर कराने में ही पांच हजार रुपये खर्च हो गये, दो लाख पचपन हजार का पानी था...'

नेता की बात नेता के पुत्र ने काट दी 'और तो और मंगाने का खर्च ही दस हजार रु. लगा, कीमत हो गई दो लाख पैंसठ हजार रुपये...'

नेता पुत्र की बात नेता के पानी लेने गये कारिंदे ने काट दी।

'साहब, चुंगी और थानों इत्यादि व हम लोगों का खर्चा जोड़कर दस हजार और खर्च हो गये।'

नेता जी ने उंगलियों से कुछ जोड़ा

फिर मुंह खोला—दस हजार यह और पांच हजार रु. की रिश्वत मंत्री के पी.ए. की दी, सो पानी की कीमत हो गई, दो लाख अस्सी हजार रुपया 5-5-5

'कहते-कहते नेताजी ने छाती पकड़ी व कुर्सी पर लुढ़क पड़े कोई चीख उठा—'नेताजी को दौरा पड़ गया' पुनः अफरा तफरी डा. एंबूलेंस सब जुड़ आये।

अंक-दो

डी.आई.जी. पुलिस गर्जे—'देखो वह युग तो अब है नहीं कि पानी सबको मिल जाता था, अब पानी अनमोल है, मुझे नेताजी के पानी का पता चलना चाहिये, कैसे खो गया, कहाँ खो गया, सारी रिपोर्ट सात दिन में चाहिये आखिर लगभग तीन लाख का पानी की बात है।'

उनके अमले के लोगों ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली, तफ्तीश बांट दी गई, कारिंदों और एक चार की गार्ड को पुछाई हेतु हिरासत में ले लिया गया, उसी रात पता चला खाली टैंकर गोरे गांव के पास सड़क किनारे मिला।

अंक-तीन

तफ्तीश बड़े पुलिस अफसरों के काफिला का गोरे गांव से शुरू हुआ। जहां टैंकर खाली मिला था वहीं पास में कोई गांव नहीं था। अलबत्ता कुछ-कुछ दूर पर गोरेगांव, काले गांव, पीले गांव एवं नीले गांव जरूर थे। बड़े आदमी का पानी खो गया था, सो बड़े पैमाने पर जांच-अन्वेषण हुआ, सूंघने वाले कुत्तों का इस्तेमाल हुआ फिंगर प्रिंट वाले आये, डी.एन.ए. टेस्ट वाले आये, फोरेंसिक लैब से सामान और मशीनें लेकर वैज्ञानिक आये और भी ना जाने कौन-कौन स्पेशलिस्ट आये। तफ्तीश ऐसे-ऐसे भी चलती रही।

किसी ने बताया, गांव में सबकी दाढ़ी मूँछ बढ़ी है केवल राम अवतार ने क्लीनशेव करी है लगता है पानी उसे मिल गया है,

राम अवतार पकड़ा गया, पिटाई गालियों के बाद उसने उगला कि पानी नहीं ग्वारपाठा का गूदा घिसकर दाढ़ी फुलाई फिर बनाई है, छूटा तब वह, जब पक्के विश्वास के लिये उसने 'मनीराम' को पेश किया, मनीराम व्यक्ति को नहीं, रुपयों को कहते हैं।

एक दूध बेचता पाया गया, पकड़ा गया, इस युग में दूध बेचना अर्थात् जानवर पालना, अर्थात् पानी होने का शक लेकिन दूध नकली निकला भाग्य से वह बच गया।

दूसरा पता चला गांव में जाने कब से लोगों ने दातुन नहीं की पर मुस्तफा दातुन करता लोगों ने देखा था, मुस्तफा पुलिस के सिस्टम से गुजरा पर उसने बताया कि बिना पानी के बबूल की दातुन की थी, क्योंकि गांव भर के लोगों को पायरिया दांतों में हो गया है, हमारे तो मसूढ़ों से खून निकल रहा था, इस कारण दातुन कर ली, साथ ही उसने पिटाई के भय से ऊपर वाले को सामने रख कभी दातुन ना करने की कसम भी खा ली।

तीसरा चक्कर ऐसा था कि दलू माली की पत्नी कुल्ला करते देखी गई है, पानी जब है ही नहीं, ऐसे में घर के बाहर दलू की घरवाली का पानी का कुल्ला करना गांव वालों और जलने वाले पड़ोसियों को अखर गया, जबकि गांव में हर व्यक्ति दस लीटर पानी, सरकारी कोटे से प्रतिमाह मिल रहा हो। पुलिस का छापा घर में पड़ा कुछ भी पानी नहीं मिला, बहू की संदूकची से ताला खोलने को कहा गया, वह तैयार नहीं हो रही थी, लेडी पुलिस बुलाई गई, धौल-धपाड़े के बाद जबरन ताला खोला गया तो पांच इंच की शीशी पानी से भरी पाई गई, पूछताछ कड़ी की गई तो उसने बताया कि दो माह से पानी बचाकर रिजर्व कर सुरक्षित पेटी संदूकची में रख लिया था, क्योंकि वह गर्भवती है कब बच्चे के हिसाब से पानी जरूरत पड़ जाये और उसने पानी नहीं, गर्भ की दशा में उल्टी कर दी थी, जिसे लोगों ने पानी का कुल्ला समझा था।

अचानक एक घटनाक्रम हुआ— काले गांव की जांच दल दो व्यक्तियों के पकड़ लाये, उनके तुलसी घर में तुलसी के बिरवे में पानी सिंचा पाया गया था, पुलिस के बड़े साब ने गहन पूछताछ की, तो उन्होंने धर्म का वास्ता बताया, ब्राह्मण थे दोनों और पूजा

पाठी, तुलसी को जीवित रखना उनकी मजबूरी थी क्योंकि उनका मानना था कि भगवान बिना तुलसी के भोग स्वीकार नहीं करते। इससे तुलसी में पानी वह रोज डाल देते हैं, उनकी आस्था को बड़े साब ने चोट नहीं पहुंचाई, पर छोटे साहबों ने इस कृत्य का अर्थदंड उनसे वसूल किया था।

ठीक ऐसी ही घटना पीले गांव में हुई एक आदिवासी तीन कन्याओं को भोजन कराते पकड़ा गया। पूछने पर पता चला कि घर में 'महामाई' (जिसे मीजिल्स या चेचक भी कहते हैं) निकली थी बच्चे को, सो किस ने बताया कि देवी को तो पानी चढ़ा नहीं सकते क्योंकि पानी है नहीं सो तीन कन्याओं को भोजन करा देना, उसे भी छोड़ा गया, अलबत्ता तीन कन्याओं को भोजन करा जांच दलों वालों ने भोग स्वरूप उड़ा दिया। एक जैन सेठ के यहां जब हरियाली आधी पृथ्वी से गायब हो चुकी थी। छत के कचरे में पीपल का दो इंची हरा वृक्ष मिला। वह दो हजार में छूटा। क्योंकि किस प्रकार का पौधा अपने आप उग आया था।

पुलिस जांच का पहलू बहुत विशाल था। घर-घर में तलाशी हो रही थी, एक-एक व्यक्ति सवालों जवाबों के दौर से गुजर रहा था ऐसे में कोई खटकने वाली बात होती तो उसकी खैर नहीं। खबर नीले गांव के ठाकुर की मिली वह इस युग में जब गांवों में जानवर, पशु पक्षी जिंदा नहीं बचे, वह एक मिट्टू तोता पाले हैं, वह भी जिंदा। इतनी बड़ी खबर ने उनको पानी खो जाने की घटना में संदिग्ध बना दिया। खोज पड़ताल हुई, ठाकुर साहब ने बताया कि उनकी नातिन दो वर्षीय उस तोते से इतनी हिल मिल गई कि जब तोता खाना खाता है तभी वह खाती है, उसी से खेलती है। इस मजबूरी में ठाकुर साहब उस तोते को जिंदा रखे हैं। वहीं एक सेठ धुला कुर्ता पहने दिखने पर पानी की चोरी की शक के दायरे में आ गया पर खबर झूठ थी वह धुला कुर्ता नहीं, नया बनवाया कुर्ता पहने था। कहने का अर्थ यह कि हर छोटी बड़ी घटना की तहकीकात चल रही थी, पर पानी था नेता जी का, उसका पता नहीं चल रहा था।

इधर सारा वैज्ञानिक पुलिस महकमा और अवैज्ञानिक पुलिस महकमा नेताजी के पानी को खोज पाने में फेल हो रहा था,

उधर ऊपर वाले अफसर और मीडिया नाराज थे 'नेताजी मुर्दाबाद' एवं 'हाय-हाय' 'पानी चोर', 'पानी का दुश्मन' जैसे शब्द प्रयोग कर रहे थे यहां तक कि पानी मंगाने की प्रक्रिया पर मजिस्ट्रेट जांच की मांग कर रहे थे मीडिया ने तो सी.बी.आई जांच की मांग तक की। टी.वी. चैनल इस घटना पर अपने ढंगसे घटनाक्रम बनाकर लोगों को दिखा रहे थे। कुल मिलाकर 'पानी खोना' देशस्तरीय बहस, राष्ट्रीय समाचार की खबर, टी.वी. न्यूज, जनचर्चा का विषय बन चुका था, कई दिन खोज चलती रही, परिणाम रहा सिफर।

पर भला हो एक गांव के मोटर साईकिल सुधारने वाले मिस्त्री का, उसने बताया कि टैंकर में छेद था सो सारा पानी लाते समय रास्ते में ही गिरता रहा और टैंकर खाली हो गया और उस खाली टैंकर के जरूर किसी ने चुराया पर उसमें डीजल न होने से राह में छोड़ कर भाग गया। यही पुलिस की अंतिम रिपोर्ट बनी, मामला शांत हो गया।

मामला शांत हो गया पर देश के प्रधानमंत्री ने इस पर वक्तव्य दिया कि—'सन् 2008 में भी पानी की कमी हुई थी, तब लोग नहीं चेतते और उसी का परिणाम है कि आज सन! 2068 में पानी का यह हाल हो गया और अभी भी पानी संरक्षण पर जनता को चेतने की जरूरत है। हमने जल विषय का पेपर हर कक्षा में चला दिया है। जल पंचायतें, जल किताब, जल स्कूल, जल बिरादरी, जल कालेज, जल मंदिर जैसे विषयों पर भी शासन ने संस्थाएं खोली हैं, जनचेतना के लिये, जनता जाग जाए वरना आगे इससे बुरा हाल होने की विश्व में संभावना है। अभी हाल में पानी पर विश्वयुद्ध होते-होते बचा है, जो पानी सुरक्षा की चेतावनी है।'

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व में गंदा व कम पानी के कारण फैली 'वाटर डिस्सीज' पर अनगिनत रुपयों का फंड सारे संसार के देशों को दिया है, अमेरिका ने पानी से मरने वालों की संख्या विश्व में बढ़ने पर चिंता जाहिर की है, पर जरूरत हर व्यक्ति के पानी पर चिंता जाहिर करने की है।

'राजीव सदन', नायक मुहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

तारकेश्वर शर्मा 'विकास'

रामरस बिना क्या बतरस मजा

पंडित लेखराज जी जब तक जिंदा रहे तब तक कागज गोजते रहे। चाहे हथुआ स्टेट की महारानी के यहां अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए बही खाता में उल्टा-पुल्टा हिसाब-किताब लिखते रहे अथवा अपने खासमखास लोगों को तोहफा दिलाते रहे। बाद के दिनों में जब मोहतरमा महारानी कविता की दीवानी होने लगीं और खुद ही मुशायरा अथवा कवि गोष्ठियों में जाने-आने लगीं तो पंडित लेखराज जी के दिमाग में यह बात घर करने लगी कि आने वाले दिनों में महारानी किसी न किसी कवि अथवा शायर को बाकायदा पुरस्कृत भी करेंगी। इसके पहले ही पंडित लेखराज जी कविताई करने में इस तरह मशगूल हुए कि ता-उम्र शायरी करते रहे। पर देखते-देखते उनके ही सामने कई सिद्धहस्त पंडित लेखराज जी महारानी को खुश करने के लिए एक से एक तरकीब लगाते हुए खुद उनके ऐसे चारण बने कि महारानी ने उन्हें एक दिन एक भव्य समारोह में पुरस्कार स्वरूप कोई एक हजार सोने की मुहरें देती हुई कही कि पंडित लेखराज जी केवल बही-खाता में हिसाब-किताब लिखने के मामले में ही सिद्धहस्त नहीं हैं बल्कि गीत-गजल के क्षेत्र में भी आपका सानी नहीं। तब से पंडित लेखराज जी मुंशी से सीधे कविराज हो गए। वैसे भी पंडित लेखराज जी कवि नहीं तो कविराज थे ही। इस तरह पंडित लेखराज जी के दिन बहुरने लगे। आमदनी का एक और दरवाजा जो खुल गया।

. . .तो ऐसे कविशिरोमणि सह पंडित लेखक लेखराज महाराज के ही ये जुड़वा पुत्र व कवि द्वय हैं भाई जले मिश्राजी और प्रले मिश्राजी। उस समय भले ही पंडित लेखराज जी को हथुआ स्टेट की महारानी ने पुरस्कृत कर उनके नाम में चार चांद लगाया पर उनकी कविताओं और गजलों को लिखने वाले कोई और नहीं बल्कि वही निहितार्थ

राय जी थे, जिनके सुपुत्र हैं छायावादी कवि तार्माजी छपरहिया महाराज। खैर! जो कुछ भी हो आज तो भाई जले मिश्रा और प्रले मिश्राजी साहित्य के क्षेत्र में बखूबी छाए हुए हैं। यह और बात है कि दोनों साहित्य की अलग-अलग विधाओं में महारत हासिल किए हुए हैं, जो वास्तविकता के धरातल पर भले ही सत्य प्रतीत नहीं होता लेकिन पत्र-पत्रिकाओं में दोनों नामों की चर्चा तो आए दिन होती ही रहती है। . .और ऐसा साहित्य के क्षेत्र में हर बार होता रहा है। साहित्य सृजन में जिन लेखकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए उनकी तो की नहीं जाती और जो किसी गुट का सक्रिय सदस्य है वह ऐन वक्त पुरस्कार क्या यूं कहें नाम, शोहरत, . .सब कुछ झटक लेता है। आज भले ही सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान प्रदान करने के लिए कवि निहितार्थ रायजी के नाम से अब तक कइयों को पचासों हजार रुपये की राशि से पुरस्कृत और सम्मानित किया जा चुका है पर उस वक्त के मशहूर कविशिरोमणि सह पंडित लेखक लेखराज महाराज जी ही थे। फिर भी समाज के द्वारा दिया गया सम्मान हमेशा महत्वपूर्ण रहा है। कोई बड़ा से बड़ा पुरस्कार भले ही क्यों न झटक ले पर बाबा तुलसीदास, कबीर दास, रहीम दास आदि तो नहीं ही बन सकता? क्या नर नाहर निराला को कोई महत्वपूर्ण पुरस्कार से नवाजा गया? नहीं न! तो इसका मतलब यह लगा लिया जाए कि नर नाहर निराला उन सभी ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवियों, लेखकों, कहानीकारों आदि के कद से छोटे रहे।

आज के समाज में जो नए-नए शगूफे सामने आते जा रहे हैं उसका ही प्रतिफल है कि आम पाठकों की अभिरूचि साहित्य से दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। हालांकि इन सबके बारे में बहस-मुबाहिसे की जरूरत

नहीं दिखती पर कुछ तो करना ही होगा, नहीं तो आज का साहित्य स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, कुलीन साहित्य विमर्श, बाजारवाद, मार्क्सवाद आदि जैसे अनेकों वाद से तहस-नहस हो जाएगा। इसी को ध्यान में रखते हुए माननीय ज्ञानवान जी की अध्यक्षता में एक विचार-गोष्ठी आयोजित की गई। इस विचार-गोष्ठी में सर्वश्री फटीचर भाई, संतुष्टजी, विन्यस्त साहब, भाई जले, मिश्राजी, भाई प्रले मिश्राजी आदि जैसे मूर्धन्य लेखकों के साथ-साथ युवा लेखिका सुश्री पुष्टि कुलकर्णी और श्रीमती तारिका कल्याणी की उपस्थिति को भला कौन नजरअंदाज कर सकता है? पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े पत्रकार मिस्टर लिंगर ने जो खास अंशों को खास समाचार में उकेड़ा उससे समाज में क्या संदेश गया, समाज ही जाने। लेकिन इस लेखक को तो कुछ बताना ही पड़ेगा क्योंकि आप भी इसी बहाने इस लेखक से भी परिचित हो जाएंगे और इस लेखक का एक लेख भी लिखा जाएगा। सच कहा जाए तो लेखन के माध्यम से यह भी धीरे-धीरे नाम भुनाने का एक ठोस और मजबूत जरिया बनता जा रहा है। लेकिन उस गोष्ठी में सौभाग्यवश चूँकि मैं भी उपस्थित था, अतः जो कुछ भी मैंने सुना, गुना और पाया, उसे सारगर्भित रूप से आपके समक्ष परोसने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह और बात होगी कि आपको कोई आपत्ति हो तो सीधे संपादक महोदय के पास न लिखकर मेरे पास लिखें तो अच्छा होगा। मेरा भी भला और आपका भी भला। अब पूछेंगे आप कि आपका कैसे भला? . .तो मैं आपके पत्र के उत्तर में सब कुछ लिख दूंगा, जैसा आप जानना चाहते हैं।

पहली बार कि मैं भाई जले मिश्राजी और प्रले मिश्राजी के बारे में एक शब्द भी नहीं बोलूंगा क्योंकि इन दोनों के खिलाफ कुछ भी बोलना मेरे लिए हानिकार सिद्ध होगा। चूँकि मैं भी एक लिक्खाड़ जीव हूँ

जो छपने और खपने के प्रश्न पर आज तक सबसे ज्यादा चिंतनशील की जगह चिंताशील रहा है। इसलिए इन दोनों महानुभावों से पंगा लेना इस लेखक को नहीं सुहाता। यह सत्य है कि मैं इन्हें करीब से नहीं जानता पर जहां तक उनका सवाल है, वे मुझे अच्छी तरह से जानते हैं। क्योंकि कई बार महज मेरे कारण इन दोनों भाइयों को एकाध ख्यात पत्रिका के कुछ खास विशेषांकों में उनके लेखों का न छपना बहुत महंगा पड़ा। तभी तो 'संपादक के नाम पत्र' स्तम्भ में दोनों को मेरे संबंध में लिखने के लिए मात्र उतरना ही नहीं पड़ा बल्कि उन्हें यह भी लिखना पड़ा कि यह विकास नाम का जीव एक ऐसा जोंक है जो नमक के सिवा कुछ से भी नहीं मरेगा। अब आप ही बताएं, मैं इन दोनों भैया जनों के बैर करके साहित्य का 'स' लिखने से भी हाथ धो बैठूंगा कि नहीं। दूसरी बात कि स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य आदि मैं नहीं समझता। मैं प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, महाश्वेता देवी, आशापूर्णा देवी, फणीश्वर नाथ रेणु, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि की कुछेक कहानियां पढ़ा हूं। मुझे कहीं भी स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य आदि की वकालत करने की जरूरत महसूस नहीं हुई। यह ओर बात है कि आपका यह लेखक भले ही अपने लेखन-कर्म से विकास का राग अलापता रहा हो पर यह भी तो किसी गुट के साथ रहना ही चाहता है। कारण तो आप समझ ही गए होंगे। छपने, खपने और पुरस्कार ग्रहण करने की लालसा किसे नहीं होती? सो अब मुझे भी होने लगी है। पर क्या करूं? मुझे कोई भी अपने गुट का सदस्य बनाना ही नहीं चाहता। भांड में जाए ऐसी गुटों की सदस्यता। मैं लिखता हूं, लिखता रहूंगा. . . और बस लिखता ही रहूंगा। खैर, कहां से कहां बढ़ गया मैं। यही कमजोरी तो मेरे लेखन को चौपट कर देती है। पर आप ही बताएं अगर कोई लेखक स्व-पीड़ा और पर-पीड़ा को न लिखे तो वह लेखक है ही क्या? शायद इसी बात पर मेरे अजीत पत्रकार मिस्टर लिंगर डैनियल के प्रश्न के जवाब में हमारे फटीचर भाई साहब बोल पड़े कि पीड़ा किसकी नहीं होती? पर वे भी असली पीड़ा से मुख मोड़ लिए। यानी, निहितार्थ यह रहा कि सबकी पीड़ा बस छपने की है। चाहे खाक ही क्यों

न छपे? . . . वैसे भी आजकल खाक ही तो छप रही है। आखिर खाक की भी कीमत होती है, जनाब। लोग कहते हैं कि धूल, मिट्टी और राख की भी कोई कीमत होती है? लेकिन होती है। मेरा मानना है कि आजकल जो पत्र-पत्रिकाएं खाक लेखन को ज्यादा प्रश्रय दे रही हैं, वे ऐसे ही थोड़े दे रही हैं।

वैसे भी मेरी मानें तो मैं खाक सामग्री पढ़ने का इकलौता शौकीन रहा हूं। इसका कारण यह है कि मैं खाकसार खबरनवीस मिस्टर लिंगर डैनियल साहब का जिगरी दोस्त ही नहीं बल्कि उनका फन और फैन दोनों हूं। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दूं कि मैं भी अभी तक खाक ही छानता रहा हूं और खाक तथा पाक लेखन पर जोर आजमाइशी करता रहा हूं। तो भैया खाक जाने खाक की पीड़ा। जो गरीब-गुरबा तबके के लोग हैं, उन्हीं समुदाय का मैं भी एक जीवट प्राणी हूं। वैसे तो पीड़ाएं बहुत हैं, पर सबसे बड़ी पीड़ा यह है कि मुझ-सम लेखक को कोई भी संपादक तरजीह क्यों नहीं देता? बात भी साफ है। क्यों देगा? क्या मुझसे संपादक को कोई बड़ा विज्ञापन मिल सकता है? क्या मैं किसी उत्कृष्ट पत्रिका का संपादक हूं जिसमें ऐसे संपादकों की खाक रचनाओं को अपनी पत्रिका में छाप सकूं। जब नहीं तो मेरे जैसे लेखक बस कागद कारें। वैसे विषयांतर होना मेरी पुरानी आदत है। पर इसके भी कई फायदे हैं, जो कथा गढ़ने में सहायक तो होते ही हैं साथ ही साथ पाठकों को गुमराह कर कभी-कभी ऐसा चित्र भी गढ़ देने में औवल साबित हो जाते हैं कि 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के हितार्थ रामबाण अथवा रामरस का काम कर देते हैं। यही कारण है कि अब तो मैं भी 'पाठकों के पत्र' स्तंभ से खाकसार लेखकों को शर्मसार करने के उद्देश्य से उनकी प्रकाशित रचनाओं को बिना पढ़े इस तरह से बखिया उधेड़ता हूं कि वे या तो लिखना छोड़ दें अथवा लिखने के क्रम में किसी का खाका न उड़ाएं। भले ही आप 'खाका उड़ाना' मुहावरे से ताल्लुकात न रखते हों पर कवि नचिकेता की इन पंक्तियों में 'लोकनायकों' की जगह अगर 'महान लेखकों' तथा 'खादी' और 'गांधी' की जगह क्रमशः

'लस्सी' और 'तुलसी' को ध्यान में रखकर पढ़ें तो आज के दुर्योधन लेखकों और अर्जुन लेखकों का चित्र भलीभांति उकेरा जा सकता है। तो, नचिकेता की इन पंक्तियों पर जरा गौर करें—

'लोकनायकों का मुंह उज्ज्वल खादी जैसा है।
मिला न चेहरा मुझे एक भी गांधी जैसा है।'

खैर, उस विचार-गोष्ठी में विन्मस्त भाई की बातों में कुछ दम लगा पर बातें तो सिर्फ अब तक उड़ाई ही जाती रही हैं न। उनका मत था कि साहित्य को न तो खेमों में बांटा जाए और न ही किसी. . . विमर्श के तहत रखा जाए। साहित्य को सिर्फ साहित्य समझा जाए, साहित्य की तरह पढ़ा जाए और साहित्य की समीक्षा साहित्य समझने वालों से ही करायी जाए। अब आप ही देखें, एक साहित्यकार हैं। हिन्दुस्तान में रहते हैं। हिंदुस्तानी भी हैं। पर मिस्टर लिंगर की तरह अंग्रेजी खाते हैं, अंग्रेजी पीते हैं और अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं के बिछावन पर ही सोते हैं। उन्हें हिंदी इसलिए अच्छी नहीं लगती क्योंकि हिंदी की बनिस्बत अंग्रेजी में लिखने का मानदेय ज्यादा है। जनाब अपने मुल्क के अज्ञेय, बच्चन, निराला, दिनकर, प्रेमचंद, जैनेन्द्र, रेणु आदि को उतना भाव नहीं देते जितना कि होमर, वर्जिल, दांते, मिल्टन, कार्ल मार्क्स आदि को देते हैं। इससे उन्हें दो फायदे मिलते हैं— पहला यह कि आम पाठक उन्हें अंग्रेजी का ज्ञाता समझ लेता है और दूसरा कि वे जितना है नहीं उससे ज्यादा उन्हें समझ लिया जाता है। हालांकि वे कभी-कभार ही लिखते हैं पर जब भी लिखते हैं विदेशी कवियों, कथाकारों की तुलना में हिंदी कवियों, कथाकारों की तौहीनी करने अथवा नीचा दिखाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। महाशय गांधीजी को जानते हैं, गांधीजी की विचार-धारा को समाज में फैलाते हैं, पर खाने-पीने के मामले में उन्हें अंग्रेजी खान-पान ही ज्यादा रुचिकर लगता है।

मान्यवर आप ही बताएं, मैं कहूं तो कितना कहूं और कहकर भी क्या कर लूंगा? आखिर मैं भी तो समय-कुसमय लिखता, भेजता और छपता रहा हूं। जिस पेड़

शेष पृष्ठ 86 पर. . .

रमाशंकर श्रीवास्तव

मैंने लड़की देखी

शर्म मौका देखकर अपना वार करती है। जब होश हुआ कि मैं लड़का हूँ, वह लड़की है तब शर्म से मैं दोहरा होने लगा। वैसे मैंने बहुत सी लड़कियाँ देखी हैं। उनकी तरह-तरह की बेरायटी दुकान में सजे माल की तरह रह-रहकर टकरायी है। कुछ को तो दुकान पर ही फेंक दिया है मगर कुछ ऐसी भी रहीं जो आँखों की पुतली में चिपक कर मुझे सपने में परेशान करने लगीं। लड़कियों का रूप-रंग, कद-काठी, बोलचाल, हंसी-किलकारी, चकितकारी, चालढाल, पहनावा, बुद्धि-चतुराई, नादानी-भोलापन इन सबमें मेरे सपने ऊब-चूब होते रहे। तब भी हिम्मत नहीं पड़ी कि खुलकर गार्जियन से अपनी पसंद बता सकूँ। ये गार्जियन लोग बनते तो हैं इंसाफ के तराजू, मगर, ऐसे केस जब सामने आते हैं तो उनमें पहले वे अपनी पसंद ढूँढने लगते हैं। सृष्टि के आरंभ से इन लड़कियों ने पुरुषों को कम विचलित नहीं किया है। लड़ाई-दंगे में, सभा-बैठकों में, क्रिकेट के मैचों में यदि सुंदरियाँ न हों तो पुरुषों का सारा प्रदर्शन फीका पड़ जाय।

ये लड़कियाँ जीवन और मृत्यु का काम करती हैं। मात्र एक चितवन या किलकारी पर प्रेम-मोहब्बत का सोना फूट पड़ता है। दीवाने युवक अपनी जिंदगी दांव पर लगा बैठते हैं, जहर खा लेते हैं, रेल लाइन पर कट जाना, फांसी लटक जाना, न जाने कैसी-कैसी घटनाएं घट जाती हैं। कुछ चिंतन-मनन के बाद मैं निष्कर्ष पर पहुँचा कि वैराग्य-संन्यास देने वाली लड़कियाँ ही हैं। ऐसी हालत में यदि आप नार्मल लाइफ जीना चाहते हैं तो लड़कियों से दूर रहिए।

मगर मेरे संकल्प सूखी लकड़ी की तरह बार-बार टूट जाते हैं। एक दिन मेरे मित्र का फोन आया कि आपको लड़की देखने चलना है। पहले तो कलेजा कांप गया। ये मित्र लोग ही हमें गड्ढे में ढकेलते हैं। अरे भाई, लड़की देखनी है तो आप खुद

जाइए, मुझे उस नरक में क्यों घसीट रहे हैं। परंतु उनके प्रस्ताव पर मेरे भीतर का सोया इंसान जाग उठा। लगे हाथ यह भय भी भीतर घुस गया कि इंसानियत के नाम पर आगे बढ़ा और कहीं अपना ही ईमान डोल गया तब क्या होगा। इस मामले में मुनि विश्वामित्र रेकार्ड कायम कर चुके हैं। राजा ययाति भी डगमगा चुके हैं। फिर मेरी क्या गिनती।

उनको कौन बताए कि इस उम्र में मैं लड़की क्या देखूँगा। एक लड़की देखी तो शादी में बंधना पड़ा और उसी दिन से कोल्हू का बैल बन गया। अब अपनी ही बेटियाँ गन्ने की तरह बढ़ती जा रही हैं। श्रीमती जी रह रह कर वार्निंग देती हैं—लड़कियाँ बड़ी हो गईं, इनकी शादी की चिंता करो। अपनी चिंता-फिकिर को अब तक मैंने ताले में बंद कर रखा था। मगर श्रीमती जी ने अपना पेचकस लगाकर ताला खोल दिया। सड़क चलते भी मैं वर-कन्या की जोड़ी पर विचार करने लगता, कोई युवक मेरी निगाह से बचकर नहीं जा सकता था। मैं उसमें दामाद बनने की योग्यता टटोलने लगता था।

अपनी रिश्तेदारियों में जब दूसरी लड़कियों को देखता तो तारीफ करने के लिए होंठ फड़फड़ा उठते थे। क्या ग़ज़ब की खूबसूरती है। आँखें टंगी की टंगी रह जाती हैं। उनसे निर्मल भाव से कोई सवाल भी पूछता तो वे मुझे शक की निगाह से देखती थीं। अखबारों में वे रोज ही पढ़ती थीं कि आजकल के अंकल लोग दिल के भले नहीं होते। उम्र पचास हो या सत्तर हो, सभी की पतंग उतनी ही ऊँचाई पर उड़ती है। रिश्तेदार कहते—भाई साहब, मेरी बिटिया के लिए कोई अच्छा लड़का बताइए। मैं हाँ-हूँ में जवाब दे देता परंतु मन ही मन कसमसा उठता। महसूस होता कि अपनी शादी में मैं सचमुच बाजी हार गया। परंतु इस नारद-मोह

में अब क्या रखा था। अपना बेटा योग्य होता तो यह शादी आज ही मंजूर कर देता। दहेज से मुँह मोड़ते ही दसों बेटेवाले सामने दंडवत प्रणाम करते। मगर इधर अपना ही माल खोटा था। बड़े बेटे ने लाड़-दुलार में लुढ़कते-ढुलकते आठवीं तक पढ़ायी की। पढ़ते-पढ़ते थककर घर बैठ गया। लेकिन उसकी जवानी तो नहीं बैठ सकती थी। बेटा बचपन में जिन लड़कियों को चिढ़ाता-मारता था, जवानी चढ़ते उन्हीं के पीछे दौड़ने लगा। कई लड़कियों को घर बुलाकर मुझसे परिचय करवा चुका था।

थोड़े दिनों बाद लड़कियों का आना बंद हो गया और उनकी जगह उलाहने आने लगे—अपने बेटे को समझाइए, बिगड़ रहा है।

जब भी चूल्हे पर चढ़ी दाल जलने को हुई है तो मैंने श्रीमती जी का सहयोग कर नुकसान से बचा लिया है। आज अपने बिगड़ते बेटे को बचाने के लिए उनसे सहयोग चाहा—अपने राजकुमार को समझाओ। किसी दिन यह हम लोगों को पुलिस स्टेशन ले जाकर बैठा देगा।

श्रीमती जी ने ठंडे दिल से मुझे समझाया। आप चिंता मत कीजिए, धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। जवान बेटे से जुवान लड़ाना ठीक नहीं होता है। जोश में कुछ बोल गया तो हमारे सारे किये-कराए पर पानी फिर जाएगा। आप हार्ट के मरीज हैं। स्वस्थ रहना है तो नयी पीढ़ी को केवल देखिए, कुछ टोक-टाक मत कीजिए। जवानी में टोक-टाक वैसे भी कड़वी मिर्च की तरह लगती है। उसे पता है कि आपकी बंदूक कहां छिपाकर रखी है।

उनकी बात पर भीतर-भीतर खौल कर मैं फिर ठंडा हो गया। मौका मिलता तो मैं उनसे कहा—बेटा, मैं इतना बूढ़ा नहीं हुआ हूँ कि मेरी हिम्मत परास्त हो गई हो। अभी हिम्मती बुद्धों को तुमने देखा ही कहां। संसद भवन से लेकर मंदिर-मठों तक देख

आओ। उनसे एक-एक कारनामे पर दांतों तले उंगली दबा लो। मैं खुद कम साहसी नहीं था। तुम्हारी मां के निगेटिव कमेंट्स ने मुझे बूढ़ा-जैसा बना दिया। यही वह देह है जब चढ़ती जवानी में कई बदमाशों को मैंने चौराहे पर पीट दिया था, ससुराल में लाठी से अजगर को मार डाला था, आंधी में खड़ी कार को लुढ़कने से बचाया था। बांह में मोच आ गई मगर कार को टस-से-मस नहीं होने दिया। तो अपने ही आत्मज से दो-चार वाक्य बोलने में क्या रखा था। अपनी संतति से संवाद रखना समझदार पिता का धर्म है।

मैंने बेटे को पुकारा तो उसने झट मुंह का सिगरेट फेंका और सामने आकर खड़ा हो गया—कहिए!

मैं गद्गद् हो गया। जमाना इतना बदल गया तो भी राम के समान आज्ञाकारी बेटे इस दुनिया में मौजूद हैं।

— बेटे, अब तुम बड़े हुए। तुम्हारी डील-डौल पर मुझे गर्व है। ऐसी डील-डौल पाने के लिए मैं वर्षों तक माल-मलीदा खाता रहा। कई वैद्यराजों से पौष्टिक रसायन बटियां लीं। जितनी औषधि उन्होंने दी नहीं उससे अधिक पैसे ले लिए। फिर भी मैं डटा रहा। उन दिनों भारत में महंगाई धीरे-धीरे चलना सीख रही थी। अब तो पूरे साल रेस लगाती रहती है। सरकार उसका पीछा करती रह जाती है और वह आगे निकल जाती है। महंगाई से बड़े-बड़ों की सेहत बिगड़ जाती है। अपनी सेहत के लिए तब मैंने क्या-क्या न किया। सेहत भी किस्मत वालों को ही मिलती है। अपनी शादी के दिन जब मैं लड़की वाले के द्वार कार से उतरा तो कान में आवाज़ आयी—लड़का तो चिड़ीमार है। मेरा श्रीगणेश ही गड़बड़ा गया। मन उदास हो गया। किसी तरह स्वयं को धीरज दिलाया—बस एक रात की देर है। कल लड़की मिल जाएगी तो तुम्हारी दुनिया बदल जाएगी।

धैर्य का फल मीठा होता है। तुम्हारी मां मिलीं और पहली मुस्कान में ही मेरा दिल जीत लिया। विधान तो यह है कि लड़कियां ससुराल की पहली रात में रोती हैं। पता नहीं तुम्हारी मां ने मुझमें क्या देखा कि हंसने लगीं। असल में जल्दी में दो रंग के जूते पहनकर मैं कमरे में आ गया था। शादी की पहली रात में ऐसी गलतियां हो

जाती हैं। ये सब मैं सच कह रहा हूँ। मगर मेरे पुत्र, अपनी मां से पूछताछ मत करना। बेकार का बवाल मचेगा।

बेटे का धैर्य अब अंतिम छोर पर था। उसे शायद क्रिकेट मैच देखने जाना था। बोला—आपने किसलिए मुझे बुलाया?

मैंने कहा—ऐसा है बेटा, इस मुहल्ले में कई तरह की लड़कियां निवास करती हैं। कुछ बाप के घर रहती हैं, कुछ बेबाप के घर रहती हैं। पता नहीं, कौन कब पैतरा बदल दे। जिसे तुम पक्की सड़क समझो वह दलदल निकल जाय।

— अरे, आप बेकार की चिंता में पड़े हैं। आपका वक्त गुजर गया। मुझे इन लड़कियों के नखरे-पैतरे सब मालूम हैं? आप आराम से घर में रहिए। भगवान के भजन में मन लगाइए। मेरे कारण आप पर कोई आंच नहीं आएगी।



वह तीर की तरह चला गया। मैंने अपने बेटे की मां से कहा—यह बात पक्की है कि हमारा बेटा समझदार है। कम पढ़ा लिखा है तो क्या पूरे मुहल्ले को चरा सकता है। पढ़ाई की डिग्री से कुछ नहीं होता। बिना भिक्षा के जब इतना बड़ा देश चल सकता है तो एक मुहल्ला क्यों नहीं चल सकता। मेरा बेटा किसी प्रेम-सेम में फेल भी हुआ तो आत्महत्या नहीं कर सकता। वह मेरा रक्तबीज है। पांच बार सूसाइड करने की कोशिश के बाद भी मैं आज जिंदा हूँ। मानता हूँ कि लड़कियों के पीछे जो लोग

जान गवां बैठते हैं वे अमर हो जाते हैं। वह अमरता मेरी किस्मत में नहीं लिखी थी। बस, डर केवल इतना है कि मेरे बेटे की बाँडी देख कर कोई लड़की उस पर लुढ़क न जाय? तब मजबूरन बिना दहेज की बहू को घर लाना पड़ेगा।

बेटा जब से जवान हुआ है मेरी श्रीमतीजी उसका पक्ष लेने लगी हैं। वह सात खून भी कर दे तो माफ करा देंगी और मेरी एक निगाह किसी महिला पर पड़ जाय तो मैं बलात्कारी घोषित कर दिया जाऊंगा। आजकल के अखबार पढ़कर बलात्कार के कानून को उन्होंने भली-भाँति समझ लिया है। नारी सशक्तिकरण की हवा में आप उनके किचन पर भी कोई कमेंट नहीं कर सकते। सुबह-सुबह अखबार में पढ़ा कि नेशनल हाई वे पर जिंस-टॉप पहने, चश्मा लगाए एक लड़की ने करवाले से लिफ्ट मांगी। कार में बैठते ही लड़की ने लाखों लूट लिए और बेहोश युवक को सड़क पर फेंक दिया। मैं लड़कियों की मर्दानगी पर अपना आश्चर्य प्रकट कर रहा था। भगवान न करे ऐसी मर्दान लड़की मेरे घर में आए। किंतु इस घटना में मेरी श्रीमतीजी को अबला जीवन की कहानी दिखाई पड़ रही थी। बोलीं—उस युवक ने ही लड़की को जबर्दस्ती कार में बैठा लिया होगा।

मैंने विचार किया, दुनिया में सारी लड़कियां एक समान नहीं हैं। मित्र ने लड़की देखने के लिए जब बुलाया है तो मुझे जाना ही चाहिए। घर से निकल रहा था तो धर्मपत्नी ने अपना धर्म निभाते हुए कहा—लड़की देखने जा रहे हो। अपनी खोपड़ी का ध्यान रखना। अब केश वैसे ही गिने-चुने रह गए हैं। मैंने अबोले जवाब दिया, खोपड़ी का केश से क्या वास्ता। केशविहीन साफ-सुथरी चमकती खोपड़ियों से ही यह देश चल रहा है। चिकनी खोपड़ियां हीरे से भी अधिक कीमती होती हैं।

हमारा लड़का-दल लड़कीवाले के घर पहुँचा। दल में हम चार थे। एक सदस्य के बारे में प्रसिद्ध था कि वे लड़कियों के पारखी हैं। प्रथम दृष्टि में जिस लड़की को रिजेक्ट कर दिया वह कभी सेलेक्ट नहीं हुई। नाश्ता-पानी जमकर हुआ। मिठाइयों की कई किस्में थीं। हमारे बीच जो शूगर पेसेंट थे वे इस सुअवसर को हाथ से निकलने

देना नहीं चाहते थे। जो होगा, देखा जाएगा की निरापद मुद्रा में वे पांच गुलाब जामुन और तीन मोहन भोग उदरस्थ कर गए। नाश्ता डकार के लेवल तक जा पहुंचा। लड़की के पिता को इशारा किया गया कि लड़की लाइए।

शर्म-संकोच की मूर्ति लड़की सामने आकर खड़ी हो गई। मित्र मन ही मन अपनी बहू की कसौटी पर उसे कसने लगे। लड़की के पीछे तीन प्रौढ़ महिलाएं खड़ी थीं। उन सभी की साड़ियां बताती थीं कि अभी-अभी पहनी गई हैं। महिलाओं की आंखों में जो भाव बैठा था उसका मुखरित अर्थ था—माल देखो और अपनी हां-ना जल्दी बताओ। लड़की के पिता चुनाव टिकटार्थी जैसी भंगिमा में अतिशय विनम्र बने करुणा पूरित दृष्टि से हमारी ओर एकटक देख रहे थे।

— बेटी, तुम्हारा नाम क्या है?

हमारी कमेटी के एक मेंबर ने पहला सवाल किया।

— सुरभि - लड़की बोली।

— बड़ा सुंदर नाम है। कितना पढ़ी हो?

— एम.ए।

— पास किया है कि पढ़ रही हो?

इस बहके सवाल पर लड़की के पिता ने हस्तक्षेप किया—पास तो दो साल पहले ही कर चुकी होती। मगर मैंने ही रोक दिया।

— क्यों?

— आजकल की लड़कियों को पढ़ाई में धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए। इससे उम्र छिपी रहती है? लड़का खोजने में कई साल लग जाते हैं। आजकल के लड़के कॉलेज गोइंग लड़कियों को ज्यादा पसंद करने लगे हैं।

पिता ने आगे कहा—अगर आप पास चाहते हैं तो यह मेरे लिए कोई कठिन काम नहीं है। कल ही यूनिवर्सिटी आफिस जाऊंगा। हफ्ते भर में डिग्री घर आ जाएगी।

— क्या? मैं चकित हुआ।

— हां, थोड़ा जुगाड़-वुगाड़ लगाना पड़ेगा। मिनिस्ट्रों को पी.एच.डी. की डिग्री वैसे ही मिल जाती है।

हम लोग हंसने लगे। मगर लड़की नहीं हंसी।

एक अन्य सदस्य ने पूछा—सुरभि! हम

तुम्हें देखने आए हैं, तुम्हें पता होगा।

— जी, पिछले साल दूसरे लोग आए थे।

— अच्छा। तो शादी तब क्यों तय नहीं हुई?

— लड़का कुछ बहक गया था।—पिता बोला।

— जी नहीं - लड़की ने खंडन किया—वह मेरा प्रेमी था। आज भी मेरे इंतजार में बैठा है। मगर पिताजी को वह पसंद नहीं है।

— तो हमारे लड़के को तुम पसंद करती हो? बायडाटा तो देखा होगा।

— लेकिन बायडाटा से शादी तो नहीं होगी।—लड़की बोली।

— अरे तुम तो बहुत बोलड हो बेटी। देश को ऐसी ही बोलड लड़कियां चाहिए। तुम्हें कैसा पति चाहिए, हमें खुलकर बता दो।

— जैसा चाहिए, वैसा आपके पास नहीं है।—लड़की के उत्तर पर सभी सन्न रह गए।

मैंने सोचा कमेटी का महत्वपूर्ण मेंबर होकर भी मैंने कुछ खास नहीं पूछा। मैंने पूछ लिया—सुरभि जी, हमें तो आप पसंद हैं।

— लेकिन मुझे तो थोड़ा समय चाहिए।—सुरभि बोली।

— कितना समय चाहती हैं?

— तीन दिन काफी हैं।

— ठीक है, चौथे दिन पूछ लेंगे।

हम लोग चलने के लिए उठे। हमने लड़की के बाप को ऐसे देखा जैसे चार्टर एकाउंटेंट ने आडिट पूरी कर ली हो और संकेत दिया हो कि रिपोर्ट सही भेज देंगे।

एक बार फिर चाय-पानी चला। लड़की की बोलडनेस बाबा रामदेव की भ्रामरी की तरह सभी के कानों में गूंज रही थी। मित्र सास-बहू के भावी एडजस्टमेंट की चिंता में डूबे हुए थे।

अपनी हरी झंडी दिखा कर हम लोग चले आए। लड़की तीसरे दिन की रात अपने प्रेमी के साथ भाग गई। मुझे भारी अफसोस हुआ, उस प्रेम के धुंधलके में हम लड़की देखने गए ही क्यों!

आर-7, वाणी विहार, उत्तम नगर
नई दिल्ली-110059

. . . पृष्ठ 83 का शेष

की डाली पर बैठा हूं उसे ही कालिदास की तरह काट तो नहीं सकता न। चाहे व्यंजन में मिर्च, मसाला अथवा रामरस हो या न हो पर विचार-गोष्ठी के बारे में सदा कि भांति रिपोर्ट यही छपेगा कि माननीय ज्ञानवान जी की अध्यक्षता में संपन्न एक ऐतिहासिक विचार-गोष्ठी में देश के मूर्धन्य एवं वरेण्य विद्वानों ने सभी लेखकों को एक मंच पर आने का स्वागत किया। सभी का कहना था कि साहित्य को जनमानस के काफी निकट लाने में सारे साहित्यकारों को सार्थक प्रयास करना चाहिए। साथ ही सभी को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि नवोदितों को ज्यादा से ज्यादा प्रश्रय दिया जाए ताकि आनेवाले दिनों में साहित्य का भला हो।

जी हां, अब तक साहित्य का भला नहीं हुआ है। कोई भला करने वाला पैदा ही नहीं हुआ। हां, अब कुकुरमुत्ता के मोल को कितने लोग समझ रहे हैं। यह वही कुकुरमुत्ता है जनाब, जिस पर नर निराला नाहर ने सबसे पहले काव्य में केवल स्थान ही नहीं दिया बल्कि कुकुरमुत्ता को अभयदान देकर गुलाब से मुकाबला कराया। आज यह कुकुरमुत्ता 'मशरूम' के नाम से दस अथवा पंद्रह रुपया ज्यादा ही है। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूं कि कब किसका भाग्य चमक जाए और जिसे हम फटीचर कहते हैं, वही ज्ञानपीठ हथिया ले, कहा नहीं जा सकता। यहां सब कुछ संभव है। अब वो जमाना नहीं रहा कि आप भारत रत्न पाकर ही लब्धप्रतिष्ठ होंगे। बल्कि सच यह है कि कई महान गणमान्य लोग भारत रत्न अलंकरण से बचना चाहते हैं। पता नहीं साहित्य के क्षेत्र में वह दिन कब आएगा जब हर विशिष्ट एवं योग्य साहित्यकार ज्ञानपीठ, भारत-भारती, सरस्वती सम्मान आदि से बचकर निकल जाना बेहतर समझेगा क्योंकि जनमानस में हर बार यही संदेश जाता है कि ऐसे पुरस्कार दिए नहीं जाते बल्कि ले लिए जाते हैं। आगे फिर कभी।

मुख्य कार्य प्रबंधक/खड़गपुर कारखाना
(राजभाषा अनुभाग), दक्षिण पूर्व रेलवे
पोस्ट-खड़गपुर, जिला-मिदनापुर पश्चिम-721301 (प.ब.)

मधुसूदन पाटिल

यहां प्यारना मना है

यहां प्यारना मना है। प्यारोगे तो मरोगे। इस देश का यारो क्या कहना। ये हैं नंबर वन गहना। यहां चोरना चलेगा, पर दिल का नहीं। यहां डाका चलेगा, लेकिन दिल पर नहीं। महंगा कर्जाऊ दहेज व्यापार चलेगा, लेकिन बिना दहेज, सहज प्रेम विवाह नहीं। यहां जर खरीद जोरू चलेगी, जमीन के लिए बाप-बेटे का कल्ल चलेगा, पर ये प्यार-व्यार के लिए, नो एण्ट्री। ढाई आखर का फार्मूला यहां फेल है। नौजवानों को सरकार चुनने की आजादी है, पर जीवन साथी चुनने की नहीं। भ्रष्टाचार यहां राजनीतिक शिष्टाचार कहलाता है। सियासत में दागी अच्छे हैं पर उनकी रियासत में प्यार के बागी बहुत बुरे हैं। नेताओं का दल बदल बुरा नहीं, पर छोरे-छोरियों की दिल की अदला-बदली बहुत बुरी है। कोई दिलवाला दुल्हनिया ले गया तो फिर देखो कितने अमरीशपुरी हुंकार भरने लगते हैं।

प्यारना है तो डरना सीखो। खापों की खप से खौफ खाना सीखो। यहां प्रेमी को गले लगाना है, तो पहले मौत को गले लगाने को तैयार रहो। यहां बड़ा वही है जो कानून तोड़ता है, मिलजुल कर तोड़ता है। खापिकी हिंसा हिंसा न भवति। यहां की प्रेम गली अति सांकरि है, जो घुस गया सो घुट-घुटकर मर गया। क्या कबीर ने नहीं समझाया था; सीस उतारे भुई धरे, सो पैसे घर माँहि। तब खुद सीसी उतारना होता था, अब यह ठेका खप पाने वालों ने ले रखा है। अब तो दो खापन के बीच में साबुत बचा न कोय। कैसे नादान हैं ये। मीराबाई ने भी चेताया था; प्रीत किए दुख होय। पर छोरियां हैं कि प्रेम दीवानी हुई जा रही हैं। यहां राधाकिशन की रासलीला सड़क पर सजाई जा सकती है। नौजवानों को प्रेमलीला रचानी है तो प्रदेश ही नहीं दुनिया छोड़नी पड़ेगी। यहां प्रेमीजनों की हालत अनारकली जैसी हो गई है। खापी उन्हें जीने नहीं देते, खपती उन्हें मरने नहीं

देते। याद करो वो गाना और वो जमाना। जब अनारकली ने गाया था, 'प्यार किया तो डरना क्या?' मुगलेआजम ने उसे दीवार में जिंदा चिनवा दिया था। लेकिन मुगलेआजम भी सचमुच के ग्रेट थे। उन्होंने दीवार के नीचे सुरंग बनवाकर उसे देश निकाला दे दिया था। कम से कम उसकी जान तो बख्श दी थी। यहां खापे-आजम छोरा-छोरी को इकट्ठा ही स्वर्ग भेज देते हैं। ये उनके मां-बाप को भी नहीं माफ करते। उन्हें भी गांव निकाला दे देते हैं। ये महाभोज के महापक्षी हैं।

सूफी जिस इश्क को इबादत कहते हैं, खापी उसे बगावत मानते हैं। लव को आजकल फिल्मवाले कमबख्त और कमीना कहते हैं। सूफी शायर मलिक मोहम्मद ने कहा था, 'प्रेम छाड़ि नहीं लोन किछु' उनके लिए प्रेम से बढ़कर संसार में कोई सौंदर्य ही नहीं था। आज खापियों को प्रेमियों की हत्या से बढ़कर इज्जत की बात नजर नहीं आती।

तो मेरे देश के प्यारो, न देखो फिल्मों। न सुनो गाने। प्यार के बोल भी मत बोलो। क्या तुमने नहीं पढ़ा कि इश्क ने गालिब को निकम्मा कर दिया था। काम के आदमी बनना है, तो पंगा मत ले यार। नहीं तो तुम्हारी मां-बाप की हड्डियां गंगा में बहाने वाला नहीं मिलेगा। बहुत हो चुकी प्यार की नाटकबाजी। अब प्यार में कुर्बानी दी नहीं जाती, ली जाती है। अब इतिहास को मत भुलाओ। उस मध्ययुगीन कबीलाई रिवाजों को याद करो जब बलि प्रथा जारी थी। ये नैतिकता के पहरेदार सिर्फ प्यार पर पहरा देते हैं। खापियों की एकमात्र ड्यूटी है प्रेमीजनों की चौकीदारी। यहां प्यार के अलावा बाकी सारे गुनाह माफ हैं। जिनके मुखारविंद बयानों से ओवरफ्लो होते रहते थे उनके ढक्कन अब बंद हो गए हैं। उन्होंने मुंह में दही जमा लिया है। उन्हें और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा। उन्होंने संविधान की रक्षा

राजी सेठ

दुकानदार

दुकानदारों को दुख होने लगा है कि कुछ लोग बिस्कुट के पैकेटों तक को तारीख देखकर खरीदने-खाने लगे हैं।

दुकानदारों को दुख है कि उन्हें पहले से पता क्यों नहीं था कि ग्राहक इतने चालाक हो गए हैं।

दुकानदारों को सोच होती है कि कहीं ऐसा न हो कि इन कुछ लोगों की बात ज्यादातर लोगों तक पहुंच जाए।

दुकानदारों को चिंता होती है कि कब सारे के सारे लोग इन थोड़े से लोगों में बदल जाएंगे और उन्हें पता भी नहीं लग पाएगा।

दुकानदारों को आशंका होती है कि इन सबकी बिनबिकी चीजों को कौन खायेगा?

दुकानदारों की इच्छा होती है कि वे ऐसे लोगों को धुआंधार गालियां दें पर उन्हें उनके सामने लगातार हंसमुख बने रहना पड़ता है।

दुकानदारों की आकांक्षा होती है कि सुनामी जैसा कुछ घट जाए और वे थोक के थोक पैकेट बोरी में भरकर भेज सकें वहां-तारीख की ऐसी तैसी वाले इलाके में।

दुकानदारों को खुशी होती है कि हल निकल आया है। अब वे कुछ समय तक आराम से सो सेकेंगे— देश में आपदाओं की अगली फसल आने तक।

एम-16, साकेत, नई दिल्ली-110017

की कसम खाई है। अब सामाजिक समस्याओं पर मुंह न खोलने की कसम भी खाई है। वे वोटों के सौदागर हैं। वे सिर्फ नोटों की मालाएं पहनते हैं। वरमाला तुम्हारी समस्या है। प्यारो! संभालो अपने अरमान, नहीं तो झेलने को तैयार हो जाओ खापिक फरमान। और नहीं तो कम से कम मोमिन की ही सुन लो 'क्या क्या न किया इश्क में, क्या क्या न करेंगे।' अल्लाह इन्हें माफ करे, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

1041, अर्बन एस्टेट-2, हिसार-125005

कुंवर प्रेमिल

मुफ्त का कुत्ता मिल जाए

और उन्हें कुत्ता मिल गया।

उन्हें यानि मेरे पड़ोसी जी को। हरा न लगा न फिटकरी, रंग चोखा। मुफ्त में कुत्ते का मिल जाना उन्हें कारून के खजाने से कम नहीं था। हुआ यूं कि अलस्सुबह मैं घूमने निकला तो खीसें निपोरते पड़ोसी अपने दरवाजे पर खड़े मिलें बोले, 'भैया, न हो तो आज हमऊं चलत हैं, आपके साथ घूम-घाम आहें। वो क्या है कि हमें धुरकौआ (घूरना) चलत है सो श्रीमती जी की नींद में खलल पड़ता है।'

'वाही से उनकी नींद खराब हो जाती है। सो आप कहें तो आपके साथ तमऊं सैर-सपाटा कर लेंगे। ससुर हिंया इस दरवाजे पर खड़े-खड़े इस ससुरी चीन की दीवाल (बाऊंड्रीवाल) को खड़े-खड़े कब तक निहारते रहेंगे।'

मैंने कहा, 'अजी, मुझे क्या परेशानी होगी। चलिये, चले चलिये।'

'वाही तो भाई साब, पर क्या भाभीजी नहीं जाती हैं, घूमने क्या।'

मैं बोला, 'उन्हें भी धुरकौआ चलता है। सो मैं सुबह टहलने में ही अपनी भलाई समझता हूं।'

पड़ोसी बोला, 'यह भी खूब कहिन। हम दोनों की एक ही कहानी निकली। एक ही मर्ज निकला। अब तो रोज की जोड़ी बन जायेगी हमारी। जो है सो....'

फिर क्या था? हम दोनों ही जी भरकर घूमे। पड़ोसी को इस कदर कुत्ते पसंद होंगे यह तो मुझे उस दिन पता चला। झबरे, मोटे, मरियल, पुंचकटे, थुलथुल, बचकानी, सभी प्रकार के कुत्तों को देख-देख कर वह गदगद हो जाते। अलबत्ता, सड़क छाप-आवारा कुत्तों को देख-देख खूब गरियाते।

आखिर सैर-सपाटा खत्म हुआ तो घर की सुधि आई। हमारे पीछे-पीछे न जाने

कब से एक कुत्ता 'कैटवाक' करता चल रहा था। कभी कुत्ता मेरे पीछे चलता कभी पड़ोसी के।

'अजीब समाजवादी किस्म का कुत्ता है, दोनों को खुश किये है।'

'क्या बोले भाई साहब जो है सो।'



मेरी बात सुनकर पड़ोसी बोल उठे।

'कुछ नहीं यार, कुत्ते की किस्म बता रहा था। मेरी हंस छूट पड़ी।

'जर्मन सेफर्ड किस्म का दिखाई देता है, जो है सो. . .' पड़ोसी बोल पड़े।

इस बीच हमारा घर आ गया था। अब कुत्ते की सोचने की बारी थी। किसके साथ चले और किस कह दे बाय. . .टाटा। तब तक पड़ोसन ने मुस्कुराते हुये गेट खोल दिया। पड़ोसी और कुत्ता, पड़ोसी के घर में

प्रवेश कर गये।

हमारी श्रीमतीजी हमारे इस्तकबाल के लिये दरवाजे पर खड़ी मिलीं। मुफ्त के कुत्ते को पड़ोसन के घर प्रवेश करते देख उनके मुंह का जायका खराब हो गया। वह मुझ पर गुराहीं, 'उधर खड़े होकर खीसें निपोरने की क्या जरूरत थी? तुरंत चले आते तो कुत्ता इस घर में नहीं आ जाता। अच्छा-भला, पला-पलाया कुत्ता पड़ोसी को मुफ्त में नहीं मिल गया क्या?'

मैंने श्रीमतीजी के तेवर देखकर कहा, 'माफ करना, मैं दो-दो जानवर एक साथ नहीं रख सकता। तुम मुझ पर गुराहीं, वह तुम पर गुराता तो मजा किरकिरा नहीं हो जाता।'

श्रीमतीजी का मूड अस्थिर था। बड़ी देर तक पड़ोसी के बच्चों को कुत्ते के साथ खेलते देखे, जलती-भुनती रहीं। खुन्नस में उस दिन उन्होंने चाय-नाश्ते की व्यवस्था नहीं की। भूखे पेट ही दफ्तर चला गया। आदमी से ज्यादा कुत्ते की अहमियत कितनी है, यह मुझे उस दिन ही पता चली। पड़ोसी के घर में हलचल मची रहती। कुत्ता घर के बाहर-भीतर दौड़ लगाता फिरता। हमारे बच्चे वहां जाने से कतराने लगे। दूर से ही कुत्ते को ललचायी नजरों से देखने लगे।

मजा तो तब आता, जब कम पढ़ी-लिखी पड़ोसन कुत्ते को हिंदी में निर्देश देती, 'इधर आ, उधर मत जा।'

बच्चे पढ़े-लिखे थे, 'गो-गो, कम बैक' कह रहे थे।

बेचारा कुत्ता हिंदी और अंग्रेजी निर्देशों के बीच परेशान था। जैसे-तैसे झेल रहा था।

एक दिन श्रीमती जी कोप भवन से बाहर निकलीं। रानी कैकयी के अंदाज में बोलीं, 'या तो कुत्ता या चली मैं मायके।' एक जेवर तो कभी ला नहीं सके, कम से

प्रदीप शशांक

बगुला

कुल्युगी चूहा अपने काले कारनामों से बहुत बदनाम हो चुका था। वह सफेद पोश खरगोश की ख्याति से मन ही मन जलता था। उसके मन में खरगोश जैसा दिखने की भावना जोर मारने लगी थी। इसी भावना को फलीभूत करने के लिए वह खरगोश के आगे-पीछे घूमने लगा, तथा उसके जैसा बनने का उपाय पूछने लगा।

कुछ दिन तक खरगोश ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और उसे झिड़क दिया। चूहा भी कच्चा खिलाड़ी नहीं था, आखिर उसने साम-दाम-दण्ड-भेद का सहारा लेकर, खरगोश को राजी कर ही लिया। खरगोश ने उसे अपने गुप्त अड्डे पर गुड़ की चासनी का स्नान कराया एवं उसे रूई की गोदाम में छोड़ दिया। कुछ देर बाद चूहा जब बाहर निकला तो उसके पूरे शरीर में रूई चिपकी होने के कारण वह भी खरगोश जैसा दिखने लगा।

उधर खरगोश ने अपनी ख्याति का फायदा उठाते हुए पूरे जंगल में प्रचारित करवा दिया कि बिल्ली से मुठभेड़ में बदमाश चूहा मारा जा चुका है। चूहा खरगोश का धर्म निभाने लगा।

1048, मंजूपथ, दीक्षितपुरा
जबलपुर (म.प्र.)-482002

परमानंद प्राप्त हो जाता है। कुत्ता घर में रहता है, इसलिये उसका स्वस्थ रहना परमावश्यक है। पूरे घर में कुत्ता राज होता है। कुत्ता बेडरूम में भी बिना खांस-खकार के प्रवेश पा जाता है। तभी न वह आदमियों के जैसे किसी भी मौसम में पिल्ले पैदा कर सकता है।

मैं अब रोज बिला नागा घूमता हूँ। शायद कोई मुफ्त का कुत्ता मुझे भी मिल जाये और इस तरह मेरी पत्नी को खुश करने का एक सुअवसर मुझे भी मिल जाये।

एम.आई.जी.-8, विजयनगर
जबलपुर-2 (म.प्र.)

कम एक कुत्ता ही ला देते। मन बहला रहता। कितना वफादार होता है कुत्ता।

‘यह भी खूब कही तुमने। मैं जो तुम्हें इत्ता बहलाता हूँ, वह कुछ ज्यादा नहीं। कुत्ते की जरूरत फिर भी पड़ गयी। महारानी जी, कुत्ता नहीं रोटी वफादार होती है। तुम मुझे रोटी खिलाती हो, इसलिये मैं तुम्हारा वफादार पति हुआ। एक साथ दो वफादारी कैसे रह सकते हैं भला। आई मीन, एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं भला। मेरे रहते तुम्हें कुत्ते की क्या जरूरत है भाई।’

खैर साहेब, बात आई गई हो गयी।

एक दिन कुत्ते के लगातार भोंकने से मेरा बी.पी. बढ़ गया। पड़ौसी को दम देने के ख्याल से मैं उधर गया तो वहां का नजारा देख ठिठक कर रह गया। एक वृद्ध सज्जन सोफे पर अपनी टांगें समेटे बैठे थे। कुत्ता उन्हें देखकर लगातार भोंके जा रहा था। पड़ौसी परिवार का कहीं दूर-दूर तक अता-पता नहीं था।

घर का ताला बंद देखकर वृद्ध अनजाने में कुत्ते के कमरे में घुसते चले गये। ऊपर से गुस्ताखी यह कि वह कुत्ते से बिना पूछे, कुत्ते के ही सोफे पर बैठ गये। कुत्ता उन्हें कैसे माफ कर देता भला। मैंने कुत्ते को अंग्रेजी में डांटा तो तुरंत मान गया। कुत्ते का अंग्रेजी ज्ञान देखकर मैं दंग रह गया। इधर हमारे बच्चे ट्यूशन लगाने के बाद भी बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी में पासिंग मार्क्स ला रहे थे।

खैर ... वृद्ध महाशय की जान में जान आई। कुत्ता चुप हो गया था, पर बाद में निपटूंगा वाले अंदाज में उन्हें घूर रहा था।

मुझे उसी सोफे पर बैठाते हुए वृद्ध महाशय बोले, ‘यह बला कब आई?’

मैं बोला, ‘अभी कुछ दिन पहले ही। बिना बुलाये मेहमान सी आ टपकी।’

वृद्ध बोले, ‘एक नजीर सुनें।

कुत्ता पाले सो कुत्ता

बहन के घर में भाई कुत्ता

ससुर के घर में जमाई कुत्ता

कुत्तों का होगा वह सरदार

जो रहे बेटी के द्वार।

यानि कुत्ता बड़ा निकृष्ट जीव है। जिसने उसे रखा से स्वर्ग तो क्या ठीक से नरक में भी जगह नहीं मिलती।’

कुत्ता पुराण सुनकर मैं फिर

सही-सलामत अपने घर आ गया। अपने घर आकर मैंने अपनी पत्नी को वृद्ध महाशय के अमृत वचन कह सुनाये। साथ ही आश्वस्त किया कि वह पड़ौसन से जलना-भुनना छोड़ दे। वृद्ध महाशय के रहते अब कुत्ता वहां टिकेगा कैसे?

दूसरे दिन पत्नी ने जो खबर सुनाई, मैं हक्का-बक्का रह गया। बहू ने ससुर की टिकिट काट दी। बेचारे वृद्ध दवा कराने गांव से आये थे, बिना दवा कराये ही बैरंग वापिस लौट गये।

दुनिया में न जाने कितने प्रकार के प्रेमी होंगे। सांप-सियार प्रेमी, बिल्ला-बिल्ली प्रेमी, शेर-भालू प्रेमी, हाथी-हथिनी, गेंडा-गेंडी, छछूंदर-गिलहरी प्रेमी आदि-आदि। परंतु सबों से ऊपर हैं कुत्ता-कुतिया प्रेमी। तभी न पांडवों के ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर का कुत्ता प्रेम उन्हें हिमालय की ऊंचाइयों तक ले आया था। वह अपने प्रिय कुत्ते के साथ सशरीर स्वर्ग चले गये थे।

कुत्ता है ही ऐसा जानवर जो लोगों को स्वर्ग तक सीधे पहुंचा देता है। काटे तो चौदह इंजेक्शन से कम में मामला हल नहीं होता। खुदा न खास्ता इंजेक्शन न मिले तो सीधे स्वर्ग पहुंचने में फिर कोई देर नहीं लगती। उसमें बला की दृढ़ता है। स्थायित्व है। दसों साल उसकी पूंछ पुंगेरी में डाल कर रखो, सीधी कभी न होगी। जब भी निकलेगी, टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी।

कलयुग में कुत्ता प्रेम ज्यादा पनप रहा है। हर घर में एक कुत्ता पल रहा है। कुत्ता पालन को बढ़ावा देने के लिए एक टी.वी. चैनल बाकायदा जी-जान से लगा हुआ है। कुत्ता एडाप्ट करने के लिये विज्ञापन पर विज्ञापन दे रहा है। आदमी का बच्चा एडाप्ट करने में दुनियां भर की झंझट है। लेकिन कुत्ते का पिल्ला लाओ, हंसी-खुशी जीवन बिताओ। घरों में भांति-भांति के कुत्ते पाले जा रहे हैं। सोने के लिये सोफे मुहैया कराये जा रहे हैं। अपने बच्चे को दूध मिले न मिले पर कुत्ते को हड्डी जरूर चाहिये। जिन घरों में कभी मांस नहीं पका, वहीं कुत्ते के लिये मांस पकाया जा रहा है। कुत्ता मांस खा रहा है, उसे देखकर मालिक तृप्त हो रहा है।

कुत्ते के बीमार होने पर डाक्टर हैं, अस्पताल हैं। कुत्ता गोलियां, कैप्सूल खाकर रोग से मुक्ति पाता है तो मालिक को

श्रवण कुमार उर्मलिया

शिष्टाचार का कलंक

भ्रष्टाचार ने कहा— ‘मित्र, शिष्टाचार! तुम तो जानते ही हो कि मेरे ऊपर कलंक ही कलंक है। इस मामले में मैं बहुत ही सौभाग्यशाली हूँ, दोस्त! क्योंकि मैं इस देश में रह रहा हूँ। पर क्या तुम्हारे नाम पर भी कुछ कलंक हैं इस देश में? यदि हैं, तो मुझे उनके विषय में बताकर मेरी जिज्ञासा को शांत करो।’

शिष्टाचार ने मुस्कराते हुए कहा— ‘क्या कह रहे हो, मित्र! मेरे नाम पर तो यहां कलंकों की भरमार है। मेरी आड़ लेकर न जाने कितने कलंक यहां बेशर्मी से जी रहे हैं। तुम्हारी उत्सुकता को देखते हुए ही एक कलंक की कथा सुनाता हूँ। तुम ध्यान लगाकर सुनो ताकि तुम्हें पुण्यलाभ हो सके।’

शिष्टाचार ने अपने कलंक की कथा सुनानी शुरू की—

‘मित्र भ्रष्टाचार, विश्व की एक संस्था है जिसका नाम है संयुक्त राष्ट्र संघ। इसके भूतपूर्व महासचिव स्वर्गीय डैग शोल्ड बहुत अकेले रहा करते थे और अपने एकाकीपन से प्रेरणा लेकर उन्होंने कहीं लिखा था— ‘प्रार्थना करो कि तुम्हारा अकेलापन तुम्हें प्रेरित करे ताकि तुम कोई ऐसा कारण तलाश कर सको जिसके लिए जिया जा सके; और वह कारण पर्याप्त महान भी हो ताकि उसके लिए मरा भी जा सके।’

इंसान चूँकि बेहद अकेला होता है, इसलिए जीने के लिए वह तरह-तरह के कारण तलाश लेता है। कोई चोरी का इज्जतदार पेशा अपना लेता है, कोई राहजनी का शालीन धंधा करने लगता है। बेईमानी, उठाईगीरी, स्मगलिंग इत्यादि पवित्र धंधे भी इंसान के अकेलेपन की उपज हैं। एक धनी-मानी व्यक्ति अपने अकेले से इतने ऊब गए कि आजकल सार्वजनिक स्थानों र भीख मांगते हैं।

पर मैं जिस कलंक की कथा कह रहा हूँ वह न चोर है न उठाईगीर। बल्कि

इसने सहारा लिया है पैसों का। पैसों के लिए जीता है और पैसों के लिए मरता है। वह हमेशा फायदे-नुकसान के समीकरणों में उलझा रहता है।

यह सिर्फ इसलिए जिंदा है क्योंकि इसे कोई नुकसान नहीं हो रहा है। नुकसान की बात सोचकर ही इसकी आत्मा चीत्कार कर उठती है।

जिसे दुनिया कंजूसी कहती है, उसे यह अपना श्रृंगार समझता है। इसके लाभ ‘मक्खीचूस’ का विशेषण जुड़ता है तो यह अपने आप को गौरवान्वित महसूस करता है।

इसकी बीवी पाककला में निपुण है। तरह-तरह के व्यंजन बना सकती है। पर यह घर में खाना खाता है तो इसका हाजमा खराब हो जाता है। कोई भी चीज पचती ही नहीं। लेकिन मीटिंगों और सेमिनारों में, जहां मुफ्त का खाना मिलता है, इसकी पाचन-क्रिया सुचारु रूप से चलने लगती है। वहां यह जमकर खाता है। लोग संदेह करते हैं कि इसके पेट में भी गाय-भैंसों की तरह जुगाली करने वाला यंत्र फिट है।

घर आकर यह निढाल हो जाता है और कराहने लगता है। बीवी से कहता है कि उसका पेट बंध गया है— उसे कन्स्टिपेशन हो गया है। बीवी उसे कायमचूर्ण देना चाहती है तो यह कहता है— ‘इससे काम नहीं चलेगा। सामने वाले पड़ोसी से जरा पुदीनहरा मांग लाओ।’

कन्स्टिपेशन (कोष्ठबद्धता) तो इसके लिए वरदान है। यह मन-ही-मन बहुत खुश होता है। चलो, शरीर से कुछ बाहर नहीं निकलेगा, कोई नुकसान नहीं होगा।

जिस दिन इसे खुलकर मोशन (पेट साफ) हो जाता है, यह उदास हो जाता है। शरीर से कुछ नहीं निकल गया। बड़ा नुकसान हो गया।

दफ्तर में कहीं भी इसे समाचार पत्र दिखेगा, यह घर ले आता है। बेशर्मी से

दोस्तों से अखबार मांग लेता है और लौटाता नहीं। गलती से अखबारवाले द्वारा फेंका गया पड़ोसी का अखबार यदि इसके घर पर आ गिरे, तो यह उसे भी पचा जाता है। किसी के घर यदि पति-पत्नी गए हैं और वहां कोई पवित्र इसे दिख जाए, तो पत्नी से कहेगा— लिए चलो पत्रिका। पढ़कर लौटा देंगे।’ शिष्टाचारवश यह इतना भी पूछने की जरूरत नहीं समझता है कि पत्रिका के मालिक ने उसे पढ़ा है या नहीं?

मुफ्त की रद्दी कबाड़ी को बेचने के पहले कबाड़ी से झिंकझिंक करेगा, मोलभाव करेगा और बाजारभाव से पांच पैसे ज्यादा प्रतिकिलो का सौदा तय कर लेगा। यह अपने व्यवहार से कबाड़ी को एहसास करा देगा कि वह अपने से बड़े कबाड़ी से बातें कर रहा है। एक बार एक कबाड़ी ने इससे प्रभावित होकर का था— ‘साहबजी, आप भी इस धंधे में क्यों नहीं चले आते? आपमें तो कबाड़ी की जन्मजात प्रतिभा है।’

वह कबाड़ी क्या जाने कि हमारे समाज में कई वर्ग के कबाड़ी होते हैं। कबाड़ी वर्ग के कबाड़ी, मध्यम श्रेणी के कबाड़ी, उच्च श्रेणी के कबाड़ी, अभिजात वर्ग के कबाड़ी इत्यादि। कबाड़ी तो यह है ही। यह सुविधानुसार हरेक श्रेणी में भ्रमण करता रहता है। साढ़े चार रुपए किलो पेपर की रद्दी बेचते समय वह निम्नस्तर पर रहता है। साठ रुपये किलो एलीम्यूनियम का कबाड़ बेचते समय उच्चस्तर पर आ जाता है।

किराने की दुकान से यह सामान खरीदेगा तो दुकानदार से कहेगा— ‘जरा, पांचों आइटम अलग-अलग पॉलिथीन के पैक में देना।’

दुकानदार प्रतिवाद करेगा, तो यह लड़ पड़ेगा— ‘यार, सामान फ्री में तो दे नहीं रहे हो। और हर सामान में पॉलिथीन बैग का दाम तो लगाते ही होंगे?’

घर आकर अपनी पत्नी को अपनी उपलब्धि बताता है- 'मैंने एक्स्ट्रा बैग ले लिये थे। सब जमा करते रहना। कबाड़ी को बेचेंगे।'

पत्नी अपने पति का गर्व करती हुई अपने मां-बाप को कोसने लगती है कि उन्होंने उसे किस कबाड़ी के हाथों में दे दिया।

यह अपने महीने भर के खर्चों पर कड़ी नज़र रखता है और समय-समय पर उनका मूल्यांकन करता रहता है।

कचरेवाली घर में कचरा ले जाने का महीनेभर का तीस रुपये लेती है। यह हिसाब लगाता है। तीस रुपये अर्थात् एक रुपये प्रतिदिन। कचरा अर्थात् सब्जियों की छीलन, अंडों के छिलके, चाय की पत्ती इत्यादि। कुल मिलाकर एकाध किलो तो होता होगा ही। यदि बेचा जाए तो फ्री में भी न बिके। फ्री का कचरा और इसे ले जाने के लिए एक रुपया प्रतिदिन का खर्च?

अचानक यह कचरेवाली का अस्पृश्य समझने लगा। बीवी से बोला- 'भई, हत अपने घर का कचरा कचरेवाली को नहीं छूने देंगे। मैं खुद कचरा फेंक आया करूंगा।'

यह बड़े सवरे घर का कचरा लेकर निकल पड़ता है। और किसी दूसरे के घर के सामने फेंककर वापस आ जाता है। इसे बहुत आत्मसंतोष होता है। अपने (कु) कृत्य से यह तीस रुपये महीने की बचत कर रहा है। साथ ही शिष्टाचार का कचरा कर है।

यह कचरेवाली पर चिढ़ता भी है क्योंकि वह आठ-दस घरों का कचरा फेंककर ढाई-तीन सौ रुपये महीना कसा लेती है। यह गहराई से सोचता है कि यह काम तो उसकी बीवी भी कर सकती है। फिर यह उदास हो जाता है। बीवी कचरेवाली की तरह सुंदर नहीं है। सुंदर कचरेवाली को ही कचरा मिलता है। यह मन-ही-मन अपने सास-ससुर को कोसने लगता है कि उन्होंने कैसा अमावस का टुकड़ा उसके पल्ले बांध दिया।

यह हमेशा हिसाब लगाता रहता है कि इसे किसी चीज में घाटा तो नहीं हो रहा। घाटे के भय से यह हमेशा शंकित रहता है। कहीं चला जा रहा है और एकदम रुक जाएगा। अपनी जेब से पर्स निकालकर रुपये गिनेगा। फिर चिंतित होकर वापस लौट

पड़ेगा; जमीन को देखते हुए, जैसे कुछ ढूँढ़ रहा हो। फिर रुककर मुस्कराएगा और मन ही मन बड़बड़ाएगा- कल मैंने दो रुपये के पचास ग्राम टमाटर खरीदे थे। कितना बुद्धू हूँ मैं भी। मैंने समझा कि दो रुपये गुम गए।

घर में इसने दो सौ रुपये महीना पर महरी लगा रखी थी। इसने बड़ी गंभीरता से हिसाब लगाया। महीने के दो सौ, साल भर के चौबीस सौ, और दस साल के चौबीस हजार। महरी झाड़ू-पोंछा करती थी, बर्तन धोती थी और कपड़े साफ करती थी। इसने मन-ही-मन सोचा बीवी कचरा नहीं फेंक सकती पर कपड़े तो धो ही सकती है। इससे सौ रुपये महीने बचेंगे। अर्थात् साल में बारह सौ और दस साल में बारह हजार।

इसने पत्नी को स्नेहपूर्वक समझाया- 'सौ रुपये की यह बचत तुम अपने ब्यूटीपार्लर के खर्चों में इस्तेमाल कर सकती हो। सोचो भला, साल के बारह सौ रुपये तुम्हें कितना सौंदर्य दे सकते हैं।'

अमावस-मुखी पत्नी मान गई। सौ रुपये महीने बचने लगे। अब बचे झाड़ू पोंछा और बर्तन। इसने पत्नी को फिर समझाया- 'यह महरी बड़ी लापरवाह है। बर्तन तोड़ती-फोड़ती रहती है। कल से बर्तन मैं धो दिया करूंगा। तुम महरी को मना कर देना।'

पत्नी ने पूछा- 'इससे जो पचास रुपये महीना बचेंगे, उसे भी मैं ब्यूटी-पार्लर पर खर्च कर सकती हूँ?' इसने प्यार से कहा, 'इतना ज्यादा सौंदर्य भी ठीक नहीं, प्रिये! कुछ दूसरी औरतों को भी मौका दो।'

पचास रुपये महीना और बचने लगे। अब बच गए झाड़ू-पोंछा। इसने फिर अपनी अर्द्धांगिनी को समझाया- 'अपना घर है ही तिना बड़ा? मात्र झाड़ू-पोंछे के लिए महरी रखना हमें शोभा भी नहीं देता।'

पत्नी उखड़कर बोली- 'तुम तो चाहते ही हो कि मैं नौकरानियों की तरह तुम्हारे घर का काम करती रहूँ।' इसने कहा, 'भई, झाड़ू-पोंछा करने से शरीर की एक्सरसाइज होती है, मोटापा नहीं चढ़ता। यदि तुम कोई स्लिमिंग-कोर्स ज्वाइन करोगी न तो पांच सौ रुपये महीने के लगेंगे। सोचो जरा, पचास रुपये महरी के और पांच सौ रुपये स्लिमिंग-कोर्स के। तुम पूरे पांच सौ पचास रुपये बचाओगी।'

पत्नी दिन पत्नी बोली, 'कल से मैं ब्यूटीपार्लर जाया करूंगी। जाऊँ न?'

यह चापलूसी करते हुए बोला, 'तुममें तो नैसर्गिक सौंदर्य है, डियर! तुम्हें ब्यूटीपार्लर जाने की क्या जरूरत? ब्यूटीपार्लर जाएं वे जो कुरूप और भौंडी हैं।'

पत्नी मान गई। अपने अमावस के टुकड़े को नैसर्गिक सौंदर्य कहकर इसने ब्यूटीपार्लर का खर्चा भी बना लिया।

बाद में हर तरफ अपनी पत्नी के गुण गाता फिरता, 'बेचारी, सही जीवन-संगिनी है मेरी। मैं कहता हूँ कि घर में महरी रख लें। वह कहती है- नहीं, तुम जब दफ्तर में इतनी मेहनत करते हो तो मैं झाड़ू-पोंछा, बर्तन-कपड़े का जिम्मा संभाल ही सकती हूँ।'

लोग सोचते हैं कि यह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है। हां, करता तो है। पर पैसों से ज्यादा नहीं। एक दिन यह दफ्तर से लौटा तो पत्नी किसी सहेली के घर गई हुई थी। जब वह काफी देर तक नहीं लौटी तो इसकी चिंता बढ़ी। इसने घर के भीतर जाकर गहने-कपड़े देखें, सारे रुपये गिने। सभी कुछ सही-सलामत था। यह निश्चित हो गया। अब कोई चिंता नहीं। बीवी आए या न आए।'

अपनी बात जारी रखते हुए शिष्टाचार ने कहा- 'मित्र, भ्रष्टाचार, बड़ा ही विचित्र है मेरा यह कलंक! पैसों के सिवाय इसके जीवन में सभी कुछ महत्वहीन है। रातों को यह ठीक से सोता नहीं। बेचैन टहलता रहता है। फिर जाकर रुपये गिनता है- एक बार, दो बार, तीन बार। एक बार उसने कहीं दस का नोट खो दिया। इसने उस दिन सुबह-शाम खाना ही नहीं खाया। पत्नी ने सोचा कि पति दस रुपये के गुम हो जाने से बहुत दुखी हैं। वह बेचारी क्या जाने कि यह पांच रुपये प्रति टाइम के हिसाब से अपने दस रुपये की क्षतिपूर्ति कर रहा था।'

भ्रष्टाचार बीच में ही बोल पड़ा- 'बस करो, शिष्टाचार भाई! अब और नहीं सुना जाता। तुम धन्य हो जो शिष्टाचार के नाम पर इतना बड़ा कलंक तुम्हारी झोली में है। यह तो कलंकों का भी हीरा है, हीरा! बस, यदि तुम बुरा न मानो तो मैं तुमसे एक निवेदन करना चाहता हूँ?'

शिष्टाचार ने कहा- 'अवश्य कहो,

मित्र! कहो, मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ?’

भ्रष्टाचार ने कहा- ‘यह कलंक तुम्हारे लायक नहीं है भाई! यह तो उच्च श्रेणी का कलंक है, अतः तुम अपना यह कलंक मुझे दे दो।’

शिष्टाचार ने प्रसन्नतापूर्वक कहा- ‘मित्र, तुम धन्य हो। यह तुम्हारा ही बड़प्पन है जो तुम दूसरे का कलंक अपने ऊपर लेना चाहते हो। सिर्फ इतना बता दो कि तुम इसका करोगे क्या?’

भ्रष्टाचार गर्वपूर्वक बोला- ‘भाई, तुम इसके भीतर छिपे गुणों को नहीं जानते। जब यह शिष्टाचार के नाम पर इतनी नीचता और छिछोरापन प्रदर्शित कर सकता है, तो सोचो भला कि यह भ्रष्टाचार के नाम पर क्या कुछ नहीं कर सकता? ऐसे प्रतिभावान ही तो मेरे श्रृंगार बनते हैं भाई।’

शिष्टाचार ने अपना यह कलंक भ्रष्टाचार के नाम हस्तांतरित कर दिया। यह कलंक धीरे-धीरे से भ्रष्ट होने लगा।

19/207, शिवम् खंड, वसुंधरा, गाजियाबाद



rj l ext jky dk rh I jk mi U; k I

mYV vk [k j

'kk" k. keDr l ekt d ifr ifrc)
, d i Buh; mi U; k I

i dk'kd

f'kYik; u ifcy'k I , M

fMLVhC; V I

fnYyh & 110032

eY; % 250 #0] i "B&200



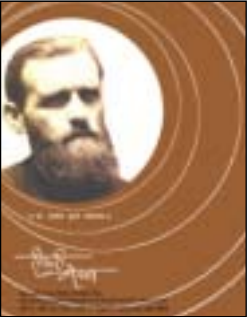
; k = kyhu g l en

I j'k / khxMk dh

ekeyi vineh dh
fprkv i j dmr
vix d i'k j i Lr dk ryk'krh
dforvkv dk l xg

i dk'kd

Voyj ifcyd'k I] èk'e'kyk



फादर कामिल बुल्के पर

एक अद्वितीय विशेषांक

बेल्जियम मूल के फादर बुल्के ने विदेशी धरती पर हिन्दी भाषा तथा साहित्य के उत्थान एवं प्रचार-प्रसार के लिये एक कर्मठ योद्धा की तरह जो अविस्मरणीय योगदान दिया है, वह अतुलनीय है। ‘हिन्दी चेतना’ के इस विशेषांक में प्रस्तुत सामग्री में उनके कृतित्व तथा व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। इस विशेषांक की प्रमुख विशेषता यह है कि डॉ. बुल्के के जन्म, जीवन, कार्यक्षेत्र, धर्मक्षेत्र, जीवन दर्शन तथा उनके द्वारा रचे विविध साहित्य से जुड़े आलेखों को समाहित करके इस अंक को न केवल पठनीय अपितु संग्रहणीय बनाया गया है। डॉ. दिनेश्वर प्रसाद के आलेख ‘डॉ. कामिल बुल्के- जीवन रेखाएं’ के साथ संलग्न चित्रों के द्वारा पाठकों को इस महान संत के जन्म, परिवार, परिवेश,

अध्ययन एवं धर्म की और उन्मुख होने की परिस्थितियों का बहुत ही रोचक वर्णन मिलता है। डॉ. पूर्णिमा केडिया के संस्मरण में फादर बुल्के के द्वारा समय-समय पर अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हुए उनके अनमोल विचार समाहित हैं। पूर्णिमा जी के अनुसार रांची का डॉ. कामिल बुल्के शोध संस्थान आज भी हिन्दी जगत के लिए कामधेनु बना हुआ है। श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं ‘बाबा बुल्के के रोम-रोम में राम और सांस-सांस में तुलसी बस गए और यह कहा जाए कि वे तुलसी मय हो गए तो कोई अतिरेक नहीं।’ उनके अनुसार ‘वास्तव में तुलसी के प्रति उनकी निष्ठा तथा प्रतिबद्धता ने उन्हें न केवल हिन्दी भाषा का अपितु रामचरित मानस का अधिकारी विद्वान बना दिया।’ इसी विशेषांक में फादर बुल्के के प्रिय कवि गजेले की कविताओं का हिन्दी अनुवाद भी मिलता है। प्रो. हरिशंकर आदेश के लेख ‘एक महान हिन्दी प्रेमी’ में फादर के साथ उनकी भेंट के संस्मरणों का समावेश एक आधुनिक युग के महाकवि के द्वारा बाबा के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि है। इसी प्रकार श्री आत्माराम तथा श्री महेन्द्र पाल जैन के आलेखों में हमें बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ‘हिन्दी चेतना’ के मुख्य सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी ने अपने सम्पादकीय में लिखा है ‘फादर बुल्के के सम्मान में यह अंक विश्व के लिए एक अदभुत उपहार होगा, विशेषकर उन हिन्दी साहित्यकारों के लिये जो सुदूर विदेशी धरती पर बसे हुए हैं।’ ऐसे अनमोल उपहार को ग्रहण करते हुए हम सभी हिन्दी प्रेमी सम्पादक मंडल के मुख सदस्य डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा डॉ. इला प्रसाद को कोटिशः धन्यवाद देना चाहते हैं। जिन्होंने इतनी विविध सामग्री के द्वारा एक महान विभूति के बहु आयामिक व्यक्तित्व से परिचित करवा कर हम पाठकों को भी इस संत की जन्मशती पर श्रद्धा सुमन चढ़ाने का अवसर दिया। यह विशेषांक ‘सागर में बूंद नहीं, अपितु एक दीप स्तम्भ की तरह हिन्दी भाषा तथा साहित्य प्रेमियों का सदैव पथ प्रदर्शन करता रहेगा। उल्लेखनीय बात यह है कि विदेशी धरती पर इस अंक के लिये इतनी प्रचुर मात्रा में सामग्री एकत्रित करके आप सबने हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा, लगन एवं अगाध प्रेम की भावना से हम सब को अभिभूत किया है।

—शशि पाधा, यू एस ए

कैलाश चन्द्र जायसवाल

डंडा ददाति विनयम्

शालेय जीवन में अध्यापक जी ने शुद्ध लेखन में 'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात् विद्या विनय देती है, कम से कम हजार बार लिखवाया और छड़ी की मार से रटवाया होगा। वे शरारती बच्चों की धुनाई करते हुए यह भी कहते थे, कि 'छड़ी पड़े छम छम विद्या आवे झम झम' यानी विद्या और विनय से छड़ी की पुरानी सांठगांठ है। खैर जैसे-जैसे उम्र के पायदान पर रेंगने लगा यह समझ में आया कि 'विनय' विद्या से नहीं अपितु डंडे से मिलती है।

डंडा की महत्ता असीम है। डंडा शक्तिमान है। डंडा दमदारी है, रंगदारी है, वजनदारी है। डंडा महान गुणों की खान है। डंडे की ठकठक से सिरफिरों की अकल ठिकाने आ जाती है, और डंडा-दर्शन मात्र से अच्छे-अच्छे सूरमाओं की पिंडलियां कांपने लगती हैं। संसार में मनुष्य के आपस में सारे व्यवहार डंडे से निर्धारित होते हैं। डंडा है तो भय है, भय है तो प्रीत है। बाबा तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में भय बिन प्रीत नहीं का संदेश दिया है। जब भय का जन्म होता है, तो विनम्रता बिन बुलाये मेहमान की तरह स्वमेव आ जाती है।

डंडा अनुशासन है। डंडा लगाम है। डंडा आन-बान और शान है। डंडा यानि ताकत को लोग सलाम करते हैं। डंडा देखते ही अकड़बाजों की घिघ्यी बंध जाती है। डंडा की फटकार सुनकर सारी अकड़ निकल जाती है। आदमी और जानवर दोनों डंडे से ही काबू में आते हैं, और दोनों डंडे की भाषा समझते हैं। अपने आसपास रोजमर्रा के जीवन में हम आये दिन डंडे का कमाल देखते हैं। देखते ही नहीं अनेक बार जाने अनजाने, चाहे अनचाहे भोगते भी हैं। रेल या बस के सफर में डंडे का रुतबा देखते ही बनता है। अक्सर बर्थ आरक्षित करानेवाला खड़े खड़े और डंडा उसी आरक्षित बर्थ पर लेटे लेटे शान से सफर करता है। एक बार बस के सफर में डंडे का चमत्कार देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भीषण गर्मी में

कंडक्टर भेड़ बकरी के समान सवारियां ठूसता जा रहा था। मैं आगे की सीट पर लगभग फंसा हुआ था। मैंने इस तरह सवारियां ठूसने का विरोध जताया तो कंडक्टर ने तल्ख लहजे में कहा तकलीफ है, तो नीचे उतर जाओ। मैंने कंडक्टर की गर्मी को महसूस और मन मार कर रह गया। अगले स्टेशन पर कंडक्टर को सूचना दी गई कि नसरुल्लागंज से टी.आई. साहब भोपाल जायेंगे, आगे की सीट खाली रखी जाये। ठसाठस भरी बस में तिनका रखने को जगह नहीं और आगे की सीट खाली रखने के फरमान ने कंडक्टर की सारी हेकड़ी निकाल दी। थोड़ी देर पहले तक दहाड़ने वाला कंडक्टर टी.आई. साहब की खबर से मिमियाने लगा और हाथ जोड़-जोड़ कर सीट खाली करवाने लगा। खैर जनता धक्के खा रही थी और साहब शान से बिना टिकिट पैर पसारें सफर कर रहे थे। कंडक्टर बार बार चाय-नाश्ता, पानी को पूछ रहा था। इसे कहते हैं, डंडे का जादू।

सरकारी दफ्तरों के सारे काम डंडे के बल पर सहजता से हो जाते हैं। डंडा है, तो महीनों का काम मिनटों में हो जाता है। बिना डंडे के मिनटोंके काम को बरसों लग जाते हैं, या होते ही नहीं। आर.टी.ओ. में आप महीनों चक्कर लगाइये आपका काम नहीं होगा, किंतु यदि डंडा है, तो तत्काल काम हो जायेगा। एक साधारण व्यक्तित्व का सामान्य आदमी सरकारी दफ्तर में जाता है, तो बड़े बाबू को वह फूटी आंख नहीं सुहाता। उसके अनुनय विनय का चपरासी तक पर कोई असर नहीं होता है। ऐसे लोगों को टरकाने के लिए दफ्तर के अफसर बाबू विशेष रूप से प्रशिक्षित होते हैं। इसके विपरीत आफिस में डंडे के आने पर छोटे बड़े अफसर से लेकर बाबू तक पलक-पावड़े बिछाये उसकी अगवानी करते हैं, और फटाफट उसका काम कर देते हैं। एक बात अच्छी तरह से समझ लीजिये, कि डंडा के लिए न कोई नियम होता है और न कोई कानून।

डंडा इन सबसे परे महान शक्ति है, जिसे समूचा सरकारी तंत्र नमन करता है।

प्रशासन में अफसर का डंडा चलता है और डंडे का ही झंडा लहराता है। अफसर डंडे द्वारा ही अपने मातहतों से बंगले पर झाड़ू लगाने से कुत्ता नहलाने तक का काम करवाते हैं। अफसर का डंडा बहुत खतरनाक माना गया है, इससे दफ्तर के लोग तो भयभीत रहते ही हैं, आम जनता भी कांपती है। डंडाराज के गुणगान करते हुए स्याही का समुद्र सूख जायेगा और सरस्वती की जिह्वा भी थक कर ठठुरा जायेगी। पुलिस, आयकर, वाणिज्यकर, आबकारी, वन, राजस्व व कलेक्टरेट के डंडे का जलवा ही अलग है। असली सरकार तो इनके डंडे से ही चलती है। पुलिस के डंडे से तो चट्टाने भी कांप कर मोम के समान मुलायम हो जाती है। यह बात और है कि इस संसार में बिना बाप का कोई नहीं है। जब कोई भारी डंडा पड़ता है, तो पुलिस का डंडा भी मिमियाने लगता है।

इस क्षेत्र में ताजा अनुसंधानों से यह सिद्धांत प्रकाश में आया है कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है, वैसे ही बड़ा डंडा छोटे डंडे को चट कर जाता है। डंडा संस्कृति में छोटा डंडा सदैव बड़े डंडे के और बड़ा डंडा उससे बड़े डंडे के तलवे चाटता है।

दोस्तो! संसार के सारे सुख डंडे के पास हैं। जिसके पास डंडा है, वह समस्त सुखों का भरपूर उपभोग कर इस धरती पर जन्म लेने को सार्थक करता है। डंडा स्वर्ग में भी अपना स्थान सुरक्षित करवा लेता है। आओ हम इस डंडायुग में डंडा की महत्ता को पहचानें और हमारे सारे प्राचीन ग्रंथों किताबों और उपदेशों से 'विद्या ददाति विनयम्' जैसे निरर्थक वाक्य को हटाकर उसके स्थान पर 'डंडा ददाति विनयम्' को प्रतिस्थापित कर भावी पीढ़ी को सुखमय जीवन बिताने का मार्ग प्रशस्त करें।

अनुराग भवन, पंचवटी नगर-II, करोंद चौ

प्रेमचंद्र स्वर्णकार

स्वास्थ्य सेवा का सौंदर्य

इधर हमारे देश की देशी और विदेशी कंपनियां बड़ी शिद्दत के साथ लोगों के स्वास्थ्य और सौंदर्य को निखारने या उत्कृष्ट बनाने में जुटी हैं। एक बड़ी मुहिम चला रखी है उन्होंने अब इसमें सफल हुई या नहीं या कितनी सफल हुई, यह कुछ विवाद का विषय हो सकता है लेकिन वे पूरे मनोयोग और तन-मन-धन से इस कार्य में जुटी हैं, यह विवाद का विषय नहीं होना चाहिए।

शरीर का स्वास्थ्य और सौंदर्य केवल दांतों, त्वचा एवं बालों में हैं। देखिए तो आप एक के बाद एक लगातार दसों विज्ञापन दिखाकर, करोड़ों रुपया खर्च कर ये कंपनियां हमारे सौंदर्य बोध के प्रति किस कदर जागरूकता ला रही हैं।

अभी बात गोया दांतों की करें। कंपनियों ने असंभव कार्य को संभव कर दिखाया है। दांतों पर घिसने के लिए ऐसे-ऐसे कैल्शियम और विटामिन वाले पेस्ट बनाए हैं जिनको आपके दांत सोखकर मजबूत और चमकदार बन जाते हैं। चूँकि मैं चिकित्सा विज्ञान का डिग्रीधारी चिकित्सक हूँ और यह अच्छी तरह जानता हूँ कि दांत सीधे-सीधे न कैल्शियम सोख सकते हैं न विटामिन, लेकिन देखिए तो हमारी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोधों के परिणाम को। उन्होंने दिखला दिया कि दांत भी विटामिन, मिनरल्स या कैल्शियम सोख सकते हैं। बशर्ते आप इनके बनाए टूथपेस्ट को खरीदकर करिए तो। पेस्ट द्वारा कीटाणु नाश करने की बात तो पुरानी पड़ गई। अब जमाना आ चुका है दांतों को विटामिन्स और मिनरल्स उपलब्ध कराने का। थोड़ी दिक्कत हमारे उपभोक्ताओं को यह जरूर हो गई है कि आज सौ से ऊपर टूथपेस्ट बाजार में हैं, सब एक से बढ़कर एक हैं, तो इनमें से वह चुने कौन सा और फिर पेस्ट का नाम चुनले तो फिर रंग कौन सा चुने क्योंकि एक से बढ़कर एक रंग के पेस्ट हैं। और सभी अनेक गुणों से युक्त हैं।

कुछ का इस्तेमाल तो आपकी प्रेमिका को पास बुला सकता है।

अब आते हैं त्वचा को गोरा बनाने वाली क्रीमों और साबुनों पर। हमारा देश अपेक्षाकृत कुछ सांवले लोगों का देश है। गरम जलवायु के कारण शायद ऐसा है। लेकिन हमारी सभी की इच्छा अंग्रेजों के समान गोरा चिट्ठा बनने की रहती है। जो गोरे नहीं हैं वे दुखी हैं क्योंकि सांवले रंग के कारण उनकी शादियां नहीं हो पा रही हैं। कंपनियों ने भी हमारे देश के लोगों के इस दुख-दर्द को समझा है। उन्हें हमारे यहां के लोगों से सहानुभूति है। कंपनियां बड़ी संवेदनशील होती हैं, वे हमारी परेशानियों को तुरंत ताड़ जाती हैं। सो उन्होंने इसका समाधान भी खोजा है। गोरेपन की कई अच्छी क्रीम बनाकर। कुछ ने गोरापन प्रदान करने वाला साबुन भी बाजार में उतारे हैं। आपको जो पसंद हो खरीदिये और बन जाइये सांवले से गोरे चिट्ठे। फिर करवा लीजिए मनचाही जगह शादी। आप क्या विज्ञापन में नहीं देखते, एक साधारण सी सांवली (या काली) लड़की, जिसका चेहरा दाग, धब्बों से भरा होता है कैसे दो-चार हफ्ते में एक खूबसूरत और गोरी लड़की में तब्दील हो जाती है, वास्तव में हमारी इन कंपनियों ने तो कमाल कर दिया है। पैसे जरूर वे रोज लाखों-करोड़ों बना रहे हैं लेकिन जरा सोचिए तो एक काली उपेक्षित लड़की जिसकी शादी नहीं हो पा रही, यदि हजार-पांच सौ खर्च कर गोरी बन जाती है तो यह कोई महंगा नहीं है। आखिर वर भी तो उसे अच्छा मिल जाता है।

मैं तो तमाम अफ्रीकी देशों के काले स्त्री-पुरुषों को दावत देता हूँ कि हमारे देश आएँ और कुछ दिन रहकर हमारे यहां की कंपनियों की गोरेपन की क्रीम, साबुन इत्यादि का बतलाए अनुसार इस्तेमाल करें फिर दो-चार महीनों बाद गोरे बनकर अपने देश

वापिस लौट जाएँ। वहां पहुंचकर आपके परिचित दंग रह जायेंगे, आपके बदले हुए गोरे रूप को देखकर। हमारे देश को पर्यटन उद्योग के अलावा इस गोरेपन के उद्योग को भी बढ़ावा देना चाहिए, इससे भी विदेशी मुद्रार्जन खूब हो सकता है, ऐसा मेरा मानना है। यह देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारने के लिए एक उपयोगी सुझाव है।

बालों के सौंदर्य के प्रति तो जागरूकता अभियान की पूछिए ही मत। गोया कि हमारा सारा देश डैंड्रफ से ग्रस्त है, परेशान है और शेंपू कंपनियां लगी हैं इनके डैंड्रफ को भगाने में। कैसे भी बाल हों जरा शेंपू करना तो शुरू करें सब कमियां दूर होकर लहलहा उठेंगे। हमारी देशी-विदेशी कंपनियों ने शोध करके एक से बढ़कर एक नायाब शेंपू निकाले हैं। सैकड़ों तरह के शेंपू हैं जो डैंड्रफ हटाते हैं, जो चाहे चुन लें और अपने निर्जीव बालों में जान फूक दें, सजीवता ला दें। टेलीविजन देखकर अब तो ये लगता है कि हमारे पूरे देश को ही जैसे रोज शेंपू का प्रयोग करना चाहिए। जवान और छोटे-छोटे बच्चे सभी बालों के रूसी रहित एवं चमकदार बना रहे हैं। जो शेंपू नहीं कर रहे हैं वे नादान हैं। अतः वे भी सैकड़ों तरह के शेंपू में कोई भी शेंपू चुनकर रोज करने लगे। क्योंकि बालों से व्यक्तित्व निखरता है, सौंदर्य बोध भी बालों से होता है। यही कारण है कि अब चार-पांच साल के छोटे-छोटे बच्चे सभी बालों को रूसी रहित एवं चमकदार बना रहे हैं। जो शेंपू नहीं कर रहे हैं वे नादान हैं। अतः वे भी सैकड़ों तरह के शेंपू में से कोई भी चुनकर रोज करने लगे। क्योंकि बालों से व्यक्तित्व निखरता है, सौंदर्य बोध भी बालों से होता है। यही कारण है कि अब चार-पांच साल के छोटे-छोटे बच्चों को शेंपू की आदत हमारी कंपनियां विज्ञापनों के माध्यम से डाल रही हैं और कोई आश्चर्य नहीं कि नवजात शिशुओं को भी वे शेंपू की सलाह

दे डालें। शायद इसका विज्ञापन भी कुछ इस तरह करेंगी यथा—दो नवजात शिशु आजू-बाजू झूले में झूल रहे हैं, एक शिशु दूसरे की तरफ देखकर मुस्कुराता है और पूछता है, 'आज तेरी मम्मी ने अमुक शेंपू से सिर धोया कि नहीं' दूसरा बच्चा थोड़ा उदास सा होकर कहता है, 'नहीं रे, लेकिन मैं अपनी मम्मी से कहूंगा कि मेरे बाल रोज उस अमुक शेंपू से ही धोएं।'

विज्ञापनों का अवलोकन कर अब एक महत्वपूर्ण तथ्य और उभरकर सामने आ गया है कि देश के अधिकांश लोगों के सिर तथा मस्तिष्क गरम हो चुके हैं। और इन्हें ठंडा या कूल-कूल रखने के लिए ठंडे तेल की जरूरत है। इसलिए बड़े-बड़े स्टार और सुपर स्टार करामाती ठंडे तेलों को अपनी-अपनी खोपड़ियों के ऊपर चुपड़ने में लगे हैं। कम से कम तेलों के विज्ञापन देखकर तो ऐसा ही लगता है। ठीक भी है इस उच्च रक्त चाप और तनाव के जमाने में लोगों के सिर तो गरम होंगे ही और इन्हें ठंडा करने के लिए यदि कई तरह के बर्फ जैसे ठंडे बर्फानी तेल उपलब्ध करवाए गए हैं। तो यह तो एक प्रकार की तेल कंपनियों की लोक सेवाएं ही हैं। वैसे भी पृथ्वी का तापक्रम 1 डिग्री बढ़ चुका है, तब लोगों के सिर गरम हो रहे हैं तो आश्चर्य की बात क्या है। तो, साहब अब जमाना मुलतानी मिट्टी से बाल धोने का नहीं रहा। अब हर वस्तु पाउच में उपलब्ध है। कोई मेहनत नहीं कोई कष्ट नहीं। कंपनियों ने जमाने भर की झंझटों से मुक्ति दिला दी है। तभी तेल भी पाउच में आने लगे हैं। अब केवल शेंपू से कुछ नहीं होने वाला जब तक आप इन कंपनियों का तेल बालों में न चुपड़ें। शेंपू द्वारा तो विभिन्न विटामिन्स और पोषक तत्व बालों को मिलते ही हैं लेकिन तेल तो जैसे बालों की सभी समस्याएं—उनका झड़ना, दो मुहां होना, सफेद होना इत्यादि सभी रोक देता है। सिर में ठंडक अलग से ला देता है। ताकि आप गुस्सा न करें।

ये कंपनियां हमारे देश के लोगों का बहुत बड़ा भला कर रही हैं। लोगों के दांतों के साथ बाल निरोगी और सुंदर बना देना अथवा काली चमड़ी वाले इंसान को गोरा बना देना कोई आसान कार्य नहीं है।

गायत्री नगर, दमोह-470661 (म.प्र.)

जगदीश पाठक

निर्भरता एवं नियंत्रण

निर्भरता हमेशा दूसरों पर होती है। सामने वाले का कंधा मजबूत होना चाहिए, फिर उस पर लदे रहने में कोई बुराई नहीं है। अमेरिका का कंधा भी मजबूत है। अनेक देश उस पर लदे हुए हैं। कुछ देश अमेरिका की नाक का खास बाल बनने के लिए दूसरों को उसके कंधे से गिराने में लगे हुए हैं। यों भारत भी लदा है, पर उसकी नीति कुछ ऐसी है कि अमेरिका को उसका लदना मालूम नहीं हो पाता। अमेरिका को भारत हमेशा सामने खड़ा हुआ दीख पड़ता है।

वह भारत से कहता है, 'पाकिस्तान तो लदा है; तुम भी लद जाओ।'

पहले से ही लदा भारत कहता है, 'उसकी आवश्यकता नहीं है, हमारी टांगें मजबूत हैं।'

काम करने वाला मिल जाए तो निर्भरता बढ़ जाती है। हाथ पैर नहीं चलते। हमारी जनता को छूट मिल जाए तो वह अमेरिका से सीधा संपर्क करने लगे, 'हलो अमेरिका, यार, यहां एक के हाथ पैर तुड़वाने हैं; क्या लोगे?'

अमेरिका को अपनी छोड़ दूसरों की बड़ी फिक्र रहती है। वह कहेगा, 'फिक्र मत करो। अपनी सरकार को राजी कर लो; हम सेना भेज देंगे।'

हमारे यहां नियंत्रण भी एक शब्द है। यह नियंत्रण होने से बाल-बाल बचा हुआ शब्द है। अपने यहां अधिक अंतर नहीं रहता। यहां परिस्थितियां कब सम्मन को सम्मान और सम्मान को सम्मन बना देती हैं, पता ही नहीं चलता। यह दोनों शब्द यहीं के हैं। अपना ही उत्पाद है। निर्भरता दूसरों पर होती है जबकि नियंत्रण दूसरों का होता है। नियंत्रण के दो आवश्यक तत्व होते हैं। सहानुभूति और सहयोग। अमेरिका का हमारे देश पर 'दोस्ताना' नियंत्रण है। यह सहानुभूति और सहयोग पर सवार होकर भारत आया है। अमेरिका बीमार भारत को देखने आता है।

साथ में दवा लाता है। दवा सहानुभूति है। सहानुभूति से ठीक होने वाला हमारा देश अमेरिका के उपकार तले दब जाता है। मानवीय आधार पर भारत पर अमेरिकी नियंत्रण का दूसरा तत्व सहयोग है। अमेरिका पूछता है, 'कर्ज चाहिए?'

हमारे नेता कहते हैं, 'तुम्हारे पास और किसलिए कोई आएगा?'

अमेरिका, 'सांसद खरीदने हैं?'

हमारे नेता, 'इतना धन तो हमें अपने यहां के व्यापारियों से ही मिल जाता है।'

अमेरिका, 'फिर किसलिए चाहिए?'

'हमारे कुछ बड़े नेताओं को बिस्तर में नोट बिछाए बिना नींद नहीं आ रही है।'

'कर्ज कब तक चुकाओगे?'

'यह तो हमारी अगली सरकार जानें।'

अमेरिका कहता है, 'ठीक है ले जाओ। और सुनो, तुम्हारे यहां भुखमरी है। सुअरों को खिलाने के बाद हमारे यहां काफी मक्का बच्चा है। जिसे हमने दलिया बना दिया है। अपने यहां के बच्चों को खिला देना। ले जाओ'

हमारे नेता ले आते हैं।

यहां बहस होती है, 'दलिया सुअरों के लिए बना है, उन्हें ही खाना चाहिए।'

'पर अमेरिका ने तो बच्चों के लिए दिया है।'

'सुअर के भी बच्चे होते हैं।'

बहस समाप्त होती है। अमेरिका को दिखाने के लिए कागज पर दलिया आदमी के बच्चों में बांट दिया जाता है। पर वास्तव में वह अनाज उचित माध्यम से 'पोल्ट्री फार्म' पहुंच जाता है। मुर्गी-मुर्गे खाते हैं। मुर्गियां आमलेट के लिए पुष्ट अंडे देती हैं और मुर्गे मांस बढ़ा कर कटने को तैयार हो जाते हैं। अमेरिकी 'दोस्ताना' नियंत्रण मजबूत हो जाता है।

एस-3, सुष्मिता अपार्टमेंट, 110बी, ए सेक्टर, सर्वधर्म कालोनी, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)

डॉ. रामनिवास शर्मा

रोग 'तो' का

यह मर्ज तो पुराना है। पर खोज कुछ नई है। इस लाइलाज बीमारी का इलाज न एलोपैथिक के पास है, न आयुर्वेदिक, न होम्योपैथिक ओर न यूनानी हकीमों के पास है। इस जानलेवा बीमारी के लक्षण पहले-पहल किसी सज्जन को उल्लू में देखने को मिले।

बात यूँ थी। पेड़ की सूखी डाल पर बैठा एक उल्लू अपनी रात की थकान उतार रहा था। एक नौसिखिया शिकारी की गोली उसके कान के पास से सरसराती हुई गुजर गई। भय से छटपटाता पक्षी (उल्लू) किसी दूसरे पेड़ की डाल पर जा गिरा। होश उड़ गए। लंबी-लंबी सांसें लेने लगा। पंख साथ छोड़ गए ओर वहीं से धुन लग गई, 'हाय गोली लग जाती तो! हाय, गोली लग जाती तो।' बस यही रट लगा ली उस बेचारे उल्लू ने खाना-पीना छोड़ दिया। अंत में एक दिन उसके प्राण पखेरू उड़ गये। जो सज्जन इस 'तो' का जायजा ले रहे थे, उन्होंने देखा कि यह गोली से तो बचा गया लेकिन 'तो' से मर गया।

आज यह 'तो' की बीमारी उल्लू को छोड़कर हमारे मानव समाज में आ घुसी है। स्थिति इतनी भयंकर है कि हर चौथा / पांचवां आदमी इसकी लपेट में है। कहीं गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया, चोट के नाम पर खंरोच तक नहीं आयी, परंतु रट लगा बैठे, 'कहीं कुछ हो जाता तो। कहीं कुछ हो जाता तो।'

हमारे एक प्रोफेसर बड़े अनुभवी हैं, जीवनधारा के अच्छे तैराक हैं। सैंकड़ों को डूबते हुए बचाया है, मैं भी उनमें से एक हूँ। एक दिन इस जानलेवा बीमारी की चपेट में आ गये। मसला कोई बड़ा नहीं था और ना ही कोई पेचीदा। इसमें उनका कोई अपराध भी नहीं था। बिजली विभाग के लाइनमेन ने घर के मीटर को देखकर यह कह दिया कि इसकी सील टूटी हुई है और लगता है आपने. . . प्रोफेसर साहब ने चारपाई पकड़

ली एकांतवास ले लिया। बस , एक ही धुन रहती, 'कुछ हो गया तो, कुछ हो गया तो।'

हमारे एक विद्वान प्रोफेसर हैं, मैं उनका नाम नहीं लूंगा। वह आज की वैज्ञानिक रेस में अपने बाल-बच्चों को दौड़ाने तथा



दूसरों को दौड़ते देखने का शौक तो खूब रखते हैं पर खुद दौड़ने से ऐसे कतराते हैं जैसे कौवा कमान से, कर्जदार साहूकार से। तेजगति से मंजिल तय करने वाले वाहनों की उनके पास कमी नहीं है। साइकिल से लेकर कार तक के मालिक हैं। दो किलोमीटर का रास्ता तय करने के लिए एक किलोमीटर साइकिल को हाथों से घसीटकर ही चलने में विश्वास रखते हैं। खड़े मोटर साइकिल या स्कूटर की लगाम पकड़कर ही संतुष्ट हो जाते हैं। किसी के साथ कार में बैठे हों तो उनकी दृष्टि बाहरी सौंदर्य पर न जाकर चालक के स्टेयरिंग या मीटर की सूई पर

ही अटकी रहती है। कार में बैठते हुए भरी सर्दी में भी उन्हें पसीने से सराबोर पाया है। कहीं चालक को ब्रेक लगाना पड़ जाय तो भभक उठते हैं, 'अरे भाई! धीरे चलो, कुछ उन्नीस-बीस हो जाता तो।'

घटना नई न होते हुए 10-15 साल पुरानी है। हमारे एक एक परिचित परिवार की सुशिक्षित महिला को इसी बीमारी ने अचानक आ दबोचा। किसी ढोंगी से पूछ बैठी कि मेरा भाई बीमार रहता है कोई उपाय बताओ। उसने कहा कि कोई प्रियजन अपनी जान दे दे तो अनिष्ट टल सकता है। परिणाम बड़ा घातक रहा वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गयी। पति के लाख उपचार के बावजूद भी उन्होंने आत्महत्या जैसा धिनौना काम कर डाला।

मैंने अनुभव किया कि जहां किसी घटना के बाद 'तो' के कीटाणु पनपे, फिर तो वे भविष्य की आशंका की गोद में पलते रहते हैं। कितनों को देखा है कि भीरु प्रकृति के लोग किसी कार्य में हाथ डालने से पूर्व यही सोचते हैं कि कहीं कुछ हो गया तो घाटा पड़ गया तो। इस भय से कोई कार्य सम्पन्न नहीं कर पाते और जीवन में सदैव असफल होकर भाग्य को कोसते रहते हैं।

इतने अनुभव के बावजूद भी मेरी स्वयं की स्थिति भी ऐसी है कि रोग चाहे सन्निपात हो अथवा मलेरिया, मैं किसी भी रोगी को बड़बड़ाते देखता हूँ तो मुझे यही लगता है कि इसे कहीं 'तो' का रोग तो नहीं। मेरे एक मित्र वर्तमान की पीठ पर सवार होकर भविष्य की अनेक चिंताओं में अपने को लपेटे रखते हैं। मैंने कल ही उनसे कहा था, 'कहीं आपको कुछ हो गया तो। कहने को तो मैं कह गया, पर मेरे रोम खड़े हो गये, बेहिसाब पसीना टपकने लगा।'

रीडर, हिन्दी विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला-147002 (पंजाब)

शिवशंकर मिश्र

सबसे बड़ा सुख

आश्चर्य नहीं होता, बहुत अजब नहीं लगता, सिर्फ मन थोड़ा उत्सुक हो जाता है। सड़क के दायें-बायें किसी गोल हुई चंचल भीड़ को देखकर आंखें जरा ठहर जाती हैं, लेकिन पांव चलते रहते हैं। भीड़ के पास रुकना भीड़ में शामिल होना होगा जो जितना गैरजरूरी है, उससे कहीं ज्यादा गैरमुनासिब है। जो भी शरीफ लोग हैं, इसी सिद्धांत पर चलते हैं। मन में उग आयी किसी उत्सुकता को मन में ही दबा देते हैं क्योंकि भीड़ में शामिल होने में डर लगता है।

डर मुझे भी लगता है। यही मेरा डर मुझे भी शरीफ आदमी बनाता है। मैं भी जब सड़क से गुजरता हूं, ऐसी किसी भीड़ के आगे-पीछे कभी नहीं रुकता। वह तत्व जो सैकड़ों लोगों को पलों में ही एक कसे हुए वृत्त में खींच लेता है उसके आकर्षण से मैं परिचित हूं। मैं भली तरह जानता हूं यह आकर्षण कितना प्रबल और सहज है, लेकिन मेरी मजबूरी है कि मैं एक शरीफ आदमी हूं और डर मेरी शराफत की पहचान और पूंजी दोनों है।

लेकिन उस दिन मैं रुक गया और भीड़ के पास पहुंच गया। मैंने दूर से ही समझ लिया था कि डरने की कोई बात नहीं है। भीड़ छोटी ही थी और भीड़ की परिधि पर खड़े लोग एडियों से उचक-उचककर बीच केंद्र में घटित हो रहे उस कुछ को देखने की उत्सुकता में अपने में ही छोटे-बड़े हो रहे थे। फिर भी यह बताना जरूरी है कि भीड़ के छोटे आकार के बजाय वह चीज कुछ और ही थी जो मुझे आश्चर्य कर रही थी। आदमी हंसता-बोलता नजर आए तो इससे सुंदर और सुरक्षित भला और क्या हो सकता है? मैंने अलग से ही देख लिया था कि भीड़ के बीच के लोग जोर-जोर से हंस रहे हैं और किनारों पर खड़े लोग उनका साथ देने के लिए बेचैन हो रहे हैं। उन की दिक्कत सिर्फ इतनी थी कि वे उस चीज को देख नहीं पा रहे थे जिसको देखकर

हंसना था।

कहने की जरूरत नहीं कि मुझे भी कुछ समय लगा जब मैं हंसने की उस वस्तु को देख पाने में सफल हो पाया। बचपन से आज तक मेरी मां दुखी रही, आश्चर्य भी करती रही कि उन दोनों की ऐसी दर्शनीय जैसी सेहत के बीच में ही इतना दुबला-पतला कैसे हो गया। लेकिन मुझे बुरा नहीं लगता, बल्कि कई बार मुझे इसके फायदे भी हुए हैं, जैसे आज ही जिस तरह मैं भीड़ की आस्तीन चीरकर आगे निकल गया वह क्या किसी मोटे के बस की बात थी?

लेकिन जब सामने देखा, मेरे भी हंसी फूटती और लोगों का साथ देती इसके पहले ही मेरे कंठ में बर्फ जम गयी। मैं अवाक, हतप्रभ, मर्माहत! अब जो भी कहिए, कम होगा। मेरी आंखों के आगे जो दृश्य था वह रोमांच बेचने वाली किसी पत्रिका की सत्यकथा का अंश लग सकता है, लेकिन इसका वाकई सत्य होना किसी समाज के लिए लज्जा और लानत की ही बात है। शायद ही किसी और देश में, किसी ऐसी दशा में कोई स्त्री देखने को मिले और वह भी इतने मनोरंजक रूप में!

मैं चौंक गया, यह तो वही अपनी पगली है! पल भर के लिए मुझे विश्वास नहीं आया, लेकिन अविश्वास के लिए भी कोई जगह नहीं थी। मैं उसे खूब पहचानता था। लगातार कई महीनों तक उसे मैंने अपने मुहल्ले में चलते-फिरते, बैठे-सोते देखा था। उदास, सुन्न और बेआवाज जैसी कोई चीज, कोई बेइक्स रूह, जो सहज ही सामने वाले के दिल को छू लेती थी। जहां से भी गुजरती, लोग उसके बारे में कुछ बातें जरूर करते, जैसे उसे जान लेना चाहते हों, उसके भीतर के दुख को पा लेना चाहते हों, लेकिन वही कठिन था। कभी-कभी लगता उसे कुछ याद ही नहीं है, कभी लगता किसी हादसे ने उसे जीवित तो छोड़ दिया है, लेकिन उस हादसे की जद से वह निकल

भी नहीं पायी है; शायद उसके लिए जिंदगी और मौत जैसे लफ्ज बेमानी हो गए थे।

शुरू-शुरू में जब वह मुहल्ले में दिखी थी, उसके कपड़े थोड़े अच्छे जैसे थे, लेकिन कुछ ही दिनों में वे गंदे चीथड़ों की शक्ल में बदल गए। उसकी सलवार सूट तो नजर आती, लेकिन न रंग का पता चलता, न प्रिंट का। मेरे पड़ोस की एक भद्र महिला ने उसे एक बार एक बढ़िया जैसा सूट दिया भी तो वह उसे वहीं छोड़कर आगे बढ़ गयी। भीख भी वह मांगती नहीं थी, लेकिन अगर कोई रोटी बढ़ा देता था तो ले लेती थी। चूंकि हाथ में कशकोल नहीं होता था, इसलिए कभी कोई रोटी नीचे भी गिर जाती तो वह उसे उठा लेती थी, लेकिन रुपये-आठ आने का सिक्का अगर कोई बढ़ाता तो न वह हाथ खोलती, न नीचे से ही उसे उठाती। शायद इसीलिए वह पगली ज्यादा लगती और भिखारिन कम। फिर धीरे-धीरे ऐसा हो गया कि वह मुहल्ले की ही हो गई और उसे खाने भर न सिर्फ रोटियां मिल जातीं, बल्कि सब्जी वगैरह भी पर्याप्त मिल जाती। परव-त्यौहार के दिनों में तो अच्छे पकवान भी मिल जाते, लेकिन कभी उसके चेहरे के भावों से सूखी रोटी और पकवान के बीच का कोई फर्क नजर नहीं आता।

फिर धीरे-धीरे समय बीतने के साथ उसको लेकर चर्चा-बात तो बंद हो गयी, लेकिन मन में वह सब के बैठी रहीं। कई बार मैं भी सोचने लगता, 'कौन है यह? कहां से कैसे आ गयी यहां?' ध्यान में आता, सिर्फ आधे किलोमीटर की दूरी पर स्टेशन है, 'कहीं से भाग-वागकर तो नहीं?' कई तरह के फिल्मी अंदाज के किस्से जेहर में उभरते जो आपस में एक-दूसरे से भिन्न होकर भी अपनी समानताएं बनाते, लेकिन कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता। इसका एक सीधा कारण यह था कि पैसे को लेकर उसके व्यवहार मेरे लिए हमेशा अस्पष्ट और अबूझ ही बने रहे। कैसा था उसका धिक्कार

राम पटवा

जूता निकालो

सुबह की दिनचर्या में दादाजी अपने लाड़ले छोटे पोते को रोज घर के नजदीक स्कूल पैदल छोड़ने जाया करते। स्कूल से लौटने के बाद दादाजी अखबार पढ़ते, चाय पीते फिर घर में मरम्मत करवाए जा रहे, कमरों, दालानों को घूम-घूमकर मुयायना करते थे।

एक दिन स्कूल जाते समय पोते ने अचानक जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। उसके रोने के घरवाले भी बाहर निकल आये। बच्चो रोते-रोते अपनी पैर की ओर इशारा करके बता रहा था। घरवालों ने सोचा कि पैर में शायद दर्द हो रहा होगा।

तुरंत बच्चे को डॉक्टर के पास ले जाया गया। डॉक्टर ने देख-परखा और दर्द के लिए इंजेक्शन और पेन किलर दवा दिया। फिर भी दर्द कम नहीं हुआ। तब कुछ देर बाद डॉक्टर ने बच्चे के पैर से जूता जब निकाला तो जूते के अंदर एक कंकड़ पाया गया, जिसके कारण बच्चे की उंगलियों में चुभन हो रही थी। पैर से जूता निकालने के बाद ही दर्द कम हुआ और बच्चे ने रोना बंद किया।

दादाजी अपनी मित्र मंडली के संग शाम को अपने घर में पोते के बारे में चर्चा करने के बाद टी.व्ही. पर एक आतंकवादी घटना से संबंधित समाचार देख रहे थे। समाचार के अंत में दादाजी बोल पड़े कि— 'आतंकवाद भी इसी तरह इस देश के जूते में एक कंकड़ की तरह घुसा हुआ है।' एक मित्र ने प्रत्युत्तर में कहा कि जब तक कंकड़ नहीं निकलेगा चुभन होती ही रहेगी। दूसरे मित्र ने सहज भाव से कहा कि जूता तो निकालो।

एन-3, साकेत, बसंत पार्क कॉलोनी
महावीर नगर, न्यू पुरै

सिर झुकाए मैं जल्दी ही वहां से निकल गया, जैसे कोई भी शरीफ आदमी निकल जाता।

327, बी, कडरू, रांची-834002

का भाव जो पैसे को दुनिया की सबसे घृणित वस्तु बना दे रहा था! और कपड़े क्यों नहीं लिए उसने? क्या पेट भरने की ही मजबूरी होती है, कपड़े बदलने की नहीं? क्या इतना बेपरवाह हुआ जा सकता है, या अपने आकर्षणों के प्रति कहीं न कहीं वह अब भी सशक्त थी?

फिर अचानक वह एक अधेड़ उम्र के पागल के साथ दिखायी देने लगी। उसके रूप-रंग और कपड़े-लत्तों की हालत भी कम बदतर नहीं थी, यद्यपि उसके बड़े-बड़े घुंघराले बाल उसे एक विशिष्टता भी देते लगते थे। दोनों साथ ही चलते-घूमते, लेकिन खाना अभी भी पगली को ही मिलता था जिसे वे दोनों बांटकर खा लेते थे। फिर भी कहा जा सकता है कि मुहल्ले की सहानुभूति, जो पहले श्रद्धा-भाव को भी छूती हुई-सी लगती थी, अब गायब हो गयी थी और देने वाले के मन में उसे कुछ भी देना अब भीख देने से अधिक कोई अर्थ नहीं रखता था।

मैंने एक दिन पत्नी से कहा, 'आश्चर्य है, दोनों कभी एक-दूसरे से बात नहीं करते?'

'बात करने की क्या जरूरत है', पत्नी ने टेढ़ा-सा मुंह बनाकर जवाब दिया, 'जब मन ऐसे ही मिल गया? और क्या उन्हें कोई गृहस्थी चलानी है?'

गरज यह कि उनका यह प्यार लोगों को पसंद नहीं आया। विपरीत-विरुद्ध चर्चाएं भी जल्दी ही शुरू हो गयीं। एक दिन मुहल्ले के कुछ लड़कों ने उन्हें इतना परेशान किया कि अगले दिन से वे दोनों अचानक ही अदृश्य हो गए। फिर कुछ चर्चा-बात हुई, लेकिन बुरा किसी को नहीं लगा।

फिर तो कई महीने बीत गए। सारे लोग पगली को भूल गए, मैं भी भूल गया, यद्यपि यह कहना भी गलत नहीं होगा कि जिस बावरी आत्मा को लोगों ने इतना स्नेह दिया था, उसे वे अपने से काट भी नहीं पाए थे, बल्कि इस तरह एकदम से उसका गायब हो जाना कहीं उनके दिलों में एक गड्ढा भी बना गया था। और अचानक आज वह मिली भी तो किस हालत में?

सुबह करीब साढ़े नौ-दस बजे का समय हो गया था जब आटो ने मुझे कांटोली चौक पर उतारा। आगे की शेष दूरी के लिए

किसी रिक्षो की तलाश में मैं बढ़ा ही था कि तभी भीड़ पर मेरी नजर गयी। मुझे भी कुछ मनोरंजक जैसा ही लगा, लेकिन जब भीड़ के अंदर दाखिल हुआ तो देखा... चौक के एक परले कोने में लकड़ी की एक बंद गुमटी के नीचे, उसके पीछे की तरफ छिपी पगली, खून में लथपथ हुई, एकदम नंगी, अपने सद्यःजात शिशु को सीने में लगाए जोर-जोर से चीखकर भीड़ को गालियां बकती जा रही थी ... फिर कभी गाने लगती, कभी बच्चे को दूध पिलाने लगती .. रोने लगती ...

मैं हैरान, जिस की किसी ने कभी बोली तक नहीं सुनी, आज वह इस तरह बेहाल-वाचाल ... ? मेरा ध्यान गया, बच्चे की आवाज नहीं आ रही थी? और सच मानिए, जितनी देर मैं वहां रुका, बच्चा निस्पंद ही रहा। तो क्या मर गया? पैदा होने के बाद मर गया? मन में फिर सवाल उठा, कैसे, लेकिन जवाब कौन देता? और जवाब क्या वह इतना दुरुह था?

तभी ट्रैफिक इंस्पेक्टर का डंडा मेरी पीठ पर पड़ा। एक दूसरा डंडा एक सिपाही के हाथ में था जिससे वह पगली की टांगों और पेट में खुचकारकर उसे उठाने की कोशिश कर रहा था। मैं समझ नहीं पा रहा था ये लोग उसे कहां ले जाएंगे। शायद सदर अस्पताल, जो यहां से ज्यादा दूर नहीं है, शायद पागलखाना, जो देश के आजाद होने के बाद तक इस शहर की पहचान था।

मैं भीड़ से छिटककर बाहर आ गया। कुछ पलों के लिए मुझे याद भी नहीं आया कि मैं कहां जा रहा था, क्यों जा रहा था। लोग अब भी हंस रहे थे, लेकिन पता नहीं क्यों मेरा गला एकदम खुश्क हो रहा था। बहुत पहले कहीं पढ़ा था, मातृत्व स्त्री-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, उसका सबसे बड़ा सुख है, लेकिन यह कैसी स्त्री है? यह कैसा मातृत्व है? क्या यही उसका सबसे बड़ा सुख है?

थोड़ा ही आगे बढ़ा तो नजर आया, कालेज के अहाते की दीवार की ओर मुंह कर जहां चलते-फिरते दो-एक राहगीर अपनी राहत निकाल रहे थे, वहीं दो कदम हटकर एक कुत्ता कुछ भींगे हुए कपड़े आराम से बैठकर चबा रहा था। कैसा हो आया था उसका मुंह, लाल?

तारिक असलम 'तस्नीम'

सदैव आस्था चूर्ण ही प्रयोग करें. . . ।

हमारे देश में यों तो पान में चूना लगाने की परंपरा सदियों पुरानी है। क्या आम आदमी और क्या राजा-रजवाड़े सबको पान चबाने यानी खाने की आदत होती है। कुछ मनचले शौकिया तौर पर भी पान चबा लेते हैं और वे कुछ यों मुंह बनाते हैं जैसे मुर्गे की टांग चबा रहे हों। अमूमन ऐसे लोग अपने ही होंठों की लाली देख-देख फूले नहीं समाते। पान की महिमा कुछ ऐसी है कि ससुराल में दामाद जी को न केवल साली सरहज बल्कि हंसी-ठिठोली करने में सासू जी भी तनिक पीछे नहीं रहना चाहतीं। इसलिए वह भी दामाद जी को गिलोरियां खिलाना नहीं भूलतीं। जिस पे वह फूली नहीं समातीं। अब उनकी मंशा क्या होती है? ये तो उनका दिल ही जानें। मैं तो बस यही जानता हूं कि सासू मां दामाद जी से अच्छे आचरण और व्यवहार की अपेक्षाएं ही करती हैं। फिर यह भी कि वह बेटी को फूटे भांडू का चना नहीं समझें। उसे अपनी आंखों का तारा बनाए रखें। जो गलत भी नहीं कहा जा सकता है।

अब बात मंशा और आस्था की छिड़ ही गई है तो फिर देश के अनेक आश्रमों जो आज की तारीख में ताजमहल से भी अधिक भव्य और आलीशान होते हैं उनमें जीवन-यापन करते बाबाओं को भी खंगालते चलें। जो बेशक कुंभ के मेले में दिखने वाले बाबाओं से कहीं अधिक तपस्वी, ज्ञानी और हृदय तो जैसे अमृत वचनों से लबालब होता है। उनकी वाणी जैसे जाम में मय छलके। बड़ी-बड़ी ज्ञान की शिक्षाप्रद बातें थोड़ा-सा ग्रहण कर ही लेंगे तो उनका क्या बिगड़ जाएगा। मगर वे तो श्राप दे रहे हैं... बड़े पूंजीपति घरानों को। नाकों चने चबवाने की बातें कर रहे हैं, क्योंकि उनको देश की, राजनीति की और जनता की सेहत की खूब चिंताएं घेरे रहती है। उनको यह भय सताते रहता है कि विदेशी कंपनियां देश को ओर

देश की जनता को लूट रही हैं। उनको दवाइयों के नाम पर कंगाल बना रही हैं। अब भला जो बाबा लोग देश को दुनिया को धरती से महासागरीय जहाजों तक पर पूरे तामझाम के साथ योगा, प्राणायाम और व्यायाम को परोस रहे हो और उनकी देवताओं सी वाणियों पर चैनलों के कैमरे मोरनी से चारों



ओर के नजारे दिखा-दिखाकर करोड़ों के विज्ञापन लूट रहे हों, फिर भला बाबाओं के हाथों में खुजली क्यों न हो? यों भी हमारे देश में दूसरों को गरियाने का मजा लोग रस ले-लेकर सुनते हैं।

अब आपको क्या करना है? बाबा जी के आस्था से स्वयं को जोड़िए और उनकी मंशा को जाने-अंजाने समर्थन दीजिए और सब कुछ हजम कीजिए। केवल योगा और प्राणायाम से लाभ न मिले तो फिर बाबा को देख ही रहे हैं योगासन के साथ-साथ सुबह शाम जड़ी बूटियों के बखान में जमीन आसमान एक किए दे रहे हैं। पहले इसके गुणों को जानिए फिर सेवन कीजिए। यह बात भूल से भी मन में न लाइए कि ये औषधियां अंग्रेजी दवाइयों से कई गुणा अधिक महंगी तो नहीं है? वरना बेशक पाप के भागी होंगे आप।

आपके लिए चिंता की कोई बात नहीं। देश हो या विदेश हर जगह एक-एक बाबा के कई एक आश्रम और असंख्य दुकानें खुल गई हैं। जिसे देखकर पूंजीपतियों की नींद जरूर हराम हो गयी होगी कि

उनको कमबख्त अक्ल क्यों न आयी? सारी जड़ी बूटियों के पेटेंट अपने नाम करा लिया होता तो आज बाबा गरिया तो नहीं सकते थे न? जो अब बाबाओं की बन आयी है। ये जड़ी बूटियों के पाठ भी कंठस्थ करा रहे हैं। तिस पर बाबा यह भी चिल्ला-चिल्ला कर बताना नहीं भूलते कि इसके अलावा सारी दवाइयां सेहत और शरीर दोनों के लिए हानिप्रद है। इसलिए आज ही से आप मेरे अत्याधुनिक और विश्व के एकलौते विश्वसनीय और सर्वाधिक विशाल औद्योगिक ईकाई की आस्थापूर्ण चूर्ण ही उपयोग करें। सदा स्वस्थ एवं मस्त रहें।

हमारे बाबा को यकीन है कि मेरे प्रोडक्ट कतई महंगे नहीं हैं। देश की जनता नब्बे रुपए किला अरहर दाल खा सकती है फिर भला ये औषधियां क्यों नहीं? जो हिमालय के जंगलों में छितरायी हैं। जहां से बस बटोर कर लाना है। जैसे चालीस साल पहले लोग दिशा मैदान के लिए वनों और बीहड़ों में जाते और लौटते समय आम, जामुन, महुआ आदि चुनकर ले आते। जिसके लिए कोई दाम-बट्टा तो लगता नहीं। लेकिन बाबा तो आखिर बाबा है। उनको आश्रम को स्वर्ग बनाना है। धन्ना सेटों से दान लेना है, फिर उनको धरती पर स्वर्ग की सैर करानी है। अब इस स्वर्ग की सीढ़ियां दान के कैसे पैसों से बन रही हैं। यह दान देने वाला और बाबा ही जानें। हमें क्या लेना। भई! हम तो बस इतना जानते हैं कि जब दवाइयां सस्ती थीं तो लगता था कि रोग में लाभ हो रहा है लेकिन जिस दिन से दिन दुनी और रात चौगुनी गति से कीमतें बढ़ी हैं। तब से लगता है कि अब रोग नहीं दवाइयां ही पकड़ से बाहर होती जा रही हैं। फिर भी जय हो बाबा की...मूर्ख देश की जनता की. . . ।

संपादक कथासागर
प्लॉट-6, हारून नगर, फुलवारी शरीफ, पटना

राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

साहित्य जगत के वट वृक्ष

कबीरदास जी ने सही कहा है कि 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर, पंछी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।' बड़प्पन किसी के काम न आए तो उसका क्या लाभ? उस पर विडम्बना यह कि खजूर को वट वृक्ष का भ्रम हो जाए फिर तो भगवान ही मालिक है। यूँ वटवृक्ष एक तरह से गुणों का सागर (भंडार) होता है पर एक दुर्गुण या दोष उसके गुण-सागर को ठहरे हुए सड़ते पानी का संकुचित पोखर जैसा बना देता है। वह दोष है अपनी छाया (प्रभाव क्षेत्र) में अन्य पौधे को न पनपने देना। वटवृक्ष की तरह पीपल भी अपने बड़प्पन की कैद में घिर जाता है। शास्त्रों में भले ही पीपल को देव वृक्ष माना गया हो, आम लोगों में यही माना जाता है कि पीपल पर भूतों का डेरा होता है।

बरगद और पीपल जैसी नियति साहित्यिक जगत में भी देखने को मिलती है। साहित्यिक भूमि पर दूर-दूर तक अपनी जड़ें रोपे ये बरगद और पीपल बड़े होकर भी किसी के काम नहीं आते। न कोई इनके पास फटकता है, न इनकी लकड़ी रोटी सेंकने के काम आती है। इन पीपलों पर भूत दृष्टिकोण इस कदर हावी रहता है कि उन्हें वर्तमान में नए अंकुर मौसमी हरियाली नज़र आते हैं। जबकि मौसमी हरियाली सबकी आंखों को भाती है। वैसे बरगदों और पीपल की संख्या थोड़ी ही होती है पर ये हर गांव, हर कस्बे, हर नगर में दो-चार की संख्या में मिल ही जाते हैं। इनकी स्वभावगत विशेषता होती है कि ये अपनी नीचे घास भी नहीं जमने देते। अब यह बात दूसरी है कि इनके न चाहने पर भी कुछ हम जैसे बेशर्म-से पौधे बिना खाद-पानी के भी इनके आस-पास ही हरियाते रहते हैं।

इन वट वृक्षों और पीपलों में एक विशेषता और भी होती है ये जहां एक बार जड़ें जमाना, अपना विस्तार करना होता है

भले ही आश्रय स्थल खण्डहर में बदल जाए। अगर कोई संस्था इनकी प्रवृत्ति को भांपकर इन्हें जड़ें जमाने से पहले ही उखाड़ फेंके, तो ये उसके जानी दुश्मन बन जाते हैं और समानान्तर गोष्ठी-संगोष्ठी कर अपने मन की भड़ास निकालते रहते हैं। ये अपनी 'अढ़ाई लेडी कौ कौंडो' हमेशा अलग ही जलाए रहते हैं।

इन्हें दूसरी संस्थाओं से जन्मजात बैर



होता है क्योंकि ये कभी-कभार खुद ही कोई संस्था अवैध संतान की तरह पैदा तो कर देते हैं, पर उसको पाल-पोस नहीं पाते और यह संतान अनाथालय (सरकारी संरक्षण) और अनुदान न मिलने के कारण एक वसंत भी नहीं देख पाती है। खुद संतानहीन (संस्थाहीन) होने के कारण दूसरों की पाली-पोसी संतानें (संस्थाओं) की बढ़ती उम्र देखकर इन बांझों के सीने पर सांप लोट जाता है। ईर्ष्या रूपी सांप के जहर में बिंधे ये विषबुझे पुरुष अपना जहर गाहे-बगाहे उगलकर अपनी जलती आत्मा को शांति पहुंचाने की कोशिश कर खुद ही अपनी पीठ भी थपथपा लेते हैं।

जब वट वृक्षों की आयु बढ़ती है तो बाहरी विस्तार जरूर बढ़ जाता है पर इनका तना अंदर से खोखला होने लगता है। अगर किसी का शरीर भले ही हृष्ट-पुष्ट हो पर दिमाग खोखला हो जाए तो वह प्रलाप करने

लगता है। कहते हैं कि आदमी साठ साल का होने के बाद सठिया जाता है और सत्तर वर्ष का होने पर गठिया जाता है। पुराने पेड़ों में गांठें पड़ जाती हैं और उनके पत्तों तक ताजा रस नहीं पहुंच पाता। यही स्थिति साहित्यिक जगत में व्याप्त खोखले हो चुके वटवृक्षों की होती है। जब ये खोखले हो जाते हैं तो सबसे पहले गोष्ठियों में जाना बंद कर देते हैं क्योंकि ताजा कुछ होता नहीं है बासी हो चुकी रचनाएं कोई कब तक सुने। खाना भी कितना ही अच्छा क्यों न हो, बासी हो जाने पर फेंकना ही पड़ता है। सो अपने मन की भड़ास ये साहित्यिक कार्यक्रमों एवं गोष्ठियों की आलोचना करके निकालते हैं कि इनमें कोई श्रेष्ठ रचनाएं नहीं पढ़ी जाती हैं।

आखिर ये क्यों भूल जाते हैं कि सभी साहित्यकार पंत, निराला, प्रसाद, महादेवी या प्रेमचंद आदि नहीं होते। गली, मुहल्ले, गांव, देहात में आदमी टूटे-फूटे शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्त करने के लिए कोई रचना गढ़ता है और दूसरों को सुनाकर संतोष का अनुभव करता है। उदार, समझदार श्रोता भी उसमें मीन-मेख न निकाल वाह-वाह का खाद पानी देकर नए अंकुर को बढ़ने में सहायक होता है। न कि आलोचना का तुषारापात कर उसे सुखा देता है। इन वट वृक्षों की चाहत और भी होती है, ये चाहते हैं कि लोग इन्हीं की परिक्रमा लगाते रहें, इन्हें ही पूजते रहें। अगर कोई दूसरे वृक्ष की पूजा कर दे तो ये जलकर अंगार हो जाते हैं और पुज्य-पूजक दोनों की बखिया उधेड़ने में जुट जाते हैं। मुंह पर बधाई देते हैं और पीठ पीछे निन्दा करते हैं यानी 'मुंह में राम बगल में छुरी।' चेहरे पर कई मुखोटे लगाए आत्मरति के शिकार इन वट वृक्षों को दूर से ही प्रणाम।

शिवनगर कालोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

दिनेश चन्द्र झा 'प्रवासी'

साधारण-असाधारण

सुख-दुःख में जो समभाव रह लेते हैं वे असाधारण जन कैसे होते हैं? क्या उनके भी दो हाथ, दो पैर, दो कान होते हैं? मैं ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गया हूँ। हर जगह साधारण जन ही मिले-बिजली चोरी करने वाले, उधार लेकर न लौटाने वाले, मित्र के फोन पर शहर के बाहर तड़तड़ बीस-तीस फोन कर लेने वाले, बिना आरक्षण के रेल के आरक्षित डब्बों में बेलाग घुस जाने वाले। अब देखिए, मेरे एक मित्र संपादक ने विशेषांक के लिए कहानी मांग कर नहीं छापा तो मुझे जूलियस सीजर ब्रूटस प्रसंग याद आ गया। पत्रिका की दुकान पर अपनी कथा विहीन अंक देख कर लौटा तो इतना उद्विग्न था कि चार कदम चलते ही मोपेड समेत सड़क पर लुढ़क गया। पैर हाथ छिल गए। थोड़ा खून-सून भी बहा। कपड़े सड़क की गंदगी में लिसड़ गये। कहीं हड्डी-सड्डी ते नहीं टूटी? ऑर्थोपेडिक्स के पास गया तो उन्होंने बिना छुए ही कह दिया-हिंदी के लेखक को हड्डी होती भी है? नहीं होती है तो प्रेमचंद ने कैसे लिख दिया था-मनुष्य को सबसे बड़ा आघात अपनों से ही मिलता है। एक चिड़ियाघर में एक बार एक कौतुक देखा था। दर्शकों के चिढ़ाने पर बाड़े के भीतर का बंदर किटकिटा कर दौड़ता, दौड़ता और बंद बाड़े से आगे न आ पाता। क्रोध में वह अपने ही तन को काटकर लहलुहान कर लेता। संपादक मित्र से छला मैं स्वयं में उस नपुंसक आक्रोश की बंदर छवि पा रहा हूँ। खुद को काट खाऊँ तो आश्चर्य नहीं।

गिरकर मर जाता या अस्पताल में भरती होना पड़ता तो शहर संवाददाता के लिए स्टोरी बनती। घर आ गया तो कोई मित्र तक हाल पूछने नहीं आया। यों भी, मैं इतना निरर्थक हूँ कि महीनों न कोई मिलने आता है न फोन करता है। इस पर कुढ़कर एक दिन मनोयोग पूर्वक एक कविता लिख

डाली और श. को सुनायी तो कविता पर मंतव्य देने के बदले उसने आधार पर ही चोट कर दी- जिनकी उपेक्षा पर आपने कविता लिखी है आप स्वयं उन्हें याद करते



हैं? कबीर कह गए हैं- बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय. . .।

श. अगला बंध उगलती या इसकी व्याख्या करती है कि मैं उखड़ गया-मुझे तो यह वाणी ही बड़ी बेतुकी लगती है। होना चाहिए, भला जो देखन मैं चला भला न मिलया कोय। दूसरी पंक्ति ज्यों की त्यों रखी जा सकती है- जो दिल ढूँढ़ा अपना मुझ सा बुरा न कोय। बुरा कोई दुर्लभ जीव है, कि टार्च लेकर ढूँढ़े फिरो? आसपास, नीचे-ऊपर अगल-बगल चारों तरफ तो स्याही ही स्याही है। ये बुरा, वे बुरे, मैं बुरा, तुम बुरी।

बोलकर मैं डर गया। औरत को बुरी कहो तो इसका एक ही अर्थ निकलता है। पुरुष के लिए वह गर्व की चीज है। औरत के लिए गाली है। सच हो तब भी, झूठ हो तब भी।

श. ने मुझे बख्शा नहीं। दूर से निशाना साधा-आप भला तो जग भला। वह मुझे घुमा फिराकर बुरा कह रही थी। पहले भी कबीर की पंक्ति उद्धृत कर लगभग कह ही चुकी थी।

चोट करने के लिए ही नहीं आत्म स्वीकृति के लिए भी भाषा सबसे बेधक औजार है। और इंकार के लिए तो वह मकरध्वज है। नकारते हम हैं। दोष किसी और का लगा देते हैं। और कुछ नहीं तो परिस्थितियों का ही। मित्र संपादक ने बिन टोके ही सफाई दे दी-स्थानाभाव था। कई और रचनाकारों की रचनाएं भी जाने से रह गई। अगर वह सच कहता तो उसे कहना पड़ता-प्यारे, तुम्हारी कहानी दो कौड़ी की भी नहीं थी।

भाषा जब भी पैदा हुई होगी, उसका छद्म भी उसके साथ ही पैदा हुआ होगा। शिकार करने के लिए जब पहली बार आदम ने हौआ से साथ चलने का अनुरोध किया होगा, तो न जाने की इच्छुक हौआ की सहायता भाषा ने ही की होगी- आज जी ठीक नहीं है।

आज निहितार्थ वाले कथोकथनों का अवसर नहीं है। शरीर से अधिक मेरा मन संतप्त है और पास बैठी श. को मैंने पूरी उबाल-उत्तेजना के साथ अपनी व्यथा सुना दी है। उससे ही मैंने जानना चाहा- प्रतिशोध कैसे लिया जाय। वह नीतिकार की मुद्रा में आ गई है-जो ताको कांटा बुए ताहि बोउ तू फूल. . .।

ईश्वर (यदि है) तो वह रोज हमारे जीवन में कांटे बोता है। हम रोज उसे फूल चढ़ाते हैं। यह हमारी महानता नहीं लाचारी है। हम ईश्वर का कुछ बिगाड़ नहीं सकते, उससे डरते हैं। लाचारी महिमा मंडित करने की चीज नहीं है। असाधारणता मुझे काटने दौड़ती है। मैं साधारण ही रहना चाहता हूँ- ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध आदि से भरपूर। हिंदी के तालव्य 'श' के लिए थोड़े से प्यार से भी। भवानी भाई मेरे आदर्श हैं-मैं जड़ हो जाना चाहता हूँ। चेतन से मुझे नफरत है।

प. सं.-4, रामनगर (नाला पार)
हजारीबाग-825301 (झारखण्ड)

चन्द्र प्रकाश भाटिया

स्थानांतरण शास्त्र

इस शास्त्र को हिंदी में स्थानांतरण शास्त्र, उर्दू में तबादलानामा और अंग्रेजी में ट्रांसफरलोजी भी कह सकते हैं। इस बृहद शास्त्र की आवश्यकता मुझे तब महसूस हुई जब मेरा भी स्थानांतरण हुआ। वैसे इस महान शास्त्र को कलमबद्ध करने की आवश्यकता किसी विद्वान ने नहीं समझी। अतः इस महान कार्य को करने का बीड़ा मैंने ही उठाया।

शायद ऐसे किसी शास्त्र की आवश्यकता हमारे ऋषि-मुनियों को पड़ी ही न हो। उन्होंने तो बस एक ही ट्रांसफर को ज्यादा महत्व दिया जो कि इहलोक से परलोक को होता है और स्थायी होता है। वैसे अपने हिसाब से आत्माओं की पोस्टिंग विभिन्न जीवों में कराने की बात कही गई है। विभिन्न जीवों के चौरासी करोड़ कैंडर होने की बात भी कही गई है। धर्मशास्त्रों ने छोटे-मोटे ट्रांसफरों का भी जिक्र किया है, जैसे ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ आश्रम और फिर वानप्रस्थ आश्रम आदि। परंतु इनकी सेवा-अवधि भी 25 वर्ष थी। संभवतः इसी का हवाला देकर आज भी स्वामिभक्त सेवक इतने ही वर्षों तक मनचाहे स्थान तक जमे रहना अपना धर्म समझते हैं।

स्थानांतरण करते रहने की आवश्यकता पर आचार्य कौटिल्य ने थोड़ा संकेत किया है, पर इतने गौण विषय पर उन्होंने कोई शास्त्र नहीं रचा। लंबे समय के बाद बादशाह शेरशाह सूरी ने इस विषय पर थोड़ा ध्यान दिया और जैसा कि इतिहासकार बताते हैं, उसने तीन वर्षों का अंतराल तय किया जो आज भी एक मानदंड है। बादशाह अकबर के शासनकाल में तो राजा टोडरमल मानो सरकारी कर्मचारियों के पीछे ही पड़ गये थे। अंग्रेजों के शासन काल में इस शास्त्र ने विशेष उन्नति की। आधुनिक काल में इसकी महत्ता असंदिग्ध है। वर्तमान समय में इस शास्त्र के विशेष ज्ञाता उत्तर प्रदेश में हैं।

सुबह-शाम होने वाले स्थानांतरण से तंग आकर कई अधिकारी न्यायालय की शरण में हैं। सुना है कि विश्व बैंक ने अधिकारियों के स्थानांतरण का विकास कार्यक्रमों पर होने वाले असर पर एक शोध के लिए इसी भाग्यशाली को चुना है।

जैसा कि मैंने जिक्र किया है कि मेरा भी स्थानांतरण हुआ। हर सप्ताह आने जाने की प्रक्रिया में कई चेहरे परिचित से लगने लगे। धीरे-धीरे पता चला कि वे भी मेरी तरह विभिन्न विभागों के स्थानांतरित लोग हैं। उनमें से अधिकांश चेहरे पर मायूसी छाई रहती। वे अन्य यात्रियों से कम ही बोलते। उन्हें मोटे तौर पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में वे लोग थे जो तुरंत ही स्थानांतरित हुए थे और पहली बार स्कूल जा रहे बच्चों की तरह विचलित रहते। वे अपनी व्यथा हर किसी को यहां तक कि चायवाले और रिक्शवाले को भी सुनाने को व्याकुल रहते। दूसरे वर्ग में वे लोग थे जो स्वभावतः एक जगह पर टिक नहीं पाते थे। ऐसे लोग तबादलों के अभ्यस्त से हो गए थे और उन्हें इस प्रक्रिया में मजा भी आने लगा था। तीसरे वर्ग में कुछ मध्यम स्तर के अधिकारी थे जो कि कुछ ऐसा उदासीन सा मुंह बनाए रहते जैसा कि सहशिक्षा में छात्राएं किया करती हैं। शायद वे पिछली पोस्टिंग और उससे प्राप्त जायज-नाजायज फायदों के बारे में सोचते रहते। अपने बारे में कोई सूचना इतना आश्वस्त होने पर ही देते कि पूछने वाला व्यक्ति भी अधिकारी स्तर का ही है।

कभी कभार इन दुखी आत्माओं में से कोई अचानक अनुपस्थित हो जाता। शेष सभी यह जिक्र करने लग जाते कि शायद उसका स्थानांतरण हो गया। उसके विभाग के व्यक्ति से जानकारी लेने को सभी उत्सुक हो जाते। यह मालूम होने पर कि वह वास्तव में बीमार है, सभी चैन की सांस

लेते। वैसे इस दैनिक-साप्ताहिक यात्रा के अपने फायदे भी हैं। बसवाले, चायवाले और रिक्शवाले इस तरह पहचानने लगे थे मानों हम उनके धंधे में ही हों। अतः तमाम परेशानियों के बावजूद यह एक प्रकार की उपलब्धि थी।

इन सभी भुक्त-भोगियों के बीच चर्चा का एक ही विषय रहता - स्थानांतरण। किसी भी अन्य मुद्दे को वे स्थानांतरण से जोड़ कर ही देखते। तबादले के कारण अलग-अलग से पर लक्ष्य सबका एक ही था। अतः स्थानांतरण के विभिन्न पहलुओं पर गूढ़ चर्चाएं होतीं। मुझे समझ में आने लगा था कि इस गूढ़ विषय के कितने अंग हैं। इसमें पहला था पैरवीशास्त्र या पंहुचशास्त्र जिसकी कृपा से आप मिनटों में मनचाही जगह जा सकते थे। जातिशास्त्र भी कम महत्वपूर्ण न था। आने वाला अफसर किस जाति का है किन जातियों के समीकरण किन जातियों के साथ नहीं बैठते, यह मुझे पहली बार ज्ञात हुआ। हस्तरेखाओं और ज्योतिष शास्त्र का विशेष महत्व था, मानो राहु-केतु और शनि-मंगल को और कोई काम ही न था। मुझे पहली बार पता चला कि मेरा स्थानांतरण इन्हीं ग्रहों की साजिश का परिणाम है। चिकित्साशास्त्र की महिमा अपरंपार थी। किसी की बीमारी का वास्तविक या काल्पनिक प्रमाण-पत्र उपलब्ध हो जाना तुरूप के पत्ते सी चाल मानी जाती थी। एक सहयात्री ने मुझे बताया कि किस तरह जानवरों की दवाईयों के जानकार ने अपने इसी गुण पर स्थानांतरण करवाया। कुछ लोग सांकेतिक रूप से अर्थशास्त्र की भी चर्चा करते। इसके अलावा तर्कशास्त्र, यूनियनशास्त्र तथा वास्तुशास्त्र भी कम महत्वपूर्ण न थे। संक्षेप में भक्तिशास्त्र से लेकर पाकशास्त्र तक की अपनी महत्ता थी और ये सब

शेष पृष्ठ 104 पर. . .

शरद सिंह

बिन अधिकारी सब सून

गरीबदास जी को गधे से बड़ा लगाव है। यह लगाव कोई आजकल का नहीं है बल्कि उन्हें तो अपनी बाल्यावस्था से ही गधे के प्रति अगाध प्रेम रहा है। इसी कारण जब उनके मास्टर जी उन्हें ककहरा पढ़ा रहे थे तो मास्टर जी ने बालक गरीबदास से कहा, 'बोलो बेटा, 'ग' से गगरी।' तो, गरीबदास जी के मन में प्रश्न उठा कि 'ग' से गगरी ही क्यों गधा क्यों नहीं? और, यही प्रश्न जब उन्होंने अपने मास्टर जी से पूछा तो मास्टर जी झल्ला कर बोले, 'अबे गधे! व्यर्थ की बहस मत कर, जो मैं कहता हूँ उसे दोहरा। बोल 'ग' से गगरी।'

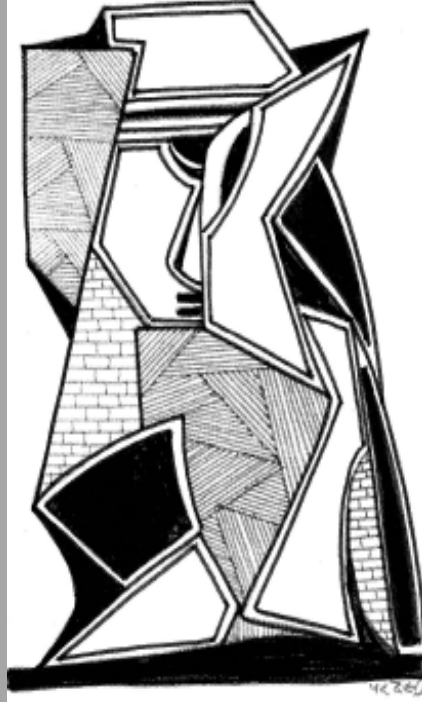
डांट खाकर गरीबदास जी ने ऊपर से तो 'ग' से गगरी तो बोल दिया लेकिन मन ही मन दुहराते रहे 'ग से गधा, ग से गधा, ग से गधा।'

गरीबदास जी थोड़े बड़े हुए अर्थात् किसी तरह दो-चार कक्षा ऊपर चढ़े तो उन्हें इस बात का पता चला कि गधा तो अत्यंत विशेष प्राणी होता है। यहां तक कि गधा परीक्षा में आने वाले महत्वपूर्ण प्रश्न बता सकता है। ये बात गरीब जी को इस प्रकार पता चली कि गरीबदास जी के साथ पढ़ने वाले लड़के परीक्षा के दिनों में पढ़ाई करते समय बहुत चौकन्ने रहते। वे जिस समय पढ़ते रहते यदि उस समय कहीं से किसी गधे के रेंकने का स्वर सुनाई दे जाता तो वे झट से कहते— 'यही प्रश्न इम्पोर्टेंट है। ये परीक्षा में जरूर आएगा।'

गरीबदास जी जब अच्छे-खासे बड़े हो गए तब भी गधे के प्रति उनका प्रेम कम नहीं हुआ। फिर भी एक दिन उन्होंने सोचा कि किसी बच्चे से बात की जाए कि आज कल किस ढंग से ककहरा सिखाया जाता है? अब, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में हिन्दी ककहरे का क्या काम? इसलिए उन्होंने किसी घसियारे हिन्दी स्कूल के घसियारे बच्चे से पूछने का निश्चय किया। गरीबदास

जी जैसे ही घर से बाहर निकले कि उन्हें एक गंदा-फंदा-सा बच्चा मिल गया। गरीबदास जी समझ गए कि यह किसी घसियारे हिन्दी स्कूल का छात्र होगा। गरीबदास जी ने लपक कर उसे रोका और उससे प्रश्न पूछना शुरू कर दिया।

गरीबदास जी ने पूछा, 'तुम्हारा नाम?'



बच्चे ने उत्तर दिया, 'रतौने।'

'तुम्हारे पिता का नाम?'

'भगौने।'

'तुम्हारी मां का नाम?'

'तुम्हें क्या करना?' बच्चे ने तू-तड़ाक वाले अंदाज में उत्तर दिया। गरीबदास जी सितपिटा कर बोले, 'ठीक है, ठीक है, तुम्हारी मां के नाम से मुझे क्या लेना-देना? तुम तो ये बताओ कि तुम स्कूल जाते हो?'

'हां, जाते हैं।' लड़के ने शान से कहा।

गरीबदास जी ने आगे पूछा, 'किस कक्षा में पढ़ते हो?'

'तीसरी में।' लड़के ने बताया

'क्या पढ़ते हो?'

लड़का गरीबदास जी का प्रश्न सुनकर पहले तो हंसा फिर अपनी बहती हुई नाक पोंछते हुए बोला, 'ही-ही-ही, पता नहीं।'

'पता नहीं?' गरीबदास जी आश्चर्य से बोले, 'तुम क्या पढ़ते हो तुम्हें पता नहीं तो फिर तुमने पिछली दो कक्षाएं कैसे पास कर लीं?'

लड़के ने बड़ी साफगोई से उत्तर दिया, 'वो तो ऐसे ही पास कर ली। हम मास्टर जी के घर चौका-बरतन कर दिया करते हैं इसलिए मास्टर जी ने खुश होकर हमें ऐसे ही पास कर दिया।'

गरीबदास जी बच्चे की साफगोई से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने बच्चे से बड़े प्यार से पूछा, 'अच्छा, ये तो पता है न कि 'ग' से क्या होता है?'

'ग से होती है गइया।' बच्चे ने तत्काल उत्तर दिया।

बच्चे का उत्तर सुनकर गरीबदास जी खुश हो गए। आखिर उस बच्चे ने भी ग से गए चौपाए को ही चुना। 'ग' से गगरी कहने के बजाए उसने 'ग' से गइया कहा। 'ग' से गधा नहीं तो कम से कम गइया तो थी ही। इस पर उत्साहित होकर गरीबदास जी ने बच्चे से पूछा, और 'अ' से क्या होता है?'

'अ से अधिकारी।' बच्चे ने फौरन कहा।

बच्चे का उत्तर सुनकर गरीबदास जी भौचक रह गए। उन्हें इस उत्तर की आशा नहीं थी। उन्होंने बच्चे से पूछा कि ये किसने सिखाया तुम्हें?

तो बच्चे ने उत्तर दिया कि हमारे मास्टर जी ने हमें सिखाया कि 'अ' से अधिकारी होता है। मास्टर जी ने ये भी कहा था कि— 'अ' से अधिकारी रट ले, जिंदगी

भर उसी के साथ खटना पड़ेगा तुझे। इसलिए हमने रट लिया।'

बच्चे की बात सुनकर गरीबदास जी को उसी क्षण मानो सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया। उन्हें लगा कि 'ग' से चाहे गधा हो या न हो लेकिन 'अ' से अधिकारी अवश्य होना चाहिए और इस प्रकार, ज्ञान का पहला अक्षर अधिकारी से ही शुरू होना चाहिए। इस अधिकारी नामक जीव से जीवन भर पीछा नहीं छूटता है। ये अधिकारी नामक जीव 'साहब जी' के सम्बोधन से पुकारे जाते हैं। जीवन के हर कदम पर छोटे साहब, बड़े साहब, बड़े से बड़े साहब, बड़े से बड़े साहब यानी अधिकारियों की एक लंबी कतार मिलती है। किसी भी काम से चाहे नेता के पास जाओ या अभिनेता के पास, अंततः जाना पड़ता है किसी न किसी अधिकारी के पास। वैसे अधिकारी वह दो-पाया जीव होता है जो शेर जैसे दमदार कर्मचारियों को भी गीदड़ बना देता है। इस दो पाए प्राणी की कार्यप्रणाली सरकस के 'रिंग मास्टर' जैसी होती है। इसके हाथ में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सी.आर. यानी कॉन्फीडेंशल रिपोर्ट यानी गोपनीय चरित्रावली का चाबुक होता है। इसी चाबुक के संकेत पर सभी कर्मचारी करतब दिखाते रहते हैं।

अधिकारी प्रायः धनसम्पन्न प्राणी होता है। इस अधिकारी नामक जीव की जीवनी अर्थात् इसकी जीवन संगिनी भी धन की सम्पन्नता बढ़ाने के लिए इसे सदा प्रेरित करती रहती है। अधिकारी नामक प्राणी की कृपादृष्टि पाने वाले स्वयं का जीवन धन्य समझते हैं और अधिकारी की कृपादृष्टि स्वयं पर बनाए रखने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद से काम लेते रहते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि अधिकारी मेहरबान तो कर्मचारी पहलवान। अधिकारी चाहे तो प्रसन्न होकर खाऊ-पिऊ अनुभाग दे सकता है अन्यथा अप्रसन्न होने पर काला-पानी कहलाने वाले दुर्गम स्थानों पर स्थानान्तरित कर सकता है।

गरीबदास की को यह भी याद आया कि कर्मचारियों को ही नहीं गैर कर्मचारियों को भी इस अधिकारी नामक प्राणी का मुंह जोहना पड़ता है और चरणवन्दन करनी पड़ती है। क्योंकि, यदि राशन चाहिए तो अधिकारी

से राशनकार्ड बनवाओ, दुकान खोलना है तो अधिकारी से अनुमति लो, मकान बनाना है तो अधिकारी के चक्कर लगाओ। यदि अधिकारी से सत्यापित कराए हुए कागजात आपके पास नहीं हैं तो आपके कागजातों की कोई कीमत नहीं है। हर व्यक्ति को अपने जीवन में कभी न कभी किसी न किसी अधिकारी के दर्शन करने ही पड़ते हैं। यदि आय अच्छी है तो आयकर अधिकारी के दर्शन करने पड़ते हैं, विदेश भ्रमण करना है तो स्थानीय अधिकारी से लेकर दूतावास अधिकारी तक के दर्शन करने पड़ते हैं। चोर-डकैतों से पाला पड़े तो पुलिस अधिकारी का मुंह देखना पड़ता है। और, जो कहीं दुर्योग से कवि-लेखक बन गए तो साहित्य अकादमी के अध्यक्षनुमा अधिकारी को सलाम करने में ही भलाई नजर आती है।

इस मानव जीवन में अधिकारी के बिना कोई गति प्राप्त नहीं होती है, बस, दुर्गति ही दुर्गति रहती है। कुछ मिलाकर हाल ये है कि यदि जन्म लो तो पंजीयन अधिकारी के पास दर्ज हो जाओ और मरो तो पंजीयन अधिकारी के पास दर्ज रहो। वरना आपको कोई जिंदा या मूर्दा मानेगा ही नहीं। अर्थात् बिना अधिकारी के आपका कोई अस्तित्व नहीं है।

111, शांतिविहार, रजाखेड़ी
सागर (मध्य प्रदेश)-470004

... पृष्ठ 102 का शेष

अपनी जगह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

वैसे कुछ सहयोगियों का मत था कि शास्त्रों के साथ-साथ शस्त्रों की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका थी और उद्दण्ड लोग जो बात-बात में गोली-बंदूक की चर्चा किया करते थे, के स्थानान्तरण की संभावना कम ही रहती थी।

अभी मेरा परिचय स्थानान्तरण-शास्त्र के प्रारंभिक अध्यायों से ही हुआ है। शायद अगले स्थानान्तरण पर कुछ और अध्यायों से मेरा परिचय हो सके।

टाइप-5, क्वाटर नं. 20, इन्कमटै
13 नंबर टै

साल्ट लेक, कोलकाता-700097 (पश्चिम बंगाल)

txM d ;x dk l Qy fp=.



मनोहर पुरी का नया उपन्यास 'जिन्दगी और जुगाड़' मुड़कर किसी की ओर न देखने, अपने ही जुगाड़ों में व्यस्त, भागते हुए समाज की जीवंत तस्वीर है। सच तो यह है कि आपाधापी के इस युग में व्यक्ति को अपना अस्तित्व बचाने के लिए जुगाड़ का सहारा लेना ही पड़ रहा है। आर्थिक, राजनीति और यहां तक कि शैक्षणिक जीवन भी जुगाड़ पर निर्भर होकर रह गया है। हर एक व्यक्ति दिन भर किसी न किसी प्रकार के जुगाड़ करके अपने जीवन की गाड़ी को धकेलने का प्रयास कर रहा है।

उपन्यास के पात्र रूपचंद को ललितपुर भा गया तो उसने अपनी पत्नी राजरानी से वहीं रह जाने की इच्छा जताई। दोनों ने वहां ऐसा जुगाड़ बिठाया कि आस-पास के गांवों तक की दुनिया बदल गई। उपन्यास में जगह-जगह दी गई उक्तियां अत्यन्त सटीक हैं। ऐसे तीर जो सीधे निशाने पर लगते हैं। भीखू मांझी का परिवार, गायत्री, गंगा, बुआ, अनारो, राम रत्न रस्तोगी, वीरावाली, महेन्द्र प्रताप आदि अनेक पात्र समाज के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति करते दिखाई देते हैं।

बुआ के घुटनों को लेकर भारतीय संस्कृति पर तीखा व्यंग्य करते हुए लेखक कहता है, 'आज बुआ की हालत देखकर कोई अनुमान नहीं लगा सकता कि भारतीय संस्कृति की तरह उनके पुराने घुटनों का अतीत कितना गौरवमय रहा होगा।' लेखक का मानना है कि इस उपन्यास में जीवन के कुछ ही पक्षों को छूना संभव हो पाया है। इस उपन्यास में विश्वविद्यालयों में पनपते माफिया गिरोह और देह-व्यापार स्तर पर तस्करी और राजनीति में लगातार पनप रहे भ्रष्ट गठजोड़ सरीखे कुछ पक्षों को ही मात्र छुआ जा सका है। ये समाज में फलने फूलने वाले कैसर की बानगी मात्र है। लेखक का कहना है कि समाज के किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग ने इस उपन्यास से प्रेरणा लेकर विरोध का एक स्वर भी उछाला तो वह अपने प्रयास को सार्थक समझेंगे। उपन्यास हर तरह से पठनीय व संग्रहीनीय है।

पुस्तक : जिन्दगी औ
लेखक : मनोहर पुरी
प्रकाशक : वंदना बुक एजेंसी, ग्राउंड फ्लोर
109, ब्लाक बी
प्रीत विहार, दिल्ली-92

शामलाल कौशल

तनाव में कुत्ते

आज के जमाने में लोग न तो अपने रिश्तेदारों से इतने दुखी हैं और न ही धन की कमी के कारण इतने परेशान हैं जितना कि वे तनाव के कारण हर समय हाय तौबा मचाते रहते हैं। हर आदमी आज किसी न किसी प्रकार के तनाव का शिकार बना हुआ है। पत्नी तनावग्रस्त है क्योंकि उसका पति उसका ध्यान कम रखता है तथा अपनी मां तथा बहन के बारे में ज्यादा सोच विचार करता है। बाबू तनाव में क्योंकि साहब उसके काम में किसी न किसी प्रकार का दोष निकालकर लेडी स्टाफ के सामने उसकी धज्जियां उड़ाता रहता है। पड़ोसिन इसलिए दुखी है क्योंकि उसकी पड़ोसिन की साड़ी उसकी साड़ी से ज्यादा सफेद है। आजकल बच्चों को जो बैगभर होम वर्क मिलता है उसके कारण हर समय वे किताबों में आंखें गढ़ाए रहने के कारण तनाव में रहते हैं और उनके मम्मी-पापा आधी रात तक उन्हें पास बिठाकर होमवर्क को पूरा करा के जब सुबह स्कूल भेजते हैं और मैडम उस सारे होम वर्क पर काटा लगा देती है तो उससे उन मासूमों का तनाव और भी बढ़ जाता है। आज हम ही नहीं सारा देश तनाव से जूझ रहा है। जब कभी भी देश के किसी हिस्से में दंगे-फसाद वगैरह के कारण तोड़-फोड़ या मारधाड़ होती है तब हमारा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया खबर देता है, स्थिति तनावपूर्ण लेकिन नियंत्रण में है। अब आदमी किस किस के तनाव का जिक्र करे जब सब तरफ तनाव ही तनाव है। अखबार में छपी एक खबर 'तनाव में जी रहे हैं ब्रिटेन के कुत्ते' पढ़कर बहुत अजीब लगा। वहां कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 26 प्रतिशत कुत्ते अपने तनावग्रस्त मालिकों के प्रति वफादारी निभाते हुए ही तनाव से जी रहे हैं। भाई इंग्लैंड वालो! कमाल कर दिया आपने भी। आपने तो सारी दुनिया पर हकूमत की है, तरह-तरह के अविष्कार भी

सुनील चौरे 'उपमन्यु'

युवा कौन?

दो युवा आपस में झगड़ रहे थे। दोनों ही अपने को युवा होने का दावा कर रहे थे। बात बढ़ती गई। भीड़ इकट्ठी हो गई। युवाओं की तू-तू, मैं-मैं सुन एक बुजुर्ग बोले, भाई! तुम दोनों युवा हो, इसका प्रमाण दो।

पहला युवा बोला, दादाजी मैं दंगे करवा सकता हूँ, आग लगवा सकता हूँ। मर्डर कर सकता हूँ। अपहरण, डकैती आदि को अंजाम दे सकता हूँ। आगे कुछ और बोलता कि भीड़ चिल्लाई, हां! हां! तुम ही युवा हो।

बुजुर्ग ने दूसरे युवा से पूछा, तुम बताओ।

दूसरा युवा बोला, मैं बड़े बुजुर्गों के आशीर्वाद से आगे बढ़ना चाहता हूँ। मैं गांधीजी के बताए मार्ग पर चलना चाहता हूँ। मैं अशांति नहीं शांति बनाये रखना चाहता हूँ। मैं हिंसा नहीं अहिंसा का पाठ पढ़ाना चाहता हूँ। दूसरा युवा आगे कुछ कहता, इसके पहले ही भीड़ चिल्लाई, तुम युवा नहीं नपुंसक हो।

रामेश्वर रोड, खंडवा (म.प्र.)

किए हैं, क्या अपने पालतू कुत्तों को भी ठीक तरह से रखना नहीं आता आपको? आप हमारे कुत्तों से कुछ सीखो। घर में चोर आते हैं, चोरी करके चले जाते हैं, फिर भी कोई तनाव नहीं। पुलिस वाले ट्रेंड कुत्तों को वारदात की जगह पर ले जाते हैं, बहुत बार चोर या मुजरिम फिर भी नहीं पकड़े जाते, फिर भी कोई तनाव नहीं। भैया! खुद भी मजे से जियो और कुत्तों को भी मीट खिलाकर, पार्लर ले जाकर, सुबह शाम पार्क में खुली हवा में ले जाकर मजे से जीने दो।

975-बी/20, राजीव निवास
शक्ति नगर, ग्रीन रोड
रोहतक-124001

प्रेम नारायण गुप्ता

युग बदल गया

कल एक अजीब घटना घटी और पूरी दुनिया बदल गई। हुआ यूँ कि कल भगवान का वो कम्प्यूटर खराब हो गया जिसमें हमारे गुनाहों का हिसाब रखा जाता था। इस खराबी के कारण सभी मानव मस्तिष्कों तक ये सूचना संप्रेषित हो गई कि अब भगवान हमारे गुनाहों का हिसाब नहीं रख पा रहा है। देखते ही देखते दुनिया भर के लोग एकदम बदल गए और दुनिया में पाप और अपराध की



बाढ़ आ गई। सरकारें चिंतित हुईं और निर्णय लिया गया कि सभी पुराने कैदियों की सज़ा माफ कर उन्हें रिहा कर दिया जाए और नए अपराधियों को जेल में डाल दिया जाए क्योंकि अपराधियों को देखते हुए जेलखाने कम पड़ रहे थे।

धीरे-धीरे सब शांत हो गया। दुनिया पहले से खुशहाल हो गई है। सतयुग आ गया है... युग बदल गया है।

ए डी 26 सी, पीतम पुरा, दिल्ली - 110034



*With
Best
Compliments*



पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम)

पंजीकृत कार्यालय : ऊर्जानिधि, 1 बाराखंबा लेन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली — 110 001

फोन नं. 011-23456000, फैक्स : 011-23412545 वेबसाइट : <http://www.pfcindia.com>

हम बेहतर कल की संभावना सृजित करते हैं

विश्वनाथ की कविताएं

हँसो हँसो

हँसो हँसो
खूब हँसो

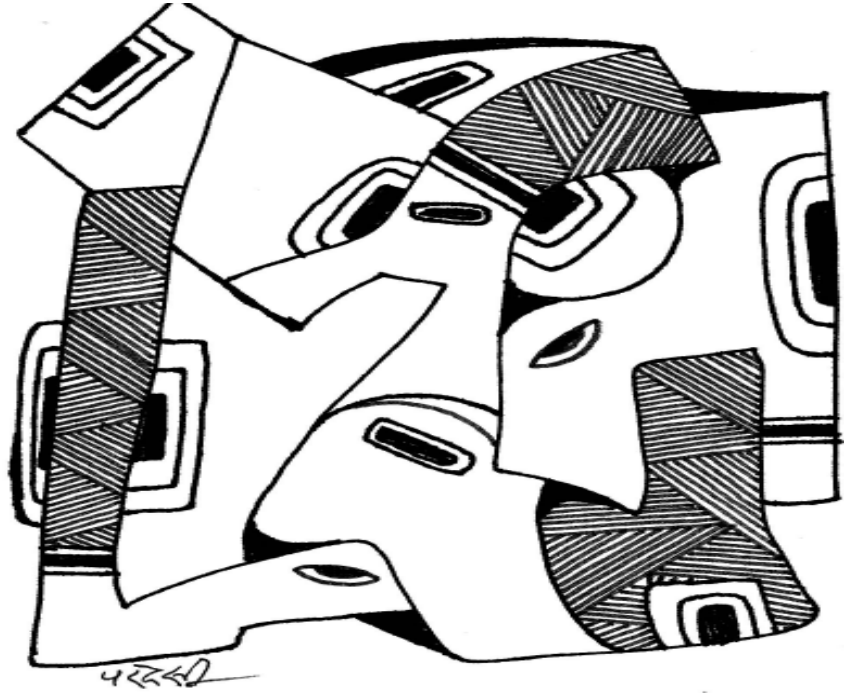
औरों पर
हँसते हो
कभी अपने पर भी
हँसो
अपनी बुद्धिमानी पर
हँसो
अपनी नादानी पर
हँसो
खुद ही जाल बुनो
खुद ही उसमें फँसो

हँसो हँसो
खूब हँसो

अपनी गहराई पर
हँसो
जिसमें डूब उतरा रहे हो
अपनी गुरुता पर
हँसो
जिसके बोझ तले
दबे जा रहे हो

अपनी अक्ल पर
हँसो
कभी अपनी शक्ल पर भी
हँसो
अपनी चतुराई पर
हँसो
उसके कारण बन आई पर
हँसो

हँसो हँसो
कभी अपने पर भी हँसो ।



किसका बुत

यह किसका बुत
लगा रहे हो चौराहे पर

यह तो बेचारा पत्थर है
इसे तो यह भी पता नहीं
किसका बुत है
क्या नाम था उसका, कौन था वह
क्या कुछ किया उसने जीवन में

हां अब पक्षियों को बैठने, सुस्ताने
नित्यकर्म करने का
एक और ठिकाना मिल जाएगा, अवश्य

क्यों लगा रहे हो यह बुत
क्यों दे रहे हो सजा इसे
धूप में तपने
और बरसातें झेलने की।

आदमखोर

जिन्हें आदमी का मांस
लजीज़ लगता है
यह आदिम युग से होता रहा है

यह आज भी हो रहा है
अंतर बस इतना ही है
संभ्रांत लोग
अपने शिकार को
डाइनिंग टेबल पर बुलाकर
मीठी-मीठी बातें करते हुए
बड़े सलीके से, धीरे-धीरे
उसका मांस नोचते हैं
अपनी छुरी-कांटे से

आदमखोर आज भी हैं।

1509, मंदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

राजेन्द्र परदेसी
बाजारवादी युग में

मेरे भाई!
युग के यथार्थ को समझो
व्यर्थ के प्रलाप में
क्यों कर उलझो
लोग तो
सौगंध खाकर
न्याय के मंदिर में भी
झूठ बोलते हैं
और तुम
नैतिकता की गठरी
ढोते फिरते हो
'संतों को
कहां सीकरी सो काम' की भाषा
बोलना छोड़ो
गिरगिट की तरह
रंग बदलना सीखो
बाजारवादी युग में
जी रहे हो तुम
समाज सेवा में भी
खोखा चलता है,
पति के बाद पत्नी को
पिता के बाद पुत्र को
सत्ता फलता है
प्रजातंत्र में
राजतंत्र पलता है
नीतियां बनाई गयीं हैं—
'हरें लगे न फिटकरी
रंग हो चोखा'
नैतिकता के नाम पर
क्यों दे रहे हो
स्वयं को धोखा?
पहले- जुगाड़ करो लासानी
फिर ढोंग रचो
होने का स्वाभिमानी
अन्यथा
पीटते रह जाओगे
राजपथ पर सोट।

बी-1118, इंदिरा नगर
लखनऊ-226016

सूर्य कुमार पांडेय
अलग किस्म के
आतंकवादियों के बीच

वे नहीं चाहते
मैं हंसूं
नहीं चाहते
कि गाऊं
मेरी शांति
उनके कोलाहल में
विघ्न है
मेरा ध्यान
उन्हें डराता है
मेरे चिंतन से
कांपने लगते वे
मुट्ठियों पर रख देते
दर्द के सिक्के
कि मैं और छटपटाऊं

सांपों का नहीं
मनुष्यों का डंसा मैं
स्वार्थी, लोभी, दुष्ट, मूर्ख, कपटी
लोगों के बीच फंसा मैं

रोटी ने बांध रखे हाथ
पांवों में बेड़ियां
जिम्मेदारियों की
छटपटाहट भरी सीने में
एक अलग किस्म के
आतंकवादियों के बीच
प्रतिदिन मैं

बेईमानों ने मिलकर
एक ईमानदार को
और ईमानदार बनाने का
षडयंत्र रचा है
बचा सको
तो बचा लो
स्वयं को पांडे जी!

538क/514
त्रिवेणी नगर द्वितीय
लखनऊ (उ.प्र.)-226020

हलीम आइना
ए.पी.ओ. होने का मजा

खामोश! चुपकर!!
कर्तव्यपरायणी अफसर
बाबू बंशीधर
'गांधीगिरी' में
मत बन बावला,
'चालूगिरी' सीख
बन स्वार्थी कांवला।

देख लेना— ए.पी.ओ. होकर
तू एक दिन
पैपरवेट से अपना ही
माथा फोड़ेगा।

यादकर— बेटा बंशीधर!
'नमक का दरोगा' बनकर
तूने आजादी से पहले भी
भुगती थी।
ईमानदारी की सज़ा।
अब बूढ़ी हो चुकी
आजादी के बाद भी
सहर्ष भुगत,
यही है भारत मां के सच्चे ईमानदार
बेटों की किस्मत।

फर्क इतना—सा है
अब— दिखाई नहीं देता कहीं
लक्ष्मीपुजारी पंडित अलोपीदीन
जो अपनी आत्मा के
धिक्कारने कर
पश्चात के आंसु लिये
चला आयेगा तेरे पास,

तेरी ईमानदारी से प्रभावित होकर
अपनी स्थायी सम्पत्ति का
मैनेजर नियुक्त करने के
शपथ-पत्र के साथ. . .?

निकट, बी.एड. कॉलेज, सकतपुरा
कोटा (राजस्थान)-324008

अरुण सेदवाल

कविताएं

वर्षों बाद

बहुत वर्षों के बाद
उसे देखा
कंवर लाल को
उसी नीम के पेड़ तले
चबूतरे पर बैठे
निर्भाव निश्चेष्ट
उम्र अस्सी के पार
हड्डियों पर ढीली-सी
लपटी हुई चमड़ी
घुटनों पर रखे
जुड़े दोनों हाथ
मांगते जैसे अभयदान
हर किसी से

तुमने मुझे इतनी लंबी
उम्र क्यों दे दी, बाबू
कैसे काटूंगा?

फिर उसने फैला दी
दाएं हाथ की हथेली
जिस में थी
लंबी उम्र की रेखा
और मलने लगा
अपने दोनों हाथ
निहारते हुए
नीम की डाल पर बैठे
काले कौवों को!

खाली हाथ नहीं

क्यों करते रहते हो
नित ही उठापटक
कंवर लाल?
जानते नहीं तुम
खाली हाथ आए थे
और खाली हाथ जाना है

साथ कुछ भी
नहीं ले जाना है।

यह बात तो
सच नहीं है, बाबू?
कोई नहीं आता खाली हाथ
किसी के हाथ में होते हैं
सोने-चांदी के चम्मच
तो किसी के हाथ में
हल-कुदाल
और किसी के हाथ में
भीख मांगने के कटोरे
मैं जब पैदा हुआ
तो मेरे हाथ में था
एक टुकड़ा जमीन का
और दो बैलों की रस्सी
जब मैं मरूंगा
तो मेरे साथ जाएंगे
बड़े-बड़े खेतों के सपने
साहूकार के कर्ज का बोझ
और
बच्चों के लिए छोड़ा गया
विपन्नता का संताप
नहीं जाऊंगा, बाबू
यहां से मैं खाली हाथ!

भगवान

जीवन में तुम्हें
क्या चाहिए, कंवर लाल?
जो कुछ चाहिए वह
संसार के मालिक
भगवान से क्यों नहीं मांगते?
थोड़ी प्रार्थना करो
मंदिर जाओ
मन्नत करो, प्रसाद चढ़ाओ
वे बहुत दयालु हैं
सर्वशक्तिमान हैं
न्यायप्रिय हैं

अवश्य पूर्ण करेंगे
तुम्हारे इच्छित कार्य।

भगवान से
क्या मांगना, बाबू?
यदि मन्नत-चापलूसी करने से
कर देते हैं किसी के भी
इच्छित कार्य,
तो वे कैसे हुए भगवान?
और यदि
मन्नत-चापलूसी करने पर भी
नहीं कर सकें
चापलूसों के मनचाहे काम
तो भी फिर
कैसे हुए वे भगवान?

बदबू

कंवर लाल
तुमको पकड़ने के लिए
सिपाही आए हैं थाने से
कहते हैं
तुम बहुत
बदबू फैलाते रहते हो

क्या कहते हो बाबू?
मेरे पादने की बदबू तो
मेरी झोंपड़ी के बाहर भी
नहीं जाती
जब बड़े-बड़े लोग पादते हैं
तो बड़ी-बड़ी
फैक्ट्रियां खुल जाती हैं
और उनकी बास से
बहास-रिसाव से
उजाड़-बसाव से
भले तो कितने ही जानवर
और मर जाएं लोग
सरकार को
छींक तक क्यों नहीं आती?

रघुनंदन चिले

बहुत बोलने लगे हो

बहुत
बोलने लगे हो
तुम
कंवर लाल
अनाप-शनाप
जो भी
आए मुंह में
बक देते हो
कुछ तो बोला करो
सोच समझकर।

सच कहा
बोलता तो मैं
बहुत हूँ
पर मेरी
सुनता कौन है?

गदर मची है

कुत्ते खा रहे खीर, गजब की गदर मची है,
गौदड़ हो गये वीर, गजब की गदर मची है।

सच की फाकामस्ती का है चर्चा घर घर,
झूठ को मिले पनीर, गजब की गदर मची है।

हरिश्चन्द्र अब रोते अपनी हालत पर,
भिखमंगे हुए अमीर, गजब की गदर मची है।

जिन्हें देश की रक्षा के हित चुना गया है,
बेचें वे ही ज़मीर, गजब की गदर मची है।

भीड़ बढ़ी संतों की इतनी लेकिन 'चंदन',
हुआ न कोई कबीर, गजब की गदर मची है।

232, मागंज वार्ड, नंबर-1
दमोह, म.प्र.-470661

शान्ति सुमन

खुशियों की खातिर

बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब
भूखों नहीं मरेंगे लोग
अपने ही सपनों को खाकर
अपना पेट भरेंगे लोग।

घर से सर्द हुए चूल्हे तो
इससे क्या बदहाल हुए
राजकुंवर की अगवानी में
कितने मालामाल हुए

पानी की कीमत पूछेंगे
प्यासे नहीं रहेंगे लोग
पूँछ उठाये मछली जैसे
खुद से जिक्र करेंगे लोग।

इससे क्या आगों की धमकी
मिली आज झोंपड़ियों को
बात-बात में करें उतारा
हम आंखों में परियों को।

कागज के दस्तावेजों से अब
अपनी उमर गढ़ेंगे लोग
पत्थर पर भी खुदी रोटियों
की खातिर ललचेंगे लोग।

कच्चे घर से वर्षा में भी
तने हुए जो हाथ यहां
खुशियों की खातिर के कब से
जूझ रहे हैं यहां-वहां।

बेजुबान इस बस्ती को
अब पूरा मुखर करेंगे लोग
खुशियों को कालेपानी से
वापस वही करेंगे लोग।

लालित्य ललित

कविताएं

नेक्स्ट प्लीज

ऐसा क्यों होता है
मृत्यु को करीब देख
देह को छोड़ना नहीं चाहता मन
मन/चल उस ओर
जहां है एक नया नील गगन
नई बस्ती
और यह रहा तुम्हारा नंबर
मन देखता रहा / शरीर खामोश
आसमान में चमकी बिजली
समझें आपका हो गया पंजीकरण
नेक्स्ट प्लीज!

दुखी लोग

कोई काम कराना हो
ड्राइविंग लाइसेंस / दाखिला स्कूल में
अस्पताल में आपरेशन
दुखी लोग खड़े हैं, कतारबद्ध
नियति है यही उनकी
रहना खड़े कतारबद्ध।

सुखी लोग

पूँजीपति लोग, पूजते पूँजी
धर्मशाला बनवाते,
रक्त शिविर लगवाते
धर्मार्थी बन
टैक्स चोरी कर
प्रभु को सहायता के लिए पुकारते।
और प्रभु!
ऐसे भक्तों को दोनों हाथों से
देता है वरदान
तभी तो कार में सवार
जा रहा है एक सुखी आदमी।

श्याम सखा 'श्याम'

कौन है बेहतर

संसद में जेरे बहस एक मुद्दा है
आदमी बेहतर है कि बेहतर कुत्ता है
यह सवाल शून्यकाल में उठा है।

एक पार्टी कह रही है
कि यकीनन बेहतर कुत्ता है
क्योंकि वो न विपक्ष है
ना ही बेचारा सत्ता है।

यह सुनकर कुछ निर्दलीय सदस्य बिगड़ गए
और गुस्सा कर मेजों पर जूतों समेत चढ़ गए

इस पर अध्यक्ष ने उन्हें शांत करवाया
और एनीमल हसबैंडरी को
जवाब के लिए बुलवाया
वे बोले जहां तक हमारा विचार है
यह सवाल संसद की सीमा से बाहर है
कुत्तों के बारे में
संसद में बहस फजूल है बेमानी है
जबकि सांसदों के अपने दुख है
अपनी कहानी है।
कुत्तों को रोज लड़ने की सुविधा है,
सांसदों को चुनाव लड़ने की दुविधा है
हर पांच साल बाद कभी-कभी पहले भी
जनता बीच जाना पड़ता है
कुत्ते की तरह भौंकना पड़ता है
दुम हिलानी पड़ती है
जनता को वायदों- आश्वासनों
की अफीम पिलानी पड़ती है
जाने क्या-क्या करके सीट बचानी
कुर्सी हथियानी पड़ती है
इस पर टिप्पणी आई
कि मंत्री जी विषय से भटक गए हैं
बात आदमी व कुत्ते की थी
वे सांसदों पर अटक गए हैं
मंत्री जी थोड़ा सकपकाए
मन ही मन झुझलाए
फिर बोले
आदमी को तरह-तरह के

पापड़ बेलने पड़ते हैं
कुत्ते भला कहां ऐसे झंझटों में सड़ते हैं
अधिकांश कुत्ते आजाद हैं
आवारा हैं फालतू हैं
आदमी बेचारे तो सदियों से पालतू हैं

आदमी कितने भी सीधे हों
जिंदगी में कई बार दल बदलते हैं
कुत्तों को पूछ बेशक टेढ़ी हो
मगर वे अपनी नाक की सीध में चलते हैं
राकेट बेशक
आदम जात ने बनाया था
पर उसकी सैर का लुत्फ
सबसे पहले एक कुतिया ने उठाया था
क्या आपने किसी कुत्ते को
दफ्तर जाते कार चलाते या
काम करते देखा है
क्या आपने किसी कुत्ते को
आदमी की मौत करते देखा है
कुत्ते अपनी जिंदगी जीते हैं
अपनी मौत मरते हैं
आदमी कुत्ती शय कहलाते हैं
कुत्तों की मौत मरते हैं
आदमियों में हिंदू हैं सिख हैं
ईसाई हैं मुसलमान है
आदमियों में अब नहीं बचे इंसान हैं।
आदमियों में पंडित है, मौलवी है
खतरी है, बनिए है, मेहत्तर हैं
सच कहूं कुत्ते आदमी से
हजार दर्जे बेहतर है
कुत्तों के न बीवी है न बच्चे हैं
ना सामाजिक जिम्मेदारी है
कुत्ता होना गनीमत है
आदमी होना लाचारी है
संसद में अब भी ये बहस जारी है
कि आदमी होना लाचारी है।

वेद प्रकाश प्रजापति 'अंकुर'

क्षणिकाएं

(1) प्रभुत्व

पार्टी की विशाल रैली
अपने प्रभुत्व को
रही दर्शाती
कि कितने बिमार
लोगों की जानें
हुजूम में फंसकर
अस्पताल न पहुंच
पाने के कारण
रही जाती।



(2) संरक्षण

राजनीतिक संरक्षण
उनको इतना फला
सैंकड़ों अपराध किये
कौन क्या कर सका?

सुर-सदन, डब्ल्यू जै
रानी बाग, दिल्ली-110034

सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र
बेतालघाट, नै

रवि शर्मा

भैंस

भारतीय राजनीति के
पानी में
मजे उड़ा रही है
लोट लगा रही है
जुगाली ला रही है
भ्रष्टाचार की
मरखनी, काली भैंस।
चरवाहा खड़ा है
बाहर असहाय,
कर रहा है विफल प्रयास
उसे बाहर निकालने का।

चर जाती है यह
नैतिकता, ईमानदारी की
हरी घास,
चट कर जाती है
देश-प्रेम, निष्ठा का भूसा।

मोटी होती जा रही
यह भ्रष्टाचार की
मरखनी काली भैंस।

झूठ फरेब के
बड़े-बड़े सींगों से
पटखनी दे डालती है
अपने मालिक को ही
और कानून की लंबी पूंछ से
मक्खियां उड़ा रही है
फर्जी खातों जैसे थन
कितना खींचो निकले न कुछ—
फिर भी देश के हर कोने में
छा रही है—
फूलती-फलती
जा रही है
यह भ्रष्टाचार की
मरखनी काली भैंस।

सुर-सदन, डब्ल्यू जै
रानी बाग, दिल्ली-110034

रामनारायण मीणा हलधर

साधारण लाश

लाशें, कितनी कॉमन हो गई हैं
मोबाइल की सिम की तरह— सर्वसुलभ।
ब्रेकफास्ट से लेकर डिनर तक
हम लाशों से सजे
पृष्ठ पलटते रहते हैं।

सड़क की छाती
तीर्थ यात्रियों की कुचली हुई
आस्थाओं से लहुलुहान,
उमंगों से भरी कुलांचें
भविष्य की उम्मीदें, बुढ़ापे की लाठियां
सभी कुछ जलसमाधियां बन जाती हैं।
ईश्वर इतना निर्दयी तो नहीं हो सकता
वो तो इतना दयालु है
कि एक नवजात के ऊपर से
हजारों टन लोहा गुजर जायें
और एक खरोंच तक नहीं।

परिजनों का हाहाकार,
आंसूओं का सैलाब
और हमारी आंखों की सरस्वती
कब की विलुप्त हो चुकी है।

मंदिर, बाजार, दरगाह, रेल की पटरियां
चारों तरफ बस लाशें ही लाशें
लाशें सड़ रही हैं
कितनी ही उम्मीदें परवान चढ़ रही हैं।

उधर तीन साल का भोलू
रो रोकर पूछ रहा है
'मां बापू कब आयदा'
मां की चेतना,
कष्टों के अथाह महासागर में
हमेशा के लिए डूब चुकी है
तब दादू समझाता है—
'भोलू बेटा बापू तेरे लिए
नौकरी लेने गया है।'

कृष्णानगर, पुलिस लाइन, कोटा (राजस्थान)

विपिन बिहारी 'सुमन'

गुज़ल

(1)

लोग यहां के देखो कितने हैं जाबर,
अपनी मुस्कानों में भी रखते खंजर।
मुझमें और उनमें है बस इतना अंतर,
मैं शीशा हूं उनके हाथों में पत्थर।
उनके शब्द-शब्द रह जायें अनगाये,
जिनमें भावों के न रहते हैं अक्षर।
कल तक चारागर के हाथ मसीहा थे,
हाथ वहीं अब मृत्यु के हैं सौदागर।
तोड़ सका न चांदी की दीवार कोई,
इसके सायें में जो बैठा है अजगर।
पा लेता जो अपने रूतबे से तमगे,
वो नेता होता है या होता अफसर।
बाजारों में खूब खिली है धूप 'सुमन',
लाभ कमाने का अच्छा है ये अवसर।

(2)

सुबह से लेकर संध्या तक हम बस इतना कर पाये हैं,
अपने छलनी-छलनी पावों को घर तक ले आये हैं।
दिन भर अपने पेट की खातिर कलम घिसी है दफ्तर में,
रात-रात भर मंहगाई के घूसे थप्पड़ खाये हैं।
सड़क-सड़क पर शोर मचा है नारों भरे जुलूसों का,
घर की खामोशी में भी फैले ध्वनियों के साये हैं।
कल कुछ भांडों— जैसे फिर गाते घूमंगे गली-गली,
'हम हैं तेरे जात बिरादर वोट मांगने आये हैं।'
मैंने यह महसूस किया है सुनकर उनकी बातों को,
मुझे लूटने आये थे जो वो मेरे हमसाये हैं।
यह कैसा परिवेश हमारा यह कैसी दुनियादारी,
पहने हैं जो हमने कपड़े उन पर रंग पराये हैं।
दोस्त! कोई जब लिए कुल्हाड़ा दिया दिखाई जंगल में,
तब से हरियाली के पंछी लो कितना घबराये हैं।

43/2 सुमनपुरी, सहस्रधारा रोड
देहरादून, उत्तराखण्ड



दिविक रमेश का हिंदी कविता में एक पृथक चेहरा है- केदारनाथ सिंह

‘आधुनिक हिंदी कविता में दिविक रमेश का एक पृथक चेहरा है। यह चेहरा-विहीन कवि नहीं है बल्कि भीड़ में भी पहचाना जाने वाला कवि है। यह संकलन परिपक्व कवि का परिपक्व संकलन है और इसमें कम से कम 15-20 ऐसी कविताएँ हैं जिनसे हिंदी कविता समृद्ध होती है। इनकी कविताओं का हरियाणवी रंग एकदम अपना और विशिष्ट है। शमशेर और त्रिलोचन पर लिखी कविताएँ विलक्षण हैं। दिविक रमेश मेरे आत्मीय और पसंद के कवि हैं।’ ये उद्गार प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह ने किताबघर प्रकाशन से सद्यः प्रकाशित दिविक रमेश के कविता-संग्रह ‘गेहूँ घर आया है’ के लोकार्पण के अवसर पर कहे। विशिष्ट अतिथि केदारनाथ सिंह ने इस संग्रह को रेखांकित करने और याद करने योग्य माना। कविताओं की भाषा को महत्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने कहा कि दिविक ने कितने ही ऐसे शब्द हिंदी को दिए हैं जो हिंदी में पहली बार प्रयोग हुए हैं। उन्होंने अपनी बहुत ही प्रिय कविताओं ‘पंख’ और ‘पुण्य के काम आए’ का पाठ भी किया।

इस संग्रह का लोकार्पण प्रोफेसर नामवर सिंह, प्रोफेसर केदारनाथ सिंह और प्रोफेसर निर्मला जैन ने समवेत रूप से किया। यह आयोजन ‘भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्’ और ‘व्यंग्य-यात्रा’ के संयुक्त तत्वावधान में आजाद भवन के हॉल में सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम की मुख्य अतिथि निर्मला जैन को यह संग्रह विविधता से भरपूर लगा और स्थानियता की सहज पुट के कारण विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण भी लगा। उन्होंने माना कि इस महत्वपूर्ण कवि की ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था उतना नहीं दिया गया। स्वयं मैं नहीं दे पाई थी। उन्होंने ध्यान दिलाया कि केवल ‘गेहूँ घर आया है’ ही में नहीं बल्कि जगह जगह इनकी कविताओं में ‘दाने’ आए हैं। दिविक रमेश के पास एक सार्थक और सकारात्मक दृष्टि है साथ ही वे सहज मानुष से जुड़े हैं। ऐसा नहीं लगता

कि इस संग्रह में उनकी आरंभिक कविताएँ भी हैं। सभी कविताएँ एक प्रौढ़ कवि की सक्षम कविताएँ हैं। एक ऊँचा स्तर है। न यहाँ तिकड़म है और न ही कोई पेच। दिविक रमेश किसी बिन्दू पर ठहरे नहीं बल्कि निरंतर परिपक्वता की ओर बढ़ते चले गए हैं।

कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रोफेसर नामवर सिंह ने कहा कि वे किसी बात को दोहराना नहीं चाहते और उन्हें कवि केदारनाथ सिंह के विचार सर्वाधिक महत्वपूर्ण लगे। उन्होंने यह भी कहा कि वे केदारनाथ सिंह के मत पर हस्ताक्षर करते हैं। संग्रह की ‘तीसरा हाथ’ कविता का पाठ करने के बाद उन्होंने कहा कि दिविक की ऐसी कविताएँ उसकी और हिन्दी कविता की ताकत है और यही दिविक रमेश है। ऐसी कविता दिविक रमेश ही लिख सकते थे और दूसरा कोई नहीं। इनकी शैली अनूठी है। उन्होंने माना कि इस संग्रह की ओर अवश्य ध्यान जाएगा। मैं इन्हें बधाई देता हूँ।

कार्यक्रम का संचालन करते हुए प्रेम जनमेजय ने आरंभ में दिविक रमेश को उनके जन्मदिन की पूर्व-संध्या पर सबकी ओर से बधाई दी। उन्होंने कहा कि दिविक उन्हें इसलिए पसंद हैं कि उनमें विसंगतियों को इंगित करने और उन पर सार्थक प्रहार करने की ताकत है। उनकी कविताओं में घर-पड़ोस के चित्र, गांव की गंध है तो शहर की विसंगतियाँ भी हैं। दिविक की सोच व्यापक है। अपने आलेख पाठ में दिनेश मिश्र ने कहा कि जिन राहों से दिविक गुजरे हैं वो अटपटी हैं। कवि कहीं भी उपदेशक की मुद्रा में नहीं दिखाई देता है।

प्रोफेसर गोपेश्वर ने इन कविताओं को बहुत ही प्रभावशाली मानते हुए कहा कि ये कविताएँ खुलती हुई और संबोधित करती हुई हैं। अकेलेपन या एकांत की नहीं हैं। दिविक रमेश ने काव्य-भाषा में एक नई परंपरा डाली है। उसे रेखांकित किया जाना चाहिए। उन्हें ये कविताएँ बहुत ही अलग और अनूठी लगी। उन्होंने इस बात का अफसोस जाहिर किया कि इस समर्थ एवं महत्वपूर्ण कवि की ओर इसलिए भी अपेक्षित ध्यान नहीं गया क्योंकि साहित्य जगत के उठाने-गिराने वाले मान्य आलोचकों ने इनकी ओर ध्यान नहीं दिया था। सार्वजनिक जीवन की ये कविताएँ निश्चित रूप से अपना प्रभाव छोड़ती हैं। उन्होंने अपनी अत्यंत प्रिय कविताओं में से एक ‘पंख से लिखा खत’ का पाठ भी किया। प्रताप सहगल के अनुसार दिविक रमेश कभी पिछलग्गू कवि नहीं रहा और उनके काव्य ने निरंतर ‘ग्रे’ किया है। ये कविताएँ बहुत

ही सशक्त हैं। प्रणव कुमार बंधोपाध्याय ने संग्रह की तारीफ करते हुए बताया कि वे इन कविताओं को कम से कम 15 बार पढ़ चुके हैं। उनके अनुसार इन कविताओं में समय के संक्रमण का विस्तार मिलता है। संग्रह को उन्होंने हिन्दी कविता की उपलब्धि माना।

इस अवसर पर अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकार और गणमान्य पाठक उपस्थित थे। प्रारंभ में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के श्री अजय गुप्ता ने सबका स्वागत किया।

दिविक रमेश को श्रीमती रतनलाल शर्मा स्मृति बालसाहित्य पुरस्कार

बाल साहित्य में उत्कृष्ट योगदान के लिए दिविक रमेश को 6 अक्टूबर को उनके संकलन ‘एक सौ एक बाल कविताएँ’ पर 15वाँ ‘श्रीमती रतनलाल शर्मा स्मृति बालसाहित्य पुरस्कार-2009’ प्रदान किया गया। मुख्य अतिथि थे- श्री अजित कुमार एवं कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. प्रताप सहगल ने की। पुरस्कार में 31 हजार रुपये की राशि, स्मृति चिह्न एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। निर्णायक मंडल में डॉ. कमलकिशोर गोयनका तथा डॉ. पूरनचंद टंडन थे।

इस अवसर पर आयोजक अपने ‘उद्बोधन’ में कार्यक्रम की गंभीरता के प्रति कम, सभागार में कम उपस्थिति के प्रति अधिक चिंतित दिखाई दिए क्योंकि उनके लिए वे महत्वपूर्ण थे जो नहीं आए, न कि वे जो उपस्थित थे।

व्यंग्य यात्रा परिवार की दिविक रमेश को बधाई।

15वाँ कथा यू.के. सम्मान समारोह

ब्रिटेन के सांसद और पूर्व आंतरिक सुरक्षा राज्य मंत्री टोनी मैक्नल्टी ने ब्रिटिश संसद के हाउस ऑफ कॉमन्स में आयोजित एक गरिमामय समारोह में हिंदी के सुपरिचित कथाकार भगवानदास मोरवाल को उनकी अनुपस्थिति में 15वाँ ‘अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान’ प्रदान किया। किसी कारणवश मोरवाल पुरस्कार लेने लंदन नहीं आ सके। यह सम्मान मोरवाल के नवीनतम उपन्यास ‘रेत’ (राजकमल प्रकाशन) के लिए दिया गया। उनकी ओर से यह सम्मान उनके मित्र और दिल्ली के सांस्कृतिक पत्रकार अजित राय ने प्राप्त किया। इस अवसर पर उन्होंने ब्रिटेन के हिंदी लेखकों के लिए स्थापित ‘पद्मानंद सम्मान’ ब्रिटिश हिंदी कवि मोहन राणा को उनके ताजा कविता संग्रह ‘धूप के अंधेरे में’ (सूर्यासेत्र प्रकाशन) के लिए प्रदान

किया। इस सम्मान का यह दसवां साल है।

टोनी मैक्नल्टी ने लंदन एवं ब्रिटेन के अन्य क्षेत्रों से बड़ी संख्या में आए एशियाई लेखकों और ब्रिटिश साहित्य प्रेमियों को संबोधित करते हुए कहा कि भाषा संगीत की तरह होती है। यदि आप किसी दूसरे की भाषा समझते हैं तो आप जिंदगी की लय को समझ सकते हैं। दूसरों की भावनाओं को समझ सकते हैं। भाषा में आप सपने रच सकते हैं। इस तरह भाषा के माध्यम से आप मनुष्यता तक पहुंच सकते हैं। उन्होंने हिंदी में अपना भाषण शुरू करते हुए कहा कि भाषाओं के माध्यम से हम सभ्यताओं के बीच संवाद स्थापित कर सकते हैं। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं बल्कि आपकी पहचान होती है। उन्होंने कहा कि कथा यू.के. पिछले कई वर्षों से ब्रिटेन में बसे एशियाई समुदाय के बीच भाषा और साहित्य के माध्यम से संवाद स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

लेबर पार्टी की चांसलर और कथा यू.के. की सहयोगी संस्था एशियन कम्यूनिटी आर्ट्स की अध्यक्ष जकिया जुबैरी ने भगवानदास मोरवाल के पुरस्कृत उपन्यास 'रेत' का परिचय देते हुए कहा कि लेखक ने काफी शोध के बाद एक ऐसी कथा पेश की है जिसका समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाना चाहिए। इस उपन्यास में कंजर जाति की स्त्रियां के जीवन संघर्ष का ऐसा प्रमाणिक चित्रण है कि पाठक चकित रह जाता है।

लंदन में नेहरू सेंटर की निदेशक मोनिका कपिल मोहता ने कहा कि कथा यू.के. को अब ब्रिटेन के साथ-साथ यूरोप, अमरीका और अन्य देशों में भी अपनी गतिविधियों की नेटवर्किंग करनी चाहिए। भारतीय उच्चायोग में मंत्री समन्वय आसिफ इब्राहिम ने कहा कि भाषा एवं संस्कृति के बिना जीवन अधूरा है। इसे बचाने की हर संभव कोशिश करनी चाहिए। उच्चायोग के हिंदी एवं संस्कृति अधिकारी आनंद कुमार ने कथा यू.के. के प्रयासों की सराहना करते हुए विदेशों में हिंदी के नाम पर हो रही गतिविधियों में गंभीरता और गुणवत्ता लाने की वकालत की।

कथा यू.के. के महासचिव तेजेन्द्र शर्मा ने 15 वर्षों की कथा-यात्रा को याद करते हुए कहा कि मुंबई से शुरू होकर हम ब्रिटेन की संसद तक पहुंचे हैं। अब हम अपनी गतिविधियों को नया विस्तार देना चाहते हैं। कथा यू.के. आने वाले दिनों में विदेशों में और भारत में हिंदी भाषा और साहित्य से जुड़े कई महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का आयोजन करने जा रही है। इससे विश्व स्तर पर हो रहे निजी प्रयासों की नई नेटवर्किंग सामने आएगी। इस अवसर पर मोहन राणा ने सम्मान

स्वीकार करते हुए अपनी नई कविताओं का पाठ किया। पुरस्कृत उपन्यास 'रेत' पर सुशील सिद्धार्थ एवं मोहन राणा के काव्य संकलन 'धूप के अंधेरे में' पर गोविंद प्रसाद के आलेखों का पाठ किया। इंदु शर्मा की पुत्री दीप्ति कुमार ने भगवानदास मोरवाल और ललित मोहन जोशी ने मोहन राणा का परिचय दिया। मधु अरोड़ा (मुंबई) ने कथा यू.के. 15 वर्षों की यात्रा का विवरण दिया। सरस्वती वंदना जटानील बैनर्जी ने प्रस्तुत की। कार्यक्रम का संचालन किया सनराइज रेडियो के लोकप्रिय कलाकार रवि शर्मा ने।

कथा यू.के. के इस आयोजन में हिंदी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती एवं अंग्रेजी भाषा के लेखक बड़ी संख्या में शामिल हुए। पूर्व पद्मानंद सम्मान विजेता डॉ. गौतम सचदेव, दिव्या माथुर एवं गोविंद शर्मा के अतिरिक्त समारोह की गरिमा बढ़ाने के लिए मौजूद थे सर्वश्री मधुप मोहता, प्रो. अमीन मुगल, प्रो. जगदीश दवे, बलवंत जानी (भारत), के.सी. मोहन (प्रलेस पंजाबी), डॉ. इतेश सचदेव (सोआस विश्वविद्यालय) कैलाश बुधवार, डॉ. नजरुल इस्लाम, अचला शर्मा, वेद मोहला, गजल गायक सुरेन्द्र कुमार एवं इन्द्र स्याल, इलाहाबाद हाई कोर्ट के जस्टिस सुधीर नारायण सक्सेना, अनुज अग्रवाल (सूर्यास्त्र प्रकाशन), डॉ. हबीब जुबैरी, महेन्द्र दवेसर, जय वर्मा, डॉ. महीपाल वर्मा, विभाकर बख्शी एवं रमेश पटेल।

‘जे.एन.यू. में नामवर सिंह’ का लोकार्पण

वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी ने 28 जुलाई को दिल्ली के त्रिवेणी सभागार में एक वृहद आयोजन को संबोधित करते हुए कहा कि मेरी यह धारणा रही है कि कॉलेज और विश्वविद्यालय किसी खास ढांचे में फिट होने लायक ही बनाते हैं। जबकि जीवन के किसी क्षेत्र में स्वीकार्यता तभी मिलती है जब आप खांचे से अलग हटकर अपना निर्माण करते हैं। उन्होंने कहा कि साहित्य, राजनीति और खेल, सभी क्षेत्रों में यह लागू है। प्रभाष जोशी ने यह बात राजकमल से प्रकाशित 'जे.एन.यू. में नामवर सिंह' पुस्तक का लोकार्पण करते हुए कही। प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह के 83वें जन्मदिन पर लोकार्पित इस पुस्तक में जे.एन.यू. में नामवर सिंह के 18 साल के अध्यापन के सफर को संजोने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में नामवर सिंह के सहयोगियों और उनके छात्रों के अनुभवों को भी शामिल किया गया है।

प्रभाष जोशी ने कहा कि नामवर सिंह से उनका पहला संवाद तक हुआ जब वे जे.एन.यू.

में नहीं थे। उन्होंने कहा कि हिंदी और साहित्य में किसी के योगदान पर न तो भक्तिभाव से किताब लिखी जानी चाहिए और न ही खुड़पेंच निकालने के लिए। उन्होंने सुझाव दिया कि हिंदी में लिखने और सोचने वाले को बहुआयामी नजरिए से देखने की कोशिश की जानी चाहिए। इस तरह से हिंदी समाज को समृद्ध बनाया जा सकता है।

नामवर सिंह ने इस मौके पर कहा कि जे.एन.यू. के अलावा दूसरे विश्वविद्यालय भी उनके लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जहां उन्होंने अध्यापन किया। उन्होंने कहा कि काशी विश्वविद्यालय ने तो मुझे पैदा ही किया, जबकि सागर विश्वविद्यालय ने एक ही साल में बहुत कुछ किया। जोधपुर विश्वविद्यालय में चार साल रहा जहां तत्कालीन कुलपति बी.बी.जान ने हिंदी पाठ्यक्रम बनाने की पूरी छूट दे रखी थी। जे.एन.यू. के दिनों को याद करते हुए उन्होंने बताया कि किस तरह वहां छात्रों को सिखाया और पढ़ाया।

हिंदी अकादमी द्वारा गांधी जी की दो पुनर्मुद्रित पुस्तकों का लोकार्पण

‘गांधी जी ने सादगी और अनुशासन के सहारे बड़े-बड़े असाधारण काम बड़े साधारण तरीके से कर दिखाए थे. . . आज हम भारत का निर्माण गांधी जी की सोच के साथ करना चाहते हैं या पाश्चात्य मूल्यों के साथ यह हमें तय करना होगा. . .’ उक्त विचार श्रीमती शीला दीक्षित ने महात्मा गांधी द्वारा लिखित पुस्तकों ‘हिन्द स्वराज’ और ‘सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा’ के लोकार्पण समारोह में कहीं। हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित इन पुस्तकों के विमोचन समारोह में वरिष्ठ पत्रकार श्री प्रभाष जोशी भी उपस्थित थे। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आज की दुनिया बनाने वाली तीन किताबों में से एक पुस्तक गांधी जी का ‘हिन्द स्वराज’ है। सौ वर्ष पहले लिखी गई इस किताब को आज भी पश्चिमी समाज उनके बारे में की गई सबसे रचनात्मक आलोचना मानता है।

इससे पहले हिन्दी अकादमी के उपाध्यक्ष प्रो. अशोक चक्रधर ने कहा कि यह दोनों पुस्तकें युगांतकारी हैं, इन्होंने भारतीय समाज की दशा बदलकर हमें नई राहें दिखाई हैं। ‘हिन्द स्वराज’ में उनकी सोच, चिन्तन, जीवन शैली सब कुछ समाहित है। आज की दुनिया को भी इसकी जरूरत है। गांधी जी के दिए गए विचार रूपी औजार आज भी दुनिया को बना रहे हैं।

उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में पश्चिमी सभ्यता का विरोध किया है लेकिन उसमें भी सब कुछ त्याज्य नहीं है। उन्होंने पुस्तक के फुटनोट में 'योजना' और 'विकास' के अर्थ क्रमशः 'तरकीब' और 'खिलना' बताकर स्पष्ट किया इन सरकारी बन चुके शब्दों के अर्थ उस समय बिल्कुल अलग संदेश दे रहे थे।

अकादमी के सचिव डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने कार्यक्रम के आरंभ में पुस्तकों का परिचय देते हुए कहा कि 'सवाल-जवाब' शैली में लिखी गई 'हिन्द स्वराज' पुस्तक उनकी तरह ही दुबली पतली है किंतु उन्हीं की तरह विलक्षण है। कार्यक्रम के दूसरे सत्र में 'असली स्वराज ही स्वाधीनता है' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता जामिया मिल्लिया इस्लामिया के कुलपति प्रो. मुंशीरुल हसन ने की और प्रतिभागी थे। प्रो. इन्द्रनाथ चौधुरी, प्रो. अशुम गुप्ता, श्री वर्षादास और श्री राजीव वोरा।

संगोष्ठी का आरंभ प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक श्री राजीव वोरा के वक्तव्य से हुआ। उन्होंने कहा कि 'हिन्द स्वराज' पुस्तक में पूरे भारत की स्मृति वापस लौटाने का प्रयास है, जिसे अंग्रेजों ने अपनी शिक्षा-पद्धति और तरह-तरह के अत्याचारों से दबा दिया था। तुलनात्मक साहित्य और भाषा के अध्येता प्रो. इन्द्रनाथ चौधुरी ने कहा कि गांधी इस पुस्तक में सभ्यता की आलोचना करते हैं और विकसित अविकसित-विकासशील के विभाजन का विरोध करते हैं तथा पहली बार स्वराज, स्वदेशी, सत्याग्रह और सर्वोदय जैसे चार महत्वपूर्ण विचार दुनिया के सामने रखते हैं। गांधी संग्रहालय की निदेशक श्रीमती वर्षा दास ने कहा कि 72 पृष्ठों की मूल गुजराती में लिखी गांधी जी की यह पुस्तक विश्व के लिए मूल्यवान धरोहर है। यह हिंसा-संस्कृति के खिलाफ अहिंसा की बात करती है। इस पुस्तक के सहारे गांधी ने हमारे स्वराज को गुणात्मक स्वरूप दिया है और आज भी इसकी प्रसंगिकता खत्म नहीं हुई है। उन्होंने आगामी 2 अक्टूबर को गांधी संग्रहालय में 'हिन्द स्वराज' पर ही चित्रों की एक प्रदर्शनी की सूचना भी दी।

संगोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे जामिया मिल्लिया इस्लामिया के कुलपति प्रो. मुंशीरुल हसन ने कहा कि हिन्द स्वराज को 'पवित्र पुस्तक' या आलौकिक पुस्तक कहना गलत होगा क्योंकि ऐसा मानने पर हम उस पर तर्क नहीं कर पाएंगे। इसको 20वीं सदी के महत्वपूर्ण 'टेक्स्ट' के रूप में ही देखना चाहिए।

उदयराज सिंह स्मृति सम्मान कुंवर नारायण को

तीसरा उदयराज सिंह स्मृति सम्मान कवि कुंवर नारायण को दिया जाएगा। यह सम्मान 'नई धारा' साहित्यिक पत्रिका की ओर से दिया जाता है जिसके तहत रचनाकार को एक लाख रुपये की राशि, सम्मान-पत्र और स्मृति चिन्ह भेंट किया जाएगा। इसके साथ ही कथाकार नासिरा शर्मा, व्यंग्यकार बालेंदुशेखर तिवारी और कवि राधेश्याम तिवारी को 2009 को 'नई धारा रचना सम्मान' दिया जाएगा। सम्मान स्वरूप तीनों को 25-25 हजार रुपये की राशि, सम्मान पत्र और प्रतीक चिन्ह भेंट किया जाएगा।

नई धारा की ओर यहां जारी बयान के मुताबिक इन सम्मानों के लिए कथाकार हिमांशु जोशी की अध्यक्षता में एक चयन समिति बनाई गई थी। समिति के दूसरे सदस्य एन. रामन नायर और गोवर्द्धन प्रसाद 'सदस्य' थे। समिति को 'नई धारा' में अप्रैल 2008 से मार्च 2009 के बीच छपी रचनाओं में से ही रचनाकारों का चयन करना था। बयान के मुताबिक 2009 का उदयराज सिंह स्मृति सम्मान पाने वाला कुंवर नारायण के साथ ही 'नई धारा रचना सम्मान' पाने वाले तीनों रचनाकारों को पांच नवंबर को पटना में आयोजित एक समारोह में सम्मानित किया जाएगा।

तृतीय सत्र में 'जीवन की सच्चाइयां: आत्मावलोकन व सृजनशीलता' विषय पर आयोजित संगोष्ठी की अध्यक्षता वरिष्ठ समालोचक प्रो. नामवर सिंह ने की। इस सत्र के अन्य वक्ता थे— श्री रामचन्द्र राही, श्री अजित कुमार और प्रो. आनंद कुमार सत्र की शुरुआत प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. आनंद कुमार ने यह कहकर कि आज के समय में गांधी की पूजा करना आसान है किंतु उनको पढ़ना मुश्किल है, क्योंकि उनको पढ़ते ही हम आत्मग्लानि के शिकार हो जाते हैं और उनकी सत्यता पर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक रामचन्द्र राही ने कहा कि इस आत्मकथा से हमें गांधी के रचनात्मक कार्यों को व्यवहार में लाकर आज के समाज में उनकी सार्थकता सिद्ध करनी होगी। पिछले बीस सालों में विकास का ग्राफ बहुत तेजी से बढ़ा है लेकिन इसका लाभ 20 प्रतिशत लोगों तक ही पहुंचा है। प्रसिद्ध कवि और आलोचक अजित कुमार जी ने गांधी पर लिखी अपनी एक कविता के साथ उनकी आत्मकथा पर टिप्पणी करते हुए कहा कि वह अपने जीवन में सभी बुरे कार्यों से सत्य और अहिंसा के सहारे ही बचते रहे। देश में

बहुत से विचलन और भटकन के बावजूद उनकी उपस्थिति आज भी जनमानस में बसी हुई है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो. नामवर सिंह ने हिंदी अकादमी को साहित्य से इतर इन दो महत्वपूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन पर बधाई देते हुए कहा कि गांधी जी के कारण ही हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। उन्होंने कहा कि गांधी जी ने विज्ञान का विरोध किया लेकिन कर्म से वह एक वैज्ञानिक थे। उन्होंने एक वैज्ञानिक की तरह ही पूरे देश को घूमकर यहां के भूगोल और समाज को समझकर ही अपनी लड़ाई को आगे बढ़ाया। साबरमती में उनका आश्रम एक तरह की प्रयोगशाला ही था जहां उन्होंने हरिजन और स्त्रियों के प्रवेश के सहारे स्वाधीनता आंदोलन में उनके महत्व को समझा।

अकादमी के सचिव डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सभी वक्ताओं के प्रति आभार प्रकट करते हुए उन्हें विश्वास दिलाया कि आज के कार्यक्रम में सुझाए गए महत्वपूर्ण सुझावों को अकादमी अपनी कार्यप्रणाली में लाएगी और उनको पूरा करने की हर संभव कोशिश करेगी।

कार्यक्रम के अंत में जानी-मानी युवा गायिका सुश्री मीता पंडित ने गांधी जी के प्रिय भजनों को प्रस्तुत किया। उन्होंने मीराबाई, कबीर, तुलसी के भजन गाए। उनकी गायकी में युवा तेवर का खास अंदाज था।

— अजय कुमार शर्मा

साहित्य अमृत युवा व्यंग्य प्रतियोगिता

विगत पंद्रह वर्षों से हिंदी साहित्य की विशिष्ट पत्रिका 'साहित्य अमृत' सही मायनों में साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक बनी हुई है। युवा लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए 'साहित्य अमृत' ने पूर्व में युवा हिंदी कहानी लेखन तथा युवा हिंदी कविता लेखन प्रतियोगिताएं आयोजित की थीं। अब युवा व्यंग्यकारों को प्रोत्साहित करने के लिए साहित्य अमृत युवा व्यंग्य प्रतियोगिता की है जिसमें बड़ी संख्या में देश के युवा व्यंग्यकारों ने भाग लिया।

22 अगस्त को नई दिल्ली के हिंदी भवन में दिल्ली के उप-राज्यपाल महामहिम श्री तेजेन्द्र खन्ना ने युवा हिंदी व्यंग्य प्रतियोगिता पुरस्कार प्रदान किए। प्रसिद्ध व्यंग्यकारत्रयी सर्वश्री गोपाल चतुर्वेदी, शेरजंग गर्ग तथा प्रेम जनमेजय के निर्णायक मंडल ने पुरस्कार हेतु रचनाओं का चयन किया। पुरस्कृत रचनाकार हैं—

प्रथम पुरस्कार (5100 रुपए), श्री अजय अनुरागी, जयपुर, 'कोट में टंगा आदमी' द्वितीय पुरस्कार (3100 रुपए), श्री आशीष दशोत्तर, रतलाम, 'धक्का' ही है शाश्वत सत्य

तृतीय पुरस्कार (2100 रुपए), श्री ओम द्विवेदी, ईदौर, 'वो आए थे'

प्रशंसा पुरस्कार (1100 रुपए) प्रत्येक को श्री घनश्याम कुमार 'देवांश', दिल्ली, 'कहते हैं मुझको हवा-हवाई'

श्री मिथिलेश कुमार राय, दिल्ली, 'काम की तलाश'

पुरस्कार स्वरूप राशि, ताम्रपत्र तथा श्रीफल प्रदान किया गया।

साथ ही प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हिंदी के पांच विशिष्ट व्यंग्य कवियों की पुस्तकें 'बेस्ट ऑफ जैमिनी हरियाणवी', 'बेस्ट ऑफ ओमप्रकाश आदित्य', 'बेस्ट ऑफ अल्हड़ बीकानेरी', 'बेस्ट ऑफ हुल्लड़ मुरादाबादी' तथा 'बेस्ट ऑफ माणिक वर्मा' का लोकार्पण भी उप-राज्यपाल जी के कर कमलों से संपन्न हुआ। इस अवसर पर डॉ. प्रेम जनमेजय ने साहित्य अमृत युवा व्यंग्य प्रतियोगिता और हिंदी की व्यंग्य परंपरा पर अपने विचार प्रकट किए। व्यंग्य कवियों की ओर से श्री जैमिनी हरियाणवी ने बेस्ट ऑफ श्रृंखला का परिचय दिया और अपनी रचनाएं सुनाई। विगत दिनों दिवंगत कवियों की स्मृति में एक मिनट का मौन रखा गया। समारोह में पत्रिका के संपादक पूर्व राज्यपाल श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र, हास्य कवि अशोक चक्रधर, साहित्यकार सुरेश गौतम के अलावा बड़ी संख्या में लेखक-कवि, पाठक तथा समाज के विभिन्न वर्गों के प्रबुद्धजन सम्मिलित हुए।

साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वाराका

हिन्दी लाओ : देश बचाओ समारोह संपन्न

हिन्दी प्रचारक शताब्दी सम्मान से समलंकृत हुए डॉ. युगेश्वर तथा डॉ. बदरीनाथ कपूर।

देश की प्रसिद्ध साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक संस्था 'साहित्य-मण्डल' समारोह देश के विभिन्न भागों से आए शताधिक विद्वानों की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।

संस्था के अध्यक्ष माननीय श्री नरहरिजी ठाकर (प्रभु श्रीश्रीनाथजी के बड़े मुखिया), श्री अजय कुमार जी शुक्ल (मुख्य निष्पादन-अधिकारी मंदिर-मंडल श्रीनाथद्वारा) तथा न्यायमूर्ति

42वां ज्ञानपीठ पुरस्कार पहली बार संस्कृत विद्वान को

नई दिल्ली। संसद के पुस्तकालय भवन स्थित बालयोगी सभागार में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित समारोह में संस्कृत के प्रख्यात विद्वान कवि डॉ. सत्यव्रत शास्त्री को 42वें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। थाइलैंड की राजकुमारी महाचक्री सिरिन्धौर्न ने उन्हें पुरस्कार प्रदान किया। उल्लेखनीय है कि राजकुमारी डॉ. शास्त्री की शिष्या रह चुकी हैं। 29 सितंबर, 1930 को लाहौर में जन्मे डॉ. शास्त्री को अब तक 63 पुरस्कार मिल चुके हैं।

श्री गणेशदत्तजी दूबे की गौरवमयी उपस्थिति में समारोह का शुभारंभ 13 सितंबर को हुआ। तत्पश्चात साहित्य-मण्डल वाचनालय प्रदर्शनी के अवलोकन के पश्चात द्वितीय सत्र के व्यूहिक विचार विमर्श- 'कहां जा रही है हमारी हिंदी और क्या करना है, उसके लिए हमें' पर गंभीर विवेचन हुआ। तृतीय सत्र में 'संपादक रत्न' की मानद उपाधि से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों को समलंकृत किया गया। चतुर्थ तथा पंचम सत्र में 'पत्रकार प्रवर मानद उपाधि' तथा 'पुरजन सम्मान' प्रदान किए गए। आखिरी सत्र में 'हिन्दी हुंकरति' के अंतर्गत काव्य पाठ का आयोजन हुआ।

14 सितंबर 'हिंदी दिवस' के अवसर पर प्रातः 'हिन्दी लाओ : देश बचाओ' नगर परिक्रमण के कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्वावधान में हिंदी दिवस एवं उपाधि वितरण समारोह में डॉ. विष्णुचन्द्रजी पाठक (जयपुर) को 'साहित्यवाचस्पति' और श्री रामशरणजी पीतलिया को 'साहित्य सारस्वत' उपाधि प्रदान की गयी। मध्याह्न साहित्य मण्डल माध्यमिक विद्यालय के बालक-बालिकाओं द्वारा 'हिन्दी लाओ : देश बचाओ' नाटिका का सजीव मंचन किया गया।

चतुर्थ सत्र में प्रो. युगेश्वरजी तथा डॉ. बदरीनाथजी कपूर को 'हिन्दी प्रचारक शताब्दी सम्मान-2009', पद्मश्री श्रीरामस्वरूपजी शर्मा (वृंदावन) को 'श्री गणेश वल्लभजी राठी स्मृति सम्मान', 'डॉ. नरेन्द्र कोहली (नई दिल्ली) को 'श्री शिवकुमारजी शास्त्री शताब्दी सम्मान' तथा श्री नथमलजी केडिया (कोलकाता) को 'श्री मनोहरजी कोठारी स्मृति सम्मान' से सम्मानित करते हुए सभी महानुभावों को 11-11 हजार की राशि भेंट की गयी। पंचम सत्र में 'हिंदी भाषा भूषण' अलंकरण से देश के विभिन्न भागों से आमंत्रित साहित्यकारों को सम्मानित किया गया।

15 सितंबर को प्रातःकाल 'साहित्य मण्डल' के पुस्तकालय, अष्टछाप कक्ष, पत्रिका प्रदर्शनी कक्ष, साहित्यकार कक्ष एवं प्रकाशन कक्ष के अवलोकन से कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। तत्पश्चात 'हिन्दी उपनिषद्' के अंतर्गत 'इस शताब्दी में हिन्दी अपना सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगी।' विषय पर विशद चर्चा हुई। मध्याह्न में 'हिन्दी नाट्य संगोष्ठी' का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

चतुर्थ सत्र में डॉ. युगेश्वरजी (वाराणसी), डॉ. बदरीनाथजी कपूर (वाराणसी), श्री स्वामी रामस्वरूपजी शर्मा (वृंदावन) तथा श्री नथमलजी केडिया (कोलकाता) का भव्य अभिनंदन करते हुए अभिनंदनपत्रार्पण किया गया।

अंत में समारोह का समापन साहित्य-मण्डल श्रीनाथद्वारा की प्रमुख त्रैमासिक पत्रिका 'हरसिंगार' (वर्ष 12, अंक 4) 'हिन्दी लाओ : देश बचाओ' (अंक-7) के लोकार्पण के पश्चात प्रधानमंत्री श्री भगवती प्रसादजी देवपुरा ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

प्रमोद वर्मा स्मृति संस्थान दो दिवसीय आयोजन

महानगरों में रहने वाले ज्ञात और प्रसिद्ध आलोचकों की जगह छोटे कस्बों के योग्य आलोचकों को प्रथम प्रमोद वर्मा आलोचना सम्मान दिया जाना बौद्धिक रूप से बहुकेन्द्रियता की ओर लौटने की प्रवृत्ति है जो साहित्य का शुभ संकेत है। वास्तव में यह दिल्ली दर्प दमन है। यह इस प्रवृत्ति को खारिज करता है कि सफल होने के लिए महानगरों का निवासी होना जरूरी है। उक्त विचार हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक, कवि श्री अशोक वाजपेयी ने 10 एवं 11 जुलाई 2009 को आयोजित दो दिवसीय आलोचना संगोष्ठी एवं प्रथम प्रमोद वर्मा आलोचना सम्मान समारोह के दौरान व्यक्त किए।

संस्थान की ओर से प्रत्येक वर्ष प्रमोद वर्मा की स्मृति में दिए जाने वाले राष्ट्रीय आलोचना सम्मान का शुभारंभ करते हुए वर्ष 2009 के लिए भागलपुर के आलोचक श्री भगवान सिंह वाराणसी के श्री कृष्ण मोहन को सम्मानित किया गया। उक्त सम्मान में पुरस्कृत आलोचक द्वय को क्रमशः 21 हजार एवं 11 हजार रुपये देने के साथ ही प्रमोद वर्मा समग्र, प्रशस्ति पत्र एवं प्रतीक चिन्ह, शॉल एवं श्रीफल भेंट कर अलंकृत किया गया। उक्त सम्मान के निर्णायकों में थे— श्री केदारनाथ सिंह, डॉ. धनंजय वर्मा, विजय बहादुर सिंह, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, श्री विश्वरंजन एवं संयोजक जयप्रकाश मानस।

सम्मानित आलोचक श्री भगवान सिंह ने कहा कि उन्होंने कभी पुरस्कार प्राप्त करने के लिए नहीं लिखा था और न ही वे पुरस्कारों में विश्वास रखते हैं, लेकिन ये छत्तीसगढ़ के आभारी हैं कि यहां पर उनके द्वारा जिस विचार को लेकर लिखा जा रहा है उसे पुरस्कार दिया गया।

दो दिवसीय आलोचना संगोष्ठी का उद्घाटन छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्री रमन सिंह ने किया।

समारोह तीन सत्रों में विभाजित था। प्रथम सत्र 'समकालीन आलोचना का हाव भाव' में अध्यक्षीय दीर्घा से बोलते हुए श्री नंदकिशोर आचार्य ने कहा कि रचना को समग्रता में देखना आलोचना है, लेकिन हिंदी काव्य में साहित्य चिंतन की रूचि समाप्त हो गई है।

दूसरा सत्र 'आलोचना का प्रजातंत्र' विषय पर केंद्रित था जिसमें अध्यक्षीय आसंदी में बोलते हुए श्री खगेन्द्र ठाकुर ने कहा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना को यथार्थ की धरती पर खड़ा किया। उन्होंने कहा कि आजकल आलोचना में असहिष्णुता का भाव बढ़ गया है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने कहा कि प्रजातंत्र का अर्थ वरण की स्वतंत्रता से है। आलोचना को विषय चुनने तथा उस पर दृष्टिकोण रखने की आशावादी होनी चाहिए। वरिष्ठ कवि श्री चंद्रकांत देवताले ने बहुत ही विचारोत्तेजक वक्तव्य देते हुए कहा कि रचनाकारों को ज्यादा आलोचकों की चिंता नहीं करनी चाहिए।

तृतीय सत्र 'आलोचना के परिसर में प्रमोद वर्मा' पर केंद्रित था। सत्र अध्यक्ष श्री अशोक वाजपेयी ने कहा कि एक आलोचक अपने दूसरे मित्र रचनाकारों के निर्माण में सहचर की भूमिका निभा सकता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण प्रमोद वर्मा थे। वर्मा ने अपनी आलोचनाओं से गजानन माधव मुक्तिबोध तथा हरिशंकर परसाई के लेखन को प्रोत्साहित किया है और उनके विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्यक्ष मंडल की आसंदी से श्री कमला प्रसाद ने बोलते हुए कहा कि आलोचना के क्षेत्र में श्री प्रमोद वर्मा का अपना स्थान है। वे लेखक की स्वतंत्रता के हिमायती थे। उन्होंने कहा कि प्रमोद वर्मा समाजवाद में लोकतंत्र चाहते थे। श्री रमाकांत श्रीवास्तव ने कहा कि प्रमोद वर्मा किसी विचारधारा के प्रति कट्टर नहीं हुए, क्योंकि विचारधारा की कट्टरता अहितकर होती है।

कार्यक्रम के पहले दिन श्री प्रमोद वर्मा की कविताओं पर आधारित कविताओं का नाट्य मंचन श्री कुंज बिहारी शर्मा के निर्देशन में प्रसिद्ध नाट्य संस्था 'रूपक' द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री विनोद कुमार शुक्ल की

नंदन की परंपरा विशिष्ट ऋतुराज सम्मान

नई दिल्ली। पी-एच.डी. भवन के सिंहानिया सभागार में आयोजित परंपरा सम्मान समारोह में प्रख्यात कवि डॉ. कन्हैयालाल नंदन वर्ष 2009 के 'परंपरा विशिष्ट ऋतुराज सम्मान' से सम्मानित हुए। गत वर्ष इस पुरस्कार से सम्मानित प्रख्यात समालोचक डॉ. नामवर सिंह ने उन्हें सम्मान अर्पित किया।

युवा कवि आलोक श्रीवास्तव को गजल-संग्रह 'आमीन' और पवन करण को काव्य-संग्रह 'स्त्री मेरे भीतर' के लिए इस वर्ष का 'परंपरा ऋतुराज सम्मान' संयुक्त रूप से दिया गया। इस वर्ष का 'परंपरा सम्मान' भी शुरू किया गया जो अल्मोड़ा के शैलेय को दिया गया। परंपरा के संस्थापक काशीनाथ मेमानी ने स्वागत तथा राजनारायण बिसारिया ने इस वर्ष शुरू किए गए पुरस्कार की जानकारी दी। संचालन अशोक चक्रधर ने किया।

अध्यक्षता में काव्य गोष्ठी का आयोजन भी किया गया, जिसमें देश के नामी-गिरामी कवियों यथा- श्री नंदकिशोर आचार्य, श्री चंद्रकांत देवताले, श्री प्रभात त्रिपाठी, श्री एकांत श्रीवास्तव, श्री विश्वरंजन, डॉ. वंदा केंगरानी, श्री अशोक सिंघई, श्री शरद कोकस, श्री कमलेश्वर साहू, श्री अरुण शीतांश, डॉ. बलदेव एवं श्रीमती पुष्पा तिवारी ने अपनी कविताओं का काव्य-पाठ किया। काव्य पाठ का संचालन श्री रवि श्रीवास्तव ने किया।

कार्यक्रम में राजकमल प्रकाशन दिल्ली के प्रमुख अशोक माहेश्वरी, डॉ. गंगा प्रसाद बरसैया, डॉ. कल्याणी वर्मा, बसंत त्रिपाठी, राजेन्द्र मिश्र, कनक तिवारी, डॉ. बलदेव, राजुरकर राज, कैलाश आदमी, रमेश नैयर, डॉ. प्रेम दुबे, विनोद शंकर शुक्ल, सुभाष मिश्र, संतोष रंजन, श्री राम पटवा, अशोक सिंघई, मुमताज, एस. अहमद, बी.एल.पॉल, तपेश जैन एवं राज्यभर के प्रबुद्ध साहित्य रसिक गण उपस्थित थे।

संस्था के अध्यक्ष श्री विश्वरंजन ने संस्थान की आगामी कार्य योजनाओं के बारे में संक्षिप्त जानकारी देते हुए कहा कि संस्थान द्वारा भविष्य में महिला, आदिवासी और दलित समाज के लेखकों के लिए विशेष तौर पर राष्ट्रीय लेखन शिविरों का आयोजन सहित राजधानी में हिंदी भवन निर्माण का कार्य भी किया जाएगा। धन्यवाद ज्ञापन किया संस्थान के कार्यकारी निदेशक जयप्रकाश मानस ने।

— डॉ. वंदना केंगरानी

एक नाटक दिगंत में

'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नई' के दो शानदार दशक।

ऐसी पहली बार हो रहा है कि किसी हिंदी नाटक- 'जिस लाहौर नई देख्या जम्याइ नई' के बीस साल पूरी होने का उत्सव अंतराष्ट्रीय उत्सव का शुभारंभ 14 एवं 15 अगस्त को वाशिंगटन डी.सी. के प्रतिष्ठित कैनेडी सेंटर में शानदार ढंग से किया। 14 अगस्त पाकिस्तान और 15 अगस्त 2009 भारत का 62वां स्वाधीनता दिवस है। अगला कार्यक्रम 3 सितंबर को लंदन में हो रहा है।

हिंदी के सुपरिचित लेखक असगर वजाहत ने 1989 में श्रीराम सेंटर (दिल्ली) की नाट्यलेखन कार्यशाला में 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नई' नाटक का पहली बार पाठ किया था। श्रीराम सेंटर रंगमंडल ने सुप्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर के निर्देशन में अपने ही सभागार में 27 सितंबर 1990 को इस नाटक का पहला प्रदर्शन किया था। चार साल तक लगातार प्रदर्शन के बाद इसे हबीब साहब ने अपनी रंगमंडली 'नया थियेटर' भोपाल के साथ तैयार किया जिसके अनेक सफल प्रदर्शन लगातार होते रहे। यह नाटक कई भारतीय भाषाओं में कई जाने-माने निर्देशकों द्वारा सैंकड़ों बार खेला जाता रहा है। भारत के प्रायः सभी प्रमुख शहरों और क्षेत्रों में मंचित होने के साथ-साथ इस नाटक का प्रदर्शन दुनिया के कई देशों के शहरों में होता रहा है जिसमें वाशिंगटन डी.सी., सिडनी, कराची, आबू धाबी आदि प्रमुख हैं।

इस नाटक ने कई फिल्मकारों को भी प्रभावित किया है। अंशतः सुविख्यात फिल्म निर्माता-निर्देशक राजकुमार संतोषी इस नाटक पर पचास करोड़ की लागत से फिल्म बनाने जा रहे हैं।

दिवंगत कवियों का उनकी रचनाओं के जरिए पुण्य स्मरण

साहित्यिक संस्था 'बतरस' ने दिवंगत कवियों को 'तुमको न भूल पायेंगे' कार्यक्रम के जरिये सुभाष कावरा के संचालन में व्यंग्यकार आशकरण अटल ने स्व. नीरजपुरी की रचनाओं और देवमणि पाण्डेय ने बुद्धिनाथ मिश्र द्वारा दिवंगत कवियों के बारे में लिखी कविता पढ़ी। ओज के कवि स्व. लाडसिंह गुर्जर को भी याद किया। अभिनेता विष्णु शर्मा ने स्व. ओम व्यास की चर्चित कविता 'मां' पढ़ी। व्यंग्यकार घनश्याम अग्रवाल और पत्रकार कैलाश सेंगर ने अल्हड़ बीकानेरी

जी रचनाएं एवं संस्मरण प्रस्तुत किए। स्व. ब्रजेश पाठक 'मौन' के संस्मरण मुरलीधर पाण्डेय ने सुनाएं अनंत श्रीमाली ने स्वागत किया। गीतकार स्व. नईम के अनुभव सुनाते हुए उनकी भांजी ऋचा (व्यंग्यकार शरद जोशी की बेटी) ने कहा कि नईम जी किसी धर्म के नहीं थे। हिंदू-मुस्लिम वाली तो बात ही नहीं थी। शरद जी और नईम जी का परिचय परसाई जी ने करवाया था। नईम जी मुस्लिम थे लेकिन गणपति की मूर्तियां उनके हाथों से अपने आम बनती थी। शिप्रा वर्मा ने नईम जी का गीत प्रस्तुत किया।

स्व. हबीब तनवीर के चर्चित नाटक 'चरणदास चोर' के अंशों का पाठ विवेक त्रिपाठी ने एवं रतनलाल एवं नरोत्तम बेन ने उनके नाटकों के लोकगीतों को स्वर लहरियों के साथ प्रस्तुत किया। रंगकर्मी विजय कुमार ने संचालन में कहा कि हबीब जी ने मृत्यु पर्यंत नाटक किए और सरकार का बहुत विरोध किया लेकिन सबसे ज्यादा सम्मानित हुए। नाट्य समीक्षक सत्यदेव त्रिपाठी ने कहा कि उनके नाटक भारतीयता की पहचान थे और उनके साथ बताये लम्हों को शिद्दत से याद किया। पत्रकार पवन तिवारी ने भी विचार रखे। आभार अरविंद राही ने माना।

—अनंत श्रीमाली

प्रेम जनमेजय का सम्मान

समाज में व्यंग्यकार अच्छा नहीं माना जाता, क्योंकि वह बुराई रूपी फोड़े का इलाज करता है, जिससे तकलीफ होती है। परंतु बीमारी से निजात दिलाता है, उसकी भूमिका डॉक्टर की तरह होती है। ये विचार दिल्ली से पधारे प्रसिद्ध व्यंग्यकार एवं 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक प्रेम जनमेजय ने महानगर को साहित्यिक संस्था 'जीवंती' द्वारा आयोजित 'गीत, गजल, व्यंग्य संध्या' में मुख्य अतिथि के रूप में व्यक्त किए। प्रेम जनमेजय को व्यंग्यश्री सम्मान से विभूषित किया गया। इस उलपक्ष्य में 'जीवंती' द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। प्रेम जी ने सम्मान के उत्तर में सशक्त व्यंग्य रचना का पाठ किया।

अयोध्यादास के भजन से कार्यक्रम प्रारंभ हुआ, जिसमें आकाश सिंह, सौम्या की प्रस्तुति को सभी ने सराहा, दीपक खेर ने माया गोविन्द की गजलों का स्वर प्रभावी पाठ किया। विशेष आकर्षण सुप्रसिद्ध संगीतकार प्रद्युम्न शर्मा की गजलों की प्रस्तुति रही। इसके पश्चात अनंत श्रीमाली के संचालन में राम गोविंद, खन्ना मुजफ्फरपुरी, कुमार शैलेन्द्र, रेखा रोशनी, कैलाश सेंगर आदि ने कलाम प्रस्तुत किए। संस्था अध्यक्ष

मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार से तीन कवयित्रियों सम्मानित

नई दिल्ली। हिंदी भवन में आयोजित समारोह में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मेमोरियल ट्रस्ट द्वारा इस वर्ष के मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार से तीन कवयित्रियों को सम्मानित किया गया। झारखंड के दुमका की संध्या गुप्ता को उनके काव्य संग्रह 'बना लिया मैंने भी घोंसला' के लिए, दिल्ली के राकेश नंदिनी गुप्ता को 'पुरंदरा' काव्य-संग्रह के लिए तथा लंदन की जय वर्मा को उनके काव्य-संग्रह 'सहयात्री हैं हम' के लिए सम्मानित किया गया।

वेदरतन ने स्वागत एवं 'जीवंती' का परिचय दिया।

काव्या एवं श्रुति संवाद की काव्यगोष्ठी

मुंबई, साहित्यिक पत्रिका 'युगीन काव्या' एवं 'श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी' के तत्वावधान में दिल्ली से आए व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय के मुख्य आतिथ्य एवं वरिष्ठ साहित्यकार नंदलाल पाठक की अध्यक्षता में काव्यगोष्ठी का आयोजन हुआ। प्रेम जनमेजय को पं. गोपाल प्रसाद व्यास व्यंग्यश्री पुरस्कार मिलने पर मुंबई के साहित्यिक जगत की ओर से कविता गुप्ता ने पुष्पगुच्छ से स्वागत किया। अनंत श्रीमाली के संचालन में हस्तीमल हस्ती, संजीव निगम, कविता गुप्ता, दीप्ति मिश्र, यज्ञ शर्मा, कश्मीर से आए कवि रमेश मेहता, शायर जाफर रजा, विनोद दास, हृदयेश मयंक आदि ने रचना पाठ किया।

हिंदी प्रचारक शताब्दी सम्मान

वाराणसी में सन् 1905 में स्थापित हिंदी प्रचारक परिवार के संस्थापक, निस्पृह समाजसेवी, साहित्यानुरागी एवं ऐयारी कथाओं के सुप्रसिद्ध लेखक निहालचन्द बेरी तथा उनके यशस्वी पुत्र व हिंदी प्रकाशन जगत के पुरोधा कृष्णचन्द्र बेरी की पावन स्मृति में हिंदी प्रचारक शताब्दी सम्मान की स्थापना की गई है।

वे पुरस्कार प्रतिवर्ष राजस्थान प्रांत के अग्रणी साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक प्रतिष्ठान 'साहित्य मंडल', श्रीनाथद्वारा के तत्वावधान में आयोजित हिंदी दिवस के अवसर पर प्रदान किए जाएंगे।

यह कार्यक्रम साहित्य मंडल, श्रीनाथ

द्वारा के अध्यक्ष नरहरि ठाकर तथा प्रधानमंत्री एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के अध्यक्ष भगवती प्रसाद देवपुरा के संरक्षण में सम्पन्न होगा।

हिंदी प्रचारक शताब्दी समारोह-2009 का प्रथम पुरस्कार हिंदी के प्रख्यात उपन्यासकार, विचारक एवं चिंतक डॉ. युगेश्वर एवं ख्यातिलब्ध भाषाविद् डॉ. बदरीनाथ कपूर को देना सुनिश्चित किया गया है। पुरस्कार स्वरूप श्रीफल, शॉल, उत्तरीय, श्रीनाथजी का प्रसाद, श्रीनाथजी के हाथ कलम का चित्र, अभिनन्दन एवं सम्मान-पत्र सहित ग्यारह हजार की राशि भेंट की जाएगी।

मनोज कुमार झा को 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार'

वर्ष, 2009 का प्रतिष्ठित 'भारतभूषण पुरस्कार' मनोज कुमार झा को उनकी कविता 'स्थगन' के लिए प्रदान किया गया है। यह कविता 'कथन' पत्रिका के जुलाई-सितंबर, 2008 में प्रकाशित हुई थी।

इस पुरस्कार की स्थापना तार-सप्तक के यशस्वी कवि श्री भारतभूषण अग्रवाल की स्मृति में उनकी पत्नी स्वर्गीय श्रीमती बिन्दु अग्रवाल ने सन् 1979 में की थी। पुरस्कार समिति के निर्णायक मंडल में प्रो. नामवर सिंह, श्री विष्णु खरे, प्रो. केदारनाथ सिंह, श्री अशोक वाजपेयी एवं श्री अरुण कमल हैं। हर वर्ष बारी-बारी से वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कविता का चयन करते हैं। इस बार इस क्रम में श्री अरुण कमल निर्णायक थे।

बंसी कौल और हरिकृष्ण देवसरे को बाल रंग सम्मान

बाल रंगमंच से जुड़ी संस्था 'उमंग' ने बाल रंग सम्मान की शुरुआत की है। पहला बाल रंग सम्मान बंसी कौल और हरिकृष्ण देवसरे को दिया जाएगा। देवसरे बाल कथाओं और बाल नाटकों के लेखकों में अग्रणी हैं। उनकी 350 से ज्यादा प्रकाशित पुस्तकों के कई उल्लेखनीय नाटक भी शामिल हैं जबकि बंसी कौल भी पिछले करीब द्वादश दशक से बच्चों के साथ रंगकर्म से जुड़े हैं। उन्होंने अनेक बाल नाटकों का निर्देशन भी किया है।

उमंग की स्थापना 30 साल पहले बाल रंगमंच विशेषज्ञ रेखा जैन ने की थी। पहले बालरंग की निर्णायक भी रेखा जैन खुद हैं। सम्मान के रूप में देवसरे और कौल दोनों को 25 हजार रुपए की राशि व प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाएगा।

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय हलचलें

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्व-विद्यालय की पत्रिकाओं, बहुवचन, पुस्तक वार्ता और हिंदी: लैंग्वेज डिस्कॉर्स राइटिंग का पुनः प्रकाशन सुखद घटना है। इस बीच विश्वविद्यालय के इलाहाबाद केंद्र और नई दिल्ली केंद्र का शुभारंभ भी विश्वविद्यालय के कुलपति विभूति नारायण राय के हाथों हुआ। पुस्तक वार्ता के संपादक भारत भारद्वाज और हिंदी : लैंग्वेज डिस्कॉर्स राइटिंग की संपादिका ममता कालिया दिल्ली केंद्र से काम कर रहे हैं जबकि बहुवचन के संपादक राजेन्द्र कुमार इलाहाबाद केंद्र से पत्रिका का काम देख रहे हैं। पुस्तक वार्ता पुस्तक समीक्षा की पत्रिका है, जिसमें केवल हिंदी ही नहीं अंग्रेजी में भी हाल में प्रकाशित महत्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षाएं प्रकाशित की जाती हैं। बहुवचन करीब 300 पृष्ठों की साहित्यिक पत्रिका है और इसमें हिंदी की रचनात्मकता कम विचार अधिक मुखर दिखाई देता है। अपने स्वरूप में जर्नल की कलेवर वाली यह हिंदी की अकेली पत्रिका है। हिंदी साहित्य की अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाली पत्रिका हिंदी का स्वरूप सबसे हटकर है। इसमें अनुवाद की प्रमुखता है। पत्रिका का उद्देश्य है हिंदी साहित्य को अंग्रेजी के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करवाना। बीच में करीब छह साल तक विश्वविद्यालय ने पत्रिका का प्रकाशन रोक दिया था। नए कुलपति ने प्राथमिकता के आधार पर इस पत्रिका का प्रकाशन आरंभ करवाकर यह संकेत दे दिया है कि वे विश्वविद्यालय से जुड़े अंतर्राष्ट्रीय शब्द की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध हैं।

वाणी प्रकाशन को विशिष्ट साहित्य सम्मान

महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी ने वाणी प्रकाशन को उसकी विशिष्ट साहित्यिक उपलब्धियों के लिए सम्मानित किया। ये उपलब्धियां भाषाई बंधनों को तोड़कर साहित्य के विविध आयामों को हिंदी में उपलब्ध कराने से संबंधित हैं। यह सम्मान नंदकिशोर नौटियाल, अध्यक्ष महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, ने 12 जुलाई 2009 को नागपुर में आयोजित सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन में प्रदान किया। सम्मान प्राप्त करते हुए अरुण माहेश्वरी ने कहा कि हम हिंदी पुस्तक प्रकाशन को बहुआयामी बनाने के लिए कृतसंकल्प हैं तथा इस दिशा में अनेक योजनाओं पर विचार कर रहे हैं।

रंगकामी अलकाजी को हिंदीरत्न

नई दिल्ली। हिंदी भवन सभागार में हिंदी भवन न्यास की ओर से आयोजित समारोह में देश-दुनिया में भारतीय रंगमंच को नई पहचान देने वाले रंगकामी इब्राहिम अलकाजी को इस साल के हिंदीरत्न सम्मान से अलंकृत किया गया। यह सम्मान हिंदी भवन न्यास की ओर से हर साल हिंदी के उत्थान और प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान के लिए दिया जाता है। ईरानी मूल के अरबी भाषा-भाषी अलकाजी हिंदी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य पर आधारित कई नाटकों को सफल निर्देशन कर चुके हैं।

‘संतुलित भोजन’ का विमोचन

महामहिम बलराम जाखड़, राज्यपाल, मध्य प्रदेश ने चिकित्सा विज्ञान के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार की पोषण विज्ञान पर लिखित कृति ‘संतुलित भोजन’ का राजभवन से विमोचन किया। इस अवसर पर उन्होंने लेखक को शुभकामनाएं देते हुए कहा कि यह पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है लेकिन मेरे लिए भी बहुत उपयोगी है।

इसमें पोषण और कुपोषण पर सभी प्रमुख जानकारीयें सरल भाषा में सन्निहित हैं। पुस्तक में कुल 40 चित्र और 30 तालिकाएं तथा 19 अध्याय हैं। जिनमें कुपोषण क्या है? उसके रोग एवं भोजन द्वारा चिकित्सा बतलाते हुए संतुलित भोजन और मिलावट, रक्ताल्पता, कृमिरोग इत्यादि के बारे में बतलाया गया है। बच्चों और स्त्रियों के लिए उचित भोजन तथा कुपोषण की पहचान भी विभिन्न अध्यायों में वर्णित है। इस तरह यह सचित्र पुस्तक समाज के हर वर्ग के लिए उपयोगी है। क्योंकि इसमें भोज्य पदार्थों की साफ-सफाई से लेकर उनकी मात्रा तक की जानकारी दी गई है।

पुस्तक विमोचन कार्यक्रम में प्रख्यात साहित्यकार मुक्तिबोध सृजन पीठक के निदेशक डॉ. श्यामसुंदर दुबे राज्यपाल के वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. एन.के. पाठक (एमडी), कर्नल एन.के. सोनी, समाजसेवी राइछा जी सोनी, डॉ. अनुपम स्वर्णकार एवं अभिषेक सराफ आदि उपस्थित व्यक्तियों ने कृति के लेखक डॉ. स्वर्णकार को बधाइयां दीं।

‘ये मेरे कामकाजी शब्द’, नारायण कुमार

प्रवासी भारतीय समाज की ओर से विगत माह 24 जुलाई 2009 को त्रिवेणी सभागार, नई दिल्ली में आयोजित एक भव्य समारोह में हिंदी के वरिष्ठ कवि और जापान की तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में कार्यरत प्रोफेसर सुरेश ऋतुपर्ण के षष्ठिपूर्ति समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अपने विचार प्रकट करते हुए भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के महानिदेशक श्री वीरेन्द्र गुप्त ने कहा, ‘डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण ने सन् 1988-1992 के मध्य त्रिनिडाड में हिंदी के प्रचार-प्रसार व शिक्षण के संदर्भ में जो कार्य किया वह मात्र भारतीय हाईकमीशन या वहां के विश्वविद्यालय तक ही सीमित न था वरन् उन्होंने उसे विभिन्न संस्थाओं के साथ मिलकर पूरे देश में फैलाया। मॉरीशस एवं जापान में उनके द्वारा किया गया कार्य, हिंदी-शिक्षण करने वालों के लिए प्रेरणा का विषय हो सकता है।’

डॉ. रत्नाकार पाण्डेय ने विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण के योगदान की प्रशंसा करते हुए कहा, ‘डॉ. ऋतुपर्ण अब तक आयोजित लगभग सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजनों में प्रमुख भूमिका निभाते रहे हैं।

डॉ. देवी प्रसाद त्रिपाठी ने डॉ. ऋतुपर्ण के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों की चर्चा करते हुए बताया कि जब वे जापान-यात्रा पर गए थे, तो तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज भी गये और डॉ. ऋतुपर्ण के जापानी छात्रों के साथ बड़े उल्लास और आनंद भरा समय बिताया।

इस अवसर पर डॉ. रामदरश मिश्र की अध्यक्षता में सुरेश ऋतुपर्ण के सद्यः प्रकाशित काव्य-संग्रह ‘ये मेरे कामकाजी शब्द’ का विमोचन भी हुआ जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय की पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. निर्मला जैन ने कहा, ‘सुरेश ऋतुपर्ण समर्पित भाव से केन्द्रित होकर कार्य करने वाले रचनाकार हैं और ‘ये मेरे कामकाजी शब्द’ की कविताएं बड़ी सार्थक कविताएं हैं। संवेदना और विचार का साथ होने के कारण इनका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।’

वरिष्ठ साहित्यकार एवं समालोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा, ‘ये मेरे कामकाजी शब्द’ एक उत्कृष्ट काव्य-संग्रह है। मुझे सन् 70 के आसपास के कवि ऋतुपर्ण याद आ रहे हैं। वे इनके गहन संघर्ष के दिन थे। इनके संग्रह के शीर्षक की तरह ही ये भी बड़े कामकाजी आदमी हैं। और यह अत्यंत स्वाभाविक बात है। जिस आदमी को कुछ करना होता है उसके सामने लक्ष्य तो रहेगा ही।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. नित्यानंद तिवारी ने ऋतुपर्ण को षष्ठिपूर्ति पर बधाई देते हुए संग्रह की महत्वपूर्ण और सबसे लंबी कविता 'ये मेरे कामकाजी शब्द' पर बात करते हुए डॉ. तिवारी ने कहा कि यह एक बड़ी 'पावरफुल' कविता है। अनर्गल भाषा लोगों की जिंदगी को दूधर बना सकती है। जो झूठ है उसे सच बनाकर दिखा सकती है। ऋतुपर्ण ने परिभाषित किया है अपने कामकाजी शब्दों को। वे शब्द धूप में छाह पाने के लिए भटक रहे हैं। प्यास से होठ जल रहे हैं और उनके हक का पानी बोतलों में बंद होकर दुनिया के बाजारों में बिक रहा है। भूमण्डलीकरण की इस प्रक्रिया में मार खाये शब्द ही उनके कामकाजी शब्द हैं जिनकी सिसकन कवि की नींद उड़ा देती है।

श्री अजित कुमार ने कहा, चौथे खण्ड की जिस एक कविता पर इस संग्रह का नाम है, 'ये मेरे कामकाजी शब्द' वह इस संग्रह की सबसे लंबी कविता है और मुमकिन है कि अपनी नाटकीयता, मंचीय अपील, आवृत्ति-मूलकता और सामाजिक सरोकार के नाते वह कवि या उनके प्रशंसकों को सर्वाधिक प्रिय भी हो।

समारोह के अध्यक्ष प्रो. रामदरश मिश्र ने अध्यक्षीय भाषण के पूर्व सुरेश ऋतुपर्ण ने अपनी कुछ चुनी हुई कविताओं का पाठ किया। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, 'इस संग्रह की लंबी कविता 'ये मेरे कामकाजी शब्द' विशेष उल्लेखनीय हैं। इस कविता में इनके मन की बेचैनी और व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

कार्यक्रम के इस खण्ड की समाप्ति पर प्रवासी भारतीय समाज के अध्यक्ष नारायण कुमार ने सभी विशिष्ट अतिथियों का आभार व्यक्त करते हुए कहा, 'अब आज के आयोजन का दूसरा आयाम शुरू होता है, अतीत के वातायन से सहयात्री हम।

डॉ. हरीश नवल ने डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण के साथ बिताए गए लगभग चालीस वर्षों के इतिहास को सूत्र रूप में प्रस्तुत किया।

प्रेम जनमेजय ने अपनी छात्रावस्था के दिनों को याद करते हुए बताया, 'सुरेश ऋतुपर्ण हम सबके हीरो हुआ करते थे। वे व्यक्तिगत लाभ से परे होकर सामूहिक लाभ के लिए, वृहत्तर दृष्टि से काम करने वाले बेहद लगनशील और सक्रिय अग्रज सहपाठी थे।

डॉ. दिविक रमेश ने कहा, 'कवि तो कवि ही रहता है। भले ही ऋतुपर्ण का यह संग्रह तीस

देवेंद्र दीपक का अमृत महोत्सव संपन्न

2 अगस्त को भोपाल के हिंदी भवन के प्रेक्षागृह में म.प्र. के संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा के मुख्य आतिथ्य और म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री-संचालक श्री कैलाशचंद्र की अध्यक्षता में डॉ. देवेंद्र दीपक का अमृत महोत्सव मनाया गया। विवेकानंद सांस्कृतिक परिषद् के सचिव स्वामी आत्म भोलानंद और माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता वि.वि. के कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र विशिष्ट अतिथि थे। समारोह में लगभग 50 साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं ने डॉ. दीपक को बधाई तथा शुभकामनाएं देते हुए स्वस्तिवाचन के बीच शॉल और श्रीफल से सम्मानित किया। 'व्यंग्य यात्रा' परिवार की बधाई एवं दीधीयु की शुभकामना।

वर्ष के अंतराल के बाद आया है लेकिन उसकी सक्रियता में कोई कमी नहीं आयी है।

डॉ. कमल कुमार ने कहा, 'मेरी कामना है कि सुरेश पाठ पर ही रुक जाए और ऐसे ही युवा-भाव से कविताएं रचते रहे।'

डॉ. अशोक चक्रधर ने सुरेश ऋतुपर्ण की एक कविता की पंक्ति, 'कितने-कितने रंगों के हैं दिन' को बदलकर, 'कितने-कितने रंगों के थे दिन', कहकर अपनी विशिष्ट शैली में अतीत को याद किया।

श्री चितरंजन खेतान ने कहा, 'मैं आज यहां विशिष्ट आलोचक, साहित्यकार या सहपाठी मित्र के रूप में नहीं वरन एक शिष्य के रूप में खड़ा हूँ। मुझे हिन्दू कॉलेज के वे दिन याद आ रहे हैं जब मैं वहां पढ़ता था और डॉ. ऋतुपर्ण पढ़ाते थे।'

लगभग साढ़े तीन घंटे तक चला यह स्नेह मिलन समारोह अब अंत की ओर था। त्रिवेणी सभागार में सभा-समाप्ति की घण्टी भी

बज गयी थी। डॉ. ऋतुपर्ण के आभार और प्रवासी भारतीय समाज के अध्यक्ष नारायण कुमार ने धन्यवाद प्रस्ताव के साथ ही इस भव्य और यादगार समारोह का समापन हुआ।

इस कार्यक्रम में पद्मभूषण श्री जसदेव सिंह, पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर, श्रीमती शीला झुनझुनवाला, श्री हिमांशु जोशी, श्री बालस्वरूप राही, श्रीमती पुष्पा रही, डॉ. ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, डॉ. रणजीत साहा, डॉ. देवेन्द्रराज अंकुर, डॉ. विनोद खेतान, डॉ. हरजेन्द्र चौधरी, मॉरीशस के प्रख्यात हिंदी साहित्यकार डॉ. प्रहलाद रामशरण सहित अनेक गणमान्य साहित्यकार एवं हिंदी सेवी विद्वान उपस्थित थे।

—डॉ. अरुणा गुप्ता

नरेन्द्र मोहन के सम्मान में काव्य संध्या

प्रख्यात कवि, नाटककार व आलोचक डॉ. नरेन्द्र मोहन शहर में डॉ. अजय शर्मा के उपन्यास पर आयोजित गोष्ठी में भाग लेने आए थे। उपन्यास पर डॉ. सुभाष रस्तोगी, डॉ. नीरू, डॉ. शशि प्रभा ने आलेख पढ़े।

शहर की साहित्यिक संवाद-साहित्य व पत्रकारिता मंच ने उनके सम्मान में साहित्यकार प्रेम विज के सेक्टर-27 स्थित आवास पर काव्य संध्या का आयोजन किया। इसके मुख्य अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. यश गुलाटी थे। काव्य संध्या में दो दर्जन से अधिक कवियों के साथ-साथ नरेन्द्र मोहन ने भी काव्य पाठ किया। कार्यक्रम के आरंभ में प्रेम विज ने नरेन्द्र मोहन, यश गुलाटी व कवियों का स्वागत किया। कार्यक्रम का संचालन रत्नेश ने किया। दीपक खेत्रपाल, सुभाष रस्तोगी, प्रेम विज, सुशील हसरत नरेलवी, जगमोहन चोपड़ा, शशि प्रभा आदि ने अपनी कविताओं का पाठ किया।

डॉ. नरेन्द्र मोहन ने फतल प्रदर्शनी, आप देख रहे हैं ना, मुर्दा या जिंदा, पेंटिंग से संबंधित कविताओं का पाठ किया।

जम्मू में आयोजित पुस्तक का लोकार्पण कार्यक्रम

14वीं शताब्दी की मशहूर कश्मीरी संत कवयित्री ललद्दय के जीवन पर केंद्रित उपन्यास का लोकार्पण के.एल. सहगल सभागार, जम्मू में आयोजित कार्यक्रम में विख्यात हिंदी कश्मीरी के वरिष्ठ लेखक डॉ. रतनलाल शांत ने किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा इस उपन्यास का डोगरी से हिंदी में अनुवाद वेद राही ने किया है

दिव्य जी को श्रद्धा से याद करने वाले असंख्य हैं— प्रेम जनमेजय

‘अम्बिका प्रसाद दिव्य जी को श्रद्धा से याद करने वाले असंख्य हैं। उनकी स्मृति का दीपक निरंतर प्रज्वलित रखने के लिए जगदीश किंजल्क और उनका परिवार बधाई का पात्र है। दिव्य जी प्रतीक हैं उन साहित्यकारों के जिन्हें उपेक्षित करने का षड्यंत्र किया गया पर उनकी स्वयं की ताकत के उन्हें जिंदा रखा।’ ये विचार हैं दिल्ली के व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय के। आप विगत 20 सितंबर 09 को भोपाल के हिंदी भवन में आयोजित राष्ट्रीय ख्याति के ‘अम्बिका प्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार’ वितरण समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बोल रहे थे। इस समारोह की अध्यक्षता की नागालैण्ड के पूर्व राज्यपाल पद्मश्री ओ.एन. श्रीवास्तव ने। आपने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि दिव्य पुरस्कारों की गुणवत्ता और लोकप्रियता निर्विवाद है। यह देश का ऐसा पुरस्कार है जो बिना शासकीय सहयोग के श्री जगदीश किंजल्क एवं उनके परिवार द्वारा चलाया जा रहा है। इस अवसर पर श्री मोती सिंह एवं श्री कैलाश चंद्र पंत ने विशिष्ट अतिथि के रूप में दिए गए अपने उद्बोधनों में दिव्य पुरस्कारों को अद्वितीय और अप्रतिम बताया। मंच पर श्री जी.पी. श्रीवास्तव (आई.ए.एस.), श्री के.एम. सिंह (मुख्य कार्यपालक निदेशक एन.एच.डी.सी.), श्री प्रियदर्शी खैरा एवं श्रीमती विजयलक्ष्मी विभा उपस्थित थे। कार्यक्रम का शुभारंभ अंशुरूपा खरे की सरस्वती वंदना से हुआ। कार्यक्रम के संयोजक एवं दिव्यालोक पत्रिका के संपादक श्री जगदीश ने अपने स्वागत भाषण में दिव्य पुरस्कारों की बारह वर्षों की यात्रा पर प्रकाश डाला। सागर विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. आनंद प्रकाश त्रिपाठी ने दिव्य जी के विराट कृतित्व पर सारगर्भित वक्तव्य दिया। समिति द्वारा इसी वर्ष से राजभाषा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्यों के लिए प्रारंभ किए गए अम्बिका प्रसाद दिव्य राजभाषा सम्मान से एन.एच.डी.सी. लि. भोपाल के मुख्य कार्यपालक निदेशक श्री के.एम. सिंह को सम्मानित किया गया। श्री दामोदर दत्त दीक्षित और श्रीमती मधु प्रसाद को दिव्य पुरस्कारों तथा डॉ. भरत प्रसाद और श्री सुशील सीतापुरी को दिव्य रजत अलंकरणों से सम्मानित किया गया। समारोह का संचालन किया डॉ. जवाहर कर्नावट एवं अनन्या वर्मा ने। कार्यक्रम के दूसरे चरण में श्रीमती विजया लक्ष्मी विभा के आध्यात्मिक पदों की पुस्तक ‘अंखियां पानी पानी’, श्री सुदर्शन सोनी के लघु कथा संग्रह ‘नजरिया’, श्री अंशुलाल पंड्रे के गीत संग्रह ‘जननी भारत माता’ का लोकार्पण किया गया। श्री जगदीश किंजल्क एवं विजयलक्ष्मी विभा द्वारा संपादित पत्रिका ‘दिव्यालोक’ एवं प्रो. आनंद त्रिपाठी द्वारा संपादित पत्रिका ‘शब्द शिखर’ के विशेषांकों तथा श्रीमती शकुंतला खरे और मुक्ता श्रीवास्तव के लोकगीत संग्रह ‘मिठास’ का लोकार्पण किया गया। समारोह में दिव्य जी की सुपुत्री श्रीमती चकोरी खरे की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। समारोह भवन में डॉ. मुक्ता श्रीवास्तव एवं कुमारी संयुक्ता श्रीवास्तव द्वारा आयोजित बुंदेली पर्व चित्र प्रदर्शनी भी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र रही। समारोह के अंत में प्रसिद्ध कथाकार श्री माता चरण मिश्र ने आभार माना।

राजो किंजल्क, प्रबंध संपादक- दिव्यालोक

जिसे एक सफल प्रयास कह सकते हैं। उन्होंने कहा कि कश्मीरी भाषा आदि कवयित्री ललदयद की कविताएं किसी रूहानी शक्ति से कम नहीं हैं। एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित करने के लिए ट्रस्ट की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय जगत में ‘ललदयद’ की जानकारी निश्चित तौर पर पाठकों की जिज्ञासा अवश्य शांत करेगी।

वरिष्ठ कवि डॉ. अग्निशेखर ने कहा, वेद राही के डोगरी उपन्यास का अनुवाद पढ़कर मैं कई दिनों तक विस्मित रहा। कश्मीरी आदि कवयित्री ललदयद के जीवनवृत्त पर खड़ा यह उपन्यास मुझे एक आह्लाद से भर गया। ललदयद का अध्यात्मक ही उसका संप्रेषण है। उसका अनुभव है। डॉ. अग्निशेखर ने कहा— ललदयद जैसी महान योगिनी कश्मीरी कवयित्री पर उपन्यास लिखने की चुनौती को वेद राही ने जिस अतिरिक्त सहजता और साधना वृत्ति से स्वीकार किया लगता है वह उल्लेखनीय है।

वेदराही ने ट्रस्ट के कार्यक्रम की सराहना करते हुए कहा, लेखक की किताब का उसके शहर में लोकार्पण, चर्चा गोष्ठी करना ट्रस्ट का लेखकों के प्रति अनुराग को व्यक्त करता है। उन्होंने कहा कि इस तरह के ऐतिहासिक चरित्रों पर और काम करने की आवश्यकता है। इस अवसर पर जे एंड के भाषा, कल्चर अकादमी के सचिव डॉ. जफर इकबाल मिन्हास ने कहा असली कश्मीरियत ललदयद जैसे महान लोगों से ही है। उन्होंने कहा, ललदयद प्यार, त्याग, मानवता व सच्चाई की प्रतीक थीं। इस अवसर पर कार्यक्रम से पूर्व ट्रस्ट के सहायक संपादक डॉ. ललित किशोर मंडोरा ने कार्यक्रम की परिकल्पना और ट्रस्ट की प्रकाशन गतिविधियों पर विस्तार से चर्चा की।

इस कार्यक्रम में ललदयद के अलावा ट्रस्ट द्वारा हिंदी पंजाबी की लगभग आठ पुस्तकें भी मंचस्थ विद्वानों द्वारा लोकार्पित की गईं। जो इस प्रकार हैं— मोहन राकेश की चुनिंदा कहानियां (हिंदी), विष्णु प्रभाकर की चुनिंदा कहानियां (हिंदी), स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक (हिंदी), चंपू लौट आया (पंजाबी), चोर मचाए शोर (पंजाबी), मुनिया रानी (पंजाबी), अमवा भैया नीमवा भैया (पंजाबी), नवाब रंगीले (पंजाबी) हिंदी की लोकार्पित पुस्तकों पर जम्मू विश्वविद्यालय की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. नीलम सराफ ने आलेख पढ़ा। कार्यक्रम के दूसरे चरण में पांच भाषाओं के कवियों का काव्य पाठ था। जिसमें हिंदी, उर्दू, पंजाबी, डोगरी व कश्मीरी भाषाएं शामिल थीं। पंजाबी के कवियों में डॉ. कीरत सिंह इंकलाबी, डॉ. मोहन सिंह शांत (श्रीनगर) व डॉ. कुलवंत सिंह थे। हिंदी में श्री महाराज कृष्ण, डॉ. अशोक गुप्ता (जम्मू विश्वविद्यालय) व श्री शेख मोहम्मद कल्याण थे। उर्दू के वरिष्ठ कवि अर्श सहबाई, श्री मोहन सिंह व श्री उत्तम सिंह शामिल थे। सुबह के सत्र का संचालन ‘शीरजा’ पत्रिका की संपादक डॉ. नीरू शर्मा ने किया व कविसम्मेलन का संचालन अकादमी के उप-सचिव डॉ. अमर सिंह अमन ने किया। समारोह में स्वागत वक्तव्य अकादमी की अतिरिक्त सचिव डॉ. सविता बख्शी ने दिया। ट्रस्ट से सहायक संपादक डॉ. ललित किशोर मंडोरा ने कार्यक्रम में आमंत्रित रचनाकारों, बुद्धिजीवियों तथा पत्रकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की।

‘नन्द की कहानियों में डाकिये का जीवन- संसार है’

प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका ‘नई धारा’ द्वारा ‘रचनाकार से मिलिये’ श्रृंखला में विगत 15 सितंबर, 2009 को पटना के श्री अरविन्द महिला कॉलेज में कथा-विमर्श का आयोजन किया गया, जिसमें चर्चित उडियाभाषी कथाकार ए.एन.नंद ने ‘डाकमणि’ कथा का पाठ किया। इस अवसर पर नन्द के कथा संग्रह ‘विरासत’ पर गहन विमर्श भी किया गया।

आरंभ में ए.एन. नन्द ने अपनी रचना-प्रक्रिया बताते हुए कहा कि ‘विरासत’ में डाककर्मियों के जीवन-संसार से जुड़ी तीस कहानियां हैं। एक समय था जब दिल को दिलों से जोड़ने का काम डाकिया करता था, जो अब

मोबाइल और इंटरनेट के युग में अप्रासंगिक-सा हो गया है। प्रेम और प्रतीक्षा प्रगति की मोटी चादर के नीचे दम तोड़ रही है। ऐसे में मेरी कहानियां आज पुनः इतिहास के उन क्षणों को याद करती हैं, जब चिट्ठियों के सहारे इतिहास में मोड़ बदल जाया करते थे।

कथा-विमर्श की अध्यक्षता साहित्यकार डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह ने की, जबकि संचालन प्रसिद्ध कवि-समालोचक एवं 'नई धारा' के संपादक डॉ. शिवनारायण ने किया।

कथा विमर्श को शुरू करते हुए 'नई धारा' के संपादक डॉ. शिवनारायण ने कहा कि 'नई धारा' के 60 वर्ष पूरे होने पर 'रचनाकारों से मिलिए' शृंखला में देश के चर्चित रचनाकारों को समय-समय पर आमंत्रित कर पाठकों से रू-ब-रू कराया गया। उसी कड़ी में आज उड़िया कथाकार ए.एन. नन्द से कथा-विमर्श किया जा रहा है। कथा-विमर्श में अन्य जिन विद्वानों ने भाग लिया, उनमें डॉ. ध्रुव कुमार, डॉ. कलानाथ मिश्र, राजेश शुक्ल, डॉ. फरजाना असलम, डॉ. प्रभा मिश्र, डॉ. प्रतिमा सहाय, डॉ. उषा सिंह, सिद्धेश्वर, डॉ. आशा त्रिपाठी, डॉ. चित्रा वैश, मंजू शर्मा आदि प्रमुख थे।

प्रस्तुति- आरती सिंह

हरिनारायण को बृजलाल द्विवेदी साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान

भोपाल । दिल्ली से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका कथादेश के संपादक हरिनारायण को पं. बृजलाल द्विवेदी अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान दिए जाने की घोषणा की गयी है। वर्ष 2008 के सम्मान के लिए श्री हरिनारायण के नाम का चयन पांच सदस्यीय निर्णायक मंडल ने किया जिसमें नवनीत के संपादक विश्वनाथ सचदेव (मुंबई), सप्रे संग्रहालय, भोपाल के संस्थापक विजयदत्त श्रीधर (भोपाल), छत्तीसगढ़ हिंदी ग्रंथ अकादमी के संचालक रमेश नैयर, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर के कुलपति सच्चिदानंद जोशी, साहित्य अकादमी के सदस्य गिरीश पंकज (रायपुर) शामिल थे। पूर्व में यह सम्मान वीणा (इंदौर) के यशस्वी संपादक डॉ. श्यामसुंदर व्यास और दस्तावेज (गोरखपुर)



मुरारी शर्मा को रमाकांत कहानी पुरस्कार

सन् 2009 का रमाकांत कहानी पुरस्कार इस बार युवा कथाकार मुरारी शर्मा को उनकी कहानी 'बाणमूठ' के लिए दिया जाएगा।

यह सूचना निर्णायक डॉ. विजयमोहन सिंह ने दी।

पुरस्कार-समिति के संयोजक महेश दर्पण के अनुसार पुरस्कार समारोह 3 दिसंबर को देहली में होगा।

के संपादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को दिया जा चुका है।

इस सम्मान के तहत किसी साहित्यिक पत्रिका का श्रेष्ठ संपादन करने वाले संपादक को 11 हजार रुपए, शॉल, श्रीफल, प्रतीकचिन्ह एवं सम्मान पत्र देकर सम्मानित किया जाता है। मार्च, 1948 में जन्में श्री हरिनारायण 1980 के कथादेश का संपादन कर रहे हैं। वे हंस, विकासशील भारत, रूप कंचन के संपादन से भी जुड़े रहे हैं। उनके संपादन में कथादेश ने देश के चर्चित साहित्यिक पत्रिकाओं में अपनी जगह बना ली है।

निर्मम प्रहारक ही अच्छा व्यंग्यकार- डॉ. हरीश नवल

'व्यंग्यकार को निर्मम प्रहारक होना ही चाहिए, नहीं तो व्यंग्य ही नहीं रहेगा। व्यंग्य का पाठक असाधारण होता है, इसीलिए व्यंग्य सामान्य पाठक की विधा नहीं है। आज पुराने विषयों पर व्यंग्यकार नए ढंग से लिख रहे हैं, यह चुनौती बड़ी है, ऐसे में व्यंग्य को अभिव्यक्त करना तथा संप्रेषित करना और भी कठिन है।' ये शब्द प्रख्यात व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल ने साहित्यिक संस्था 'शब्द सेतु' द्वारा आयोजित डॉ. रवि शर्मा के प्रकाश्य व्यंग्य संकलन की पांडुलिपि परीक्षण परिचर्चा में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहे।

'शब्द चौपाल' हिंदू कॉलेज परिसर में आयोजित अपने तरह के इस अनूठे कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे- वरिष्ठ व्यंग्यकार, आलोचक एवं कवि डॉ. शेरजंग गर्ग।

कार्यक्रम के प्रारंभ में 'शब्द सेतु' के

प्रबंध सचिव डॉ. हरींद्र कुमार ने संस्था की एक दशक की सफल यात्रा का परिचय दिया।

सुभाष चंदर ने मुख्य वक्ता के रूप में कहा कि पांडुलिपि परीक्षण का अर्थ है- समीक्षक उसे पढ़े, गलती जांचे और सुझाव दे तथा लेखक उसे ठीक करे। हिंदी में 'पांडुलिपि परीक्षण' की परंपरा का बहुत अभाव रहा है, जिसकी पूर्ति की दिशा में यह आयोजन एक सार्थक प्रयास है।

'व्यंग्य संध्या का आयोजन'

साहित्य अकादमी एवं इंडियन सोसायटी ऑफ आर्थर्स के तत्वावधान में प्रगति सभागार में व्यंग्य संध्या का आयोजन किया गया। आरंभ में कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य के समकालीन परिदृश्य पर प्रकाश डाला और उसके सैद्धांतिक पक्ष पर अनेक महत्वपूर्ण सवाल उठाए। कार्यक्रम में अध्यक्ष हरीश नवल, विशिष्ट अतिथि प्रेम जनमेजय, मुख्य अतिथि अलका पाठक के साथ-साथ राजेंद्र सहगल और रवि शर्मा ने व्यंग्य पाठ किया। इस कार्यक्रम की संकल्पना और संयोजन सोसायटी के अध्यक्ष दिनेश मिश्र ने की। धन्यवाद ज्ञापन विवेक गौतम ने किया।

प्रभाशंकर उपाध्याय सम्मानित

राजकीय जिला सार्वजनिक पुस्तकालय सवाईमाधोपुर में विश्व पुस्तक दिवस का आयोजन लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों के बीच संपन्न हुआ। प्रभाशंकर उपाध्याय के संकलन 'काग के भाग बड़े' पर परिचर्चा हुई जिसमें श्रीनंदन चतुर्वेदी, आरती रानी सिंह, राधेश्याम अटल, बृजमोहन पारिख आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम के अंत में पुस्तकालय अध्यक्ष ने विभाग की ओर से प्रभाशंकर उपाध्याय को सम्मानित किया।

साहित्यकारों के लिए एक लाख का पुरस्कार

श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर द्वारा शताब्दी वर्ष की स्मृति को चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से साहित्यकारों के अवदान के प्रति सम्मान व्यक्त करने हेतु दो पुरस्कारों की घोषणा की है। विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें- श्री सूर्यकांत नागर, संयोजक श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, 11 रवींद्रनाथ टैगोर मार्ग इंदौर-453001


Vibhom Enterprises

[Home](#)
[About Us](#)
[Publications](#)
[Photo Gallery](#)
[Reader's Corner](#)
[Online Hindi Chetna](#)

Welcome to Vibhom Enterprises

VIDHOM ENTERPRISES LLC is a USA based company founded by Dr. Sudha Om Dhingra. Vibhom Enterprises main objective is to promote Hindi language, art, literature and culture. VIDHOM ENTERPRISES provides various platforms for people committed to advancing Hindi language, art, literature, and culture. VIDHOM ENTERPRISES has established a transparent and streamlined process for publishing books in Hindi language: recording audio cassettes, compact discs, organizing poetry symposia and cultural programs in USA. VIDHOM ENTERPRISES philanthropic arm, Vibhutee, helps disadvantaged and distraught women, children and senior citizens in USA.



Publishing books in
Indian Languages



परम्परा को सहेजने का अनुष्ठान
Hindi blog "DRISHTI" at : <http://www.vibhom.com/blogs> Web Site : <http://www.vibhadr.com>

VIBHOM ENTERPRISES

Contact Person : Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guyman Court, Morrisville, NC - 27560, USA Tel : 001-919-678-9056



<http://hindichetna.blogspot.com/>

हिंदी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा, कनेडा की त्रैमासिक पत्रिका

• डॉ. कामिल बुल्के विशेषांक •

वर्ष 95, अंक 43, जुलाई 2009 Year 11, Issue 43, July 2009
Hindi Chetna quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada
सम्पर्क : Hindi Chetna, 6, Laiksmere Court, Markham, Ontario L3R 3R1
Phone (905) 475-7166 Fax : (905) 475-8867 e-mail : hindichetna@yahoo.ca

हिंदी चेतना को
ON LINE
पढ़ सकते हैं
www.vibhom.com

सम्पादक
यतेन्द्र वार्षनी

गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक ई-पत्रिका

garbhanal@gmail.com

आपको हिंदी बोलनी आती है? तो फिर हिंदी में ही बात करिये
आप कुछ लिखने चाहते हैं? तो फिर हिंदी में लिखिये
अपनी बोली-बानी में बात करने का मंच है गर्भनाल ई-पत्रिका, जो हर माह नियमित तौर पर आपके ईमेल बॉक्स में पहुँच जाती है. इसे पढ़ें और पढ़ेजनों, मित्रों को फॉरवर्ड करें.











गर्भनाल के पुराने अंक उपलब्ध है.
<http://hinditoolbar.googlepages.com/garbhanal>

शृजन स्मरण



यह सब फूल भावों कहीं से !
रंगों का यह वैविध्य,
इसका स्मृत कहीं है,
उन छीटी-छीटी बीजों में है।

भगवती चरण वर्मा

(1903 - 1980)



सूचना एवं प्रचार निदेशालय

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. प्रेम प्रकाश की ओर से सचदेवा प्रिंट आर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड, 44, राजस्थानी उद्योगनगर,
जो.टो. करनाल रोड, दिल्ली-110033 द्वारा मुद्रित एवं 73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 से प्रकाशित

संपादक : प्रेम जनमेजय